प्रमुख राजनीतिक व्यवस्थाएँ

(Selected Political Systems : U.K., U.S.A., Switzerland, Japan, People's Republic of China & France)

●

डॉ. प्रभुदत्त शर्मा
पी-एच डी (अमेरिका)
पूर्व-प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

●

कालेज बुक डिपो
83, त्रिपोलिया बाजार (आतिश गेट के पास)
जयपुर-2 (राज.)

दो शब्द

प्रस्तुत प्रकाशन राजनीति विज्ञान के बहुचर्चित एवं पुराने परम्परागत विषय पर होते हुए भी एक ऐसा प्रयास है जो कई दृष्टियों से नया है और इसीलिए शायद उपयोगी भी। पाठ्यपुस्तकों की दुनिया भी दुनिया के अन्य सभी पहलुओं की तरह प्रतिद्वन्द्वात्मक है और शाश्वत् विकासशील भी। अतः पुराने क्षेत्र में प्रयुक्त हर नए प्रयास का अपना एक मूल्य है और अपना एक विशिष्ट स्थान।

उक्त भावना से अनुप्राणित प्रस्तुत रचना का पूर्णतया संशोधित संस्करण विद्यार्थी-जगत् को संविधानों की नई-पुरानी विधाओं से परिचित कराने के साथ-साथ उन्हें विश्लेषित एवं मूल्यांकित करने के लिए कुछ नए मान उपस्थित करती है। सामग्री की समीचीनता, विवेचन की सरलता एवं नए दृष्टिकोणों से संविधानों को देखने-पहिचानने एवं तोलने का यह प्रयास विद्यार्थियों को विषय के प्रति एक जिज्ञासा एवं रुचि दे सके, इसकी यथासम्भव निष्ठा से चेष्टा की गई है। विद्यार्थियों के हितार्थ बहुविकल्पी प्रश्नों को भी पुस्तक के अन्त में सम्मिलित किया गया है।

आशा है विद्यार्थी-जगत् इस प्रयास का स्वागत करेगा। पुस्तक के प्रणयन में जिन मानक ग्रन्थों से सहायता ली गई है उनके विद्वान् लेखकों के प्रति आभार ज्ञापित करना एक औपचारिकता न होते हुए सच्ची प्रसन्नता है।

प्रभुदत्त शर्मा

अनुक्रमणिका

ब्रिटेन का संविधान
(The Constitution of Great Britain)

अमेरिका का संविधान

(The Constitution of United States of America)

स्विट्जरलैण्ड का संविधान

(The Constitution of Switzerland)

चीन का संविधान

(The Constitution of People's Republic of China)

फ्रांस का संविधान

(The Constitution of France)

ब्रिटिश संविधान का उद्‌विकास

(Evolution of the British Constitution)

"इंग्लैण्ड का संविधान विभिन्न संस्थाओं, आदर्शों व व्यवहारों का विचित्र मिश्रण है। यह राज-पत्रों, न्यायिक निर्णयों, रूढ़ि-विधियों, उदाहरणों, प्रथाओं तथा परम्पराओं का समन्वय है। यह कोई एक लेख नहीं है बल्कि हजारों लेख हैं, इसको एक ही स्रोत से न लेकर अनेक साधनों व स्थानों द्वारा प्राप्त किया गया है। यह कोई अन्तिम प्राप्त वस्तु न होकर विकासशील वस्तु है। यह बुद्धिमत्ता और संयोग का संस्थान है, जिसका मार्ग-प्रदर्शन कहीं आकस्मिकता ने और कहीं उच्च-कोटि की योजनाओं ने किया है।" —*मुनरो*

मुनरो के इस कथन से स्पष्ट होता है कि ब्रिटिश संविधान सतत् विकास का परिणाम रहा है। हम साधारणतः जिसे ब्रिटिश संविधान कहते हैं उसका पूरा नाम "यूनाइटेड किंगडम ऑफ ग्रेट-ब्रिटेन तथा उत्तरी आयरलैण्ड" (United Kingdom of Great Britain and Northern Ireland) का संविधान है जिसमें (i) इंग्लैण्ड एवं वेल्स, (ii) स्कॉटलैण्ड एवं (iii) उत्तरी आयरलैण्ड सम्मिलित हैं।[1]

ब्रिटिश संविधान, जो सदियों में विकसित हुआ है, निम्नलिखित तीन विचारधाराओं का समन्वय करता है—

(i) रूढ़िवाद—ब्रिटेन निवासी रूढ़िवादी परम्परागत संस्थाओं और सिद्धान्तों के पोषक हैं। अनुभव के आधार पर स्थापित संस्थाओं की अपेक्षा करते हैं। समयानुकूल ऐसे परिवर्तनों के समर्थक है जिन्हें स्वीकार करते हुए अधिक से अधिक परम्परागत संस्थाओं की रक्षा की जा सके।

(ii) उदारवाद—ब्रिटेन की राजनीति में उदारवाद का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। शीर्षस्थ उदारवादी जॉन लॉक (John Locke), जर्मी बेन्थम (Jeremy Bentham) और जॉन स्टुअर्ट मिल (John Stuart Mill) के विचारों का प्रभाव ब्रिटिश संविधान पर देखा जा सकता है। ब्रिटिश राजनीति पर बेन्थम का प्रभाव एक राजनीतिक सुधारक के रूप में अधिक पड़ा। जन सरकार और बहुमत शासन का उसने जोरदार समर्थन किया। आर्थिक क्षेत्र में ब्रिटिश शासन प्रणाली को एडम स्मिथ (Adam Smith) के उदारवाद से

1. 'ब्रिटेन' और 'यूनाइटेड किंगडम' शब्दावलियों का समानार्थक प्रयोग इंग्लैण्ड, वेल्स, स्कॉटलैण्ड तथा उत्तरी आयरलैण्ड के लिए होता है। 'ग्रेट-ब्रिटेन' शब्दावली का प्रयोग केवल इंग्लैण्ड, वेल्स और स्कॉटलैण्ड के लिए किया जाता है। वैसे सामान्यतः पाठ्य-पुस्तकों में इन तीनों शब्दावलियों का समानार्थक रूप से प्रयोग किया जाता है।

प्रेरणा मिली। इस रूढ़िवाद और उदारवाद में समयानुकूल समन्वय होता गया और तद्नुरूप शनैः-शनैः ब्रिटिश संविधान के रूप और उसकी प्रकृति में परिवर्तन हुए।

(iii) समाजवाद—19वीं शताब्दी में समाजवाद की विचारधारा ने ब्रिटिश संवैधानिक व्यवस्था को प्रभावित किया। ब्रिटिश संविधान पर मार्क्सवाद की अपेक्षा फेबियन (Fabian) समाज के विचारकों का भारी प्रभाव पड़ा जो क्रान्ति के स्थान पर क्रमबद्ध विकास के पक्षपाती थे। 1900 ई. में फेबियन सोसायटी ने कुछ अन्य संघों के संगठनों से मिलकर मजदूर दल (Labour Party) की स्थापना की जो आज ब्रिटिश का प्रमुख राजनीतिक दल है।

उद्‌विकास का इतिहास
(History of Evolution)

ब्रिटिश संविधान की जड़ें सदियों पुराने इतिहास में निहित हैं। यह संविधान लगभग 1300 वर्ष पुराना है।

ब्रिटिश संविधान का उद्‌विकास कुछ मुख्य स्तरों को पार कर चुका है जिनका विवेचन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत दिया जा सकता है—

(1) ऐंग्लो-सैक्सन काल (Anglo-Saxon Period)—पाँचवीं सदी से 1066 तक।

(2) नार्मन-एन्जीवन काल (Norman-Angevian Period)—1066 ई. से 1153 तक।

(3) प्लानटेगनेट (1153-1399) और लंकास्ट्रियन काल (1399-1485) (Plantagenet and Lankastrian Period)।

(4) ट्यूडर काल (Tudor Period)—1485 से 1603 तक।

(5) स्टुअर्ट काल (Stuart Period)—1603 से 1714 तक।

(6) हैनोवर काल (Hanover Period)—1714 से वर्तमान तक।

पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ऐंग्लो-सैक्सन जाति (Anglo-Saxon Tribe) ने ब्रिटेन पर अधिकार कर लिया। इस जाति का आधिपत्य लगभग 1066 तक रहा। ऑग और जिंक के अनुसार यही वह प्रथम काल था जिसे ब्रिटेन में राजनीतिक संस्थाओं के विकास का प्रारम्भ कहा जा सकता है।[1] इस युग की दो प्रमुख देन निम्नांकित है—

(1) राजपद का प्रादुर्भाव—ब्रिटिश राजपद का प्रादुर्भाव ऐंग्लो-सैक्सन लोगों के समय सातवीं-आठवीं शताब्दी में हुआ। उस समय ब्रिटेन में छोटे-छोटे कबीले और समुदाय थे। शनैः शनैः शक्तिशाली समुदायों ने निर्बल समुदायों पर विजय प्राप्त करना आरम्भ कर दिया और ब्रिटेन में राजतन्त्रीय शासन की स्थापना हुई। अलग-अलग राज्यों की स्थापना के बाद वेसेक्स (Wessex) राजवंश की सर्वोच्चता कायम हो गई और अल्फ्रेड (871) से लेकर नोर्मन विजय (1066) तक वस्तुतः सम्पूर्ण इंग्लैण्ड पर इसी का शासन रहा।

1. *Ogg and Zink* Modern Foreign Government, p. 4

ऐंग्लो-सैक्सन कालीन राजा का पद कभी परम्परागत होता था और कभी निर्वाचित इस समय राजा का रूप यद्यपि निरंकुश हो गया तथापि उसकी स्वेच्छारिता पर विटनेजमोट (Witenagemot) अर्थात् बुद्धिजीवियों की सभा का अंकुश था। यह राजा की एक प्रकार की परामर्शदात्री समिति थी जिसके पास इतनी शक्ति थी कि वह राजा को गद्दी से उतार सकती ती और नया राजा चुन सकती थी। शासन-प्रबन्ध में इसका पूरा अधिकार था। वास्तव में यह प्रारम्भिक अवस्था में आधुनिक संसद(Parliament) थी। यह सभा प्रायः अपने अधिकारों का उपयोग नहीं करती थी और राजा का व्यक्तित्व ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझा जाता था। कालान्तर में जैसे-जैसे शक्तिशाली राजा आते गए, विटनेजमोट की शक्तियों में ह्रास होता गया। कालान्तर में यह राजाओं की चाटुकारी संस्था में परिवर्तित हो गई।

(2) स्थानीय स्वशासन—संवैधानिक दृष्टिकोण से इस काल की दूसरी महत्वपूर्ण सफलता स्थानीय स्वशासन की स्तापना है। इस समय सम्पूर्ण देश 'शायरों' अर्थात् प्रान्तों (Shires) में विभक्त था। शायर स्थानीय शासन की सर्वोच्च इकाई थी ये शायद ही आधुनिक काउण्टियों (Counties) (जिलों) की जन्मदात्री हैं। शायर हंडरैड (Hundred) नामक उप-प्रदेशों में विभक्त थे। एक हंडरैड में अनेक ग्राम सम्मिलित होते थे। हंडरैड गाँवों व शहरों में विभक्त थे। प्रत्येक गाँव अथवा शहर में एक टाउनशिप (Township) नगर-क्षेत्र होती थी जो स्थानीय शासन की सबसे नीची इकाई थी। ये सभी इकाइयाँ प्रशासनिक और न्यायिक दोनों ही कार्य करती थीं।

नॉर्मन एन्जीवन काल (1066-1153)

1066 ई. तक ऐंग्लो-सैक्सन जाति का ब्रिटेन में प्रभुत्व रहा, परन्तु इस वर्ष नॉर्मन (Norman) देश के विलियम ऑफ नोरमण्डी (William of Normandy) ने आक्रमण कर ब्रिटेन में नॉर्मन राज्य की स्थापना की। इस विजय के साथ ही ब्रिटेन में संवैधानिक विकास के नये युग का प्रादुर्भाव हुआ।

सामन्तशाही की स्थापना—विलियम ने शासन की सुविधा और जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए देश में सामन्तवादी शासन की स्थापना की। सम्पूर्ण देश को सामान्तिक इकाइयों में बाँट दिया गया। प्रत्येक इकाई एक बैरन (Baron) अर्थात् सामन्त के अधीन रखी गई जो अपने यहाँ सेना रखता था और आवश्यकतानुसार राजा की सहायता करता था। विलियम ने विटनेजमोट (Witenagemot) को समाप्त कर दिया। उसके स्थान पर उसने एक महान् परिषद् अथवा उच्चस्तरीय समिति (Great Council) की स्थापना की जिसमें बैरन और राज्य के बड़े-बड़े पदाधिकारी बुलाए जाते थे। इस महान् परिषद् को मैग्नम कौंसिल (Magnum Council) की स्थापना की जिसमें बैरन और राज्य के बड़े-बड़े पदाधिकारी बुलाए जाते थे। इस महान् परिषद् को मैग्नम कौंसीलियम (Magnum Councilium) भी कहा जाता था। इस परिषद् का काम राजकीय मालगुजारी को इकट्ठा करना व उसका हिसाब रखना था। समिति की बैठक वर्ष में तीन बार होती थी। वर्तमान चाँसलर ऑफ दी एक्सचैकर (Chancellor of the Exchequer) की उत्पत्ति यहीं से होती है। महान् परिषद् या मैग्नम कौंसीलियम के भी

वही कार्य थे जो इसकी पूर्वगामी संस्था विटनेजमोट के थे, किन्तु राजा की शक्तियाँ बढ़ गई थीं, अतः महान् परिषद् की शक्तियाँ विटनेजमोट से कम हो गई। विलियम ने अन्तरिम समिति की स्थापना की जिसको 'क्यूरिया रेजिस' (Curia Regis) कहा जाता था। इसमें राजा के स्थायी अधिकारी होते थे और यह समिति स्थायी होती थी। मुनरो के शब्दों में—"प्राचीन सैक्सन शासन-व्यवस्था स्थानीय क्षेत्र में प्रभावी थी किन्तु केन्द्र स्तर पर निर्बल थी। इंग्लैण्ड में नॉर्मन शासन दोनों ही स्तर पर प्रभावी था।"[1]

मंत्रि-मण्डल एवं सीमित राजतन्त्र का सूत्रपात—प्रारम्भ में उपर्युक्त दोनों संस्थाओं (Magnum Councilium and Curia Regis) का क्षेत्राधिकार निश्चित न था। राजा जिससे चाहता परामर्श ले लेता था और किसी का भी परामर्श मानने को बाध्य नहीं था। फिर भी प्रशासकीय और दैनिक मामलों में क्यूरिया रेजिस तथा गम्भीर विषयों और नीति के सम्बन्ध में मैग्नम कौंसिलियम अथवा महान् परिषद् से सलाह ली जाती थी। धीरे-धीरे क्यूरिया रेजिस उपयोगी संस्था हो गई और उसका अधिवेशन भी नियमित रूप से होने लगा। बाद में क्यूरिया रेजिस के कुछ विभाग विशेष कार्यों करने लगे और पृथक् संस्थाओं के रूप में परिणत हो गए। क्यूरिया रेजिस से उस समिति की उत्पत्ति हुई जिसे 'प्रिवी कौंसिल' (Privy Council) कहा गया 17वीं और 18वीं शताब्दी में प्रिवी कौंसिल से "कौंसिल ऑफ मिनिस्टर्स" (Council of Ministers) की तथा कौंसिल ऑफ मिनिस्टर्स से "कैबिनेट" (Cabinet) की उत्पत्ति हुई। ये तीनों संस्थाएँ अर्थात् प्रिवी कौंसिल, कौंसिल ऑफ मिनिस्टर्स तथा कैबिनेट आज भी विद्यमान हैं। इसी प्रकार महान् परिषद् (Magnum Councilium or Great Council) से संसद् के द्वितीय भवन "हाउस ऑफ लॉर्ड्स" (House of Lords) का विकास हुआ। मुनरो और इयर्स्ट (Munro and Ayearst) के अनुसार—"अत्यन्त प्रारम्भिक रूप में हम मैग्नम कौंसीलियम में आधुनिक पार्लियामेंट का और क्यूरिया रेजिस में आधुनिक कैबिनेट का स्वरूप देख सकते हैं।"[2]

नार्मन कालीन शासन-व्यवस्था में हेनरी द्वितीय ने परिष्कार किया। उसने क्यूरिया रेजिस के न्याय सम्बन्धी और प्रशासन सम्बन्धी कार्यों में अन्तर किया। महान् परिषद् की अधिक बैठकें बुलाकर और निर्णय के लिए प्रायः सभी मामलों को उसे सौंपकर उसको संसद् की संस्था बनाया। उसने चल न्यायाधीशों की व्यवस्था की जिससे सब लोगों व स्थानों के लिए सामान्य कानून के विकसित होने में सहायता मिली।

1199 से 1216 तक ब्रिटेन में एक बहुत ही अत्याचारी राजा हुआ जिसका नाम जॉन (John) था। उसके अत्याचारों से तंग आकर बड़े-बड़े बैरन (सामन्त) उसके विरुद्ध हो गए। उन्होंने उसे गृह-युद्ध की धमकी दी। अन्त में जॉन को झुकना पड़ा और उनकी उन माँगों को स्वीकार करना पड़ा जो उन्होंने मैग्नाकार्टा (Magna Carta, 1215) नामक प्रपत्र में प्रस्तुत कीं। इस प्रपत्र अथवा अधिकार-पत्र को ब्रिटेन के संवैधानिक इतिहास में एक सीमा-चिह्न माना जाता है जिसके मुख्य प्रावधान अग्रानुसार थे—

1-2. *Munro and Ayearst* : The Governments of Europe, p. 34-36.

(1) मैग्नम कौंसीलियम की सम्मति पर ही राजा सामन्तों पर करारोपण करे।

(2) किसी नागरिक को उस समय तक बन्दी न बनाया जाए और न ही उसको निर्वासित किया जाए जब तक उसका अपराध सिद्ध न हो जाए।

(3) किसी व्यक्ति को उसकी स्थिति एवं अपराध की मात्रा के अनुरूप ही अर्थ-दण्ड दिया जाए। यह अर्थ-दण्ड नितान्त स्वेच्छाचारी नहीं होना चाहिए।

(4) Court of Common Plea एक सुनिश्चित स्थान पर कार्य करे तथा राजा के साथ ये स्थान-स्थान पर दौरे न किया करे।

(5) राजा चर्च के संगठन और उनके अधिकारियों की नियुक्ति में हस्तक्षेप न करे।

(6) प्रभावशाली सामन्तों और पादरियों को महान् परिषद् में अवश्य आमन्त्रित किया जाये।

(7) विदेशी व्यापारियों के देश में स्वतन्त्र विचरण पर केवल युद्ध-काल में ही प्रतिबन्ध हो, अन्यथा उन्हें स्वतन्त्रतापूर्वक देश में आने-जाने की अनुमति हो।

(8) सम्पूर्ण राज्य में तोल के समान पैमानों का प्रयोग किया जाये।

ऑग और जिंक के अनुसार "इसके द्वारा सामन्तों ने राजा पर यह प्रतिबन्ध लगाकर कि वह अमुक कार्य करे और अमुक नहीं, देश की निरंकुशवाद की ओर प्रवाहित होती हुई धारा को जनतन्त्र की दिशा में मोड़ दिया।" अर्थात् मैग्नाकार्टा ने राजा की निरंकुशता को सीमित कर दिया।

संसद का उदय—थॉम्पसन व जॉन्सन का मत है कि—"मैग्नाकार्टा वस्तुतः ब्रिटिश संविधान का आधार-स्तम्भ है क्योंकि इसने इस सिद्धान्त का प्रवर्तन किया कि राजा कानून से मुक्त नहीं है वरन् उसके अधीन है।" इसी के साथ-साथ आधुनिक संसद् (Modern Parliament) के बीज ब्रिटिश संविधान में दृष्टिगोचर होने लगे। हेनरी तृतीय के समय महान् परिषद् (Magnum Councilium) को आधुनिक संसदीय व्यवस्था की दिशा में आगे बढ़ने का अवसर दिया। अभी तक महान् परिषद् में केवल बिशप, बैरन, राज्य के उत्तराधिकारी आदि ही सम्मिलित होते थे, अब इसमें प्रजा के प्रतिनिधियों को स्थान प्राप्त हुआ। बिशप तथा बैरनों के साथ-साथ प्रत्येक 'शायर' से 22 उपाधि प्राप्त व्यक्ति (Knights) तथा प्रत्येक बरो (Borough) से 22 स्वतन्त्र नागरिक आमन्त्रित किये गये। इस प्रकार महान् परिषद् में बड़े-बड़े लोगों के साथ-साथ छोटे लोगों का भी आना आरम्भ हुआ जिसने वर्तमान लोकसदन की नींव को जन्म दिया। संसद् का प्रथम अधिवेशन 1265 में बुलाया गया।

1272 ई. में एडवर्ड प्रथम सिंहासन पर बैठा। 1275 में ससद् ने वैस्टमिंस्टर का प्रथम विधान (First Statute of West Minster) पारित किया, जिसमें भूमि-कर निश्चित किया गया तथा निर्वाचन-व्यवस्था स्वीकृत की गई। 1278 में ग्लौसेस्टर का विधान (Statute of Gloucestar) पारित हुआ। 1279 में पादरियों के अधिकार सीमित कर दिये गये। 1285 ई. में वैस्टमिंस्टर का द्वितीय विधान (Second Statute of West Minster) पारित हुआ जिसके अनुसार मृत्यु के बाद स्वतन्त्र नागरिकों की भूमि उनके ज्येष्ठ पुत्रों को दिए जाने की व्यवस्था हुई।

1295 में एडवर्ड प्रथम ने एक संसद (Parliament) बुलाई जिसका नाम आदर्श संसद (Ideal Parliament) रखा गया। इस संसद में शायरों और बरो (Shires and Boroughs) के 172 बैरनों, क्लर्जियों, बिशपों आदि के 400 प्रतिनिधि सम्मिलित हुए और शनैः-शनैः इन जन-प्रतिनिधियों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई और अन्त में यह ब्रिटिश शासन-व्यवस्था का एक स्थाई तथा अनिवार्य अंग बन गई।

प्रारम्भ में आदर्श संसद की बैठक एक सदन (House) के रूप में हुई जिसमें तीन अलग-अलग समूह थे—प्रथम समूह उन बड़े लोगों का था जिन्हें नोबल (Noble) कहा जाता था, दूसरा समूह क्लर्जी लोगों का था और तीसरा समूह जन-साधारण का। कालान्तर में व्यावहारिक स्वार्थ ने इन संसद-सदस्यों को दो समूहों में बाँट दिया। समान हितों के कारण एक ओर उच्चकोटि के सामन्त तथा पादरी और दूसरी ओर निम्नकोटि के सामन्त और सामान्यजन एक साथ मिल गये। दोनों समूहों की अलग-अलग बैठकें होने लगीं। प्रथम वर्ग के लोगों की सभा का नाम लॉर्ड सभा (House of Lords) तथा दूसरे वर्ग के लोगों की सभा का नाम हाउस ऑफ कॉमन्स (House of Commons) पड़ा। इस प्रकार द्विसदनीय संसद् का प्रादुर्भाव हुआ। यह द्विसदनात्मक व्यवस्था 1295 के बाद लगभग 10 वर्षों में पूर्ण हुई। संसद की शक्तियों में निरन्तर वृद्धि होती गई और राजा की शक्तियाँ उत्तरोत्तर कम होती गई। 1340-41 ई. तक के समय में एडवर्ड तृतीय को संसद ने अन्य करों की स्वीकृति उस समय प्रदान की जब उसने निम्नलिखित शर्तों को स्वीकार कर लिया—

(1) राजा संसद् की स्वीकृति के बिना कोई नये कर नहीं लगायेगा।

(2) ससद हिसाब-किताब का निरीक्षण करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति कर सकेगी।

(3) राजा के मन्त्रियों की नियुक्ति संसद् द्वारा की जायेगी।

(4) संसद् के नये अधिवेशन के आरम्भ होने से पूर्व मन्त्री राजा के सामने अपना त्यागपत्र प्रस्तुत करेंगे और अपने विरुद्ध की गई शिकायतों का ससद् को उत्तर देंगे।

इस युग में संसद् को मन्त्रियों तथा वित्त पर नियन्त्रण रखने का अधिकार प्राप्त हो गया किन्तु अभी भी संसद् की शक्ति सीमित ही मानी जायेगी, क्योंकि उसका बुलाना, उसे विसर्जित करना आदि काम राजा के ही हाथ में था। इसके अतिरिक्त उसे विधि-निर्माण सम्बन्धी कोई अधिकार प्राप्त नहीं था तथा लोकसदन को वित्त सम्बन्धी अधिकार प्राप्त नहीं थे।

प्लानटैगनेट (1153-1399) व लंकास्ट्रीयन (1399-1485) काल

प्लानटेगनेट वंश के राज्यकाल का समय 1153 से 1399 तक का माना जा सकता है। इस काल में संसद की शक्तियों में अपार वृद्धि हुई। इस काल में ससद ने 1327 ई. में एडवर्ड द्वितीय को सिंहासन से पृथक् कर दिया। रिचर्ड द्वितीय को भी संसद के सामने झुकना पड़ा और संसद् ने लंकास्ट्रीयन वंश के राजा हेनरी को इग्लैण्ड के राजसिंहासन पर बैठा दिया। इस घटनाक्रम ने संसद की भूमिका को महत्त्वपूर्ण बना दिया।

1399 से 1485 तक लंकास्ट्रीयन वंश के हाथ में शासन की सत्ता रही। इस काल में संसद को अनेक अधिकार प्राप्त हुए, जिनमें से निम्नलिखित उल्लेखनीय थे—

(1) हैनरी चतुर्थ के चुने हुए मन्त्रियों ने मन्त्रिमण्डल को प्रिवी-कौन्सिल (Privy-Council) का नाम दिया।

(2) 1401 में लोकसदन ने राजा को यह स्वीकार करने के लिए बाध्य किया कि नवीन करों की स्वीकृति देने के पूर्व उसे जनता की शिकायतों का निवारण करना चाहिए। बाद में यह परिपाटी अपनाई गई और नये करों की स्वीकृति उस समय दी जाने लगी जब राजा जनता की शिकायतों को दूर करने का वचन दे देता था।

(3) 1407 में लोकसभा को स्वयं वित्त-विधेयक आरम्भ करने का अधिकार प्राप्त हुआ, हालांकि इस सम्बन्ध में पूर्ण शक्ति उसे 1911 के अधिनियम के बाद ही मिल सकी।

यह सब होते हुए भी ससद् अपनी शक्ति को सगठित नहीं कर सकी। इसी अवधि में 'गुलाबों का युद्ध' (War of Roses) आरम्भ हो गया और लोग परेशान होकर यह चाहने लगे कि ऐसा राज्य पुन अस्तित्व में आये जिस पर ससद् का कोई नियन्त्रण न हो।

ट्यूडर काल (1485-1603)

1485 में ट्यूडर राजाओं की निरंकुश सत्ता स्थापित हो गई। जो 1603 इस वश के शासकों ने स्वेच्छाचारी निरकुश राजतन्त्र की स्थापना की। इस वश के शासन-काल में ससद् की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा। जनता ने ट्यूडर शासकों की निरंकुशता को प्रसन्नतापूर्वक इसलिए स्वीकार किया क्योंकि उन्होंने देश में सुख-शान्ति और समृद्धि की स्थापना की तथा बैरनो (Barons) की शक्ति को क्षीण किया। ट्यूडर राजाओं ने विपुल धनराशि एकत्र कर ली, अत उन्हें ससद् को बुलाने की आवश्यकता ही नहीं हुई। यद्यपि ट्यूडर सम्राटों ने ससद् का स्वय पर तो नियन्त्रण नहीं होने दिया तथापि उसकी सदस्य-सख्या में वृद्धि करने तथा उसके प्रतिनिधित्व के सिद्धान्तो को निर्धारित किया। एलिजाबेथ प्रथम ने महत्वपूर्ण विषयो पर संसद् की राय से काम करना शुरू किया। इस प्रकार वह स्थिति आ गई जिसमें इंग्लैण्ड के शासन-अधिकार ससद् सहित राजा में निहित हो गये और दोनों में सहयोग की स्थिति विकसित हुई। ट्यूडर काल में एक महत्वपूर्ण बात यह रही कि राजकीय शक्ति ईसाई धर्म के गुरु पोप के नियन्त्रण से मुक्त हो गई। इस तरह से इस काल में राजसत्ता पर धर्मसत्ता का नियन्त्रण समाप्त हुआ।

स्टूअर्ट काल (1603-1714)

स्टूअर्ट राजाओं ने 1603 से 1714 ई. तक राज्य किया। इस अवधि में राजा और संसद एक-दूसरे के विरोधी थे। ब्रिटेन में यह माँ की जाने लगी कि राजाओं की शक्ति को मर्यादित कर ब्रिटेन में वैधानिक राजतन्त्र स्थापित किया जाये। स्टूअर्ट काल में बहुत कुछ संसदीय लोकतन्त्र की आधारशिला रख दी गई। इसी अवधि में 1688 की गौरवपूर्ण क्रान्ति (Glorious Revolution) घटित हुई। इस क्रान्ति के बाद विलियम और मेरी को सयुक्त शासक घोषित किया गया। ब्रिटेन में निरंकुश राज्य समाप्त हो गया और संसद् की प्रभुता स्थापित हो गई।

स्टूअर्ट काल (Stuart Period) में संसद् की शक्ति के विकास के सम्बन्ध में निम्नांकित परिवर्तन दृष्टिगत हुए—

(1) सर्वप्रथम 1628 में संसद् चार्ल्स प्रथम से उस विख्यात 'अधिकार याचना-पत्र' (Petition of Rights) पर हस्ताक्षर कराने में सफल हुई जिनके अनुसार यह निश्चित हुआ कि—

(क) संसद् की स्वीकृति के बिना राजा नये कर न लगाये,

(ख) संसद् की पूर्व-स्वीकृति के बिना राजा कोई धन उधार न ले,

(ग) राजा बिना कोई निश्चित कारण बताये किसी व्यक्ति को बन्दी न बनाये, एवं

(घ) राजा शान्तिकाल में युद्ध सम्बन्धी कोई क़ानून लागू न करे।

(2) 1679 में 'बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम' (Habeas Corpus Act) स्वीकृत हुआ। यह निश्चित किया गया कि राजा जिन लोगों को बन्दी बनायेगा, उन पर तुरन्त ही न्यायालयों में अभियोग चलाया जायेगा।

(3) 1689 में संसद् द्वारा अधिकार-पत्र (Bill of Rights) पर विलियम और मेरी के हस्ताक्षर कराये गये। इसके अनुसार यह निश्चित किया गया कि—

(क) राजा संसद् की पूर्व-स्वीकृति के बिना कोई नवीन कर नहीं लगायेगा।

(ख) राजा को वर्ष में कम से कम एक बार संसद् की बैठक अवश्य बुलानी होगी।

(ग) राजा संसद् की पूर्व-स्वीकृति के बिना कोई सेना नहीं रख सकेगा।

(घ) अपने स्वार्थ के लिए न्याय-कार्य पर प्रभाव डालने के लिए राजा उच्चायुक्त जैसे नवीन न्यायालयों की स्थापना नहीं कर सकेगा।

(ङ) संसद् के सदस्यों को भाषण की स्वतन्त्रता का अधिकार होगा।

इस अधिकार-पत्र के महत्व को मुनरो ने व्यक्त किया—"इससे संसद् की संवैधानिक प्रभुता की घोषणा की गई।"[1] एडम्स के शब्दों में—"ब्रिटिश इतिहास में यह लिखित संविधान के स्वरूप व प्रकृति के समान था।"[2]

(4) 1701 में संसद् ने समझौते का अधिनियम (Act of Settlement) पारित किया। यह निश्चय हुआ कि रानी ऐन की मृत्यु के उपरान्त यदि कोई राजा का उत्तराधिकारी न हो तो हैनोवर वंश की राजकुमारी सोफिया और उसके उत्तराधिकारी इंग्लैण्ड के राजसिंहासन पर आसीन होंगे। इसके अतिरिक्त इस एक्ट द्वारा जनता के धर्म, न्याय और स्वतन्त्रता की रक्षा की व्यवस्था की गई। इस सम्बन्ध में तीन धाराएँ विशेष प्रसिद्ध हैं—

(i) इंग्लैण्ड के राजा को इंग्लैण्ड के धर्म का अनुयायी होना होगा।

(ii) राजा किसी ऐसे देश की रक्षा के लिए संसद् को बाध्य नहीं करेगा जो देश इंग्लैण्ड के अधीन न हो। उसे ऐसा करने के लिए संसद् की स्वीकृति प्राप्त करना अनिवार्य होगा।

---

1 *Munro, W.B* : The Govt. of Europe, p. 47-48.

2 *Adams, G.B* : Constitutional History of England.

(iii) राजा संसद् की अनुमति प्राप्त किए बिना ग्रेट ब्रिटेन की सीमा से बाहर नहीं जाएगा।

(5) विलियम और मेरी के शासनकाल के समाप्त होने से पहले ही द्वि-दलीय प्रथा (Two-party System) प्रारम्भ हो गई। इसकी उत्पत्ति 1679-81 में हुई। चार्ल्स द्वितीय के कोई सन्तान न थी, अत. उत्तराधिकारी का प्रश्न उठा। ससद यह नहीं चाहती थी कि चार्ल्स द्वितीय का भाई जेम्स द्वितीय राज्य सिंहासन का उत्तराधिकारी हो, क्योंकि वह पक्का कैथोलिक था। इसलिए ससद् में बहिष्कार विधेयक (Exclusion Bill) प्रस्तुत किया गया जिसके अनुसार जेम्स द्वितीय को चार्ल्स के बाद सिंहासन से वंचित रखना था। विधेयक पर बहुत मतभेद रहा और ससद् ह्विग्ज (Whigs) व टोरी (Tories) दो दलों में विभक्त हो गई। ह्विग्स लोग विधेयक के पक्ष में थे जबकि टोरी लोग विपक्ष में। जिस प्रश्न पर मतभेद पैदा हुआ था वह तो शीघ्र ही हल हो गया, लेकिन इन दलों ने परस्पर विरोधी राजनीतिक दलों का रूप ले लिया। इसी समय से ब्रिटेन में द्वि-दलीय प्रणाली का प्रारम्भ हुआ। वर्तमान काल में ह्विग्ज, लिबरल (Liberals) या उदारवादी और टोरी, कंजरवेटिव (Conservatives) या रूढ़िवादी कहलाते हैं।

(6) 1693 में राजा विलियम ने ससद् के बहुमत वाले दल में से अपने मन्त्रिमण्डल का निर्माण किया। इस मन्त्रिमण्डल को उसने जुँटा (Junta) कह कर पुकारा। तभी से यह प्रथा चल पड़ी कि मन्त्रिमण्डल सदैव उसी दल का होगा जिसका ससद् में बहुमत हो। इस प्रकार कैबिनेट (Cabinet) पद्धति का प्रारम्भ हुआ।

(7) 1689 में सेना अधिनियम (Army Act) और 1694 में त्रै-वार्षिक अधिनियम (Triennial Act) स्वीकृत हुए। प्रथम के अनुसार सैनिकों का एक वर्ष के लिए भर्ती किया जाना निश्चित हुआ जिससे राजा के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह प्रतिवर्ष ससद् की बैठक बुलाए। द्वितीय के अनुसार ससद् की अवधि तीन साल के लिए निश्चित कर दी गई। थोड़े ही समय बाद सप्तवर्षीय अधिनियम (Septennial Act) पारित हुआ जिससे संसद् का कार्यकाल सात वर्ष कर दिया गया।

(8) 1707 में स्कॉटलैण्ड एकीकरण अधिनियम (Act of Union with Scotland) भी पारित कर दिया गया, जिसके अनुसार वहाँ से भी लॉर्ड सभा और लोकसभा में क्रमशः 16 और 45 सदस्य भेजने की अनुमति मिल गई।

हैनोवर काल (संसदीय जनतन्त्र का विकास) 1714 से प्रारम्भ

ब्रिटिश संविधान के अन्तिम चरण का प्रारम्भ 1714 से मानते हैं जब इस वर्ष साम्राज्ञी ऐन की मृत्यु पर 'उत्तराधिकार अधिनियम' के अनुसार हैनोवर वंश के जॉर्ज प्रथम को राजगद्दी प्राप्त हुई। यहीं से ससदीय जनतन्त्र का वास्तविक विकास प्रारम्भ हुआ और बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक संसद् की सर्वोच्चता स्थापित हो गई। संसद् के इस शक्ति-वृद्धि के दो प्रमुख कारण थे—

(1) संसद् द्वारा 1701 के समझौता अधिनियम (Act of Settlement) द्वारा जार्ज प्रथम राजा बनाया गया। इस परिस्थिति में उसे संसद् के प्रति कृतज्ञ होना पड़ा।

(2) अंग्रेजी न जानने के कारण उसे प्रत्येक बात के लिए संसद् पर ही निर्भर रहना पड़ा।

संसदीय जनतन्त्र का विकास निम्नांकित चरणों में हुआ—

(i) राजा की वास्तविक शक्तियों का पतन—राजतन्त्र पर संसद् की सर्वोच्चता 1689 के अधिकार-पत्र से ही स्थापित हो गई थी, किन्तु हैनोवर वंश के सत्तारूढ़ होने से पहले तक मन्त्रियों की नियुक्ति और पदच्युति राजा की स्वेच्छा पर निर्भर थी। हैनोवर वंश के जार्ज प्रथम के सत्तारूढ़ होने के समय से राजा के इस अधिकार का पतन हो गया और यह अधिकार संसद् के हाथों में पहुँच गया।

(ii) कैबिनेट का विकास अथवा प्रधानमन्त्री द्वारा मन्त्रिमण्डल की अध्यक्षता का सूत्रपात—हैनोवर राजा अंग्रेजी नहीं जानते थे, इसलिए उन्होंने संसद् व मन्त्रिमण्डल को स्वेच्छानुसार व्यवहार करने के लिए छोड़ दिया। उन्होंने मन्त्रिमण्डल की बैठकों में सम्मिलित होना और उसका सभापतित्व करना भी त्याग दिया। उनके स्थान की पूर्ति मन्त्रियों में से ही एक ने प्रारम्भ कर दी और वह प्रधानमन्त्री कहलाया। इस प्रकार मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली द्वारा, जिनमें एक प्रधानमन्त्री और अन्य मन्त्री हों, शासन का कार्य करने की प्रथा ने बल पकड़ा। राजाओं के असाधारण अधिकार धीरे-धीरे उनके हाथों से निकल कर मन्त्रियों और संसद् के हाथों में आने लगे। राजा वास्तविक शासक न रहा, वह संवैधानिक प्रधान बन गया। वास्तविक सत्ता प्रधानमन्त्री व मन्त्रिमण्डल के हाथों में चली गई।

(iii) मताधिकार एवं लोकसभा की शक्तियों का विस्तार—हैनोवर वंश के प्रारम्भ से ही संसद् के अधिकारों में वृद्धि हुई लेकिन आन्तरिक रूप में वह शक्तिशाली नहीं थी क्योंकि वह जनता के एक छोटे भाग का प्रतिनिधित्व करती थी। वास्तव में 1714 के पश्चात् का इतिहास मताधिकार और लोकसभा की शक्तियों के विस्तार का इतिहास है। संसद् ने अपनी शक्ति-विस्तार के लिए निम्नांकित सुधार अधिनियम पारित किए—

(1) 1716 में सप्तवर्षीय अधिनियम (Septennial Act) द्वारा लोक सभा की अवधि तीन वर्ष से सात वर्ष कर दी गई।

(2) 1732 के अधिनियम द्वारा संसद् में मध्यम श्रेणी के लोगों के प्रतिनिधियों का आना प्रारम्भ हुआ।

(3) 1835 में संसद् ने म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन अधिनियम पारित किया जिसके अनुसार स्थानीय संस्थाओं में जनता के प्रतिनिधियों की संख्या में वृद्धि हुई।

(4) 1837 के सुधार अधिनियम द्वारा मध्यम वर्ग के अतिरिक्त अन्य दस्तकारों और मजदूरों को भी मतदान का अधिकार मिला।

(5) 1884 के सुधार अधिनियम द्वारा खेतिहर मजदूरों को मताधिकार प्राप्त हो गया।

(6) 1888 का स्थानीय शासन अधिनियम (Local Government Act) द्वारा "सिलों की स्थापना हुई जिनमें जनता के चुने हुए प्रतिनिधि होते थे।

(7) 1894 के स्थानीय शासन अधिनियम द्वारा प्रशासकीय काउण्टी प्रदेशों को शहरी और देहाती जिलों में बाँटकर व्यवस्था की गई कि उनकी समितियाँ निर्वाचित हों।

(8) 1911 का ससदीय अधिनियम (Parliament Act) पारित हुआ, जिसके अनुसार वित्त विधेयकों पर लोकसभा का एकाधिकार स्थापित हुआ और लॉर्ड सभा को यह अधिकार दिया गया कि वह उनको केवल दो वर्ष तक के लिए निलम्बित कर सकती है।

(9) 1918 के अधिनियम द्वारा 30 वर्ष से अधिक आयु की स्त्रियों को भी मताधिकार प्राप्त हुआ।

(10) 1928 के अधिनियम के अनुसार 21 वर्ष से अधिक आयु वाले स्त्री-पुरुष को मताधिकार मिला।

(11) 1931 में वैस्टमिंस्टर का महत्वपूर्ण कानून पारित हुआ, जिसके द्वारा राजा और उपनिवेशों के पारस्परिक सम्बन्धों का निर्णय किया गया।

(12) 1963 के पीयरेज अधिनियम द्वारा पीयरों को पैतृक उपाधियों के परित्याग (Renunciation of Hereditary Titles) की अनुमति दी गई।

(13) 1965 के 'प्रजाति सम्बन्ध अधिनियम' (Race Relations Act) द्वारा जाति, रग आदि के आधार पर पक्षपात का निषेध किया गया।

(14) 1969 के जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम द्वारा 18 वर्ष की उम्र के व्यक्तियों को मताधिकार प्रदान किया गया।

(iv) दलीय पद्धति का विकास—ब्रिटेन में दलीय पद्धति का विकास स्टूअर्ट काल में ही हो गया था। चार्ल्स द्वितीय के भाई जैम्स द्वितीय को राजगद्दी से अलग रखने के लिए संसद् में जो 'पार्थक्य अधिनियम' (Exclusion Bill) रखा गया उस पर ही संसद् ह्विग्स और टोरी (Whigs & Tories) दो दलों में बँट गई। यद्यपि तात्कालिक मतभेद का तो शीघ्र ही समाधान हो गया लेकिन दोनों दलों के पारस्परिक विरोध ने दो शक्तिशाली राजनीतिक दलों का रूप ले लिया और इस प्रकार ब्रिटेन में द्विदलीय प्रणाली स्थापित हो गई। सत्रहवीं सदी के अन्त तक स्थिति लगभग ऐसी रही कि यदि कुछ व्यक्ति विरोधी दल बनाते थे तो उन्हें राजद्रोही कहा जाता था। लेकिन समय के साथ स्थिति बदल गई, विरोधी दल ने सम्मानजनक स्थान अर्जित कर लिया और विरोधी दल को भी 'सम्राट का स्वामिभक्त विरोधी दल' (His Majesty's Loyal Opposition) कहा जाने लगा। कालान्तर में विरोदी ल के नेता पद को राजकीय मान्यता भी प्राप्त हो गई।

स्पष्ट है कि विश्व के अन्य किसी भी देश में ऐसा राजनीतिक विकास नहीं हुआ हो जो इतने लम्बे समय तक निरन्तर चल रहा हो। ब्रिटिश सविधान में अनेक परिवर्तन हुए और आज भी हो रहे हैं, विकास का क्रम आज भी जारी है।

2

ब्रिटिश संविधान : विशेषताएँ और प्रवृत्तियाँ

(British Constitution : Salient Features and Tendencies)

ब्रिटेन को संसदीय शासन व्यवस्था का प्रतिनिधि देश माना जाता है अतः इसके संविधान का अध्ययन करना अनेक दृष्टियों से महत्व रखता है। ब्रिटिश संविधान का अध्ययन निम्नलिखित कारणों से महत्वपूर्ण बन गया है—

(1) प्राचीनतम संविधान—ब्रिटिश संविधान विश्व के संविधानों में सबसे प्राचीन और मौलिक है। यह प्राचीनतम परम्पराओं का संकलन है। विश्व के किसी भी संविधान का इतना लम्बा इतिहास नहीं है जितना ब्रिटिश संविधान का है। ऑग एवं जिंक के शब्दों में, "ब्रिटिश राजनीतिक संस्थाओं और प्रक्रियाओं के उत्पत्ति-बिन्दु राष्ट्रीय इतिहास के उस राज-मार्ग पर बिखरे हुए हैं जो भूतकाल में तेरह सौ या चौदह सौ वर्षों की दीर्घ अवधि में फैला हुआ है।"[1]

(2) विश्व के संविधानों पर प्रभाव—विश्व के अनेक देशों ने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश परम्पराओं को अपनाया है। जो राज्य ब्रिटिश साम्राज्यवाद के चंगुल से स्वतन्त्र हुए, वहाँ प्राय ब्रिटिश पद्धति पर आधारित संसदीय प्रजातन्त्र का विकास हुआ है। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि आज के अधिकांश संविधान न्यूनाधिक रूप से ब्रिटिश संविधान की ही नकल हैं। सर्वशक्तिशाली संसद्, उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल, द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका, संवैधानिक कार्यपालिका, कानून का शासन, स्वायत्त शासन आदि ब्रिटिश संवैधानिक परम्पराओं की ही देन हैं। यही कारण है कि ब्रिटिश संसद् को संसदों की जननी (The Mother of Parliaments) तथा ब्रिटिश संविधान को 'मातृ संविधान' (The Mother Constitution) कहा जाता है।

कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, दक्षिण-अफ्रीका, भारत, बर्मा आदि देशों की शासन-पद्धतियों का निर्माण ब्रिटिश प्रभाव के अन्तर्गत ही हुआ, यहाँ तक कि संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के संविधान-निर्माता भी ब्रिटिश शासन-व्यवस्था के प्रभाव से मुक्त नहीं रह सके।

(3) लोकतन्त्रात्मक पद्धति का श्रेष्ठ उदाहरण—ब्रिटिश संविधान के अन्तर्गत लोकतन्त्रीय शासन और जीवन के तत्वों का निरन्तर विकास हुआ है। यह लोकतन्त्रीय शासन पद्धति का अतिश्रेष्ठ उदाहरण है और इसे आधुनिक विश्व का प्रथम लोकतन्त्रीय

1 *Ogg and Zink* The Modern Foreign Government, p 5

संविधान माना जा सकता है । ब्रिटेन में निरंकुश राजतन्त्र का जिस ढंग से लोकतन्त्रीकरण हुआ है, वह विश्व इतिहास में अपनी सानी नहीं रखता । विश्व के अन्य देशों ने लोकतन्त्र को इंग्लैण्ड से ही ग्रहण किया है । मुनरो ने लिखा भी है, "18वीं और 19वीं शताब्दियों में अंग्रेजी भाषा-भाषियों के नेतृत्व में सभ्य विश्व के बड़े भाग का प्रजातन्त्रीकरण राजनीतिशास्त्र के श्रेष्ठ में बहुत स्पष्ट तथ्य है ।"

(4) मानव-स्वतन्त्रता के लिए बलिदान का जीता-जागता प्रतीक—ब्रिटिश संविधान का महत्व विशेषकर इसलिए भी है कि इसका विकास मानव-जाति की स्वतन्त्रता को रक्षा के लिए किए गए संघर्ष का इतिहास है । ब्रिटेन का वर्तमान संविधान राजतन्त्र की निरंकुशता के विरोध का परिणाम है । यह मानव-स्वतन्त्रता के लिए बलिदान का जीता-जागता प्रतीक है ।

(5) एकमात्र अलिखित संविधान—ब्रिटिश संविधान का अध्ययन इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि आधुनिक समय में यह संविधान ही एकमात्र अलिखित संविधान है । ब्रिटिश संविधान का अधिकांश भाग अलिखित है और फिर भी ब्रिटेन विश्व का सबसे व्यवस्थित लोकतन्त्रीय शासन-व्यवस्था वाला देश है ।

(6) निरन्तर विकासमान संविधान—ब्रिटिश संविधान का अध्ययन इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि यह अनवरत विकास का परिणाम है । इसलिए कहा जाता है कि ब्रिटिश संविधान का निर्माण नहीं, विकास हुआ है । वुडरो विल्सन के शब्दों में, "इंग्लैण्ड के संवैधानिक इतिहास की यह विशेषता है कि राजनीतिक संगठनों का निरन्तर विकास होता रहा है, और उसकी निरन्तरता प्राचीन काल से अभी तक अविच्छिन्न बनी रही है ।"[1] इंग्लैण्ड में कभी कोई ऐसी हिंसक क्रान्ति नहीं हुई जैसी फ्रान्स में 1789 में हुई थी अथवा सोवियत संघ में 1917 में हुई ।

भारतीयों के लिए विशेष महत्व

(Special Importance for Indians)

भारतीयों के लिए ब्रिटिश संविधान का अध्ययन विशेष महत्व रखता है । हमारा वर्तमान संविधान बहुत कुछ इसी पर आधारित है । ब्रिटिश संविधान और वहाँ की राजनीतिक व्यवस्था से हमने बहुत कुछ सीखा है । हमारे संविधान में निम्नलिखित प्रमुख ब्रिटिश प्रभाव स्पष्ट दिखाई देते हैं—

(i) ब्रिटेन की संसदीय व्यवस्था को अपनाया गया है जिसके अनुसार संसद साधारण और संवैधानिक कानून बनाने तथा उनमें संशोधन करने की पूरी क्षमता रखती है । अन्तर केवल यह है कि भारत में जहाँ संसदीय कानूनों और संशोधनों की वैधता के सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय से समीक्षा करवाई जा सकती है वहाँ ब्रिटेन में ऐसे न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था नहीं है । भारत में 'कानून की उचित प्रक्रिया' (Due Process of Law) के स्थान पर 'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (Procedure Established by Law) को स्वीकार किया गया है ।

---

1. *Woodrow Wilson* : The State, p 183.

(ii) 'कानून के शासन' को कार्यरूप में परिणित किया गया है—सभी नागरिकों के लिए भारत में समान कानून हैं, न्यायालय के सम्मुख सभी बराबर हैं। फ्रांस की तरह यहाँ पृथक् रूप से प्रशासनिक न्यायालय स्थापित नहीं किए गए हैं।

(iii) भारत में भी ब्रिटेन की तरह एकीकृत संस्थात्मक ढाँचे को अपनाया गया है। इसके अन्तर्गत तीन बातें मुख्य हैं—एकीकृत न्यायिक व्यवस्था, एकीकृत नौकरशाही और इकहरी नागरिकता, किन्तु एकात्मक शासन-व्यवस्था की इन तीनों बातों को अपनाते हुए भी, भारत में एकात्मक शासन-प्रणाली नहीं अपनाई गई है।

(iv) ब्रिटिश सम्राट की भाँति भारत का राष्ट्रपति भी संवैधानिक शासक है।

शासन-विज्ञान को ब्रिटेन की देन

(Contribution of Britain to the Science of Administration)

मुनरो के अनुसार, "पूर्व ने सभ्य मानव जाति को आध्यात्मिक दर्शन प्रदान किया, मिस्र ने वर्णमाला प्रदान की, मूर ने बीजगणित और यूनान ने मूर्तिकला की शिक्षा दी तथा रोम ने विश्व को कानून के आधार प्रदान किए, तो ब्रिटेन ने विश्व को राजनीतिक विचार और संवैधानिक पद्धति प्रदान की है।" विधि और शासन-विज्ञान के क्षेत्र में ब्रिटिश देन का मूल्यांकन करें तो हम देखेंगे कि—

(1) तीन प्रमुख विचारधाराओं का समन्वय—ब्रिटिश संविधान तीन प्रमुख विचारधाराओं-रूढ़िवाद (Conservatism), उदारवाद (Liberalism) और समाजवाद (Socialism) का समन्वय करता है। ब्रिटेन निवासी यद्यपि रूढ़िवादी परम्परागत संस्थाओं और सिद्धान्तों के पोषक हैं तथापि उन्होंने आवश्यक परिवर्तनों को सदैव स्वीकार किया है।

(2) प्रतिनिध्यात्मक शासन—ब्रिटेन 'प्रतिनिध्यात्मक शासन' (Representative Govt.) का अग्रदूत है। प्रतिनिधित्व की जो धारणा ब्रिटेन में पनपी है उसने लोकतन्त्र को पुरातन नगर-राज्यों की सीमा से बाहर निकाल कर विशाल राज्यों की शासन व्यवस्था का आधार बना दिया।

(3) मन्त्रिमण्डलीय पद्धति—शासन-विज्ञान के क्षेत्र में ब्रिटेन की सबसे महत्वपूर्ण देन 'मन्त्रिमण्डलीय पद्धति' (Cabinet System) है। उत्तरदायी शासन का मार्ग दिखाकर ब्रिटेन ने राजनीतिक क्षेत्र में जन-शक्ति को वास्तविक रूप प्रदान किया है। न्यूमैन के शब्दों में, "शासन विज्ञान के क्षेत्र में ब्रिटेन की सबसे महत्वपूर्ण देन मन्त्रिमण्डलीय पद्धति है।"

(4) विधि का शासन—'विधि-शासन' कानून के आगे सब वर्गों के व्यक्तियों की समानता स्थापित करता है। यह नागरिकों की स्वतन्त्रता व समानता का आधार है और विश्व, ब्रिटेन की इस देन के लिए उसका ऋणी है।

(5) संसद् की सर्वोच्चता—सर्वप्रथम ब्रिटेन में ही 'संसद् की सर्वोच्चता' (Supremacy of Parliament) के सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ और मन्त्रिमण्डलीय शासन-पद्धति वाले विभिन्न देश ब्रिटिश शासन-व्यवस्था की इस विशेषता से पर्याप्त प्रभावित हैं।

(6) द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका—द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका (Bi-cameralism) का विकास भी सबसे पहले इंग्लैण्ड में ही हुआ और आज यह लोकतन्त्र का एक अपरिहार्य सिद्धान्त बन चुका है।

(7) स्थानीय स्वशासन—स्थानीय स्वायत्त शासन (Local Self-Government) का जो रूप ब्रिटेन में विकसित हुआ उससे विश्व के अधिसंख्यक देश प्रभावित हैं और स्थानीय स्वायत्त शासन को आज लोकतन्त्र का मूल आधार समझा जाता है।

ब्रिटिश संविधान की राजनीतिक पृष्ठभूमि
(Political Background of the British Constitution)

संविधान के क्रियात्मक रूप का निर्धारण समाजशास्त्रीय तत्त्वों से होता है। अतः ब्रिटिश सविधान का अध्ययन भी इन तत्वों के संक्षिप्त उल्लेख से करना उपयुक्त होगा—

भूमि (आकार एवं सामुद्रिक घिराव)—ब्रिटेन का क्षेत्रफल लगभग 94,300 वर्गमील है जो फ्रांस का 2/3, अमेरिका का तीसवाँ तथा रूस का अस्सीवाँ भाग है। ब्रिटेन अथवा यूनाइटेड किंगडम में इंग्लैण्ड, वेल्स, स्काटलैण्ड और उत्तरी आयरलैण्ड सम्मिलित हैं। यह यूरोप के उत्तर-पश्चिमी कोने पर स्थित है। लगभग 20 मील चौड़ी इंग्लिश चैनल इसे यूरोपीय महाद्वीप से अलग करती है। अतीतकाल में ब्रिटिश सुरक्षा की दृष्टि से इस चैनल ने बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। इसके द्वारा ब्रिटेन शेष यूरोप में होने वाली क्रान्तियों से अछूता रहा है। ब्रिटेन का छोटा आकार ही सरकार की एकात्मकता और केन्द्रीयकरण का प्रमुख कारण है। ब्रिटेन चारों ओर समुद्र से घिरा हुआ है, अतः यहाँ की जनता स्वयं को सुरक्षित अनुभव करती रही है। इस समुद्री स्थिति के कारण ही ब्रिटेन नौसेना के क्षेत्र में अत्यधिक शक्तिशाली और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का केन्द्र रहा है।

निवासी और धर्म—अंग्रेज अनेक जातियो से उत्पन्न हैं, ये सभी जातियाँ (केल्ट्स, रोमन, ऐंग्लो-सेक्सन, डेल्स, नॉर्मन्स आदि) मिलकर एक होती रही हैं। वर्तमान ब्रिटिश शासन-प्रणाली इस जातीय एकरूपता से पर्याप्त प्रभावित है। सभी ब्रिटेनवासी ईसाई धर्म के अनुयायी हैं। यह राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

भाषा और साहित्य भी ब्रिटेन-वासियों के जीवन में विशेष अर्थ रखता है। इसने नैतिक, धार्मिक और राजनीतिक एकता स्थापित की है। अंग्रेजों में धर्म की विविधता भी पायी जाती है। बहुसंख्यक जनता प्रोटेस्टेंट ईसाई धर्म की अनुयायी है जबकि कुछ प्राचीन धनीमानी लोग कैथोलिक हैं। स्वयं प्रोटेस्टेंट धर्म अनेक भागों में विभक्त है। ब्रिटेन में धर्म-व्यवस्था की यह प्रमुख विशेषता है कि धर्मों में पारस्परिक मतभेद के साथ-साथ आधारभूत एकता रही है। अर्नेस्ट बार्कर (E. Barker) के विचार में, "धर्म की यह व्यवस्था ब्रिटेन में ससदीय जनतन्त्र का बहुत कुछ आधार रही है।"

सामाजिक एवं आर्थिक दशा—ब्रिटिश समाज के श्रेष्ठता के सिद्धान्त एव पारिवारिक व्यवस्था ने ब्रिटिश राजनीतिक जीवन को काफी प्रभावित किया है।

नोर्मन-विजय ने श्रेष्ठता के सिद्धान्त को स्थापित किया जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश समाज में एक कुलीन-वर्ग (Nobility) का जन्म हुआ। फ्रांस के विपरीत ब्रिटेन में इस वर्ग ने संवैधानिक विकास में सहयोग दिया। इस वर्ग के प्रतिनिधि जनता के प्रतिनिधियों के रूप में लोकसभा में बैठने लगे, अत. लोकसभा शनै.-शनै. सम्पूर्ण राष्ट्र की प्रतिनिधि संस्था बन गई जबकि लॉर्ड सभा केवल वर्गीय एवं निहित हितों की संस्था रह गई। ब्रिटिश समाज में पारिवारिक व्यवस्था का ढाँचा ढीला-ढाला है, इसी कारण प्रत्येक व्यक्ति परिवार की अपेक्षा सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रति अधिक प्रेम और भक्ति रखता है। ब्रिटिश समाज के इस चरित्र से वहाँ की राजनीतिक एवं राष्ट्रीय एकता को बल मिलता है। इसके अतिरिक्त, ग्रेट ब्रिटेन एक अत्यधिक औद्योगिक देश है, अत यह मूलत पूँजीपतियों और श्रमिकों के दो वर्गों में विभक्त है। देश का दलीय ढाँचा समाज के इसी विभाजन पर आधारित है। यह उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश-स्वभाव रूढ़िवादी है जो एकदम आकस्मिक परिवर्तन में विश्वास नहीं करता। इसलिए ब्रिटिश शासन-प्रणाली और उसकी राजनीतिक संस्थाएँ सदियों के अनवरत् विकास का परिणाम है। वास्तव में ब्रिटिश जाति समझौतावादी है। वह सैद्धान्तिक झगड़ों में न पड़कर केवल व्यावहारिक पहलू का ही विशेष ध्यान रखती है।

कुलीनतन्त्र से प्रजातन्त्र—ब्रिटेन में शासन-शक्ति पहले राजतन्त्र तथा कुलीनतन्त्र (Aristocracy) के हाथ में था, शनै.-शनै. यह जनता के हाथों में आ गया और प्रजातान्त्रिक व्यवस्था की स्थापना हुई। सत्ता का यह हस्तान्तरण आकस्मिक अथवा क्रान्तिकारी रूप से नहीं बल्कि क्रमिक विकास द्वारा हुआ है। कुलीनतन्त्र ने समयानुकूल अपना रंग बदला और प्रजातन्त्र के साथ सामंजस्य किया। कुलीनतन्त्र प्रजातन्त्र के मार्ग में बाधा नहीं बना, उल्टे उसने प्रजातन्त्र को गति, सुधार तथा नेतृत्व प्रदान किया। इस तरह कुलीनतन्त्र एवं प्रजातन्त्र के समन्वय से ब्रिटिश शासन-प्रणाली में नई व्यवस्था पैदा हुई और ब्रिटिश समाज में नए समाज का आविर्भाव हुआ।

क्या ब्रिटिश संविधान का अस्तित्व है ?

(Does British Constitution Exist ?)

ब्रिटिश संविधान का न तो किसी योजनानुसार निर्माण हुआ है और न कभी लेखबद्ध किया गया है, अत. वह परिभाषा-विहीन है, फिर भी विभिन्न विद्वानों ने इसे विभिन्न परिभाषाओं द्वारा प्रस्तुत किया है।

परिभाषाएँ

"हम अंग्रेजों को अपने संविधान पर गर्व है। यह ईश्वर की देन है। इस सम्बन्ध में अन्य किसी देश पर इसकी इतनी कृपा नहीं हुई है।" —*Charles Dickens*

"ब्रिटिश संविधान अवसर और बुद्धि की सन्तान है।" —*Lytton Strachey*

"ब्रिटिश संविधान सिद्धान्तों और आचरणों का एक समूह है जो एक सहस्र वर्ष के इतिहास का अवलोकन करने पर ही एकत्र किए जा सकते हैं जिसमें कोई कानून (Statute) कहीं मिलता है तो कोई न्यायिक विनिश्चय किसी अन्य स्थान पर, जिसमें

राजनीतिक आचरणों को सर्वमान्य परम्पराओं व रीतियों में प्रतिष्ठित देखा जाता है और विधि-निर्माण, शासन, वित्त, न्याय और निर्वाचन-यन्त्र के आन्तरिक भाग को देखना पडता है कि ये अतीत में किस प्रकार थे और वर्तमान में किस प्रकार काम कर रहे हैं ।"

—Ogg and Zink

"इंग्लैण्ड का संविधान विभिन्न संस्थाओं, आदर्शों और व्यवहारों का विचित्र मिश्रण है । यह राजपत्रों (Charters), न्यायिक निर्णयों, सामान्य-विधि (Common Law), पूर्वोदाहरणों (Precedents), प्रथाओं तथा परम्पराओं का सम्मिश्रण है । यह कोई एक अभिलेख (Document) न होकर हजारों अभिलेख हैं । इसको एक स्रोत से न लेकर अनेक साधनों व स्थानों से लिया गया है । यह कोई पूर्णता-प्राप्त वस्तु न होकर विकसित वस्तु है । यह बुद्धिमत्ता और संयोग की सन्तान है जिसका मार्गदर्शन कहीं आकस्मिकता ने और कहीं उच्च-कोटि की योजनाओं ने किया है ।" *—Munro*

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं के विपरीत विचार टोक्यूविली (Tocqueville) और थोमस पेन (Thomas Paine) ने व्यक्त किए हैं । फ्रेंच विचारक टोक्यूविली ने कहा था कि "इंग्लैण्ड में संविधान जैसी कोई वस्तु नहीं है ।"[1] अमेरिका के थोमस पेन ने भी इसी विचार का समर्थन करते हुए मत प्रकट किया था, "किसी संविधान को वास्तविक कहे जाने के लिए यह आवश्यक है कि उसे लिखित रूप में दिखाया जा सके और चूंकि इंग्लैण्ड ऐसा नहीं कर सकता, इसलिए उसका कोई संविधान नहीं है ।" जॉर्ज बर्नार्ड शा ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त करते हुए कहा था—"हमारा एक ब्रिटिश संविधान नहीं है लेकिन कोई भी नहीं जानता कि यह क्या है, यह कहीं भी लिखा हुआ नहीं है, और न इसमें संशोधन किया जा सकता है । हाँ, संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान एक वास्तविक मूल, पढा जा सकने योग्य अभिलेख है । मैं आपको उसका प्रत्येक वाक्य समझा सकता हूँ ।"

अस्तित्वहीनता के पक्ष में तर्क

डी. टोक्यूविली और थोमस पेन के समान ब्रिटिश संविधान की अस्तित्वहीनता के प्रतिपादक अपने विचार के पक्ष में प्रायः तीन तर्क देते हैं—

(1) ब्रिटिश संविधान न तो किसी संविधान-सभा का परिणाम है, न लेखबद्ध है—पहला तर्क है कि ब्रिटिश संविधान किसी लिखित अभिलेख के रूप में नहीं है जबकि संविधान को एक लिखित, निश्चित और क्रमबद्ध अभिलेख के रूप में होना चाहिए जिसका निर्माण किसी संविधान किसी लिखित पत्र के रूप में नहीं है, उसका रूप निश्चित नहीं है, उसकी विषय-वस्तु क्रमबद्ध नहीं है और अन्य संविधाओं की भाँति उसकी कोई प्रति प्रस्तुत नहीं की जा सकती, अतः ब्रिटेन मे संविधान नाम की कोई चीज नहीं है ।

(2) ब्रिटिश संविधान का लचीलापन—दूसरा तर्क है कि एक संविधान को अनम्य (Rigid) होना चाहिए । उसमें संशोधन के लिए विशेष प्रक्रिया का प्रयोग होना चाहिए—ऐसी प्रक्रिया जो सामान्य विधि में संशोधन लाने की प्रक्रिया से सर्वथा भिन्न हो । चूँकि

1. "In England the Constitution, there is no such thing." *—Alexis De Tocqueville*

ब्रिटिश संविधान में सामान्य विधि और संविधान में संशोधन लाने की एक ही प्रणाली है, अतः यह संसार का सबसे नम्य या लचीला (Flexible) संविधान है। अतः इसकी गणना संविधान की श्रेणी में नहीं की जानी चाहिए।

(3) संवैधानिक कारक अथवा आधारमूल नियमों का अभाव—तीसरा तर्क है कि एक संविधान में सर्वोच्च आधारभूत नियमों (Supreme Fundamental Laws) का संकलन होना चाहिए जबकि ब्रिटिश संविधान में ऐसा नहीं है। ब्रिटेन में 'संविधान की सर्वोच्चता' की धारणा को नहीं वरन् 'संसद् की सम्प्रभुता' की धारणा को अपनाया गया है। इंग्लैण्ड में संवैधानिक कानूनों तथा साधारण कानूनों का भी कोई भेद नहीं है। संविधान के आधारभूत नियमों में संसद् स्वेच्छानुसार परिवर्तन और परिवर्द्धन कर सकती है। ब्रिटेन में पवित्र, उच्च और मौलिक नियमों का अभाव है, अत: ब्रिटिश संविधान का अस्तित्व संदेहास्पद है।

ब्रिटिश संविधान का अस्तित्व है

अनेक संविधान-वेत्ताओं की यह धारणा है कि ब्रिटेन में संविधान का अस्तित्व है। इस सन्दर्भ में हैरीसन का यह कथन उपयुक्त है कि "ब्रिटेन का संविधान उतना ही आधारभूत और नियमों का संग्रह है जितना कि संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ व फ्रांस के संविधान हैं।"

थोमस पेन और टॉक्यूविली के तर्कों के विपरीत ब्रिटिश संविधान के अस्तित्व के पक्ष में प्राय: निम्नलिखित तर्क दिए गए हैं—

(1) 'संविधान' शब्द के दो अर्थ हैं। एक अर्थ से संविधान के उस अभिलेख का बोध होता है जिसको संविधान-निर्माताओं ने किसी एक समय व एक स्थान पर बैठकर रचा हो और जिसमें शासन की संरचना, शासन के विभिन्न अंगों के कार्यों, शासन के विभिन्न अधिकारियों के कर्त्तव्यों, शासकों और प्रजा के सम्बन्धों, न्यायालयों, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता आदि की व्यवस्था के मूल सिद्धान्तों को निर्णयात्मक रूप से निश्चित कर दिया गया हो। दूसरे अर्थ में, जो अधिक व्यापक है, संविधान से केवल एक लेख तथा एक विशिष्ट शासन-विधि का ही बोध नहीं होता बल्कि उन सब नियमों, अधिनियमों, परिपाटियों, प्रचलित प्रथाओं तथा रूढ़ियों आदि का बोध होता है जो उस शासन-विधि से सम्बद्ध हैं चाहे उन्हें बैठकर किसी एक समय अथवा स्थान पर किसी ने लेखबद्ध न किया हो। ब्रिटिश संविधान का अस्तित्व इसी पिछले अर्थ में है।

(2) वास्तव में ऐसा एक भी संविधान नहीं है जो पूर्णत: लिखित हो। प्रत्येक संविधान में अलिखित तत्व उपस्थित रहते हैं। ब्रिटिश संविधान के विकास में भी परम्पराओं अथवा अभिसमयों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

(3) अनम्य (Rigid) न होने के आधार पर ही ब्रिटिश संविधान को संविधान की श्रेणी में न रखना भी तर्कसंगत नहीं है। किसी भी संविधान की नम्यता (Flexibility) संशोधन-प्रणाली पर नहीं, बल्कि उसके मौलिक प्रावधानों की प्रकृति और देशवासियों के चरित्र तथा परम्परा पर निर्भर करती है। यदि प्रावधानों के दृष्टिकोण से देखा जाए तो अमेरिका और ब्रिटेन के संविधान को नम्यता की एक श्रेणी में रखा जा सकता

है। देशवासियों के चरित्र और परम्परा की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि अंग्रेज जाति गम्भीर प्रकृति की है तथा अपने उत्तरदायित्व के प्रति सजग रहने वाली है। ब्रिटिश जाति को अपनी प्राचीन परम्पराओं और संस्थाओं से अनन्य प्रेम है इसलिए ब्रिटिश संविधान में आकस्मिक और अधिकांश परिवर्तन अथवा संशोधन नहीं हो पाए हैं। जो थोड़े बहुत संशोधन हुए भी हैं वे शनैः-शनैः और बहुत सोच-विचार के बाद सर्वसम्मति से ही हुए हैं।

(4) सर्वोच्च आधारभूत नियमों के अभाव की बात कहकर ब्रिटिश संविधान पर आपत्ति प्रकट करना उचित नहीं है। ऑग और जिंक (Ogg and Zink) ने कहा है—"ग्रेट ब्रिटेन में बहुत से आधारभूत सार्वजनिक नियम और अभ्यास विद्यमान थे और आज भी हैं।" इन आधारभूत नियमों के बारे में डायसी (Dicey) ने लिखा है कि "ये नियम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सार्वभौम शक्ति के विभाजन और प्रयोग को निर्धारित करते हैं।"

निष्कर्ष यह है कि ब्रिटिश संविधान का भी अन्य संविधानों की तरह पूरा अस्तित्व है, अन्तर सिर्फ यही है कि अन्य देशों के संविधानों की भाँति इसे क्रमबद्ध, संहिताबद्ध और सुव्यवस्थित नहीं किया गया है। इसका निर्माण नहीं, बल्कि विकास हुआ है।

ब्रिटिश संविधान के प्रमुख स्रोत
(Major Sources of the British Constitution)

ब्रिटिश संविधान के विकास में अनेक तत्वों ने भाग लिया है जिन्हें इस संविधान के स्रोत या अवयवी भाग (Components) कहते हैं। ये स्रोत मुख्यतः निम्नलिखित हैं—

(1) संवैधानिक समझौते—ये वे ऐतिहासिक अभिलेख अथवा समझौते हैं जो संकटकाल में राजा और प्रजा के बीच निश्चित हुए थे। वास्तव में ये समझौते वे संवैधानिक युगान्तकारी घटनाएँ (Constitutional Landmarks) हैं जिनके माध्यम से इंग्लैण्ड का लोकतन्त्रीकरण होने में सहायता मिली है। ये समझौते उन स्थलों का परिचय देते हैं जिनसे इंग्लैण्ड लोकतन्त्रीय मार्ग पर बढ़ता गया है।

ब्रिटिश संवैधानिक समझौतों में महान् आज्ञापत्र, 1215 (Magnacarta, 1215) अधिकारों का प्रार्थना-पत्र, 1628 (Petition of Rights, 1628) और अधिकार-पत्र, 1689 (Bill of Rights, 1689) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्हें ब्रिटिश संविधान की 'बाइबल' (धर्म-पुस्तक) कहा जाता है।

(2) संवैधानिक कानून या संसदीय विधियाँ—ये वे स्रोत हैं जिनके द्वारा संसद् ने समय-समय पर राजा की शक्ति को नियंत्रित किया है अथवा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता या स्थानीय अधिकारियों या न्यायालयों व प्रशासनिक मशीनरी और जनमत को स्थापित तथा परिभाषित किया है। इन संसदीय विधियों में कुछ प्रमुख ये हैं—बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम (Habeas Corpus Act) 1679, समझौता अधिनियम (Act of Settlement) 1701, 1832, 1867 व 1884 के सुधार अधिनियम (Reform Acts) 1888, 1895,

1929 व 1933 के स्थानीय शासन अधिनियम (Local Govt. Acts), 1872 का संसदीय तथा म्यूनिसिपल चुनाव अधिनियम (Parliamentary & Municipal Elections Act), 1911 का ससदीय अधिनियम (Parliamentary Act of 1911); 1918 और 1948 के जनमत प्रतिनिधित्व अधिनियम (Representation of Peoples Act) आदि।

(3) न्यायिक निर्णय—ब्रिटिश सवैधानिक नियमों का तीसरा स्रोत न्यायालयों में सुने जाने वाले अभियोगों के सम्बन्ध में न्यायाधीशों के निर्णय हैं। डायसी का कहना है कि "ब्रिटिश सविधान न्यायाधीशों द्वारा निर्मित है।" ब्रिटिश में न्यायिक निर्णय ही राजा के प्राधिकारों (Prerogative) और ससद्-सदस्यों के विशेषाधिकार (Privileges) के आधार हैं। कुछ प्रमुख न्यायिक निर्णय इस प्रकार उल्लेखनीय हैं—

विल्कीज बनाम वुड (Wilkes v/s Wood) में यह निर्णय किया गया था कि किसी भी अनाम (un-named) लेखक की तलाशी अथवा उसके कागजात को अधिकार में लेने का सामान्य अधिपत्र (General Warrant) अवैध है। सॉमरसैट (Somerset) के अभियोग में अंग्रेजों की भूमि से दासत्व को सदा के लिए हटा दिया गया। हॉवेल (Howell) के अभियोग में न्यायाधीशों को स्वतन्त्रता की गारण्टी दी गई। बुशल (Bushell) के अभियोग में ज्यूरी अर्थात् न्याय-सभ्यों की स्वतन्त्रता स्थापित हो गई।

(4) कानूनी टीकाएँ—सांविधानिक विधि के सन्दर्भ में प्रख्यात लेखकों की टीकाओं (Commentaries) का भी सविधान के अवयव के रूप में उल्लेख किया जा सकता है। इन टीकाओं के द्वारा लेखकों ने विविध अभिसामयिक या परम्परागत नियम (Conventional rules) को क्रमबद्ध किया है।

इन कानूनी टीकाओं में निम्नलिखित प्रमुख हैं—

(i) 'एनसन' रचित 'सविधान की विधि और लोकाचार' (Law and Custom of the Constitution)

(ii) 'मे' द्वारा रचित 'ससदात्मक प्रथा' (Parliamentary Practice by May)

(iii) 'डायसी' रचित 'संविधान की विधि' (Law of the Constitution)

(iv) 'बेजहॉट' रचित 'इंग्लैण्ड का सविधान' (English Constitution)

(5) सामान्य विधि या कानून—ब्रिटिश सविधान का अन्य मुख्य स्रोत सामान्य विधि (Common Law) है। 'सामान्य विधि', मुनरो के शब्दों में "उन नियमों का समूह है जिनका ससद्-विधि से पृथक् विकास हुआ है और अन्तत. जिन्हें सारे राज्य में मान्यता मिली।" ये नियम, रीति-रिवाजों और परम्पराओं के आधार पर विकसित हुए हैं, ससद् द्वारा कभी निर्मित नहीं हुए। न्यायाधीशों ने अपने निर्णय में ऐसे अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है जिन्होंने समय बीतने पर कानून जैसी महत्ता प्राप्त कर ली है। इन सिद्धान्तों व नियमों की कोई सहिता नहीं बनी है। ससद् द्वारा पारित न होने पर भी न्यायालय इन्हें मान्यता देते हैं और यदि इनका उल्लंघन होता है तो इनके विषय में न्यायालय में अभियोग चलाया जा सकता है और उल्लंघन करने वाले को दण्ड दिया जा सकता है। ये सिद्धान्त व्यवहार के कारण शासन-प्रणाली के अंग-प्रत्यंग में प्रवेश कर गए हैं। सामान्य विधि के सिद्धान्तों के अन्तर्गत संवैधानिक महत्व के बहुत से मुख्य

मामले शामिल हैं। उदाहरण के लिए राजा ने अपना अधिकार (Prerogative) तथा संसद् में अपनी सर्वोच्चता सामान्य विधि से प्राप्त की है। इसी तरह ब्रिटिश जनता की नागरिक स्वतन्त्रताएँ, जो बिल ऑफ राइट्स (Bill of Rights) में उपलब्ध हैं, सामान्य विधि के नियमों द्वारा सुरक्षित हैं।

(6) संवैधानिक परम्पराएँ या अभिसमय—ब्रिटिश संविधान के सबसे महत्त्वपूर्ण अंश अभिसमय परम्पराओं (Conventions) पर आधारित हैं। ये अभिसमय लिपिबद्ध नहीं हैं और न्यायालय भी इन्हें कानूनी रूप से क्रियान्वित नहीं कर सकते। फिर भी अभिसमयों को कानून का-सा ही आदर प्राप्त है और इनका पालन भी कानूनों के समान होता है। वास्तव में ये अभिसमय राजनीतिक पद्धति के अलिखित नियम हैं।

ब्रिटिश संविधान की विशेषताएँ

(Salient Features of the British Constitution)

ब्रिटिश संविधान की कुछ निराली विशेषताएँ हैं। यह विश्व में सबसे प्राचीन है और अनेक राजनीतिक प्रथाओं का इससे प्रादुर्भाव हुआ है। इसके द्वारा राजनीतिक क्षेत्र में अनेक प्रकार से विश्व का पथ-प्रदर्शन हुआ। सर्वशक्तिशाली संसद्, उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल, द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका, संवैधानिक कार्यपालिका, कानून का शासन, स्वायत्त शासन आदि ब्रिटिश संवैधानिक परम्परा की देन हैं। मुनरो ने ब्रिटिश संविधान को 'मातृ संविधान' (Mother Constitution) और ब्रिटिश संसद् को 'मातृ संसद्' (Mother Parliament) ठीक ही कहा है।[1]

ब्रिटिश संविधान की प्रकृति और विशेषताओं का विश्लेषण निम्नलिखित शीर्षकों में कर सकते हैं—

(1) अनुभव-जनित संविधान—ब्रिटिश संविधान जनता के अनुभव से प्रादुर्भूत हुआ है। ब्रिटिश जनता ने अपने अनुभव से आवश्यकता और परिस्थितियों के अनुसार इसे परिवर्तित किया है। जनता के अनुभव के आधार पर उसमें परिवर्द्धन और संशोधन होते रहे हैं। इसीलिए इसे 'अवसर और बुद्धि की उपज' कहा गया है।

(2) अलिखित संविधान—इसका आशय यह है कि ब्रिटिश संविधान अंशतः लिखित (Partly Written) और अधिकांश अलिखित (Mostly Unwritten) है। इसका विधिवत् कभी निर्माण नहीं किया गया। इसका विकास धीरे-धीरे शताब्दियों में हुआ है। इसके लिखित भाग में वे सब कानून हैं जिन्हें संसद ने समय-समय पर बनाया है जैसे 1215 का मैग्नाकार्टा, 1628 का पिटीशन ऑफ राइट्स, 1911 व 1949 के संसदीय कानून आदि। इस संविधान के अलिखित भाग में उन संवैधानिक परम्पराओं या अभिसमयों का स्थान है जो लिखित न होने पर भी लिखित कानून के समान मान्य हैं। इस प्रकार यह संविधान लिखित कानूनों और अलिखित प्रथाओं व परम्पराओं का समन्वय है।

---

1 *Amery*. Thoughts on the Constitution, p. 1

(3) विकसित संविधान—ब्रिटिश संविधान एक विकसित संविधान है। अमेरिका या भारत के संविधानों की तरह इसका निर्माण किसी निश्चित वर्ग द्वारा नहीं हुआ बल्कि यह क्रमिक विकास का परिणाम है। इसने अपना वर्तमान स्वरूप युगों के विकास के बाद प्राप्त किया है। यह इतिहास का उत्पाद अथवा परिस्थितियों की कृति है। ब्रिटेन में 9वीं शताब्दी में राजतन्त्र की स्थापना हुई, 16वीं शताब्दी में संसद् का विधिवत् प्रचलन हुआ, 17वीं शताब्दी में संसदीय प्रभुसत्ता स्थापित हुई और तत्पश्चात् सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था का निरन्तर लोकतन्त्रीकरण होता गया। इस प्रकार ब्रिटिश संविधान को हम एक ऐसा विशाल भवन कह सकते हैं जिसके विभिन्न भाग अलग-अलग पीढ़ियों के प्रयत्नों के परिणाम हों। मुनरो ने लिखा भी है—"ब्रिटिश संविधान कोई अन्तिम वस्तु नहीं है वरन् एक विकासशील वस्तु है। यह बुद्धिमत्ता और संयोग की सन्तान है जिसका मार्ग-दर्शन कहीं आकस्मिकता और कहीं उच्चकोटि की योजनाओं ने लिखा है।"[1] ब्रिटिश संविधान बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालते हुए और परिवर्तन करते हुए निरन्तर प्रगतिशील रहा है।

ब्रिटिश संविधान के धीरे-धीरे विकसित होने के कुछ विशेष कारण रहे हैं। सर्वप्रथम तो अंग्रेजों का स्वभाव अधिकांशतः रूढ़िवादी है। वे ज्यादातर उन्हीं आवश्यक परिवर्तनों को स्वीकार करते हैं जिनसे परम्परागत संस्थाओं की अधिक से अधिक रक्षा की जा सके। दूसरे, अंग्रेज लोग सिद्धान्तवादी कम और व्यवहारवादी अधिक होते हैं। सिद्धान्तों की उपयोगिता को व्यावहारिकता की कसौटी पर कस कर वे विवेक और बुद्धिमत्ता से काम लेते हैं। इस प्रकार वे अधिकतर आकस्मिक परिवर्तनों को पसन्द नहीं करते। इतिहास साक्षी है कि ब्रिटेन में क्रान्ति द्वारा परिवर्तनों की तुलना में विकास द्वारा परिवर्तनों को ही अधिक पसंद किया गया है। ब्रिटिश संविधान के विकासशील होने के कुछ लाभ मिले हैं। इसी कारण ब्रिटिश संविधान प्रगतिशील रह सका है और नई परिस्थितियों में समझौता करके आवश्यकतानुरूप अपना स्वरूप बदलता रहा है।

(4) सिद्धान्त और व्यवहार में अन्तर—ब्रिटिश संविधान की एक अन्य विशेषता यह है कि उसके सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रूप में भारी अन्तर पाया जाता है। मुनरो के इस कथन में वास्तविकता है कि "इंग्लैण्ड में कोई बात जैसी दिखाई देती है वैसी नहीं है और जैसी है वैसी दिखाई नहीं देती।"[2] बेजहॉट (Bagehot) ने संविधान के इन दो रूपों को एक-दूसरे के प्रतिकूल बताया है। उसके लिखित रूप में वह सजीवता नहीं है जो उसके व्यावहारिक रूप में है और उसके व्यावहारिक रूप में वह शालीनता नहीं है जो उसके सिद्धान्तों में है। ऑग एवं जिंक (Ogg and Zink) ने लिखा है—"सभी शासनों में सिद्धान्त और व्यवहार में पर्याप्त भेद पाया जाता है, लेकिन जिस प्रकार यह भेद ब्रिटिश शासन-व्यवस्था का ताना-बाना बन गया है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं है।"

---

1 "The British Constitution is not a completed thing but a process of growth. It is a child of wisdom and chance, whose course has been sometimes guided by accident and sometimes by high design." —*Munro* Governments of Europe, p 21

2. "In the British Constitution nothing is what it seems to be or seems to be what is it." —*Munro* Op cit., p 24

ब्रिटिश संविधान में सिद्धान्त और आचरण के इस महान् अन्तर को निम्नांकित उदाहरणों द्वारा भली प्रकार समझा जा सकता है—

(i) सिद्धान्ततः इंग्लैण्ड में निरंकुश राजतन्त्र है। संवैधानिक दृष्टि से ब्रिटिश सम्राट सर्वोपरि है। उसी में सम्पूर्ण शक्ति निहित है। वह सम्पूर्ण विधि और न्याय का स्रोत है। वही संसद् को आहूत करता है तथा उसका विघटन और सत्रावसान करता है। राज्य के सैनिक और असैनिक अधिकारियों को वही नियुक्त और अपदस्थ करता है। सम्राट ही जल, थल और नभ सेना का स्वामी है। युद्ध की घोषणा, शान्ति और सन्धियाँ उसी के नाम से होती हैं। यहाँ तक कि विरोधी दल भी राजा का है (His Majesty's Loyal Opposition), परन्तु यह सब उसका अवास्तविक अथवा सैद्धान्तिक रूप है। व्यवहार में सम्राट इन शक्तियों का उपयोग नहीं करता। उसकी समस्त शक्तियाँ संसद् अथवा मन्त्रिमण्डल के हाथों में आ गई हैं। राजा मन्त्रि-मण्डल के हाथ की कठपुतली है, यहाँ तक कि राजा संसद् के अधिवेशनों में जो भाषण देता है वह भी मन्त्रियों द्वारा ही तैयार किया जाता है। बेजहॉट (Bagehot) का कथन सत्य है कि "यदि संसद् के दोनों सदन उसके मृत्यु आदेश को पारित कर उसके पास भेज दें तो उस पर भी उसे हस्ताक्षर करने ही पड़ेंगे।" राजा केवल शक्ति का प्रतीक है, वास्तविक शक्ति उसके हाथ से निकल चुकी है।

ब्रिटेन में जनता सम्प्रभु है और उस वास्तविक सम्प्रभुता का प्रतीक राजा (King) न होकर मुकुट (Crown) है। मुकुट प्रशासन की संस्था है, जबकि राजा प्रशासन का व्यक्तिगत प्रतीक है। मुकुट की शक्ति यथार्थ एवं वास्तविक है जबकि राजा प्रशासन का व्यक्तिगत प्रतीक है। मुकुट रूपी संस्था में मन्त्री, राजा, प्रिवी कौंसिल तथा संसद् सम्मिलित हैं। वास्तव में यह एक विचित्र अवास्तविकता है कि ब्रिटेन में सैद्धान्तिक रूप से संसद् और मन्त्रि-मण्डल केवल परामर्शदात्री संस्थाएँ हैं और राजा उनके परामर्श को मानने अथवा न मानने को पूर्ण स्वतन्त्र है, लेकिन, व्यावहारिक दृष्टि से ये संस्थाएँ ही सर्वशक्तिमान हैं। ब्रिटिश संविधान के सिद्धान्त और व्यवहार के इस भेद को ऑग ने स्पष्ट किया है—"इंग्लैण्ड की शासन-प्रणाली अन्तिम सिद्धान्त में निरंकुश राजतन्त्र, देखने में सीमित वैधानिक राजतन्त्र और व्यवहार में लोकतन्त्रात्मक गणराज्य है।"[1]

(ii) ब्रिटिश संविधान की अवास्तविकता का दूसरा महत्वपूर्ण उदाहरण यह है कि सिद्धान्ततः संसद् सर्वोच्च है, किन्तु व्यवहार में संसद् मन्त्रि-मण्डल के हाथों की कठपुतली है। इसी तरह सैद्धान्तिक रूप में सम्पूर्ण व्यवस्थापन संसद् समर्थित राजा (The King in Parliament) द्वारा किया जाता है लेकिन व्यवहार मे अधिकाशतः व्यवस्थापन मन्त्रिमण्डल द्वारा ही होता है। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल इतना शक्तिशाली है कि अपने बहुमत के बल पर वह संसद् पर छाया रहता है और उसे अपने इशारों पर नचाता रहता है। बेजहॉट (Bagehot) के शब्दों में, "मन्त्रिमण्डल (संसद् का) उत्पादन है,

1. "The Government of the United Kingdom in intimate theory an absolute monarchy, in form a limited constitutional monarchy and in actual character a democratic republic."
—*Ogg* English Government and Politics, p 66.

लेकिन उसे इतनी शक्ति प्राप्त है कि वह अपने निर्माताओं को भी समाप्त कर सकता है।"[1]

(iii) सिद्धान्त में लॉर्ड सभा के पास सर्वोच्च न्यायिक शक्ति है और वह अपील का सबसे बडा न्यायालय है, परन्तु वास्तव में न्याय सम्बन्धी कार्य कानूनी लॉर्डों (Law Lords) द्वारा ही सम्पादित किया जाता है।

(iv) ब्रिटिश सविधान में सिद्धान्त और आचरण मे अन्तर का एक अन्य उदाहरण यह है कि ब्रिटिश शासन-व्यवस्था में सिद्धान्त रूप में शक्ति का पृथक्करण दृष्टिगोचर होता है जबकि वास्तव मे यहाँ शासन की शक्ति पूर्णतः केन्द्रोन्मुख है। सैद्धान्तिक दृष्टि से विधि-निर्माण की शक्ति ससद् में, प्रशासकीय शक्ति मन्त्रिमण्डल में और न्यायिक शक्ति न्यायपालिका में निहित है। इसी सैद्धान्तिक रूप से भ्रमित होकर मॉंटेस्क्यू ने अपनी रचना 'स्पिरिट ऑफ लॉज' (Spirit of Laws) में लिखा था कि ब्रिटेन की शासन-व्यवस्था शक्ति के पृथक्करण का एक उत्तम उदाहरण है। परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से हमें यही देखने को मिलता है कि ब्रिटिश सविधान शक्ति पृथक्करण को प्रस्तुत नही करता बल्कि वहाँ तो शक्तियों का सम्मिश्रण है। ऑग एव जिंक (Ogg and Zink) का मत है कि "चाहे स्वतन्त्र न्यायपालिका के अस्तित्व की व्यवस्था के कारण ब्रिटेन में शक्ति का आशिक पृथक्करण हो, परन्तु व्यवस्थापिका और कार्यपालिका शक्ति का मिश्रण है।" रैमजे म्यूर (Ramsay Muir) ने भी ऐसा ही मत प्रकट करते हुए कहा है कि "ब्रिटेन में व्यवस्थापिका और कार्यपालिका शक्तियों का मिश्रण है।"

ब्रिटिश सविधान में विसगतियों का तत्व इतना प्रबल है कि इसने न केवल ब्रिटिश प्रशासनिक ढाँचे के बारे में भ्रांतियाँ ही पैदा की बल्कि कतिपय विद्वानों को यह कहने के लिए भी बाध्य कर दिया कि "ब्रिटेन में सविधान जैसी किसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं है।" मुनरो (Munro) ने व्यक्त किया है—"किसी पदाधिकारी के नाम से कोई पदाधिकारी कार्य करता है सविधान के अनुसार कार्य किसी और तरह होने चाहिए, लेकिन पदाधिकारी उन कार्यों को किसी और ही ढग से करते हैं। यही कारण है कि अपनी शासन-प्रणाली का वर्णन करने में अंग्रेजी लेखक आधे अध्यायों में जो कुछ होना चाहिए उसका चित्रण करते हैं और आधे अध्यायों में यह समझाने का प्रयत्न करते हैं कि वास्तविकता उससे सर्वथा भिन्न है। ऐसी दशा में यदि डी टोक्यूविली ने धैर्य का परित्याग कर नकारात्मक स्वर में यह कह दिया कि ब्रिटेन में सविधान जैसी कोई वस्तु नहीं है तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।"[2]

यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि आखिर ब्रिटिश सविधान में इस प्रकार की विसगतियाँ क्यों हैं ? इन विसगतियों अथवा अन्तरों के तीन प्रधान कारण हैं—वैधानिक विकास की क्रमबद्धता, स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाने के बाद भी परम्परागत स्वरूप कायम रखने की प्रवृत्ति और अधिकाश परिवर्तनों का परम्पराओं द्वारा अस्तित्व में आना। वास्तव में अंग्रेजों ने अपने रूढ़िवादी स्वभाव के कारण अपनी

1 "Cabinet is a creature but it has the power to destroy its creators."
—*Bagehot* : The English Constitution, p. 69

2. *Munro* Op cit., p 26

ऐतिहासिक परम्पराओं को समूल नष्ट नहीं किया है। जीवन की कठोर वास्तविकताओं के अनुसार आवश्यक परिवर्तन करते हुए भी उन्होंने अपनी प्राचीन राजनीतिक संस्थाओं को उनके अवास्तविक रूप में ही बने रहने दिया है।

(5) लचीलापन—ब्रिटिश संविधान विश्व के संविधानों का सर्वोत्तम उदाहरण है। देश की व्यवस्थापिका बिना किसी विशेष प्रक्रिया के संविधान में उसी सरलता से यथेष्ट परिवर्तन, परिवर्धन और संशोधन कर सकती है जिस सरलता से वह साधारण कानून पारित करती है। ब्रिटिश संविधान में विधि-निर्माण करने वाली तथा संविधान में संशोधन करने वाली शक्ति एक ही है अर्थात् संवैधानिक एवं साधारण दोनों प्रकार के कानूनों का समान स्तर है और दोनों में संशोधन सामान्य कानून के निर्माण की प्रक्रिया द्वारा किया जा सकता है। ब्राइस (Lord Brycc) के शब्दों में, "संविधान की संरचना को बिना तोड़े-मरोड़े ही आवश्यकतानुसार उसे खींचा और मोड़ा जा सकता है।"

लचीला होने के कारण ब्रिटिश संविधान में यह विशेषता है कि अवसर आने पर परिस्थितियों के अनुकूल इसमें सुगमता और शीघ्रता से परिवर्तन हो सकता है।

(6) एकात्मक—ब्रिटिश संविधान एकात्मक (Unitary) है। शासन की सम्पूर्ण शक्तियाँ लन्दन में स्थापित केन्द्रीय सरकार में हैं, वहीं से समस्त देश का प्रशासन होता है। यद्यपि प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से वहाँ विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को अपनाया गया है, किन्तु केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारों में विषयों का किसी प्रकार का कानूनी विभाजन नहीं है। स्थानीय सरकारों पर प्रशासन का उत्तरदायित्व है, परन्तु शक्ति का स्रोत एक ही है। स्थानीय संस्थाएँ अपनी शक्तियाँ संघीय अधिनियमों से प्राप्त करती हैं। केन्द्रीय सरकार इन शक्तियों को अपनी इच्छानुसार संकुचित या विस्तृत कर सकती है। यदि वर्तमान में अलिखित संविधान के होने के बाद भी शासन चल रहा है तो इसका कारण एकात्मक स्वरूप का होना है। संघात्मक राज्य-व्यवस्था के लिए तो संविधान लिखित और कठोर होना अनिवार्य है।

(7) संवैधानिक राजतन्त्र—ब्रिटेन की राजनीतिक व्यवस्था में मर्यादा का प्रतीक संविधान और निरंकुशता का चिह्न राजतन्त्र दोनों साथ-साथ विद्यमान हैं। ब्रिटिश शासन का स्वरूप 'समुकुट लोकतन्त्र' (Crowned Democracy) है। ब्रिटिश संवैधानिक विकास की यह विशेषता रही है कि समय की गति के साथ निरंकुश राजतन्त्र लोकतन्त्रीकरण की दिशा में अग्रसर होता गया और इस तरह उसने अपना निरंकुश स्वरूप परिवर्तित कर लिया।

(8) संसदीय शासन-व्यवस्था—ब्रिटिश संविधान देश में संसदीय शासन-प्रणाली की स्थापना करता है। संसदीय शासन के अनुरूप ब्रिटेन में कार्यपालिका की द्वैधता अर्थात् सम्राट (अथवा साम्राज्ञी) सिर्फ नाममात्र का वैधानिक प्रधान है जबकि कार्यपालिका की वास्तविक शक्तियाँ उन मन्त्रियों के हाथों में हैं जो संसद् के सदस्य होते हैं और उसके विश्वास-पर्यन्त अपने पद पर रहते हैं।

कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में घनिष्ठ सम्बन्ध भी है। प्रधानमन्त्री और अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति संसद् के बहुमत दल में से होती है। कार्यपालिका संसद् के प्रति उत्तरदायी होती है। मन्त्रिगण संसद्-सदस्य होने के नाते विधियों (कानूनों) को तैयार

करते हैं और उन्हें व्यवस्थापिका में प्रस्तुत व संचालित करते हैं । दूसरी ओर व्यवस्थापिका भी प्रश्नो, कटौती-प्रस्तावों, अविश्वास-प्रस्तावों आदि द्वारा कार्यपालिका पर पूर्ण नियन्त्रण रखती है । मन्त्रिमण्डल लोकसदन के विश्वास-पर्यन्त ही पदासीन रहता है । लोकसदन का विश्वास खो देने पर या तो विरोधी दल नया मन्त्रिमण्डल बनाता है या लोकसदन भंग होकर नए चुनाव होते हैं और फिर बहुमत दल मन्त्रिमण्डल का निर्माण करता है । इस प्रकार कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में सामंजस्य और एकता के तत्व देखे जा सकते हैं ।

(9) संसद् की सर्वोच्चता—ब्रिटिश संविधान की मूलभूत विशेषता संसद् की सर्वोच्चता है । वैधानिक दृष्टि से उसकी प्रभुसत्ता असीम है । कार्यपालिका उसी के प्रति उत्तरदायी है । कानून बनाने, संशोधन करने, रद्द करने अथवा कानून का विस्तार करने आदि का उसे पूरा अधिकार है । साधारण कानूनों के निर्माण के साथ ही साथ संवैधानिक कानूनों के निर्माण में भी वह उतनी ही शक्तिशाली है । संसद् में पारित कानूनों की समीक्षा करने का अधिकार न्यायपालिका को नहीं है । संसदीय कानून अन्तिम होते हैं जिन्हें देश की कोई संस्था चुनौती नहीं दे सकती । न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति के अभाव ने संसद को शक्तिशाली बना दिया है ।

संसद् की सर्वोच्चता केवल वैधानिक दृष्टि से ही है । व्यावहारिक दृष्टि से उसकी सर्वोच्चता पर अनेक बातों का अंकुश लगा रहता है । यह परम्परागत संवैधानिक अभिसमयों की उपेक्षा नहीं कर सकती और न ही लोकमत की ही अवहेलना कर सकती है । संसद् का सम्पूर्ण कार्य सदैव उत्तरदायित्व की भावना के साथ होता है । संविधान का संशोधन करते समय उसे विभिन्न मनोवैज्ञानिक और स्व-आरोपित प्रतिबन्धों का ध्यान रखना होता है । इसके अतिरिक्त उसके लिए यह भी सम्भव नहीं है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों और अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों आदि का अतिक्रमण कर स्वेच्छाचारिता का परिचय दे ।

(10) मिश्रित संविधान—ब्रिटिश संविधान में राजतन्त्रीय तथा प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों का अद्भुत सम्मिश्रण पाया जाता है । ऑग (Ogg) का मत है, "ब्रिटेन में राज्य-व्यवस्था शुद्ध सैद्धान्तिक रूप से निरंकुश राजतन्त्र है, बाह्य स्वरूप में सीमाबद्ध वैधानिक राजतन्त्र है और वास्तविक स्वरूप में प्रजातन्त्रात्मक गणराज्य है ।" राजतन्त्रीय तत्व साम्राज्ञी अथवा सम्राट के रूप में निहित है । सामन्ती तत्व लॉर्ड सभा के रूप में दिखाई देता है और प्रजातन्त्रीय तत्व लोकसभा के रूप में उपलब्ध है, किन्तु इन सामन्ती और राजतन्त्री तत्वों से लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों की कोई हानि न होकर इन्हें प्रोत्साहन ही मिलता है ।

(11) अवरोध व सन्तुलन के लिए स्थान—इंग्लैण्ड का संविधान नियन्त्रण और सन्तुलन के सिद्धान्त पर आधारित है । वहाँ किसी भी शक्ति को पूर्ण अधिकार नहीं है, वरन् प्रत्येक शक्ति पर दूसरी शक्ति का नियन्त्रण है । संसद् के दोनों सदन कोई भी नियम पारित कर सकते हैं, परन्तु उसके लागू होने के लिए सम्राट की स्वीकृति आवश्यक है । इसी प्रकार सम्राट् की कोई भी आज्ञा तब तक कानूनन मान्य नहीं होगी जब तक उस पर किसी मन्त्री के हस्ताक्षर नहीं हो जाते । इसी तरह जहाँ मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप से लोकसदन के प्रति उत्तरदायी है, वहाँ प्रधानमन्त्री को अधिकार है कि

वह सम्राट से कहकर लोकसदन को भग करा दे। न्यायाधीशों की नियुक्ति कार्यपालिका द्वारा होती है, किन्तु उनका पद स्थायी होता है। इस प्रकार शासन के प्रत्येक अग पर दूसरे अंग का किसी न किसी रूप में नियन्त्रण है।

(12) पैतृक सिद्धान्त या आनुवंशिकता का तत्व—ब्रिटिश संविधान प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों के साथ-साथ सामन्तशाही पर आधारित पैतृक अथवा आनुवंशिक सिद्धान्त (Hereditary Principle) का समर्थन करता है। उदाहरणस्वरूप सम्राट का पद आनुवंशिक सिद्धान्त पर आधारित है और लॉर्ड सभा के अधिकांश सदस्य आनुवंशिक पीयर (Pear) या सामन्त हैं। इसका प्रमुख कारण यही है कि अंग्रेज रूढ़िवादी हैं और *अपनी प्राचीन संस्थाओं के प्रति उनमें अगाध श्रद्धा व निष्ठा है।*

(13) विधि (कानून) का शासन—ब्रिटिश संविधान की एक आधारभूत विशेषता विधि अथवा कानून का शासन (Rule of Law) है। विधि-शासन का सामान्यतः यह अभिप्राय समझा जाता है कि अमुक देश में शासन वहाँ के कानून के अनुसार चलता है, किसी व्यक्ति विशेष की इच्छानुसार नहीं। सब कानूनों के अधीन हैं, कानून से ऊपर कोई नहीं हो सकता। ब्रिटिश संविधान में विधि-शासन के सम्बन्ध में डायसी की व्याख्या को बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है।

सारांश में, ब्रिटिश सविधान राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र और जनतन्त्र का अनुपम और कल्याणकारी मिश्रण है। परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को बदल देने की इसमें क्षमता है। इसे बीसवीं शताब्दी का एक सर्वाधिक प्रजातान्त्रिक और प्रगतिशील संविधान कहा जा सकता है।

ब्रिटिश संविधान संयोग और विवेक की उपज

(British Constitution—A Child of Chance & Wisdom)

ब्रिटिश संविधान एक उद्‌विकासीय संविधान (An Evolved Constitution) है। अतः ब्रिटिश संविधान का निर्माण उस योजनाबद्ध रूप से नहीं हुआ जिस तरह सयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत सघ या भारत के संविधान का हुआ है। वरन् यह 'संयोग और विवेक का शिशु' (Child of Chance and Wisdom) है। लिटेन स्ट्रैची की इस उक्ति को स्पष्ट करने के लिए हमें यह देखना चाहिए कि 'संयोग और विवेक' ने ब्रिटिश सविधान के विकास में किस प्रकार से योगदान दिया है। इस तथ्य को निम्नांकित उदाहरणों से भली-भाँति समझा जा सकता है।

(1) व्यवस्थापिका का द्विसदनात्मक स्वरूप विश्व को ब्रिटेन की ही देन है किन्तु ब्रिटेन में इसका जन्म एक ऐतिहासिक संयोग के रूप में हुआ। 1295 में आदर्श ससद् (Ideal Parliament) की बैठक एक सदन के रूप में हुई थी किन्तु इसमे मतदान पहले की तरह तीन भागों में हुआ—पादरी, बैरन तथा नाइट (सामन्त व जागीरदार) एवं नगरवासी। इस प्रथा के अनुसार इग्लैण्ड में त्रिसदनीय संसद् स्थापित होती, किन्तु यह केवल एक सयोग की ही बात थी कि उसे द्विसदनात्मक निकाय बना दिया। संयोगवश

बैरन तथा उच्च पादरीवर्ग एक साथ मिल गए, क्योंकि उनके हित समान थे। इसी भाँति नाइट तथा नगरवासी जिनके हित भी समान थे, एक साथ मिल गए।

(2) ब्रिटिश केबिनेट पद्धति या मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था भी संयोग का ही परिणाम है। हैनोवर वंश के राजाओं के कारण केबिनेट पद्धति का सरलता से विकास हो गया। एक तो उन राजाओं की रुचि हैनोवर के मामलों में थी, दूसरे वे अंग्रेजी से अनभिज्ञ थे। इस संयोग ने ब्रिटिश केबिनेट को राजकीय प्रभाव से मुक्त कर दिया। जब केबिनेट के ही एक सदस्य ने केबिनेट की बैठकों की अध्यक्षता करना शुरू कर दिया तो इसके फलस्वरूप प्रधानमन्त्री के पद का विकास हुआ। संयोगवश इस घटनाचक्र द्वारा लोकसदन के प्रति मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का जन्म और विकास हुआ।

(3) ब्रिटेन में यदि कुछ संस्थाओं को हम संयोग का परिणाम (Child of Chance) मान सकते हैं तो दूसरी ओर कुछ संस्थाएँ 'विवेक का शिशु' (Child of Wisdom) अथवा बुद्धिमत्तापूर्वक किए गए प्रयत्नों का परिणाम है। लोकसदन का लोकतान्त्रीकरण, लोकसदन की तुलना में लॉर्ड सभा की शक्तियों को कम करना आदि कार्य इसी प्रकार के प्रयत्न हैं। 1832, 1868, 1884 तथा अन्य सुधार अधिनियमों द्वारा वयस्क मताधिकार का विस्तार भी सचेतन अभिकल्प (Design) अथवा बुद्धिमत्तापूर्वक किए गए प्रयत्नों का परिणाम है। इसी प्रकार 1911 तथा 1949 के संसदीय अधिनियमों के कारण ही आज 'संसदीय प्रभुसत्ता (Parliamentary Sovereignty)' का व्यवहार में तात्पर्य "लोकसदन की प्रभुसत्ता" (Sovereignty of the House of Commons) से हो गया है। आज ब्रिटेन में स्थानीय स्वशासन और न्यायपालिका के संगठन की जो व्यवस्था है, वह भी विवेक का ही परिणाम है।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि ब्रिटिश संविधान के विकास में वहाँ जनता ने अपने संविधान में 'अभिकल्प और बुद्धि' (Design and Wisdom) का सही प्रयोग किया है। इस कथन में कोई अतिशयोक्ति प्रतीत नहीं होती कि ब्रिटिश संविधान 'संयोग और अभिकल्प की सन्तान' (A Child of Accident and Design) अथवा 'संयोग और विवेक का शिशु' (A Child of Chance and Wisdom) है। संयोग का ब्रिटिश संविधान के विकास में सर्वाधिक महत्व रहा है।

क्या ब्रिटेन में शक्तियों का पृथक्करण है ?

(Is there Separation of Powers in Britain ?)

ब्रिटेन में शक्तियों के पृथक्करण सम्बन्धी प्रश्न पर भी विवाद बना हुआ है। ऑग एवं जिंक की मान्यता है कि "शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त यहाँ आंशिक रूप से लागू हुआ है जिसका प्रयोग केवल न्यायपालिका के विषय में होता है।" कॉलिन एफ. पैडफील्ड के अनुसार भी "शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त ब्रिटिश संविधान पर पूरी तरह लागू नहीं होता, क्योंकि निम्नलिखित सत्ताओं के कार्य एक-दूसरे के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं।"[1]

1. *Colin F Padfield* : op. cit., pp. 11-13

सम्राट—ब्रिटेन में सम्राट अथवा साम्राज्ञी प्रशासन का अध्यक्ष होने के साथ-साथ न्यायपालिका का अध्यक्ष और व्यवस्थापिका का अभिन्न अंग होते हैं। राजा या रानी की संवैधानिक स्थिति असाधारण है।

लॉर्ड चांसलर—यह केबिनेट का सदस्य, लार्ड सभा का अध्यक्ष (President) और क्राउन के अधीन न्यायपालिका का प्रधान (Head) होता है। इस प्रकार लॉर्ड चांसलर के पद में तीनों शक्तियाँ संयुक्त हैं और इन शक्तियों का प्रयोग उसी व्यक्ति अर्थात् लॉर्ड चांसलर द्वारा होता है।

केबिनेट—यह राज्य की कार्यपालिका-शक्ति का केन्द्र है। केबिनेट अथवा मन्त्रिमण्डल में वे मन्त्री सम्मिलित होते हैं जो परम्परा के अनुसार संसद् के किसी एक या दूसरे सदन के सदस्य होते हैं। शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त को कठोरतापूर्वक लागू किया जाए तो क्राउन का कोई भी मन्त्री व्यवस्थापिका का सदस्य नहीं हो सकता, किन्तु ब्रिटिश संविधान के अन्तर्गत तो केबिनेट और व्यवस्थापिका घनिष्ठ रूप में और निरन्तर सम्बन्धित हैं। इनके आपसी सम्बन्धों को सरकार में 'भागीदारी' कहा जा सकता है, न कि पृथक्करण। अवश्य ही संसद् में इतनी नियन्त्रणकारी शक्ति मौजूद है कि वह सत्तारूढ़ दल के विरुद्ध मतदान कर उसे अपदस्थ कर दे। इस तरह से संसद को पूर्व कार्यपालिका के स्थान पर नई कार्यपालिका के निर्माण की शक्ति प्राप्त है।

मन्त्री—मन्त्रिगण जो कि कार्यपालिका का निर्माण करते हैं, व्यवस्थापिका से सत्ता ग्रहण कर स्वतन्त्र रूप में व्यवस्थापन-कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हैं। इसके अतिरिक्त कतिपय अधिनियम भी ऐसे हैं जो मन्त्रियों को न्यायिक और अर्द्ध-न्यायिक कर्तव्यों के निर्वहन की शक्ति देते हैं। यह स्थिति न्यायपालिका के क्षेत्राधिकार में कार्यपालिका के प्रवेश का प्रमाण है।

लॉर्ड-सभा—संसद का उच्च सदन लॉर्ड-सभा व्यवस्थापिका एक निर्माणक अंग भी है और साथ ही सभी दीवानी तथा फौजदारी मामलों में अपील का अन्तिम न्यायालय भी है।

लोकसदन—हाउस ऑफ कॉमन्स अर्थात् लोक सदन मुख्यतः एक विधायी (कानून निर्माण सम्बन्धी) निकाय है तथा व्यवस्थापिका का सबसे शक्तिशाली अंग है, तथापि सदन की अवमानना अथवा सदन के विशेषाधिकारों का उल्लंघन आदि के मामलों में वह न्यायिक हैसियत से भी कार्य कर सकती है।

न्यायपालिका—ब्रिटिश संविधान में न्यायपालिका की स्वतन्त्रता एक महत्वपूर्ण विशेषता है, पर इस स्वतन्त्रता को व्यवहार मे पूर्ण पृथक्करण की संज्ञा नहीं दी जा सकती, क्योंकि संसद् के दोनों सदनों की संस्तुति पर न्यायधीशों को पद से विमुक्त किया जा सकता है।[1] इसके अतिरिक्त, सर्वोच्च न्यायालय के कुछ नियमों का निर्माण संसदीय अधिनियम की सत्ता के अधीन उच्च न्यायालय और अपील न्यायालय के न्यायाधीशों के द्वारा किया जाता है।[2] इसके अतिरिक्त न्यायाधीश अपने निर्णयों द्वारा

1. "....in the last resort judges are removable from office on an address from both Houses of Parliament." —*Colin F Padfield*: Op. cit., p 12.
2. "....the rules of the Supreme Court (dealing how action shall proceed) are made by Judges of the High Court and Court of Appeal under authority of Statute." —Ibid, p. 12.

सामान्य कानून (Common Law) का विकास करते रहते हैं और अपनी व्याख्या तथा विधि-प्रशासन द्वारा कानून की पूर्ति करते हैं। इस प्रकार वे एक सीमा तक अप्रत्यक्ष रूप से 'विधायन-कार्य' की शक्ति का प्रयोग करते हैं।[1]

स्पष्ट है कि ब्रिटेन में शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धान्त वास्तव में लागू नहीं है, तथापि इसके आधारभूत विचारों का सम्मान अवश्य किया जाता है। विशेषकर न्यायपालिका की स्वतन्त्रता का इस दृष्टि से सर्वाधिक महत्व है। उदाहरणार्थ, संसद् ऐसे मामलों पर विवाद नहीं करती जो किसी न्यायाधीश के विचाराधीन हों, और इसी प्रकार क्राउन के मन्त्री किसी दीवानी या फौजदारी मामले में न्यायाधीश के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करते। शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त पूरी तरह लागू न होने पर भी सरकार के तीनों अंगों में सत्ता का विभाजन इस प्रकार है कि किसी भी निरंकुशता को रोकने के लिए 'नियन्त्रण और सन्तुलन' (Checks & Balances) प्रभावी होती है।

ब्रिटिश संविधान की कुछ आधुनिक प्रवृत्तियाँ

(Some Modern Tendencies of the British Constitution)

कुछ आधुनिक प्रवृत्तियाँ ब्रिटिश-शासन के स्वरूप को बदल रही हैं। ये मुख्यतः निम्नांकित हैं—

(1) लिखित कानूनों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति—ब्रिटिश संविधान मुख्यतः अलिखित था, किन्तु अब इसमें परिवर्तन लाने के लिए अधिकांशतः लिखित कानूनों का सहारा लेने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। 1911 और 1949 के संसदीय अधिनियम, 1918 और 1928 के संसदीय सुधार अधिनियम, 1948 का जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1953 का रीजेंसी अधिनियम, 1972 का स्थानीय शासन अधिनियम—ये सब और इसी प्रकार के अन्य अधिनियम ब्रिटिश संविधान के लिखित स्वरूप का निर्माण करते हैं। इस प्रकार आधुनिक प्रवृत्ति यह है कि शासन की मूल बातों को परम्पराओं या अभिसमयों पर छोड़ने के बजाय कानूनों के रूप में लेखबद्ध कर दिया जाए।

(2) क्षेत्रीय स्वायत्तता और राजनीतिक संघ की ओर प्रवृत्ति—ब्रिटिश शासन व्यवस्था एकात्मक है, किन्तु अब क्षेत्रीय स्वशासन की माँग बढ़ती जा रही है, और राजनीतिक संघ के पक्ष में लोकमत जाग्रत हो रहा है। विगत वर्षों में इंग्लैण्ड, स्कॉटलैण्ड, उत्तरी आयरलैण्ड और वेल्स को क्षेत्रीय प्रशासन सम्बन्धी स्वायत्तता देने की माँग प्रबलता से उठाई जाती रही है। इसकी आड़ में उत्तरी आयरलैण्ड में आयरिश रिपब्लिक आर्मी ने पृथकतावादी सशस्त्र आन्दोलन भी चलाया।

(3) अधिकाधिक लोकतन्त्रीकरण की प्रवृत्ति—ब्रिटिश शासन-व्यवस्था में लोकतन्त्र का निरन्तर विकास हुआ है और गत कुछ दशाब्दियों में लोकतन्त्रीकरण की प्रवृत्ति को विशेष बल मिला है। उदाहरणार्थ, 1949 में लॉर्ड-सभा की शक्तियों को एकदम घटा दिया गया।

---

1 "Judges continue to develop the common law by their decisions, and they fulfil the statute law by their interpretation and administration of the law. To that extent, therefore, the Judges exercise an indirect power of legislating in the sense of making new rules."

—Ibid, p. 12

(4) संसद् की शक्ति का ह्रास और मन्त्रिमण्डल की शक्ति में वृद्धि—ब्रिटिश संविधान की यह एक प्रमुख आधुनिक प्रवृत्ति है कि संसद् की शक्ति का ह्रास हो रहा है और मन्त्रिमण्डलीय शक्ति में निरन्तर वृद्धि हो रही है। मंत्रिमण्डल के पक्ष में देश की वास्तविक, प्रशासकीय और विधायिनी शक्ति इतनी अधिक है कि अब मन्त्रिमण्डलीय निरंकुशता अधिक दिखलाई देती है। लेकिन ब्रिटेन में जनमत इतना प्रबल है कि ऐसी कोई आशंका करना अनुपयुक्त होगा कि वहाँ मन्त्रिमण्डल वस्तुतः 'अधिनायक' जैसा आचरण करे।

(5) राष्ट्रमण्डल में ब्रिटेन की बदलती हुई भूमिका—राष्ट्रमण्डल में 1930 तक ब्रिटेन का पूर्ण प्रभुत्व था और 1948 तक इसका नाम 'ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल' था। भारत और पाकिस्तान के स्वतन्त्र राष्ट्रों के रूप में अभ्युदय के बाद इसका नाम केवल 'राष्ट्रमण्डल' (Commonwealth of Nations) कर दिया गया। इसके बाद इस संगठन से ब्रिटेन का वर्चस्व समाप्त हो गया। वर्तमान में राष्ट्रमण्डल का अध्यक्ष यद्यपि ब्रिटिश सम्राट या साम्राज्ञी है, किन्तु वह नाममात्र का प्रधान है और राष्ट्रमण्डल में ब्रिटेन की स्थिति "समान भागीदार" (Equal Partner) की है। राष्ट्रमण्डल की सदस्यता से किसी भी देश की सम्प्रभुता पर कोई आँच नहीं आती है।

(6) राजनीतिक दलों में सहमति की बढ़ती हुई प्रवृत्ति—ब्रिटेन के दोनों प्रमुख दलों में संवैधानिक सिद्धान्त के सम्बन्ध में अधिक सहमति और निकटता बढ़ने की प्रवृत्ति है। एक ओर श्रमिक दल की प्रगतिवादी विचारधारा में संशोधन हो गया है और दूसरी ओर अनुदार दल की विचारधारा में पर्याप्त प्रगति हो गई है।

(7) एकदलीय मन्त्रिमण्डलों को पुनःस्थापित करने की प्रवृत्ति—प्रथम एवं द्वितीय महायुद्ध के समय राष्ट्रीय मन्त्रिमण्डलों की स्थापना हुई थी और 1930-35 के बीच तीन राजनीतिक दलों के उदय के फलस्वरूप मिले-जुले मन्त्रिमण्डल स्थापित हुए थे, लेकिन ब्रिटेन में सामान्य प्रवृत्ति द्विदलीय पद्धति और एकदलीय मन्त्रिमण्डल की ही रही है। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् निरन्तर एकदलीय मन्त्रिमण्डल ही सत्ता में आये।

3

संविधान के अभिसमय

(Conventions of the Constitution)

डायसी ने अभिसमयों को 'सांविधानिक परम्पराओं' (Constitutional Conventions), जे. एस. मिल ने 'संविधान के अलिखित नियम' (Unwritten Maxims of the Constitution) और एन्सन ने 'संवैधानिक रीति-रिवाज' (Customs of the Constitution) कहा है। ऑग एवं जिंक ने अभिसमयों का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है—"इनका निर्माण उन समझौतों, आदतों या प्रथाओं से मिलकर होता है जो राजनीतिक नैतिकता के नियम-मात्र होने पर भी बड़ी से बड़ी सार्वजनिक सत्ताओं के दिन-प्रतिदिन के सम्बन्धों और गतिविधियों के अधिकांश भाग का नियमन करते हैं। ये अभिसमय कानून के कंकाल (सूखे ढाँचे) पर मांस चढ़ाते हैं, कानूनी संविधान को संचालित करते हैं और उसे बदलती हुई सामाजिक आवश्यकताओं तथा राजनीतिक विचारों के अनुसार संशोधित करते रहते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार स्पष्ट है कि अभिसमय वे नियम या परिपाटियाँ हैं जो कानून द्वारा बाध्य नहीं होते हुए भी कानून की तरह मान्य होते हैं। अभिसमयों के कारण ही ब्रिटिश संविधान को अलिखित तथा विश्व के सबसे लचीले संविधान के रूप में माना जाता है।

अभिसमयों की विशेषताएँ

(Features of Conventions)

अभिसमयों के स्वरूप से उनकी निम्नलिखित तीन प्रमुख विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं—

(1) अभिसमयों का स्रोत प्रथाएँ—अभिसमयों का स्रोत संसद् की विधि-निर्मात्री शक्ति न होकर प्रथाएँ हैं। धीरे-धीरे प्रयोग और व्यवहार में आते-आते कुछ प्रथाएँ प्रशासन के दैनिक संचालन के लिए अनिवार्य हो जाती हैं और तब से वैधानिक परम्पराओं या अभिसमयों का रूप ले लेती हैं।

(2) अभिसमयों का पालन उपयोगिता के कारण—अभिसमयों को कानून द्वारा मान्यता नहीं दी जाती और न्यायालयों द्वारा उन्हें क्रियान्वित नहीं किया जाता। अभिसमयों का पालन किए जाने का कारण उनकी अपरिहार्य उपयोगिता है। एक लम्बे समय से धीरे-धीरे प्रयोग में आते-आते अभिसमय ऐसी उपयोगिता-शक्ति प्राप्त कर लेते हैं कि जनमत उनकी अवहेलना करने वालों को आदर की दृष्टि से नहीं देखता।

(3) कानूनों के समान पवित्र—समय के साथ अभिसमय उसी प्रकार का पवित्र स्थान ग्रहण कर लेते है जैसा संवैधानिक कानूनों का होता है।

अभिसमयों की उत्पत्ति या उदय के कारण
(Causes of the Origin or Rise of the Conventions)

अभिसमयों का जन्म प्रायः निम्नांकित दो कारणों से होता है—

(1) कानूनी संरचना तथा वैधानिक विचारधारा में अनुकूलता स्थापित करने के लिए—यदि देश की कानूनी सरचना और तत्कालीन वैधानिक विचारधारा में भिन्नता होती है तथा तत्कालीन वैधानिक विचारधारा में जनता इतनी श्रद्धा रखती है कि कानूनी संरचना को इसके अनुकूल बनाना अनिवार्य हो जाए तो बहुधा इसे सम्पन्न करने के लिए अभिसमयों की सहायता ली जाती है। इंग्लैण्ड की कानूनी सरचना राजतन्त्रीय है, जबकि प्रचलित विचारधारा प्रजातन्त्रीय है। दोनों में अनुकूलता पैदा करने के लिए अनेक अभिसमयों को जन्म हुआ है, जैसे—सम्राट किसी बिल को अस्वीकार नहीं करता क्योंकि वह जनता की संसद् द्वारा पारित किया हुआ होता है और इसी प्रकार मन्त्रिमण्डल लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है।

(2) कानूनों की रिक्तता को भरने के लिए अभिसमयों की उत्पत्ति का दूसरा कारण यह है कि कभी-कभी कानूनों में कोई रिक्तता या विसंगति छूट जाती है तो उसकी पूर्ति के लिए अभिसमयों या प्रथाओं की उत्पत्ति होती है।

कानून और अभिसमय में अन्तर
(Difference between Law and Convention)

मान्यता की दृष्टि से समान प्रभाव रखते हुए भी कानूनों और अभिसमयों में पाए जाने वाले अन्तर मुख्यतः निम्नांकित हैं—

(1) अभिसमय की अपेक्षा कानून अधिक पवित्र—संवैधानिक अभिसमय की अपेक्षा संवैधानिक कानून अधिक पवित्र और मान्य समझा जाता है। अभिसमय केवल राजनीतिक नैतिकता का आग्रह होता है जबकि कानून किसी विधि-निर्मात्री शक्ति की इच्छा का परिणाम होता है। अतः जहाँ परम्परा के पालन का आधार इच्छा होती है, वहाँ कानूनों के पालन का आधार शक्ति। कानूनों का पालन प्रत्येक व्यक्ति को अनिवार्यतः करना पड़ता है, जबकि प्रत्येक अभिसमय के पालन के पीछे 'अनिवार्य' शब्द नहीं जुड़ा रहता। उदाहरण के रूप में, यह एक अभिसमय है कि कानून बनने से पहले प्रत्येक सदन में प्रत्येक विधेयक के तीन वाचन होने चाहिए, परन्तु यदि इस अभिसमय को भंग करके संसद् दो ही वाचनों के बाद विधेयक को कानून बना दे तो इसमें 'अनिवार्यता' टूटने वाली कोई बात नहीं होगी और न ही किसी कानून का उल्लंघन होगा।

परन्तु इससे यह अभिप्राय कदापि नहीं लेना चाहिए कि अभिसमयों का महत्त्व कानूनों की अपेक्षा गौण है। अनेक अभिसमयों के महत्त्व को तो कानूनों से भी बढ़कर माना जाता है। उदाहरण के लिए यह सोचना भी कठिन है कि कोई मन्त्रिमण्डल लोकसभा का विश्वास खोने पर भी त्याग-पत्र न दे अथवा दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयक पर सम्राट या साम्राज्ञी हस्ताक्षर न करे।

(2) **कानून का लिखित स्वरूप जबकि अभिसमय अलिखित होते हैं**—कानून सामान्य रूप से स्पष्ट और सुनिश्चित शब्दावली में व्यक्त होता है लेकिन अभिसमयों का निर्माण इस प्रकार नहीं होता। अभिसमय तो प्रथाओं और परम्पराओं पर आधारित होते हैं और उनमें परिवर्तन भी प्रचलित प्रथाओं के आधार पर होते रहते हैं। कभी-कभी यह ज्ञात करना भी कठिन हो जाता है कि कोई प्रथा अभिसमय बन गई है अथवा नहीं। कानून विधि-निर्मात्री शक्ति द्वारा लिखित रूप में प्रसारित किया जाता है, जबकि अभिसमय सदा अलिखित ही रहता है।

(3) **कानूनों के पीछे बाध्यकारी शक्ति जबकि अभिसमयों के पीछे नैतिक शक्ति**—कानूनों को न्यायालय की शक्ति प्राप्त रहती है। न्यायालयों द्वारा उन्हें लागू किया जाता है, परन्तु अभिसमयों को न्यायालयों की शक्ति प्राप्त नहीं होती और न ही न्यायालयों द्वारा उन्हें लागू किया जाता है। न्यायालय भी कानूनों के समान अभिसमयों की रक्षा नहीं करते। यदि किसी व्यक्ति अथवा सरकार द्वारा किसी अभिसमय अर्थात् वैधानिक परम्परा का उल्लघन किया जाए तो उसके लिए न्यायालय में अभियोग नहीं चलाया जा सकता, परन्तु यदि किसी कानून का उल्लघन हो तो व्यक्ति और सरकार दोनों ही न्यायालय की शरण ले सकते हैं और न्यायालय से दण्डित हो सकते हैं।

अभिसमय उदाहरण या व्यवहार के परिणाम होते हैं। जब कोई विशेष प्रकार का व्यवहार अपनाया जाता है और वह व्यवहार उपयोगी सिद्ध होता है तो बार-बार दोहराने से शनै-शनै वह अभिसमय का रूप धारण कर लेता है। दूसरी ओर कानून किसी कानून-निर्मात्री सत्ता की इच्छा के परिणाम होते हैं और उनका निर्माण एक विशेष पद्धति को अपनाकर किया जाता है।

वास्तव में कानून और अभिसमय में कोई स्पष्ट विभाजन-रेखा खींचना कठिन है दोनों में उपर्युक्त भेद मात्र सैद्धान्तिक ही है। व्यवहार में, ब्रिटेन में अभिसमयों का कानूनों के समान ही पालन किया जाता है। कानून और अभिसमय दोनों ही वहाँ शासन-व्यवस्था के निर्देशक तत्व है। दोनों अनेक बार साथ-साथ चलते हैं। मूल बात केवल यह है कि दोनों के अनुपालन के आधार भिन्न-भिन्न हैं। कानून का पालन इसलिए होता है कि उसके पीछे राज्य की प्रभुत्व शक्ति होती है, जबकि अभिसमय का पालन इसलिए होता है कि उसके पीछे "उपयोगिता" और "जनमत" का बल होता है। जेनिंग्ज ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "क्या कानून है और क्या अभिसमय है, ये मुख्य रूप से पारिभाषिक प्रश्न हैं। इनके उत्तर केवल उन्हीं को ज्ञात हैं जिनका कार्य इन्हें ज्ञात करना है। जनसाधारण के लिए इस बात का कि कोई नियम न्यायिक अधिकारियों द्वारा अभिज्ञात है या नहीं, कोई विशेष महत्त्व नहीं होता।"

ब्रिटेन के संवैधानिक अभिसमयों का वर्गीकरण एवं उदाहरण

(Classification and Illustrations of British Constitutional Conventions)

यहाँ ब्रिटिश संविधानिक अभिसमयों की पूरी सूची देना सम्भव नहीं है। ब्रिटिश अभिसमय अनेक प्रकार के हैं। कुछ का सम्बन्ध राजा (या रानी) के कार्य और उसकी

शक्तियों से है। कुछ मन्त्रिमण्डल से सम्बन्धित हैं। इसी तरह कुछ अभिसमय संसद् के विषय में हैं तो कुछ राष्ट्रमण्डल के बारे में। इन अभिसमयों में उल्लेखनीय निम्नांकित हैं—

(क) राजा से सम्बन्धित अभिसमय—सम्राट या राजा के सम्बन्ध में निम्नांकित अभिसमय प्रचलित हैं—

(1) राजा अपने मन्त्रियों के परामर्श से कार्य करता है।

(2) मन्त्रिमण्डल का निर्माण करने के लिए राजा लोकसभा के बहुमत वाले दल के नेता को प्रधानमन्त्री नियुक्त करता है।

(3) प्रधानमन्त्री द्वारा निर्मित मन्त्रिमण्डल को राजा अपने मन्त्रिमण्डल के रूप में स्वीकार करता है।

(4) राजा संसद् को प्रतिवर्ष एक बार अवश्य आहूत (Summon) करता है।

(5) राजा मन्त्रिमण्डल की बैठकों में सम्मिलित नहीं होता।

(6) प्रधानमन्त्री के परामर्श पर ही राजा लोकसभा का विघटन करता है।

(7) संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित किए गए विधेयकों पर राजा को स्वीकृति देनी ही होती है। यद्यपि वैधानिक रूप से सम्राट को विधेयकों पर निषेधाधिकार प्राप्त हैं, पर विगत 150 से भी अधिक वर्षों से इसका प्रयोग न होने से अब यह एक अभिसमय बन गया है कि वह अपने निषेधाधिकार का प्रयोग नहीं करेगा।

(ख) मन्त्रिमण्डल से सम्बन्धित अभिसमय—मन्त्रिमण्डल के सम्बन्ध में निम्नांकित महत्त्वपूर्ण अभिसमय विकसित हुए हैं—

(1) अभिसमय के अनुसार सम्राट के मन्त्रियों के लिए संसद् का सदस्य होना अनिवार्य है।

(2) मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप से संसद् (व्यवहार में लोकसदन) के प्रति उत्तरदायी है।

(3) मन्त्रिमण्डल सामूहिक और सम्मिलित उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अनुसार काम करता है।

(4) मन्त्रिमण्डल को लोकसदन का विश्वासपात्र न रहने पर त्याग-पत्र देना पड़ता है। यदि प्रधानमन्त्री चाहे तो राजा को लोकसदन को विघटित करने का परामर्श दे सकता है। कम महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पर लोकसदन में पराजित होने पर मन्त्रिमण्डल के लिए पद-त्याग आवश्यक नहीं है। नवम्बर, 1972 में आव्रजन नियमों के अनुमोदन पर एडवर्ड हीथ की अनुदारदलीय सरकार पराजित हो गई थी, पर उसने त्यागपत्र नहीं दिया।

(5) मन्त्रिमण्डल को अपने सम्पूर्ण प्राधिकार के साथ घरेलू संकट का प्रतिकार करना चाहिए, लेकिन उसे तुरन्त संसद् को आमन्त्रित कर उससे मन्त्रणा अवश्य करनी चाहिए।

(6) प्रधानमन्त्री अपने सहयोगियों के चुनाव में स्वतन्त्र होता है और सामान्यतया अपने मन्त्रिमण्डल के मन्त्रियों को अपने ही राजनीतिक दल में से लेता है।

(ग) संसद् से सम्बन्धित अभिसमय—संसद के सम्बन्ध में निम्नांकित महत्त्वपूर्ण अभिसमय विकसित हुए हैं—

(1) लोकसदन के अध्यक्ष को निर्दलीय व्यक्ति होना चाहिए और उसे अध्यक्ष पद के लिए निर्वाचन में खड़ा होने से पूर्व अपने दल की सदस्यता त्याग देनी चाहिए।

(2) अध्यक्ष का निर्विरोध निर्वाचन होना चाहिए और जितनी बार वह चाहे निर्वाचित किया जाना चाहिए।

(3) अध्यक्ष को अपने निर्णायक मत का प्रयोग बहुत कम और इस प्रकार करना चाहिए कि संसद् स्वयं निर्णय कर सके।

(4) लॉर्ड सभा जब अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य करती हो, तब कानूनी लॉर्डों (Law Lords) को उसमें अवश्य सम्मिलित होना चाहिए और उन्हें छोड़कर अन्य किसी लॉर्ड अथवा पीयर को लॉर्ड सभा के न्यायिक मामलों में भाग नहीं लेना चाहिए।

(5) लोकसदन किसी वित्तीय विधेयक पर तभी विचार करता है जबकि उसे राजा (अर्थात् मन्त्रिमण्डल) की सिफारिश पर प्रस्तुत किया जाए।

(6) लोकसदन अनुदान की माँग (Demand for Grant) में कमी कर सकता है और उसे अस्वीकार कर सकता है, किन्तु उसमें वृद्धि नहीं कर सकता।

(7) कानून बनाने से पहले प्रत्येक विधेयक का तीन बार वाचन (Reading) होना चाहिए।

(8) शासक-दल की ओर से एक भाषण होने के पश्चात् दूसरा भाषण विरोधी दल के सदस्य का होता है।

(9) लोकसदन का अध्यक्ष सदन में और सदन के बाहर निर्दलीय आचरण करता है।

(घ) राष्ट्र-मण्डल से सम्बन्धित अभिसमय—राष्ट्रमण्डल के सम्बन्ध में निम्नांकित महत्त्वपूर्ण अभिसमय विकसित हुए हैं—

(1) राष्ट्र-मण्डल सम्बन्धी विषयों में राजा को अपने राष्ट्र-मण्डलीय विभाग के मन्त्री से परामर्श करना चाहिए।

(2) किसी भी उपनिवेश के सम्बन्ध में संसद् तभी कोई कानून बनाएगी जब उपनिवेश की ओर से इस बारे में स्पष्ट प्रार्थना की गई हो और ऐसा करने की उसकी ओर से स्पष्ट अनुमति दे दी गई हो।

(3) राष्ट्रमण्डल की सदस्यता से किसी देश की सम्प्रभुता पर आँच नहीं आती है।

ब्रिटिश संविधान के अभिसमयों की संख्या बहुत बड़ी है। इसके अतिरिक्त इन अभिसमयों का रूप प्रगतिशील है अत: वे समय की प्रगति के साथ और लोगों के व्यवहार के अनुरूप बदलते व बढ़ते रहते हैं।

अभिसमयों का पालन क्यों किया जाता है ?

(Why are Conventions Obeyed ?)

अभिसमयों के पीछे कानून जैसी कोई शक्ति नहीं है तब प्रश्न उठता है कि अभिसमयों का पालन क्यों होता है ? डायसी के अनुसार अभिसमयों के पालन का कारण

कानून के भग होने का भय है। लावेल (Lowell) ने इस पालन के पीछे जनमत के बल का तर्क दिया है। लॉस्की (Laski) के अनुसार अभिसमयों का पालन इसलिए होता है क्योंकि एक तो ये 'प्रचलित सामयिक संवैधानिक सिद्धान्तों' के अनुरूप होते हैं और दूसरे, सभी राजनीतिक दल देश की सामाजिक व राजनीतिक संरचना की आधारभूत बातों के बारे में प्रायः एकमत रहते हैं अर्थात् लॉस्की के अनुसार अभिसमयों के पालन का मूल कारण उसकी विपुल उपयोगिता है।

डायसी का निष्कर्ष है कि अभिसमय और कानून दृढ़ता से परस्पर सम्बद्ध हैं। किसी अभिसमय के उल्लंघन से किसी न किसी कानून का उल्लंघन हो जाता है या इस उल्लघन से उसे क्षति पहुँचती है; क्योंकि कानून का उल्लंघन नहीं किया जा सकता, अतः यह स्वाभाविक है कि अभिसमयों का भी पालन करना ही पड़ता है।

डायसी के विपरीत लॉवेल (Lowell) का विचार है कि "अभिसमयों का पालन इसलिए किया जाता है कि उन्हें जनमत का परम्परागत समर्थन प्राप्त है।"[1] अंग्रेज लोग अपनी प्राचीन प्रथाओं का आदर करते हैं।

लॉवेल का मत डायसी के मत की अपेक्षा अधिक सम्य है, तथापित वह पूर्णतः मान्य नहीं ठहराया जा सकता। जनमत के समर्थन का आधार कोरा रूढ़िवाद नहीं है। अंग्रेज लोग किसी परम्परा अथवा प्रथा का समर्थन केवल इसीलिए नहीं करते हैं कि वह पुरातन काल से चली आ रही है। इसके विपरीत उनका समर्थन अधिकांशतः इसलिए होता है कि वह परम्परा या प्रथा प्राचीनकालीन होने के उपरान्त भी वर्तमान परिस्थितियों में उपयोगी है।

लॉस्की (Laski)—लॉस्की के मतानुसार अभिसमयों का पालन मुख्यतः निम्नांकित दो कारणों से होता है—

(1) पहला कारण है कि अभिसमय 'प्रचलित सामयिक सवैधानिक सिद्धान्तों के अनुरूप' है। इसके अतिरिक्त ये उनके क्रियान्वयन में सहायक होते हैं। उदाहरणार्थ, ब्रिटेन में किसी समय मंत्रिमण्डल की बैठकों का समापतित्व स्वयं राजा करता था, किन्तु जार्ज राजाओं ने मन्त्रिमण्डलीय बैठकों का समापतित्व करना बन्द कर दिया। परिणामतः राजा के स्थान पर प्रधान मन्त्री द्वारा मन्त्रिमण्डलीय बैठकों का समापतित्व करने की परम्परा बन गई। लेकिन लोकतन्त्रात्मक प्रवृत्ति के विस्तार के साथ यह परम्परा राष्ट्र द्वारा पूरी तरह मान्य हो गई और इसने एक अभिसमय का रूप धारण कर लिया। आज भी यह अभिसमय आदरणीय है।

(2) लॉस्की के अनुसार अभिसमयों की मान्यता का दूसरा कारण यह है कि ब्रिटेन के राजनीतिक दल देश की राजनीतिक व सामाजिक संरचना के मौलिक रूप के विषय में एकमत हैं और इस कारण इस सरचना से सम्बन्धित परम्पराएँ भी उन्हें समान रूप से मान्य हैं। उदाहरणार्थ, सभी ब्रिटिश राजनीतिक दल राजतन्त्रीय लोकतन्त्र (Monarchic Democracy) में विश्वास करते हैं और वैयक्तिक सम्पत्ति की व्यवस्थाओं को ब्रिटिश सामाजिक सरचना के लिए उपयोगी मानते है, अतः इन व्यवस्थाओं से सम्बन्धित

1 *Lowell*: Government of England, Vol. I, pp 12-13

अभिसमय भी उनके (दलों के) लिए मान्य हैं। यदि देश की सामाजिक और राजनीतिक सरचना की आधारभूत बातों पर ब्रिटिश राजनीतिक दलों में मतैक्य न होता तो अभिसमयों का पालन सन्देहास्पद हो जाता और उनकी पवित्रता अमान्य हो जाती।

डायसी, लावेल तथा लास्की के मतों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटेन में अभिसमयों के पालन होने के पीछे निम्नांकित कारणों का योगदान रहा है—

(1) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—अभिसमयों के पीछे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रही है। अतः इनके प्रति जनता का स्वाभाविक आकर्षण बना हुआ है।

(2) जनमत की शक्ति—इनके पीछे ब्रिटिश जनमत की शक्ति है, अत: कोई भी सरकार इनका न तो उल्लंघन कर सकती है और न ही इनकी उपेक्षा। यह अभिसमयों की सबसे बड़ी शक्ति है।

(3) कानूनों के समान ही पवित्र—अभिसमयों को कानूनों के समान ही पवित्र माना जाता है अत: ये बाध्यकारी स्थिति प्राप्त कर चुके हैं।

(4) उपयोगिता—अभिसमयों के पालन का सर्वाधिक शक्तिशाली कारण उनकी उपयोगिता है। वे न केवल वैधानिक शासन और लोकतन्त्र के सिद्धान्तों से ही सम्बन्ध रखते हैं, प्रत्युत वे युक्तियों पर आधारित होते हैं। शासन के सफल तथा निर्बाध सचालन के लिए यह आवश्यक है कि अभिसमयों का सम्यक् रूप से पालन किया जाए। यदि इनका पालन नहीं होगा तो प्रशासन-तन्त्र अस्त-व्यस्त हो जाएगा और शासन-सचालन में विभिन्न अवरोध उपस्थित हो जाएँगे।

संसदीय कार्यप्रणाली में अभिसमयों की भूमिका

(Role of Conventions in the Parliamentary Working)

अभिसमय संविधान को पूर्ण बनाते हैं और व्यावहारिक भी। ब्रिटिश संविधान में तो अभिसमयों का महत्त्व 'शरीर में आत्मा' जैसा है। ब्रिटिश संविधान के निर्माण और क्रियान्वयन में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका को निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है—

(1) अभिसमयों द्वारा ब्रिटिश संविधान के निर्माण में योगदान—ब्रिटिश संविधान की उत्पत्ति बहुत कुछ अभिसमयों से हुई है। इनके कारण उनके विकास को बल मिला है और निरंकुश राजतन्त्र वर्तमान लोकतन्त्र में बदल गया है।

ब्रिटेन में कानून द्वारा नहीं बल्कि संवैधानिक परम्परा या अभिसमय द्वारा राजाओं के असाधारण अधिकार धीरे-धीरे मन्त्रियों और संसद् के हाथ में आते गए। निरंकुश राजतन्त्र का अस्तित्व समाप्त हुआ। वर्तमान में राजा वास्तविक शासक ही नहीं रहा। अब वह सिर्फ राज्य करता है, शासन नहीं।

केवल उपर्युक्त अभिसमय ही नहीं, बल्कि 18वीं शताब्दी के अन्त तक मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था के लगभग सभी अभिसमय स्वीकार कर लिये गये। और तो और, ब्रिटेन के वर्तमान श्रमिक और रूढ़िवादी दलों का अभ्युदय भी परम्परा से ही हुआ। राजपद, संसद्, मन्त्रिमण्डल आदि स्वयं भी अभिसमयों की ही उपज हैं।

(2) अभिसमयों द्वारा ब्रिटिश संविधान के क्रियान्वयन में योगदान—ब्रिटिश संविधान को सुगमतापूर्वक संचालित करने में अभिसमयों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अभिसमय कानून के कंकाल पर मांस चढ़ाते हैं। वे शासन के कठोर वैधानिक संगठन को परिवर्तित कर राजनीतिक विचारों और जनता की आवश्यकताओं के अनुसार उसे संशोधित करते हैं। अनेक अभिसमय इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि उनके न होने पर भीषण राजनीतिक कठिनाइयाँ खड़ी हो सकती हैं और ब्रिटिश संविधान की कानूनी संरचना नष्ट हो सकती है।

उदाहरण के लिए, ब्रिटेन में कुछ ऐसे अभिसमय हैं जो कानूनी सम्प्रभु और राजनीतिक सम्प्रभु के बीच सामजस्य बनाए रखते हैं। राजा कानूनी सम्प्रभु है और मन्त्रिमण्डल तथा संसद् व जनता राजनीतिक सम्प्रभु। कानूनी दृष्टि से सम्पूर्ण शासन-शक्ति राजा (अथवा रानी) में निहित है। कानूनी रूप से राजा मन्त्रिमण्डल के परामर्श को मानने या संसद् द्वारा पारित विधेयकों पर स्वीकृति देने के लिए बाध्य नहीं है. लेकिन यदि राजा विशुद्ध रूप से इस कानूनी आचरण पर चलना शुरू कर दे तो राजनीतिक सम्प्रभु, अर्थात् मन्त्रिमण्डल, संसद् और जनता से उसका संघर्ष शुरू हो जायेगा। पर ऐसी स्थिति के समाधान का महत्त्वपूर्ण कार्य आज केवल एक अभिसमय पर आधारित है और वह यह है कि राजा को मन्त्रिमण्डल का परामर्श मानना चाहिए तथा संसद् द्वारा पारित कानूनों पर अपनी स्वीकृति देनी चाहिए। जब तक इस अभिसमय का पालन होता रहेगा तब तक कानूनी सम्प्रभु और राजनीतिक सम्प्रभु के टकराने की नौबत नहीं आएगी। इस तरह अभिसमय राष्ट्रीय जीवन में अवांछनीय टकराव, गतिरोध और संघर्ष की स्थिति को उत्पन्न ही नहीं होने देते हैं।

(3) शासन व्यवस्था को श्रेष्ठतर बनाने में योगदान—ब्रिटेन में कुछ संवैधानिक अभिसमय ऐसे हैं जिनसे शासन-कार्य का स्तर उन्नत बनाने में सहायता मिलती है। उदाहरणार्थ, यह अभिसमय है कि कानून बनने से पहले प्रत्येक विधेयक के तीन वाचन होने चाहिए। इस अभिसमय से विधेयक को पूरी तरह से कसौटी पर कसा जाता है। इसी तरह एक अभिसमय यह है कि लॉर्ड-सभा जब अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य करे तो इसमें सिर्फ कानूनी लॉर्ड (Law Lords) ही भाग लें। इस अभिसमय का सुधारात्मक प्रभाव यह होता है कि न्यायिक-कार्य सुचारु रूप से चलता रहता है।

(4) ब्रिटिश प्रशासन के संचालन में अभिसमयों की महत्ता—ब्रिटिश प्रशासन के संचालन में भी अभिसमयों का महत्त्व है। जैनिंग्स ने लिखा है कि "अभिसमय परिवर्तित सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों के अनुकूल शासन-व्यवस्था को ढालते हैं और शासक-वर्ग को शासन-यन्त्र संचालित करने की योग्यता प्रदान करते हैं।"

(5) अल्पसंख्यकों के संरक्षण में योगदान—अभिसमय अल्पसंख्यकों के संरक्षण में भी महती भूमिका का निर्वाह करते हैं। ह्वीयर (Wheare) का कहना है कि "अभिसमय अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करते हैं, विधान-मण्डल के दोनों सदनों के पारस्परिक सम्बन्धों को नियमित करते हैं, व्यवस्थापिका के संगठन को निर्धारित करते हैं, व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के सम्बन्ध को निश्चित करते हैं, राजनीतिक दलों और शासन की विभिन्न इकाइयों के सम्बन्ध निर्धारित कर शासन की रूपरेखा को सन्तुलित

करते हैं तथा शासन-व्यवस्था को परिस्थितियों के अनुकूल लचीली और परिवर्तनशील बनाते हैं।'

(6) अनेक महत्त्वपूर्ण संवैधानिक परम्पराओं को जन्म—अभिसमयो का महत्त्व इस दृष्टि से भी है कि इसने अनेक महत्त्वपूर्ण संवैधानिक परम्पराओं को जन्म दिया है। इनमें से निम्नांकित अत्यन्त महत्त्व रखती है—

(क) अभिसमयों द्वारा ब्रिटिश राजपद को सीमाबद्ध कर उसके सब अधिकारों को मन्त्रिमण्डल को हस्तान्तरित किया गया है।

(ख) अभिसमयों ने लोकसभा के प्रति मन्त्रिमण्डलीय सामूहिक एव व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को विकसित किया है।

(ग) अभिसमयों ने अनेक प्रकार से सविधान का विकास किया है और सवैधानिक विकास को इस स्थिति में पहुँचाया है कि मन्त्रिमण्डलों का निर्माण और विघटन प्रत्यक्ष रूप में निर्वाचक ही करते हैं।

(घ) अभिसमयों ने ब्रिटिश शासन-व्यवस्था को बदलती हुई सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल प्रगतिशील बनाए रखा है।

(ङ) ब्रिटिश शासन-व्यवस्था की महत्त्वपूर्ण और मौलिक सस्थाएँ—राजपद, संसद, मन्त्रिमण्डल, प्रधानमन्त्री आदि अभिसमयों की ही उपज हैं। अनेक व्यवस्थाएँ कानून पर नहीं बल्कि अभिसमयों पर आधारित हैं, जैसे—ससद् का द्विसदनीय सगठन, ससदीय कार्य-पद्धति का एक बड़ा भाग, सम्राट की स्थिति, कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका में सीमा-विभाजन आदि।

(7) विपक्ष की महत्त्वपूर्ण भूमिका—ब्रिटेन में विपक्ष की महत्त्वपूर्ण भूमिका भी अभिसमयों पर ही आधारित है इसी कारण शासक-दल विरोधी दल का सम्मान करता है तथा अपनी सीमा में रहता है।

निष्कर्षतः ब्रिटिश सविधान में अभिसमयों का महत्त्वपूर्ण स्थान है, और इन्होंने ब्रिटिश शासन-व्यवस्था को स्थिरता प्रदान की है।

क्राउन
(Crown)

ब्रिटेन में राजा का पद अत्यन्त प्राचीन है और इतिहास के विभिन्न चरणों में संवैधानिक विकास के फलस्वरूप राजा की स्थिति में जितना परिवर्तन हुआ है, उतना अन्य किसी पद में नहीं हुआ है। प्राचीनकाल का शक्तिशाली राजा आज अपनी वास्तविक शक्तियाँ खो बैठा है। वर्तमान में राजतन्त्र का लोकतान्त्रीकरण हो चुका है और अब वह मात्र संवैधानिक या औपचारिक शासक के रूप में ही सीमित रह गया है।

राजा और राजमुकुट तथा राजमुकुट का संवैधानिक अर्थ
(The King and the Crown and the Constitutional Meaning of the Crown)

राजा वह व्यक्ति होता है जो राज्य के प्रमुख पद पर आसीन होता है। दूसरी ओर राजमुकुट अथवा ताज (Crown) राज्य-शक्ति का वह प्रतीक है जिसे राजा अपने सिर पर धारण करता है। प्राचीनकाल से ही राजमुकुट धारण करने और इस प्रकार राजा या सम्राट बनने की प्रथा चली आ रही है। ब्रिटिश इतिहास में प्राचीनकाल में राजा शासन का सर्वोच्च अधिकारी होता था और राज्य की सभी शक्तियों का वास्तविक रूप में उपभोग करता था। लेकिन राजा को ये अपरिमित शक्तियाँ राजतिलक या राजमुकुट धारण करने के साथ ही प्राप्त होती थीं, उसके पूर्व नहीं अर्थात् राजा इन शक्तियों का अधिकारी तब होता था जब वह सिंहासनारूढ़ होकर राजमुकुट या ताज पहनने का अधिकारी होता था। अभिप्राय यह है कि विधायी, न्यायिक एवं कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ व्यक्तिगत रूप में राजा की न होकर राजमुकुटधारी राजा की होती हैं।

राजमुकुट का शाब्दिक अर्थ चाहे 'राजा के सिर का मुकुट' (जिसे वह राजपद के चिन्ह-स्वरूप पहनता है) हो, परन्तु संवैधानिक दृष्टि से यह शासन का वह साकार रूप है जिसमें विधायी, न्यायिक और कार्यपालिका सम्बन्धी सभी शक्तियाँ निहित हैं। इसीलिए जब व्यक्ति-विशेष (राजा) राजमुकुटधारी बनता है तो उसे स्वतः ही उन सब शक्तियों के प्रयोग का अधिकार मिल जाता है जो राजमुकुट में निहित है। यहाँ प्राचीन और वर्तमान स्थिति में अन्तर यही है कि पहले राजमुकुटधारी राजा वास्तविक शक्तियों का स्रोत था जबकि आज सैद्धान्तिक रूप में ही वह शक्तियों का स्वामी है क्योंकि शक्तियों का वास्तविक उपभोग मन्त्रिमण्डल द्वारा किया जाता है।

उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि राजा और राजमुकुट में अन्तर है। राजा वह व्यक्ति विशेष है जो राजमुकुट में निहित शक्तियों का प्रयोग करता है, अर्थात् संवैधानिक दृष्टि से राजमुकुट शासन का प्रतीक है, राजा नहीं। भूतकाल के इस अन्तर का कोई वैधानिक महत्त्व नहीं था, लोग इस पर ध्यान नहीं देते थे। ऐसा इसलिए था क्योंकि उस समय राजमुकुट की समस्त शक्तियों का प्रयोग व्यक्तिशः राजा करता था, आज की तरह अनेक संस्थाओं का समूह नहीं। राजमुकुट की शक्तियाँ अकेले राजा में केन्द्रीभूत थीं, अतः राजा राजमुकुट था और राजमुकुट राजा, जबकि आज राजमुकुट की शक्तियाँ सामूहिक रूप से अनेक संस्थाओं या व्यक्तियों (नाममात्र शासक राजा एवं वास्तविक शासक संसद व मन्त्रिमण्डल तथा प्रिवी कौंसिल) में निहित हैं। आज 'अनेक' मिलकर राजमुकुट की शक्तियों का प्रयोग करते हैं पहले 'एक' राजा व्यक्तिशः राजमुकुट की शक्तियों का प्रयोग करता था। 'राजतन्त्र के लोकतान्त्रीकरण' के कारण इस अन्तर का बड़ा महत्त्व है जिसे समझे बिना ब्रिटिश संविधान को अच्छी तरह नहीं समझा जा सकता।

राजा तथा राजमुकुट के भेद का महत्त्व

(Importance of the Distinction between the King and the Crown)

राजा और राजमुकुट का महत्त्व मुख्यतया दो कारणों से है—

(1) इससे ब्रिटिश संविधान के वास्तविक स्वरूप को समझने में सहायता मिलती है तथा यह पता चलता है कि जिस राजा के नाम से सम्पूर्ण शासन चलता है वह व्यावहारिक दृष्टि से केवल नाममात्र का शासक है। शासन की शक्तियों का प्रयोग राजा (अथवा रानी) द्वारा नहीं बल्कि राजमुकुट द्वारा किया जाता है जिसमें राजा, संसद, मन्त्रिमण्डल तथा लोकसेवा के सदस्य सम्मिलित होते हैं। संसद और मन्त्रिमण्डल, जो राजमुकुट के प्रतीक हैं, देश के वास्तविक शासक हैं।

(2) राजा व राजमुकुट के अन्तर को समझने से ब्रिटिश संविधान के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रूप में पाये जाने वाले अन्तर को समझ सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि सिद्धान्ततः शासन सम्राट में निहित है किन्तु व्यवहारतः वास्तविक शक्तियाँ मुकुट में समन्वित हैं जो व्यवहार में संसद और मन्त्रियों द्वारा प्रयुक्त होती हैं। सिद्धान्त रूप में संसद और मन्त्रिमण्डल राजा की परामर्शदात्री संस्थाएँ हैं, किन्तु व्यवहार में राजा उनके हाथ की कठपुतली है और शक्तियों का प्रतीक-मात्र है। यथार्थतः राजा और राजमुकुट के अन्तर का महत्त्व इसलिए है कि "ब्रिटिश शासन सिद्धान्ततः पूर्ण राजतन्त्र, स्वरूप में सीमित राजतन्त्र और वास्तविकता में प्रजातन्त्रात्मक गणतन्त्र है।"

राजा तथा राजमुकुट (ताज) में अन्तर

(Difference between King and Crown)

ब्रिटेन के संवैधानिक इतिहास में हम देख चुके हैं कि पहले निरंकुश राजतन्त्र था, लेकिन धीरे-धीरे संसद् निरन्तर शक्ति ग्रहण करती चली गई। समय के साथ-साथ राजतन्त्र रूपी संस्था के चारों तरफ विशेष प्रकार के कार्यों और शक्तियों की परिधि

खींच दी गई। इस प्रक्रिया से कालान्तर में राजा के सभी कार्य कानून और परम्पराओं (Conventions) के अधीन हो गए। शक्तियों के इस स्थानान्तरण के कारण राजा और राजमुकुट में जो वर्तमान अन्तर है, उसे निम्नानुसार व्यक्त किया जा सकता है—

(1) राजमुकुट एक संस्था किन्तु राजा एक व्यक्ति (Crown is an institution but king is a person)—राजमुकुट एक संस्था है जबकि राजा एक व्यक्ति है, जो राजपद को सुशोभित करता है और राजमुकुट रूपी संस्था में निहित शक्तियों का प्रयोग करता है। राजमुकुट वह संस्था है जो शासन की प्रतीक है। इसमें व्यवस्थापिका, कार्यपालन और न्यायपालिका तीनों की शक्तियाँ सम्मिलित हैं। राजा इस संस्था का एक अंग मात्र है जिसके पास कोई वास्तविक शक्ति नहीं है।

(2) राजमुकुट स्थाई किन्तु राजा अस्थाई (Crown is permanent but king is temporary)—राजमुकुट एक संस्था के रूप में सदैव बनी रहने वाली वस्तु है जिसका नाश नहीं होता, परन्तु राजा एक जीवित प्राणी के रूप में नाशवान है। राजमुकुट सदा से चला आ रहा है और सदा चलता रहेगा, लेकिन राजा व्यक्ति के रूप में सदा नहीं रहता। एक राजा मरता है तो दूसरा उसका स्थान ग्रहण कर लेता है। इस तरह राजाओं के आने-जाने का चक्र चलता रहता है, परन्तु राजमुकुट अविनाशी (Immortal) है। 'राजा मर गया, राजा चिरजीवी हो' (The King is dead, Long live the King) का जयघोष राजा के व्यक्तिगत रूप और राजमुकुट के संस्थागत रूप में अन्तर पर प्रकाश डालता है। इसका अर्थ यही है कि राजा-विशेष की मृत्यु हो सकती है, लेकिन राजमुकुट या राजपद की संस्था (Institution Kingship) स्थिर है। राजा और राजमुकुट के अन्तर को ब्लेकस्टोन के शब्दों में—"हैनरी एडवर्ड या जार्ज मर सकते हैं, लेकिन राजा (क्राउन) कभी नहीं मरता।"

(3) राजमुकुट सामूहिक किन्तु राजा वैयक्तिक (Crown is collective but king is individual)—राजमुकुट का रूप सामूहिक है, राजा का वैयक्तिक। राजमुकुट एक बहुल कार्यकारिणी है जिसमें संसद, मन्त्रिमण्डल तथा लोक सेवा के सदस्य सम्मिलित हैं। इसके विपरीत राजा वैयक्तिक कार्यपालक है। राजमुकुट के सामूहिक रूप को बतलाते हुए वेड तथा फिलिप्स का कथन है कि 'राजमुकुट' शब्द से शासन की सम्पूर्ण शक्ति के योग का बोध होता है और वह कार्यपालिका का पर्यायवाची है। राजमुकुट की कुछ शक्तियों के प्रयोग में राजा से व्यक्तिगत विवेक से काम लेने के लिए कहा जा सकता है, कुछ का प्रयोग राजा मन्त्रियों के पूर्ण दायित्व पर करता है और कुछ के प्रयोग में उसका कोई हाथ नहीं होता, क्योंकि कानून पर आधारित अधिकांश शक्तियाँ मन्त्रियों को ही प्राप्त होती हैं। यद्यपि उनका प्रयोग राजा के नाम पर किया जाता है तथापि वे मन्त्रिगण ही सरकारी तौर पर उनका वास्तविक प्रयोग करते हैं।[1]

(4) राजमुकुट जन-इच्छा का प्रतीक किन्तु राजा सजावट मात्र (Crown is symbol of people's will but king is decorative)—राजमुकुट शासन की वास्तविक

1 *Wade and Philips* : Constitutional Law, p. 123.

सत्ता का अधिकारी है जिसकी शक्तियों का प्रयोग संसद, मन्त्रिमण्डल आदि के द्वारा किया जाता है, अत उसे जन-इच्छा का प्रतीक कहा जाता है। इसके विपरीत जो ध्वजमात्र शासक है, एक सजावट-मात्र है जिसे 'स्वर्णिम शून्य' (Golden Zero) कहा गया है, वह ब्रिटिश शासन की शोभा बढ़ाता है।

संक्षेप में, राजमुकुट (Crown) राजा, मंत्री और संसद् तीनों का योग है। वृहद् अर्थ में राजमुकुट का अभिप्राय 'सम्पूर्ण सरकार' (The Whole Government) से है।

राजमुकुट की शक्तियों के स्रोत
(Resources of the Power of the Crown)

राजमुकुट की शक्तियाँ अत्यन्त व्यापक हैं। इन शक्तियों के प्रधान स्रोत निम्नांकित हैं—

(1) संसदीय कानून (Statute Laws)—ये वे कानून हैं जिनके द्वारा समय-समय पर संसद् में राजमुकुट की शक्तियों को परिभाषित किया गया है। संसदीय नियम वस्तुत. राजमुकुट की शक्ति के बड़े महत्त्वपूर्ण स्रोत बन गए हैं।

(2) विशेषाधिकार या परमाधिकार (Special Privileges)—राजमुकुट के विशेषाधिकार का अर्थ है—राजमुकुट की स्वतन्त्र शक्ति का अधिकार। राजा या उसके सेवक संसदीय अधिनियमों के बिना भी केवल अपने अधिकार से क्या-क्या कर सकते हैं, यही विशेषाधिकारों की व्याख्या है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो जनतन्त्र के उदय से पूर्व राजा की शक्तियों को विशेषाधिकार या परमाधिकार कहा जाता था।

राजमुकुट के वर्तमान विशेषाधिकार भी इतने अधिक और जटिल हैं कि उन्हें यहाँ सूचीबद्ध करना सम्भव नहीं है। फिर भी कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषाधिकारों का उल्लेख किया जाता है यथा—संसद् को आहूत करना, युद्ध अथवा तटस्थता की घोषणा, सन्धियों का अनुसमर्थन, सार्वजनिक पदों पर नियुक्ति, राज सेवकों की बर्खास्तगी, पीयरों की नियुक्ति तथा अपराधियों को क्षमादान आदि।

(3) विशेषाधिकारों व कानूनों का मिश्रण (Fusion of Special Privileges and Laws)—राजमुकुट की शक्तियों का एक तृतीय स्रोत विशेषाधिकारों और कानूनों का मिश्रण है। राजमुकुट की कुछ शक्तियाँ इस प्रकार की हैं जो प्रारम्भ में विशेषाधिकार-जनित थीं, लेकिन जिन्हें बाद में संसद् ने भी कानून बना कर मान्यता प्रदान कर दी है और इस तरह इनका स्रोत कानून और विशेषाधिकार दोनों ही हो गया है।

राजमुकुट के अधिकारों की परिवर्तनशीलता

राजमुकुट की शक्तियाँ निरन्तर परिवर्तनशील रही हैं। मैग्ना-कार्टा (Magna Carta) के समय से ही ये घटती-बढ़ती रही हैं। राजा की वैयक्तिक शक्तियों को कम करने में जन-आन्दोलनों और संसदीय कानूनों का योगदान रहा है। जन-आन्दोलन के फलस्वरूप मैग्ना-कार्टा स्वीकृत हुआ जिसके द्वारा राजा पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया कि वह कानून का उल्लंघन नहीं कर सकेगा। इसी तरह

अधिकार-याचिका (Petition of Rights) के द्वारा राजा पर यह अकुश लगा दिया गया कि वह न तो मनमाने ढग से लोगों को जेल में डाल सकेगा और न ससद की पूर्व-स्वीकृति के बिना कोई कर लगा सकेगा। ससदीय कानूनों की दृष्टि से अधिकार-पत्र (Bill of Rights) का उदाहरण दिया जा सकता है जिसके द्वारा राजा पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया कि वह न तो देश के प्रचलित कानूनों को निलम्बित कर सकेगा और न उन्हें समाप्त ही कर सकेगा। राजा के कतिपय अधिकार दीर्घकाल तक प्रयोग में न आने के कारण स्वतः ही समाप्त हो गए। उदाहरणार्थ, ट्यूडर-वंश के समय से राजा ने लोकसभा में प्रतिनिधि नियुक्त करने तथा उससे कुछ पहले से लॉर्ड सभा में आजन्म पीयर (Peer) नियुक्त करने (ससद् की स्वीकृति के बिना) के अधिकार का भी प्रयोग नहीं किया। परिणामस्वरूप यह मान लिया गया कि राजा के वे दोनों अधिकार समाप्त हो गये हैं और उसने स्वेच्छा से संसद् के सदनों की सदस्य संख्या बढ़ाने का अधिकार त्याग दिया है। लोक-कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के विकास ने भी राजमुकुट की शक्तियों में निरन्तर वृद्धि की।

राजपद और उत्तराधिकार के नियम

(Kingship and Succession to the Throne)

ब्रिटेन में राजपद और उत्तराधिकार के नियम 1701 के 'The Act of Settlement, 1701' पर आधारित हैं जिसके द्वारा यह व्यवस्था की गई कि राजपद हैनोवर-वंशीय इलैक्ट्रेस सोफिया के वंशजों में से आनुवंशिक क्रम से तब तक चलेगा जब तक की राजा या वंश प्रोटेस्टेन्ट धर्मावलम्बी बना रहेगा। एक- दूसरा नियम ज्येष्ठत्व (Primogeniture) का बनाया गया और साथ ही स्त्री की तुलना में पुरुष वंशज की श्रेष्ठता स्थापित की गई। 1714 में साम्राज्ञी ऐन की मृत्यु के बाद राजकुमारी सोफिया का ज्येष्ठ पुत्र सिंहासनारूढ़ हुआ और वही वंश आज भी चला आ रहा है। वर्तमान साम्राज्ञी एलिजाबेथ द्वितीय हैं जो इस वंश की 11वीं उत्तराधिकारिणी हैं। प्रथम महायुद्ध के बाद से हैनोवर वंश का नाम बदल कर विण्डसर वंश कर दिया गया है। वर्तमान साम्राज्ञी रानी एलिजाबेथ द्वितीय का राजतिलक संस्कार 2 जून, 1953 को लन्दन में वेस्टमिंस्टर गिरजाघर (Westminster Abbey) में हुआ था।

उत्तराधिकार से सम्बन्धित रीजेन्सी अधिनियमों, 1937-1953 (The Regency Acts, 1937-53) के अनुसार यदि सम्राट नाबालिग अथवा किसी मानसिक अथवा शारीरिक रोग के कारण शासन करने में असमर्थ हो तो रीजेन्ट (Regent) की व्यवस्था कर दी जाती है और यदि सम्राट तथा संरक्षक दोनों ही कार्य-संचालन की दृष्टि से असमर्थ हों तो इसी स्थिति में पाँच राजकीय परामर्शदाताओं की संरक्षण समिति कार्य सम्भालती है।

सारांश में, उत्तराधिकार के नियमों के अनुसार निम्नांकित प्रावधान लागू होंगे—

(क) राजपद आनुवंशिक क्रम से चलेगा,

(ख) राजपद ज्येष्ठत्व के नियम पर आधारित होगा,

(ग) स्त्री की तुलना में पुरुष-वंशज को श्रेष्ठता दी जाएगी,

(घ) प्रोटेस्टेन्ट धर्मावलम्बी ही राजगद्दी पर बैठ सकेगा, एव

(ङ) नाबालिग होने या शारीरिक-मानसिक अयोग्यता होने की सूरत में रीजेन्ट अथवा परामर्शदाताओं की व्यवस्था की जाएगी।

अंग्रेज राजाओं की राज्य-काल सम्बन्धी सारणी

(Table of Reignal Years of English Sovereigns)

अधिपति(राजा/रानी) (Sovereign)	से (From)	तक (To)	वर्ष (Years)	महत्त्वपूर्ण अधिनियम व घटनाएँ (Important Acts & Events)
विलियम प्रथम	1066	1087	21	*Domesday Book (1086)*
विलियम द्वितीय	1087	1100	13	
हैनरी प्रथम	1100	1135	36	
स्टीफेन	1135	1154	19	
हैनरी द्वितीय	1154	1189	35	
रिचर्ड प्रथम	1189	1199	10	
जोन	1199	1216	18	*Magna Carta (1215)*
हैनरी तृतीय	1216	1272	57	
एडवर्ड प्रथम	1272	1307	35	*Statute of Westminster I (1275)*
एडवर्ड द्वितीय	1307	1327	20	*Justices of Peace appointed (1327)*
एडवर्ड तृतीय	1327	1377	51	*Justices of Peace Act (1361)*
रिचर्ड द्वितीय	1377	1399	23	
हैनरी चतुर्थ	1399	1413	14	
हैनरी पचम	1413	1422	10	
हैनरी षष्टम	1422	1461	39	
एडवर्ड चतुर्थ	1461	1483	23	
एडवर्ड पचम	1483	1483	1	
रिचर्ड तृतीय	1483	1485	3	
हैनरी सप्तम	1485	1509	24	
हैनरी अष्टम	1509	1547	38	*Statute of Proclamations (1539)*
एडवर्ड षष्टम	1547	1553	7	
मेरी	1553	1558	6	
एलिजाबेथ प्रथम	1558	1603	45	
जेम्स प्रथम	1603	1625	23	

अधिपति(राजा/रानी) (Sovereign)	से (From)	तक (To)	वर्ष (Years)	महत्वपूर्ण अधिनियम व घटनाएँ (Important Acts & Events)
चार्ल्स प्रथम	1625	1649	24	*Shipmoney Act (1640) Star Chamber Abolition Act (1640)*
चार्ल्स द्वितीय	1649	1685	37	
जैम्स द्वितीय	1685	1688	4	
विलियम तथा मेरी	1689	1702	14	
ऐन	1702	1714	13	
जार्ज प्रथम	1714	1727	13	
जार्ज द्वितीय	1727	1760	34	
जार्ज तृतीय	1760	1820	60	*Parliamentary Privilege Act (1770)*
जार्ज चतुर्थ	1820	1830	11	
विलियम चतुर्थ	1830	1837	7	*Reform Act (1832)*
विक्टोरिया	1837	1901	64	*Judicature Act (1873-75)*
एडवर्ड सप्तम	1901	1910	10	
जार्ज पंचम	1910	1936	26	*Parliament Act (1911) Statute of Westminster (1931)*
एडवर्ड अष्टम	1936	1936	1	
जार्ज षष्ठम	1936	1952	17	*Parliament Act (1949)*
एलिजाबेथ द्वितीय	1952	-	—	*Life Peerage Act (1958)*

Source : Colin F. Padfield : British Constitution, p. XII

राजा को वार्षिक अनुदान : सिविल लिस्ट या राजकुल-व्यय (The Civil List)

ब्रिटिश सम्राट को राजकोष से वार्षिक अनुदान दिया जाता है। मध्ययुग में राजा की निजी जागीरदारियाँ होती थीं और सम्पत्ति के अन्य स्रोत थे जिनकी आय से वह स्वयं के और सरकार के खर्च चलाता था। राजपद का लोकतान्त्रीकरण होने के साथ ब्रिटिश राजा को अपना खर्च चलाने के लिए संसद द्वारा अनुदान देने की प्रथा चल पड़ी। संसद् द्वारा राजा और राजघराने के सदस्यों को व्यक्तिगत व्यय के लिए राजकोष से जो वार्षिक अनुदान तय किया जाता है उसे 'सिविल लिस्ट' या राजकुल-व्यय की संज्ञा दी जाती है। समय-समय पर संसद द्वारा राज-परिवार के सदस्यों के वेतन-भत्तों में वृद्धि की जाती है।

राजा के शाही निवास-स्थान बकिंघम राजमहल (Buckingham Palace), विंडसर कैसल (Windsor Castle) तथा एडिनबर्ग में होलीरोड हाउस का महल

(Holyrod-house in Edinburg) हैं। इनके अतिरिक्त रानी के निजी निवास-गृह भी हैं।

राजमुकुट की शक्तियाँ, अधिकार और कार्य

(Powers, Functions and Rights of the Crown)

राजमुकुट में कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका की सभी शक्तियाँ निहित हैं। उसकी व्यापक शक्तियों का अध्ययन निम्नलिखित वर्गों में किया जा सकता है—

(क) कार्यपालिका शक्तियाँ

राजमुकुट की कार्यपालिका शक्तियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, व्यापक और निरन्तर वृद्धिशील हैं। इसकी कार्यपालक शक्तियों का विवरण निम्नानुसार है—

(1) प्रशासन-निर्देशन (Direction of Administration)—अमेरिका के राष्ट्रपति की भाँति ही राजमुकुट का सबसे प्रमुख कार्य-प्रशासन का निर्देशन करना है। वह समस्त राष्ट्रीय कानूनों को क्रियान्वित करता है और सब प्रशासनिक विभागों और सरकारी कर्मचारियों के कार्यों की निगरानी करता है। वही उच्च कार्यपालिका, प्रशासनिक अधिकारियों तथा न्यायाधीशों तथा सैनिक अधिकारियों की नियुक्ति करता है। मन्त्रियों की नियुक्ति प्रधानमन्त्री के परामर्श के अनुसार की जाती है। प्रधानमन्त्री की नियुक्ति राजा का महत्त्वपूर्ण अधिकार है और यह परम्परा है कि वह लोकसदन के बहुमत-दल के नेता को इस पद पर नियुक्त करे। यदि लोकसदन में सरकार पराजित हो जाती है और प्रधानमन्त्री त्याग-पत्र दे देता है तो राजा विपक्षी दल के नेता को सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित करता है। यदि किसी दल विशेष के बहुमत के अभाव में सरकार का निर्माण नहीं हो पाता तो आम चुनाव कराए जाते हैं और तब बहुमत प्राप्त दल के नेता को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया जाता है।

राजमुकुट न्यायाधीशों के अतिरिक्त अन्य अधिकारियों के विरुद्ध अनुशासन की कार्यवाही कर उन्हें पदच्युत कर सकता है। न्यायाधीशों को पदच्युत करने के लिए संसद् के दोनों सदनों के सम्मिलित आवेदन की आवश्यकता होती है। राजमुकुट ही राष्ट्रीय कोष का नियन्त्रण और संचालन करता है। राष्ट्रीय बजट उसकी ओर से प्रस्तुत किया जाता है और संसद् की स्वीकृति के बाद उसी के द्वारा कार्यरूप में लाया जाता है। कर्मचारियों की सेवा-स्थिति की उचित व्यवस्था करना उसी का कर्त्तव्य है। वह राष्ट्रीय सैनिक सेवाओं का सर्वोच्च सेनापति है। राजमुकुट ही देश के दैनिक प्रशासन का नियन्त्रण और संचालन करता है।

कार्यकारी क्षेत्र में ऑग (Ogg) ने राजमुकुट की सामूहिक शक्ति (The Composite Authority) की तुलना अमेरिकी राष्ट्रपति की शक्तियों से की है। उन्हीं के शब्दों में, "जिस प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति राष्ट्रीय प्रशासन की व्यापक शाखाओं और शासन का संचालन करता है, ठीक उसी प्रकार ब्रिटेन में राजमुकुट के नाम से विख्यात सामूहिक शक्ति (The Composite Authority) अपनी देखभाल तथा अपने नियन्त्रण में राष्ट्रीय कानूनों को लागू करती है, राष्ट्रीय करों की वसूली करती है,

राष्ट्रीय व्यय का प्रबन्ध करती है तथा अन्य अनेक ऐसे कार्य करती है जो देश के शासन-कार्य को चलाने के लिए आवश्यक हैं।"[1]

(2) वैदेशिक सम्बन्धों का संचालन (Direction of Foreign Affairs)—शासन के प्रमुख के रूप में राजमुकुट ही ब्रिटेन के वैदेशिक सम्बन्धों का संचालन करता है। समस्त विदेशी मामले या विदेशी कार्य उसी की ओर से अथवा उसी के नाम से होते है। विदेशों में सभी राजदूतों और उच्च कूटनीतिक प्रतिनिधियों की नियुक्ति उसी के द्वारा की जाती है। वही अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेने वाले प्रतिनिधि-मण्डल भेजता है तथा उन्हें कार्य व नीति-विषयक निर्देश भेजता है। विदेशी राजदूत अपना प्रमाण-पत्र उसी को प्रस्तुत करते हैं और वही उनका स्वागत करता है। युद्ध की घोषणा करने अथवा तत्सम्बन्धी सन्धि करने का अधिकार भी उसी को है। उसके द्वारा की गई सन्धियों पर संसद् की स्वीकृति की उस समय तक आवश्यकता नहीं होती जब तक कि उसमें संसदीय स्वीकृति सम्बन्धी शर्त न हो अथवा जब तक उसमें कोई ऐसा मामला ग्रस्त न हो (जैसे—स्व-भू-भाग का परित्याग, धन की अदायगी अथवा देश के प्रचलित कानून में परिवर्तन) जिसको विधि-अनुकूल बनाने के लिए संसद् की स्वीकृति की आवश्यकता न हो।

यद्यपि राजमुकुट कुछ सन्धियों को स्वीकृति के लिए संसद् में प्रस्तुत करता है तथापि ऐसा करने के लिए वह कानूनी रूप से बाध्य नहीं है। संसद् अपनी बजट पारित करने की शक्ति से राजमुकुट के विदेशी मामलों सम्बन्धी कार्यों को प्रभावित कर सकती है, परन्तु कानूनी रूप से राजमुकुट बाधित नहीं है कि वह सब अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों को संसद् में प्रस्तुत करके उसकी स्वीकृति प्राप्त करे। व्यापक सार्वजनिक तथा राष्ट्रीय हितों का सहारा लेकर राजमुकुट अनेक गोपनीय वैदेशिक सन्धियों को संसद् में प्रस्तुत नहीं करता है।

(3) उपनिवेश व राष्ट्रमण्डल सम्बन्धी अधिकार (Rights Regarding Colonies and Commonwealth)—राजमुकुट ही ब्रिटिश उपनिवेशों व सुदूरस्थ अधीन प्रदेशों के शासन का वास्तविक अध्यक्ष है। सम्राट (साम्राज्ञी) राष्ट्रमण्डलीय देशों का औपचारिक प्रधान है, पर अब राजमुकुट की राष्ट्रमण्डल व उपनिवेश सम्बन्धी शक्तियों का व्यावहारिक महत्त्व बहुत कम रह गया है। लगभग सभी ब्रिटिश उपनिवेश पूर्ण स्वतन्त्र हो चुके हैं और वे अपनी नीतियों का स्वयमेव संचालन करने के लिए स्वतन्त्र है। राजमुकुट उपनिवेशों के मन्त्रिमण्डल के परामर्श से वहाँ के सर्वोच्च शासकों की नियुक्ति अवश्य करता है और वे राजमुकुट के प्रतिनिधि भी कहलाते हैं, परन्तु यह सब केवल औपचारिक है। राजमुकुट के राष्ट्रमण्डलीय कार्य तो और भी औपचारिक हैं क्योंकि भारत, पाकिस्तान जैसे पूर्ण स्वतन्त्र राज्य भी राष्ट्रमण्डल के सदस्य हैं।

(ख) विधायिनी शक्तियाँ (Legislative Powers)

राजमुकुट को व्यवस्थापन सम्बन्धी अनेक शक्तियाँ प्राप्त है। ये शक्तियाँ राजा सहित संसद् (King in Parliament) में निहित हैं। स-संसद् राजा ही कानून-निर्माण

1. *Ogg* : British Govt. and Politics.

का अधिकारी माना जाता है। विधायी क्षेत्र में राजमुकुट की शक्तियो, कर्त्तव्यों और अधिकारों को निम्नलिखित रूप से विभाजित किया जा सकता है—

(1) संसद् से सम्बन्धित (Related to Parliament)—ब्रिटेन में कार्यपालिका और व्यवस्थापिका को एक-दूसरे से अभिन्न रखा गया है। विधायी शक्तियाँ संसद् सहित सम्राट में निहित हैं। कोई भी विधेयक तब तब कानून नहीं बन सकता जब तक उस पर राजा की स्वीकृति प्राप्त न हो जाए। राजा को वर्तमान संसद् के दोनों सदनों से पारित किसी भी विधेयक को स्वीकृति प्रदान करने या उसका निषेध (Veto) करने का अधिकार है परन्तु 1707 ई के बाद से राजा द्वारा निषेध-शक्ति का प्रयोग कभी नहीं किया गया है। अब यह शक्ति नहीं के समान ही है हालाकि सिद्धान्त रूप में यह अब भी विद्यमान है। आजकल तो राजा स्वय विधेयकों पर अपनी स्वीकृति भी नहीं देता, अपितु पाँच कमिश्नर, जिनकी नियुक्ति राजमुकुट राजकीय साइन मेन्युअल (Sign Manual) के अनुसार करता है, अपनी स्वीकृति देते हैं।

ससद में विधेयकों के प्रस्तुत करने के सम्बन्ध में भी राजमुकुट का दायित्व रहता है। राजमुकुट की सिफारिश पर ही वित्त-विधेयक प्रस्तुत किए जा सकते हैं। अन्य सरकारी विधेयक भी मन्त्रियों द्वारा ही पेश किए जाते है और उन्हें ऐसा करने का अधिकार राजमुकुट के मन्त्री होने के नाते प्राप्त है। राजमुकुट को ससद् से सम्बन्धित और भी अनेक अधिकार हैं। उसे पीयर (Peer) की उपाधि प्रदान करने का अधिकार है। केवल वे ही लोग लार्ड-सभा के सदस्य हो सकते हैं, जो पीयर बन जाते हैं।

लोकसदन के निर्वाचन की तिथि की घोषणा भी राजमुकुट द्वारा ही की जाती है। राजमुकुट के मन्त्री ससद के सदस्य भी होते हैं और वे संसद् की कार्यवाहियों का सचालन करते हैं। राजमुकुट ही लोकसदन का स्थगन और विघटन करता है। लॉर्ड सभा के बारे में उसे ऐसा अधिकार प्राप्त नहीं है, क्योंकि वह एक स्थायी सदन है। ससद् का सत्रावसान भी राजमुकुट ही करता है।

जब नई ससद् का सम्मेलन होता है तो प्राय. राजा ही लार्ड सभा में, जहाँ लोकसदन के सदस्य भी होते हैं, स्वय उपस्थित होकर अपना राजसिंहासन भाषण (Speech from the Throne) देता है और उसके द्वारा ससद् का स्वागत करता है, परन्तु राजा के भाषण को वास्तव में मन्त्री ही तैयार करते हैं और उसे राजा को पढ़ने मात्र हेतु दे देते हैं।

(2) स-परिषद् आदेश (Orders in Council)—राजमुकुट का एक अन्य प्रमुख कार्य है—स-परिषद् आदेश निकालना। इसका अभिप्राय यह है कि ससद् विधेयकों की मोटी रूपरेखा मात्र पारित कर देती है और अन्य बातों के निर्धारण का दायित्व राजमुकुट पर छोड़ देती है जिसे वह अपने मन्त्रियों द्वारा पूर्ण करता है। इस प्रकार के उपव्यवस्थापन के अन्तर्गत मन्त्रिमण्डल विभिन्न आदेश निकालता है जो राजमुकुट के नाम से प्रसारित किए जाते हैं। इन आदेशों को स-परिषद् आदेश (Orders in Council) कहा जाता है। इसका महत्त्व कानूनों के समान ही होता है।

(ग) न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers)

राजमुकुट को न्याय का स्रोत (Fountain of Justice) कहा जाता है, परन्तु अब यह कथन केवल औपचारिक भर रह गया है क्योंकि ब्रिटेन में स्वतन्त्र न्यायपालिका का अस्तित्व है। फिर भी न्यायपालिका राजमुकुट के अधिकार-क्षेत्र से पूरी तरह बाहर नहीं है। ब्रिटेन में सभी न्यायालय राजा के न्यायालय हैं और समस्त न्याय राजा के नाम से होते हैं। राजमुकुट ही न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है और संसद् की सहमति से उन्हें पदच्युत भी कर सकता है।

राजमुकुट प्रिवी-कौंसिल की न्याय समिति के परामर्श से उपनिवेशों से आई हुई अपीलों का निर्णय करता है। समस्त अपिकारियों को राजमुकुट के नाम से ही दण्डित किया जाता है।

राजमुकुट के न्यायपालिका सम्बन्धी अधिकार सीमित हैं। उदाहरणार्थ, राजमुकुट को यह अधिकार नहीं है कि वह कोई नवीन न्यायालय स्थापित कर सके। वह किसी वर्तमान न्यायालय के संगठन और उसकी कार्य-विधि में भी परिवर्तन नहीं कर सकता। उसे न्यायाधीशों की संख्या, उनके कार्यकाल, उनकी नियुक्ति, विधि और वेतन तथा अन्य सेवा शर्तों आदि से भी कोई परिवर्तन करने का अधिकार नहीं है। अपील का अन्तिम न्यायालय भी राजमुकुट न होकर लॉर्ड सभा है। राजमुकुट की न्यायिक शक्तियों के बारे में ऑग (Ogg) ने लिखा है कि "आज यह केवल एक प्रथा-सी ही है कि उसे गौरव के साथ न्याय का स्रोत कहा जाता है, अन्यथा उसमें वास्तविकता बहुत कम है।"

राजमुकुट की न्यायिक शक्तियों में उसके विशेष अधिकार क्षमादान व दण्ड स्थगन की गणना की जा सकती है। राजमुकुट को यह विशेषाधिकार है कि वह ऐसे अपराधियों को क्षमा कर सकता है जो फौजदारी मामलों में दोषी होते हैं। यह कार्य गृह सचिव द्वारा किया जाता है। राजमुकुट फौजदारी मामलों में मृत्युदण्ड प्राप्त अपराधी तक को क्षमादान दे सकता है। दीवानी मामलों में राजमुकुट को ऐसा कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है।

(घ) धार्मिक शक्तियाँ (Religious Powers)

राजमुकुट को धार्मिक शक्तियाँ भी प्राप्त हैं। ब्रिटेन में एंग्लीकन (Anglican) और प्रेसबिटेरियन (Presbyterian) चर्च राज्य के अंग के रूप में जिसका नियंत्रण राजमुकुट व संसद् द्वारा होता है। इंग्लैण्ड चर्च का प्रमुख होने के नाते वह कैंटरबरी तथा यार्क के ऑर्च-बिशपों तथा अन्य चर्चों के पदाधिकारियों की नियुक्ति करता है। राजा की अनुमति से ही 'चर्च ऑफ इंग्लैण्ड की राष्ट्रीय सभा' (National Assembly of Church of England) की समस्त कार्यवाहियाँ सम्पादित होती हैं। चर्च के 'कनवोकेशन' केवल राजमुकुट ही बुला सकता है। कनवोकेशन द्वारा पारित नियमों के लिए राजमुकुट सर्वोच्च अधिकारी है। धार्मिक अदालतें (Ecclesiastical Courts) से अपीलें, प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति के पास आती हैं। स्कॉटलैण्ड के स्थापित चर्च अर्थात् प्रेसबिटेरियन चर्च के सम्बन्ध में राजमुकुट की शक्तियाँ महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

व्यक्तिगत रूप से राजा का यह धार्मिक दायित्व है कि वह किसी रोमन कैथोलिक से विवाह न करे क्योंकि वह एग्लीकन व प्रेसबिटेरियन दोनों ही धार्मिक व्यवस्थाओं का प्रमुख है। अपनी धार्मिक शक्तियों के कारण ही राजा 'धर्म-रक्षक' (Defender of the Faith) कहा जाता है।

(ङ) सम्मान की शक्तियाँ (Powers of Conferring Honours)

राजमुकुट को 'सम्मान का स्रोत' (Fountain of Honours) भी कहा जाता है। वही नागरिकों को राजनीतिक व सामाजिक सम्मान और उपाधियाँ प्रदान करता है। उदाहरणार्थ, 'पीयर' की उपाधि यदि राजनीतिक सम्मान है तो 'नाईट' (Knight) की उपाधि सामाजिक सम्मान है। प्रधानमन्त्री के परामर्श से ही सम्राट लोगों को विविध उपाधियों तथा अलकरणों से सुशोभित करता है।

राजमुकुट की शक्तियाँ किस प्रकार व्यवहार में लाई जाती हैं ?

उपर्युक्त शक्तियाँ और अधिकार वैधानिक दृष्टि से राजमुकुट में निहित हैं, किन्तु यथार्थ में उन सभी का प्रयोग मन्त्रिमण्डल, ससद तथा लोकसेवा के सदस्यों द्वारा किया जाता है। राजमुकुट की शक्तियों का प्रयोग राजा (या रानी) स्वयं नहीं करता है। राजा का कोई आदेश तब तक वैध नहीं समझा जाता जब तक कोई मन्त्री उस पर हस्ताक्षर न कर दे। सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि राजमुकुट जो भी करता है, चाहे परमाधिकारों का प्रयोग हो या ससदीय कानूनों द्वारा दी गई शक्तियों का, वह ब्रिटिश जनता के कार्यपालिका-प्रतिनिधि के रूप में करता है और ये सभी कार्य ससदीय नियन्त्रण के अधीन हैं। फाइनर का कथन है कि "यह विशाल गगनचुम्बी तथा वैभवपूर्ण अट्टालिका है जिसके अन्तर्गत राजनीतिक शक्ति का शून्य स्थान है।"[1] अर्थात् राजा स्वय कुछ भी कार्य नहीं करता है, उसके कार्य दूसरों द्वारा सम्पादित किये जाते हैं।

राजा की वास्तविक स्थिति, विशेषाधिकार और प्रभाव

(The Actual Position, Privileges and Influence of the Sovereign)

अथवा

सम्राट् राज्य करता है, शासन नहीं

(The King Reigns, but does not Govern)

राजमुकुट की शक्तियों के प्रसग में स्वभावत: यह प्रश्न उठता है कि राजमुकुट में निहित शक्तियों का प्रयोग राजा स्वयं किस हद तक कर सकता है ? अर्थात् राजमुकुट रूपी सस्था में राजा की वास्तविक स्थिति क्या है ? वह केवल मात्र एक 'स्वर्णिम शून्य' (Golden Zero) अथवा 'रबर की मुहर' (Rubber Stamp) है अथवा शासन में प्रभाव और विशेष स्थिति का भी उपभोग करता है ? इंग्लैण्ड में राजा की वास्तविक स्थिति को समझने के लिए निम्नलिखित बातों पर विचार करना होगा—

(1) 'राजा कोई गलती नहीं कर सकता' (The King can do no wrong)

1 *Finer, S.E.* : The Theory and Practice of Modern Governments.

(2) 'राजा राज्य करता है, शासन नहीं करता' (The King Reigns, but does not Govern)

(3) राजा के विशेषाधिकार और उन्मुक्तियाँ (Royal Privileges and Immunities)

(4) विभिन्न कारणोंवश राजा का व्यापक प्रभाव।

राजा कोई गलती नहीं कर सकता

इस कथन का प्रयोग इस अर्थ में किया जाता है कि किसी कार्य के लिए राजा को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। लॉवेल (Lowell) के शब्दों में—"संविधान के पुराने सिद्धान्त के अनुसार मन्त्री लोग राजा के सलाहकार होते थे। उनका काम था सलाह देना और राजा का काम था निर्णय लेना। अब स्थिति बिल्कुल विपरीत हो गई है। राजा से सलाह ली जाती है किन्तु निर्णय मन्त्री करते हैं।"[1] वास्तव में इस उक्ति के दो रूप हैं—कानूनी और राजनीतिक। कानूनी रूप से राजा अपने कार्यों के लिए कानून से ऊपर है क्योंकि वह स्वयं स्व-विवेक से कोई काम नहीं करता बल्कि मन्त्रियों के परामर्श से ही सब काम करता है। राजनीतिक दृष्टि से आशय है कि यदि राजा कोई राजनीतिक भूल करे या किसी अपराध का परामर्श दे तो भी उसके विरुद्ध कुछ नहीं किया जा सकता। उस भूल के लिए सम्बन्धित विभाग का मन्त्री ही उत्तरदायी ठहराया जाएगा और वह स्वयं को कानूनी या संवैधानिक अपराध के दोष से बचा नहीं सकेगा।

'राजा कोई गलती नहीं कर सकता' इस उक्ति को अधिक सरलता से इसके निम्नलिखित तीन अर्थों द्वारा समझा जा सकता है—

(i) **राजा कानून से ऊपर है**—इसका अर्थ है कि राजा विधि और न्याय का स्रोत है। उस पर किसी भी विधि के अन्तर्गत दोष आरोपित नहीं किया जा सकता। राजा पर न किसी न्यायालय में अभियोग लगाया जा सकता है और न किसी न्यायालय द्वारा उसे अपराधी घोषित किया जा सकता है यहाँ तक कि राजा किसी की हत्या भी कर दे तो भी ब्रिटिश विधान में ऐसा कोई नियम नहीं है जिसके द्वारा उस पर अभियोग चलाया जा सके।

(ii) **राजा दूसरों से भी गलत कार्य नहीं करा सकता**—यह अर्थ पहले अर्थ से ही निकलता है। जब राजा स्वयं कोई भूल नहीं कर सकता तो वह दूसरों से भी गलत कार्य नहीं करा सकता अथवा किसी भी व्यक्ति को गलती करने के लिए अधिकृत नहीं कर सकता। इस प्रकार यदि कोई मन्त्री कोई कानूनी या संवैधानिक अपराध करता है तो वह यह कहकर अपनी रक्षा नहीं कर सकता कि उसने यह काम राजा की आज्ञानुसार किया है। दूसरे शब्दों में, कोई भी अधिकारी अपने द्वारा किए गए किसी अवैधानिक कृत्य के लिए राजा की कानूनी उन्मुक्ति (Legal Immunity) या विशेषाधिकार की शरण नहीं ले सकता। कोई भी अपराधी यह बात कह कर अपनी सफाई नहीं दे सकता कि राजा के कहने से उसने यह गलती की है।

1 *Lowell*: Govt. and Parties in Continental Europe.

सन् 1678 में 'डेनबी-काड' (Danby's Case, 1678) में इस सिद्धान्त को ही प्रतिपादित किया गया था।

(iii) राजा के कार्य के लिए किसी दूसरे व्यक्ति को उत्तरदायी होना चाहिए—उपर्युक्त दूसरे अर्थ से ही तीसरा अर्थ यह निकलता है कि यदि राजा न स्वय भूल कर सकता है न दूसरे व्यक्ति से भूल करवा सकता है, तो किसी न किसी व्यक्ति को उसके गलत कार्य के लिए उत्तरदायी होना चाहिए। राजा की किसी भी भूल का उत्तरदायित्व स्वाभाविक रूप से उस मन्त्री पर होता है जिसके परामर्श से उसने यह भूल की। इस प्रकार यह कथन मन्त्रियों के उत्तरदायित्व की स्थापना करता है जो ब्रिटिश शासन-प्रणाली की आधारशिला है।

स्पष्ट है कि ब्रिटेन का राजा व्यक्तिगत रूप से कोई कार्य नहीं करता है। उसे सभी कार्य मन्त्रियों की सलाह पर करने पड़ते हैं और उसके सभी कार्यों के लिए मन्त्री ही उत्तरदायी होते हैं। इस सम्बन्ध में ग्लेडस्टन (Gladstone) ने सत्य ही कहा था कि "राजा के जीवन में उसके राज सिंहासन पर आसीन होने के समय से उसकी मृत्यु तक एक भी क्षण ऐसा नहीं आता जबकि उसके कार्यों के लिए कोई न कोई ससद् के प्रति उत्तरदायी न हो और राजा तब तक कोई कार्य नहीं कर सकता जब तक कि कोई मन्त्री उसके उत्तरदायित्व वहन करने को तैयार न हो।"

राजा राज्य करता है, शासन नहीं करता

ब्रिटिश राजा या सम्राट की स्थिति के बारे में यह बहुचर्चित शब्दावली प्रचलित है कि 'राजा राज्य करता है, शासन नहीं।' इसका अभिप्राय यह है कि वैधानिक दृष्टि से तो राजा का आज भी प्राचीन काल जैसा ही शक्तिशाली महत्व है लेकिन वास्तव में यह अब उन शक्तियों का प्रयोग नहीं करता है। प्रजातन्त्र के विकास के फलस्वरूप राजा आज केवल सवैधानिक अथवा नाममात्र का 'शासन प्रमुख' रह गया है। उसकी उक्त सभी वास्तविक शक्तियाँ 'राजमुकुट' नामक अमूर्त या काल्पनिक सस्था में निहित हो गई हैं। 'राजमुकुट' की किसी भी शक्ति का प्रयोग राजा या रानी व्यक्तिगत रूप से नहीं करते, बल्कि उसका प्रयोग उत्तरदायी मन्त्रियों द्वारा किया जाता है। इस प्रकार राजा के हाथों में शासन की कोई शक्ति नहीं है, अर्थात् राजा शासन नहीं करता, परन्तु राज्य करता है। राजा केवल नाममात्र का औपचारिक शासक है।

परन्तु 'राजा शासन नहीं करता' इससे यह नहीं समझना चाहिए कि राजा सर्वथा प्रभावहीन है और उसका कोई महत्व नहीं है। वास्तविक शक्तियाँ न होते हुए भी राजा शासन को काफी प्रभावित करता है। बेजहॉट के अनुसार उसे शासन के क्षेत्र में निम्नांकित तीन महत्त्वपूर्ण अधिकार प्राप्त हैं[1]—

(1) परामर्श देने का अधिकार (The Right to be Consulted)

(2) प्रोत्साहन देने का अधिकार (The Right to be Encourage)

(3) चेतावनी देने का अधिकार (The Right to Warn)

1 Bagehot The English Constitution

आज राजा शासन का आलोचक, परामर्शदाता और मित्र है। उसके परामर्श देने के अधिकार का आशय है कि वह मन्त्रियों के कार्यों की पूर्ण जानकारी रखे और उन्हें आवश्यकतानुसार उचित परामर्श दे। प्रोत्साहन देने के अधिकार का अर्थ है कि राजा यदि किसी नीति के लिए कल्याणप्रद समझे तो मन्त्रियों को उसे पूरा करने के लिए प्रोत्साहित करे। चेतावनी देने के अधिकार का मतलब है कि यदि मन्त्रियों द्वारा कोई गलत निर्णय लिया जाए या उनका कोई कार्य देश के लिए हानिप्रद हो तो राजा उन्हें चेतावनी देने और गलती दूर करने के उपाय भी सुझाए; किन्तु चेतावनी के अधिकार का यह अर्थ समझना भ्रामक होगा कि राजा मन्त्रियों का विरोध करने की क्षमता रखता है। राजा चेतावनी दे सकता है लेकिन मन्त्रियों को अधिकार है कि वे राजा की बातों को स्वीकार करें या अस्वीकार कर दें।

वास्तव में एक प्रभावशाली राजा अपने प्रयुक्त अधिकारों से प्रशासकीय मामलों और घटना-चक्र को प्रभावित करने में बहुत कुछ सफल हो सकता है। अपने इन अधिकारों के कारण वह केवल प्रतिमा-मात्र या 'स्वर्णिम शून्य' नहीं बन पाया है। ब्रिटेन का इतिहास साक्षी है कि विभिन्न अवसरों पर राजाओं और रानियों ने प्रशासनिक कार्यों में हस्तक्षेप करने की सरकार की नीति को बहुत प्रभावित किया है, पर यह सब कुछ वस्तुतः राजा के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है, उसकी औपचारिक शक्तियों पर नहीं।

राजा के विशेषाधिकार

संविधान शास्त्रियों के अनुसार राजा के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषाधिकार ये हैं—(1) प्रधानमन्त्री एवं अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति करना, (2) लोक सदन को भंग करना, (3) मन्त्रियों को बर्खास्त करना, (4) लोगों को पीयर की उपाधि प्रदान करना एवं विधेयकों पर अपनी स्वीकृति देना या न देना।

राजा के इन विशेषाधिकारों के बावजूद अन्तिम रूप से राजा एक संवैधानिक अध्यक्ष मात्र है, जो केवल राज्य करता है, शासन नहीं। अपने विशेषाधिकारों के प्रयोग में भी वह स्व-विवेक से कार्य करने के लिए पूर्ण रूप से स्वतन्त्र नहीं है और वह मन्त्रियों के परामर्शानुसार ही कार्य करता है।

राजा के प्रभाव के कारण या आधार

(Bases of the Influence of King)

राजा मृतप्रायः 'स्वर्णिम शून्य' अथवा 'मिट्टी की मूर्ति' मात्र नहीं है। उसका ब्रिटिश राजनीतिक व्यवस्था पर विशिष्ट प्रभाव और महत्त्व है। राजा के महत्त्व और प्रभाव के प्रमुख कारण निम्नलिखित है—

(i) व्यक्तित्व—राजा के प्रभाव का सबसे प्रमुख कारण उसका व्यक्तित्व है। यदि राजा का व्यक्तित्व प्रभावशाली है तो मन्त्रिगण स्वतः ही उसके परामर्श का अनुपालन करते हैं, उसे मन्त्रियों के हाथों की 'रबर की मुहर' बन कर रहना पड़ता है। लॉस्की का मत है कि "शासन पर राजा का प्रभाव व्यक्तित्व के अनुपात की समस्या है, प्रधानमन्त्री का व्यक्तित्व उच्च है तो सम्राट् का प्रभाव कम होगा।"[1]

1. *Laski, H.J.* : Parliamentary Govt. in England.

(ii) अनुभव—राजा के प्रभाव का दूसरा कारण उसका विस्तृत अनुभव होना है। राजा स्वयं जीवन-पर्यन्त शासन का प्रमुख रहता है जबकि मन्त्रिमण्डल निरन्तर बदलते रहते हैं। वह अपने राज्यकाल में अनेक मन्त्रिमण्डलों का उत्थान और पतन देखता है तथा परिवर्तित होते रहने वाले मन्त्रियों की तुलना में उसका प्रशासनिक अनुभव उत्तरोत्तर परिपक्व होता चला जाता है। उसकी स्थिति एक ऐसे अनुभवी शासन-कुशल व्यक्ति की-सी हो जाती है जो अपने विशाल अनुभव के बल पर मन्त्रिमण्डल को प्रभावित कर सकने की क्षमता रखता है।

(iii) संसदीय शासन की कार्य-विधि—ब्रिटिश शासन की कार्य-विधि भी राजा के प्रभाव की वृद्धि में विशेष सहायक है। राजा संसदीय शासन का अध्यक्ष होता है। अतः मन्त्रिमण्डल की कार्यवाहियाँ उसके समक्ष प्रस्तुत होती हैं, विदेश विभाग के महत्त्वपूर्ण पत्र-व्यवहार भी उसके पास प्रतिदिन पहुँचते हैं और संसदीय वाद-विवादों का सरकारी प्रतिवेदन व समाचार-पत्रों में प्रकाशित विवरण भी प्रतिदिन उसके सम्मुख प्रस्तुत किए जाते हैं। प्रधानमन्त्री का कर्त्तव्य है कि मन्त्रिमण्डलीय निर्णयों और मन्त्रियों द्वारा *सम्पादित किये जाने वाले कार्यों से राजा को निरन्तर अवगत कराता रहे।* राजा का स्वयं का कर्मचारी-वर्ग है और उसका एक मंत्री (Conscience Keeper) भी होता है, जिसका कार्य राजा को सभी राजनीतिक घटनाओं की सूचना देते रहना है। स्पष्ट है कि संसदीय शासन की इस कार्य-विधि के कारण राजा को सम्पूर्ण शासन के बारे में इतना ज्ञात हो जाता है जितना कि अलग-अलग मन्त्रियों को सम्भवतः नहीं होता। इसका परिणाम यह होता है कि आवश्यकता पड़ने पर वह मन्त्रिमण्डल के सदस्यों को उपयोगी परामर्श दे सकता है, मन्त्रिमण्डल के कार्य विशेष के दोष बता सकता है और मन्त्रिमण्डल की किसी त्रुटिपूर्ण नीति के सम्भावित परिणामों के बारे में चेतावनी दे सकता है।

(iv) निष्पक्षता—राजा के प्रभाव का एक महत्त्वपूर्ण कारण उसकी राजनीतिक निष्पक्षता है। उसकी इस निष्पक्षता के कारण जनता की राजा में अपूर्व भक्ति रहती है और राजा जिस बात को अच्छी मानता है, जनता के लिए भी वह बहुत माननीय हो जाती है। राजा की राजनीतिक तटस्थता के कारण ही सभी दलों के मन्त्रिमण्डल उसके परामर्श को समान रूप से सम्मान देते हैं। राजा शासन का प्रमुख होते हुए भी *राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ होता है इसीलिए विरोधी दल भी उसका (His Majesty's* Loyal Opposition) होता है।

(v) गौरवपूर्ण पद—राजा के प्रभाव का एक प्रमुख कारण उसके पद की महत्ता है। राजा की गौरवपूर्ण स्थिति उसके परामर्श और विचार को गुरुता प्रदान करती है। अतीत काल से चले आने वाले राजपद के प्रति सम्पूर्ण ब्रिटिश जनता में अनन्य भक्ति-भाव होता है। अतः कोई भी मन्त्रिमण्डल राजा के प्रति उपेक्षा-भाव प्रदर्शित करने का साहस नहीं करता। महान् राजपद का प्रभाव मन्त्रिगण पर अवश्य पड़ता है क्योंकि वे ब्रिटिश जनता के ही प्रतिनिधि होते हैं।

(vi) कोई विकल्प नहीं—राजा के प्रति ब्रिटिश जनता के सम्मान और भक्ति का एक अन्य कारण इस पद का कोई उचित विकल्प नहीं होना भी है। अगर इस पद को समाप्त कर दिया जाये तो इसका उचित विकल्प भी नजर नहीं आता है।

राजपद का औचित्य

(Justification of Monarchy)

आज जबकि विश्व में राजतन्त्र का अस्तित्व समाप्त हो रहा हो वहाँ ब्रिटेनवासी 'महारानी चिरंजीवी हो' के नारे लगाते हों, आश्चर्यजनक ही लगता है। ब्रिटेन मे आज भी राजपद ठोस भूमि पर खडा है। वास्तव में ब्रिटेन में राजपद का होना एक आश्चर्यजनक असंगति है। ब्रिटेन में राजतन्त्र अथवा राजपद के बने रहने के पीछे विविध कारणों का योगदान रहा है, जिन्हें निम्नांकित है—

(क) ऐतिहासिक कारण

ब्रिटेन में राजपद के अस्तित्व को कायम रखने में मुख्यतया निम्नांकित ऐतिहासिक कारणों ने योगदान दिया है—

(1) राजपद एक ऐतिहासिक वस्तु है—ब्रिटेन का राजपद लगभग साढे ग्यारह सौ वर्षों की एक ऐतिहासिक धरोहर है। अतः ब्रिटेनवासी जिस राजतन्त्र के सम्पर्क में शताब्दियों से रहते आए हैं, उनसे अलग होने की बात सोचना भी उन्हें अस्वाभाविक लगता है। स्वभाव से रूढ़िवादी और परम्परावादी ब्रिटिश जनता के लिए राजपद एक ऐतिहासिक परम्परा है, अतीत को वर्तमान से तथा वर्तमान को अतीत से जोड़ने वाली शृंखला है।

(2) राजपद का सराहनीय इतिहास—अंग्रेजों को राजपद से इसलिए भी प्यार है कि उसका अतीत बड़ा गौरवमय तथा देश के हितों का रक्षक रहा है। केवल स्टूअर्टकालीन राजाओं को छोड़कर अन्य सभी राजाओं ने व्यक्तिगत स्वार्थों की तुलना में राष्ट्रीय हितों की रक्षा की है। जार्ज पंचम के लिए अपनी महानता, कर्मठता और प्रजावत्सलता के कारण 'अपने प्रजाजनों के पिता' की संज्ञा दी जाती थी'। अंग्रेज लोग जब अपने महान सम्राटों के महान् कार्यों की गाथा पढ़ते हैं तो उनमें राजपद के प्रति एक स्वाभाविक प्रेम और सम्मान की भावना पैदा हो जाती है।

(3) राजतन्त्र का शान्तिपूर्ण जनतन्त्रीकरण—ब्रिटेन में राजपद इसलिए भी लोकप्रिय है कि यहाँ निरकुश राजतन्त्र ने लोकतन्त्र के उदय और प्रसार में बाधक बनने की चेष्टा नहीं की, वरन् अपना शान्तिपूर्ण जनतान्त्रीकरण हो जाने दिया है। वास्तव में लॉस्की ने ठीक ही लिखा है कि "ब्रिटेन में राजतन्त्र ने अपने को लोकतन्त्र के हाथ में ऐसे बेच दिया है मानो वह इसी का प्रतीक हो।"[1]

(ख) मनोवैज्ञानिक कारण

राजपद के बने रहने के पीछे मनोवैज्ञानिक कारण भी उत्तरदायी रहे हैं, जिनमें से महत्त्वपूर्ण निम्नानुसार हैं—

---

1. *Laski* : Parliamentory Govt. of England

(1) ब्रिटिश जाति का रूढ़िवादी स्वभाव—अंग्रेज स्वभाव से रूढ़िवादी और पुरातनता प्रिय है। वे अपनी प्राचीन पद्धतियों और संस्थाओं को, समयानुसार सुधारते हुए बनाये रखना अधिक पसन्द करते है। राजतन्त्र पूर्वत स्थापित है, किन्तु उसकी आत्मा का जनतान्त्रीकरण कर दिया गया है। इससे भी राजपद सुरक्षित रहा है।

(2) राजपद मे स्वाभाविक सम्मान की भावना—राजपद के अस्तित्व का दूसरा मनोवैज्ञानिक कारण उसमें एक अद्भुत सम्मान और आकर्षण का होना है। इसमें वह राजाशाही शान-शौकत है जो किसी अन्य शासन में नहीं हो सकती। जेनिंग्स के अनुसार "लोकतन्त्रात्मक शासन बेजान तर्कों और नीरस नीतियों तक ही सीमित नहीं है। उसमें कुछ रंगीनी, कुछ तड़क-भड़क होनी ही चाहिए और ऐसी स्पष्ट तड़क-भड़क और कहाँ देखने को मिलेगी जैसी कि शाही पोशाक (Royal Purple) में मिलती है।"[1] राजपद की महानता लोग बिना तर्क स्वीकार करते हैं उसके प्रति निष्ठा व सम्मान प्रदर्शित करने हेतु राजाओं को बड़ी धूमधाम से गद्दी पर बैठाते हैं।

(3) राजपद सुरक्षा का प्रतीक—अंग्रेजों की भावना के अनुसार राजा उनकी एकता, दृढ़ता और सुरक्षा का प्रतीक है। ब्रिटिश जनता के लिए राजा अथवा रानी एक महान् औषधि का कार्य करता है। अंग्रेज समझते हैं कि "यदि राजा बकिंघम राज-प्रसाद में बना रहे तो लोग और भी चैन की नींद सोते हैं। अंग्रेजों की दृष्टि से उनका राजतन्त्र प्रजातन्त्र का पोषक और रक्षक है।" इस भावना ने भी राजपद को सशक्त बनाया है।

(ग) राजनीतिक कारण

ब्रिटेन में राजपद निम्नलिखित सशक्त राजनीतिक कारणों के आधार पर भी अपना अस्तित्व बनाए हुए है—

(1) राजतन्त्र का लोकतन्त्रात्मक रूप ग्रहण करना—ब्रिटेन में निरकुश राजतन्त्र ने सवैधानिक राजतन्त्र का रूप ले लिया है। राजतन्त्र के जनतान्त्रिकरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया शान्तिपूर्ण और स्वाभाविक ढग से हुई है। इंग्लैण्ड के अधिकांश राजा जनमत की नब्ज को पहचानने में सिद्धहस्त रहे हैं। इसके अनुकूल ही उन्होंने अपने आपको परिवर्तित कर लिया, जिससे जनमत उनके विरुद्ध नहीं हुआ।

(2) उचित विकल्प नहीं—मुनरों का मत है कि "यदि राजतन्त्र हटाया गया तो उसके स्थान पर कोई अन्य संस्था पुनः स्थापित करनी पड़ेगी क्योंकि ससदीय शासन में दूसरी कार्यपालिका की आवश्यकता होती है तथा प्रधानमन्त्री किसी प्रजातन्त्रात्मक देश में सांकेतिक अध्यक्ष के रूप में कार्य नहीं करता। यदि राजतन्त्र अथवा राजा को समाप्त कर दिया गया तो उसके स्थान पर या तो अमेरिका की तरह जनता द्वारा निर्वाचित राष्ट्रपति या कुछ अन्य देशों की भाँति संसद् द्वारा चुना हुआ राष्ट्रपति लाने की आवश्यकता होगी। इस तरह निर्वाचित राष्ट्रपति को पदासीन करने पर स्वभावत उसे कुछ शक्तियाँ प्रदान करनी होंगी। राष्ट्रपति कभी भी अधिकारों की माँग करके शासन में गतिरोध पैदा कर सकेगा। अतः यह परम्परागत राजतन्त्र ही उत्तम है क्योंकि राजा

1 Jennings: The British Constitution.

निष्पक्ष रहता है और कभी अधिकारों की माँग भी नहीं करेगा तथा देश राष्ट्रपति के चुनावों के भारी सकट से बचा रहेगा ।"[1]

(3) राजनीतिक निष्पक्षता—राजपद के स्थिर रहने का दूसरा कारण राजा की निष्पक्षता है । राजा वशानुगत होने के कारण दलगत भावनाओं से ऊपर उठा होता है । वह सदैव पक्षपात-रहित होकर काम करता है । अपनी राजनीतिक तटस्थता के कारण वह एक आदर्श मध्यस्थ की भूमिका का निर्वाह करता है, अपनी प्रतिष्ठा व अपने प्रभाव द्वारा राजनीतिक मतभेदो को निबटाता है और विरोध की तीव्र भावना को कम करता है । वह अपनी राजनीतिक निष्पक्षता के आधार पर सत्तारुढ दल और विपक्ष के बीच सम्पर्क कडी का कार्य करता है । ऐसा करके वह 'राष्ट्रीय सहमति या सर्वानुमति' की दिशा में भी योगदान कर सकता है ।

(4) शासन कार्य का क्रम बनाए रखने में सहायक—राजपद शासन सचालन अथवा व्यवस्था बनाए रखने में बहुत सहायक है । एक मन्त्रिमण्डल के पद त्यागने और दूसरे मन्त्रिमण्डल के पद ग्रहण करने के बीच के समय में शासन का भार राजा ही वहन करता है । राजपद के कारण बिना भारी उथल-पुथल के ही सरकार में सरलता में परिवर्तन हो जाता है ।

(5) राष्ट्रीय एकता का प्रतीक—ब्रिटिश सम्राट या राजा को राष्ट्रीय एकता का प्रतीक माना जाता है । वह राष्ट्रीय एकता और अखडता को अक्षुण्ण रखने की दिशा मे महान् योगदान करता है ।

(घ) अन्तर्राष्ट्रीय कारण

राजपद के बने रहने के पीछे अन्तर्राष्ट्रीय कारण भी उत्तरदायी रहे हैं, जो निम्नानुसार है—

(1) राष्ट्रमण्डल के अस्तित्व को कायम रखने में योगदान—ब्रिटेन का राजा सुदूर बिखरे हुए राष्ट्रमण्डलीय देशों के बीच एकता का अपरिहार्य प्रतीक है । बाल्डविन (Baldwin) ने एक बार एडवर्ड अष्टम् (Edward VIII) से कहा था—"सम्राट् ही हमारे एकमात्र बचे-खुचे साम्राज्य की अन्तिम कडी है । यदि इस कडी को तोड़ दिया जाए तो स्वतन्त्र राष्ट्रमण्डलीय देशो के बीच कुछ भी सामान्य प्रतीक नहीं रहेगा ।" लॉस्की का कथन कि "सम्राट् राष्ट्रमण्डल का भौतिक आधार है और जब तक राष्ट्रमण्डलीय बन्धन विभिन्न देशों के लिए लाभदायक रहेगा, तब तक ही सम्राट् का एकता के प्रतीक के रूप में महत्त्व रहेगा ।"[2]

(2) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का विकास—राजपद का अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पहले साम्राज्य-विस्तार की दृष्टि से भी बडा महत्त्व था । राजतन्त्र ब्रिटिश साम्राज्य के लिए औचित्य प्रदान करता था, ब्रिटेनवासी सुदूर प्रदेशो को जीतने के लिए उत्साहित रहते थे और साम्राज्य के संपोषण में योग देते थे । अंग्रेज लोग 'सम्राट् के मुकुट मे उपनिवेशरूपी नया जवाहरात' (New Jewel for the Imperial Crown) तथा 'साम्राज्यिक परिवार में

1 *Munro, W.B* : The National Govt. of Britain.
2 *Laski* . Parliamentary Govt. in England.

नया सदस्य' (New Child for Imperial Family) जोड़ते हैं। ब्रिटेन का राजा विभिन्न देशों से उत्तम सम्बन्ध बनाए रखने में भी बड़ी सहायता पहुँचाता है। यदा-कदा की जाने वाली ब्रिटिश राजाओं (या रानियों) की मैत्री-यात्राएँ ब्रिटिश-प्रतिष्ठा में वृद्धि करती हैं।

(ङ) आर्थिक कारण

राजपद को अस्तित्व में रखने का आर्थिक औचित्य (Economic Justification) भी है। ब्रिटिश-शासन के लिए यह एक महँगी संस्था नहीं है। इसके प्रतिष्ठापन पर राष्ट्रीय बजट के एक प्रतिशत का बीसवाँ भाग भी खर्च नहीं होता है। लेकिन इससे राजनीतिक चेतना के रूप में बहुत अधिक प्राप्त हो जाता है। बार्कर (Barker) के कथनानुसार, "राजतन्त्र पर व्यय राजनीतिक भावना तथा विचार के रूप में लौट जाता है, जो समाज को दृढ़ बनाता है।" इतनी उपयोगी और ऊपर से कम खर्चीली संस्था को खोने में ब्रिटिश जाति को कोई लाभ दिखाई नहीं देता। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन का राजा ब्रिटिश समाज के लिए आय का एक स्रोत भी है। राज-परिवार से सम्बन्धित उत्सवों, फिल्मों आदि से काफी आमदनी होती है।

(च) सामाजिक कारण

ब्रिटिश राजा देश की सामाजिक संरचना का महत्त्वपूर्ण अंग है। इंग्लैण्ड का राजकीय परिवार नैतिकता, फैशन, कला, साहित्य आदि के क्षेत्र में आदर्श स्थापित करता है और उत्साहवर्द्धक कार्य करता है। लो (Low) के अनुसार—"किसी भी संगठन के साथ 'राजकीय' शब्द जुड़ जाने से सफलता अवश्यम्भावी हो जाती है।"[1] राजा का अवलम्बन मिल जाने से कोई भी सार्वजनिक कार्य लोकप्रिय बन जाता है। जहाँ तक कि दैनिक जीवन के फैशन पर भी राजपरिवार का बड़ा प्रभाव पड़ता है। राजपरिवार के सदस्यों द्वारा फैशन को प्रभावित किया जाता है।

प्रिन्स चार्ल्स और लेडी डायना के तलाक ने राज परिवार की छवि को लोगों में गिराया है, और इससे ब्रिटिश जनता की भावनाएँ भी आहत हुई हैं। इससे प्रिन्स चार्ल्स का इंग्लैण्ड के राजसिंहासन प्राप्त करने का दावा भी सन्देह के घेरे में आ गया है। इसके बावजूद इंग्लैण्ड में राज परिवार के प्रति श्रद्धा बनी हुई है। तभी तो वहाँ कहा जाता है कि "संसार में केवल पाँच राजा रहेंगे—चार राजा ताशों के और एक इंग्लैण्ड का राजा।"

क्या निर्वाचित राष्ट्रपति राजपद का विकल्प हो सकता है ?

(Can an Elected President Replace the King ?)

कुछ क्षेत्रों में कहा जाता है कि ब्रिटेन में वंशानुगत राजा के स्थान पर निर्वाचित राष्ट्रपति पद की व्यवस्था हो जानी चाहिए, लेकिन ब्रिटिश वातावरण और परिस्थितियों में एक निर्वाचित प्रधान राजपद का एक अच्छा विकल्प नहीं हो सकता। इसके मुख्य कारण निम्नांकित हैं—

(1) ब्रिटेन में राजपद का लोकतान्त्रीकरण हो चुका है और राजा की वास्तविक शक्तियों का उपभोग जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि करते हैं।

1 *Low, Sir Sydney* : The Govt. of England.

(2) राजपद को समाप्त करके यदि निर्वाचित प्रधान की व्यवस्था की गई तो ऐसा व्यक्ति दलगत आस्थाओं से ऊपर नहीं रह सकेगा । उसे सभी पक्षों की ओर से वह असीम प्रतिष्ठा नहीं मिल सकती जो राजा को प्राप्त है ।

(3) ब्रिटिश राजा न केवल ब्रिटेन बल्कि ब्रिटिश अधिराज्यों और राष्ट्रकुल देशों का भी प्रधान माना जाता है । एक निर्वाचित राष्ट्रपति को राष्ट्रकुल देशों की निष्ठा कभी प्राप्त नहीं हो सकती । यदि राजपद को समाप्त कर निर्वाचित प्रधान का पद स्थापित किया गया तो 'राष्ट्रमण्डल' का भी अन्त निश्चित है ।

(4) एक निर्वाचित राष्ट्रपति को पदासीन करने पर स्वभावतः उसे कुछ शक्तियाँ प्रदान करनी होंगी । यदि अमेरिका के समान शक्तिशाली राष्ट्रपति बनाया गया तो केबिनेट का अस्तित्व खतरे में पड़ेगा और संसद् की सर्वोच्चता को आघात पहुँचेगा । यह भी निश्चित है कि एक निर्वाचित राष्ट्रपति कभी भी अधिकारों की माँग कर शासन में गतिरोध पैदा कर सकता है ।

(5) एक निर्वाचित राष्ट्रपति को, अपना कार्यकाल सीमित होने के कारण, प्रशासनिक कार्यों का वह दीर्घकालीन अनुभव प्राप्त नहीं हो सकता जो राजा को होता है । उदाहरणार्थ, वर्तमान साम्राज्ञी एलिजाबेथ ही अपने शासन में अनेक प्रधानमन्त्रियों के शासनकाल का अनुभव प्राप्त कर चुकी है ।

(6) ब्रिटेन की जनता को राजपद से असीम प्यार है । वह एक निर्वाचित राष्ट्रपति को अपना वैसा प्यार कभी नहीं दे सकती ।

(7) निर्वाचित राष्ट्रपति के पद की व्यवस्था आर्थिक दृष्टि से भी विशेष लाभकारी सिद्ध नहीं होगी क्योंकि निर्वाचन पर जो अपार व्यय करना पडता है जो अमेरिकी राष्ट्रपति के निर्वाचन व्यय से स्पष्ट है । इसके अतिरिक्त राजपद अप्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश समाज के लिए आय का एक बडा स्त्रोत है जबकि निर्वाचित प्रधान आय का ऐसा प्रभावी स्त्रोत नहीं बन सकता ।

उपर्युक्त कारणों से ब्रिटिश जनता के मन में यह भावना बुरी तरह से घर कर गई है कि एक निर्वाचित राष्ट्रपति राजा का स्थानापन्न अथवा राजपद का विकल्प नहीं हो सकता । ऑग (Ogg) ने लिखा है कि "ब्रिटेन इसी प्रकार मुकुटधारी गणतन्त्र बना रहेगा और उसे बना भी रहना चाहिए ।"[1]

साराश में, वर्तमान समय में भी ब्रिटिश जनता की राजपद के प्रति असीम भक्ति तथा निष्ठा को देखते हुए राजपद का भविष्य सुरक्षित है ।

---

1 *Ogg & Zink* - Modern Foreign Governments.

5

प्रधानमन्त्री एवं मन्त्रिमण्डल
(The Prime Minister and Cabinet)

ब्रिटेन में संसदात्मक शासन प्रणाली का प्रचलन है। अत. व्यवहार में प्रधानमन्त्री एव मन्त्रिमण्डल द्वारा राजा की शक्तियों का प्रयोग किया जाता है। प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल को शासन व्यवस्था की धुरी माना जाता है। फलतः देश की राजनीतिक व्यवस्था में इन दोनों ही संस्थाओं का महत्व निर्विवाद है।

मन्त्रिमण्डल या कैबिनेट का अर्थ एवं महत्त्व
(Meaning and Importance of Cabinet)

ब्रिटेन में मन्त्रिमण्डल वह राजनीतिक समिति है जो प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग करती है। संसदीय व्यवस्था में लोक सदन के बहुमत दल के नेता को राष्ट्राध्यक्ष द्वारा (ब्रिटेन में सम्राट द्वारा और भारत में राष्ट्रपति द्वारा) प्रधान मन्त्री पद पर नियुक्त किया जाता है और प्रधानमन्त्री सिद्धान्ततः संसद्-सदस्यों तथा व्यवहार में सामान्यतया अपने ही राजनीतिक दल के संसद्-सदस्यों में से अपने सहयोगी मन्त्रियों का चुनाव करता है। प्रधानमन्त्री की सिफारिश पर ही सम्राट द्वारा मन्त्रियों की नियुक्ति की जाती है। मन्त्रिमण्डल (Cabinet) को परिभाषित करते हुए मुनरो ने लिखा है—"मन्त्रिमण्डल राजमुकुट के नाम पर प्रधानमन्त्री द्वारा नियुक्त किए हुए उन राजकीय परामर्शदाताओं की समिति को कहा जा सकता है, जिन्हें लोकसभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो।[1] सिडनी लो के अनुसार, "मन्त्रिमण्डल का आशय उस उत्तरदायी कार्यपालिका से है जो राष्ट्रीय कार्यों के सामान्य प्रशासन को पूर्णतः नियन्त्रित करती है, किन्तु शक्ति का प्रयोग लोकसभा के कठोर निरीक्षण में किया जाता है। जिसके प्रति वह अपनी समस्त भूलों और अपने समस्त कार्यों के लिए उत्तरदायी है।"[2]

मन्त्रिमण्डल ब्रिटिश शासन-व्यवस्था का हृदय व उसका महत्वपूर्ण केन्द्र है। वह शासन की सर्वोच्च नियन्त्रक शक्ति है। राजमुकुट (Crown) की वे शक्तियाँ जिनका औपचारिक उपभोग राजा करता है, सही अर्थ में मन्त्रिमण्डल द्वारा प्रयुक्त होती हैं। मन्त्रिमण्डल के सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित हैं, अत. मन्त्रिमण्डल अपनी शक्तियों का प्रयोग जनता के वास्तविक प्रतिनिधि के रूप में करता है। इस तरह से मन्त्रिमण्डल सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था को सुदृढ़ लोकतन्त्रात्मक आधार प्रदान करता है।

1 *Munro, W.B* The Government of Europe.
2 *Low, Sir Sydney* : The Govt. of England.

मन्त्रिमण्डल के बारे में रेमजे म्यूर ने कहा है, "यह राज्य रूपी जहाज को घुमाने वाला चालक चक्र है।"[1] एमरी के शब्दो में, "यह शासन का केन्द्रीय निर्देशक है।"[2] ग्लेडस्टन ने लिखा है कि "यह एक सूर्य-पिण्ड है जिसके चारो ओर अन्य पिण्ड घूमते हैं।"[3] इसी प्रकार जेनिंग्स के अनुसार, "यह समस्त ब्रिटिश शासन-प्रणाली को एकता प्रदान करता है।"[4] मन्त्रिमण्डल पर ही वस्तुतः समस्त राजकीय कार्यों का उत्तरदायित्व होता है। डायसी के अनुसार, "यद्यपि शासन का प्रत्येक कार्य राजमुकुट के नाम पर किया जाता है, परन्तु इग्लैण्ड की वास्तविक कार्यपालिका-शक्ति मन्त्रिमण्डल में ही निहित है।"[5]

मन्त्रिमण्डल के माध्यम से ही राजनीतिक संप्रभु और कानूनी संप्रभु के बीच सामजस्य हो पाता है। ब्रिटेन मे राजनीतिक प्रभुता वहाँ की जनता में निहित है और कानूनी प्रभुता राजा (वर्तमान) में। राजनीतिक प्रभुता की साकार अभिव्यक्ति जनता द्वारा निर्वाचित लोक सदन द्वारा की जाती है अर्थात् मन्त्रिमण्डल जनता की (जो कि राजनीतिक सप्रभु है) प्रतिनिधि समिति है और यही राजा को (जिसमें कानूनी प्रभुता निहित है) परामर्श देती है और उसे जनता की इच्छा से अवगत कराती है। इस प्रकार मन्त्रिमण्डल कानूनी सप्रभु के आदेशों और राजनीतिक सप्रभु की इच्छाओं से सामंजस्य स्थापित करता है तथा राजतन्त्र को लोकतन्त्र का रूप देता है। बेजहॉट ने मन्त्रिमण्डल के इसी महत्व पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि "यह एक सयोजक समिति है, एक हाइफन है जो जोड़ता है, एक बकसुआ है जो कार्यपालिका और व्यवस्थापिका को एक साथ बाँध देता है।"[6]

मन्त्रिमण्डल की शक्तियाँ और कार्य-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। यह राजमुकुट मे निहित कार्यपालिका-शक्तियो का सम्पादन करता है और व्यवस्थापन का दायित्व भी उसे ही निर्वाह करना पड़ता है। वही सम्पूर्ण राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार और नीति-निर्धारण करता है। साराशतः 'मन्त्रिमण्डल शासन-व्यवस्था का केन्द्रीय तथ्य और सविधान का प्रमुख गौरव' (Central fact and chief glory of the Constitution) है।

मन्त्रिमण्डल का उदय और विकास

(Origin and Growth of Cabinet)

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल दीर्घकालीन विकास का परिणाम है और परम्पराओं तथा अभिसमयों पर आधारित है। 1937 ई. तक 'मन्त्रिमण्डल' शब्द ससद् द्वारा पारित किसी

1 "The Cabinet, in short, is the steering wheel of the ship of the state." —*Ramsay Muir*
2 "The Central directing instrument of government" —*Amery*
3 "The solar orbit round which other bodies revolve" —*Gladstone*
4 "The Cabinet provides unity to the British System of Government." —*Jennings* : The British Constitution.
5 "While every act of state is done in the name of the Crown, the real executive Government of England is the Cabinet." —*Dicey* Introduction to the Study of Law of Constitution.
6. "It is combining committee, a hyphen which joins, a buckle which fastens the legislative part of the state with the executive part." —*Bagehot* The English Constitution

विधि में प्रयुक्त नहीं हुआ था। 1937 के 'क्राउन मन्त्री अधिनियम' (Ministers of the Crown Act, 1937) में इसका संयोगवश ही नाम आया है।

वर्तमान मन्त्रिमण्डल का बीजारोपण एग्लो-सेक्सन आर. नॉर्मन एंजियन काल की विटनेजमोट (Witenagemot) तथा क्यूरिया रेजिस (Curia Regis) में पाते हैं। नॉर्मन-एंजियन काल में विटनेजमोट का स्थान एक अन्य उच्चस्तरीय समिति 'मैग्नम कासिलियम' (Magnum Concilium) ने ले लिया। इसके साथ ही एक अन्तरिम समिति, 'क्यूरिया रेजिस' की भी स्थापना हुई। ये दोनों ही परिषदें राजा की परामर्शदात्री संस्थाएँ थीं।

शनै-शनै क्यूरिया रेजिस अथवा लघु परिषद् के कार्यों में वृद्धि होती गई। अतः इसमें से केवल एक लघु समिति की उत्पत्ति हुई जिसे प्रिवी परिषद् कहा गया। आगे इसकी सदस्य-संख्या के बढ़ जाने पर राजा कुछ प्रमुख और निजी सदस्यों से, महल के किसी छोटे कमरे में विचार-विमर्श करने लगा। इस समिति को समयोपरान्त 'केबिनेट' (मन्त्रिमण्डल) की संज्ञा दी गई। बेकन (Bacon) ने सबसे पहले 'केबिनेट' शब्द का प्रयोग किया। 1640 ई. में क्लैरेंडन (Clerendon) ने मन्त्रिमण्डल को प्रिवी परिषद् की एक छोटी समिति के रूप में स्वीकार किया जिससे राजा मन्त्रणा किया करता था, किन्तु 1660 ई. के पूर्व मन्त्रिमण्डल की कोई वास्तविक महत्ता स्थापित नहीं हुई थी।

चार्ल्स द्वितीय (1660-1685 ई.) का शासन-काल वस्तुतः मन्त्रिमण्डल का प्रारम्भिक काल था। उसने अपने 5 कृपापात्रों की एक अनौपचारिक समिति बनाई जिसे 'कबाल' (Cabal) नाम से सम्बोधित किया गया क्योंकि इसके पाँच सदस्यों के नाम C.A.B.A.L. अक्षरों (Clifford, Ashey, Buckingham, Arlington तथा Landerdale) से प्रारम्भ होते थे। 'कबाल' राजा के प्रति उत्तरदायी थी और उसकी निरंकुशता की समर्थक समिति थी, अतः वह जनता में अलोकप्रिय रही। संसद् इस बात के लिए लड़ती रही कि राजा के मन्त्री संसद् के विश्वासपात्र होने चाहिए। अन्त में 1688 ई. की महान् क्रान्ति ने यह सुनिश्चित कर दिया कि मन्त्री संसद् के विश्वास-पात्र रहेंगे।

1695 ई. में विलियम तृतीय ने लोकसभा के बहुमत-दल में से अपने मन्त्री चुनना प्रारम्भ कर एक नई परम्परा को जन्म दिया। उस समय ह्विग दल (Whigs) का बहुमत था। अतः इसी दल का मन्त्रिमण्डल स्थापित हुआ। इस घटना के पश्चात् से ही लोकसभा के बहुमत दल द्वारा मन्त्रिमण्डल के निर्माण की परम्परा चल पड़ी।

मन्त्रिमण्डल का वास्तविक विकास हैनोवरकाल में हुआ जबकि राजाओं ने मन्त्रिमण्डल की सभाओं में स्वयं उपस्थित होना बन्द कर दिया। ऐसा संयोग सर्वप्रथम 1714 ई. में हुआ जब जॉर्ज प्रथम ने अंग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ होने के कारण, मन्त्रिमण्डल की बैठकों में उपस्थित होना बन्द कर दिया और मन्त्रिमण्डल के ही एक प्रमुख सदस्य रॉबर्ट वालपोल को आदेश दिया कि वह उसके स्थान पर मन्त्रिमण्डल का कार्य संचालन करे। अब वालपोल ही मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष बन गया और अन्य मन्त्री उसके नेतृत्व में कार्य करने लगे। मन्त्रिमण्डल के निर्णयों को राजा तक पहुँचाने और

राजा के विचारों से मन्त्रिमण्डल को अवगत कराने का कार्य वालपोल ही करने लगा। उसकी इस नवीन भूमिका से प्रधानमन्त्री पद का उदय हुआ। वालपोल ने ही सर्वप्रथम अपना कार्यालय डाउनिंग स्ट्रीट के मकान नं. 10 में स्थापित किया जो आज तक प्रधानमन्त्रियों का सरकारी निवास स्थान बना हुआ है।

उसके 18वीं शताब्दी में मन्त्रिमण्डलात्मक पद्धति की अन्य विशेषताओं का विकास हुआ और 19वीं शताब्दी में मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली का सुनिश्चित स्वरूप विकसित हुआ। मन्त्रिमण्डल के सदस्य ब्रिटिश संसद् के सदस्य हों, सदस्य एक ही राजनीतिक दल के लिए जाएँ, संसद् में मन्त्रियों का बहुमत हो, मन्त्री लोकसभा के प्रति उत्तरदायी हों, तथा सभी प्रधानमन्त्री के अधीन हों इत्यादि का विकास हुआ।

20वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही मन्त्रिमण्डल की शक्ति में भारी वृद्धि हुई और उसकी अन्य विशेषताओं का विकास हुआ। राष्ट्रीय संकट-काल में संयुक्त-मन्त्रिमण्डल बनाए जाने की परम्परा भी विकसित हुई। आज राजा या रानी तो केवल छाया मात्र हैं तथा वास्तविक शक्ति मन्त्रिमण्डल के हाथ में है। इस प्रकार ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल सतत विकास का परिणाम है।

मन्त्रिमण्डल की विशेषताएँ
(Characteristics of Cabinet)

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(1) राजा का पृथकत्व (Separation of the King)

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की प्रथम आधारभूत विशेषता इससे राजा का पृथक् होना है। राजा कार्यपालिका का अभिन्न अंग होते हुए भी न तो मन्त्रिमण्डलीय बैठकों की अध्यक्षता करता है और न ही उनकी किसी कार्यवाही में भाग लेता है। किन्तु इसका आशय यह नहीं है कि राजा मन्त्रिमण्डल को प्रभावित कर ही नहीं सकता। उसके और मन्त्रिमण्डल के सम्बन्धों की व्यवस्था ऐसी है कि मन्त्रिमण्डल के कार्यकलापों पर उसके व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ता है। राजा किसी भी राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय समस्या पर प्रधानमन्त्री से सूचना प्राप्त करने, अपनी सम्मति देने और उस पर पुनर्विचार करने के लिए कहने का अधिकार रखता है। यदि सभी सूचनाएँ उसे ठीक ढंग से प्राप्त होती रहें तो वह लॉस्की के शब्दों में, "नीति-निर्धारण में पर्याप्त योगदान दे सकता है।"[1]

(2) प्रधानमन्त्री का नेतृत्व (Leadership of Prime Minister)

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की दूसरी विशेषता प्रधानमन्त्री का नेतृत्व है, जो सामान्यतः लोकसभा में बहुमत दल का नेता होता है। सभी मन्त्री एक दल (Team) की भाँति मान्य नेता (Captain) प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में कार्य करते हैं। यद्यपि सभी समानपदी होते हैं, उनके अधिकार भी समान होते हैं फिर भी प्रधानमन्त्री की स्थिति विशिष्ट होती है। उसे 'समकक्षों में प्रथम' (First Among Equals) माना जाता है। वह शासन की

1. *Laski* : Parliamentary Government in England, p 418

एकता का प्रतीक होता है और अन्य मन्त्री उसकी बात का सम्मान करते हैं। अन्य मन्त्री अपनी स्थिति के लिए उसके प्रति कृतज्ञ होते हैं क्योंकि वे उसकी सिफारिश पर ही नियुक्त किए जाते हैं। वह आवश्यकता समझने पर अपने मन्त्रिमण्डल में परिवर्तन कर सकता है। विरोधी मन्त्री को या तो प्रधानमन्त्री के सामने झुकना पड़ता है या मन्त्रिमण्डल से हटना पड़ता है। प्रधानमन्त्री का त्याग-पत्र सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल का त्याग-पत्र समझा जाता है। प्रधानमन्त्री के नेतृत्व से सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का आभास होता है। वह मन्त्रियों के पारस्परिक मतभेदों को दूर कर उनमें हीन भावना का संचार करता है। उसके नेतृत्व में मन्त्रिगण मन्त्रिमण्डल की नीतियों तथा निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिए तत्पर रहते हैं। इस तरह प्रधानमन्त्री को मन्त्रिमण्डल का 'कप्तान' अथवा 'नायक' समझा जाता है।

(3) कार्यपालिका और व्यवस्थापिका का निकटतम सम्बन्ध
(Close Contact of Executive and Legislature)

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की तीसरी महत्वपूर्ण विशेषता संसद् के साथ उसका घनिष्ठ सम्बन्ध होना है। मन्त्रिमण्डल का निर्माण संसद् सदस्यों में से ही होता है। यदि किसी गैर-संसद् सदस्य को मन्त्री बनाया जाता है तो उसे छः माह में संसद् की सदस्यता प्राप्त करनी होती है अन्यथा मन्त्रिपद से वंचित होना पड़ता है। अपनी दोहरी स्थिति के कारण मन्त्री कार्यपालिका और संसदीय दोनों ही कार्यों का निर्वाह करते हैं। वे संसदीय वाद-विवादों में भाग लेते हैं, व्यवस्थापन कार्य करते हैं और संसद् में मत लिए जाने के समय मतदान करते हैं। संसद् का अधिकांश व्यवस्थापन-कार्य मन्त्रिमण्डल के सदस्यों द्वारा ही सम्पादित किया जाता है। लॉस्की के अनुसार, "मन्त्रिमण्डल शासन की अधिशासी और विधायी शाखाओं को संयुक्त करने का साधन है।"[1]

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल पर संसद विभिन्न प्रकार से नियन्त्रण रखती है। इनमें प्रश्नोत्तर, निन्दा प्रस्ताव, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, कामरोको प्रस्ताव, कटौती प्रस्ताव, अविश्वास प्रस्ताव तथा संसदीय समितियाँ प्रमुख हैं। संसद् के विश्वासपर्यन्त तक ही मन्त्रिमण्डल अपना अस्तित्व बनाये रखता है। यदि लोकसदन मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित कर दे तो उसे अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ता है।

(4) मन्त्रिमण्डल को लोकसभा के विघटन का अधिकार
(Cabinet's Right of Dissolving Parliament)

यद्यपि मन्त्रिमण्डल संसद् के प्रति उत्तरदायी है, तथापि एक स्वेच्छाचारी संसद् पर नियन्त्रण रखने के लिए मन्त्रिमण्डल के पास भी शक्तिशाली हथियार है। वह लोकसदन का विश्वास खोने पर त्यागपत्र दे सकता है और नए निर्वाचन कराने का निर्णय कर सकता है।

प्रधानमन्त्री राजा से लोकसभा को भंग कराने की सिफारिश कर सकता है। प्रधानमन्त्री के हाथ में यह एक 'अमोघ हथियार' होता है, जिसका सहारा लेकर वह लोकसदन के सदस्यों पर अपना नियन्त्रण और वर्चस्व सिद्ध कर सकता है।

1. लास्की : वही, पृष्ठ 420

(5) त्रिमुखी उत्तरदायी (Threefold Responsibilities)

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल को तीन प्रकार के उत्तरदायित्वों वैधानिक, राजनीतिक और अन्त. मन्त्रिमण्डलीय का निर्वाह करना पड़ता है।

वैधानिक उत्तरदायित्व का आशय यह है कि राजमुकुट के नाम से प्रसारित किए जाने वाले आदेशों का उत्तरदायित्व किसी न किसी मन्त्री पर होता है और उसके परिणामो के लिए भी वही उत्तरदायी होता है। ऐसे प्रत्येक आदेश पर किसी न किसी मन्त्री के हस्ताक्षर होते हैं। अन्तिम रूप से यह निर्णय लेना मन्त्रिमण्डल पर ही निर्भर करता है कि वह राजा के किसी परामर्श को स्वीकार करता है अथवा नहीं। संसदीय शासन व्यवस्था में तो राजा केवल ध्वजमात्र या प्रतीकात्मक शासक होता है और शासन-सचालन का वास्तविक उत्तरदायित्व मन्त्रिमण्डल का माना जाता है।

राजनीतिक उत्तरदायित्व का आशय यह है कि प्रत्येक मन्त्री अपने कार्यों के लिए लोकसदन के प्रति उत्तरदायी होता है। मन्त्रिमण्डल लोकसदन का विश्वासपात्र बने रहने तक ही पदासीन रह सकता है। यदि ससद् चाहे तो केवल व्यक्तिगत मन्त्री को त्याग-पत्र देने के लिए विवश कर सकती है और चाहे तो सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल को हटा सकती है। 1911 तक ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ससद् के दोनों सदनों के प्रति उत्तरदायी होता था, परन्तु 1911 व 1949 के संसदीय कानून के पारित होने के बाद से लॉर्ड सभा की शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गई। मन्त्रिमण्डल का दायित्व केवल लोकसदन के प्रति ही रह गया। इस सन्दर्भ में यह स्मरणीय है कि व्यावहारिक रूप से आज मन्त्रिमण्डल लोकसदन पर प्रभुत्व रखता है और अपने बहुमत के आधार पर उस पर वर्चस्व रखता है। अन्त में मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व से आशय यह है कि मन्त्रिमण्डल के सदस्य परस्पर एक-दूसरे के प्रति भी उत्तरदायी हैं।

(6) मन्त्रियों का सामूहिक एवं व्यक्तिगत उत्तरदायित्व
(Collective and Individual Responsibility of Ministers)

मन्त्रिमण्डल का सामूहिक उत्तरदायित्व आधुनिक शासन पद्धति को ब्रिटेन की मुख्य देन है। सामूहिक उत्तरदायित्व का आशय यह है कि मन्त्री केवल अपने कार्यों के लिए लोकसदन के प्रति उत्तरदायी नहीं होते हैं अपितु उन पर अपने सहयोगियों के उत्तरदायित्वों का भार रहता है। एक मन्त्री की आलोचना पूरे मन्त्रिमण्डल की आलोचना समझी जाती है और एक मन्त्री की प्रशंसा पूरे मन्त्रिमण्डल की प्रशंसा।

मन्त्रिमण्डलीय सामूहिक उत्तरदायित्व का सार है—परस्पर निर्भरता (विश्वास) अथवा सम्मिलित मोर्चा (Solidarity or Common Front)। मोर्ले के शब्दों में "मन्त्रिमण्डल के सब मन्त्री साथ-साथ ही डूबते हैं और साथ-साथ तैरते हैं।"[1]

मन्त्रिमण्डल का सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का कोई भी मन्त्री दुरुपयोग नहीं कर सकता है। यह नहीं हो सकता कि एक मन्त्री अपनी इच्छा से मनमाना काम

1. "They swim and sink together." —*Morley*

करके सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल को उसके लिए उत्तरदायी बना दे। ऐसे कार्य के लिए वह स्वयं दण्डित होगा न कि सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल।

सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त केवल मन्त्रिमण्डलीय सदस्यों पर ही नहीं, वरन् राज्य मन्त्रियों, उपमन्त्रियों, संसदीय सचिवों, जूनियर लॉर्डों तथा राजनीतिक कार्यपालिका के सभी सदस्यों पर लागू होता है।

(7) गोपनीयता (Secrecy)

मन्त्रिमण्डलीय शासन-प्रणाली की एक अन्य विशेषता गोपनीयता है। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल में विचार-विमर्श गुप्त रीति से होता है अर्थात् इसकी सम्पूर्ण कार्यवाही पर गोपनीयता का आवरण पड़ा रहता है। सार्वजनिक रूप से मन्त्रिगण केवल उन्हीं बातों को प्रकट करते हैं जो मन्त्रिमण्डल के निर्णयों के अनुकूल हों।

मन्त्रिमण्डल की गोपनीयता को विधि और अभिसमयों ने भी सरक्षण प्रदान किया है। प्रत्येक मन्त्रिमण्डलीय मन्त्री को प्रिवी परिषद् के सम्मुख यह शपथ लेनी पड़ती है कि वह मन्त्रिमण्डल के भेद किसी पर प्रकट नहीं करेगा। इसके लिए "शासन गोपनीयता अधिनियम, 1920 (Official Secrets Act, 1920) यह व्यवस्था करता है कि सरकार प्रलेखों अथवा किसी गोपनीय सूचना को अवैध व्यक्ति अथवा व्यक्तियों पर प्रकट करना दण्डनीय अपराध है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रथम महायुद्ध के पूर्व तक मन्त्रिमण्डलीय कार्यवाहियों का कोई लेखा (Record) भी नहीं रखा जाता था। सन् 1917 ई. से मन्त्रिमण्डल के निर्णयों का सक्षिप्त लेखा-जोखा रखा जाने लगा। मन्त्रिमण्डल का यह लेखा अत्यन्त गोपनीय रहता है और उसकी औपचारिक रिपोर्ट प्रकाशित नहीं की जाती है।

(8) एकता व एकरूपता (Unity and Uniformity)

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की विशेषता यह है कि उसमें एकता का भाव होता है जो मन्त्रिमण्डल को एक सूत्र में बाँधे रखता है। मन्त्रिगण प्रायः एक ही राजनीतिक दल के सदस्य होते हैं जिसके कारण उनमें राजनीतिक एकता और एकरूपता कायम रहती है जो सामूहिक उत्तरदायित्व को सम्भव बनाती है। इससे मन्त्रिमण्डल के कार्य-सचालन में एकरूपता बनी रहती है।

मन्त्रिमण्डल का गठन

(Composition or Formation of the Cabinet)

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल का निर्माण राजा (अथवा रानी) करता है परन्तु वह अपनी इच्छा से इसका निर्माण नहीं कर सकता है। सर्वप्रथम राजा प्रधानमन्त्री की नियुक्ति करता है और तदुपरान्त परामर्श पर अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति करता है। प्रधानमन्त्री लोकसभा के बहुमत प्राप्त दल का नेता होता है। यदि लोकसभा में किसी भी दल का बहुमत नहीं होता है तो इस पद पर उस व्यक्ति को आसीन किया जाता है जो संयुक्त मन्त्रिमण्डल या मिलाजुला मन्त्रिमण्डल बनाने में सक्षम हो।

प्रत्येक प्रधानमन्त्री अपने मत्रियों की सूची तैयार कर राजा के सम्मुख प्रस्तुत करता है और राजा आवश्यक परामर्श आदि देने के बाद (यदि वह आवश्यक समझे तो)

इस सूची को स्वीकार कर लेता है। मन्त्रियों के चयन में कुछ प्रचलित अभिसमयों, नियमों और व्यवहार की दृष्टि से प्रधानमन्त्री को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना पड़ता है—

(i) मन्त्रियों का चयन अपने ही दल के सदस्यों में से करे।

(ii) सभी क्षेत्रीय हितों की तुष्टि करने का प्रयास करे।

(iii) मन्त्रियों का चयन संसद् के दोनों सदनों में से करे। वर्तमान नियम यह है कि कम से कम तीन मन्त्री लॉर्ड सभा से अवश्य लिये जाने चाहिए। लॉर्ड चांसलर के अतिरिक्त कुछ छोटे मन्त्री भी लॉर्ड सभा से लिए जाते हैं, क्योंकि परम्परा के अनुसार कोई मंत्री केवल उसी सदन में भाषण दे सकता है, जिसका वह सदस्य हो। कुछ मन्त्री स्वयं अपने पद के कारण मन्त्रिमण्डल के सदस्य बन जाते हैं; जैसे—चांसलर ऑफ दी एक्सचेकर, लॉर्ड प्रिवी सील आदि।

मन्त्रियों के चयन में प्रधानमन्त्री दल के प्रभावशाली सदस्यों की उपेक्षा नहीं कर पाता है। प्रत्येक मन्त्री को संसद् का सदस्य होना अनिवार्य है। यदि विशेष कारणवश किसी ऐसे व्यक्ति को मन्त्रिपद पर आसीन कर दिया जाए जो सदस्य न हो तो यह आवश्यक है कि वह छः मास के अन्दर संसद् का सदस्य बन जाए।

मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं है। आरम्भ से इसमें 7-8 सदस्य होते हैं और अब इसकी संख्या 18-20 या इससे भी अधिक होती है। 1937 के 'मिनिस्टर्स ऑफ क्राउन एक्ट' (Ministers of Crown Act) में मन्त्रिमण्डल के पदों का स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया। किसी भी ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल में प्राय. निम्नलिखित मन्त्री तो अवश्य सम्मिलित किये जाते हैं—

1. प्रधानमन्त्री तथा राजकोष का प्रथम लॉर्ड (Prime Minister and First Lord of the Treasury)
2. वित्त मन्त्री या चान्सलर ऑफ एक्सचेकर (Chancellor of Exchequer)
3. गृह मन्त्री (Secretary of State for Home Department)
4. विदेश और राष्ट्रमण्डल मन्त्री (Secretary of the State for Foreign and Commonwealth Affairs)
5. लॉर्ड चांसलर (Lord Chancellor)
6. लॉर्ड प्रैसीडेन्ट ऑफ दी काउन्सिल (Lord President of the Council)
7. रक्षा मन्त्री (Secretary of State for Defence)
8. शिक्षा मन्त्री (Secretary of State for Education and Science)
9. स्कॉटलैण्ड मन्त्री (Secretary of State for Scotland)
10. लॉर्ड प्रिवी सील (Lord Privy Seal)
11. पोस्ट मास्टर जनरल (Post Master General)
12. यातायात विभाग का मन्त्री (Minister for Transport)
13. श्रम मन्त्री (Minister of Labour)

मन्त्रिमण्डल की कार्य-प्रणाली
(The Working of the Cabinet)

मन्त्रिमण्डल की बैठकें एकान्त में होती हैं और उनकी कार्यवाही पूर्णतः गुप्त रखी जाती है। सरकारी गोपनीयता अधिनियम (Official Secrets Act) के अन्तर्गत मन्त्रिमण्डल और राज्य के गुप्त-पत्रों का प्रकाशन करना दण्डनीय है। त्याग-पत्र देते समय भी मन्त्री राजा की अनुमति से ही त्याग-पत्र के कारणों पर प्रकाश डाल सकता है। शान्तिकाल में मन्त्रिमण्डल की प्रति सप्ताह सामान्यतः दो बैठकें होती हैं, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर प्रधानमन्त्री इनकी बैठक अपनी सुविधानुसार भी बुला सकता है। मन्त्रिमण्डलीय बैठकों में शासन के नीति सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर निर्णय किया जाता है। किसी प्रश्न या मामले की जाँच करने के लिए मन्त्रिमण्डल शाही आयोग (Royal Commission) की भी नियुक्ति कर सकता है। मन्त्रिमण्डल का बहुत-सा कार्य विभिन्न समितियों द्वारा होता है। इन समितियों को दो वर्गों—स्थायी समितियाँ (Standing Committees) और तदर्थ समितियाँ (Adhoc Committees) में विभाजित किया जा सकता है। मन्त्रिमण्डल की बैठकों में प्रायः उन मन्त्रियों को (जो मन्त्रिमण्डल के सदस्य नहीं होते) भी आमन्त्रित किया जाता है। विभागों से सम्बन्धित मामलों पर मन्त्रिमण्डल में विचार होता है। ये मन्त्री समितियों के सदस्य हो सकते हैं।

मन्त्रिमण्डल की बैठकों की कार्यवाही का विस्तृत विवरण नहीं रखा जाता, केवल प्रमुख तर्क और अन्तिम निर्णय ही लिखे जाते हैं। कार्यवाही का प्रसारण भी बहुत सीमित रहता है। इस कार्यवाही का उत्तरदायित्व मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय पर होता है।

मन्त्रिमण्डल के कुछ असाधारण रूप
(Some Uncommon Forms of the Cabinet)

समय और आवश्यकतानुसार मन्त्रिमण्डल के अनेक रूप हो सकते हैं, जिनका विवेचन निम्नानुसार किया जा सकता है—

(क) छाया मन्त्रिमण्डल (Shadow Cabinet)—ब्रिटेन में राजा को इतना दल-निरपेक्ष और पवित्र माना जाता है कि उसके अन्तर्गत शासक-दल और विरोधी-दल दोनों को समान महत्व प्राप्त होता है और इसीलिए विरोधी दल को 'सम्राट या साम्राज्ञी का विरोधी दल' (His/Her Majesty's Opposition) कहा जाता है। शासक-दल के समान ही विरोधी दल भी अपना मन्त्रिमण्डल गठित करता है जिसमें शासक-दल के मन्त्रियों की तरह विरोधी दल के विभिन्न सदस्य अलग-अलग विभागों के अध्यक्ष होते हैं। इसे ही 'छाया मन्त्रिमण्डल' की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार के संगठन के दो विशेष महत्व हैं—(i) विरोधी दल भली प्रकार संगठित रहता है, और (ii) विरोधी-दल सत्ता सम्भालने के लिए सदैव तैयार रहता है। 1937 के 'मिनिस्टर्स ऑफ दि क्राउन एक्ट' द्वारा छाया मन्त्रिमण्डल को संवैधानिक स्वीकृति प्रदान की गई।

(ख) संयुक्त मंत्रिमण्डल (Coalition Cabinet)—लोकसभा में किसी दल विशेष को बहुमत प्राप्त न होने पर कई दल मिलकर सरकार का गठन करते हैं, जिसे सयुक्त मन्त्रिमण्डल की संज्ञा दी जाती है। असाधारण सकटकालीन परिस्थितियों में देश की एकता बनाए रखने के लिए भी विभिन्न दल मिलकर मन्त्रिमण्डल का निर्माण करते हैं। वैसे ब्रिटेन में सयुक्त मन्त्रिमण्डल अधिक लोकप्रिय नहीं रहे। 1931 में आर्थिक सकट तथा 1940-41 में महायुद्ध के समय ब्रिटेन में संयुक्त मन्त्रिमण्डलों की स्थापना हुई थी। ये मन्त्रिमण्डल दीर्घजीवी नहीं होते हैं।

(ग) युद्ध-मन्त्रिमण्डल (War-Cabinet)—विशेष संकट अथवा युद्ध के समय अतिशीघ्र निर्णय लेने की आवश्यकता होती है। अत. शासन की सर्वोच्च नीति के निर्धारण और शासन के निर्देशन के लिए कुछ मन्त्रियों की एक समिति बना दी जाती है। ये न्त्री किसी विभाग के अध्यक्ष नहीं रहते बल्कि अपना पूरा समय समस्याओं के समाधान पर लगाते हैं। लगभग 5-6 मन्त्रियों की इस समिति को 'युद्ध-मन्त्रिमण्डल' की सज्ञा दी जाती है और युद्ध या संकट की समाप्ति के साथ ही यह मन्त्रिमण्डल समाप्त हो जाता है। 1916 में लॉयड जॉर्ज एव 1940 में चर्चिल ने इस प्रकार के 'युद्ध-मन्त्रिमण्डल' बनाए थे।

(घ) आन्तरिक मन्त्रिमण्डल (Inner Cabinet)—प्रधानमन्त्री के लिए प्रत्येक समय अपने सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल से सलाह लेना सम्भव नहीं होता, अतः यह किसी भी समस्या को मन्त्रिमण्डल के सामने रखने से पहले प्रायः 4-5 प्रमुख सदस्यों से सलाह लेता है। इन प्रमुख सदस्यों को 'आन्तरिक मन्त्रिमण्डल' की सज्ञा दी जाती है।

मन्त्रिमण्डल के कार्य और अधिकार
(Functions and Rights of the Cabinet)

राजपद के सब अधिकारों, शक्तियों और कर्तव्यों का प्रयोग राजा के नाम से ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ही करता है, जिसका आधार कानूनी न होकर परम्परागत है। कानूनी दृष्टि से मन्त्रिमण्डल राजा की परामर्शदात्री समिति मात्र है जबकि परम्परा अथवा अभिसमयों की दृष्टि से यह वास्तविक कार्यपालिका के रूप में कार्य करता है।

मन्त्रिमण्डल के अधिकारों और कार्यों को हम निम्नांकित तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं—

(1) व्यवस्थापन सम्बन्धी अधिकार एवं कार्य
(Rights and Functions Regarding Legislature)

कानून बनाने के सम्बन्ध में समस्त शक्तियाँ संसद् को ही प्राप्त हैं, किन्तु इस सम्बन्ध में संसद् पर मन्त्रिमण्डल ही नियन्त्रण रखता है। मन्त्रिमण्डल कानून-निर्माण में पहल करता है और उसका स्वरूप निर्धारित एव नियन्त्रित करता है। मन्त्रिमण्डल सारे कार्यों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है। विधेयक पेश करना, उसकी व्याख्या करना और उसे पारित कराना मन्त्रिमण्डल का ही कार्य है। विधेयक यद्यपि लॉर्ड-सभा में भी पेश होते हैं और वे सदस्य भी जो मन्त्री नहीं हैं, विधेयक प्रस्तुत कर सकते हैं, परन्तु

अधिकाँश और महत्वपूर्ण विधेयक मन्त्रियों द्वारा ही प्रस्तुत किए जाते हैं। वित्त-विधेयक मन्त्रिमण्डल द्वारा ही लोकसभा में प्रस्तुत किए जाते है। जिस विधेयक को मन्त्रिमण्डल का समर्थन प्राप्त नहीं होता उसके कानून बनने की सम्भावना बहुमत कम अथवा नहीं के बराबर होती है।

मन्त्रिमण्डल को ही यह निर्धारित करने का अधिकार है कि संसद् की बैठक कब बुलाई जाए, कब उसका समापन और विघटन किया जाए। उस भाषण को भी मन्त्रिमण्डल ही तैयार करता है जो राजा संसद् का उद्घाटन करते समय देता है और जिसमें आगामी सत्र के लिए शासन की सामान्य नीति व उसके कार्यक्रम आदि का सांकेतिक विवरण होता है। संसद् के सत्र के कार्यक्रमों का निर्धारण भी मन्त्रिमण्डल ही करता है।

(2) कार्यपालिका सम्बन्धी अधिकार एवं कार्य
(Rights and Functions Regarding Executive)

मन्त्रिमण्डल ही शासन की वास्तविक कार्यपालिका शक्ति है और राजपद में निहित समस्त अधिकारों का प्रयोग राजा के नाम से इसी के द्वारा किया जाता है। 1918 में 'शासन यन्त्र समिति' (Machinery of Government Committee) के अनुसार कार्यपालक-क्षेत्र में मन्त्रिमण्डल के निम्नलिखित तीन मुख्य कार्य माने जाते हैं—

(1) संसद् में प्रस्तुत की जाने वाली नीति का अन्तिम निर्धारण,

(2) संसद् द्वारा निर्धारित नीति के अनुरूप राष्ट्रीय कार्यपालिका का सर्वोच्च नियन्त्रण,

(3) राज्य के विभिन्न विभागों के अधिकारियों की सीमा का निर्धारण और उसमें सदा सामजस्य बनाए रखना।

मन्त्रिमण्डल को 'नीति का चुम्बक' (Magnent of Policy) माना जाता है। वह समस्त राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर अपनी नीति का निर्धारण करता है। मन्त्रिमण्डल के निर्णयों को सम्बन्धित विभाग क्रियान्वित करते हैं। वह अपने निर्णय को वैधानिक रूप देने के लिए प्रशासनिक विधियों और संसदीय विधियों के निर्माण का मार्ग चुनता है। मन्त्रिमण्डल विधि-निर्माण के क्षेत्र में संसद् का नेतृत्व करता है।

मन्त्रिमण्डल का परम्परागत कार्य संसद् द्वारा पारित कानूनों या विधियों को क्रियान्वित करना और प्रशासन का सचालन करना है। ब्रिटेन में समस्त कार्यपालिका शक्ति, जो राजा में निहित है, का उपयोग मन्त्रिमण्डल करता है। मन्त्रिगण विभिन्न विभागों के अध्यक्ष होते हैं। वे अपने विभागों का सचालन और उनके कार्यों की देखभाल करते हैं। सम्पूर्ण मन्त्रालय को मन्त्रिमण्डल के आदेशों का पालन करना पड़ता है और उसके द्वारा निर्धारित नीतियों व निर्णयों को क्रियान्वित करना होता है।

मन्त्रिमण्डल सरकार की नीति को क्रियान्वित करने के उद्देश्य से विभिन्न विभागों को एक सूत्र में बँधता है और देखता है कि उनके कार्यों में अन्तर्विरोध न हो, वे एक-दूसरे के कार्य-क्षेत्र का अतिक्रमण न करें और सभी के कार्यों में समन्वय रहे। राजनयिक स्तर पर बड़े-बड़े पदाधिकारियों का चयन भी मन्त्रिमण्डल ही करता है। राजा तो उन्हें केवल औपचारिक रूप से नियुक्त कर देता है।

प्रदत्त-व्यवस्थापन या विधान (Delegated Legislation) की शक्ति ने मन्त्रिमण्डल के कार्यपालिका सम्बन्धी अधिकारो को और भी विस्तृत कर दिया है। ससद कानूनों की केवल मोटी-मोटी रूपरेखा बना देती है और मन्त्रिमण्डल नियमों-विनियमों द्वारा आवश्यक कार्यवाही को सम्पादित करता है।

ससद् में प्रशासन से सम्बन्धित प्रश्नों और आलोचना का उत्तर मन्त्रिमण्डल को ही देना पडता है। उसे प्रशासन को उन दोषो से मुक्त करना होता है जिनके कारण सरकार की आलोचना होती है।

(3) वित्त-सम्बन्धी अधिकार और कार्य

(Rights and Functions Regarding Finance)

वित्तीय क्षेत्र में भी मन्त्रिमण्डल की शक्तियाँ बहुत महत्वपूर्ण हैं। मन्त्रिमण्डल ही राज्य के समस्त व्यय के लिए उत्तरदायी होता है और इसके लिए आवश्यक वित्त जुटाना उसी का काम है। लोकसदन मे वार्षिक राजकीय बजट (Budget) को प्रस्तुत करना मन्त्रिमण्डल का अधिकार माना गया है। ससद् में बजट-प्रस्तावों की आलोचना का उत्तर देना और ससद् सदस्यो के कटौती प्रस्तावों से सरकारी पक्ष की रक्षा करना मन्त्रिमण्डल का उत्तरदायित्व माना जाता है। मन्त्रिमण्डल बजट को संसद् में प्रस्तुत करने के बाद भी उसमें आवश्यक परिवर्तन कर सकता है।

सरकार के उत्तरदायित्व पर ऋण लेने की व्यवस्था भी मन्त्रिमण्डल ही करता है। यह निर्णय करने का अधिकार भी मन्त्रिमण्डल को ही है कि कौन-सा व्यय संचित निधि (Consolidated Fund) और कौन-सा आकस्मिक निधि (Contingency Fund) से किया जाएगा। इस तरह से वित्तीय क्षेत्र में मन्त्रिमण्डल को व्यापक अधिकार प्राप्त हैं।

(4) अन्य कार्य (Other Functions)

मन्त्रिमण्डल द्वारा और भी अनेक महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित किए जाते हैं, यथा—(i) गृह-मन्त्री के परामर्श पर राजा द्वारा क्षमा के अपने विशेषाधिकार का प्रयोग और प्रधानमन्त्री के परामर्श पर उपाधियों का वितरण किया जाता है, (ii) राजा द्वारा देश-विदेश में सभी महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ मन्त्रिमण्डल के परामर्श पर ही की जाती हैं, (iii) महत्त्वपूर्ण न्यायालयों के न्यायाधीश राजा द्वारा लॉर्ड चांसलर (जो मन्त्रिमण्डल का सदस्य होता है) के परामर्शानुसार नियुक्त किए जाते हैं, (iv) प्रधानमन्त्री के परामर्श पर ही राजा लोकसदन को विघटित करता है। स्पष्ट है कि मन्त्रिमण्डल को व्यवस्थापन, कार्यपालन और वित्तीय सभी क्षेत्रों में व्यापक अधिकार प्राप्त है। प्रदत्त व्यवस्थापन के कारण तो इसका कार्य और अधिकार-क्षेत्र और भी विस्तृत हो गया है।

मन्त्रिमण्डल का अधिनायकत्व

(Dictatorship of Cabinet)

अथवा

मन्त्रिमण्डल और संसद का सम्बन्ध

(Relationship of the Cabinet and the Parliament)

मन्त्रिमण्डल के कार्यों और उसकी शक्तियों के बारे में रेम्जे म्योर का विचार है कि "इतनी व्यापक और विशाल शक्ति से युक्त होने के कारण मन्त्रिमण्डल वास्तव में

अविनायक बन गया है क्योंकि अपने बहुमत के बल पर वह अपने एकमात्र अंकुश संसदीय नियन्त्रण से भी मुक्त हो गया है।"[1]

मन्त्रिमण्डल की व्यापक शक्तियों का सही मूल्यांकन तभी किया जा सकता है जबकि संसद् के साथ उसके सम्बन्धों पर कानूनी अथवा संवैधानिक और व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से अलग-अलग विचार किया जाए। कानूनी दृष्टिकोण के प्रतिपादकों में डायसी (Dicey) प्रमुख हैं, तो व्यावहारिक दृष्टिकोण के विचारकों में रैम्जे म्योर (Ramsay Muir) एवं लॉस्की (Laski) के नाम उल्लेखनीय हैं।

(क) कानूनी दृष्टिकोण और संसद् की महत्ता

कानूनी अथवा सांविधानिक दृष्टिकोण के अनुसार संसद् की सत्ता सर्वोच्च है। इसका वास्तविक अभिप्राय यह है कि लोकसदन की सत्ता सर्वोच्च है, क्योंकि संसद् के दोनों सदनों में लोकसदन ही वास्तविक अधिकार-सम्पन्न सदन है। लॉर्ड सभा की शक्तियाँ नगण्य हैं और उसकी स्थिति एक सहायता सदन की-सी है। कानूनी दृष्टि से मन्त्रिमण्डल संसद् के प्रति उत्तरदायी है। वह संसद् की ही एक समिति है और तभी वह पदारूढ़ रहती है जब तक संसद् (लोकसदन) को इसका समर्थन प्राप्त रहे।

संसद् (व्यवहार में लोकसदन) की सत्ता की सर्वोच्चता प्रधानतः निम्नांकित दो रूपों में अभिव्यक्त होती है—

व्यवस्थापन सम्बन्धी सर्वोच्चता—विधि-निर्माण के क्षेत्र में संसद् ही एकमात्र कानून-निर्मात्री सभा है और उसके द्वारा पारित कानूनों के अनुसार ही प्रशासन करना मन्त्रिमण्डल का कर्त्तव्य है। संसद् का व्यवस्थापन-क्षेत्र सर्वव्यापक है। वह किसी भी विषय पर कानून बना सकती है और कोई भी वस्तु, व्यक्ति या स्थान उसके व्यवस्थापन क्षेत्र से बाहर नहीं है। साधारण और संवैधानिक दोनों ही प्रकार के कानूनों को बनाने का उसका अधिकार असीमित है। उसे किसी भी कानून को संशोधित करने, समाप्त करने अथवा बनाने का अधिकार है।

ब्रिटिश संसद द्वारा पारित कानूनों की किसी न्यायालय द्वारा पुनरीक्षा नहीं की जा सकती है। ब्रिटेन में संसदीय कानूनों को कोई भी न्यायालय असंवैधानिक घोषित नहीं कर सकता है। ब्रिटेन में संसदीय सर्वोच्चता के सिद्धान्त को मान्यता दी गई है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि व्यवस्थापन सम्बन्धी कार्यों में लोकसदन की सत्ता सर्वोच्च है। यद्यपि, व्यावहारिक दृष्टि से उसकी इस सत्ता की सर्वोच्चता पर प्रथाओं, परम्पराओं, धार्मिक मान्यताओं, विवेक, ब्रिटिश रूढ़िवादिता आदि का प्रतिबन्ध है परन्तु कानूनी स्थिति यही है कि परम सत्तावान् संसद् के शक्ति-सम्पन्न सदन के रूप में लोकसदन इन प्रतिबन्धों या मर्यादाओं की चिन्ता किए बिना अपनी इच्छानुसार कानून बनाने के लिए स्वतन्त्र है।

कार्यपालिका की नियन्त्रण सम्बन्धी सर्वोच्चता—ब्रिटिश संविधान के अन्तर्गत संसद् की स्थिति कार्यपालिका से उच्चतर है। मन्त्रिमण्डल संसद् की ही एक समिति है जो तभी तक सत्तारूढ़ रहती है जब तक संसद् का इसको समर्थन प्राप्त है। समर्थन न

1 *Ramsay Muir : How Britain is Governed ?*

रहने पर इसको अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ता है। राजा द्वारा विपक्ष के नेता को वैकल्पिक मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए आमन्त्रित किया जा सकता है। राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति में लोकसदन में भंग कर के नये चुनाव भी कराये जा सकते हैं। ब्रिटिश शासन-प्रणाली का परम्परागत सिद्धान्त यह है कि संसद् ही जनता के हित में कार्यपालिका को नियन्त्रित एवं मर्यादित करती है। संसद् प्रश्नों, मन्त्रिमण्डलीय नीति की आलोचना या अस्वीकृति, कटौती प्रस्ताव, कार्य-स्थगन प्रस्ताव, निन्दा प्रस्ताव, अविश्वास प्रस्ताव आदि द्वारा मन्त्रिमण्डल पर अपना अंकुश रखती है।

स्पष्ट है कि विधि-निर्माण, वित्त-व्यवस्था तथा प्रशासन पर नियन्त्रण करना ब्रिटिश संसद् का मुख्य अधिकार-क्षेत्र है और कानूनी दृष्टि से संसद् सर्वोच्च सत्तायुक्त है। मन्त्रिमण्डल अपनी नीतियों एवं कार्यों तथा अस्तित्व के लिए संसदीय बहुमत के समर्थन पर निर्भर रहता है।

(ख) व्यावहारिक दृष्टिकोण और संसद की महत्ता अथवा मन्त्रिमण्डल की संसद पर महत्ता

परन्तु लोकसदन और मन्त्रिमण्डल के सम्बन्ध पर यदि व्यावहारिक दृष्टिकोण से विचार किया जाए, तो स्थिति पूर्णतः भिन्न दिखाई देती है। अब संसद् मन्त्रिमण्डल का नियन्त्रण नहीं करती, अपितु मन्त्रिमण्डल संसद् का नियन्त्रण करता है। मन्त्रिमण्डल की यह महत्ता निम्नलिखित विवेचन से स्पष्ट है—

(1) व्यवस्थापन क्षेत्र में मन्त्रिमण्डल—इस क्षेत्र में व्यावहारिक स्थिति यह है कि जो भी प्रमुख कानून पारित किए जाते हैं, उनका प्रारूप मन्त्रिमण्डल द्वारा तैयार किया जाता है। संसद् द्वारा प्रायः उन्हें उसी रूप में पारित कर दिया जाता है जिस रूप में वे मन्त्रिमण्डल द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं। उनमें संशोधन भी तभी हो पाते हैं जब वे मन्त्रिमण्डल को मान्य होते हैं। मन्त्रिमण्डल के सदस्य लोकसदन में बहुमत दल के सदस्य होते हैं। अतः लोकसदन मन्त्रिमण्डल की इच्छानुसार विधेयकों को स्वीकृति प्रदान कर देती है। वास्तव में दलीय संगठन और अनुशासन इतना कड़ा है कि संसद् के सदस्य अपने नेताओं का विरोध करने, उनके आदर्शों के विरुद्ध आलोचना करने अथवा मतदान करने का साहस नहीं करते। गैर-सरकारी विधेयक तभी संसद् की स्वीकृति प्राप्त कर सकते हैं, जब उन पर मन्त्रिमण्डल की कृपा-दृष्टि होती है। मंत्रिमण्डल की इच्छा के विरुद्ध विरोधी पक्ष द्वारा किसी भी प्रस्ताव को पास करा लेना या समाप्त कर देना अत्यन्त कठिन है। इससे व्यवस्थापन के क्षेत्र में मन्त्रिमण्डल की सर्वोच्चता कायम हो गई है।

(2) कार्यपालन क्षेत्र में मन्त्रिमण्डल—*कार्यपालन क्षेत्र में भी व्यावहारिक रूप से* संसद् की अपेक्षा मन्त्रिमण्डल की ही स्थिति उच्चतर है। नीति-निर्धारण का वास्तविक कार्य मन्त्रिमण्डल ही करता है और वही अपने बहुमत के बल पर ससद् से उसे स्वीकृत कराता है। मन्त्रिमण्डल ससद् का कार्यक्रम और उसकी कार्य-पद्धति को निर्धारित करता है। वही यह निर्णय करता है कि संसद् का अधिवेशन कब होगा, क्या-क्या काम उसमें होगा, कितना समय किस काम के लिए दिया जाएगा और संसद् के सत्र का अवसान व

उसका विघटन कब होगा ? इसके अतिरिक्त लोकसदन का अधिकांश समय मन्त्रिमण्डल द्वारा प्रयुक्त हो जाता है। गैर-सरकारी सदस्यों को विधि-प्रस्तावों पर विवाद का पूरा अवसर ही नहीं मिल पाता।

यदि लोकसदन अविश्वास-प्रस्ताव या अन्य किसी साधन द्वारा मन्त्रिमण्डल को समाप्त कर सकती है तो मन्त्रिमण्डल को भी यह अधिकार प्राप्त है कि वह लोकसदन का विघटन कराकर उसके सदस्यों को पुनः निर्वाचकों की दया का भिखारी बना दे। इससे संसद सदस्य सामान्यतः मन्त्रिमण्डल का पतन करने का साहस नहीं कर पाते हैं।

(3) वित्तीय क्षेत्र में मन्त्रिमण्डल—इस क्षेत्र में व्यावहारिक दृष्टि में मन्त्रिमण्डल ही बजट तैयार करता है, उसे पारित करवाता है और तत्पश्चात् उसे लागू करता है। राज्य की सम्पूर्ण आर्थिक नीति का संचालन मन्त्रिमण्डल द्वारा किया जाता है। मन्त्रिमण्डल ही राज्य की व्यवस्था का निर्धारण करता है, राजकीय आय व व्यय का निश्चय करता है। लोकसदन वित्त-विधेयकों की आलोचना कर सकता है, किन्तु वह मद का खर्च बढ़ा नहीं सकता और न कोई नया कर जोड़ सकता है, वह नए करों का सुझाव भी नहीं दे सकता, केवल प्रस्तावित करों में कमी कर सकता है, लेकिन ऐसा भी वह पूरा प्रयास करने पर ही कर सकता है क्योंकि लोकसदन का बहुमत मन्त्रिमण्डल का समर्थक होता है।

प्रकट है कि व्यवहार में मन्त्रिमण्डल ही लोकसदन का स्वामी बन गया है। विरोधी दल मन्त्रिमण्डल की खुलकर आलोचना करता है, परन्तु मन्त्रिमण्डल यह भली प्रकार जानता है कि जब तक लोकसदन में बहुमत उसका समर्थक है, तब तक उसके प्रस्ताव निश्चित रूप से पारित होते रहेंगे। अतः वित्तीय क्षेत्र में भी मन्त्रिमण्डल को सर्वोच्चता प्राप्त है।

लॉस्की का निष्कर्ष[1]

लॉस्की का निष्कर्ष है कि व्यवहार में मन्त्रिमण्डल की शक्ति संसद से अधिक अवश्य है, पर वह अधिनायक की तरह परमसत्तावान नहीं है। उसने इस मत का खण्डन किया है कि मन्त्रिमण्डल ने लोकसदन के अधिकारों का अपहरण कर उसे अपने अधीन कर लिया है और वह स्वयं निरंकुश हो गया है। मन्त्रिमण्डल के अधिनायकवादी रुख पर निम्नलिखित शक्तियाँ अपना अंकुश रखती हैं—

(i) विरोधी दल का अस्तित्व—ब्रिटेन में शक्तिशाली विरोधी दल मन्त्रिमण्डल की शक्ति पर एक बहुत ही प्रभावशाली नियन्त्रण रखता है। जेनिंग्स ने लिखा है कि "ब्रिटेन तथा अधिनायकवादी देशों में मुख्य अन्तर यह है कि ब्रिटेन में केवल एक ही दल नहीं है जो शक्ति या धोखे या सहमति अथवा अच्छे या बुरे उपायों द्वारा सत्तारूढ़ बना रहना चाहता हो, बल्कि वहाँ कम से कम दो दल हैं तथा प्रत्येक दल समझाने-बुझाने या सहमति एवं समझौते के आधार पर सत्ता प्राप्त करना चाहता है।"[2]

---

1. *Laski, H. J.*, Parliamentary Govt. in England.
2. *Jennings*, Parliament, p. 504

(ii) जनमत की शक्ति—मन्त्रिमण्डलीय अधिनायकत्व के मार्ग में एक प्रभावपूर्ण अवरोध जनमत की शक्ति है। ब्रिटिश जनता राजनीतिक दृष्टि से बहुत ही जागरूक है, अतः कोई भी मन्त्रिमण्डल तानाशाही का मार्ग नहीं अपना सकता। यदि ऐसा किया गया तो न तो केवल संसद् में जन-प्रतिनिधियों के हाथों उसके पराजित होने का भय है बल्कि निर्वाचन में भी उसकी पराजय निश्चित है। प्रबल बहुमत वाली सरकार को भी जनमत के आगे झुकना पड़ता है। सन् 1940 में प्रबल जनमत की माँग पर चैम्बरलेन (Chamberlain) मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पड़ा था।

सदन की परम्पराएँ तथा दल के अपने ही सदस्यों का विरोध—मन्त्रिमण्डल अधिनायकत्व के मार्ग में दो बाधाएँ भी शक्तिशाली अवरोध हैं—(i) सदन की परम्पराएँ एवं (ii) सत्तारूढ़ दल के अपने ही सदस्यों का विरोध या उनकी प्रतिक्रिया। ब्रिटिश लोकतन्त्र में कोई भी मन्त्रिमण्डल सदन की परम्पराओं की अवहेलना करने का साहस नहीं करता, अन्यथा उसे भारी मूल्य चुकाना पड़ सकता है। लोकसभा मन्त्रिमण्डलीय कार्यों पर अपनी सतर्क दृष्टि रखती है और उसे मनमानी नहीं करने देती। इसके अतिरिक्त अपने ही राजनीतिक दल के सदस्य भी मन्त्रिमण्डलीय निर्णयों का विरोध करके या उनके विरुद्ध जबरदस्त प्रतिक्रिया व्यक्त करके मन्त्रिमण्डल को निरंकुश नहीं होने देते हैं।

मन्त्रिमण्डल की शक्ति में प्रसार के कारण
(Reasons of Growing Importance of the Cabinet)

मन्त्रिमण्डल की महत्ता या इसकी शक्ति में प्रसार अथवा वृद्धि के कारणों को निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है—

(i) दल-प्रणाली (Party System)—मन्त्रिमण्डल की शक्ति में प्रसार का सबसे प्रमुख कारण ब्रिटेन की दल-प्रणाली है। ब्रिटेन में प्रधानतः दो दल ही प्रमुख रहे हैं। यदि ब्रिटेन में दो दलों की प्रमुखता न होकर फ्रान्स की भाँति अनेक दल होते है तो वहाँ के मन्त्रिमण्डल की दशा भी फ्रांस के मन्त्रिमण्डल जैसी होती। तब शक्ति के लिए विविध दल परस्पर खींचतान करते रहते, मन्त्रिमण्डल को स्थायित्व न मिल पाता और न ही वह आज के समान महत्व और शक्ति का वह स्वामी होता।

(ii) दलीय अनुशासन (Party Discipline)—ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की महत्ता का दूसरा कारण दलीय अनुशासन है। इसका अभिप्राय है यह है कि कोई सदस्य अपने दल के विरुद्ध मत नहीं दे सकता और न ही दल की नीति और उसके कार्यों को अपना समर्थन देने से मना कर सकता है। दलीय अनुशासन के कारण संसद् सदस्य स्वेच्छापूर्वक कार्य नहीं कर सकते। कोई भी सदस्य दल के आदेशों का उल्लघन करने का साहस नहीं कर सकता क्योंकि इसका परिणाम दल से बहिष्कार और अन्ततः राजनीतिक आत्मघात भी होता है। परिणामतः मन्त्रिमण्डल पूर्ण विश्वास के साथ अपने नियोजित कार्यक्रम पर चलता रहता है। अनुशासनबद्ध बहुमत का स्थायित्व ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल को इतनी शक्ति प्रदान कर देता है कि वह लोकसदन पर अपना प्रभुत्व जमाये रखता है।

(iii) प्रशासनिक समस्याओं की जटिलता (Complexities of Administrative Problems)—ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल को जटिल प्रशासनिक समस्याएँ भी शक्ति प्रदान करती हैं। लोक-कल्याणकारी राज्य के विचार के प्रादुर्भाव के कारण प्रशासन की समस्याएँ अत्यन्त व्यापक और जटिल हो गई हैं। संसद् के सामान्य सदस्य इस योग्य नहीं होते कि वे इन समस्याओं को भली प्रकार समझ सकें और राजनीति, प्रशासनिक, आर्थिक एव तकनीकी मामलों में मन्त्रिमण्डल का मार्ग-निर्देशन कर सकें। इस असमर्थता का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि लोकसदन इन विभिन्न समस्याओं की जानकारी के लिए मन्त्रिमण्डल पर ही अधिकांशत. निर्भर रहती है और इससे मन्त्रिमण्डल की शक्ति में वृद्धि होती है।

(iv) कार्यभार की अधिकता (Heavy Workload)—कार्य की अधिकता के कारण भी लोकसदन को प्राप्त होने वाली महत्ता मन्त्रिमण्डल को प्राप्त हो जाती है। लोकसदन का कार्य इतना बढ़ चुका है कि वह स्वय इसका नियन्त्रण-निरीक्षण अथवा संचालन करने में असमर्थ है। मन्त्रिमण्डल द्वारा जो विषय और कार्य लोकसदन के समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं उन्हें प्रथम तो सभी संसद्-सदस्य अच्छी तरह समझने में ही असमर्थ रहते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि मन्त्रिमण्डल के अधिकांश निर्णयों को लोकसदन बिना किसी विशेष कठिनाई या वाद-विवाद के स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार मन्त्रिमण्डल के निर्णय ही लोकसदन के निर्णय हो जाते हैं। विधियों (Legislations) का प्रारूप तैयार करना, उन्हें ससद् में प्रस्तुत करना और संसद् से स्वीकृत कराना मन्त्रिमण्डल का ही कार्य बन गया है। कार्यभार की अधिकता के कारण, ही प्रदत्त-व्यवस्थापन (Delegated Legislation) का प्रचलन हुआ है, जिससे विधि-निर्माण के क्षेत्र में मन्त्रिमण्डल बहुत अधिक शक्तिशाली हो गया है।

(v) मन्त्रिमण्डल का सामूहिक उत्तरदायित्व (Collective Responsibility of the Cabinet)—मन्त्रिमण्डल को शक्तिशाली बनाने में मन्त्रियों के सामूहिक उत्तरदायित्व की भी बड़ी भूमिका रही है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत एक मन्त्री की पराजय का अर्थ सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल का पतन होता है, अत. सभी मन्त्रिगण टीम-भावना से कार्य करते हैं। मन्त्रिमण्डल एक बहुत ही दृढ़ छोटा-सा निकाय बन जाता है जो असंगठित और विभिन्न दलों से निर्मित ससद् की तुलना में विशेष शक्तिशाली बना रहता है।

(vi) लोकसदन के विघटन की व्यवस्था (Provision for the Dissolution of Parliament)—ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल को आवश्यकता पड़ने पर राजा से लोकसदन का विघटन कराने का अधिकार प्राप्त है। ब्रिटेन में यह एक संवैधानिक अभिसमय है कि जब कोई मन्त्रिमण्डल लोकसदन में पराजित हो जाता है, तो उसे तुरन्त पद-त्याग करने की आवश्यकता नहीं है। प्रधानमन्त्री को यह अधिकार है कि यदि वह यह अनुभव करे कि मन्त्रिमण्डल की नीतियों और कार्यों को राष्ट्र का समर्थन प्राप्त है तो वह राजा से लोकसदन को भग करने की प्रार्थना कर सकता है और राजा उसकी प्रार्थना को ठुकरा नहीं सकता। अतः लोकसदन के सदस्य पुनः निर्वाचन की अनिश्चितता से बचने के लिए प्रायः मन्त्रिमण्डल का समर्थन करते हैं।

(vii) लॉर्ड सभा के अधिकारों की कटौती (Cut in the Rights of the House of Lords)—मन्त्रिमण्डल की महत्ता का एक प्रमुख कारण यह भी है कि लॉर्ड सभा अब लगभग शक्तिहीन सदन बना दिया गया है। 1911 और 1949 के संसदीय अधिनियमों के पारित होने के बाद लॉर्ड सभा संसद् का दूसरा सदन नहीं रहा अपितु दूसरे दर्जे का सदन हो गया है। इन अधिनियमों के कारण अब लॉर्ड सभा मन्त्रिमण्डल द्वारा प्रस्तुत विधेयकों को पारित होने से नहीं रोक सकती है। उनके पारित होने में केवल कुछ विलम्ब कर सकती है और उनकी आलोचना कर सकती है। इस तरह मन्त्रिमण्डल का उत्तरदायित्व अब केवल एक ऐसे सदन (लोकसभा) के प्रति रह गया है जो उसके अपने दल के बहुमत के कारण उसका अपना होता है।

(viii) संसदीय कार्य-विधि (Parliamentary Working Procedure)—मन्त्रिमण्डल की शक्ति में वृद्धि का एक कारण संसद् की कार्य-विधि है। संसदीय कार्यवाहियों के नियमों द्वारा ससद्-सदस्यों के हाथ बँधे रहते हैं, उनकी स्वतन्त्रता पर अंकुश लगा रहता है। मन्त्रिमण्डल वाद-विवाद को समाप्त करवा सकता है अथवा उसे सीमित कर सकता है। Simple Closure द्वारा पर्याप्त वाद-विवाद हो चुकने पर प्रस्ताव लाया जा सकता है। मुखबन्ध (Guillotine) के अनुसार विधेयक को अनेक भागों में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक भाग के लिए समय निश्चित कर दिया जाता है। Kangaroo Closure के द्वारा सभापति कुछ सशोधनों पर वाद-विवाद की आज्ञा ही नहीं देता। इन उपायों के अतिरिक्त दल-सचेतक (Party-Whips) संसद्-सदस्यों की स्वतन्त्रता पर पूरा नियन्त्रण रखता है। इन ससदीय कार्य-विधियों का अन्तिम परिणाम मन्त्रिमण्डल की शक्ति में वृद्धि के रूप मे हुआ है।

(ix) राष्ट्रीय आपात् (National Crisis)—वर्तमान शताब्दी में प्रथम महायुद्ध आर्थिक सकट, द्वितीय महायुद्ध आदि सकटकालीन परिस्थितियों ने मन्त्रिमण्डल की शक्ति बढाने में बड़ा योगदान दिया है। इन संकटों का सामना करने के लिए संसद् द्वारा मन्त्रिमण्डलों को व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गईं और संकटों की समाप्ति पर भी इन विशेष शक्तियों में से कुछ शक्तियाँ मन्त्रिमण्डल के हाथ में बनी रहीं। समय-समय पर उपस्थित होने वाले राष्ट्रीय संकटों से मन्त्रिमण्डल की शक्तियों में वृद्धि होती है।

(x) वित्त पर नियन्त्रण (Control of Finance)—मन्त्रिमण्डल का राष्ट्रीय वित्त पर नियन्त्रण होता है और इससे उसके प्रभाव-वृद्धि में बहुत सहायता मिलती है। राष्ट्रीय आय-व्यय के स्रोतों का निश्चय मन्त्रिमण्डल द्वारा ही किया जाता है, लोकसदन के साधारण सदस्यों का राष्ट्रीय वित्त पर अधिकार बहुत कम रहता है।

(xi) संसदीय जीवन की स्थिति (Position of the Tenure of the Parliament)—संसदीय जीवन की स्थिति भी मन्त्रिमण्डल की शक्ति में वृद्धि का कारण है। प्राय: संसद् के अवकाश-काल में सदस्यों को पता नहीं रहता कि मन्त्रिगण क्या कह रहे हैं? उन्हें केवल समाचार-पत्रों के माध्यम से ही कुछ बातों का पता चलता रहता है। संसद्-सदस्यों की यह बेखबरी की अवस्था मन्त्रियों को प्रभावपूर्ण बनाने में सहायक होती है।

इनके अतिरिक्त संसद् के सत्रों का बहुत कम समय के लिए सम्पादित होना, संसद सदस्यों का नौसिखिया होना भी मन्त्रिमण्डल की शक्ति में वृद्धि के लिए उत्तरदायी रहे हैं।

(xii) प्रधानमन्त्री का नेतृत्व (Leadership of Prime Minister)—प्रधानमन्त्री का नेतृत्व भी मन्त्रिमण्डल की शक्तियों में वृद्धि के लिए उत्तरदायी रहा है। ग्रेट ब्रिटेन में आम चुनाव प्रधानमन्त्री के इर्द-गिर्द लड़े जाते हैं। इन आमचुनावों में इस बात का निर्धारण होता है कि देश का अगला प्रधानमन्त्री कौन होगा ? प्रधामन्त्री कौन होगा ? प्रधानमन्त्री का 'करिश्माई नेतृत्व' मन्त्रिमण्डल को शक्तिशाली बना देता है।

निष्कर्षत, ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल संसद् से अधिक शक्तिशाली अवश्य है, किन्तु अधिनायक (Dictator) नहीं है। मन्त्रिमण्डल का अधिनायकतन्त्र संवैधानिक है, निरकुश नहीं, उत्तरदायी है, स्वेच्छाचारी नहीं। मन्त्रिमण्डल बहुमत के मद में चूर होकर विरोधी दल या जनमत की अवहेलना नहीं कर सकता। सदन की प्रचलित प्रथाएँ भी बहुमत दल के शासक को अधिनायकवादी होने से बचाती हैं।

प्रधानमन्त्री
(The Prime Minister)

ब्रिटिश शासन-व्यवस्था में प्रधानमन्त्री ही व्यवहारतः सर्वोच्च कार्यपालिका का अध्यक्ष है। सम्राट एक प्रतीकात्मक (Symbolic) प्रधान है जिसकी सम्पूर्ण शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिमण्डल करता है। शक्तियों का यह प्रयोग अन्ततोगत्वा प्रधानमन्त्री के हाथ में रहता है। वही ब्रिटिश राजनीतिक व्यवस्था की धुरी है।

फाइनर का कहना है कि "आजकल कुछ क्षेत्रों में ब्रिटिश सरकार को मन्त्रिमण्डलीय सरकार के स्थान पर 'प्रधानमन्त्रीय सरकार' तक कहा जाने लगा है।"[1] फिर भी वह निरकुश नहीं है क्योंकि उस पर अपने दल के कार्यकर्ताओं, संसद् और जनता का निरन्तर अकुश बना रहता है।

प्रधानमन्त्री के अधिकारों की महत्ता और व्यापकता पर विभिन्न मत प्रकट किए गए हैं। लॉर्ड मार्ले के अनुसार प्रधानमन्त्री 'समान पद वालों में प्रथम' (Primus-interpares or First among Equals) है तो रेमजे म्योर की दृष्टि से प्रधानमन्त्री का अधिकार-क्षेत्र इतना व्यापक है और उसकी स्थिति अपने साथियों से इतनी उच्च है कि उसे अधिनायक कहा जा सकता है। लॉस्की का मत मध्यमार्गीय है। उसके अनुसार—'प्रधानमन्त्री अपनी शक्तियों और अपने अधिकारों के कारण समान पद वालों में प्रथम से अधिक तो है, परन्तु अधिनायक कदापि नहीं है।'[2] फाइनर का भी कहना है कि—'प्रधानमन्त्री कोई सीजर नहीं है और न ही उसकी स्थिति ऐसी है जिसे चुनौती न दी जा सके।

1 *Finer* : Comparative Government, p. 171.

2 "British Prime Minister is more than primus-interpares but less than autocrat."

—Laski · *Parliamentary Government in England*, p. 229

प्रधानमन्त्री की सत्ता का सबसे बड़ा आधार यह है कि वह राष्ट्र की कितनी सेवा कर सकता है। किसी भी समय उसके प्रतिद्वन्द्वी उसका स्थान ग्रहण कर सकते है।"[1]

प्रधानमन्त्री पद की अनौपचारिकता
(Informality of the Office of Prime Minister)

ब्रिटेन के अन्य संस्थानों की भाँति प्रधानमन्त्री पद भी अनौपचारिक है, उसका कोई कानूनी आधार नहीं है। प्रधानमन्त्री पद की उत्पत्ति परम्परा अथवा अभिसमयों की देन रही है। 1878 ई. से पहले किसी सरकारी प्रपत्र में प्रधानमन्त्री पद का नाम भी नहीं आया था। 1937 ई. के क्राउन मन्त्री अधिनियम (The Minister of the Crown Act, 1937) में पहली बार कानूनी रूप में प्रधानमन्त्री के पद को मान्यता प्रदान की गई। इसमें 'प्रधानमन्त्री व सरकारी कोष के प्रथम लॉर्ड' के पद का अस्तित्व स्वीकार किया गया। इस अधिनियम में प्रधानमन्त्री की केवल संवैधानिक स्थिति को मान्यता मिली, उसे वास्तविक शक्ति प्रदान नहीं की गई। आज भी यही स्थिति वर्तमान है, अर्थात् प्रधानमन्त्री पद के अधिकारों और उसकी शक्तियों का कोई कानूनी आधार नहीं है। प्रधानमन्त्री को सभी अधिकार संवैधानिक अभिसमयों (Conventions) से प्राप्त हुए है और उन्हीं अभिसमयों में वे मर्यादित भी हैं।

प्रधानमन्त्री का सरकारी निवास 10 डाउनिंग स्ट्रीट है। प्रधानमन्त्री पद की महत्ता के आधार पर यह कथन उपयुक्त प्रतीत होता है कि—"कोई नहीं जानता और न कोई इसकी परवाह करता है कि अन्य मन्त्री कहाँ निवास करते हैं किन्तु बेवकूफ से बेवकूफ आदमी 10 डाउनिंग स्ट्रीट के अर्थ जानता है।" यह कथन प्रधानमन्त्री पद के प्रति जन-अभिरुचि को प्रदर्शित करता है।

प्रधानमन्त्री की नियुक्ति
(The Choice of the Prime Minister)

संविधान के अनुसार प्रधानमन्त्री की नियुक्ति राजा द्वारा होती है, लेकिन दलगत सरकार के विकास ने यह परम्परा स्थापित कर दी है कि लोकसभा में बहुमत-दल का नेता प्रधानमन्त्री बनकर मन्त्रिमण्डल का निर्माण करे। इस प्रकार प्रधानमन्त्री के चुनाव में राजा की शक्ति नगण्य हो गई है। फिर भी कुछ परिस्थितियाँ हैं जिनमें राजा स्व-निर्णय (Discretion) के अनुसार कार्य कर सकता है। ऐसी दशाएँ मुख्यतः तीन हो सकती हैं—

(i) जब लोकसदन में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो। इस स्थिति में राजा का कर्त्तव्य है कि वह ऐसे व्यक्ति को पद-भार सम्भालने हेतु आमन्त्रित करे जो अपनी सरकार के लिए लोकसदन का बहुमत प्राप्त करने में सफल हो सके।

(ii) जब एक प्रधानमन्त्री अचानक त्याग-पत्र दे दे या उसकी मृत्यु हो जाए और आन्तरिक द्वन्द्व के कारण दल अपना नेता चुनने में असमर्थ रहे।

1. *Finer*: Comparative Govt., p. 172.

(iii) जब संसद् में दलीय स्थिति अथवा देश की परिस्थिति के कारण संयुक्त मन्त्रिमण्डल का बनाया जाना आवश्यक हो जाए, परन्तु प्रधानमन्त्री के सम्बन्ध में विभिन्न दलों में मतैक्य न हो। ऐमरी ने लिखा है कि "जब 1931 में श्री मैकडॉनल्ड ने पद-त्याग किया तो उनसे तथा विरोधी-दलीय नेताओं से राजा का व्यक्तिगत अनुरोध ही उनको संयुक्त सरकार के प्रधान के रूप में प्रतिष्ठित कर सका।"

प्रधानमन्त्री-पद के सम्बन्ध में अब यह सर्वमान्य धारणा बन गई है कि प्रधानमन्त्री लोकसदन में से ही चुना जाए, यद्यपि परम्परागत नियम यही है कि प्रधानमंत्री या तो कोई पीयर (Peer) हो अथवा लोकसदन का सदस्य हो। वास्तव में 1902 के बाद से ही कोई प्रधानमन्त्री लॉर्ड सभा से नहीं चुना गया है। अक्टूबर, 1963 में जब लॉर्ड ह्यूम (Lord Hume) प्रधानमन्त्री बनाया गया तो स्पष्ट कर दिया गया कि उन्हें अपनी उपाधियों का परित्याग कर देना होगा। लॉर्ड ह्यूम ने अपनी उपाधि त्यागने और लोकसदन के लिए उपचुनाव लड़ने के निश्चय की घोषणा की। चुनाव 7 नवम्बर को हुए जिसमें ह्यूम विजयी घोषित किए गए। प्रधानमन्त्री को लोकसदन का सदस्य ही होना इसलिए आवश्यक माना जाता है कि वह तथा उसका मन्त्रिमण्डल केवल लोकसदन के प्रति ही उत्तरदायी होता है। दलीय संगठन की दृष्टि से भी यह आवश्यक है कि प्रधानमन्त्री लोकसदन से ही चुना जाए।

प्रधानमन्त्री के लिए योग्यताएँ

यद्यपि प्रधानमन्त्री पद के लिए कोई निश्चित योग्यता निर्धारित नहीं है, फिर भी व्यवहारतः उसके लिए कुछ योग्यताओं और व्यक्तिगत गुणों का होना आवश्यक माना जाता है—(i) संवैधानिक प्रथाओं ने ही यह आवश्यक बना दिया है कि प्रधानमन्त्री लोकसदन का सदस्य हो, लोकसदन के बहुमत दल का नेता हो अथवा लोकसदन के बहुमत का समर्थन प्राप्त करने में समर्थ हो। (ii) उसमें कुछ विशेष गुणों का होना आवश्यक है। लॉस्की ने प्रधानमन्त्री के गुणों का विशद् वर्णन करते हुए कहा है—"विवेक, कौशल, मनुष्यों पर शासन करने की शक्ति, विश्वसनीय व्यक्तियों की पहचान, प्रभावशाली वक्तव्य देने की क्षमता, ऐसा शिक्षात्मक निर्णय ले सकने की योग्यता कि वह दल तथा लोकमत के अनुकूल तो अवश्य हो लेकिन इतना न हो कि उसका सुगमतापूर्वक पालन न हो सके, एक ऐसी महत्त्वाकांक्षा जो देश की प्रगति तो करे किन्तु साथ ही आकस्मिकता के प्रदर्शन में सजग हो, व्यक्तियों या कार्यों के बारे में तत्कालीन निर्णय के समय मर्यादित व्यग्रता—ये सब ऐसे गुण हैं जिनके बिना प्रधानमन्त्री का काम नहीं चल सकता।"[1]

वस्तुतः ब्रिटिश प्रधानमन्त्री पद तक पहुँचने का मार्ग बड़ा जटिल है। कार्टर (Carter) ने लिखा है कि "सर्वप्रथम लोकसदन में व्यक्ति को राजनीतिक नेता के रूप में ख्याति प्राप्त करनी होती है। मन्त्रिमण्डल की सदस्यता और सम्भवतः प्रधानमन्त्री पद की आकांक्षा साधारणतः व्यक्ति अनेक पदों पर प्रशिक्षण प्राप्त करने के उपरान्त ही प्राप्त कर सकता है।"[2] ये गुण ही प्रधानमन्त्री को शक्तिशाली बनाते हैं।

1 *Laski, H.J.* : Parliamentary Govt. in England.
2 *Carter, G.M.* : The Govt. of Great Britain.

प्रधानमन्त्री की शक्तियाँ और कार्य तथा मूल्यांकन
(Powers and Functions of the Prime Minister and their Evaluation)

प्रधानमन्त्री वास्तविक रूप में न कि वैधानिक रूप में राज्य का प्रधान है। उसके समान व्यापक सत्ता संसार में सम्भवतः किसी वैधानिक प्रधान को प्राप्त नहीं है। जब तक उस दल का संसद् में बहुमत रहता है, वह अनेक ऐसे कार्य कर सकता है जो अमेरिका का राष्ट्रपति भी नहीं कर सकता। वह पहले से ही इस बात का वचन दे सकता है कि उक्त सन्धि पर हस्ताक्षर हो जाएँगे या उसका अनुमोदन हो जाएगा, या कोई विशेष विधान पारित हो जाएगा, या किसी भी धनराशि के व्यय की संसद् द्वारा स्वीकृति मिल जाएगी। प्रधानमन्त्री सम्पूर्ण शासन सूत्र का केन्द्र है।

कॉलिन एफ. पैडफील्ड ने ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की शक्ति पर विचार करते हुए उसके निम्नलिखित प्रमुख कार्यों (Functions) का उल्लेख किया है[1]—

(1) वह संसद् में बहुमत प्राप्त दल का नेता होता है।

(2) वह सरकार का (अर्थात् प्रशासन का) प्रधान होता है।

(3) वह केबिनेट मन्त्रियों का चयनकर्ता है।

(4) वह सरकार के अन्य सदस्यों (अर्थात् गैर-केबिनेट मन्त्रियों) की नियुक्ति करता है जिनकी संख्या लगभग सौ तक होती है।

(5) वह मन्त्रियों के पदों में परिवर्तन कर सकता है अर्थात् इच्छानुसार मन्त्रिमण्डल का पुनर्गठन कर सकता है।

(6) वह एक केबिनेट मन्त्री या केबिनेट स्तर के नीचे के मन्त्री को पदच्युत कर सकता है अथवा किसी मन्त्री को सरकार से त्याग-पत्र देने के लिए कह सकता है।

(7) वह केबिनेट और महत्त्वपूर्ण केबिनेट-समितियों का अध्यक्ष होता है।

(8) वह नीतियों का समन्वय करता है और विभिन्न मन्त्रालयों के कार्यों का निरीक्षण करता है।

(9) वह राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में राष्ट्र का मुख्य प्रवक्ता (Chief Spokesman) होता है।

(10) अन्तिम रूप से वही दलीय अनुशासन के लिए उत्तरदायी होता है वह मुख्य सचेतकों (Chief Whips) की नियुक्ति करता है जो उसके निकट सम्पर्क में रहते हैं।

(11) वह संरक्षण प्रदान करता है अर्थात् उसे विभिन्न न्यायिक और धार्मिक तथा अन्य प्रकार के अधिकारियों को नियुक्त करने का अधिकार है। वह उपाधियाँ और सम्मान वितरित करता है तथा पीयर बनाता है।

(12) वह लोक सेवा का राजनीतिक अध्यक्ष होता है और वरिष्ठ लोक सेवकों की नियुक्ति तथा पदोन्नति के सम्बन्ध में गृह लोक सेवा के अध्यक्ष से सहयोग करता है।

(13) वह साम्राज्ञी को सरकारी निर्णयों से अवगत कराता है और संसद् को भंग कराने के बारे में परामर्श देता है।

---

1 *Colin, F. Padfield* : British Constitution, p 125

प्रधानमन्त्री की व्यापक शक्तियों और उसके कार्यों का विस्तृत विवेचन एव मूल्यांकन निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है—

(क) प्रधानमन्त्री व मन्त्रिमण्डल

प्रधानमन्त्री ही मन्त्रिमण्डल के निर्माण, जीवन तथा मरण का केन्द्र-बिन्दु है और उसका प्रभावशाली सचालन उसी पर निर्भर करता है। यह तथ्य निम्नांकित बिन्दुओं से स्पष्ट होता है—

(i) **मन्त्रिमण्डल का निर्माण**—प्रधानमन्त्री पद की बागडोर सम्भालने के बाद उसका पहला कर्तव्य होता है मन्त्रिमण्डल का निर्माण करना। इसके लिए वह सदस्यों की सूची तैयार करता है जिसे राजा विधिवत् स्वीकार कर लेता है। राजा द्वारा मन्त्रियों की नियुक्ति करना केवल एक औपचारिकता मात्र है। कौन व्यक्ति मन्त्रिमण्डल में लिया जाएगा, इसका निर्णय प्रधानमन्त्री ही करता है। इस निर्णय में दलीय एकता एव सुदृढता, राजा की इच्छा, सवैधानिक अभिसमय, राजनीतिक स्थिति, आदि अनेक तत्व प्रभावशाली होते हैं, परन्तु अन्तिम निश्चय करना प्रधानमन्त्री का अधिकार है। यदि वह किसी व्यक्ति को मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित करना चाहता है तो राजा रोक नहीं सकता और यदि वह किसी व्यक्ति को सम्मिलित करना नहीं चाहता है तो राजा उसे विवश नहीं कर सकता। मन्त्रिमण्डल के निर्माण में प्रधानमन्त्री के स्वविवेकीय अधिकार (Discretionary Powers) बहुत व्यापक हैं, फिर भी मन्त्रियों के चयन में प्रधानमन्त्री मनमानी नहीं कर पाता। उसे यह देखना पड़ता है कि उसके दल के प्रमुख सदस्यों का मन्त्रिमण्डल में समावेश हो जाए क्योंकि ऐसा न होने पर दल में फूट पड़ सकती है और उसकी स्वयं की स्थिति कमजोर हो सकती है। कभी-कभी तो उसे ऐसे व्यक्तियों को भी मन्त्रिमण्डल में लेना पड़ता है जिन्हें वह नहीं चाहता क्योंकि ऐसा न करने से शासन सकट में पड़ सकता है। मन्त्रिमण्डल का निर्माण करते समय उसे इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि यथासम्भव उन्हीं लोगों को उसमें स्थान मिले जो परस्पर सहयोग की भावना से कार्य कर सकते हों। प्रधानमन्त्री को अपने सहयोगियों के चयन में विभिन्न वर्गों, विभिन्न धर्मों, विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों, नवयुवक राजनीतिज्ञों आदि के प्रतिनिधित्व को भी ध्यान में रखना पड़ता है। मन्त्रिमण्डल का निर्माण करते राजा की इच्छा को भी ध्यान में रखना होता है।

(ii) **मन्त्रिमण्डल का संचालन**—प्रधानमन्त्री न केवल मन्त्रिमण्डल का निर्माण करता है बल्कि उसे जीवन और गति भी प्रदान करता है। वही अपने मन्त्रियों में विभागों का वितरण करता है। कुछ सदस्य इतने प्रभावशाली और सशक्त हो सकते हैं कि विभागों का वितरण करते समय प्रधानमन्त्री उनकी इच्छा का आदर करे। परन्तु साधारणतः विभागों के वितरण के सम्बन्ध में प्रधानमन्त्री का निर्णय अन्तिम होता है।

प्रधानमन्त्री को यह भी देखना पड़ता है कि मन्त्रिमण्डल का कार्य सुचारु रूप से चलता रहे। समस्त प्रशासन का मुखिया होने के नाते वह सभी विभागों का निरीक्षण

करता है। कभी-कभी जब मन्त्रियों में परस्पर मतभेद उठ खड़े होते हैं, तो प्रधानमन्त्री हस्तक्षेप कर औचित्य-अनौचित्य के निर्णय द्वारा उनके मतभेदों को दूर करता है। इस प्रकार मन्त्रिमण्डल में सौहार्द तथा सद्भाव बनाए रखने का उत्तरदायित्व प्रधानमन्त्री पर ही है। वही सबको एक सूत्र में पिरोए रखता है।

प्रधानमन्त्री ही मन्त्रिमण्डल की बैठकों का सभापतित्व और उनकी समस्त कार्यवाहियों का संचालन करता है। मन्त्रिमण्डल की बैठकों की कार्यावली (Agenda) पर उसका नियन्त्रण होता है। मन्त्रिमण्डल के निर्णयों और नीति-निर्धारण में प्रधानमन्त्री का ही सर्वोपरि हाथ रहता है। मन्त्रिमण्डल के सदस्य वाद-विवाद के लिए विचारार्थ विषय प्रस्तुत करते हैं, किन्तु उन्हें मानने न मानने की उसे स्वतन्त्रता होती है।

यहाँ यह स्मरणीय है कि प्रधानमन्त्री अन्य मन्त्रियों का अधिनायक नहीं है। मन्त्रिमण्डल के सदस्य प्रधानमन्त्री के दास या अधीनस्थ नहीं होते वरन् वे उसके सहयोगी होते हैं। उनको वह अपने विचारों को मानने के लिए उत्प्रेरित कर सकता है, किन्तु विवश नहीं कर सकता। इस रूप में उसकी स्थिति अमेरिकी राष्ट्रपति की स्थिति से पूर्णतः भिन्न है। वह अपने सहयोगी मन्त्रियों की राय की कभी भी अवहेलना नहीं कर सकता। हाँ, यह अवश्य है कि उसकी स्थिति अन्य मन्त्रियों की तुलना में बहुत अधिक प्रभावशाली होती है और वह मन्त्रियों को अपने विचारों के अनुकूल बना लेता है। व्यवहार में पहल उसी की रहती है और मन्त्रिगण बहुधा उसका अनुकरण करते हैं।

(iii) **मन्त्रिमण्डल का अन्त**—प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल का सिर्फ निर्माता एवं संयोजक ही नहीं होता, बल्कि संहारकर्त्ता भी होता है। मन्त्रियों को उनके पदों से हटाने तथा मन्त्रिमण्डल के भंग करने के विषय में उसकी इच्छा का वस्तुतः पर्याप्त महत्व होता है। सब मन्त्रियों का भविष्य उसी के साथ बँधा हुआ होता है। प्रधानमन्त्री के साथ ही अन्य मन्त्री भी तैरते-डूबते हैं। उसके त्याग-पत्र के साथ पूरा मन्त्रिमण्डल भंग हो जाता है। इसके अतिरिक्त यदि प्रधानमंत्री व अन्य किसी मन्त्री के मध्य कोई मतभेद होता है, तो ऐसी दशा में प्रधानमन्त्री उस असन्तुष्ट मन्त्री से त्याग-पत्र की माँग कर सकता है, उसे बर्खास्त कर सकता है, या स्वयं अपना त्याग-पत्र देकर सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल को भंग कर सकता है। वैधानिक रूप से मन्त्रियों की पदच्युति का अधिकार राजा का विशेषाधिकार है, लेकिन व्यवहारतः यह परम्परा बन गई है कि इस अधिकार का प्रयोग वह प्रधानमन्त्री की मन्त्रणा पर ही करता है।

प्रधानमन्त्री को मन्त्रिमण्डल का पुनर्गठन करने का अधिकार प्राप्त है। जैसा कि लॉस्की ने कहा है—"प्रधानमन्त्री अपने मन्त्रिमण्डल में जब चाहे तब और जैसे चाहे वैसे परिवर्तन कर सकता है।"[1]

वास्तव में प्रधानमन्त्री की यह शक्ति ही मन्त्रिमण्डल पर उसका नियन्त्रण बनाए रखने में सहायक होती है। लॉस्की ने लिखा है कि—"प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल का केन्द्र-बिन्दु है। वह उसके निर्माण, इसके जीवन और अन्त में केन्द्रीय स्थिति रखता है।"[2]

1-2. *Laski* : Parliamentary Govt. in England.

(ख) शासन प्रमुख के रूप में प्रधानमन्त्री

सिद्धान्ततः देश का शासन प्रमुख राजा है, पर व्यवहारतः शासन प्रमुख के सभी अधिकारों का उपभोग प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल द्वारा किया जाता है। प्रधानमन्त्री ही राजा के नाम पर देश का पूरा शासन-तन्त्र संचालित करता है। राज्य की सभी महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ या तो प्रधानमन्त्री द्वारा स्वयं की जाती हैं या राजा द्वारा उनके परामर्श से की जाती हैं। राजकीय-सम्मान प्रदान करने के अधिकार का प्रयोग भी राजा प्रधानमन्त्री के परामर्श से ही करता है। प्रशासकीय विभागों का संचालन उसी की देख-रेख में होता है। देश की विदेश-नीति के सम्बन्ध में समस्त महत्वपूर्ण घोषणाएँ उसी के द्वारा होती हैं, न कि विदेश मन्त्री के द्वारा। विदेश मन्त्रालय चाहे प्रधानमन्त्री के पास हो या किसी और के पास, वैदेशिक सम्बन्धों का सुचारु संचालन उसका दायित्व समझा जाता है।

वैदेशिक सम्बन्धों के संचालन में प्रधानमन्त्री सदैव अपना प्रभावपूर्ण नियन्त्रण बनाए रखता है। वर्तमान प्रधानमन्त्री जॉन मेजर यूरोपीय एकीकरण के पक्षधर हैं और उन्होंने ब्रिटेन की इस प्रक्रिया में भागीदारी को सुनिश्चित किया है। उनके प्रयासों से ही ब्रिटेन यूरोपीय एकीकरण की प्रक्रिया में सकारात्मक योगदान कर रहा है। प्रधानमंत्री अन्य प्रशासकीय विभागों की देखरेख करता है, और मन्त्रिगण उसका परामर्श लेकर ही कोई महत्वपूर्ण निर्णय लेते हैं। देश की शासन-सम्बन्धी नीति का निर्धारण मन्त्रिमण्डल के परामर्श से प्रधानमन्त्री ही करता है। वही विविध मन्त्रालयों के कार्य में सामंजस्य स्थापित रखता है। प्रधानमंत्री अपने निर्णय मन्त्रिमण्डल के परामर्श से ही लेने को बाध्य नहीं है। वह मन्त्रिमण्डल से विचार-विमर्श किए बिना ही किसी भी नवीन नीति अथवा योजना को सार्वजनिक रूप से घोषित कर सकता है तथापि शासन-संचालन में प्रधानमन्त्री मनमाना व्यवहार नहीं कर सकता। उसे अपने सहयोगियों का विश्वास प्राप्त करना पड़ता है क्योंकि उसकी सफलता बहुत-कुछ उनके सहयोग पर निर्भर है। सहयोगियों के विश्वास को ठुकराकर निरंकुश आचरण करने वाला प्रधानमन्त्री अपने दल, संसद् और राष्ट्र का समर्थन खो बैठता है। सभी की दृष्टि सदैव प्रधानमन्त्री के कार्यों पर लगी रहती है।

अन्तिम रूप से प्रधानमन्त्री ही बजट (Budget) के लिए उत्तरदायी होता है, इसलिए राजकीय बजट को प्रधानमन्त्री और वित्त मन्त्री ही अन्तिम रूप देते हैं। लोकसभा में प्रेषित करने से पूर्व बजट के लिए मन्त्रिमण्डल की स्वीकृति नहीं ली जाती, यद्यपि मन्त्रिमण्डल को बजट का एक मौलिक विवरण दे दिया जाता है।

(ग) राजा के परामर्शदाता के रूप में प्रधानमन्त्री

केवल प्रधानमन्त्री ही राजा के परामर्शदाता का कार्य करता है। सिद्धान्ततः प्रधानमन्त्री का कार्य राजा को शासन-सम्बन्धी परामर्श देना है। राजा इस बात के लिए स्वतन्त्र है कि वह प्रधानमन्त्री के परामर्श को माने या ना माने, किन्तु व्यवहार में राजा सदैव प्रधानमन्त्री के परामर्श को मानता है।

प्रधानमन्त्री राजा और मन्त्रिमण्डल को परस्पर सम्बद्ध रखने वाली कड़ी या सम्पर्क सूत्र का काम करता है। वह मन्त्रिमण्डल के निर्णयों और विचारों की सूचना राजा को देता है और राजा के परामर्श को मन्त्रिमण्डल तक पहुँचाता है। आपातकाल में राजा सर्वप्रथम प्रधानमन्त्री से ही सलाह लेता है, और उसकी इच्छा के अनुसार कार्य

करता है। प्रधानमन्त्री राजा के व्यक्तिगत जीवन सम्बन्धी मामलों को भी नियन्त्रित करता है। राजा किन-किन सरकारी कार्यों में भाग लेगा, साम्राज्य या राष्ट्रमण्डल के किस भाग की यात्रा करेगा, आदि बातों का निर्णय भी प्रधानमन्त्री ही करता है।

(घ) संरक्षण और उपाधियों सम्बन्धी शक्ति के रूप में

प्रधानमंत्री के पास संरक्षण और अनुग्रह की भारी शक्ति है। उपाधियाँ प्रदान करना राजा का विशेषाधिकार है, किन्तु उनका वितरण प्रधानमंत्री के परामर्श पर ही किया जाता है। विशेष रूप से लॉर्ड सभा की सदस्यता का प्रधानमंत्री राजनीतिक प्रयोग कर सकता है। दल के असन्तुष्ट नेताओं को सन्तुष्ट करने, दल के समर्थकों और सेवकों को पुरस्कृत करने, दल के वयोवृद्ध एवं प्रतिष्ठित नेताओं को संसद् में स्थान देने तथा दल के लिए धन एकत्रित करने आदि के लिए ब्रिटिश प्रधानमंत्री अपने संरक्षण अधिकार (Patronage) का प्रयोग कर के लाभ पहुँचाता है। राष्ट्रीय महोत्सव के अवसरों पर प्रधानमंत्री उपाधियाँ व सम्मान वितरित करते समय विरोधी दल के सुझाव भी आमन्त्रित करता है।

(च) आपात्कालीन अधिकार के रूप में

युद्ध, अर्थ-सकट या अन्य इसी प्रकार के संकटों के समय ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की शक्ति बहुत बढ़ जाती है। यद्यपि ब्रिटिश संविधान के अन्तर्गत भारतीय संविधान की भाँति आपात्कालीन प्रावधान नहीं दिए हुए हैं, तथापि तुरन्त कार्यवाही के लिए अथवा विपत्ति के समय सम्पूर्ण राष्ट्र की शक्ति का उपयोग करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि कार्यपालिका विशेष रूप से शक्तिसम्पन्न बन जाए। यह एक तथ्य है कि द्वितीय महायुद्ध के समय ब्रिटेन जैसे प्रजातान्त्रिक राज्य में चर्चिल ने हिटलर और मुसोलिनी जैसी अधिनायकवादी शक्तियों का प्रयोग किया, किन्तु यह प्रयोग संवैधानिक ढंग से हुआ। वास्तव में आपात्काल के समय ब्रिटेन में सांविधानिक अधिनायकत्व की स्थापना हो जाती है जिसका तानाशाह प्रधानमन्त्री होता है। कभी-कभी तो शीघ्र कार्य करने की दृष्टि से प्रधानमन्त्री स्वयं निर्णय कर देता है और कार्य पूरा हो जाने पर उसे मन्त्रिमण्डल के समक्ष विचार-विमर्श के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

(छ) दल के नेता के रूप में

शासन का प्रधान होने के अतिरिक्त प्रधानमन्त्री बहुमत दल का नेता होता है और उसकी सर्वोच्च शक्ति का रहस्य उसकी यह दलीय स्थिति ही है। विजित दल का नेता होने के नाते ही वह प्रधानमन्त्री बन पाता है। इस स्थिति में उसका व्यक्तित्व सार्वजनिक रूप ले लेता है जिसकी अभिव्यक्ति रेडियो, कार्टून, प्रेस आदि द्वारा होती है। वह दलीय एकता का प्रमुख स्तम्भ और प्रतीक होता है, जिसके विरुद्ध अकारण ही अँगुली उठना या अविश्वास करना दल के साथ विश्वासघात माना जाता है। प्रधानमन्त्री के व्यक्तित्व को ही केन्द्र बनाकर सामान्य निर्वाचन लड़ा जाता है। अनिश्चित मतदाता जो वास्तव में चुनावों का निर्णय करते हैं, किसी दल विशेष अथवा नीति का समर्थन न करके केवल एक नेता का समर्थन करते हैं। इसलिए प्रधानमन्त्री को दल की शक्ति का मुख्य आधार माना जाता है।

(ज) राष्ट्रनायक के रूप में प्रधानमन्त्री

वस्तुतः निर्वाचन के द्वारा प्रधानमन्त्री सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतीक बन जाता है। उसके व्यक्तित्व में दल की प्रतिष्ठा और शक्ति समाहित हो जाती है और तब उसे नेता पद से हटाया जाना अत्यन्त दुष्कर कार्य बन जाता है। राष्ट्रनायक के रूप में प्रधानमन्त्री की स्थिति तब स्पष्ट होती है जब कई अवसरों पर उसके नाम पर ही चुनाव लड़ा जाता है। इससे प्रधानमन्त्री की शक्तियों में भारी वृद्धि हो जाती है।

(झ) जनमत-संग्रह कराने की शक्ति के रूप में

कभी-कभी पार्टी और कैबिनेट में प्रधानमन्त्री की स्थिति के लिए तब संकट उत्पन्न हो जाता है जब पार्टी के महत्वपूर्ण सदस्य और कैबिनेट के वरिष्ठ मन्त्री प्रधानमन्त्री के मत से असहमत हों। इस स्थिति में एक योग्य और प्रखर व्यक्तित्व वाला प्रधानमन्त्री जनमत-संग्रह का आश्रय ले सकता है, यदि उसे यह विश्वास हो जाये कि मतदाता उसके पक्ष का समर्थन करेंगे।

(ट) लोकसदन के नेता के रूप में प्रधानमन्त्री

प्रधानमन्त्री लोकसदन (House of Commons) का नेता होता है। यद्यपि आजकल ऐसी परम्परा है कि वह अपने किसी साथी को लोकसदन का नेता मनोनीत कर देता है ताकि इस उत्तरदायित्व से उसे छुटकारा मिल जाए, किन्तु तब भी लोकसदन के नेता के रूप में अन्तिम उत्तरदायित्व प्रधानमन्त्री का ही रहता है। अपने लोकसदन का नेता होने व अपने बहुमत के कारण प्रधानमन्त्री लोकसदन को अपने नियन्त्रण में रखता है। इस सम्बन्ध में उसकी स्थिति अमेरिकी राष्ट्रपति से बहुत भिन्न है जिसका वहाँ की प्रतिनिधि सभा (House of Representatives) से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता। लोकसदन का नेता होने के नाते नीति सम्बन्धी मुख्य घोषणाएँ प्रधानमन्त्री को ही करनी पड़ती हैं। उससे ही विभाग विशेष या प्रशासन की आलोचना से सम्बन्धित प्रश्न किए जाते हैं। वही इन प्रश्नों का उत्तर देकर संसद् में सीधा मोर्चा लेता है। प्रधानमन्त्री ही महत्वपूर्ण वाद-विवादों को आरम्भ करता है और रक्षा विभाग, विदेश विभाग या गृह विभाग से सम्बन्धित वाद-विवाद में हस्तक्षेप करता है। अपने मन्त्रियों से कोई भूल हो जाए तो प्रधानमन्त्री उस भूल को सुधार सकता है। अपने मन्त्रियों के साथ उसे ही संसद् में सम्पूर्ण व्यवस्थापन कार्य का संचालन करना पड़ता है। संसद् के दलीय सचेतक (Whips) प्रधानमन्त्री के नियन्त्रण में रहते हैं। उनके द्वारा वह लोकसदन के अपने दल के सदस्यों को आवश्यक आदेश देता है। मुख्य सचेतक की सहायता से वह सदन को समय-सूचक कार्यवाहियों से निर्दिष्ट करता है, कार्य-व्यवहार बतलाता है और विरोधी दल की राय जानकर प्रत्येक कार्यवाही के लिए समय निश्चित करता है। प्रधानमन्त्री को राजा द्वारा लोकसदन को विघटित कराने का महत्वपूर्ण अधिकार है और राजा साधारणतया उसके इस परामर्श को अस्वीकार नहीं कर सकता।

परन्तु अपनी इस महत्वपूर्ण स्थिति के कारण प्रधानमन्त्री मनमानी नहीं कर सकता। उसे सदैव संसद् सदस्यों की नाड़ी पर हाथ रखे हुए उनकी भावनाओं का ध्यान रखना पड़ता है कि उसके क्रिया-कलापों के प्रति उसकी प्रतिक्रिया क्या है? वह अपने दलीय सदस्यों और जनमत की उपेक्षा नहीं कर सकता। लोकमत की अवहेलना से वह बचता है क्योंकि उसका और उसके दल का भावी निर्वाचन अनुकूल लोकमत पर ही निर्भर होता है।

प्रधानमन्त्री की शक्तियों की परिसीमाएँ
(Limitations of the Powers of the Prime Minister)

ब्रिटिश प्रधानमन्त्री विपुल अधिकारों का स्वामी है, लेकिन व्यवहार में वह अपने पाँच वर्ष के कार्यकाल का पूरा उपभोग तभी कर पाता है जब उसे केबिनेट के साथियों का समर्थन मिलता रहे और लोकसदन में बहुमत का विश्वास प्राप्त रहे। जो अभिसमय (Convention) प्रधानमन्त्री की शक्ति को सीमित करते हैं और जो स्थितियाँ उसके विशाल अधिकारों पर रोक लगाती हैं, वे मुख्यतः इस प्रकार हैं—

(1) यदि लोकसदन में किसी महत्वपूर्ण विषय पर सरकार ही हार हो जाए तो प्रधानमन्त्री त्याग-पत्र दे देता है अथवा वह सम्राट या साम्राज्ञी से संसद् को भंग करने की प्रार्थना कर सकता है। ससद् भंग किए जाने की स्थिति में नए चुनाव कराये जाते हैं।

(2) प्रधानमन्त्री को स्वयं पद-त्याग के लिए विवश किया जा सकता है। 1917 में एस्किथ को प्रधानमन्त्री पद त्यागने के लिए इस कारण विवश होना पड़ा क्योंकि 1914-18 के महायुद्ध में उसके रवैये के प्रति केबिनेट में बारी असन्तोष था। 1940 ई. में चैम्बरलेन को, प्रधानमन्त्री के पद से इसलिए त्याग-पत्र देना पड़ा कि केबिनेट और संसद् में असन्तुष्ट सदस्यों ने उसे इसके लिए बाध्य कर दिया। 1956 में ईडन की नीति के प्रति और 1963 में मैकमिलन के प्रति तीव्र असन्तोष की लहर फैल गई। अतः इन दोनों प्रधानमन्त्रियों को अपना पद छोड़ना पड़ा।

(3) बीमारी की स्थिति में वह स्वय पद-त्याग कर देता है, पर यदि वह ऐसा नहीं करता तो उस पर पद-त्याग के लिए दबाव डाला जा सकता है।

(4) यद्यपि प्रधानमन्त्री वैधानिक रूप से इस बात के लिए स्वतन्त्र है कि वह किसी भी व्यक्ति को केबिनेट में ले, किन्तु उसकी इस शक्ति की व्यावहारिक और राजनीतिक सीमाएँ हैं। उसके लिए अपने दल के प्रभावशाली और प्रतिभाशाली सदस्यों की उपेक्षा करना प्रायः कठिन होता है।

(5) केबिनेट के गठन में प्रधानमन्त्री की शक्ति की एक अन्य सीमा यह है कि वह दल के उन सदस्यों की अवहेलना नहीं कर सकता जिन्हें दल में काफी सदस्यों का समर्थन प्राप्त हो।

(6) यद्यपि एक प्रधानमन्त्री दुर्बल और अपेक्षाकृत कम प्रभावशाली मंत्री को पदच्युत कर सकता है और 1962 में मैकमिलन ने अपनी केबिनेट के एक-तिहाई सदस्यों को हटा दिया था, लेकिन प्रधानमन्त्री साधारणतया ऐसा कदम उठाने से बचता है क्योंकि यह आशंका रहती है कि इस प्रकार की पदच्युतियाँ दलीय सदस्यों में असन्तोष फैला दें। यदि केबिनेट मन्त्रियों में असुरक्षा की भावना पैदा हो जाए तो एक शक्तिशाली प्रधानमन्त्री का नेतृत्व भी खतरे में पड़ सकता है।

(7) प्रधानमन्त्री अकेला ही नीति-निर्धारण नहीं कर सकता। विदेश मंत्री, गृह मंत्री, वित्त मंत्री आदि का नीति-निर्धारण में कुछ न कुछ हाथ अवश्य रहता है। व्यवहार में नीति की रूपरेखा दल में, अनुसन्धान निकायों में, केबिनेट समितियों में और निजी गोष्ठियों में तैयार हो जाती है और अनेक निर्णय इन्हीं स्तरों पर ले लिये जाते हैं।

प्रधानमन्त्री के लिए इन निर्णयों के विपरीत जाना कठिन होता है। प्रधानमन्त्री से मतभेद रखने वाले मंत्री को पद-मुक्त भले ही होना पड़े, लेकिन इससे अन्ततोगत्वा केबिनेट की स्थिति कमजोर हो जाती है। यदि प्रधानमन्त्री नीति-निर्धारण में मनमानी करता है तो दलीय एकता को आघात पहुँचाता है और अपनी स्थिति को संकट में डालता है।

(8) यह बात भी प्रधानमन्त्री की शक्ति पर एक सीमा लगाती है कि वह प्रशासन के सभी पहलुओं पर दृष्टि नहीं रख सकता। 19वीं शताब्दी में प्रधानमन्त्री पील (Peel) के लिए चाहे यह सम्भव था कि वह सरकार में घटित सब बातों को जान सके लेकिन आज (जबकि सरकार के कार्य अत्यधिक विस्तृत हो गए हैं) यह सम्भव नहीं है।

(9) प्रधानमन्त्री की नेतृत्व-क्षमता भी उसकी शक्ति में वृद्धि अथवा कमी करती है। अगर प्रधानमन्त्री 'करिश्माई व्यक्तित्व' का धनी है तो उसकी शक्तियों में वृद्धि होगी। अगर उसमें इस गुण का अभाव है तो उसकी स्थिति कमजोर होगी।

प्रधानमन्त्री की वास्तविक स्थिति

(Actual Position of Prime Minister)

ब्रिटिश शासन-व्यवस्था में प्रधानमन्त्री की स्थिति एक अधिनायक (Dictator) के समान है, अन्तर केवल यह है कि एक अधिनायक अथवा तानाशाह मनमाने तरीके से अपनी शक्तियों का प्रयोग करता है जबकि प्रधानमन्त्री स्थापित नियमों, परम्पराओं और अभिसमयों के अनुसार देश का शासन करता है और इनकी अवहेलना करने पर उसका अस्तित्व संकट में पड़ जाता है। प्रधानमन्त्री एक संवैधानिक तानाशाह है जो अपने मंत्रियों को उचित सम्मान देता है और उनके मत का उचित आदर करता है। यद्यपि मतभेद उपस्थित होने पर वह अपनी स्वेच्छा से ही कार्य करता है और मतभेद अधिक बढ़ जाने पर उसे नहीं बल्कि मंत्री को ही पद-त्याग करना होता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि मन्त्रिमण्डल के अन्य मंत्रियों की तुलना में उसकी स्थिति अधिक महत्व की है और वही मन्त्रिमण्डल के निर्माण, संचालन व पतन के लिए उत्तरदायी होता है, परन्तु फिर भी विविध मंत्रियों के सम्बन्ध में उसकी स्थिति इतनी शक्तिशाली नहीं होती जितनी संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति की है। लॉस्की के शब्दों में, "अमेरिका में मन्त्रिमण्डल के सदस्य राष्ट्रपति के 'दास' हैं जबकि ब्रिटेन में वे प्रधानमन्त्री के 'सहयोगी' हैं।"

प्रधानमन्त्री और उसके सहयोगी में सम्बन्धों को विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से व्यक्त किया है। लॉर्ड मार्ले (Morley) ने प्रधानमन्त्री को 'समकक्षों में प्रथम' (First among Equals) बतलाते हुए कहा है कि "मन्त्रिमण्डल में यद्यपि सभी मंत्रियों का स्थान एक-सा है, उनकी आवाज एक-सी है और कभी-कभी जब मतभेद के समय मत लिए जाते हैं तो उनके मतों की भी समानता पर आधारित 'एक व्यक्ति एक मत' के सिद्धान्त के अनुसार गणना होती है, फिर भी मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष समान पद वालों में प्रथम है और जब तक वह पद रहता है उसकी स्थित असाधारण व अद्वितीय रहती है।" लेकिन ब्रिटिश उदारवादी लेखक रैमजे म्योर (Ramsay Muir) ने इस विचार को तिरस्कृत करते हुए लिखा है कि "प्रधानमन्त्री को समकक्षों में प्रथम कहना सर्वथा भ्रममूलक है क्योंकि वह अपने सहयोगियों को नियुक्त तथा पदच्युत कर सकता है। विधि में नहीं, लेकिन व्यवहार में वह राज्य का कार्यकारी प्रधान है, जिसकी शक्तियाँ इतनी व्यापक हैं जितनी विश्व के किसी भी संवैधानिक शासक, यहाँ तक कि अमेरिकी राष्ट्रपति

की भी नहीं है।"[1] हरबर्ट मोरीसन के मतानुसार भी प्रधानमन्त्री को 'समकक्षों में प्रथम' कहा जाना उसकी स्थिति को कम आँकना है। जैनिंग्स के अनुसार, "प्रधानमन्त्री केवल समकक्षों में प्रथम ही नहीं है और न केवल सितारों के बीच चन्द्रमा ही, बल्कि वह तो सूर्य के समान है जिसके चारों ओर अन्य नक्षत्र घूमते हैं।"[2]

प्रधानमन्त्री की स्थिति का महत्व केवल अन्य मन्त्रियों के सन्दर्भ में ही नहीं है, अपितु उसकी स्तिति शासन-सूत्र के सभी पहलुओं की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसलिए जैनिंग्स ने कहा है कि "प्रधानमन्त्री को सम्पूर्ण संविधान की आधारशिला कहना ही उपयुक्त है।"[3] फाइनर के अनुसार, "प्रधानमन्त्री की श्रेष्ठता इस बात से प्रकट होती है कि वह मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष, ससद् का नेता, सामान्य नीति से सम्बन्धित विषयों पर सम्राट से विचार-विमर्श की प्रमुख कड़ी, देश में दल का सर्वमान्य नेता तथा सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति का मूर्तिमान रूप है।"[4] किन्तु फिर भी प्रधानमन्त्री की स्थिति बहुत कुछ उसके व्यक्तित्व पर निर्भर है। फाइनर के शब्दों में, "वह (घोड़े की) जीन पर दृढ़ता से अवस्थित है, लेकिन वह मँजा हुआ सवार है या लुढ़कने वाला, भाड़े के टट्टू के योग्य है या फौजों और घुड़दौड़ के घोड़े के योग्य, यह उस पर निर्भर करता है।"[5] पुनश्च: लॉस्की के इस विचार में पर्याप्त बल है कि प्रधानमन्त्री की स्थिति दलीय प्रणाली से बँधी हुई है।"[6] राजनीतिक दल का नेता बने रहने और लोकसभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त रहने तक ही वह राष्ट्रीय महत्व का व्यक्ति समझा जाता है, किन्तु ज्योंही वह दलीय समर्थन से वंचित हो जाता है और लोकसभा के बहुमत का विश्वास खो बैठता है, उसका सम्पूर्ण महत्व लुप्त प्रायः हो जाता है। वस्तुतः अपना महत्व कायम रखने के लिए प्रधानमन्त्री को व्यक्तित्वपूर्ण होना पड़ता है। अपने व्यक्तित्व द्वारा अर्जित किए गए महत्व के अनुरूप ही वह अपने पद को महत्व दे पाता है। जेनिंग्स ने ठीक ही लिखा है कि "प्रधानमत्री की शक्ति और महत्ता कुछ उसके व्यक्तित्व पर, कुछ उसकी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा पर और कुछ उसके दल के समर्थन पर निर्भर करती है।"[7]

सारांश में, यही कहा जा सकता है कि प्रधानमन्त्री देश की शासन-व्यवस्था की धुरी और गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र-बिन्दु होता है। वह देश की नीतियों का प्रवक्ता होता है। उसके कुशल तथा गतिशील नेतृत्व पर ही देश का भविष्य निर्भर करता है।

---

1. *Ramsay Muir* : How Britain is Governed.
2. *Morrison, H.* : Parliament and Govt.
3. *Ivor Jennings* : The British Constitution, p. 187.
4. *Finer, S.E.* : Governments of European Powers
5. *Finer, S.E.* : Governments of European Powers
6. *Laski* : Parliamentary Govt. in England.
7. *Ivor Jennings* : The British Constitution, p 187

संसद्

(Parliament)

ब्रिटेन की ससद् को 'ससदों की जननी' कहा जाता है। प्रत्येक प्रजातन्त्रात्मक देश ने किसी न किसी रूप में ब्रिटेन की महान् संसद् का अनुसरण किया है। ब्रिटिश संसद् में दो सदन हैं—लॉर्ड सभा (House of Lords) तथा लोकसदन (House of Commons)। लोकसदन को निम्न सदन (Lower House) और लॉर्ड सभा को उच्च सदन (Upper House) कहा जाता है।

संसद की सम्प्रभुता

(Sovereignty of Parliament)

ब्रिटेन में संसदीय सर्वोच्चता का सिद्धान्त प्रचलित है। ब्रिटेन में संसद ही सम्प्रभु है, और यही शासन-तन्त्र को सचालित तथा नियन्त्रित करती है। वैधानिक तथा कानूनी रूप में ससद् किसी भी प्रकार से मर्यादित नहीं है। उसकी सत्ता सर्वोपरि, असीमित और निरकुश है। वैधानिक रूप से ससद सब कुछ कर सकती है—चाहे उसका काम पागलपन का हो या बुद्धि का। सैद्धान्तिक दृष्टि से विधि-निर्माण के क्षेत्र में ब्रिटिश ससद को प्राप्त इस शक्ति को ही 'संसद की सम्प्रभुता' (Sovereignty of Parliament) की सज्ञा दी जाती है। संसदीय सम्प्रभुता के मुख्य प्रतिपादकों में सर एडवर्ड कोक, डीलोमे, जे.ए.आर. मेरियट तथा डायसी के नाम उल्लेखनीय हैं।

संसद् की सम्प्रभुता विषयक कुछ मत

ब्रिटिश ससद् की सम्प्रभुता पर विधि-शास्त्रियों, राजनीतिज्ञों और विद्वान् लेखकों के उल्लेखनीय विचार निम्नांकित हैं—

सर एडवर्ड कोक (Sir Edward Coke) के अनुसार, "ससद् की शक्ति और अधिकार-क्षेत्र इतने महान् श्रेष्ठ एवं अनियन्त्रित हैं कि उस पर किसी व्यक्ति का, किन्हीं कारणों का और किसी भी बाधा का बन्धन नहीं है।"

डीलोमे (Delome) के शब्दों में, "ब्रिटिश विधान-वेत्ताओं का यह आधारभूत सिद्धान्त है कि संसद् स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री बना देने के अतिरिक्त और सब कुछ कर सकती है।"

जे ए. आर. मैरियट (J.A.R. Marriot) ने लिखा है, "किसी दृष्टि से देखें, ब्रिटिश विधान-मण्डल विश्व में सबसे अधिक मनोरंजक और महत्वपूर्ण है। इससे प्राचीन विधान-मण्डल अन्य कोई नहीं है, इसका अधिकार-क्षेत्र सबसे अधिक विस्तृत है और

इसकी शक्ति असीम है। यह धार्मिक और लौकिक सभी मामलों में विधि-निर्माण की सर्वोच्च सत्ता है।"[1]

डायसी (Dicey) का मत है कि "ब्रिटिश संसद् वैधानिक दृष्टि से इतनी शक्तिशाली है कि वह एक शिशु को प्रौढ़ करार दे सकती है, किसी भी व्यक्ति को मृत्योपरान्त भी राजद्रोही सिद्ध कर सकती है, गैर-कानूनी सन्तान को कानूनी ठहरा सकती है और यदि उचित समझे तो किसी भी व्यक्ति को अपने ही मामले में न्यायाधीश बना सकती है।"[2] डायसी के अनुसार संसद् की सम्प्रभुता से अभिप्राय यह है कि—

(क) संसद् कोई भी कानून बना सकती है,

(ख) संसद् किसी भी कानून को निरस्त कर सकती है;

(ग) ब्रिटिश संविधान में कोई ऐसा सीमा-चिन्ह नहीं है जिससे यह निर्णय हो सके कि कौनसा कानून मौलिक है तथा कौनसा अमौलिक;

(घ) ब्रिटिश कानून ऐसे किसी भी अधिकार को मान्यता प्रदान नहीं करता जो संसद् द्वारा निर्मित किसी भी नियम को रद्द कर दे, अथवा अवैधानिक ठहरा दे;

(च) संसद् की सम्प्रभुता राजा के स्वामित्व या शासन (Dominion) के प्रत्येक भाग पर व्याप्त है।

डायसी का उपर्युक्त मत संसदीय सम्प्रभुता अथवा सर्वोच्चता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। ब्रिटिश संसद राजपद को समाप्त कर सकती है तथा राजा को अपदस्थ भी कर सकती है। ब्रिटेन में न्यायिक पुनरावलोकन के सिद्धान्त का प्रचलन नहीं होने से संसद पर न्यायपालिका का बन्धन नहीं है। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन में संवैधानिक विधि तथा साधारण विधि में भी किसी तरह का भेद नहीं किया गया है। यह स्थिति भी ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता स्थापित करने में सहायक बनी है। संसद को विधि-निर्माण के क्षेत्र में अत्यन्त व्यापक अधिकार है, और उसके द्वारा बनाई गई विधि सर्वोच्च तथा सर्वव्यापक मानी जाती है। उसकी विधि-निर्माण की शक्ति असीमित है।

ब्रिटिश संसद ने समय-समय पर जो महत्त्वपूर्ण और क्रान्तिकारी कानून पारित किए हैं वे संसद की प्रभुसत्ता का बोध कराते हैं। उदाहरणार्थ, 1701 के उत्तराधिकार सम्बन्धी नियम (Act of Settlement, 1701) ने राजा के दैवी अधिकार (Divine Right of Kings) को अमान्य ठहरा दिया और सम्राट-पद के उत्तराधिकारी के निर्णय के संसद् के अधिकार को मान्य कर दिया। 1717 के 'सप्तवर्षीय कानून' (Septennial Act) द्वारा लोकसभा की अवधि तीन वर्ष से बढ़ाकर सात वर्ष कर दी गई और 1911 तथा 1949 के संसदीय अधिनियमों द्वारा लॉर्ड-सभा के अधिकार कम करके लोकसभा को सर्वप्रमुख सदन बना दिया गया।

संसद् की सम्प्रभुता की परिसीमाएँ एवं मूल्यांकन
(Limitations and Evaluation of the Sovereignty of Parliament)

संसद् की सम्प्रभुता केवल एक कानूनी कल्पना है, इसमें व्यावहारिक पहलू की उपेक्षा की गई है। वैधानिक रूप से पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न होते हुए भी संसद् की शक्ति पर

1. *Marriot :* Mechanism of the Modern State
2. *Dicey :* Introduction to the Study of Law of Constitution.

व्यावहारिक दृष्टि से अनेक परम्पराओं और राजनीतिक यथार्थताओं का बन्धन है जो उसकी सम्प्रभुता को सीमित बनाता है। संसदीय सम्प्रभुता पर निम्नांकित बन्धन स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं—

(1) **जनमत**—संसदीय सम्प्रभुता पर यह व्यावहारिक प्रतिबन्ध है। विधि सम्बन्धी सारे प्रस्ताव व्यावहारिक तथा नैतिकता की कसौटी पर कसे जाते हैं। यह ध्यान रखना पड़ता है कि विधि कहीं प्राकृतिक नियमों, जनता की इच्छा और परम्पराओं के विरुद्ध न हो।

(2) **मन्त्रिमण्डल की शक्ति**—समय की कमी और कार्य की अधिकता के कारण संसद् अपनी असीमित शक्तियों का पूर्ण उपभोग नहीं कर पाती। मन्त्रिमण्डल उसका नेतृत्व करता है। विधि-निर्माण, वित्त-नियन्त्रण तथा प्रशासकीय मामलों में मन्त्रिमण्डल का बोल-बाला रहता है। जब तक मन्त्रिमण्डल का सदन में बहुमत है तब तक वह संसद् का सेवक नहीं, वरन् स्वामी होता है।

(3) **प्रदत्त विधान**—कार्य-भार की अधिकता और समयाभाव के कारण संसद् विधि-निर्माण सम्बन्धी कुछ कार्य अन्य संस्थाओं को सौंप कर अपना बोझ हल्का कर लेती है। राजा अपने एकातिक अधिकार के आधार पर आज्ञाएँ निकालता है जिन्हें सपरिषद् आदेश (Orders-in Council) कहते हैं। संसद् ऐसे कानून भी पारित कर देती है जिसके द्वारा मन्त्री, विभाग या किसी संस्था को नियम निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है। संसद् उन सब पर पूर्ण अंकुश नहीं रख सकती।

(4) **निर्वाचक मण्डल**—वास्तविक सम्प्रभुता संसद् में नहीं, अपितु निर्वाचक मंडल (Electorate) में निहित है। निर्वाचकगण ही संसद् को चुनते हैं और वे ही उसे हटा भी सकते हैं। अतः संसद् को निर्वाचकों की प्रतिक्रिया को ध्यान में रखते हुए ही अपना कार्य करना पड़ता है।

(5) **संसद् का अधिकार**—संसद् अपनी सम्प्रभुता और जीवन-काल को स्वयं भी निश्चित कर सकती है। संसद् ने ही अपने अधिनियम, 1911 (Parliament Act of 1911) द्वारा अपना जीवन-काल 7 वर्ष से घटाकर 5 वर्ष कर दिया था। संसद् की सम्प्रभुता पर इस अर्थ में भी अंकुश है कि वह अपने कार्यकाल में तब तक वृद्धि नहीं कर सकती जब तक कि वह राष्ट्र की मौन सहमति प्राप्त न कर ले। द्वितीय महायुद्धकाल में राजनीतिक दलों और राष्ट्र के मौन समर्थन के बल पर ही संसद् ने अपना कार्यकाल लगभग 8 वर्ष कर दिया था।

(6) **विधि का शासन**—ब्रिटेन में संसद् की सम्प्रभुता और विधि का शासन (Rule of Law) दोनों एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं। 'विधि के शासन' का अर्थ है कि देश का आम कानून सब पर लागू होता है। किसी के पास कोई मनमानी शक्ति नहीं है और कानून के समक्ष सभी नागरिक समान हैं। संसद् की सम्प्रभुता तभी तक सह्य है जब तक 'विधि का शासन' लागू रहता है। संसद् उसका उल्लंघन नहीं कर सकती।

(7) **अन्तर्राष्ट्रीय कानून**—संसद् यद्यपि वैधानिक रूप से अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के विरुद्ध विधियों का निर्माण कर सकती है, किन्तु व्यवहार में उसे उनका आदर करना

पड़ता है । 'वेस्ट रैण्ड गोल्ड माइनिंग कम्पनी बनाम सम्राट् नामक विवाद मे यह स्वीकार कर लिया गया था कि "जो कुछ सम्य राष्ट्रों ने निर्णय किया है, वह हमारे देश में भी माना जाना चाहिए ।" अन्तर्राष्ट्रीय विधि द्वारा स्वीकृत नियमों का पालन करना सम्य राष्ट्र का दायित्व समझा जाता है । इससे भी ससदीय सर्वोच्चता सीमित होती है ।

(8) संसद् का संगठन—ससद् की सम्प्रभुता एव शक्ति ससद् के स्वय के सगठन से मर्यादित हो गई है । ससद् की रचना तीन अवयवो के मिलने से हुई—लोकसदन, लॉर्ड-सभा तथा राजा । आज राजा की शक्ति औपचारिक मात्र रह गई है तथा लॉर्ड-सभा लगभग शक्तिहीन हो गई है । व्यवहारतः लोकसदन ही ससद् की शक्तियों का प्रतीक है, किन्तु फिर भी विधि-निर्माण में विशेष प्रक्रियाओं को अपनाने के कारण ये तीनों अवयव किसी न किसी रूप में एक-दूसरे को नियन्त्रित करते है तथा शक्तियों को केवल लोकसदन में केन्द्रीभूत होने से रोकते हैं ।

(9) अन्तर्राष्ट्रीय संगठन—संसदीय सम्प्रभुता पर अन्तर्राष्ट्रीय सगठन भी व्यवहारतः प्रतिबन्ध का कार्य करते हैं । संयुक्त राष्ट्र-सघ द्वारा पारित प्रस्तावों को ब्रिटेन द्वारा भी मान्यता दी जाती है । राष्ट्रमण्डल की भावना के अनुरूप भी ब्रिटिश ससद् आचरण करती है । इससे भी ब्रिटिश संसद की शक्तियाँ आंशिक रूप से सीमित होती हैं ।

(10) ब्रिटेन के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध—ब्रिटेन के अन्य राष्ट्रो के साथ सम्बन्ध भी ब्रिटिश ससद की स्थिति को सीमित करते हैं । वह अपने मित्र-राष्ट्रों के विरुद्ध कोई विधि नहीं बनाती है तथा ऐसा कोई कार्य नहीं करती है, जिसे कि इन सम्बन्धो पर प्रतिकूल प्रभाव पडे ।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि ब्रिटेन में ससदीय सम्प्रभुता के सिद्धान्त को अगीकार किया गया है, तथापि उस पर अनेक प्रकार के नियन्त्रण उसकी शक्ति तथा सत्ता को नियन्त्रित करते हैं ।

लॉर्ड-सभा
(House of Lords)

लॉर्ड-सभा संसार की सर्वाधिक प्राचीन विधान निर्मात्री सभा है । ऐतिहासिक दृष्टि से वह लगभग एक हजार वर्ष से कार्यरत है । यह लोकसदन से भी अधिक प्राचीन है । इसको नॉर्मन एजिवन काल की 'महान् परिषद्' (The Magnum Councillium or the Great Council) की उत्तराधिकारिणी माना जा सकता है ।

लॉर्ड-सभा की रचना
(Composition of House of Lords)

लॉर्ड-सभा विश्व की सबसे बडी विधायी सस्था है । वर्तमान में इसकी सदस्य सख्या 1080 है जिसमे 1054 लौकिक तथा 26 आध्यात्मिक लॉर्ड्स हैं । लॉर्ड-सभा की रचना निम्नलिखित सदस्यों से मिलकर होती है जो अग्रलिखित छः श्रेणियो में विभक्त किए जा सकते हैं—

(1) राजवंश के सदस्य—ये लॉर्ड-सभा के प्रथम श्रेणी के सदस्य होते हैं। इनकी संख्या सदैव बहुत थोडी होती है। वर्तमान में इनकी संख्या 4 है। ये सदस्य लॉर्ड-सभा की बैठकों में प्राय शामिल नहीं होते।

(2) आनुवंशिक या वंश-परम्परागत पीयर (Hereditary Peers)—ये द्वितीय श्रेणी के सदस्य होते हैं। लार्ड-सभा की सदस्यता का बहुसख्यक भाग इसी वर्ग का होता है। इस प्रकार के सदस्यों में सेना, कला, संस्कृति अथवा शिक्षा आदि क्षेत्रों के विशिष्ट व्यक्तियों को मनोनीत किया जाता है। ऐसी सदस्यता वंश-परम्परा के आधार पर सदस्य के ज्येष्ठ पुत्र को प्राप्त होती है, जिसकी आयु कम से कम 21 वर्ष की होनी चाहिए। इस वर्ग के सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं है। इनकी संख्या में वृद्धि कभी भी की जा सकती है। इन सदस्यों की पाँच श्रेणियाँ हैं—बैरन (Baron), विस्काउन्ट (Viscount), अर्ल (Earl), मार्क्विस (Marquis) और ड्यूक (Duke)। ये पीयर पहले स्वयं राजा द्वारा नियुक्त किये जाते थे, किन्तु अब इनकी नियुक्ति राजा द्वारा प्रधानमन्त्री के परामर्श से की जाती है। स्त्रियाँ भी लॉर्ड-सभा की सदस्य हो सकती हैं।

(3) धार्मिक लॉर्ड भी लॉर्ड-सभा के सदस्य होते हैं। ये लोग पीयर नहीं होते वरन् धर्मगुरु (The Lords Spiritual) होते हैं। इनकी संख्या 26 है। इनमें से पाँच तो कैण्टबरी के यार्क आर्कबिशप तथा लन्दन, डरहम और विंचेस्टर के बिशप होते हैं। शेष 21 पदों पर इग्लैण्ड के वरिष्ठ (Senior) बिशपों की नियुक्ति की जाती है।

(4) स्कॉटलैण्ड के प्रतिनिधि पीयरों का निर्वाचन 1707 के स्कॉटलैण्ड और इग्लैण्ड के एकीकरण कानून के उपबन्धों के अनुसार होता है। इस कानून द्वारा यह व्यवस्था की गई थी कि स्कॉटलैण्ड लॉर्ड-सभा के लिए 16 सदस्य भेजेगा जिनका निर्वाचन स्कॉटलैण्ड के पीयर करेंगे। 1963 ई. की नई व्यवस्था के अनुसार स्कॉटलैण्ड के सभी पीयर लॉर्ड-सभा में स्थान प्राप्त कर सकते हैं। चूँकि एकीकरण अधिनियम में यह व्यवस्था नहीं थी कि नए पीयर भी होंगे, अत. पुराने पीयर धीरे-धीरे समाप्त होते जा रहे हैं और एक समय ऐसा आएगा जब लॉर्ड-सभा से स्कॉटलैण्ड के प्रतिनिधि पीयरों का वर्ग ही समाप्त हो जाएगा।

(5) आजीवन पीयर, 1958 के 'Life Peerages Act' के अनुसार राजा द्वारा मनोनीत किए जाते हैं। सरकार पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध आरोपित नहीं किया गया है कि कितनी संख्या तक ऐसे पीयर मनोनीत किए जाएँगे। इस वर्ग के अन्तर्गत प्रायः वयोवृद्ध नेताओं की नियुक्ति की जाती है। उक्त अधिनियम के अधीन इंग्लैण्ड की भद्र महिलाओं और पुरुषों को लॉर्ड-सभा का सदस्य बनाया जाता है। आजीवन पीयरों को कोई वेतन नहीं मिलता, उन्हें केवल मार्ग-व्यय मिलता है।

(6) विधि-लॉर्ड या साधारण अपील लॉर्डों की वर्तमान संख्या 9 है। ये लॉर्ड जीवन भर के लिए चुने जाते हैं। इन लॉर्डों के कारण ही लॉर्ड-सभा सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य करती है। 1876 ई. के अधिनियम के अनुसार इनकी नियुक्ति विधि-विशेषज्ञों, न्यायाधीशों में से की जाती है।

आयरलैण्ड के प्रतिनिधि पीयर अब लॉर्ड-सभा मे नहीं रहे हैं। 1932 में आयरलैण्ड के स्वतन्त्र हो जाने के बाद से नवीन आयरिश पीयरों का मनोनयन बन्द हो जाने से इनकी सख्या निरन्तर घटती गई। 1958 मे केवल एक आयरिश पीयर रह गया तथा उसकी भी 1961 मे मृत्यु होने से इस वर्ग का प्रतिनिधित्व समाप्त हो गया।

लॉर्ड-सभा के सदस्यो के उक्त वर्गों को देखने से स्पष्ट है कि इसकी रचना में पैतृकाधिकार, नियुक्ति और निर्वाचन तीनों ही सिद्धान्तो का समन्वय है। अधिकाश सदस्य पैतृकाधिकार अथवा वशानुगत रूप से सदस्यता प्राप्त करते हैं। स्कॉटलैण्ड के प्रतिनिधि पीयर चुनाव द्वारा सदस्य बनते हैं तो न्यायिक और धार्मिक लॉर्डों की नियुक्ति होती है।

एक बार लार्ड बनने पर वह इस पद और उपाधि का आजीवन उपयोग करता है। उसकी मृत्यु हो जाने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र उसका उत्तराधिकारी बनता है। 1963 के पीयरएज एक्ट के अनुसार अब एक वंशानुगत लॉर्ड अपनी उपाधियों का परित्याग कर सकता है और लोकसदन का चुनाव लड़ सकता है। सामान्यतः सम्राट के जन्म-दिवस पर, नव-वर्ष पर तथा राज्याभिषेक और संसद्-विघटन के दिवस पर लॉर्ड बनाने का सम्मान दिया जाता है। वैसे जब प्रधानमन्त्री आवश्यक समझे उसके परामर्श से सम्राट यह सम्मान प्रदान कर सकता है। लार्ड बनाए जाने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

विशेषाधिकार और निर्योग्यताएँ

लॉर्ड-सभा के सदस्यों को विचार अभिव्यक्त करने, संसद् का अधिवेशन बुलाने, सदन के बहुमत दल के निर्णयों के विरुद्ध संसद् की पत्रिकाओं में लिखित विरोध प्रकाशित करने आदि के विशेषाधिकार (Privileges) हैं। लेकिन कुछ असमर्थताएँ (Disabilities) भी हैं, जैसे—उन्हें संसदीय चुनाव में मताधिकार प्राप्त नहीं है, वे लोकसदन के चुनाव के लिए प्रत्याशी के रूप में खड़े नहीं हो सकते थे। 1963 के पीयरएज एक्ट पारित होने के बाद उपाधि का परित्याग करके निर्वाचन द्वारा लोकसदन की सदस्यता ग्रहण की जा सकती है। पीयरएज का एक बार परित्याग कर देने का निर्णय वापस नहीं लिया जा सकता। ससदीय कार्य के लिए पीयरों को कोई वेतन नहीं मिलता, किन्तु यदि वे सब बैठकों में से एक-तिहाई बैठकों में शामिल हों तो उन्हें यात्रा-व्यय दिया जाता है।

गणपूर्ति और कार्य-प्रणाली

संसद् के दोनों सदनों का प्रारम्भ और सत्रावसान साथ-साथ होता है। लॉर्ड-सभा का अधिवेशन लगभग सप्ताह में केवल चार दिन—सोमवार से गुरुवार तक होता है और वह भी लगभग 2 घण्टे प्रतिदिन। सदन में उपस्थिति बहुत ही कम होती है। 1957 के सुधार अधिनियम के परिणामस्वरूप अब औसत उपस्थिति 120 हो गई है। सभा के कोरम की पूर्ति केवल 3 सदस्यों की उपस्थिति से हो जाती है। विधि पारित करते समय 30 सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक है।

लॉर्ड-सभा के विवाद प्राय: उच्च-स्तरीय होते हैं। इसकी समिति पद्धति लोकसदन की समिति पद्धति से सरल है। एक समिति तो पूरे सदन की है और दूसरी एक स्थायी

समिति है जो प्रथम समिति द्वारा पारित विधेयकों में संशोधन करती है। सभा की समकालीन और प्रवर समितियाँ भी होती हैं जो विशेष प्रकार के कानूनों पर विचार करती हैं। स्थायी समितियों और समापन प्रस्ताव (Closure Motion) की व्यवस्था नहीं है। केवल दो स्थायी आदेश (Standing Orders) हैं। एक के अनुसार कोई भी सदस्य एक ही विषय पर दो बार भाषण नहीं दे सकता। दूसरे आदेश के अधीन वाद-विवाद विषय से भिन्न अथवा असम्बद्ध नहीं हो सकता।

लॉर्ड सभा का संगठन

लॉर्ड-सभा का सभापतित्व लॉर्ड चांसलर (Lord Chancellor) करता है अर्थात् वह वूल-सैक (Wool Sack) लॉर्ड चांसलर की विशिष्ट गद्दी पर बैठकर कार्यक्रम का संचालन करता है। वह सदन का पदेन अध्यक्ष (Speaker) होता है। राजा की तरफ से कुछ अन्य ऐसे पीयरों की नियुक्ति भी होती है जो अध्यक्ष की अनुपस्थिति में अध्यक्ष का कार्य करते हैं, उन्हें उपाध्यक्ष (Deputy Speaker) कहा जाता है। लॉर्ड चांसलर मन्त्रिमण्डल का सदस्य होता है जिसकी नियुक्ति प्रधानमन्त्री के परामर्श से राजा या रानी द्वारा की जाती है। सदन में अनुशासन सम्बन्धी अधिकार सम्पूर्ण सभा को सम्मिलित रूप से प्राप्त है, न कि लॉर्ड चांसलर को। सदस्यगण सभापति को सम्बोधित न करके सदन को सम्बोधित करते हैं अर्थात् 'माई लॉर्डस' (My Lords) कहकर अपना भाषण शुरू करते हैं। लॉर्ड चांसलर को निर्णायक मत देने का अधिकार नहीं होता। उनकी शक्तियाँ लोकसदन के अध्यक्ष की शक्तियों से बहुत कम हैं।

लॉर्ड-सभा की समितियों का एक लॉर्ड सभापति (Lords Chairman of the Committee) होता है जिसके कार्य वही होते हैं जो लोकसदन की अर्थोपाय समिति के चेयरमैन (Chairman of the Committee of Ways and Means) के होते हैं। वही 'सारे सदन की समिति' (The Committee of the Whole House) का सभापति होता है। सदन के स्थायी कर्मचारियों के सदन का लिपिक (Clerk of the House), जैंटिलमैन अशर ऑफ दी ब्लैक रॉड (Gentlemen Usher of the Black Rod) व सारजेंट एट आर्म्स (Sargeant-at-arms) प्रमुख होते हैं।

1911 ई. के संसदीय अधिनियम के पूर्व ब्रिटिश राजनीति में लार्ड सभा की स्थिति

(Position of the House of Lords in British Politics before the Parliamentary Act of 1911)

1911 ई. के संसदीय अधिनियम को हम ब्रिटिश राजनीति में लॉर्ड सभा की शक्ति और स्थिति की विभाजक-रेखा मान सकते हैं। 18वीं शताब्दी तक लॉर्ड सभा की शक्तियाँ लोक सदन के ही समान थीं और 1832 ई. का सुधार अधिनियम पारित होने से पूर्व तक दोनों सदनों के आपसी सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण थे। इसका मुख्य कारण यह था कि दोनों ही सदनों के सदस्य समाज के उच्च वर्ग से सम्बन्धित थे, और वर्ग-विभेद जैसी कोई बात नहीं थी। मैरियट के शब्दों में, "सामाजिक दृष्टि से अधिकांश नाइट्स

(लोकसदन के सदस्य) उसी वर्ग के थे, जिस वर्ग के लॉर्ड्स थे । बहुधा नाइट्स लोकसदन के सदस्यों के पुत्र अथवा भ्राता होते थे ।"

उन्नीसवीं शताब्दी के आते-आते लोकसदन यह दावा करने लगा कि निर्वाचन के आधार पर निर्मित होने के कारण वही जनता का सही प्रतिनिधि है और इसीलिए वह अधिक सत्ता का अधिकारी है । इससे लोकसदन तथा लॉर्ड सभा में शक्ति संघर्ष हुआ, जिसमें लॉर्ड सभा की पराजय हुई ।

सन् 1832 ई. के सुधार अधिनियम ने लॉर्ड-सभा की शक्तियों को सीमित कर दिया । इस अधिनियम के पारित होने के बाद लॉर्ड-सभा की स्थिति, व्यवस्थापन के क्षेत्र में लोकसदन जैसी नहीं रही । इस अधिनियम के पश्चात् पारित विविध अधिनियमों—1860 ई. के बजट, 1867 ई के सुधार अधिनियम, 1869 ई. के आयरलैण्ड चर्च के उच्छेदन विधेयक, 1884 ई. के सुधार कानून आदि पर लॉर्ड सभा को लोकसदन के हाथों प्रत्येक बार पराजय मिली ।

1895 से 1906 ई. की अवधि के दौरान लॉर्ड सभा की शक्तियों का पुनरोदय हुआ और उसके विरोध में रखे जाने वाले अनेक विधेयक असफल हो गए । इससे लॉर्ड सभा में अहंकार की भावना का विकास हुआ । रैम्जे म्योर के शब्दों में, "इसने बड़ी हिम्मत दिखाई और साहसपूर्वक, जैसा कि उसने पूरी 19वीं शताब्दी में कभी नहीं किया था, उदार मन्त्रिमण्डल के कई विधेयक अस्वीकार कर दिए—और अन्त में 1909 में उसने वित्त के क्षेत्र में लोकसभा की सर्वोच्चता पर भी हस्तक्षेप करने का प्रयास किया । लॉर्ड सभा ने 1909 ई. का बजट अस्वीकार कर दिया । इस पर लॉयड जार्ज (Llyod George) की उदार दलीय सरकार ने तूफान खड़ा कर दिया और कहा कि लार्ड सभा ने अपने अधिकारों का अनुचित प्रयोग किया है । वह लॉर्ड सभा के अधिकारों को कम करने पर तुल गया । उसके द्वारा बजट को पारित करने तथा लॉर्ड-सभा की शक्तियों का परिसीमन करने के प्रस्ताव पर जनमत जानने के लिए ससद को भंग करा दिया गया और देश में आम चुनाव हुए । चुनावों में उदार-दल की ही विजय हुई । इसके बाद 1910 ई. का बजट पारित हो गया और इसी वर्ष लोकसदन ने लॉर्ड सभा की शक्तियों को कम करने वाला विधेयक भी पारित कर दिया, किन्तु इस पर लॉर्ड-सभा ने अपनी स्वीकृति नहीं दी । अतः इस प्रश्न पर फिर से संसद् को भंग कराकर आम चुनाव करवाया गया और इस बार भी उदार दल की ही विजय हुई । ससद् का अधिवेशन पुनः प्रारम्भ हुआ । लॉर्ड-सभा की शक्ति को कम करने वाला विधेयक लोक सदन ने फिर से पारित किया और साथ ही लॉर्ड सभा को यह धमकी भी दे दी कि यदि उसने विधेयक के पारित होने पर मार्ग में रुकावट डाली तो सरकार राजा को परामर्श देकर उनकी विशाल संख्या में नए लार्डों की सृष्टि करा लेगी । लॉर्ड-सभा ने इस धमकी में आकर विधेयक पर अपनी स्वीकृति दे दी और इस तरह लॉर्ड-सभा की शक्तियों को अत्यधिक सीमित करने वाला 1911 का संसदीय अधिनियम (Parliamentary Act of 1911) पारित हो गया । 18 अगस्त, 1911 को उस पर सम्राट के हस्ताक्षर हो गए । बाद में 1949 ई के कानून द्वारा लॉर्ड सभा की शक्तियों को और भी कम कर दिया गया ।

1911 ई. के संसदीय अधिनियम के मुख्य प्रावधान और लॉर्ड सभा की स्थिति पर इसका प्रभाव

(Main Provisions of the Parliamentary Act of 1911 and the *Effect of the Act on the Position of the House of Lords*)

1911 ई. के संसदीय अधिनियम के मुख्य प्रावधान निम्नांकित हैं—

(1) "यदि कोई धन-विधेयक, जो लोकसदन में पास होने के बाद अधिवेशन समाप्त होने के कम से कम एक मास पूर्व, लॉर्ड सभा को भेजा गया हो तथा लॉर्ड सभा के पास आने के एक महीने के अन्दर उस सभा द्वारा स्वीकृत नहीं किया गया हो तो वह विधेयक (यदि लोकसदन कोई विपरीत आदेश जारी नहीं करता) राजा के समक्ष रख दिया जाएगा और उसके हस्ताक्षर हो जाने पर अधिनियम बन जाएगा (लॉर्ड सभा की स्वीकृति के बिना ही)।"

(2) इसमें धन-विधेयक को परिभाषित कर दिया गया और साथ ही इस बात का भी प्रावधान किया गया कि कोई विधेयक धन-विधेयक है या नहीं—इस बात का निश्चय स्पीकर लोकसदन के अध्यक्ष द्वारा ही किया जाएगा। अधिनियम की धारा इस प्रकार है—"एक लोक-विधेयक जिसमें लोक सदन के अध्यक्ष के विचार में निम्न विषयों में से कोई विषय सम्मिलित है अथवा उनसे सम्बन्धित कोई विषय सम्मिलित है—तो वह धन-विधेयक समझा जाएगा। लॉर्ड-सभा के सामने रखे जाने वाले प्रत्येक धन-विधेयक पर लोकसदन के अध्यक्ष का निर्णय अन्तिम होगा, जिसके प्रमाणस्वरूप उसके हस्ताक्षर होने चाहिए। उसके विरुद्ध किसी न्यायालय में अपील नहीं हो सकती।"

(3) "कोई भी अन्य लोक-विधेयक, जिसे लोकसदन तीन बार पास कर देता है और जो लॉर्ड-सभा के पास प्रत्येक बार अधिवेशन समाप्त होने के कम से कम एक मास पहले रख दिया जाता है, यदि उस सभा द्वारा प्रत्येक बार अस्वीकृत कर दिया जाता है तो वह विधेयक, बिना लार्ड-सभा की स्वीकृति के ही राजा के हस्ताक्षर हो जाने पर कानून बन जाएगा। यदि लोकसदन स्वयं ही अन्य विपरीत आदेश जारी नहीं कर देता है।" इसमें यह व्यवस्था की गई कि धन-विधेयकों के अतिरिक्त अन्य सार्वजनिक विधेयकों को लार्ड सभा अस्वीकृत या संशोधित कर सकती है, किन्तु यदि लोकसदन लगातार तीन सत्रों में उसे पास कर देता है तो वह विधेयक राजा के हस्ताक्षरों के लिए उसके सामने पेश कर दिया जाएगा, भले ही लॉर्ड सभा उससे सहमत न हो, किन्तु इस प्रतिबन्ध के साथ कि लोकसदन के प्रथम सत्र में द्वितीय वाचन और तीसरे सत्र को इस तिथि के भी जब वह विधेयक पास किया जाता है, दो वर्ष का समय बीत चुका हो।

(4) "लोकसदन का कार्यकाल अधिक से अधिक पाँच वर्ष होगा।" यह नियम पारित किया गया। पहले लोकसदन का कार्यकाल सात वर्ष का था।

अधिनियम का महत्त्व—1911 ई. के अधिनियम को तीव्र विरोध के बावजूद पारित किया गया। कतिपय लोगों ने तो इसे अंग्रेजी विधान को तोड़ने के लिए अर्द्ध-क्रान्तिकारी प्रयास भी कह डाला था। इस अधिनियम ने लॉर्ड सभा से उसकी महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ

छीन लीं और वैधानिक विषयों में शक्ति-सन्तुलन समाप्त कर दिया। धन-विधेयकों के सम्बन्ध में भी इस अधिनियम द्वारा लॉर्ड सभा को सर्वथा उपेक्षित बना दिया। विधायकीय क्षेत्र में (धन-विधेयकों को छोड़कर) अब लॉर्ड सभा केवल ऐसा सदन रह गया जिसके पास विलम्बित निषेधाधिकार (Suspensive Veto) ही शेष रहा था अर्थात् किसी विधेयक को लॉर्ड सभा पास होने में केवल दो वर्ष के लिए विलम्बित कर सकती थी, किन्तु 1948 में मजदूर या श्रमिक दलकी सरकार द्वारा इस अवधि को घटाकर एक वर्ष कर दिया गया।

1949 ई. का संसदीय अधिनियम

1911 ई. के संसदीय अधिनियम में ब्रिटिश संविधान के तीन प्रमुख अंगों सम्राट, लोकसदन तथा लॉर्ड सभा के कर्त्तव्यों की सीमा निर्धारित कर दी। यद्यपि इस अधिनियम से लार्ड सभा की लोकसदन के साथ विधायी समानता छिन गई, तो भी इससे लोकसदन पूरी तरह सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न नहीं बन सका। लॉर्ड सभा किसी विधेयक को बार-बार रद्द करके दो वर्ष के लिए उसे निलम्बित कर सकती थी, अपने पक्ष में वातावरण तैयार कर जनमत को लोकसदन के विरुद्ध भड़का सकती थी और कैबिनेट पर इतना प्रभाव डाल सकती थी कि वह उसमें ऐसे परिवर्तन कर दे जो लॉर्ड सभा को स्वीकार हों। इस बात का पूरा भय था कि लॉर्ड सभा अपनी इस विलम्बन-शक्ति का प्रयोग प्रगतिशील कानूनों का विरोध करने के लिए करे। लॉर्ड सभा आपात-कार्यों (Emergency Measures) को तो बिल्कुल ही रोक सकती थी उन्हें दो वर्ष तक पारित होने से रोक कर वह उनका महत्त्व ही समाप्त कर सकती थी। इन बातों को ध्यान में रखते हुए 1945 के आमचुनाव में मजदूर दल ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह लॉर्ड सभा द्वारा जनता की इच्छाओं का विरोध सहन नहीं करेगा। 1945 में विजय प्राप्त कर मजदूर दल पुनः सत्तारुढ़ उसने लॉर्ड सभा की शक्ति को और कम कर देने का निश्चय किया। 10 सितम्बर, 1947 को लोकसदन द्वारा एक विधेयक पारित किया गया जो लॉर्ड सभा द्वारा लगातार तीन अधिवेशनों में अस्वीकार किए जाने के बावजूद 1949 ई. में अधिनियम बन गया। यह अधिनियम ही 1949 ई. के संसदीय अधिनियम (Parliamentary Act, 1949) के नाम से विख्यात हुआ। इस अधिनियम द्वारा यह उपबन्धित किया गया कि यदि कोई गैर-वित्तीय विधेयक लोकसदन द्वारा एक वर्ष में दो बार पारित कर दिया जाए तो वह लॉर्ड सभा के विरोध करने पर भी पारित समझा जाएगा तथा सम्राट के हस्ताक्षर से अधिनियम का रूप प्राप्त कर लेगा। स्पष्ट है कि 1949 के ससदीय अधिनियम द्वारा लॉर्ड सभा की गैर-वित्तीय विधेयकों के सम्बन्ध में दो-वर्षीय विलम्बकारी-शक्ति घटाकर केवल एक वर्ष कर दी गई। इसने लॉर्ड सभा को और भी शक्तिहीन कर दिया।

1911 और 1949 ई. के संसदीय अधिनियमों के प्रावधानों के कारण लार्ड सभा आज एक शक्तिहीन संस्था हो गई है। ऑग एव जिंक के अनुसार, "अब स्थिति यह हो गई है कि लार्ड सभा द्वितीय सदन नहीं वरन् दूसरे दर्जे का सदन हो गया है।"[1] रैमजे

1. *Ogg & Zink*: Modern Foreign Govts.

म्योर ने तो यहाँ तक कहा कि "लॉर्ड सभा पर अंकुश लगाकर उसको शक्तिहीन कर दिया गया है। उसके सदस्य अपने दुर्भाग्य पर रो रहे हैं और लोकसदन में अपने मित्रों से शक्ति को फिर से स्थापित करने की योजना कर रहे हैं। किन्तु इतना तो स्वीकार करना ही होगा कि किसी सरकार के विरुद्ध उद्दण्डता करने की लॉर्ड सभा में अब भी बहुत सामर्थ्य है।"[1] वह किसी महत्त्वपूर्ण गैर-वित्तीय विधेयक को एक वर्ष के लिए निलम्बित कर उसके प्रभाव को कम कर सकती है अथवा उसके समाप्त होने का वातावरण बना सकती है। अब भी लॉर्ड सभा लोकसदन द्वारा पारित विधेयकों में परिवर्तन करती रहती है और लोकसदन को परिस्थितियों के वश में होकर उन्हें मानना पड़ता है। विशेषत यह बात उन विधेयकों के सम्बन्ध में अधिक लागू होती है जिन्हें लोकसदन अपनी अवधि के अन्तिम वर्षों में पारित करता है, क्योंकि उन्हें लॉर्ड सभा अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर सकती है। अब भी दोनों सदनों के बीच मतभेद समझौतों द्वारा निपटाए जाते हैं, जिसमें दोनों को समझौता करना पड़ता है।

लॉर्ड सभा के अधिकार और कार्य

(Powers and Functions of the House of Lords)

लॉर्ड सभा के अधिकारों और कार्यों में निरन्तर परिवर्तन होते रहे हैं। सत्रहवीं सदी के अन्त तक लॉर्ड सभा लोकसदन की तुलना में अधिक शक्तिशाली थी। 18वीं सदी तक लार्ड सभा लोकसदन के समकक्ष ही रही, किन्तु 19वीं शताब्दी के आते-आते लार्ड सभा की शक्तियों का ह्रास होना प्रारम्भ हो गया। अब लोकसदन यह दावा करने लगा कि निर्वाचन के आधार पर निर्मित होने के कारण वही जनता का सच्चा प्रतिनिधि है और इसलिए अधिक सत्ता का अधिकारी है। इससे लॉर्ड सभा तथा लोकसदन में सर्वोच्चता का संघर्ष प्रारम्भ हुआ, जिसमें लॉर्ड सभा पराजित हुई। 1911 और 1949 ई. के संसदीय कानून ने तो लॉर्ड सभा की शक्तियों को लगभग नष्ट ही कर दिया।

लॉर्ड सभा की शक्तियों और अधिकारों को निम्नांकित रूप से विश्लेषित किया जा सकता है—

(1) व्यवस्थापन सम्बन्धी वर्तमान कार्य और अधिकार

1911 ई. के संसदीय अधिनियम के पूर्व लॉर्ड सभा को लोकसदन के समकक्ष ही विधि-निर्माण के अधिकार प्राप्त थे, परन्तु इस अधिनियम ने लार्ड सभा की शक्तियों को अत्यन्त सीमित कर दिया। आज उसका कार्य प्राय. विधेयकों का पुनः वाचन करना, आलोचना करना व संशोधन करना मात्र रह गया है। वित्त विधेयकों के सम्बन्ध में तो यह बात भी लागू नहीं होती। वित्त विधेयक लॉर्ड सभा में प्रस्तावित नहीं किए जाते तथा लोकसदन का अध्यक्ष ही निर्णय करता है कि कोई विधेयक वित्त विधेयक है या नहीं। लॉर्ड सभा को वित्त में संशोधन करने का भी अधिकार प्राप्त नहीं है। लोकसदन द्वारा पारित होने के एक माह के बाद वित्त-विधेयक निश्चित रूप से स्वीकृति हेतु भेज दिया जाता है, चाहे लॉर्ड सभा उसे स्वीकार करे या न करे। यदि लॉर्ड सभा किसी

1 *Ramsay Muir* : How Britain is Governed ?

वित्त-विधेयक को संशोधित करके भेजे तो लोकसदन को यह अधिकार है कि उन संशोधनों को स्वीकार करे अथवा न करे।

जहाँ तक अन्य विधेयकों का सम्बन्ध है, वे किसी भी सदन में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। यद्यपि आजकल महत्वपूर्ण विधेयक अधिकांशत. लोकसदन में ही प्रस्तुत किए जाते हैं, किन्तु अनेक अवसरों पर वे लॉर्ड सभा में भी प्रस्तुत किए गए है। लॉर्ड सभा ने उन पर उपयोगी सुझाव दिये हैं। लोकसदन लॉर्ड सभा द्वारा प्रस्तावित संशोधनों को औचित्य के आधार पर ही स्वीकार करता है, किन्तु अन्तिम निर्णय लोकसदन का ही होता है। 1949 ई. के संशोधन अधिनियम के द्वारा यह निश्चित कर दिया गया है कि लॉर्ड सभा लोकसदन द्वारा पारित किसी विधेयक को (Other than Money Bills) केवल एक बार अस्वीकृत कर सकता है, पर यदि लॉर्ड सभा द्वारा अस्वीकृत ऐसे विधेयक को लोकसदन दूसरी बार पारित कर देता है, और इसमें एक वर्ष का समय व्यतीत हो जाता है तो वह विधेयक राजा की स्वीकृति के पश्चात् कानून बन जाता है, चाहे लॉर्ड सभा ने उसे स्वीकार किया हो या नहीं किया हो। एक वर्ष के समय का हिसाब लगाने की व्यवस्था यह है कि वह विधेयक के पहले वाचन (Reading) के दूसरे चक्र की तिथि से लेकर उसके दूसरे वाचन के तीसरे चक्र की तिथि तक लगाया जाता है।

इससे स्पष्ट है कि लॉर्ड सभा की स्थिति आज केवल विलम्ब करने वाली सभा की है, उसके पास विधि-निर्माण सम्बन्धी अधिकार नहीं है। लेकिन वह इस विलम्बकारी शक्ति का प्रभावशाली उपयोग कर सरकार और जनमत को प्रभावित कर सकती है।

(2) सांविधिक नियमों तथा आदेशों पर विचार

लॉर्ड सभा का एक अन्य कार्य सांविधिक उपनियमों तथा आदेशों (Statutory Rules and Orders) पर विचार करना है। कार्यपालिका अधिकारियों को संसदीय अधिनियमों के अन्तर्गत विस्तृत नियम और उपनियम बनाने का अधिकार है तथा लॉर्ड-सभा उनकी वैधानिकता की जाँच करती है। 1947 ई. में लॉर्ड-सभा के इस अधिकार के विरुद्ध वातावरण बना किन्तु इस शक्ति को छीन लिए जाने का कोई प्रभावशाली प्रयत्न नहीं हुआ।

(3) कार्यपालिका से सम्बन्धित कार्य और अधिकार

प्रारम्भ में लॉर्ड-सभा कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखती थी, किन्तु वर्तमान में यह शक्ति पूर्णतः लोकसदन के हाथ में चली गई है। मन्त्रिमण्डल को केवल लोकसदन ही अपदस्थ कर सकता है। फिर भी लोकसदन की तरह उसे यह अधिकार है कि वह प्रशासन के प्रत्येक पहलू सरकार से सूचना प्राप्त करे और सरकार की नीतियों और कार्यों पर स्वतन्त्रतापूर्वक वाद-विवाद कर सकता है। जब न्यायाधीशों को उनके पद से हटाने की प्रक्रिया अपनाई जाती है तो लोकसदन और लॉर्ड सभा सम्मिलित रूप से यह निर्णय करता है। मन्त्रिमण्डल के कुछ सदस्य भी लॉर्ड सभा से लिए जाते हैं। लॉर्ड सभा का अध्यक्ष, जिसे लॉर्ड चांसलर कहा जाता है, आवश्यक रूप से मन्त्रिमण्डल का सदस्य होता है।

(4) न्यायिक कार्य व अधिकार

लॉर्ड-सभा की न्यायिक शक्तियाँ महत्वपूर्ण है। इन शक्तियों का प्रयोग सदन के सभी सदस्यों द्वारा न होकर केवल विधि लॉर्ड्स (Law Lords) द्वारा किया जाता है। न्यायिक क्षेत्र में लोकसदन को कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। लॉर्ड सभा ग्रेट ब्रिटेन का सर्वोच्च न्यायालय तथा उनका अन्तिम अपीलीय न्यायालय है। विधि लॉर्ड्स का न्यायिक कार्य सामान्यतः पुनरावेदन सम्बन्धी है और आंशिक रूप में प्रारम्भिक भी है। मौलिक या प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र में यह पीयरों पर विद्रोह या धोखेबाजी के मुकदमे चला सकती है तथा लोकसदन द्वारा लगाए गए अभियोगों या महाभियोगों (Impeachments) की जाँच करती है। पुनरावेदन अथवा अपीलीय (Appellate) क्षेत्र में यह अपील का उच्चतम न्यायालय है। यहाँ ग्रेट ब्रिटेन तथा उत्तरी आयरलैण्ड के मुकदमों की अपील आती है और इसका निर्णय अन्तिम होता है। विधि लॉर्ड्स का अध्यक्ष लॉर्ड चांसलर होता है। प्रारम्भिक क्षेत्र में इसके न्याय सम्बन्धी अधिकारों का प्रयोग प्रायः समाप्त होने लगता है।

(5) विचारात्मक एवं आलोचनात्मक कार्य

लॉर्ड सभा विधायी निकाय के रूप में इतनी उपयोगी नहीं है, जितनी विचारक निकाय के रूप में है। लॉर्ड-सभा में ख्याति प्राप्त तथा अनुभवी व्यक्ति होते हैं। जो विदेशी तथा साम्राज्य-सम्बन्धी मामलों में पारंगत होते हैं। अतः राष्ट्रीय नीति पर लॉर्ड-सभा में वाद-विवाद प्रायः उच्चकोटि तथा सुचारु रूप से होता है और लोकसदन जैसी संघर्षमय स्थिति इसमें नहीं होती। यह सदन प्रस्तावों पर अधिक वाद-विवाद करती है, विधेयकों पर कम।

लॉर्ड-सभा देश की समस्याओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार करती है और लोकसदन में जल्दबाजी में पारित किए गए विधेयकों पर पुनरीक्षण का कार्य करती है। लोकसदन में प्रायः इसके सुझावों और विचारों का आदर करता है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लोकसदन की तुलना में लॉर्ड सभा की शक्तियाँ अत्यन्त कमजोर हो गई हैं।

लॉर्ड सभा के पक्ष और विपक्ष में तर्क

(Arguments for and against the House of Lords)

लॉर्ड सभा के पक्ष और विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं—

लॉर्ड सभा के विपक्ष में तर्क

लॉर्ड सभा का विरोध सबसे अधिक मजदूर दल द्वारा होता है। मजदूर दल में प्रायः सीयेज (Sieyes) का यह कथन सुना जाता है कि "यदि द्वितीय सदन प्रथम सदन से सहमत नहीं होता तो उपद्रवी है, और यदि सहमत होता है तो व्यर्थ है।" जे. आर. क्लाइस (J. R. Clynes) के शब्दों में मजदूर दल का मत है कि "लॉर्ड-सभा एक ऐसी संस्था है जिसको ठीक से सुधारा नहीं जा सकता। उसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए।" इस सदन की आलोचना में निम्नांकित तर्क दिये जा सकते हैं

(1) अप्रजातान्त्रिक—लॉर्ड-सभा अप्रजातान्त्रिक है जिसके लगभग 90 प्रतिशत सदस्य बड़े-बड़े जागीरदार और कुलीन घराने के व्यक्ति हैं। ये सदस्य निर्वाचित नहीं

होते बल्कि वशानुगत होते हैं। सगठन की दृष्टि से उसमें समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व नहीं पाया जाता। उसमें केवल धनी-मानी और उच्च व्यापारिक वर्ग का ही प्रतिनिधित्व होता है। ऑगस्टाइन बिरेल (Augustine Birrel) के शब्दों में, "लॉर्ड-सभा अपने अतिरिक्त किसी का प्रतिनिधित्व नहीं करती।"

(2) धनिकों व निहित स्वार्थों का गढ़—लॉर्ड-सभा धनिकों और निहित स्वार्थों का समूह है जिसमें सार्वजनिक कम्पनियों के सचालकों को अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त है। यह सभा वस्तुत: महान् उद्योगों और व्यापारिक सस्थानों द्वारा शासित होती है। कार्टर के अनुसार, "लॉर्ड-सभा केवल धन एव विशेषाधिकार का प्रतिनिधित्व ही नहीं करती, बल्कि वह तो स्वयं धन और विशेषाधिकार का दुर्ग है।"[1]

(3) एक दल की प्रभुता—लॉर्ड-सभा में सदैव अनुदार (Conservative) दल का ही प्रमुत्व रहता है। जेनिंग्स ने लॉर्ड-सभा को "अनुदार दल की जड़ कहा है। आम निर्वाचनों में चाहे किसी भी दल की जीत हो लॉर्ड-सभा पर प्रतिगामी तत्वों का ही नियन्त्रण बना रहता है, क्योंकि सदस्यता का मुख्य आधार निर्वाचन न होकर उत्तराधिकार होता है। यही कारण है कि जब शासन-सत्ता रूढ़िवादी दल के हाथ में होती है तो लॉर्ड-सभा हर बात में लोकसदन का समर्थन करती है, किन्तु जब सरकार अन्य किसी दल की होती है तो यह लोकसदन के प्राय: सभी कार्यों का विरोध करती है।"[2] मेरियट के शब्दों में, "जब अनुदार दल की सरकार होती है तो लॉर्ड सभा गूँगे कुत्ते की तरह व्यवहार करती है और अन्य अवसरों पर खुंखार भेड़िये की तरह पेश आती है।"[3]

(4) सदस्यों की अधिकता व उदासीनता—लॉर्ड-सभा की कार्य-प्रणाली में भी कई दोष उजागर हैं। सदस्यों की संख्या इतनी अधिक है कि यदि उनमें से अधिकांश सभा की कार्यवाही में भाग लें तो कार्य-सचालन ही कठिन हो जाए पर इससे भी बड़ा दोष यह है कि व्यवहार में सभा के अधिकांश सदस्य इसकी बैठकों में अनुपस्थित रहते हैं और अपने विधायी कर्तव्यों के प्रति कोई रुचि प्रदर्शित नहीं करते। सन् 1919 के बाद केवल 12-13 अवसर ही ऐसे आए हैं जबकि सदन की उपस्थिति 200 से अधिक रही हो। अत: आलोचकों का तर्क है कि लॉर्ड-सभा अपने उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूक नहीं है तो उसे कायम रखने में कोई लाभ नहीं है।

(5) दोषपूर्ण संसदीय प्रक्रिया—सदन की गणपूर्ति (Quorum) केवल तीन सदस्यों से हो जाती है जबकि लोकसदन की गणपूर्ति की सख्या 40 है। विश्व के किसी भी द्वितीय सदन के इतने कम सदस्यों की उपस्थिति से सभा की कार्यवाही नहीं चल सकती। इसके अतिरिक्त लॉर्ड-सभा का संगठन और अनुशासन भी दोषपूर्ण है। सभा के अध्यक्ष को सदस्यों को अनुशासित करने का अधिकार नहीं है। किसी भी सदस्य के विरुद्ध अध्यक्ष नहीं वरन् पूर्ण सदन की कोई कार्यवाही कर सकता है। इसी कारण आलोचकों ने इसे एक 'अनियन्त्रित भीड़ भरा सदन' माना है।

---

1 *Carter G.M* : Govt. of Great Britain.

2 *Jennings* : The British Constitution

3. "The House of Lords behaves like dumb dog while a conservative government were in office and ravening wolf at other times " —*Marriot*

(6) **विधायी और कार्यकारी शक्तियों की निरर्थकता**—लॉर्ड-सभा का कार्यपालिका पर कोई नियन्त्रण नहीं है क्योंकि मन्त्रिमण्डल केवल लोक सदन के प्रति उत्तरदायी है। विधि-निर्माण के क्षेत्र में भी उसकी शक्तियाँ अत्यन्त सीमित है। इसके एकपक्षीय एव प्रतिक्रियावादी स्वरूप के कारण इसके विधि सम्बन्धी सुझाव प्रायः अव्यावहारिक एव अप्रगतिशील होते हैं। इसी कारण कार्टर इस सभा को उठा लेने के पक्ष में है।[1]

(7) **विलम्ब करने की शक्ति हानिकारक**—लॉस्की एवं लैंसडान (Laski and Lansdawne) का कहना है कि लॉर्ड-सभा कार्य को ठीक से नहीं कर रही है। यह विधेयक-अवरोध या विलम्ब की शक्ति का प्रयोग करने में निष्पक्ष नहीं रहती। लॉर्ड-सभा के सदस्य सदैव अनुदार-दल का समर्थन करते हैं और मजदूर-दल का विरोध। लॉर्ड-सभा की यह अवरोधक शक्ति कभी-कभी तो अत्यन्त आपत्तिजनक हो जाती है। सकटकाल में लॉर्ड-सभा अपनी इस शक्ति के दुरुपयोग के कारण सरकार को कुछ समय के लिए पगु व निष्प्रभावी बना सकती है। लॉर्ड-सभा की यह विलम्बकारी शक्ति अत्यन्त घातक सिद्ध हो सकती है।

(8) **विधेयकों को दोहराने की शक्ति आवश्यक**—लॉर्ड-सभा का एक कार्य लोकसदन की विवेकहीन शीघ्रता को रोकना और विधेयकों को दोहराना है। लॉस्की उसके इस कार्य की दो कारणों से आलोचना करता है—प्रथम, लॉर्ड-सभा अपनी इस शक्ति के प्रयोग में सदैव अनुदार दल की उपेक्षा करती है और द्वितीय, लॉर्ड-सभा एक निर्वाचित सदन नहीं है, अतः उसके विरोध को जनता की अनुमति प्राप्त नहीं रहती। इसके अतिरिक्त ससद् के समक्ष विधेयक प्रस्तुत करने से पूर्व दल-व्यवस्था द्वारा जनमत की दिशा प्राप्त कर ली जाती है तथा रेडियो, टेलीविजन, प्रेस आदि साधनों द्वारा उस पर काफी वाद-विवाद हो जाता है। ऐसी स्थिति में लॉर्ड-सभा द्वारा विधेयकों को दोहराने का कार्य अनावश्यक और शक्ति का कोरा अपव्यय है।[2]

लॉर्ड-सभा के पक्ष में तर्क

लॉर्ड-सभा की आलोचनाओं से लगता है कि यह एक व्यर्थ सदन है जिसे समाप्त करना चाहिए, किन्तु ऐसा सोचना ठीक नहीं है। यहाँ उन तर्कों पर विचार करेंगे जो लॉर्ड-सभा को बनाए रखने के पक्ष में प्रस्तुत किए जाते हैं। इस संदर्भ में निम्नांकित तर्क उल्लेखनीय हैं—

(1) **लोकतन्त्र की सुरक्षा**—लॉर्ड-सभा लोकतन्त्र की सुरक्षा के लिए आवश्यक है ताकि व्यवस्थापन पर किसी एक संस्था अथवा दल का एकाधिकार न रहे तथा लोगों की स्वतन्त्रता एवं उनके मौलिक अधिकार सुरक्षित रहें। लोकतन्त्र की माँग है कि व्यवस्थापिका द्विसदनात्मक हो। लॉर्ड-सभा की आवश्यकता इसलिए भी है कि ब्रिटेन में अमेरिका की भाँति न तो न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review) की व्यवस्था है, न ही स्विट्जरलैण्ड के समान जनमत-संग्रह का प्रावधान है। इस प्रकार की व्यवस्थाओं के

1. *Carter, G.M.* Govt. of Great Britain.
2. *Laski* : Parliamentary Govt. in England

अभाव में यह आवश्यक है कि एक सदन की तानाशाही को रोकने के लिए दूसरे सदन को कायम रखा जाए।

यह स्मरणीय है कि क्रॉमवेल (Cromwell) ने कुछ समय के लिए लॉर्ड-सभा को समाप्त कर दिया था। लेकिन इसके बिना वह काम नहीं चला सका और कुछ ही समय बाद उसे लॉर्ड-सभा की पुनर्स्थापना करनी पड़ी। संसार के अधिकांश लोकतन्त्रात्मक देशों के विधानमण्डलों में दो सदनों की ही व्यवस्था की गई है। जिन देशों में प्रारम्भ में दो सदन नहीं थे अथवा जहाँ बाद में द्वितीय सदन को हटा दिया गया, वहाँ भी दूसरे सदन को पुनः स्थापित किया गया।

(2) लोकसदन की विवेकहीन शीघ्रता व उत्साह पर नियन्त्रण—लॉर्ड-सभा इस दृष्टि से विशेष उपयोगी है कि वह लोकसदन के उतावलेपन और जोश को नियन्त्रित करती है तथा उसकी त्रुटियों पर रोक लगाती है। कार्य की अधिकता, समय की कमी, दलगत दबाव, कानूनी बारीकियों का अल्प ज्ञान आदि के कारण लोकसदन के सदस्य विधेयकों पर पूरी तरह वाद-विवाद और विचार-विमर्श नहीं कर पाते। किन्तु लॉर्ड-सभा के सदस्य अपने विस्तृत और लम्बे अनुभव के कारण, गलत मार्ग पर जाते हुए लोकसदन का सही मार्ग-दर्शन कर सकते हैं। ऑग एवं जिंक का निष्कर्ष है कि "अनेक अवसरों पर द्वितीय सदन ने राष्ट्रीय इच्छा की व्याख्या प्रथम सदन से अधिक उपयुक्त की है और कई बार देश को जल्दबाजी एवं अविवेकपूर्ण कानूनों से बचाया है।"[1]

(3) विधि-निर्माण में सहायक—विधि-निर्मात्री सदन के रूप में लॉर्ड-सभा की महत्वपूर्ण भूमिका है। साधारण विधेयक पहले लॉर्ड-सभा में भी प्रस्तावित किए जाते हैं और लोकसदन प्रायः सामान्य वाद-विवाद के बाद ही उन्हें पारित कर देती है। इस तरह लोकसदन के समय की बचत हो जाती है और उसका काम भी हल्का हो जाता है। लॉर्ड-सभा निजी विधेयकों के सम्बन्ध में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। लॉर्डों के पास पर्याप्त समय होता है, अतः वे विधेयकों की सूक्ष्मता से परीक्षा कर सकते हैं। यदि लॉर्ड-सभा का उन्मूलन कर दिया जाए तो लोकसदन का कार्य बहुत अधिक लगभग दुगुना हो जाएगा जिसे वह सम्भवतः नहीं कर सकेगी। अतः विधि-निर्माण में इसकी भूमिका निर्विवाद है।

(4) योग्यता का भण्डार—लॉर्ड-सभा एक गुणवन्त व्यक्तियों का सदन है जिसमें आध्यात्मिक, बौद्धिक और भौतिक प्रतिभा वाले व्यक्ति सदस्य होते हैं। अपनी व्यापक योग्यता के बल पर लॉर्ड-सभा सच्चे अर्थों में लोकसदन का पोषणालय (Nursery) है। फाइनर (Finer) के अनुसार, "लॉर्ड-सभा के सदस्य पक्षपातपूर्ण राजनीति से पृथक् रहकर अपनी सेवाएँ अर्पित करते हैं। उनके लिए यह सम्भव इसलिए है क्योंकि वे सामान्य निर्वाचन पर आश्रित नहीं रहते और लोकसभा के सदस्यों की तरह कार्यभार से दबे न रहने के कारण उन्हें सोच-विचार का पर्याप्त समय मिलता है।"

राजनीतिज्ञों का मत है कि राजा लॉर्ड-सभा के लिए सदस्यों को मनोनीत करके अपने अधिकार द्वारा ऐसे व्यक्तियों को लॉर्ड बनाए जो देश के वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ,

---

1. *Ogg and Zink*, Modern Foreign Governments

विद्वान और वैज्ञानिक हों तथा निष्पक्ष रहकर देश की सेवा करने की क्षमता रखते हों। यदि ऐसा किया गया तो लॉर्ड-सभा नि:सन्देह एक ऐसी संस्था बन जाएगी जो देश की महान् सेवा कर सकेगी।

(5) जनमत को प्रभावित करने का साधन—लॉर्ड-सभा में दलीय अनुशासन एवं वाद-विवाद सम्बन्धी प्रतिबन्ध न होने से सार्वजनिक महत्व के प्रश्नों पर खुलकर विचार-विनिमय होता है, अत: यह सदन जनमत को प्रभावित करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसके उच्चस्तरीय विवाद जनमत को निर्धारित करने में प्रभावी भूमिका निभाते हैं।

(6) ब्रिटिश जनता के स्वभाव के अनुकूल—लॉर्ड-सभा की उपयोगिता इस दृष्टि से भी है कि यह सदन अंग्रेज लोगों के स्वभाव के अनुकूल है। अंग्रेजों को परम्परागत संस्थाओं से प्रेम है। उनका रूढ़िवादी चरित्र अतीतकाल से चली आ रही गौरवपूर्ण संस्था (लॉर्ड-सभा) के अन्त की अनुमति नहीं देता।

लॉर्ड-सभा में सुधार

(Reforms in the House of Lords)

समय-समय पर लॉर्ड सभा में सुधार हेतु विभिन्न प्रयत्न किये गये, इस हेतु विविध समितियों, आयोगों और सम्मेलनों द्वारा विचार किया गया। इनमें रोजबरो समिति, लॉयड जॉर्ज आयोग तथा ब्राइस आयोग आदि प्रमुख रहे हैं। सुधारों के अब तक के इतिहास ने यही प्रकट किया है कि जनता लॉर्ड-सभा के विपक्ष में नहीं वरन् इसमें सुधार लाने की पक्षधर है। सुधार की दृष्टि से कुछ अपेक्षाकृत कम महत्व के सुझावों को स्वीकार भी किया जा चुका है। उदाहरणार्थ, 1958 के जीवन-पर्यन्त पीयर अधिनियम (Life Peerages Act, 1958) के आधार पर तीन मुख्य सुधार किए गए—(1) कुछ सीमित संख्या के जीवनपर्यन्त पीयर (Life Peers) रखे गए, (2) स्त्रियों को भी पीयर बनाने की व्यवस्था की गई, एवं (3) सदस्यों के लिए कुछ दैनिक भत्ता आरम्भ किया गया। जीवन-पर्यन्त पीयर रखने के पीछे मूल उद्देश्य यह है कि सरकार राष्ट्र के अनुभवी एवं सुप्रतिष्ठित व्यक्तियों को लॉर्ड-सभा में स्थान देकर सभा की कार्यवाही को अधिक सक्रिय और प्राणवान बना सके। लगभग 5 वर्ष बाद ही पीयरऐज एक्ट (Peerage Act), 1963) के अन्तर्गत ये सुधार किए गए—(क) पैतृक लॉर्ड जीवन भर के लिए अपने लॉर्ड पद का परित्याग कर सकते हैं, किन्तु उत्तराधिकारी को लॉर्ड पद फिर से मिल सकता है। लॉर्ड वैजवुडवेन, लॉर्ड हैलम एवं लॉर्ड होम ने इसी अधिनियम के अन्तर्गत अपनी सदस्यता का त्याग किया, (ख) स्कॉटलैण्ड के सभी पीयर लॉर्ड-सभा के सदस्य बना दिए गए, (ग) आयरलैण्ड के पीयरों को लोकसदन का चुनाव लड़ने का अधिकार दिया गया एवं (घ) महिला लॉर्डों को भी ये अधिकार प्रदान किए गए। ये क्रान्तिकारी परिवर्तन थे। सन् 1968 में हेरल्ड विल्सन के नेतृत्व वाली मजदूर या श्रमिक दल की सरकार ने लॉर्ड-सभा में सुधार हेतु व्यापक योजना प्रस्तावित की थी, जो क्रियान्वित नहीं हो सकी। फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि विभिन्न सुधारों ने लॉर्ड-सभा को प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों के अनुकूल ढालने में उल्लेखनीय योगदान दिया है।

लॉर्ड-सभा के स्वरूप को और अधिक सकारात्मक बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव उपयोगी बन सकते हैं—

(1) वंश-परम्परानुसार पीयर बनाने की प्रथा समाप्त कर देनी चाहिए। उसके स्थान पर राजा को चाहिए कि वह योग्य और अतिशय प्रतिभावान व्यक्तियों को लॉर्ड-सभा का आजीवन सदस्य नियुक्त करे तथा इस कार्य में एक निर्वाचित समिति उसकी सहायता करे।

(2) वर्तमान पीयर अपने में से निश्चित संख्या में कुछ को लॉर्ड-सभा का प्रतिनिधि निर्वाचित करें। धीरे-धीरे इनका प्रतिनिधित्व हो जाएगा और एक समय ऐसा आएगा जब वंशानुगत पीयर समूह नहीं रहेगा।

(3) सदस्यों को कुछ निश्चित पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए जो उनकी उपस्थिति पर निर्भर होनी चाहिए। ऐसा होने से सदस्य अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करने में अधिक सक्रिय होंगे।

(4) सदस्यों को यह छूट होनी चाहिए कि वे लोकसदन का सदस्य बनने के लिए लॉर्ड-सभा की सदस्यता का परित्याग कर सकें।

(5) इस प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिए कि लॉर्ड-सभा विधेयकों को केवल निश्चित समय तक विलम्बनकारी अधिकार रखते हुए भी व्यवस्थापन कार्य में महत्वपूर्ण भाग ले सके और लोकसदन की सक्रिय सहयोगिनी बन सके।

सुधार में बाधक कारण

निरन्तर प्रयास करने पर भी अगर लॉर्ड-सभा का वांछित सुधार और पुनर्गठन नहीं हो पाया है तो इसके मुख्य कारण निम्नांकित रहे हैं—

(1) ब्रिटेन के राजनीतिक दलों में अभी तक यह समझौता नहीं हो सका है कि लॉर्ड-सभा का सुधार किन आधारों पर तथा किन सिद्धान्तों पर किया जाए।

(2) अभी तक कोई भी सन्तोषजनक सुधार-योजना प्रस्तुत नहीं की जा सकी है।

(3) ब्रिटिश जीवन मे परम्पराओं का भारी महत्व है और जिस प्रकार संविधान में परम्पराओं की अभेद्य स्थिति है, वही लॉर्ड-सभा के सम्बन्ध में भी है। अतः लॉर्ड सभा के परम्परागत स्वरूप में परिवर्तन करना सरल कार्य नहीं रहा है।

(4) राजतन्त्र में द्वितीय सदन में पूर्ण सुधार प्रस्तावित करना भी कठिन कार्य है।

(5) लॉर्ड-सभा की शक्तियाँ पहले ही अत्यधिक क्षीण हो गई हैं, अतः उसमें सुधार करने के साथ-साथ उसकी शक्तियों को पुनर्जीवित करने का कठिन प्रश्न भी जुड़ा हुआ है।

ब्रिटिश लॉर्ड-सभा की अमेरिकी सीनेट से तुलना

(Comparison of the British House of Lords with American Senate)

लॉर्ड-सभा और सीनेट दोनो ही द्वितीय सदन हैं, लेकिन कार्यों और शक्तियों की दृष्टि से ब्रिटिश लॉर्ड सभा जितनी निर्भर है, अमेरिकी सीनेट उतनी ही अधिक शक्तिशाली है। दोनों सदनों का तुलनात्मक अध्ययन अग्रानुसार किया जा सकता है—

(1) रचना के क्षेत्र में—रचना की दृष्टि से लॉर्ड-सभा प्रमुख रूप से आनुवंशिक है, अर्थात् उत्तराधिकार व्यवस्था पर आधारित एक कुलीनतन्त्रीय सदन है। दूसरी ओर अमेरिकी सीनेट जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदन है। ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका दोनों ही विश्व के अग्रणी लोकतन्त्र हैं और लोकतान्त्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदन का वंशानुगत सदन से अधिक शक्तिशाली होना स्वाभाविक है।

रचना की दृष्टि से सीनेट लॉर्ड-सभा की तुलना में एक सुगठित अल्पसंख्यक निकाय है इसलिए यह अधिक प्रभावशाली रूप में अपना कार्य सम्पादित करती है। सीनेट और लॉर्ड सभा की सदस्य-संख्या में बहुत ही अधिक (लगभग 1 और 10 से भी अधिक का) अनुपात है। सीनेट में सौ सदस्य हैं जबकि लॉर्ड सभा में 1080 हैं। लॉर्ड सभा के बहुत ही कम सदस्य सदन में प्रायः उपस्थित रहते हैं जबकि सीनेट के सभी सदस्य सदन के कार्यों में भाग लेते हैं। सीनेट की कम सदस्य-संख्या भी उसे एक सुसगठित इकाई का रूप प्रदान कर उसकी शक्ति में वृद्धि करने में सहायता करती है।

(2) विधायी क्षेत्र में—साधारण विधेयकों (अवित्तीय विधेयकों) के सम्बन्ध में अमेरिकी सीनेट की शक्तियाँ निम्न सदन अर्थात् प्रतिनिधि सभा के समान हैं। साधारण विधेयक किसी भी सदन में प्रस्तावित किए जा सकते हैं और दोनों सदनों द्वारा स्वीकार करने पर ही कोई विधेयक कानून बन सकता है। मतभेद की स्थिति में दोनों सदनों की संयुक्त समिति की व्यवस्था है और यहाँ सीनेट ही सदैव लाभदायक स्थिति में रहती है। अमेरिकी राजनीति में प्रतिनिधि सभा के सदस्यों की तुलना में सीनेटरों का बहुत अधिक प्रभाव है, अतः संयुक्त समिति में सीनेट की राय को ही अधिक महत्त्व दिया जाता है। ब्रिटेन में भी साधारण विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में प्रस्तावित किए जा सकते हैं, लेकिन लॉर्ड सभा को केवल यह अधिकार प्राप्त है कि यह लोकसदन से असहमत होने पर साधारण विधेयक को एक वर्ष तक रोके रख सके। अभिप्राय यह है कि जहाँ साधारण विधेयकों के सम्बन्ध में सीनेट को 'पूर्ण निषेधाधिकार' (Abolute Veto Power) प्राप्त है वहाँ लॉर्ड सभा को केवल एक वर्ष के लिए 'विलम्बकारी विरोधाधिकार' ही प्राप्त है।

वित्त-विधेयक लॉर्ड-सभा और सीनेट दोनों में ही प्रस्तावित नहीं किए जा सकते, लेकिन यहाँ भी लॉर्ड-सभा की स्थिति सीनेट की तुलना में बहुत निर्बल है। सीनेट वित्त-विधेयकों पर स्वीकृति प्रदान करने का अधिकार रखती है, उनमें संशोधन कर सकती है अथवा उन्हें निरस्त कर सकती है। वह विधेयक की प्रारम्भिक धारा में कोई संशोधन नहीं कर सकती लेकिन शेष विधेयक में इतना संशोधन कर सकती है कि विधेयक का रूप ही बदल जाए। वित्त-विधेयक काँग्रेस द्वारा पारित समझा जाता है जब प्रतिनिधि सभा और सीनेट दोनों इसे स्वीकार कर लें, लेकिन ब्रिटिश लॉर्ड-सभा को वित्त-विधेयकों में संशोधन करने का भी अधिकार प्राप्त नहीं है। वह अधिक से अधिक केवल एक माह तक किसी भी वित्त-विधेयक पर रोक लगा सकती है। एक माह का समय बीत जाने पर लोकसदन द्वारा वित्त-विधेयक सम्राट के पास हस्ताक्षर के लिए भेज दिया जाता है, चाहे लॉर्ड-सभा ने उसे स्वीकार न भी किया हो।

(3) कार्यपालिका क्षेत्र में—कार्यपालिका शक्ति के सम्बन्ध में लॉर्ड-सभा प्रभावहीन, मन्त्रिमण्डल पर उसका नियन्त्रण नहीं के बराबर रहता है। लॉर्ड-सभा द्वारा मन्त्रियों से प्रश्न पूछे जा सकते हैं, मन्त्रिमण्डल की आलोचना भी कर सकती है, लेकिन इससे अधिक कुछ नहीं कर सकती। मंत्रिमण्डल लोकसदन के प्रति उत्तरदायी है, लॉर्ड-सभा के प्रति नहीं। दूसरी ओर अमेरिकी सीनेट को कार्यपालिका क्षेत्र में प्रभावशाली शक्तियाँ प्राप्त हैं। सन्धियों और नियुक्तियों के लिए स्वीकृत या समितियों द्वारा जाँच-पड़ताल के अधिकार के कारण कार्यपालिका पर सीनेट का पर्याप्त नियन्त्रण हो जाता है। कोई भी राष्ट्रपति यथासम्भव सीनेट से संघर्ष की स्थिति को टालना चाहता है।

(4) न्यायिक क्षेत्र में—यद्यपि लॉर्ड-सभा और सीनेट दोनों ही सदनों द्वारा महाभियोग की जाँच करने का कार्य किया जाता है, लेकिन न्यायिक क्षेत्र में एक दृष्टि से लॉर्ड-सभा सीनेट से अधिक शक्तिशाली है। लॉर्ड-सभा ग्रेट ब्रिटेन और उत्तरी आयरलैंड के लिए अपील के सर्वोच्च न्यायालय के रूप में भी कार्य करती है जबकि सीनेट को इस प्रकार की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है।

इस तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि लॉर्ड-सभा की तुलना में सीनेट अधिक शक्ति सम्पन्न है। स्टैंडर्ड हैराल्ड के अनुसार, "संयुक्त राज्य अमेरिका की सीनेट आधुनिक विश्व की सर्वाधिक शक्तिशाली और ब्रिटिश लॉर्ड-सभा सर्वाधिक निर्बल द्वितीय सदन है।"

लोकसदन
(House of Commons)

लोकसदन संसार का सबसे पुराना प्रतिनिधि सदन है। इंग्लैण्ड की व्यवस्थापिका के रूप में यह इतना महत्वपूर्ण है कि बोलचाल में हम इसे प्रायः संसद् का पर्यायवाची मान लेते हैं।

1948 ई. के प्रतिनिधित्व-कानून पारित होने के बाद से लोकसदन अब पूर्णतः एक प्रतिनिधि-सभा के रूप में परिवर्तित हो गया। 1955 ई. से इसकी कुल संदस्य संख्या 630 रही जिसमें इंग्लैण्ड से 511, वेल्स से 36, स्काटलैण्ड से 71 तथा उत्तरी आयरलैंड से 12 प्रतिनिधि होते थे किन्तु इसमें पुनः परिवर्तन किया गया और 1997 ई. के चुनाव में ब्रिटिश लोकसदन की कुल सदस्य संख्या 635 थी।

लोकसदन के सभी सदस्य पृथक्-पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रों में 'एक व्यक्ति एक मत' के आधार पर वयस्क मताधिकार द्वारा चुने जाते हैं। लोकसदन के सदस्यों को निश्चित वेतन मिलता है, साथ ही नि.शुल्क रेल-यात्रा करने की सुविधा भी प्राप्त है। उनकी सदस्यता संसद् के कार्य-काल के साथ-साथ चलती है। ब्रिटेन में वयस्क मताधिकार की आयु 18 वर्ष है। ब्रिटेन में पहले कुछ बहुलसदस्यी निर्वाचन क्षेत्र भी थे, किन्तु अब सभी निर्वाचन क्षेत्र एक-सदस्यीय हैं। लोकसदन का एक सदस्य लगभग 75000 मतदाताओं का प्रतिनिधित्व करता है। विदेशियों, देशद्रोहियों, घोर अपराध के लिए

दण्डित व्यक्तियों और पागल या दिवालिये प्रमाणित व्यक्तियों को मताधिकार प्राप्त नहीं है। चुनाव में अवैधानिक कार्य करने वाले व्यक्तियों को 5 वर्ष के लिए मताधिकार से वंचित कर देने का प्रावधान है।

सदस्यता के लिए योग्यता

ब्रिटिश राज्य के सभी स्त्री-पुरुष, चाहे वे साम्राज्य के किसी भी भाग में निवास करते हों, निम्नांकित पात्रताओं को पूरा करने पर प्रत्याशी बन सकते हैं—

(1) उनका नाम किसी भी निर्वाचन क्षेत्र के मतदाताओं की सूची में हो,

(2) उनकी आयु नियमानुसार हो, एवं

(3) वे राष्ट्र तथा देश के प्रति निष्ठा की शपथ लेने को तैयार हों।

परन्तु निम्नलिखित व्यक्ति लोकसदन की सदस्यता के योग्य नहीं हैं—

(1) जो लॉर्ड-सभा के सदस्य हैं, किन्तु अभी हाल ही के एक निर्णय के अनुसार लॉर्ड-सभा का सदस्य लॉर्डशिप त्याग कर लोकसदन के लिए चुनाव लड़ सकता है।

(2) जो नाबालिक है।

(3) जो विदेशी, पागल, दिवालिया या फौजदारी कानून के अनुसार दण्डित हों।

(4) जो पादरी नगरों के मेयर और काउन्टियों के शैरिफ हैं।

(5) जो क्राउन के वेतनभोगी तथा राजकीय सेवा में नियुक्त व्यक्ति हों।

(6) जो सरकारी ठेकों या अन्य प्रकार से सरकार द्वारा लाभान्वित होते हैं।

लोकसदन का कार्यकाल

सामान्यतः लोकसदन का कार्यकाल पाँच वर्ष है, लेकिन संकटकाल में इसका कार्यकाल बढ़ाया जा सकता है। यह राजा का विशेषाधिकार है कि वह प्रधानमन्त्री की प्रार्थना पर अवधि के पूर्व ही उसे विघटित या भंग कर दे।

लोकसदन का संगठन

चुनाव के लगभग दो सप्ताह में ही नई संसद् का अधिवेशन आहूत कर लिया जाता है। जब संसद् का प्रथम अधिवेशन बुलाया जाता है तो लॉर्ड-सभा का एक संदेशवाहक, जिसे "जैन्टिलमैन अशर ऑफ दि ब्लैक रॉड" (Gentleman Usher of the Black Rod) कहते हैं, सब सदस्यों को 'लॉर्ड-सभा' में जाने के लिए आह्वान करता है। वहाँ पर लॉर्ड चांसलर लोकसदन के सदस्यों को अपना अध्यक्ष (Speaker) चुनने के लिए कहता है। अध्यक्ष के अतिरिक्त सदन में अन्य पदाधिकारी भी चुने जाते हैं। इन संसदीय अधिकारियों में अर्थोपाय समिति का अध्यक्ष (Chairman of the Committee of the Ways & Means), उपाध्यक्ष (Deputy Speaker) प्रमुख होते हैं। संसदीय स्थायी अधिकारियों में सदन का लिपिक (Clerk of the House), सारजैण्ट एट आर्म्स (Sargent at Arms) व चैपलैन (Chaplain) प्रमुख होते हैं। सदन के लिपिक के कार्यों की प्रकृति बहुमुखी है। यह सदन की आज्ञाओं पर हस्ताक्षर करता है, लॉर्ड-सभा को भेजे जाने वाले विधेयकों को पृष्ठांकित (Endorse) करता है, सदन की कार्यवाही का लेखा रखता है और अध्यक्ष की सहायता से सरकारी पत्रिका (Official Journal) तैयार

कराता है। सारजेण्ट एट आर्म्स का कार्य सदन की प्रतिष्ठा को बनाए रखना है। वह सदन की सब आज्ञाओं को लागू करवाता है। द्वारपाल एव संदेशवाहकों को संदेश देता है तथा सदन के अधिपत्रों (Warrants) पर अमल करता है।

लोकसदन की गणपूर्ति (Quorum) 40 सदस्यों से होती है। प्रचलित पद्धति के अनुसार लोकसदन का वर्ष में कम से कम एक अधिवेशन अवश्य होता है क्योंकि कुछ आवश्यक विधेयक एक बार में केवल एक ही वर्ष के लिए पारित किए जाते हैं।

लोकसदन के अधिवेशन व कार्यवाही सम्बन्धी कुछ प्रमुख नियम

संसद् के अधिवेशन वेस्टमिंस्टर भवन (Palace of the Westminster) में होते हैं। दोनों सदन अलग-अलग बैठते है। कुछ विशेष अवसरों पर दोनों सदनों के सयुक्त अधिवेशन भी होते हैं, जैसे संसद् के उद्‌घाटन के समय तथा राजकीय सन्देशों, भाषणों आदि को सुनने के लिए। लोकसदन के अधिवेशन सप्ताह में प्रथम 5 दिन होते हैं। शनिवार को साधारणतया अवकाश रहता है। वर्ष भर में लोकसदन कम से 160 दिन बैठती है।[1] संकटकाल में संसद् को कभी भी आमन्त्रित किया जा सकता है।

लोकसदन की कार्यवाही अधिकांशतः परम्परा और अवसर पर आधारित है। फिर भी कुछ स्थायी आदेश हैं जिनमें सदन के सुचारु संचालन के नियम हैं। सरकार और विरोधी दल की न्यायसंगत माँगों का समझौता कराने के उपाय भी इन स्थायी आदेशों के अन्तर्गत हैं।

वाद-विवाद संसद् का प्रमुख कार्य है। समय की बचत के दृष्टिकोण से इस पर कुछ प्रतिबन्ध लगाए गए हैं और वाद-विवाद के प्रारम्भ व समापन के लिए कुछ नियम निर्धारित हैं। प्रथम तो विरोधी और सत्तारूढ दल के सचेतकों (Whips) के बीच समझौता हो जाता है कि किस विषय पर कितना समय दिया जाए, यदि ऐसा समझौता नहीं हो पाता है तो अवरोधक (The Closure), विभागशः अवरोधक (The Closure by Compartment), कंगारू समापन (Kangaroo Closure), ग्लोटिन (The Guillotine), समय-विभाग-चक्र (The Time-Table), विभाजन (Division) आदि उपायों द्वारा वाद-विवाद को समाप्त किया जा सकता है। वस्तुतः वाद-विवाद सदन का आवश्यक और महत्वपूर्ण कार्य है। यह कार्य विधि-निर्माण या वित्तीय नियन्त्रण से भी अधिक महत्वपूर्ण है। विनियोग और राजस्व सम्बन्धी प्रस्तावों पर सरकारी नीतियों की व्यापक आलोचना होती है। यदा-कदा स्थगन प्रस्ताव अथवा काम रोको प्रस्ताव द्वारा सार्वजनिक महत्व के प्रश्न पर बहस आरम्भ की जाती है। इंग्लैण्ड में संसदीय वाद-विवाद का स्तर अत्यन्त उच्च-कोटि का होता है।

लोकसदन के सदस्यों के वेतन, भत्ते तथा विशेषाधिकार

लोकसदन के सदस्यों को नियमित वेतन तथा वार्षिक भत्ता प्रदान प्रदान किया जाता है। उन्हें बिना किराए के रेल-यात्रा की सुविधा भी प्राप्त है, किन्तु उन्हें अमेरिकी काँग्रेस के सदस्यों के समान ऑफिस या क्लर्क आदि की सुविधा प्राप्त नहीं है। इसके अतिरिक्त लोकसदन के सदस्यों को निम्नलिखित विशेषाधिकार प्राप्त हैं—

1 *Colin F. Padfield* : Op. cit., 1972, p. 57

(1) सदस्यों को सदन में भाषण की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है । सदन में कही गई किसी बात के लिए उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती ।

(2) सदन का अधिवेशन आरम्भ होने के 40 दिन पूर्व और अधिवेशन समाप्त होने के 40 दिन बाद तक की अवधि में किसी भी सदस्य को दीवानी मामले में बन्दी नहीं बनाया जा सकता है ।

(3) लोकसदन के सदस्यों का सामूहिक रूप से ब्रिटिश सम्राट के पास पहुँचने का अधिकार, अर्थात् वे स्पीकर के माध्यम से अपनी बात सम्राट तक पहुँचा सकते हैं ।

(4) सदस्यों को अपनी कार्यवाही पर नियन्त्रण का अधिकार है और यदि सदन चाहे तो अपनी गुप्त कार्यवाही भी चला सकता है ।

(5) लोकसदन किसी सदस्य की अयोग्यता के सम्बन्ध में अपना निर्णय दे सकता है और इस आधार पर सदस्य का चुनाव निरस्त कर सकता है ।

(6) यदि कोई व्यक्ति सभा के विशेषाधिकारों का उल्लघन करता है तो सदन स्वय उसे दण्डित कर सकता है ।

लोकसदन की शक्तियाँ और कार्य

(Powers and Functions of the House of Commons)

ब्रिटिश लोकसदन की शक्तियाँ महान् हैं । लोकसदन की शक्तियों तथा कार्यों को निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है—

(1) लोकसदन के व्यवस्थापन सम्बन्धी अधिकार व कर्तव्य.

ब्रिटेन में ससद् का अर्थ है राजा; लॉर्ड-सभा एव लोकसदन, किन्तु व्यवहारतः इसकी शक्तियों का उपभोग लोकसदन ही करता है, क्योंकि लोकप्रिय सम्प्रभुता इसी में निहित है । लोकसदन ही मूलत· वह संस्था है जिसे साधारण और सवैधानिक दोनों प्रकार के कानून-निर्माण करने का अधिकार है । विधि-निर्माण के क्षेत्र में अन्तिम निर्णय लोकसदन को ही प्राप्त है । लॉर्ड-सभा केवल विधेयकों के कानून का रूप लेने में कुछ विलम्ब कर सकती है । धन-विधेयकों पर लॉर्ड-सभा को केवल एक महीना और साधारण विधेयकों पर एक वर्ष का स्थगन विशेषाधिकार प्राप्त है । राजा की स्वीकृति देने और शक्ति औपचारिक-मात्र है । लोकसदन देश के प्रत्येक स्थान, वस्तु और व्यक्ति के सम्बन्ध में कानून बना सकता है । उसकी शक्ति पर न्यायिक पुनरावलोकन जैसा कोई बन्धन नहीं है ।

लोकसदन की व्यवस्थापन सम्बन्धी शक्तियों का यह पक्ष सैद्धान्तिक अधिक है क्योंकि उसकी व्यवस्थापन-शक्तियाँ व्यवहारत· मन्त्रिमण्डल के हाथों में केन्द्रित हो गई हैं, परन्तु मन्त्रिमण्डल लोकसदन पर केवल तभी तक प्रभुत्व रखता है, जब तक कि उसे लोकसदन के बहुमत दल का समर्थन प्राप्त है ।

(2) लोकसदन के वित्तीय अधिकार व कर्तव्य

राष्ट्रीय वित्त पर लोकसदन का एकछत्र नियन्त्रण होता है वित्त-विधेयकों की स्थापना लोकसदन में ही हो सकती है । उसको ही बजट के सम्बन्ध में एकाधिकार प्राप्त

है। लॉर्ड-सभा वित्त-विधेयकों को अधिक से अधिक एक माह के लिए विलम्बित कर सकती है।

परन्तु वित्तीय क्षेत्र में भी लोकसदन की शक्तियों का व्यावहारिक पहलू दूसरा ही है। राजकीय बजट का निर्माण मन्त्रिमण्डल द्वारा किया जाता है। वित्त मन्त्री (Chancellor of Exchequer) द्वारा ही उसे लोकसदन में प्रस्तुत किया जाता है। कोई भी लोकसदन विधेयक राजा की सिफारिश पर ही लोकसदन में प्रस्तुत किया जा सकता है और राजा की सिफारिश व्यवहार में मन्त्रिमण्डल की ही सिफारिश होती है। जब तक राजमुकुट की ओर से माँग न की गई हो, वह न तो कोई वित्तीय अनुदान पास कर सकती है और न कोई कर ही लगा सकती है। बजट पेश हो जाने के बाद भी लोकसदन को उसमें कटौती करने का या उसे अस्वीकार करने का ही अधिकार है। वह अपनी ओर से व्यय में कोई वृद्धि नहीं कर सकती और न कोई नवीन व्यय या कर प्रस्तावित कर सकती है। दलीय बहुमत के कारण मन्त्रिमण्डल किसी भी वित्तीय विधेयक या बजट को प्रायः उसी रूप में पारित करा लेता है, जिस रूप में वह उसे प्रस्तुत करता है।

फिर भी लोकसदन राष्ट्रीय वित्त को विभिन्न तरीकों से नियमित करता है, जैसे—अर्थोपाय अथवा उपायों और साधनों की समिति (The Committee of the Ways and Means) में वाद-विवादों तथा *वित्तीय अधिनियम (Finance Act)* द्वारा धन एकत्र करने पर नियन्त्रण रखती है, सप्लाई समिति विनियोजन अधिनियम (Appropriation Act) और कम्पट्रोलर तथा ऑडिटर जनरल के द्वारा धन के विनियोग पर नियन्त्रण रखती है, सार्वजनिक हिसाब-किताब की समिति के द्वारा हिसाब-किताब की जाँच करती है और प्रश्नों पर वाद-विवाद के द्वारा व्यय करने के तरीकों की आलोचना करती है।

(3) लोकसदन के कार्यपालिका सम्बन्धी अधिकार एवं कर्तव्य

मन्त्रिमण्डल के हाथ में कार्यपालिका सम्बन्धी इतनी शक्तियाँ हैं कि यदि उसे नियन्त्रित न किया जाए तो वह तानाशाह बन सकता है। इसीलिए लॉस्की ने लिखा है कि "सरकार बनाना तथा उसे राज-काज करने का नियमित अधिकार प्रदान करना या न करना लोकसदन का ऐसा प्रमुख कार्य है जिस पर अन्य सब कार्य निर्भर करते हैं। लोकसदन यदि सरकार को प्रशासन-कार्य चलाने के लिए आवश्यक नियमित अधिकार प्रदान न करे और उसे अपना आवश्यक समर्थन न देती रहे तो सरकार का काम चलाना असम्भव हो जाएगा और सम्पूर्ण प्रशासन तन्त्र ठप्प पड़ जाएगा। सैद्धान्तिक रूप से मन्त्रिमण्डल की स्थिति लोकसदन की एक समिति जैसी है। लोकसदन प्रश्न, आलोचना, स्थगन प्रस्ताव, निन्दा प्रस्ताव, अविश्वास, वित्तीय अधिकार आदि विभिन्न साधनों से उसे नियन्त्रित करता रहता है तथा उसके कार्यों का निरीक्षण करता है।"[1]

किन्तु इस क्षेत्र में भी व्यावहारिक दृष्टि से लोकसदन बहुत सीमा तक मन्त्रिमण्डल के हाथ का खिलौना है। दलीय अनुशासन और बहुमत के कारण मन्त्रिमण्डल लोकसदन पर छाया रहता है और उससे अपनी इच्छानुसार प्रत्येक विधेयक पारित करवा लेता है।

1. *Laski* : Parliamentary Govt. in England

व्यवहार में नीति-निर्माण सम्बन्धी अधिकाश निर्णय मन्त्रिमण्डल द्वारा ही लिए जाते हैं, लोकसदन की स्वीकृति केवल औपचारिक होती है। इसके अतिरिक्त लोकसदन मन्त्रिमण्डल से कुछ मामलों की जानकारी मात्र ही प्राप्त कर सकता है। लोकसदन के कटौती प्रस्तावों या स्थगन और अविश्वास प्रस्तावों का भी व्यावहारिक महत्व अधिक नहीं है क्योंकि लोकसदन को अधिकांश में वही करना पड़ता है जो मन्त्रिमण्डल चाहता है। अविश्वास प्रस्ताव पारित करने में भी सदस्यों को यह भय रहता है कि कहीं प्रधानमन्त्री राजा से कहकर लोकसदन को ही भंग न करवा दे। इस स्थिति में सासदों को नये चुनावों का सामना करना पड़ता है, जिसके लिए वे सामान्यत: तैयार नहीं होते हैं।

(4) लोकसदन द्वारा जनता की शिकायतों का निवारण

लोकसदन के सदस्य जनता के प्रतिनिधि हैं। वे जनता की शिकायतों को सदन के माध्यम से सरकार तक पहुँचाते हैं और उनका निवारण करने के लिए उसे बाध्य करते हैं। वास्तव में लोकसदन का विरोधी-दल जनता की स्वतन्त्रता का रक्षक है। सदस्य विशेषकर, विरोधी दल के सदस्य, प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछते हैं। ये लोकसदन के आलोचनात्मक कार्यों के फलस्वरूप उदासीन एवं अक्षम प्रशासन से जनता को पर्याप्त सरक्षण प्राप्त होता है।

लोकसदन लोकतान्त्रिक शासन का वह आधारभूत स्तम्भ है जिसके बिना लोकतन्त्र चल ही नहीं सकता। लोकसदन के कारण ही राष्ट्र का शासन जनता के प्रतिनिधियों के माध्यम से जनता की अनुमति और सहमति से संचालित होता रहता है। अतः देश की राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित करने में लोकसदन की अहम भूमिका है।

लोकसदन का अध्यक्ष

(Speaker of the House of Commons)

ब्रिटिश लोकसदन के अध्यक्ष को 'स्पीकर' (Speaker) कहा जाता है। यह ऐतिहासिक पद ससद् के प्रारम्भिक काल से ही चला आ रहा है। प्रमाण-पत्रों से ज्ञात होता है कि 1936 ई. में सर टॉमस हंगरी फोर्ड (Sir Thomas Hungry Ford) ने सबसे पहले इस पद को वैधानिक रूप से ग्रहण किया था।

'स्पीकर' का शाब्दिक अर्थ है 'बोलने वाला'। उसे स्पीकर इसलिए कहा गया कि प्रारम्भ में वह राजा और प्रजा के बीच एक कड़ी के रूप में था। वह जनता का प्रवक्ता था जिसके द्वारा जनता की आवाज राजा के सम्मुख पहुँचाई जाती थी। उस समय लोकसदन केवल प्रार्थना-पत्र भेजने वाली संस्था था और स्पीकर का काम था कि लोकसदन के ऐसे प्रार्थना-पत्रों को राजा के समक्ष प्रस्तुत करे और उसकी ओर से राजा के समक्ष बोल कर सुनाये। अब लोकसदन पहले के समान एक प्रार्थना करने वाली संस्था मात्र नहीं रही है वरन् लोकसम्प्रभुता का प्रतीक बन गई है। अतः आज स्पीकर एक ऐसी संस्था का अध्यक्ष है जो लोकसम्प्रभुता की प्रतीक और उसकी सरक्षक है।

1919 ई. के लन्दन गजट के अनुसार लोकसदन के अध्यक्ष का पद कौन्सिल के लॉर्ड प्रेसीडेण्ट (Lord President) के बाद आता है। वह वेस्टमिंस्टर भवन में रहता है

और पदमुक्त होने के बाद उसे पीयर (Peer) बनाया जा सकता है। स्पीकर के अधिकार और उसकी शक्ति को सभी दल मानते हैं।

अध्यक्ष की स्थिति (Position of the Speaker)

ब्रिटिश संविधान में लोकसदन के अध्यक्ष का पद महान् गौरव और शक्ति का पद है। इस मान्यता के निम्नांकित आधार हैं—

(i) लोकसदन का अध्यक्ष सदन की कार्यवाही को निष्पक्षता तथा न्यायपूर्ण ढंग से सम्पादित करता है।

(ii) अध्यक्ष पद एक प्राचीन और गौरवमय पद है जिसका संसद् के साथ ही विकास हुआ है। अध्यक्ष संसद् द्वारा राजा के मध्य हुए संघर्ष के बाद हुई विजय का प्रतीक रहा है। भूतकाल में भी वह लोकसदन की प्रतिष्ठा और गरिमा का प्रतीक रही है।

(iii) अठारहवीं शताब्दी में अध्यक्ष-पद को उच्च प्रशासकीय और न्यायिक पदों, यहाँ तक की प्रधानमन्त्री पद को प्राप्त करने के लिए भी पहला कदम माना जाने लगा। फलस्वरूप इसका महत्व और बढ़ गया।

(iv) निर्वाचन होने के बाद भी अध्यक्ष सदन के अन्दर और बाहर पूर्णत. निर्दलीय व्यवहार करता है। वह सदन के सभी दलों को समान रूप से बोलने का अवसर प्रदान करता है।

(v) अध्यक्ष की सज-धज और तड़क-भड़क का भी इस पद की महत्ता और प्रभाव की वृद्धि में पर्याप्त हाथ रहा है। वह रौबीला चोगा और भारी टोप पहनता है तथा चन्दबावाली कुर्सी पर बैठता है। उसे करमुक्त बीस हजार पौंड वार्षिक वेतन और निवृत्ति के बाद वार्षिक पेंशन मिलने की व्यवस्था है। इन सब बातों से उसके प्रभाव में वृद्धि होती है।

इर्सकिन मे (Erskine May) ने लिखा है कि "लोकसदन का अध्यक्ष सदन की शक्ति, उसकी कार्यवाही और उसकी शान के सम्बन्ध में सदन का प्रतिनिधि माना जाता है। वह सदन का अत्यन्त-विशिष्ट व्यक्ति होता है।"

अध्यक्ष का निर्वाचन (Election of the Speaker)

प्रारम्भ में राजा ही अध्यक्ष की नियुक्ति करता था, किन्तु आज उसकी स्वीकृति महज औपचारिक है। आजकल अध्यक्ष का निर्वाचन लोकसदन के सदस्यों द्वारा लोकसदन के प्रथम अधिवेशन के प्रथम दिन को ही किया जाता है। प्रधानमन्त्री और प्रतिपक्षी दल के नेता परस्पर विचार द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति को अध्यक्ष पद के लिए खड़ा करते हैं जो सरकारी दल और प्रतिपक्षी दल दोनों को ही मान्य हो। परम्परागत प्रथा के अनुसार लोकसदन के सदस्य लॉर्ड सभा द्वारा आमन्त्रित किए जाने पर वहाँ पहुँचते हैं और शान्ति से खड़े हो जाते हैं। उस समय लॉर्ड चासलर घोषणा करता है कि क्राउन की इच्छा है कि वे किसी बुद्धिमान व्यक्ति को अपना अध्यक्ष चुन लें और तब लोकसदन के सदस्य अपने सदन में वापस आकर अध्यक्ष का चुनाव करते हैं. व्यवहार में अध्यक्ष वही चुना जाता है जो सरकार को मान्य होता है। इसीलिए मुनरो ने लिखा है कि "साधारण सदस्यों द्वारा प्रस्ताव एव अनुमोदन केवल इस वास्तविक बात को पूरा

करने के लिए ही किया जाता है कि चुनाव मन्त्रियों द्वारा न होकर पूरे सदन द्वारा हुआ है।"[1]

चुनाव के बाद अध्यक्ष अपने पद की शपथ लेता है। अध्यक्ष के चुनाव की पुष्टि बाद में सम्राट द्वारा होती है। उसका निर्वाचन लोकसदन की अवधि के लिए ही किया जाता है, किन्तु परम्परा के अनुसार पुराने ही अध्यक्ष का निर्वाचन उस समय तक निर्विरोध रूप से होता रहता है जिस समय तक वह कार्य करने को तैयार हो। यह पद्धति इतनी मान्य है कि अध्यक्ष के निर्वाचन-क्षेत्र से कोई अन्य उम्मीदवार प्रायः कभी खड़ा नहीं होता। इसलिए कहा जाता है कि 'एक बार अध्यक्ष सदैव के लिए अध्यक्ष' (Once a Speaker is always a Speaker) होता है।

अध्यक्ष पद को निष्पक्ष रखने के लिए सामान्यतः निम्नलिखित परम्पराओं का पालन किया जाता है—

(1) अध्यक्ष संसद् की पूर्ण अवधि के लिए निर्वाचित होता है। फ्रांस में यह केवल एक सत्र के लिए निर्वाचित होता है।

(2) अध्यक्ष उस समय तक बार-बार चुना जाता है जब तक कि उसकी मृत्यु नहीं हो जाती या वह स्वय त्याग-पत्र नहीं दे देता।

(3) अध्यक्ष का निर्वाचन सर्वसम्मति से होता है और उसे चुनाव लड़ना नहीं पड़ता। अध्यक्ष निर्वाचित होने के बाद वह अपने दल से सम्बन्ध-विच्छेद कर देता है।

(4) उसे अपने निर्वाचन-क्षेत्र की परवाह करने की आवश्यकता नहीं होती।

(5) वह वाद-विवादों में भाग नहीं लेता।

(6) अध्यक्ष का निर्णायक मत होता है किन्तु इसका प्रयोग वह बहुत कम करता है और जब करता है तो यथास्थिति को बनाए रखने के लिए ही।

(7) वह सदन में और सदन के बाहर निष्पक्ष व्यवहार करता है।

अध्यक्ष के अधिकार (Powers of the Speaker)

ब्रिटेन में लोकसदन का अध्यक्ष व्यापक अधिकारों तथा शक्तियों का प्रयोग करता है, जिन्हें निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है—

(1) लोकसदन का प्रतिनिधित्व—अध्यक्ष सदन के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। वह निस्सन्देह सदन का क्रियाशील एवं संवैधानिक प्रतिनिधि होता है। सदन के प्रतिनिधि के रूप में उसकी शक्तियाँ और कार्य निम्नानुसार हैं—

(1) अध्यक्ष सदन और राजा के बीच मध्यस्थ का काम करता है। सदस्य उसके माध्यम से राजा के पास प्रतिवेदन और धन्यवाद या निन्दा का प्रस्ताव भेजते हैं। यदि सदन का शिष्टमण्डल राजा से भेंट करना चाहे तो उनके साथ अध्यक्ष का नेता के रूप में होना आवश्यक है। अध्यक्ष ही वित्त-विधेयकों को राजा के सम्मुख स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करता है। राजा की ओर से यदि कोई संदेश सदन अर्थात् लोकसदन को प्रेषित किया जाता है तो उसे भी अध्यक्ष ही पढ़कर सुनाता है। राजा की ओर से वही

1 *Munro* : The Govt. of Europe.

लोकसदन के लिपिक (Clerk of the House) को रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए आदेश देता है। वही उनके लिए चुनावों की घोषणा करता है। लोकसदन और लॉर्ड-सभा की सम्मिलित बैठक में भाग लेने के लिए लोकसदन के सदस्य जाते हैं तो उनका नेतृत्व भी अध्यक्ष करता है।

(2) लोकसदन और लॉर्ड-सभा के पारस्परिक सम्बन्धों और व्यवहारों में भी अध्यक्ष ही लोकसदन का प्रतिनिधित्व करता है। वही निश्चय करता है कि कोई विधेयक वित्त-विधेयक है अथवा नहीं। वित्त-विधेयकों को लॉर्ड-सभा में प्रस्तुत करना उसी का कर्तव्य है। वित्त-विधेयकों के बारे में लॉर्ड-सभा की प्रतिक्रिया के औचित्य के बारे में अध्यक्ष ही निर्णय करता है, अर्थात् वही यह देखता है कि लोकसदन के अधिकारों पर आघात पहुँचाने वाले विधेयक हैं तो उन्हें अस्वीकार कर सकता है और अपने निर्णय की सूचना लॉर्ड-सभा को भेज देता है।

(3) बाह्य जगत में भी अध्यक्ष ही लोकसदन का नेतृत्व करता है। जो ससदीय प्रतिनिधि मण्डल विदेश जाते हैं उनका नेतृत्व प्रायः वही करता है। लोकसदन के निर्णयों की सूचना बाह्य अधिकारियों को वही देता है और वही यह भी बतलाता है कि उन्हें किस प्रकार क्रियान्वित करना है। अध्यक्ष के माध्यम से ही लोकसदन को वे सूचनाएँ और याचिकाएँ प्राप्त होती हैं जो बाहर से उसे भेजी जाती हैं।

(2) **लोकसदन की अध्यक्षता**—अध्यक्ष की वास्तविक और मुख्य शक्तियाँ लोकसदन की अध्यक्षता से सम्बन्धित निम्नांकित हैं—

(1) अध्यक्ष यह देखता है कि लोकसदन के प्रत्येक अधिवेशन के आरम्भ में आवश्यक उपस्थिति है अथवा नहीं अर्थात् लोकसदन के 'कोरम' को भी वह सुनिश्चित करता है।

(2) वह सदन की बैठकों का सभापतित्व करता है और वाद-विवादों तथा व्यवस्था सम्बन्धी नियमों की व्याख्या करता है तथा वही उन्हें लागू करता है।

(3) बिना अध्यक्ष की आज्ञा के कोई भी सदस्य भाषण नहीं दे सकता और न किसी विधेयक के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कर सकता है। अध्यक्ष ही निश्चित करता है कि कौनसा सदस्य बोलेगा। समस्त भाषण, वक्तव्य और प्रश्न उसी को सम्बोधित करके किए जाते हैं।

(4) अध्यक्ष का एक महत्वपूर्ण कार्य यह है कि सदस्यों की वाद-विवाद की उचित व्यवस्था तथा क्रम का निर्धारण करना है। वह देखता है कि सदस्यगण वाद-विवाद के मुख्य विषय से न हटें और अप्रासंगिक बातें न करें।

(5) अध्यक्ष को निर्णायक मत (Casting Vote) देने का अधिकार है। प्रचलित प्रथा के अनुसार वह अपने इस अधिकार का प्रयोग यथा-स्थिति (Status-quo) बनाए रखने के लिए करता है। यदि किसी प्रस्ताव द्वारा विषय पर लोकसदन की विचार-अवधि हटाने का निश्चय हो तो वह अपने निर्णायक मत का प्रयोग उसके विरोध के लिए करता है। यदि विचार-अवधि बढ़ाने का प्रस्ताव हो तो वह अपने मत का प्रयोग उसके पक्ष के लिए करता है ताकि अन्तिम निर्णय इस सम्बन्ध में सदन को ही करना पड़े।

(6) वह किसी प्रश्न या 'काम रोको' प्रस्ताव को उस स्थिति में ठुकरा सकता है जब वह उन्हें सभा के नियमों के विरुद्ध समझता हो। यदि वह देखता है कि संशोधन बहुत से है और समय बहुत कम है, तो वह महत्वपूर्ण संशोधनों को छोड़कर शेष को अस्वीकृत कर देता है। इसको 'कंगारू समापन' (Kangaroo Closure) कहते हैं।

(7) अध्यक्ष सारजेन्ट-एट-आर्म्स की सहायता से सदन में अनुशासन बनाए रखता है, अनुशासन भंग करने वालों को रोकता है तथा अशिष्ट व्यवहार करने वाले को सदन से बहिर्गमन के लिए बाध्य कर सकता है। अव्यवस्था बढ़ जाने पर वह सभा की बैठक स्थगित कर सकता है। गम्भीर दुराचार करने पर वह दोषी सदस्य को सत्र भर के लिए निलम्बित (Suspend) भी कर सकता है।

(8) अध्यक्ष लोकसदन में अल्पसंख्यकों के हितों का भी रक्षक होता है।

(9) लोकसदन की प्रतिष्ठा और गरिमा को बनाये रखने का दायित्व भी उसी का है। उसकी अनुमति के बिना कोई भी सदस्य गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है।

(3) **लोकसदन सम्बन्धी प्रशासन**—अध्यक्ष उस प्रशासनिक विभाग का प्रधान भी होता है जिसे लोकसदन के स्पीकर का विभाग कहा जाता है। इस विभाग में सदन का क्लर्क, लाइब्रेरियन और कुछ अन्य सेवक होते हैं। इनके अतिरिक्त निजी विधेयकों के सम्बन्ध में निरीक्षण, कतिपय अधिकारी जिनका सम्बन्ध मतदान कार्यालय (Voting Office) से होता है एवं कुछ और व्यक्ति होते हैं। अध्यक्ष यह देखता है कि लोकसदन की कार्यवाही का प्रकाशन ठीक रूप से होता रहे।

कभी-कभी अध्यक्ष को संवैधानिक सम्मेलनों का सभापतित्व भी करना होता है, जैसे 1914 का बकिंघम महल सम्मेलन (Buckingham Palace Conference of 1914) अथवा 1920 का स्पीकर सम्मेलन (Speaker's Conference of 1920)। वह राष्ट्रमण्डलीय स्पीकर सम्मेलनों की भी अध्यक्षता करता है। बाहर से आने वाले शिष्ट मंडलों का स्वागत भी करता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश लोकसदन के अध्यक्ष की शक्तियाँ और कर्तव्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। अध्यक्ष एक ऐसा आदर्श व्यक्ति है जिस पर सदन को पूर्ण विश्वास होता है। उसके निर्णयों का सत्तारूढ़ दल और विपक्षी दल समान रूप से सम्मान करते हैं। उसकी निष्पक्षता और निर्दलीय आचरण इस पद की गरिमा और प्रतिष्ठा को बढ़ाने में बहुत हद तक सहायक बनता है।

ब्रिटिश समिति प्रणाली

(The British Committee System)

ब्रिटेन में विधि-निर्माण के कार्यों का सम्पादन करने के लिए विविध समितियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। ब्रिटिश समिति प्रणाली का प्रादुर्भाव महारानी एलिजाबेथ प्रथम के समय हुआ।

समितियों के प्रकार

(Types of Committees)

लोकसदन की विविध समितियाँ हैं, जिनमें से अग्रलिखित प्रमुख हैं—

(1) सम्पूर्ण सदन की समिति (The Committee of the Whole House)

(2) विशिष्ट अथवा प्रवर समितियाँ (Select Committees)

(3) स्थाई समितियाँ (Standing Committees)

(4) गैर-सरकारी विधेयक समितियाँ (Committees on Private Bills)

(5) रायुक्त या सम्मिलित समितियाँ (Joint Committees)

इनके अतिरिक्त (Parliamentary Party Committees, The Scottish Standing and Grand Committees तथा The Welsh Grand Committees भी है।

सम्पूर्ण सदन की समिति

यह सबसे प्रमुख समिति है तथा इसमें सदन के समस्त सदस्य सम्मिलित होते हैं। इसमे और सदन में अन्तर केवल यही होता है कि (i) सदन की अध्यक्षता करता है जबकि समिति की अध्यक्षता इसके (समिति) द्वारा निर्वाचित सभापति करता है। (ii) समिति का सभापति अध्यक्ष की कुर्सी पर नहीं बैठता, बल्कि टेबुल के पास रखी सदन के लिपिक (Clerk) की कुर्सी पर बैठता है। (iii) अध्यक्ष की शक्ति की प्रतीक गदा (Mace) भी मेज से हटा कर उसके नीचे रख दी जाती है। (iv) सदन से भिन्न समिति में किसी प्रस्ताव के अनुमोदन की आवश्यकता नहीं रहती। (v) समिति में एक सदस्य चाहे जितनी बार बोल सकता है। सदन के समान इसमें बोलने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता और न ही 'पूर्व प्रश्न' (Previous Questions) के प्रस्ताव द्वारा वाद-विवाद समाप्त किया जा सकता है।

सम्पूर्ण सदन की समिति मे सभी विधेयको पर विचार नहीं किया जाता। मुख्यरूप से वित्त-विधेयक ही विचारार्थ लिए जाते हैं। सभी वित्त-विधेयकों के प्रायः दो भाग होते हैं—एक भाग का सम्बन्ध व्यय से होता है और दूसरे भाग का सम्बन्ध आय से होता है। सम्पूर्ण सदन की समिति जब व्यय से सम्बन्धित भाग पर विचार करती है, तब उसे 'सम्भरण समिति' (Committee of Supply) कहा जाता है और जब आय से सम्बन्धित भाग पर विचार करती है तब उसे उपाय व साधन समिति या अर्थोपाय समिति (Committee of Ways and Means) के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

वित्त-विधेयकों के अतिरिक्त अग्रलिखित विधेयक भी सम्पूर्ण सदन की समिति में भेजे जाते हैं—

(1) ऐसे विधेयक जो अस्थाई आदेश की पुष्टि करते हों, एवं

(2) ऐसे विशेष विधेयक जिनके बारे में सदन यह निश्चित करता है कि वे सम्पूर्ण सदन की समिति के सामने किए जाएँ।

अन्य प्रकार के विधेयक विभिन्न समितियों में उनके क्षेत्रानुसार भेजे जाते हैं। जब समिति का कार्य समाप्त हो जाता है, तब समिति वापस सदन के रूप में बदल जाती है। अध्यक्ष की गदा (Mace) मेज पर रख दी जाती है, अध्यक्ष पुनः अपना स्थान ग्रहण कर लेता है और सदन का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। सदन के लिए कोई समिति स्थाई रूप से नियुक्त नहीं की जाती। समिति एक अस्थाई निकाय (Body) होती है जो आवश्यकतानुसार किसी भी दिन नियुक्त की जा सकती है।

विशिष्ट या प्रवर समितियाँ

वित्त विधेयकों के अतिरिक्त अन्य सार्वजनिक विधेयकों के लिए विशिष्ट या प्रवर समितियाँ होती हैं। ये दो प्रकार की हैं—(i) तदर्थ विशिष्ट समितियाँ (Adhoc Selection Committees) तथा (ii) सत्रीय विशिष्ट समितियाँ (Sessional Select Committees)। तदर्थ समितियाँ अस्थाई होती हैं और विधेयक के विचार की समाप्ति के साथ ही इनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। सत्रीय विशिष्ट समितियाँ सदन द्वारा प्रत्येक सत्र के आरम्भ में नियुक्त की जाती हैं और सत्र के अन्त तक चलती हैं। इनमें से कुछ समितियों के नाम ये हैं—प्रवर समिति (The Selection Committee), लोक-लेखा समिति (The Committee of Public Accounts), स्थाई आदेश समिति (The Standing Order Committee), विशेषाधिकार सम्बन्धी समिति (The Committee of Privileges), सविधिक विलेख प्रवर समिति (The Selection Committee of Statutory Instruments)।

लोकसदन स्वय निर्णय करता है कि कौन-कौन सी विशिष्ट समितियाँ बनायी जाएँ और वही उन समितियों के लिए सदस्यों के नामों का चयन भी करता है।

ये समितियाँ अत्यन्त शक्तिशाली होती हैं। उन्हें खुले अधिवेशन करने का अधिकार होता है। ये लोकसदन में तथ्यों का संग्रह करती हैं, प्रमाणों व साक्ष्यों की परीक्षा करती हैं और अन्य प्रकार से सूचना प्राप्त करती हैं जिनसे सम्बन्धित विषय के बारे में उचित कदम उठाया जा सके, पर इनको यह अधिकार नहीं है कि वे किसी व्यक्ति को अपने सामने उपस्थित होने को बाध्य कर सकें अथवा उसके कागजात या अभिलेख मँगवा सकें जब तक कि सदन उन्हें विशेष रूप से इसका अधिकार न दे। अन्य समितियाँ विधेयकों के सैद्धान्तिक पक्ष को नहीं देखतीं, वे केवल उनके प्रारूप सम्बन्धी पक्ष को देखती हैं। किन्तु विशिष्ट समितियाँ सार्वजनिक मामलों के विषय में जाँच-समिति का कार्य करती हैं। उन्हें यह देखने का भी अधिकार होता है कि किसी विधेयक में निहित सिद्धान्त कहाँ तक उचित अथवा वांछनीय हैं। लोकसदन प्रायः इन समितियों के विचारों का सम्मान करता है।

स्थायी समितियाँ

विशिष्ट समितियों से अधिक महत्वपूर्ण स्थायी समितियाँ हैं। इनकी संख्या चार या पाँच है जिन्हें A, B, C, D, E आदि नाम से पुकारा जाता है। एक स्कॉटलैण्ड सम्बन्धी मामलों की समिति (Committee of Scottish Affairs) भी होती है। यह केवल उन्हीं विधेयकों पर विचार करती है जिनका सम्बन्ध स्कॉटलैण्ड से होता है। यह समिति अन्य समितियों के आकार से लगभग तीन गुनी होती है और इसमें कम से कम 10 तथा अधिक से अधिक 15 तक विशेषज्ञ होते हैं। इसके अतिरिक्त एक महा-समिति (Grand Committee) भी होती है। यह भी स्कॉटलैण्ड के मामले पर ही विचार करती है। इसी प्रकार वेल्स और मन्माउट शायर (Wales and Manmount Shire) के निर्वाचन क्षेत्रों के लिए 16 सदस्यों वाली वेल्स महासमिति (Wales Grand Committee) भी होती है।

स्थायी समितियाँ प्रत्येक संसद् गठन के पश्चात् प्रथम अधिवेशन पर बना दी जाती हैं और तब तक बनी रहती है जब तक कि उस संसद् का सत्र समाप्त न हो जाए। स्कॉटलैण्ड की समिति को छोड़कर A, B, C, D, E स्थायी समितियों में से प्रत्येक की सदस्य सख्या 20 होती है, किन्तु किसी विशेष विदेयक के विचारार्थ इनमें 30 तक और सदस्य नियुक्त किए जा सकते हैं, अर्थात् इनके सदस्यों की संख्या 50 तक हो सकती है। नए सदस्यों की नियुक्ति तत्सम्बन्धी विधेयक के प्रति उसके ज्ञान और अनुभव के आधार पर होती है। एक चयन समिति (Committee of Selection) इन समितियों को नामांकित करती है। सभी राजनीतिक दलों के सदस्य इन समितियों में उसी अनुपात से लिये जाते हैं जिस अनुपात में सदन में उनकी संख्या होती है। सदन का अध्यक्ष स्थायी समिति के लिए सभापति का चुनाव उन सभापतियों की सूची में से करता है जिनका नामांकन चयन समिति करती है। इस सूची में कम से कम 10 सदस्य अवश्य होते हैं। स्थायी समिति के सभापति (चेयरमैन) की वही शक्तियाँ हैं जो साधन-समिति के सभापति की होती हैं। साथ ही उसे यह भी अधिकार है कि वह वाद-विवाद की समाप्ति का प्रस्ताव स्वीकार कर ले और किसी मुखबन्ध कर्तन-यन्त्र (Guillotine) उपाय द्वारा वाद-विवाद बन्द कर दे।

व्यवस्थापन का अधिकतर कार्य इन स्थायी समितियों द्वारा ही किया जाता है। अधिकांश विधेयक इन्हीं समितियों के सुपुर्द कर दिए जाते हैं। ब्रिटिश स्थायी समितियों की यह एक विशेषता है कि उनका कार्यक्षेत्र निर्धारित अथवा विशिष्ट नहीं होता। उनका कार्य विधेयकों के प्रारूप में संशोधन करना होता है और वे उनके सिद्धान्तों में कोई परिवर्तन नहीं कर सकतीं। स्थायी समितियाँ विधेयक का स्वरूप बदल सकती हैं, किन्तु उसे पूर्णतः समाप्त नहीं कर सकतीं। प्रत्येक विधेयक को उन्हें अपने प्रतिवेदन के साथ पुनः लोकसदन के समक्ष प्रस्तुत करना पड़ता है और यह लोकसदन की इच्छा पर है कि वह समितियों द्वारा प्रस्तावित संशोधनों को स्वीकार करे या न करे

स्थायी समितियों द्वारा प्रस्तुत सशोधनों को लोकसदन प्रायः स्वीकार कर लेता है क्योंकि उनके सुझाव बड़े उपयोगी होते हैं। परन्तु इन स्थायी समितियों की कार्य-प्रणाली भी दोष-मुक्त नहीं है। अनेक कारणों से इन समितियों की आलोचना की जाती है—(i) समितियों की सदस्य संख्या इतनी अधिक हो जाती है कि ये प्रायः गम्भीर विचार के उपयुक्त नहीं रहतीं। (ii) समितियों पर कार्यभार इतना अधिक है कि 4-5 समितियों से काम नहीं चल सकता। (iii) समितियों के सदस्य विधेयकों के विषय के विशेषज्ञ नहीं होते।

स्थायी समितियों में सुधार पर गम्भीरतापूर्वक विचार चल रहा है। एक ओर तो सदस्य-सख्या कम करने तथा दूसरी ओर समितियों की सख्या बढ़ाकर 10 कर देने का सुझाव है। यह भी सुझाव है कि ब्रिटिश स्थायी समितियों का गठन समितियों के समान विषयवार किया जाए।

संयुक्त समितियाँ

कभी-कभी लॉर्ड-सभा और लोकसदन दोनों सदनों की संयुक्त समितियों की भी नियुक्ति होती है। ये संयुक्त समितियाँ ऐसे विषयों पर विचार और अनुसन्धान करती हैं

जिनके बारे में दोनों सदनों में उत्तेजना पायी जाती है परन्तु ब्रिटिश संसदीय जीवन में इनका प्रचलन बहुत ही कम है। इन समितियों का स्वरूप विशिष्ट समितियों के समान होता है।

गैर-सरकारी विधेयक समितियाँ

गैर-सरकारी विधेयकों के परीक्षण के लिए गैर-सरकारी विधेयकों की समितियाँ होती हैं। इन समितियों की कार्य-प्रणाली विशिष्ट या प्रवर समितियों जैसी है। इनकी नियुक्ति का भार चयन-समिति (Committee of Selection) पर है। ये समितियाँ स्थायी होती हैं। लोकसदन द्वारा निर्मित ऐसी समितियों में चार सदस्य तथा लॉर्ड-सभा द्वारा निर्मित ऐसी समितियों में पाँच सदस्य होते हैं।

ये समितियाँ बहुत शक्तिशाली होती हैं। ये उन गैर-सरकारी विधेयकों का परीक्षण करती हैं जिनका द्वितीय वाचन (Second Reading) में विरोध किया जाता है। ये समितियाँ अर्द्ध-न्यायिक पद्धति (Quasi-Judicial Line) पर कार्य करती हैं। ये विधेयकों के रूप पर विचार कर उन्हें उन्नत बनाती हैं और उनमें अन्तर्निहित सिद्धान्तों पर विचार कर उनके औचित्य-अनौचित्य के आधार पर आवश्यक परिवर्तन करती हैं। प्रस्तावित व्यवस्था से लाभान्वित होने वाले लोगों को और उन लोगों को जिन्हें हानि होने की सम्भावना हो, गवाही के लिए आमन्त्रित करने का भी इन्हें अधिकार है। ये लोग स्वय तथा अपने वकीलों द्वारा अपना पक्ष समितियों के सम्मुख प्रस्तुत कर सकते हैं। यह निर्णय समितियाँ ही कर सकती हैं कि किसी विधेयक का निर्माण होना चाहिए या नहीं और यदि होना चाहिए तो उसका रूप क्या होगा ?

समितियों का निर्णय प्रायः अन्तिम होता है, क्योंकि व्यवहार में यही पाया गया है कि लोकसदन इन समितियों के प्रतिवेदन के विरुद्ध कार्य नहीं करता।

समितियों के कार्य का मूल्यांकन

स्पष्ट है कि समितियों का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है और ये लोकसदन के व्यवस्थापन-कार्य में बहुत सहायक हैं। ब्रिटेन में इन समितियों को सदन के लघु रूप की संज्ञा दी जाती है। परन्तु इससे यह आशय नहीं कि व्यवस्थापन-कार्य में समितियों का कार्य मुख्य और संसद् का कार्य गौण हो गया है। ये समितियाँ सदन के अधीनस्थ रहकर ही अपने कार्यों का सम्पादन करती हैं।

विधि-निर्माण-प्रक्रिया

(Legislative Process)

ब्रिटिश साम्राज्य के लिए कानूनों का निर्माण संसद् का सबसे प्रमुख कार्य है। संसद् देश के लिए व्यवस्थापन करती है जिसको देश की कार्यकारिणी क्रियान्वित करती है। ब्रिटेन की विधि-निर्माण-प्रणाली ने, जो अत्यन्त वैज्ञानिक रूप में व्यवस्थित है, लगभग सम्पूर्ण विश्व के विधान-मण्डलों को प्रभावित किया है।

विधेयकों के प्रकार

ब्रिटिश विधेयकों के विभिन्न प्रकार अग्रांकित तालिका से स्पष्ट हैं—
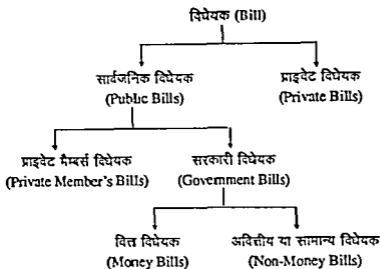
स्पष्ट है कि समस्त विधेयक जो संसद् में प्रस्तुत होते हैं, दो प्रकार के होते हैं—(i) सार्वजनिक विधेयक और (ii) प्राइवेट या असार्वजनिक या व्यक्तिगत विधेयक।

सार्वजनिक विधेयक—सार्वजनिक विधेयक वे होते हैं जिनका सम्बन्ध देश की सम्पूर्ण जनता से या जनता के बहुत बड़े भाग से होता है—उदाहरणार्थ, कर सम्बन्धी विधेयक, प्रशासनिक विधेयक, मताधिकार सम्बन्धी विधेयक, अनिवार्य शिक्षा सम्बन्धी विधेयक आदि। ऐसे विधेयकों का उद्देश्य किसी सार्वजनिक हित की साधना होता है।

इन सार्वजनिक विधेयकों के पुनः दो प्रमुख भेद होते हैं—गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक (Private Member's Bills) एवं सरकारी विधेयक (Government Bills)।

जब कोई सार्वजनिक विधेयक प्राइवेट, अर्थात् व्यक्तिगत या गैर-सरकारी सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया जाता है तो उसे गैर-सरकारी सदस्यों का विधेयक कहा जाता है। इस प्रकार के विधेयकों का सरकारी सहयोग के अभाव में पारित होना बहुत कठिन होता है। उन सार्वजनिक विधेयकों को, जिन्हें सरकार द्वारा अर्थात् मन्त्रिमण्डल के किसी सदस्य द्वारा प्रस्तावित किया जाता है, सरकारी विधेयक कहा जाता है। इन विधेयकों को संसद् से पारित कराना सरकार का उत्तरदायित्व होता है। सदन का अधिकांश समय इन्हीं विधेयकों को पारित करने में व्यतीत होता है।

सरकारी विधेयक भी दो भागों में बाँटे जा सकते हैं—(i) वित्त-विधेयक और (ii) साधारण अथवा अवित्तीय विधेयक। वित्त विधेयक मन्त्रिमण्डल के सदस्य द्वारा राजा की सिफारिश पर लोकसदन में प्रस्तावित किए जाते हैं इन्हें लॉर्ड-सभा में प्रस्तावित नहीं किया जा सकता। कौन-सा विधेयक वित्त विधेयक है और कौन-सा नहीं, इसका निर्णय अध्यक्ष (Speaker) करता है। वित्त विधेयकों के अतिरिक्त जो अन्य सार्वजनिक विधेयक सरकार द्वारा प्रस्तावित होते है, वे अवित्तीय या साधारण विधेयक कहलाते हैं।

व्यक्तिगत या असार्वजनिक विधेयक—ये वे विधेयक हैं जिनका सम्बन्ध सम्पूर्ण देश की जनता से न होकर किसी स्थान-विशेष की जनता से अथवा किसी संस्थान या संस्था से होता है और जो जनता के साम्पत्तिक अधिकारों में हस्तक्षेप नहीं करते। उदाहरणार्थ, वह विधेयक जो किसी नगरपालिका या निगम से सम्बन्धित हो या विशेष प्रकार के मजदूरों के हितों के लिए हो या किसी विशेष स्थान पर सुधार-योजना के लिए हो, व्यक्तिगत या असार्वजनिक विधेयक (Private Bill) कहलाता है। ऐसे विधेयक प्रायः नगरपालिकाओं और नगर-निगमों जैसी स्थानीय संस्थाओं द्वारा प्रार्थना-पत्रों के माध्यम से प्रस्तुत किए जाते हैं। इनके पारित होने की भी उस समय तक बहुत कम सम्भावना रहती है जब तक कि सरकार उनका समर्थन नहीं करती। व्यक्तिगत सदस्यों के विधेयक (Private Member's Bills) तथा व्यक्तिगत विधेयक सार्वजनिक विधेयकों के अन्तर्गत शामिल होते हैं जिनका प्रभाव सम्पूर्ण देश पर पड़ता है। इन विधेयकों के पारित होने के लिए संसद् में एक भिन्न प्रक्रिया को अपनाया जाता है। व्यक्तिगत विधेयकों का सम्बन्ध सार्वजनिक हित से न होकर विशिष्ट हित से होता है। ये विधेयक न तो मन्त्रियों द्वारा प्रार्थना-पत्र भेज कर प्रस्तुत किए जाते हैं। इनको पारित करने के लिए संसद् में सार्वजनिक विधि-निर्माण प्रक्रिया से भिन्न प्रक्रिया अपनाई जाती है।

सार्वजनिक विधेयकों (वित्त-विधेयकों के अतिरिक्त) से सम्बन्धित विधि-निर्माण प्रक्रिया

इन विधेयकों की विधि-निर्माण प्रक्रिया क्रमशः निम्नलिखित स्तरों (Stages) में पूरी होती है—

(i) प्रस्तुतीकरण एवं प्रथम वाचन—सिद्धान्ततः ये दोनों बातें भिन्न-भिन्न हैं, किन्तु ब्रिटेन में विधेयक का प्रस्तुतीकरण तथा प्रथम वाचन एक साथ ही होता है।

कोई भी सार्वजनिक विधेयक सैद्धान्तिक रूप में किसी भी संसद् सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है, परन्तु व्यवहार में सभी महत्वपूर्ण सार्वजनिक विधेयक सरकार की ओर से किसी न किसी मन्त्री द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं। वित्त-विधेयक अनिवार्यतः वित्तमन्त्री द्वारा ही प्रस्तुत होता है और वह भी लोकसदन में ही। अन्य विधेयक संसद् के दोनों सदनों में से किसी भी सदन में प्रस्तावित किए जा सके हैं, परन्तु महत्वपूर्ण विधेयकों को प्रायः लोकसदन में ही प्रस्तावित करने की प्रथा है।

विधेयकों को प्रस्तुत करने की तीन विधियाँ प्रचलित हैं—

(1) साधारण प्रस्तुतीकरण (Dummy Introduction)

(2) दस मिनट के नियम का प्रस्तुतीकरण (Introduction under the Ten Minutes Rule)

(3) विधेयक की व्यवस्था पर प्रकाश डालने वाला प्रस्तुतीकरण (Introduction under the leave to Introduction Provision)

साधारण प्रस्तुतीकरण के अन्तर्गत विधेयक के प्रस्ताव को विधेयक प्रस्तुत करने से पूर्व कोई भाषण नहीं देना पड़ता। वह केवल विधेयक को प्रस्तुत करने की लिखित सूचना सदन के लिपिक (Clerk of the House) को दे देता है। तत्पश्चात् अध्यक्ष उसे

विधेयक को विधिवत् प्रस्तुत करने के लिए बुलाता है। वह आकर अपने विधेयक को सदन के लिपिक के पास रख देता है और यह स्वयं अथवा लिपिक विधेयक के शीर्षक को पढ़ देता है। इस प्रकार विधेयक के प्रस्तुतीकरण की क्रिया पूरी हो जाती है। तत्पश्चात् यह प्रस्ताव किया जाता है कि विधेयक को पहली बार पढ़ा हुआ (First Reading) समझा जाए और उसे छपवाने की आज्ञा दी जाए। सामान्यतः यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है और इस विधेयक का प्रस्तुतीकरण एवं प्रथम वाचन समाप्त हो जाता है।

दस मिनट के नियम के प्रस्तुतीकरण का प्रयोग सरकार द्वारा विवादपूर्ण और महत्व के विधेयकों के लिए किया जाता है। प्रस्तावक को और विपक्ष के एक सदस्य को थोड़े-थोड़े समय में यह अवसर दिया जाता है कि प्रस्तावक विधेयक का उद्देश्य और उसका महत्व तथा विपक्ष उसकी आलोचना संक्षेप में सदन के सम्मुख व्यक्त करें। तत्पश्चात् यह प्रस्ताव रखा जाता है कि विधेयक का प्रथम वाचन पूरा समझा जाए और उसे छपवाने की आज्ञा प्रदान की जाए। इस प्रस्ताव के स्वीकार होने पर विधेयक का प्रस्तुतीकरण और प्रथम वाचन समाप्त समझा जाता है।

विधेयक की व्यवस्था पर प्रकाश डालने वाले प्रस्तुतीकरण के अन्तर्गत प्रस्तावक अपने विधेयक के सिद्धान्तों और उसके लाभों को स्पष्ट करते हुए एक लम्बा भाषण देता है और यह प्रस्ताव रखता है कि सदन में विधेयक को प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाए। विरोध करने वाले सदस्य प्रस्तावित विधेयक के सिद्धान्तों के दोषों को सदन के सम्मुख प्रकट करते हुए इस प्रस्ताव के सदन में प्रस्तुत करने की अनुमति का विरोध करते हैं। अन्त में मतदान द्वारा निर्णय किया जाता है। यदि सदन का निर्णय प्रस्ताव के पक्ष में होता है तो सदन के समक्ष यह प्रस्तावित किया जाता है कि विधेयक का प्रथम वाचन (First Reading) पूरा समझा जाए और उसे छपवाया जाए। अधिक समय लगने के कारण इस विधि का अब प्रायः प्रयोग नहीं किया जाता।

(ii) द्वितीय वाचन—प्रथम वाचन के पश्चात् जब विधेयक छप जाता है, तब वह सूची (Calender) पर आ जाता है। विधेयक के दूसरे वाचन के लिए एक तारीख निश्चित कर दी जाती है। इस तारीख को प्रस्तावक यह प्रस्ताव करता है कि विधेयक को दूसरी बार पढ़ा जाए।

द्वितीय वाचन (Second Reading) के समय विधेयक पर वास्तविक वाद-विवाद होता है। इस वाचन में विधेयक के शीर्षक, उद्देश्य, प्रयोजन और सिद्धान्तों पर खुलकर वाद-विवाद किया जाता है। विधेयक के सिद्धान्तों और उसकी अच्छाइयों एवं बुराइयों पर पूर्ण विचार होता है। इस अवस्था में कोई संशोधन नहीं हो सकता। सदन सम्पूर्ण विधेयक को स्वीकृत या अस्वीकृत कर देता है। यदि विधेयक किसी मन्त्री द्वारा प्रस्तावित हो तो उसके अस्वीकृत हो जाने का अर्थ यह लगाया जाता है कि सदन का मन्त्रिमण्डल पर विश्वास नहीं रह गया है, परन्तु ऐसे अवसर प्रायः बहुत ही कम आते हैं। द्वितीय वाचन के समय बहुमत की पूरी शक्ति इस बात पर केन्द्रित हो जाती है कि सरकारी पक्ष की हार न हो पाए। फिर भी विपक्ष की वजनदार आलोचना से प्रभावित अवश्य होती है और जिन संशोधनों को उचित समझती है, स्वयं स्वीकार कर लेती है।

द्वितीय वाचन में विधेयक को अस्वीकार करने के लिए प्रायः दो तरीके प्रयोग में लाए जाते हैं—(1) सीधे शब्दों मे यह प्रस्ताव रख दिया जाता है कि अमुक विधेयक सिद्धान्त रूप से दोषपूर्ण है, अतः इसे कानून का रूप न दिया जाए, (2) विधेयक का प्रस्तावक जब यह प्रस्ताव करे कि विधेयक का दूसरा वाचन हो, तो विरोधी पक्ष की ओर से विधेयक को इतने समय बाद दूसरी बार पढने का सशोधन रख दिया जाए कि तब तक ससद् का सत्र ही समाप्त हो जाए। यह विधेयक को नम्रतापूर्ण ढग से अस्वीकार करने की विधि है जिसके द्वारा विधेयक स्पष्टत. अस्वीकार भी नहीं किया जाता और समाप्त भी हो जाता है।

गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा प्रस्तुत विधेयक, यदि उन्हे सरकारी समर्थन प्राप्त हो तो द्वितीय वाचन की स्थिति मे समाप्त हो जाता है।

(iii) समिति स्तर—द्वितीय वाचन के बाद विधेयक किसी समिति के सुपुर्द किया जाता है। यदि यह वित्त-विधेयक है तो सम्पूर्ण सदन की समिति में भेजा जाता है, अन्यथा शेष सभी विधेयको को अध्यक्ष द्वारा प्राय स्थायी समितियों में से किसी एक में भेज दिया जाता है। कभी-कभी विधेयक को किसी विशिष्ट समिति (Select Committee) को भी दिया जाता है और वहाँ से वापस आने पर या तो सम्पूर्ण सदन की समिति में या किसी स्थायी समिति में जाता है।

समिति का भी विधेयक के लिए बड़ा महत्व होता है। समिति में विधेयक के अग-प्रत्यग पर विचार किया जाता है और इसकी धाराओं व उपधाराओ पर पूर्ण रूप से बहस की जाती है। इस स्तर पर विधेयक के शब्द-प्रतिशब्द पर विचार-विमर्श होता है। विरोधी दल के सदस्य विधेयक में बहुत से परिवर्तन कर विधेयक के प्रभाव को जितना सम्भव हो उतना कम कर देने का प्रयत्न करते हैं।

समिति में विचार अनौपचारिक होता है। समिति द्वारा विधेयक में सशोधन सुझाए जा सकते हैं यद्यपि उन्हें स्वीकार करना या न करना सदन की इच्छा पर निर्भर करता है।

(iv) प्रतिवेदन स्तर—समिति स्तर के बाद प्रतिवेदन स्तर (Report Stage) आता है। सम्पूर्ण सदन की समिति के पश्चात् यह स्तर केवल औपचारिक रह जाता है, लेकिन अन्य समितियों के विचारोपरान्त इस स्तर पर पर्याप्त वाद-विवाद होता है। ब्रिटेन में समितियाँ प्रत्येक विधेयक को अपने प्रतिवेदन के साथ सदन को वापस भेजती हैं। यह पूर्णत. सदन के अधिकार की बात है कि वह समितियों के प्रतिवेदन में दिए गए सुझावों को अस्वीकार करे या न करे। सदन यदि चाहे तो विधेयक को समिति के पास पुन विचार के लिए भेज सकता है।

समिति का प्रतिवेदन कुछ भी क्यों न हो, विधेयक के स्वरूप और सिद्धान्तों आदि के विषय में अन्तिम निर्णय लेना सदन का कार्य है। इस स्तर पर भी विधेयक सम्बन्धी सशोधन प्रस्तुत किए जा सकते हैं। स्वय सरकार भी यदि चाहे तो अपनी ओर से सशोधन की पहल कर सकती है। इस स्तर पर जिस रूप में भी विधेयक स्वीकृत होता है वह तृतीय वाचन के लिए तैयार हो जाता है। अधिकांश विधेयक प्रतिवेदन स्तर से सीधे तृतीय वाचन के स्तर पर उसी दिन आ जाते हैं।

(v) तृतीय वाचन—विधेयक के जीवन का सदन में तृतीय वाचन (Third Reading) अन्तिम स्तर है। इस पर भी वाद-विवाद होता है और विधेयक के सिद्धान्तों पर विचार किया जाता है। इसका उद्देश्य होता है कि संशोधित विधेयक को एक बार अन्तिम रूप से फिर देख लिया जाए, उसकी परीक्षा कर ली जाए और तभी उसको अन्तिम स्वीकृति प्रदान की जाए। इस स्तर पर विधेयक के रूप पर तथा वाक्य-प्रतिवाक्य अथवा शब्द-प्रतिशब्द पर विचार नहीं होता। केवल विधेयक के सिद्धान्तों और उसके गुण-दोषों पर विचार किया जाता है। इस वाचन में नियमित संशोधन नहीं किए जाते, केवल विधेयक के प्रारूप में शब्दों का हेर-फेर किया जा सकता है। इस तरह तथ्य सम्बन्धी परिवर्तन इस स्तर पर नहीं होते। अन्त में, इस आशय का प्रस्ताव स्वीकार किया जाता है कि विधेयक का तृतीय वाचन हो गया है अर्थात् विधेयक सदन में अन्तिम रूप से स्वीकृत एवं पारित हो गया है। तृतीय वाचन के स्तर पर भी सदन विधेयक को स्वीकार कर सकता है, परन्तु प्रायः ऐसा नहीं होता।

(vi) विधेयक का द्वितीय सदन में जाना—एक सदन द्वारा पारित होने पर विधेयक दूसरे सदन में भेज दिया जाता है। अधिकांश सरकारी और महत्वपूर्ण विधेयक पहले लोकसदन में ही प्रस्तुत किए जाते हैं, अतः वहाँ विचार होने के उपरान्त पुनः लॉर्ड-सभा में भेज दिए जाते हैं। सदन का लिपिक विधेयक को दूसरे सदन में ले जाता है। दूसरे सदन में भी फिर वही सब स्तर प्रथम वाचन, द्वितीय वाचन, समिति स्तर, प्रतिवेदन स्तर तथा तृतीय समितियों और विशिष्ट समितियों का प्रयोग नहीं किया जाता, वरन् सम्पूर्ण सदन-समिति का प्रयोग होता है। यदि लॉर्ड-सभा विधेयक को स्वीकार लेती है तो वह हस्ताक्षर के लिए राजा के पास भेज दिया जाता है और यदि विधेयक से असहमत होती है और उसमें संशोधन कर देती है तो विधेयक पुनः लोकसदन में आता है। लोकसदन में लिपिक (Clerk) प्रत्येक संशोधन को पढ़ता है और मन्त्री उसके साथ, स्वीकृत या अस्वीकृत किए जाने का प्रस्ताव रखता है। यदि प्रस्तावित संशोधन को स्वीकार कर लिया जाता है तो विधेयक राजा की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है। यदि दोनों सदनों में मतभेद रहता है तो उसे दूर करने के लिए निम्नांकित दो विधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं—

(1) दोनों सदनों के कुछ प्रतिनिधि, जो प्रबन्धक (Managers) कहलाते हैं, अपने सम्मेलन द्वारा मतभेदों को समाप्त करने का प्रयास करते हैं। इस सम्मेलन में लोकसदन के प्रबन्धकों की संख्या लॉर्ड-सभा के प्रबन्धकों की संख्या की दुगुनी होती है। यह सम्मेलन स्वतन्त्र और बन्द दोनों प्रकार का हो सकता है। स्वतन्त्र सम्मेलन में प्रबन्धक मतभेदों के आधारों को मौखिक रूप से प्रस्तुत करके उनके पक्ष में विस्तारपूर्वक विचार प्रकट कर सकते हैं। यद्यपि मतभेदों को सुलझाने का यह एक अच्छा ढंग है, किन्तु 1836 से इसका प्रयोग नहीं हुआ है। अन्तरंग सम्मेलन में मतभेद के आधारों को विरोधी सदन प्रबन्धकों द्वारा एक लिखित बयान के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रथा का प्रारम्भ 1851 में हुआ था। इस उपाय से दोनों सदन अपने मतभेदों को लिखित सन्देशों द्वारा दूर कर सकते हैं।

(2) यदि उक्त विधियों या उपायों से भी दोनों सदनों के मतभेद समाप्त न हों तो 1949 में संशोधित 1911 के संसदीय अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार "कार्यवाही करके लोकसदन विधेयक पारित करा सकता है जिसके अनुसार लॉर्ड-सभा लोकसदन द्वारा पारित विधेयक को अधिक से अधिक एक वर्ष विलम्बित कर सकती है और उसके बाद राजा के हस्ताक्षर से विधेयक स्वतः कानून बन जाता है।"

(vii) राजा की स्वीकृति—विधेयक के जीवन का अन्तिम स्तर राजकीय स्वीकृति (Royal-Assent) का होता है जो केवल औपचारिक है। विधेयक इस अन्तिम अवस्था में राजा की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किए जाते हैं और अध्यक्ष की उपस्थिति में उनके शीर्षक लॉर्ड सभा में पढ़े जाते हैं। राजा के प्रतिनिधि द्वारा घोषणा की जाती है कि 'राजा ऐसा चाहते हैं।' इस तरह राजकीय स्वीकृति का कार्य समाप्त हो जाता है तथा विधेयक कानून बन जाता है एवं उसे संविधि-पुस्तक (Statute Book) में लिख दिया जाता है।

व्यक्तिगत सदस्यों के प्रस्तावों और विधेयकों से सम्बन्धित प्रक्रिया की विशेषताएँ

कुछ सार्वजनिक विधेयक साधारण सदस्यों द्वारा अर्थात् गैर-सरकारी या व्यक्तिगत सदस्यों द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं। इन पर विचार शुक्रवार को ही होता है। सदस्यगण अपने पर्चे लिपिक (Clerk) की सन्दूक में, जो मेज पर रखा रहता है, डाल देते हैं। लिपिक उन पर्चों को एक-एक करके खींचता है जिसका पर्चा पहले खिंच जाता है, वही सदस्य अपना विधेयक सत्र के पहले शुक्रवार को प्रस्तुत करता है, दूसरे पर्चे वाला दूसरे शुक्रवार को और तीसरा तीसरे शुक्रवार को आदि। इस प्रकार लगभग सब शुक्रवारों का गैर-सरकारी सदस्यों (Private members) के विधेयकों हेतु उपयोग होता है। इन सदस्यों के प्रस्तावों और विधेयकों के लिए संसद् के कार्यक्रम में बहुत कम समय मिलता है। व्यक्तिगत सदस्यों के विधेयक सार्वजनिक धन के व्यय से सम्बन्धित नहीं होते।

असार्वजनिक व्यक्तिगत विधेयकों से सम्बन्धित विधि-निर्माण प्रक्रिया

व्यक्तिगत विधेयक प्रायः नगरपालिकाओं और नगर-निगमों जैसी स्थानीय संस्थाओं द्वारा प्रार्थना-पत्रों के माध्यम से प्रस्तुत किए जाते हैं और इनका सम्बन्ध सार्वजनिक हित-साधन न होकर विशिष्ट-हित साधन होता है।

इन विधेयकों के पारित होने की निम्नलिखित प्रक्रियाएँ हैं—

(1) प्रत्येक विधेयक किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है और यह प्रायः संसद् के बाहर के व्यक्तियों अथवा संस्थाओं द्वारा भेजा जाता है।

(2) विधेयक प्रस्तावित करने के लिए मसविदे के साथ-साथ एक याचना-पत्र (Petition) भी भेजना अनिवार्य है। इसके भेजने से पूर्व-उन व्यक्तियों को प्रकाशित सूचना देनी पड़ती है जिनके निजी हितों पर इसका प्रभाव पड़ता हो। सूचना की प्रतिलिपि सम्बन्धित सरकारी विभाग को भेजनी होती है। यह सब कार्यवाही करने से पूर्व विधेयक पर किसी प्रकार का विचार करना सम्भव नहीं होता। विधेयक का प्रस्तुतीकरण

चाहने वाला उतनी धनराशि सरकारी कोष में जमा करा देता है जितनी उसमें व्यय होने की सम्भावना होती है।

(3) विधेयक से सम्बन्धित याचना-पत्र संसद् के दोनों सदनों के एक अधिकारी जिन्हें 'असार्वजनिक विधेयकों के प्रार्थना-पत्र का परीक्षक' (Examiner of Petition of Private Bills) कहते हैं, द्वारा देखा जाता है और उस विधेयक की तत्सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति पर उनके द्वारा विचार किया जाता है। परीक्षक द्वारा प्रस्तावित विधेयक को नियमानुसार प्रमाणित कर देने के बाद विधेयक को संसद् के किसी सदन में प्रस्तुत कर दिया जाता है और उसका प्रथम वाचन हो जाता है।

(4) द्वितीय वाचन में विधेयक के सिद्धान्तों पर विस्तारपूर्वक विवाद होता है और यदि विधेयक बिना किसी विरोध के पारित हो जाता है, तो उसे 'निर्विरोध विधेयकों की समिति' (Committee of Unopposed Bills) में भेज दिया जाता है। यह समिति विधेयक की धाराओं पर विस्तार से विचार करती है और अपने प्रतिवेदन के साथ उसे सदन को वापस भेज देती है।

यदि द्वितीय वाचन में विधेयक का विरोध होता है तो उसको व्यक्तिगत विधेयकों की विभिन्न समितियों में से किसी एक समिति के सुपुर्द कर दिया जाता है। समिति विधेयक के विषय में न्यायिक जाँच (Judicial Enquiry) करती है। समिति अपनी जाँच केवल विधेयक की प्रस्तावना (Preamble) तक ही सीमित रखती है और विधेयक के सिद्धान्तों पर ही पक्ष-विपक्ष के तर्कों को सुनती है। यदि समिति विधेयक को कानून बनने के योग्य नहीं समझती तो वह समाप्त समझा जाता है, किन्तु यदि समिति विधेयक सम्बन्धी सब बातों से सन्तुष्ट हो जाती है तो वह विधेयक की धाराओं पर विस्तारपूर्वक विचार करने के उपरान्त अपने प्रतिवेदन के साथ उसे सदन को वापस भेज देती है।

इसके बाद प्रतिवेदन स्तर पर व्यक्तिगत विधेयकों का द्वितीय वाचन उसी तरह होता है जिस तरह सार्वजनिक विधेयकों का। जिस विधेयक के पक्ष में समिति अपना प्रतिवेदन दे देती है, वह सदन में प्रायः बिना किसी वाद-विवाद के पारित हो जाता है, तथा दूसरे सदन में भेज दिया जाता है जहाँ इसे प्रायः स्वीकार कर लिया जाता है। तत्पश्चात् राजकीय स्वीकृति के बाद वह कानून बन जाता है।

वित्त-विधेयकों से सम्बन्धित विधि-निर्माण प्रक्रिया

वित्त-विधेयक वे विधेयक होते हैं जिनका सम्बन्ध करारोपण, परिवर्तन या निरस्त करने और सार्वजनिक कोष के नियोजन (Appropriation of the Public Fund) से होता है। वित्त-विधेयकों की एक विशिष्ट स्थिति होती है और ये अनिवार्यतः लोकसदन में ही प्रस्तावित किए जाते हैं। लोकसदन वित्त-विधेयकों को संशोधित या अस्वीकृत कर सकता है, किन्तु जब अनुदान के लिए माँग की जाए तब यह अपेक्षित राशि को कम या अस्वीकार तो कर सकती है, पर उसे बढ़ा नहीं सकती। वित्त-विधेयकों पर लॉर्ड-सभा का कोई अधिकार नहीं होता। वित्त-विधेयक लोकसदन में उस समय तक प्रस्तावित नहीं किए जा सकते जब तक उन पर इस सम्बन्ध में सम्राट की स्वीकृति प्राप्त न कर ली गई हो। इस तरह लोकसदन आय-व्यय के विवरण (Budget) की पूरी जाँच करती है और वित्तीय नीति पर पूरा-पूरा नियन्त्रण रखती है।

विधि का शासन और न्याय व्यवस्था

(Rule of Law and Judicial System)

ब्रिटेन की कानूनी और न्याय व्यवस्था को विश्व में सर्वोत्तम माना जाता है। ब्रिटेन में शासन, शासक वर्ग का नहीं अपितु कानून का है, और न्यायाधीश कानून के शासन (Rule of Law) को लागू करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहते हैं। इस स्थिति ने ही ब्रिटिश संसदीय शासन-व्यवस्था की प्रतिष्ठा और गरिमा में भारी अभिवृद्धि की है।

कानून के शासन का अर्थ एवं अवधारणा

(Meaning and Concept of the Rule of Law)

ब्रिटेन में कानून के शासन से तात्पर्य यह है कि वहाँ कानून ही देश का शासनकर्त्ता है, न कि किसी व्यक्ति विशेष की इच्छा अर्थात् देश में कानून सर्वोच्च है जिसके अधिकार-क्षेत्र से कोई बच नहीं सकता। कानून के शासन का डायसी (Dicey) ने अपनी पुस्तक 'दि लॉ ऑफ दी कॉन्स्टीट्यूशन' (The Law of the Constitution) में विशद् विवेचन किया है। उन्होंने बतलाया कि कानून की सर्वोच्चता की यह मान्यता किस तरह ब्रिटिश प्रशासन और सार्वजनिक जीवन को प्रभावित करती है।[1]

डायसी के अनुसार कानून के शासन की तीन प्रमुख अवधारणाएँ (सम्प्रत्यय) हैं—

(1) कानून की सर्वोपरिता (Supremacy of Law)—ब्रिटेन में कानून सर्वोपरि है। ब्रिटेन के शासक वर्ग को नागरिकों के साथ मनमानी करने का कोई अधिकार नहीं है। कोई भी व्यक्ति केवल तभी दण्डित किया जा सकता है जब देश के किसी साधारण न्यायालय में उसका अपराध सिद्ध हो जाए। इस प्रकार देश का कोई भी व्यक्ति अवैध रूप से अपने जीवन या अपनी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता। डायसी ने कानून के शासन के इस आशय को इन शब्दों में प्रकट किया है—"जब तक कोई व्यक्ति स्पष्टतः कानून के विरुद्ध आचरण न करे और कानून के विरुद्ध किया गया यह आचरण देश के सामान्य न्यायालय में सिद्ध न हो जाए, तब तक न तो किसी को दण्ड दिया जा सकता है और न किसी को शारीरिक कष्ट अथवा हानि पहुँचाई जा सकती है।" अभियोग की खुली सुनवाई होती है और अभियुक्त को अपने बचाव के लिए सफाई देने या अपना पक्ष प्रस्तुत करने का पूरा अवसर दिया जाता है।

1. *Dicey* : Introduction to the Study of Law of Constitution.

(2) कानून की समानता (Equality before Law)—प्रत्यके व्यक्ति चाहे वह किसी भी स्थिति या पद पर हो, कानून का उल्लघन करने पर उसका परिणाम भुगतने के लिए बाध्य है। डायसी के अनुसार—"कोई व्यक्ति कानून से ऊपर नहीं है, वरन् प्रत्येक व्यक्ति, चाहे उसका पद और स्थिति कुछ भी हो, देश के सामान्य कानून से शासित होता है तथा सामान्य ट्रिब्यूनलों के क्षेत्राधिकार में आता है।" ब्रिटेन में कानून के अन्तर्गत लाभ-हानि सभी को समान रूप से प्राप्त है। कानून के अन्तर्गत मिलने वाले लाभ से कोई वंचित नहीं किया जा सकता और उसके अन्तर्गत दिए जाने वाले दण्ड से कोइ बच नहीं सकता। यदि साधारण व्यक्तियों के विरुद्ध कानून का उल्लघन करने पर मुकदमा चलाया जा सकता है तो प्रशासनिक अधिकारियों पर अपने सरकारी पद पर किए गए उन कार्यों के लिए भी मुकदमा चलाया जा सकता है जो कानून के विरुद्ध हों और जिन्हें करने के लिए उनके पास कोई आधार न हो। जिस साधारण कानून के आधार पर साधारण व्यक्तियों के कार्यों का औचित्य-अनौचित्य परखा जाता है उसी के आधार पर सरकारी अधिकारियों के सरकारी हैसियत से किए गए कार्यों का औचित्य-अनौचित्य भी जाँचा जाता है। इसी प्रकार जो साधारण न्यायालय साधारण व्यक्तियों के अपराधों के मुकदमों का निबटारा करते हैं, वे ही सरकारी कर्मचारियों के सरकारी हैसियत में किए गए अपराधों के मुकदमों का निपटारा भी करते हैं।

(3) संवैधानिक सिद्धान्तों का न्यायिक निर्णयों की उपज होना अथवा व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा (Protector of Rights)—डायसी के अनुसार कानून के शासन की तीसरी अवधारणा यह है कि संविधान के सामान्य सिद्धान्त उन न्यायिक निर्णयों के परिणाम हैं जिनमें न्यायालयों ने विशेष अभियोगों में साधारण नागरिकों के अधिकारों को निश्चित किया है। इसका तात्पर्य यह है कि बहुत से मामलों में जो विधान में स्पष्ट नहीं हैं, न्यायालयों के निर्णय ही अन्तिम माने गए। इसलिए विधान में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता सम्बन्धी कानून (जिनका संविधान में उल्लेख नहीं है) न्यायालयों के निर्णयों के परिणाम हैं। डायसी के अनुसार, "कानून के शासन का महत्त्व इतना अधिक है कि संसदीय कानूनों का निर्माण भी उसी की रक्षा के लिए किया जाता है और संसद् की कानून की शक्ति को सर्वोच्च इसलिए समझा जाता है कि वह कानून बनाने का कार्य देश के उस सामान्य कानून (Common Law) को ध्यान में रख कर करती है जो स्वयं कानून के शासन का आधार है।"

कानून के शासन का व्यावहारिक पक्ष या सीमाएँ
(Practical Aspect or Limitations of Rule of Law)

कानून के शासन के बारे में डायसी की उपर्युक्त तीनों सैद्धान्तिक अवधारणाएँ अतिशयोक्तिपूर्ण हैं जैसा कि निम्नांकित विवेचन से प्रकट हो सकेगा—

(1) डायसी की प्रथम व्याख्या की अव्यावहारिकता—डायसी द्वारा कानून के शासन की अपनी पहली व्याख्या में दो बातों पर बल दिया गया है—(क) कानून का शासन इस बात को स्वीकार नहीं करता कि अधिकारियों को 'व्यापक स्वेच्छाचारी और स्वविवेक पर आधारित' शक्ति के प्रयोग का अधिकार हो, एवं (ख) प्रशासन का प्रत्येक

कार्य सामान्य कानून या संसदीय कानून द्वारा अधिकृत हो। डायसी की ये दोनों ही बातें अव्यावहारिक हैं क्योंकि—

(i) डायसी निरंकुश या स्वेच्छाचारपूर्ण शक्ति (Arbitrary Power) और विवेक (Discretion) के विभेद को स्पष्ट नहीं कर सका है। उसने इन दोनों शब्दों को उलझा दिया है। स्वेच्छाचारिता और विवेक दो अलग-अलग वस्तुएँ हैं। स्वेच्छाचारी शक्ति का अर्थ अनुत्तरदायी तथा अनियन्त्रित शक्ति है जो कानून के शासन की सहगामिनी नहीं हो सकती। आज के राज्य का स्वरूप लोक-कल्याणकारी है और अधिकारियों को अपने विभिन्न उत्तरदायित्वों को सुचारू रूप से निभाने के लिए आवश्यकतानुसार स्वविवेक से कार्य करना पड़ता है। उन्हें यह ध्यान रखना पड़ता है कि यह स्वविवेक स्वेच्छाचारिता का रूप न ग्रहण कर ले।

(ii) प्रदत्त विधान की दृष्टि से भी डायसी का निष्कर्ष अव्यावहारिक माना जाएगा। व्यवहार में यह सम्भव नहीं है कि समाज की प्रत्येक आवश्यकता का नियमन संसद् के विस्तृत विधान द्वारा ही हो। ब्रिटिश संसद् का इतिहास साक्षी है कि लम्बे समय से यह प्रथा चली आ रही है जिसे हम आज प्रदत्त विधान (Delegated Legislation) या उप-विधान (Sub-Legislation) या संसद् द्वारा शक्ति का हस्तान्तरण कहते हैं। संसद् तो कानूनों की रूपरेखा मात्र निर्धारित करती है। बाद में विभागीय आदेशों (Departmental Orders) द्वारा उन्हें पूरा किया जाता है। शासन-विभाग ही कानून की बारीकियों को देखते हैं और संसदीय कानून का व्यापक अर्थ निकाल कर अनेक नियम-विनियम तथा आदेश-परिपत्र जारी करते हैं। प्रदत्त विधान की यह व्यवस्था कानून के शासन के उस रूप में प्रतिकूल हैं जिसका प्रतिपादन डायसी ने किया है।

(2) डायसी की द्वितीय व्याख्या की अव्यावहारिकता—डायसी ने अपनी दूसरी व्याख्या में इस बात पर बल दिया है कि सामान्य व्यक्ति और प्रशासनिक अधिकारी दोनों ही कानून की दृष्टि से समान हैं तथा सामान्य न्यायालय द्वारा दण्डनीय हैं। डायसी के इस मत की भी अनेक आधारों पर आलोचना की जाती है—

(i) वर्तमान समय में अन्य देशों की तरह ब्रिटेन में भी शासकों और कूटनीतिक अधिकारियों को न्यायालयों की कार्यप्रणाली और मुकदमों आदि के सम्बन्ध में विमुक्तियाँ या विशेषाधिकार दिये गये हैं। आज ऐसी व्यवस्था नहीं है कि सरकारी कर्मचारी और साधारण नागरिक सभी मामलों में देश के साधारण न्यायालयों के न्याय-क्षेत्र में आ जाएँ। ब्रिटेन में ऐसे अनेक प्रशासनिक न्यायालय हैं जिनमें प्रशासनिक अधिकारी ही न्यायाधिकारी हैं तथा सरकारी कर्मचारियों और साधारण नागरिकों के विवादों का निराकरण करते हैं और उनके ये निर्णय सामान्य कानून के अनुसार नहीं बल्कि उन प्रशासनिक नियमों के अनुसार होते हैं जो विशेष प्रकार के मामलों के लिए बनाए जाते हैं। उदाहरणार्थ, श्रम न्यायालय (Labour Tribunal) तथा सामाजिक बीमा के स्थानीय अपीलीय न्यायालय (Local Appeal Tribunals for Social Insurance) ऐसे ही न्यायालय हैं जो न तो देश के साधारण न्यायालयों में ही गिने जाते हैं और न साधारण कानून के अनुसार न्यायिक कार्य ही करते हैं।

(ii) साधारण नागरिक और सरकारी कर्मचारियों का अपनी त्रुटियों के लिए कानून के सामने समान रूप से उत्तरदायी होने की स्थिति में अब एक अन्य प्रकार से भी अन्तर आ गया है। जब सरकार द्वारा शान्ति एव व्यवस्था कायम रखने के लिए या ऐसे ही किसी अन्य कार्य से सम्बन्धित कार्य किए जाते हैं तो 1947 के क्राउन प्रोसीडिंग्स अधिनियम (Crown Proceedings Act, 1947) के अनुसार यह माना जाता है कि सरकार अपने 'सम्प्रभु रूप (Sovereign Capacity) में कार्य कर रही है। अतः ऐसी दशा में किए गए कार्यों के लिए सरकार के विरुद्ध मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। परन्तु जब सरकार शिक्षा अथवा किसी राष्ट्रीयकृत व्यवसाय का सचालन, श्रमिकों की दशा में सुधार, आदि कार्यों का सम्पादन करती है तो उक्त अधिनियम के अनुसार यह माना जाता है कि सरकार 'अपने स्वामित्व या व्यापारिक रूप' (Proprietory or Business Capacity) में कार्य कर रही है, और इस दशा में यदि सरकार के कार्य से किसी का अहित होता है तो उसके लिए सरकार के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जा सकती है।

(3) डायसी की तृतीय व्याख्या की अव्यावहारिकता—डायसी ने तीसरे पहलू में इस बात पर बल दिया है कि कानून का शासन ही व्यक्ति के अधिकारों का रक्षक है और देश के न्यायालय सामान्यतः उसके अनुसार ही अपने निर्णयों द्वारा इन अधिकारों की रक्षा करते हैं। ससदीय कानूनों या संविधियों से प्राप्त अधिकारों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। आज वास्तविकता यह है कि संसदीय कानूनों का क्षेत्र इतना व्यापक हो गयं है कि सामान्य कानून (Common Law) द्वारा प्रदत्त अधिकारों—वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अधिकार, स्वरक्षा का अधिकार, विचार-अभिव्यक्ति का अधिकार आदि को संसदीय कानूनों की शरण लेनी पड़ती है। आज देश के न्यायालय के व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा से सम्बन्धित अनेक निर्णय सामान्य कानून के अन्तर्गत नहीं, वरन् प्रायः संसदीय कानूनों के अन्तर्गत होते हैं। उदाहरणार्थ, सरकार की ओर से लोगों की गिरफ्तारी की व्यवस्था सामान्य कानून (Common Law) के अनुसार न दी जाकर 'अपराधी न्याय अधिनियम, 1925' (Criminal Justice Act, 1925) जैसे संसदीय कानूनों के अनुसार होती है। सार्वजनिक सभाओं के आयोजन व भाषण आदि सम्बन्धी अधिकार यद्यपि सामान्य कानूनों द्वारा संरक्षित हैं, तथापि 1936 के सार्वजनिक व्यवस्था अधिनियम (Public Order Act, 1936) के अनुसार भी उनके बारे में आवश्यक व्यवस्था की गई है। इसी प्रकार, सामान्य कानून का अंश होते हुए भी, बन्दी-प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus) या अपमानजनक लेख-कानून (Law of Libel) को अधिनियमों का रूप दिया गया है।

विधि (कानून) के शासन के अन्य अपवाद—(i) कानून के शासन के अन्य अपवादों में राजा और न्यायाधीश सम्बन्धी कानून प्रमुख हैं। राजा कोई गलती नहीं करता, इस कानूनी सिद्धान्त के अनुसार राजा पर कोई दीवानी या फौजदारी अभियोग नहीं लगाया जा सकता। राजा कोई भी अपराध करे उसे न्यायालय में उपस्थित होने के लिए आदेश नहीं दिया जा सकता। उसे पागल करार देकर उसकी चिकित्सा कराई जा सकती है, परन्तु ब्रिटिश कानून के अन्तर्गत किसी भी विधि द्वारा उसी के न्यायालय में उस पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। इसी प्रकार यदि सम्पत्ति सम्बन्धी मामलों में

या प्रजा के किसी व्यक्ति की राजा द्वारा हानि हो जाने पर वह व्यक्ति केवल राजा से प्रार्थना कर सकता है, और राजा चाहे तो अपनी कृपादृष्टि से, न कि प्रार्थी के अधिकार की रक्षा के लिए, उस क्षति को पूरा कर सकता है।

(ii) ब्रिटेन में न्यायाधीश भी कानून के शासन के अपवाद हैं। न्यायाधीश को अपने सरकारी काम में किसी व्यक्तिगत राय के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

(iii) कानून का शासन विदेशी शासकों और राजदूतों पर लागू नहीं होता अतः देश के कानून का उल्लघन करने पर भी किसी न्यायालय में उन पर अभियोग नहीं चलाया जा सकता। इसी प्रकार किसी विदेशी जहाज के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती।

(iv) यदि गृह-मंत्री किसी विदेशी नागरिक को ब्रिटिश प्रजा होने का प्रमाण-पत्र दे देता है या किसी के प्रमाण-पत्र को रद्द कर देता है अथवा किसी अवांछित विदेशी को देश त्याग कर चले जाने का आदेश दे देता है तो इस प्रकार के कार्यों के विरुद्ध उस पर कोई अभियोग नहीं चलाया जा सकता है।

(v) सैनिकों पर सैनिक कानूनों का नियन्त्रण है और सैनिक न्यायालयों में ही उनके अभियोगों का निर्णय होता है।

विधि-शासन से प्राप्त नागरिक अधिकार

(Civil Rights Received from Rule of Law)

ब्रिटेन में विधि-शासन से नागरिकों को विविध प्रकार के अधिकार दिये गये हैं, उनका उल्लेख निम्नानुसार किया जा सकता है—

(i) नागरिकों को शस्त्र धारण करने की स्वतन्त्रता है, उनसे अत्यधिक जमानत नहीं माँगे जाने की व्यवस्था है, उन्हें अमानवीय व असाधारण दण्ड नहीं दिए जा सकते, उन्हें संसद में अपनी शिकायतों के प्रार्थना-पत्र भेजने का अधिकार है।

(ii) ब्रिटिश नागरिकों को भाषण की पूर्ण स्वतन्त्रता है। उन्हें अपने विचार अभिव्यक्ति तथा प्रकाशित करने का पूर्ण अधिकार है, लेकिन ये बातें अपमानकारी और अश्लील न हों।

(iii) नागरिकों को धार्मिक स्वतन्त्रता है। शासन ने धर्म-निरपेक्षता का आदर्श अपनाया है, केवल राज्य का अध्यक्ष 'अंग्रेजी चर्च' का अनुयायी होना चाहिए।

(iv) उनको सभा और सम्मेलन करने की स्वतन्त्रता है। परन्तु इस पर कुछ आवश्यक प्रतिबन्ध हैं, जैसे—सम्राट् को प्रजाजनों की दृष्टि में गिराना, असन्तोष व रोष उत्पन्न करना, जनता को अशान्ति, हिंसा और अव्यवस्था के लिए उत्तेजित करना, शासन और संविधान के विरुद्ध घृणा पैदा करना या शारीरिक शक्ति द्वारा कानून में परिवर्तन कराने की चेष्टा करना राजद्रोह है।

(v) ब्रिटिश नागरिकों को संघ बनाने की स्वतन्त्रता है, किन्तु संघ का उद्देश्य और उसके साधन वैधानिक होने चाहिए। नागरिकों को जीवन रक्षा की व शारीरिक स्वतन्त्रता है। किसी भी व्यक्ति को बिना कानूनी कार्यवाही के प्राण अथवा शारीरिक स्वतन्त्रता से वंचित नहीं किया जा सकता।

विधि-शासन का ह्रास—आधुनिक काल में विधि-शासन का ह्रास हो रहा है और इसके लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी रहे हैं—

(i) हस्तान्तरित कानून का प्रचलन,

(ii) संसद् के विशेष अधिनियम, एवं

(iii) विभिन्न विभागों के न्याय-सम्बन्धी अधिकार।

(i) आज राज्य का स्वरूप तेजी से लोक-कल्याणकारी होता जा रहा है। ब्रिटेन में ही नहीं सर्वत्र राज्य का कार्यक्षेत्र बढ़ता जा रहा है अतः संसद् को इतना समय नहीं मिलता कि कानून बनाते समय सब बातों को विस्तृत रूप से उनमें सम्मिलित कर सके। संसद् समयाभाव के कारण अधिकांश कानूनों को पूर्ण रूप में न बनाकर उनकी स्थूल रूपरेखा मात्र बना देती है और शेष कार्य विभागीय अध्यक्ष पूर्ण करते हैं। इनको हस्तान्तरित कानून की संज्ञा दी जाती है। इसके अतिरिक्त बहुधा विभागाध्यक्षों को मूल नियमों में भी परिवर्तन करने का अधिकार प्रदान किया जाता है जिससे विभागीय अध्यक्षों की 'नई निरंकुशता' (New Despotism) को प्रोत्साहन मिलता है।

(ii) विधि-शासन के ह्रास होने का दूसरा कारण यह है कि संसद् के विशेष अधिनियम बहुधा जनता के अधिकारों को सीमित कर देते हैं। उदाहरणार्थ, 1893 के सार्वजनिक कर्मचारी रक्षा सम्बन्धी अधिनियम (Public Authorities Protection Act of 1893) जिसका संशोधन 1939 के अधिनियम (Limitation Act of 1939) द्वारा हुआ था और 1947 का क्राउन प्रोसीडिंग एक्ट (Crown Proceeding Act, 1947) जैसे अधिनियम नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा की अवहेलना हुई है, क्योकि जहाँ एक ओर इनसे सामान्य नागरिकों के अधिकारों व उनकी स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगे हैं वहाँ दूसरी ओर सरकारी कर्मचारियों को सामान्य कानून (Common Law) की पकड़ में आने से बचाने की व्यवस्था भी की गई है। 1902 के शिक्षा अधिनियम, 1919 के वित्त अधिनियम, 1912 के राष्ट्रीय बीमा अधिनियम आदि ने विभागीय पदाधिकारियों की शक्तियों में आशातीत वृद्धि की है।

(iii) विधि-शासन के ह्रास का तीसरा प्रमुख कारण यह है कि विभिन्न विभागों के न्याय सम्बन्धी अधिकार बढ़ते जा रहे हैं और बहुधा उनके निर्णयों के विरुद्ध अपील सम्भव नहीं होती। मुकदमे चलाने वाले के हाथ ही में निर्णय करने की शक्ति देना न्याय की उपेक्षा करना है। आधुनिक समय में ब्रिटेन में विधि-शासन के अनेक अपवाद दृष्टिगोचर होते हैं। फौजी लोगों पर फौजी अदालतों में मुकदमा चलाया जाता है, डॉक्टरों के लिए मेडिकल कौंशिलें हैं जो उन पर अभियोग चलाती हैं और पादरियों को दण्ड देने का अधिकार धार्मिक न्यायालयों को है।

उपर्युक्त तर्कों के बावजूद विधि-शासन आज भी ब्रिटिश राजनीतिक जीवन का अभिन्न अंग है और जनता के अधिकारों व उसकी स्वतन्त्रता का प्रहरी है।

ब्रिटिश कानून एवं न्याय-व्यवस्था की विशेषताएँ
(Features of the British Law and Judicial System)

कानून एवं न्याय-व्यवस्था की दृष्टि से सम्पूर्ण देश में एकरूपता का अभाव है। ग्रेट ब्रिटेन में न्यायालयों की समान कार्य-प्रणाली और समान संगठन नहीं है। इंग्लैण्ड, वेल्स तथा उत्तरी आयरलैंड की कानून और न्याय-व्यवस्था में ये अन्तर देखा जा सकता है। फिर भी निकट सम्पर्क के कारण सभी भागों की कानून व न्याय-व्यवस्था में पर्याप्त समानता आ गई है। ग्रेट ब्रिटेन की न्याय-व्यवस्था की विशेषताओं को निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है—

(1) असंहिताबद्ध रूप (Uncodified Form)—ग्रेट ब्रिटेन में अधिकांश कानून संहिताबद्ध (Codified) नहीं हैं, अपितु उस रूप में है जिसे सामान्य कानून की संज्ञा दी जाती है और जिसे हम न्यायालयों के विभिन्न निर्णयों में देख सकते हैं। इसके अतिरिक्त असंहिताबद्ध कानून का बहुत बड़ा अंश औचित्यपूर्ण निर्णयों (Equity) में प्राप्य है।

अधिकांश कानून के असंहिताबद्ध होने से यह आशय नहीं लेना चाहिए कि ब्रिटेन में संहिताबद्ध कानून है ही नहीं। ज्यों-ज्यों संसदीय अधिकार-क्षेत्र का विस्तार हो रहा है, त्यों-त्यों ब्रिटिश कानून का एक बड़ा भाग संसदीय कानूनों और प्रदत्त व्यवस्थापन के रूप में संहिताबद्ध कानून का रूप धारण करता जा रहा है।

(2) साधारण कानून और साधारण न्यायालयों की सर्वोपरिता (Supremacy of Common Law and Courts)—ब्रिटेन में साधारण कानून और प्रशासनिक कानून तथा साधारण न्यायालयों व प्रशासनिक न्यायालयों में प्रभुता साधारण कानून एवं साधारण न्यायालयों की है। अधिकांशतः कानून का शासन प्रशासनिक अधिकारियों और सामान्य नागरिकों में कोई भेद नहीं मानता। सभी को उन्हीं सामान्य न्यायालयों में उपस्थित होना पड़ता है और सबसे ऊपर एक ही सामान्य विधि लागू होती है। अब ब्रिटेन में शनैः-शनैः प्रशासनिक न्याय-व्यवस्था का विकास होता जा रहा है।

(3) फौजदारी व दीवानी कानून का अन्तर (Distinction of Criminal and Civil Laws)—ब्रिटिश कानून व न्याय-व्यवस्था में फौजदारी और दीवानी कानून के अन्तर को स्वीकार किया गया है। फौजदारी कानून का सम्बन्ध पूरे समाज तथा राज्य के विरुद्ध किए गए अपराधों से होता है जबकि दीवानी कानूनों का सम्बन्ध के सदस्यों अर्थात् व्यक्तियों के अधिकारों, उनके कर्त्तव्यों और दायित्वों से सम्बन्धित विवादों से होता है। फौजदारी कानून के अन्तर्गत अभियोग का संचालन राज्य द्वारा किया जाता है जबकि दीवानी कानून के अन्तर्गत अभियोग व्यक्तियों की ओर से चलाए जाते हैं। फौजदारी न्यायालयों में काम का तरीका अन्वेषण-सम्बन्धी (Enquistorial) होने की अपेक्षा प्रायः दोष सम्बन्धी (Accusatorial) है।

(4) न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था का न होना (No Provision for Judicial Review)—ब्रिटेन में संसदीय सर्वोच्चता के सिद्धान्त को मान्यता दी गई है। उसके द्वारा पारित अधिनियमों को वैधानिक अथवा अवैधानिक ठहराना ब्रिटिश न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र में नहीं है। ब्रिटिश न्यायालयों का कार्य संसद् के कानूनों के अनुसार न्याय-कार्य करना है।

(5) जूरी-प्रथा (Jury System)—जूरी-प्रथा ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। ब्रिटेन की न्याय-व्यवस्था का इतिहास बताता है कि जूरी नागरिकों की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए देश के सकुचित और कठोर कानूनों पर अंकुश लगाते रहे हैं। उन्होंने अपनी निष्पक्षता, निर्भीकता और समझदारी के लिए विशेष ख्याति प्राप्त की है। ब्रिटेन में फौजदारी व दीवानी दोनों में जूरियों के प्रयोग की व्यवस्था पाई जाती है, पर दीवानी मुकदमों में प्रायः जूरी का प्रयोग कम होता है।

(6) न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता व निष्पक्षता (Freedom and Impartiality of Judges)—ब्रिटिश कानून एवं न्याय-व्यवस्था में न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता और निष्पक्षता सराहनीय है। न्यायाधीशों पर कार्यपालिका का किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं रहता और न ही वह उनके काम में किसी प्रकार का हस्तक्षेप कर सकती है। परिणामस्वरूप सबके साथ एक-सा न्याय होता है। ब्रिटेन में न्यायाधीशों को वेतन और पद की सुरक्षा प्राप्त है। संसद् के दोनों सदनों की प्रार्थना पर ही ये राजा द्वारा हटाए जा सकते हैं। पदोन्नति की व्यवस्था भी ऐसी नहीं है जिससे न्यायाधीशों की निष्पक्षता पर कोई प्रभाव पड़ सके।

(7) न्याय की शीघ्रता और प्रवीणता (Quick and Efficient Judgement)—ब्रिटेन में न्यायिक कार्यवाही शीघ्र या त्वरित होती है। मुकदमों के निर्णयों में प्रायः देर नहीं की जाती। इसके कुछ कारण हैं—प्रथम, उन आवश्यक सिद्धान्तों का अनुसरण किया जाता है जो न्याय-व्यवस्था की कुशलता के लिए अनिवार्य है, जैसे—जूरी-प्रथा, खुला न्यायालय, वकील रखने की प्रथा, आदि। द्वितीय, ब्रिटिन न्यायाधीश की वैध परिभाषाओं (Legal Technicalities) के निर्वाचन में पर्याप्त स्वतन्त्रता है। तृतीय, न्यायिक कार्य-प्रणाली के निगम एक विशिष्ट 'न्यायिक नियम समिति' (Judicial Rule Committee) द्वारा तैयार किये जाते हैं।

(8) वकीलों की दोहरी प्रणाली (Dual Advocate System)—ब्रिटेन के वकील दो भागों में विभाजित हैं। प्रथम वर्ग में बैरिस्टर (Barister) सम्मिलित हैं जिनका कार्य केवल न्यायालयों में मुकदमों के पक्ष अथवा विपक्ष में बहस करना है। द्वितीय वर्ग के वकील सोलिसिटर (Solicitors) कहलाते हैं जो न्याय चाहने वाले व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित कर उनके मुकदमे तैयार करते हैं।

(9) निःशुल्क कानूनी सहायता (Free Legal Service)—जो व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से निर्बल होते हैं उन्हें दीवानी मामलों में उच्च न्यायालय (High Court) तथा अपीलीय न्यायालयों (Court of Appeal) के मामलों में इंगलैण्ड और वेल्स में तथा दौरा न्यायालय (Courts of Sessions) व शैरिफ न्यायालयों (Sherrif Courts) के मामलों में स्कॉटलैण्ड में निःशुल्क कानूनी सहायता मिल सकती है, इसके अतिरिक्त कुछ विशिष्ट प्रकार के दीवानी मामलों में काउण्टी न्यायालयों व दौरा न्यायालयों में निःशुल्क कानूनी सहायता की व्यवस्था है।

(10) विकेन्द्रित न्याय-व्यवस्था (Decentralized Judicial System)—ब्रिटिश न्यायिक पद्धति की एक विशेषता उसके 'सर्किट न्यायालय' (Circuit Courts) हैं जो

स्थान-स्थान पर जाकर मुकदमों की सुनवाई करते हैं। इससे न्याय व्यवस्था विकेन्द्रित हो गई है और लोगों को न्याय प्राप्त करने में सुविधा रहती है।

ब्रिटिश न्यायालयों का संगठन
(Organisation of the British Judiciary)

ब्रिटेन की आधुनिक न्याय-व्यवस्था 1870 ई. के बाद के अधिनियमों द्वारा विनियमित होती है। इससे पहले यहाँ के न्यायालयों में एकरूपता का पूर्ण अभाव था। देश में विभिन्न प्रकार के न्यायालय बिखरे हुए थे और उनके कार्य-क्षेत्र सुनिश्चित नहीं थे। दीवानी, फौजदारी, इक्विटी तथा धार्मिक न्यायालयों के कार्य-क्षेत्र स्पष्ट नहीं थे और न्यायिक व्यवस्था अत्यधिक जटिल थी। देश के इन समस्त न्यायालयों को एकसूत्र में बाँधने अर्थात् इनके सगठन एवं कार्य-पद्धति में समानता लाने के लिए 1873 से 1879 के बीच अनेक अधिनियम पारित किए गए। देश के सब न्यायालयों को एक ही सर्वोच्च न्यायालय की विभिन्न शाखाओं का रूप दे दिया गया।

अब ब्रिटिश न्यायपालिका दो प्रकार के न्यायालयों में विभाजित है—दीवानी (Civil) और फौजदारी (Criminal)। दीवानी न्यायालयों द्वारा लेन-देन के समझौतों को भग करने, किसी की सम्पत्ति पर अधिकार कर लेने, उत्तराधिकार और मानहानि आदि से सम्बन्धित विवादों का निर्णय किया जाता है जबकि फौजदारी न्यायालयों में चोरी, डकैती, मारपीट, हत्या, जाल-साजी से सम्बन्धित विवादों पर विचार किया जाता है। ब्रिटेन में विशेष मुकदमों के लिए विशेष न्यायालयों की व्यवस्था (Special Courts) अलग से है।

इस प्रकार ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था में कुल मिलाकर वर्तमान में तीन प्रकार के न्यायालय हैं—(1) दीवानी न्यायालय (Civil Courts) (2) फौजदारी न्यायालय (Criminal Courts) (3) विशेष न्यायालय (Special Courts)।

(1) दीवानी न्यायालयों की संरचना या गठन

1971 तक दीवानी न्यायालयों की संरचना में लॉर्ड-सभा, अपील न्यायालय, न्याय का उच्च न्यायालय, उसके चार विभाग (एसाइजेज, क्वीन्स बैंच डिवीजन, चासरी डिवीजन तथा प्रोबेट, तलाक एव एडमिरलटी डिवीजन), क्वार्टर सेशंस न्यायालय एवं काउण्टी न्यायालय थे। अब वर्तमान सरचना में एसाइजेज न्यायालय तथा क्वार्टर सेशंस न्यायालय समाप्त कर दिए गए हैं और प्रोबेट, तलाक एवं एडमिरलटी डिवीजन की जगह फैमिली डिवीजन की स्थापना हुई है।

दीवानी न्यायालयों में नागरिकों के पारस्परिक अभियोगों को तय किया जाता है, यथा—लोगों में सम्पत्ति-विषयक विवाद,मान-हानि विवाद आदि। दीवानी न्यायालयों की संरचना इस प्रकार है—

(1) लॉर्ड-सभा (House of Lords)—लॉर्ड-सभा दीवानी और फौजदारी मामलों में अपील का सर्वोच्च न्यायालय है। दीवानी मामलों में यह अपील न्यायालय (सिविल डिवीजन), कोर्ट ऑफ सैशन इन स्कॉटलैण्ड एव कोर्ट ऑफ अपील इन नार्दन आयरलैण्ड से अपीलें सुनता है। अपील का कोई सामान्य अधिकार नहीं होता, बल्कि अपील

न्यायालय या लॉर्ड-सभा से पहले अनुमति प्राप्त करने पर ही सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

(2) **अपील न्यायालय (दीवानी विभाग)** (Court of Appeal : Civil Division)—यह न्यायालय काउण्टी न्यायालयों और उच्च न्यायालय की अपीलें सुनता है। यह पदेन न्यायाधीशों (Ex-Officio Judges) तथा अन्य न्यायाधीशों से मिलकर गठित होता है। पदेन न्यायाधीशों में लॉर्ड चासलर, लार्ड चीफ जस्टिस, फैमिली डिवीजन का प्रेसीडेंट, साधारण अपील लॉर्ड्स तथा मास्टर ऑफ दी रॉल्स सम्मिलित होते हैं। व्यवहार में मास्टर आफ दी रॉल्स इसका अध्यक्ष होता है। उसकी सहायता के लिए 8 से 11 तक अपील के लॉर्ड जस्टिस होते हैं। लॉर्ड चासलर उच्च न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश को अपील न्यायालय में बैठने के लिए कह सकता है। न्यायालय की गणपूर्ति (Quorum) सख्या तीन है और न्यायालय एक ही समय में 4 डिवीजनों में बैठ सकता है। न्यायालय को अधिकार है कि वह निचले न्यायालय के निर्णय को पूर्ववत् रखे, सशोधित कर दे या विपरीत कर दे तथा नई सुनवाई का आदेश दे। न्यायालय मे कुछ विशेष न्यायालयों से भी अपीलें आती हैं।

(3) **उच्च न्यायालय** (The High Court of Justice)—यह न्याय के न्यायालय (The Supreme Court of Judicature) का ही एक भाग है। इसका न्याय-क्षेत्र प्रारम्भिक व अपील सम्बन्धी दोनों ही प्रकार का होता है और इसके अन्तर्गत दीवानी के समस्त तथा फौजदारी के कुछ अभियोग समाविष्ट होते हैं। इस न्यायालय के तीन विभाग हैं—क्वींस बैंच डिवीजन, चांसरी डिवीजन तथा फैमिली डिवीजन। ये तीनों विभाग मिलकर सर्वोच्च न्यायालय (The Supreme Court of Judicature) कहलाते हैं। यद्यपि ये सब सदा अपना न्याय-कार्य पृथक्-पृथक् ही करते हैं। क्वींस बैंच में लार्ड चीफ जस्टिस तथा लगभग 30 अन्य न्यायाधीश होते हैं। यह विभाग साधारण दीवानी मामलों की सुनवाई करता है। इसका क्षेत्राधिकार तीन प्रकार का है—(अ) प्रारम्भिक, (ब) अपीलीय, एवं (स) निरीक्षणात्मक। चांसरी डिवीजन मुख्यत. उन मामलों की सुनवाई करता है जो सन् 1873 स पहले पुराने कोर्ट आफ चांसरी के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत थे। अब कुछ और भी अभियोग इसे सौंप दिए गए हैं, जैसे—दिवालियापन, कम्पनी सम्बन्धी मामले, दावे (Claims) आदि। फैमिली डिवीजन मुख्यतः इन मामलों से सम्बन्धित है—(अ) विवाह-विच्छेद, (ब) नाबालिगों का विवाह, (स) मजिस्ट्रेट्स न्यायालयों से वैवाहिक मामलों की अपीलें एव (द) वसीयत सम्बन्धी मामले।

(4) **काउण्टी न्यायालय** (County Courts)—ये न्यायालय दीवानी मामलों के निम्नतम स्तर के न्यायालय हैं। इनकी स्थापना सर्वप्रथम सन् 1846 के काउण्टी कोर्ट्स एक्ट द्वारा हुई थी। इस समय इंग्लैण्ड और वेल्स में 400 से भी अधिक काउण्टी न्यायालय हैं और लगभग 98 काउण्टी कोर्ट न्यायाधीश हैं जिनमें से कुछ के अधीन दो अथवा दो से भी अधिक न्यायालय हैं। काउण्टी न्यायालय वर्ष में औसतन डेढ़ लाख से भी अधिक मुकदमे निपटाते हैं। जिनमें से अधिकाश तो सुनवाई से पहले ही निपटा दिए जाते हैं। काउण्टी न्यायालय में जो न्यायाधीश बैठता है उसे सर्किट न्यायाधीश कहा जाता है। सर्किट न्यायाधीशों की नियुक्ति लार्ड चांसलर द्वारा होती है। काउण्टी

न्यायालयों की स्थिति ऐसी है कि सभी क्षेत्रों के लिए न्यायालय अधिक दूर नहीं पड़ते। काउण्टी न्यायालय किसी निश्चित स्थान पर नहीं रहता वरन् भ्रमणशील होता है। एक न्यायाधीश के दौरा-क्षेत्र में एक या एक से अधिक न्यायालय होते हैं। कार्य अधिक होने पर अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति की जा सकती है। काउण्टी न्यायालयों के न्यायक्षेत्र में वे सब मुकदमे आते हैं जिनमें दावे की रकम 750 पौंड या इससे कम होती हो। औचित्य के मामलों में 500 पौंड तक के मामले काउण्टी न्यायालय में आते हैं और वसीयत सम्बन्धी मामलों की सुनवाई भी कर सकते हैं। न्यायालयों में समुद्र के मामलों की सुनवाई भी होती है।

दीवानी न्यायालय का संगठनात्मक चार्ट
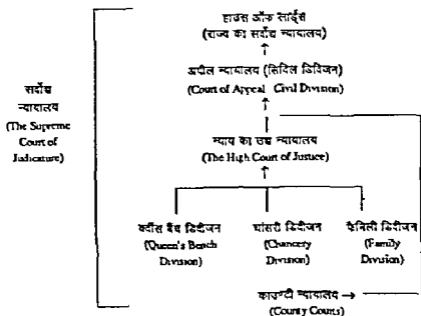
(2) फौजदारी न्यायालय की संरचना या गठन

न्यायालय अधिनियम, 1971 (The Courts Act, 1971) लागू किए जाने के बाद 1972 से फौजदारी न्यायालयों की संरचना निम्नानुसार है—[1]

फौजदारी न्यायालयों में उन अभियोगों की सुनवाई होती है जो सार्वजनिक कानून के उल्लंघन से सम्बन्धित होते हैं, उदाहरणार्थ—हत्या, चोरी, डकैती, लड़ाई आदि। फौजदारी न्यायालयों की संरचना (Structure) इस प्रकार है—

(1) हाउस ऑफ लॉर्ड्स (House of Lords)— यह ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था के सर्वोच्च शिखर पर है और दीवानी तथा फौजदारी मामलों में अपील का अन्तिम न्यायालय

1 *Colin F Padfield* : British Constitution, 1972, p. 195

है। वह अपीली न्यायालय, क्रिमिनल डिवीजन तथा डिवीजनल कोर्ट ऑफ क्वींस बैंच की अपीलें सुनता है। इसमें अपील के लिए यह आवश्यक है कि अपील न्यायालय से या लॉर्ड-सभा से इस आधार पर अपील की अनुमति (Leave) प्राप्त कर ली जाए कि मुकदमे में आम जनता के महत्त्व का कानूनी बिन्दु सन्निहित है। अपील न्यायालय के रूप में लॉर्ड-सभा का गठन लॉर्ड चांसलर, साधारण अपील लॉर्ड्स और उच्च न्यायिक पदों पर आसीन अन्य पीयरों द्वारा होता है। गणपूर्ति (Quorum) के लिए तीन सदस्यों की उपस्थिति को आवश्यक माना जाता है। प्रत्येक जज अपना पृथक् निर्णय दे सकता है, किन्तु अन्तिम निर्णय बहुमत का मान्य होता है। जब लॉर्ड-सभा न्यायालय के रूप में बैठती है तो मुकदमों की सुनवाई व्यवस्थापिका भवन के एक समिति कक्ष में होती है और लॉर्ड चांसलर उसका अध्यक्ष होता है।

(2) अपील न्यायालय (क्रिमिनल डिवीजन) (Court of Appeal : Criminal Division)—1966 के क्रिमिनल अपील एक्ट के अनुसार अपील न्यायालय दो विभागों (Divisions) में विभक्त हैं—(i) दीवानी क्षेत्र का अपील न्यायालय और (ii) फौजदारी क्षेत्र का। फौजदारी क्षेत्र के अपील न्यायालय निचले न्यायालयों से अपीलें सुनी जाती हैं। फौजदारी की अपील कानूनी आधार पर अभियुक्त की ओर से भी हो सकती है और अभियोक्ता की ओर से भी। अपील न्यायालय लॉर्ड चीफ जस्टिस (Lord Chief Justice) तथा लॉर्ड जस्टिसेज ऑफ अपील (Lord Justices of Appeal) से मिलकर गठित होता है। लॉर्ड चीफ जस्टिस अथवा उसकी अनुपस्थिति में मास्टर ऑफ दी रॉल्स (Master of the Rolls) क्वींस बैंच डिवीजन के किसी भी न्यायालय को माँग सकता है। तीन की गणपूर्ति आवश्यक है। साधारणतः इस न्यायाधीश के निर्णय अन्तिम होते हैं।

(3) क्राउन न्यायालय (Crown Courts)—क्राउन न्यायालय उच्च (Superior) न्यायालय होता है और प्रारम्भिक फौजदारी क्षेत्राधिकार का उपभोग करता है। मुख्य सिद्धान्त यह है कि अधिक गम्भीर मामलों की सुनवाई अधिक उच्च स्थिति का न्यायाधीश करता है जैसे—(i) हाईकोर्ट का न्यायाधीश, (ii) कोई सर्किट न्यायाधीश (A Circuit Judge), एवं (iii) रिकार्डर (A Recorder)। दोषी व्यक्ति जूरी द्वारा सुनवाई की माँग कर सकता है जो क्राउन कोर्ट में होती है।

(4) मजिस्ट्रेट्स कोर्ट (Magistrates Courts)—इन्हें पैटी सैशंस कोर्ट्स (Courts of Petty Sessions) भी कहा जाता है। ये न्यायालय सबसे छोटे न्यायालय हैं और इनके स्थानीय मजिस्ट्रेट, जो 'शान्ति न्यायाधीश' (Justices of the Peace) कहलाते हैं, न्याय करते हैं। ब्रिटिश कानूनी व्यवस्था में अन्य किसी भी न्यायालय की अपेक्षा इन मजिस्ट्रेटी न्यायालयों में अधिक मुकदमों की सुनवाई होती है। उदाहरणार्थ, इंग्लैण्ड और वेल्स के 98 प्रतिशत से भी अधिक फौजदारी मुकदमे मजिस्ट्रेटों द्वारा सुने जाते हैं। ये मजिस्ट्रेट विभिन्न दीवानी मुकदमों की सुनवाई भी करते हैं और कुछ प्रशासकीय कर्त्तव्यों विशेषकर लाइसेंस सम्बन्धी कार्यों का सम्पादन भी करते हैं। ये शान्ति न्यायाधीश तीन प्रकार के हैं—(i) काउण्टी न्यायाधीश (County Justice), (ii) बरो न्यायाधीश

(Borough Justices), एवं (iii) वैतनिक मजिस्ट्रेट (Stipendiary Magistrate) । इन सभी न्यायाधीशों की नियुक्तियाँ लॉर्ड चासलर द्वारा की जाती है । काउण्टी न्यायाधीश का क्षेत्राधिकार अपनी काउण्टी तक होता है और इस प्रकार बरो न्यायाधीश का क्षेत्राधिकार उस बरो तक होता है जिसमें उसकी नियुक्ति की गई है । काउण्टी और बरो न्यायाधीशों के बारे में उल्लेखनीय बात यह है कि वे अवैतनिक होते हैं (यद्यपि उन्हें अधिनिर्णय करते समय कुछ जेबखर्च मिल सकता है) । वैतनिक मजिस्ट्रेट पूर्णकालिक मजिस्ट्रेट होते हैं और यह अपेक्षित है कि वे कम से कम सात वर्ष के अनुभव प्राप्त बैरिस्टर या सोलिसिटर हों । काउण्टी और बरो न्यायाधीश साधारण व्यक्ति (Laymen) होते हैं पर यह अधिकाधिक महसूस किया जा रहा है कि उन्हें कुछ आधारभूत प्रशिक्षण मिलना चाहिये ताकि कुशल न्यायिक प्रशासन के उच्च स्तर को बनाए रखा जा सके । बड़े-बड़े नगरों में वैतनिक मजिस्ट्रेट ही होते हैं । इनमें लन्दन शहर और लन्दन काउण्टी सम्मिलित हैं ।

फौजदारी न्यायालय का संगठनात्मक चार्ट

हाउस ऑफ लॉर्ड्स
(राज्य का सर्वोच्च न्यायालय)
↑
अपील न्यायालय (क्रिमिनल डिवीजन)
(Courts of Appeal : Criminal Division)
↑
क्राउन कोर्ट्स
(Crown Courts)
↑
मजिस्ट्रेट्स कोर्ट्स
(Magistrate's Courts)
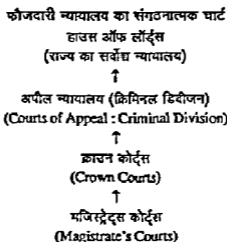
नोट—अपील तीर (→) के निशान से बताई गई है ।

(3) विशेष न्यायालय (Special Courts)

इनमें प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति, सेन्ट्रल क्रिमिनल कोर्ट, रेस्ट्रिक्टिव प्रैक्टिसेज कोर्ट तथा कोरोनर्स कोर्ट मुख्य हैं । वैसे प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति की गणना दीवानी न्यायालयों में की जाती है । यह न्यायिक समिति प्राइज कोर्ट, धार्मिक कोर्ट, चिकित्सा व्यवसायों के अभिकरणों आदि की अपीलें सुनती हैं । इसके अतिरिक्त चैनल द्वीप समूह, ब्रिटिश उपनिवेशों और राष्ट्रमण्डलीय देशों (जिन्हें अपील का अधिकार है) की अपीलें भी इस समिति द्वारा सुनी जाती हैं । विशेष न्यायालयों का संगठनात्मक चार्ट अग्रानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है—
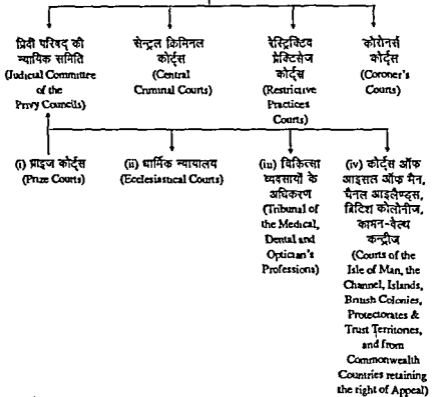
नोट—अपील तीर (→) के निशान से अंकित है।

1. प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति (Judicial Committee of the Privy Council)—इस न्यायिक समिति में वे सभी प्रिवी कौंसिलर्स सम्मिलित होते हैं जो यूनाइटेड किंगडम में उच्च न्यायिक पदों पर पदासीन हों या पदासीन रहे हों। इनके अतिरिक्त लॉर्ड चांसलर, भूतपूर्व सभी लॉर्ड चांसलर और वे राष्ट्रमण्डलीय जज, जो प्रिवी कौंसिलर्स हैं, सम्मिलित होते हैं। न्यायालय की गणपूर्ति संख्या तीन है लेकिन महत्वपूर्ण मामलों में साधारणतया पाँच सदस्य उपस्थित रहते हैं। यह न्यायिक समिति उन राष्ट्रमण्डलीय देशों से अपीलों की सुनवाई करती है जिन्होंने अपील का अधिकार (Right of Appeal) स्वीकार किया है। इस समिति में औपनिवेशिक क्षेत्रों से अपीलों की भी सुनवाई होती है। इस न्यायिक समिति में निम्नलिखित न्यायालयों और न्यायाधिकरणों से अपील की सुनवाई होती है—

(1) प्राइज कोर्ट्स (Prize Courts)

(2) धार्मिक न्यायालय (Ecclesiastical Courts)

(3) कोर्ट्स ऑफ दी आइसल ऑफ मैन, चैनल द्वीप समूह, ब्रिटिश उपनिवेश, ब्रिटिश सरक्षित प्रदेश और अपील का अधिकार रखने वाले राष्ट्रमण्डलीय देश (Courts of the Isle of Man, Channel Islands, British Colonies, British Protectorates and Trust Territories and from Commonwealth Countries retaining the right of Appeal)

(4) चिकित्सा सम्बन्धी, दाँत सम्बन्धी व्यवसायों के न्यायाधिकरण (Tribunals of the Medical, Dental and Optician's Profession)

प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति एक परामर्शदाता बोर्ड के रूप में बैठती है और इसकी प्रक्रिया अनौपचारिक होती है। कोई भी निर्णय या फैसला उस तरह नहीं दिया जाता, जैसे—किसी कानूनी न्यायालय में दिया जाता है। समिति सम्राट् को परामर्श देती है और सम्बन्धित प्रश्न को निपटाने के लिए सपरिषद् आदेश (Order in Council) निकाल दिया जाता है। न्यायिक समिति के निर्णय स्वयं पर अथवा यूनाइटेड किंगडम में निचले कानूनी न्यायालयों पर बन्धकारी (Binding) नहीं होते, लेकिन किसी उपनिवेश की अपील पर दिया गया निर्णय उस क्षेत्र के औपनिवेशिक न्यायालयों (Colonial Courts) पर बन्धनकारी होता है। सामान्यतया न्यायिक समिति के निर्णयों का व्यवहार में बड़ा सम्मान किया जाता है।

2. सैन्ट्रल क्रिमिनल कोर्ट (Central Criminal Court)—वह विख्यात न्यायालय, जो आमतौर पर 'ओल्ड बैली' (Old Bailey) के नाम से जाना जाता है, 1834 के सैण्ट्रल क्रिमिनल कोर्ट एक्ट द्वारा स्थापित किया गया था। यह एक क्राउन कोर्ट के फौजदारी क्षेत्राधिकार का उपभोग करता है और लन्दन सिटी तथा ग्रेटर लन्दन क्षेत्र के अपराध सम्बन्धी मामलों की सुनवाई करता है। यह न्यायालय वर्ष में कम से कम बारह बार बैठता है और बहुत कार्य-व्यस्त रहता है।

3. रैस्ट्रिक्टिव प्रेक्टिसेज कार्ट (Restrictive Practices Court)—इसकी स्थापना सन् 1956 के रैस्ट्रिक्टिव ट्रेड प्रेक्टिसेज एक्ट द्वारा हुई थी और अब यह एक नया उच्चतर अभिलेख न्यायालय (A New Superior Court of Record) है। इसकी स्थिति उच्च न्यायालय के समकक्ष है।

4. कोरोनर्स कोर्ट (Coroner's Court)—यह न्यायालय वास्तव में न्यायालय नहीं है। इसमें एक कोरोनर (Coroner) होता है जो प्राय डाक्टर या वकील होता है। यह काउण्टी अथवा बरो परिषद द्वारा नियुक्त किया जाता है। यह जूरी की सहायता से अथवा उसके बिना भी अपना कार्य करता है। उसका कार्य किसी रहस्यमय, आकस्मिक अथवा अप्राकृतिक मृत्यु के कारणों का पता लगाना है। इसकी नियुक्ति जीवन भर के लिए की जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ब्रिटेन में विधि के शासन की सफलता में न्यायिक व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। एक सुदृढ़ और सगठित न्याय-व्यवस्था ने देश के नागरिकों में कानून तथा न्याय के प्रति आस्था उत्पन्न करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

8

नौकरशाही या लोक सेवाएँ

(Bureaucracy or Civil Services)

किसी भी देश की शासन-व्यवस्था की सफलता अथवा विफलता उसके लोक सेवकों पर निर्भर करती है। देश का वास्तविक प्रशासन इन लोक सेवकों द्वारा किया जाता है। ब्रिटेन में प्रशासन का संचालन अनेक विभागों द्वारा किया जाता है। विभागीय मन्त्रियों द्वारा नीति-निर्धारण का कार्य किया जाता है और लोक सेवकों द्वारा उन कार्यों को सम्पादित किया जाता है।

ब्रिटिश लोक सेवा का सामान्य परिचय

(General Introduction of British Civil Service)

लोक सेवक इंग्लैण्ड में राजमुकुट (Crown) का कर्मचारी होता है, जिसका पद न तो न्यायिक ही होता है और न राजनीतिक ही। उसको राजकोष से वेतन प्राप्त होता है। राज्य के प्रशासनिक विभागों के सभी स्थाई कर्मचारी लोक सेवा के सदस्य होते हैं। लोक सेवा के सदस्यों को संसद् का सदस्य होना आवश्यक नहीं है। 1937 ई. से यह बात भी निश्चित हो गई है कि उनके राजनीतिक विचार उनके व्यक्तिगत मामले हैं बशर्ते कि उनके विचार कार्यों के विपरीत प्रभाव डालने वाले अथवा राज्य के लिए संकट पैदा करने वाले न हों। लोक सेवा के सदस्य अपनी स्वार्थ-सिद्धी के लिए किसी भी सरकारी रहस्य अथवा सूचना का दुरुपयोग नहीं कर सकते। यद्यपि लोक सेवक वैधानिक रूप से राजमुकुट के सेवक होते हैं, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से उन्हें अपने विभागीय मन्त्री के अधीन रहना पड़ता है। वे मन्त्रियों को नीति-निर्माण में परामर्श देते हैं और उनके निर्णयों को कार्यान्वित करने में उनकी सहायता करते हैं।

समय-समय पर मन्त्रिगण तो बदलते रहते हैं, पर लोक सेवक स्थायी रूप से बने रहते हैं। ब्रिटेन में सरकार के परिवर्तन के कारण लोक सेवकों में परिवर्तन नहीं होता। वे स्थायी रूप से सभी सरकारों के अधीन कार्य करते रहते हैं। लोक सेवक दो प्रकार के होते हैं—औद्योगिक तथा गैर औद्योगिक। लोक सेवक सरकारी विभागीय स्टाफ होते हैं और प्रशासकों तथा क्लर्कों के रूप में नियुक्त होते हैं। यहाँ हमारा सम्बन्ध इन्हीं लोक सेवकों से है न कि औद्योगिक लोक सेवकों से।

ब्रिटिश लोक सेवा अपने आधुनिक रूप में लगभग एक सदी पुरानी है। इसका वर्तमान स्वरूप 'ट्रेवेलियन नार्थकोर्ट रिपोर्ट' (Trevelyan Northcourt Report) की

सिफारिशों और उनके आधार पर स्थापित की गई 'मुक्त प्रतियोगितात्मक परीक्षाओं' पर आधारित है। 19वीं सदी तक इंग्लैण्ड में लोक सेवकों की नियुक्ति 'अनुग्रह (Patronage) के आधार पर होती थी। नियुक्ति की यह प्रथा अत्यन्त दोषपूर्ण थी। राजा के कृपापात्रों या विश्वस्तों को ही इसमें स्थान दे दिया जाता था। इससे लोक सेवकों की कार्यक्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था। 1853 ई. में 'नार्थकोर्ट ट्रेवेलियन रिपोर्ट' के आधार पर ब्रिटिश लोक सेवाओं में वास्तविक सुधार का सूत्रपात हुआ। 1855 में ग्लैडस्टन (Gladstone) के अनुरोध पर 'लोक सेवा आयोग' (Civil Service Commission) की स्थापना की गई। 1870 ई. में लोक सेवा में प्रवेश पाने के लिए आवश्यक प्रतियोगिता परीक्षाएँ प्रारम्भ हुईं। लोक सेवाओं के संगठन में सुधार के लिए 1875, 1884-90, 1910-14, 1918 तथा 1931 में विभिन्न जाँच समितियाँ नियुक्त की गईं जिनकी सिफारिशों के आधार पर अनेक सुधारात्मक कानूनों का निर्माण हुआ। सेवाओं को विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया। महिलाओं को भी लोक सेवाओं में प्रवेश दिया गया तथा वेतन, पदोन्नति आदि सब-कुछ निश्चित हो गया। आज सम्पूर्ण ब्रिटिश लोक सेवा में एकरूपता है।

लोक सेवाओं का वर्गीकरण
(Classification of Public Services)

प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में लोक सेवाओं की व्यवस्था है। वर्तमान ब्रिटिश लोकसेवाओं को निम्नलिखित छः वर्गों (Classes) में विभक्त किया जा सकता है।

(1) प्रशासनिक वर्ग (Administrative Class)—यह भारतीय प्रशासनिक सेवा (I.A.S.) के समान है और सम्पूर्ण ब्रिटिश लोक सेवा का आधार है। इस वर्ग में स्थाई सचिव से लेकर सहायक प्रधान तक सभी अधिकारी आते हैं। नीति-निर्धारण और विभाग-सचालन का उत्तरदायित्व इसी वर्ग पर है। प्रशासनिक वर्ग में नियुक्ति के लिए प्रतिवर्ष कठिन प्रतियोगिता परीक्षा का आयोजन किया जाता है और 21 से 24 वर्ष तक की आयु के परीक्षोत्तीर्ण स्नातकों का सेवा के लिए चयन होता है। 25 प्रतिशत पदों की भर्ती 'पदोन्नति (Promotion) द्वारा होती है।

(2) अधिशासी वर्ग (Executive Class)—इस वर्ग के लोक सेवकों का मुख्य कार्य दिन-प्रतिदिन के सरकारी कामकाज का निस्तारण करना है। उच्च-स्तर का हिसाब-किताब, राजस्व संग्रह, क्षेत्रीय और स्थानीय कार्यालयों के प्रबन्ध आदि का दायित्व मुख्यतः अधिशासी वर्ग पर ही है। इस वर्ग के कुछ कार्य प्रशासनिक वर्ग के कार्यों के समान हैं, अतः दोनों वर्गों के कार्यों के बीच कोई निश्चित विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। जिस प्रकार सरकारी कार्यक्षेत्र का विस्तार हो रहा है, उसे देखते हुए प्रशासनिक और अधिशासी दोनों ही वर्गों के कार्यों में न केवल विस्तार हुआ है बल्कि जटिलता भी बढ़ी है। ब्रिटेन के अधिशासी वर्ग की समता भारत की 'अधीनस्थ सेवाओं' (Subordinate Services) से की जा सकती है।

(3) विशिष्ट वर्ग (Specialist Class)—इस वर्ग में व्यावसायिक, वैज्ञानिक और तकनीकी स्टाफ समाविष्ट होता है। विशिष्ट वर्ग में बैरिस्टर, सोलिसिटर, इन्जीनियर, डॉक्टर, लाइब्रेरियन, वैज्ञानिक, सहायक शिल्पी आदि सम्मिलित हैं। इस वर्ग के पदों पर

नियुक्ति प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा नहीं होती बल्कि प्रतियोगियों को मान्य योग्यता, विशिष्ट प्रशिक्षण अथवा अनुभव के आधार पर साक्षात्कार-पद्धति द्वारा चुना जाता है।

(4) लिपिक वर्ग (Clerical Class)—इस वर्ग में प्रतियोगी परीक्षा के आधार पर 16-17 वर्ष के युवक-युवतियों को चुना जाता है। लिपिक वर्ग का काम सामान्य प्रकृति का है, यथा—रिकार्ड रखना, नियमों के अनुसार कागजों, दावों आदि की जाँच-पडताल करना, अधिकारी वर्ग के आदेशानुसार नित्य प्रति के सरकारी कार्यों का निपटारा करना, आवश्यक तथ्य एव आँकडे एकत्र करना आदि।

(5) लेखक सहायक वर्ग (Writing Assistant Class)—इस वर्ग मे सहायक लिपिक, टाइपिस्ट, डुप्लीकेटर आदि मशीनें चलाने वाले होते हैं।

(6) सन्देशवाहक व निम्न वर्ग (Messengerial and Menial Class)—इस वर्ग मे सदेशवाहकों (Messengers) के अतिरिक्त कागज रखने वाले (Paper Keepers) कार्यालय की सफाई करने वाले (Office Cleaners) और इसी प्रकार के अन्य कर्मचारी सम्मिलित हैं।

इन सबके अतिरिक्त डाक विभाग, टेलीफोन विभाग, शिक्षा विभाग आदि में 'विभागीय वर्ग' भी होते हैं जिनकी नियुक्ति सम्बन्धित विभागों द्वारा की जाती है।

लोक सेवा और राजनीतिक कार्यपालिका में भेद

(Distinction Between Civil Service and Political Executive)

ब्रिटिश लोक सेवा के कुछ विशेष लक्षण हैं जिनके आधार पर हम उसे राजनीतिक कार्यपालिका से निम्न प्रकार अलग हैं—

(1) राजनीतिक कार्यपालिका के सदस्यों के चयन में निष्पक्षता नहीं होती जबकि लोक सेवकों का चयन निष्पक्ष रूप से होता है। लोक सेवकों की नियुक्ति खुली प्रतियोगिता द्वारा होती है, इसमें राजनीतिक संरक्षण (Political Patronage) की बात नहीं चलती।

(2) लोकसेवा के अधिकारी विशेषज्ञ होते हैं जबकि राजनीतिक कार्यपालिका के सदस्य अर्थात् मन्त्रिगण अविशेषज्ञ या नौसिखिए (Amateurs) होते हैं।

(3) लोक सेवकों की तटस्थता (Neutrality) राजनीतिक कार्यपालिका में नहीं पाई जाती। लोक सेवक गैर-राजनीतिक (Non-political) होते हैं जबकि मन्त्रिगण पूरी तरह राजनीति में लिप्त होते हैं। जो भी सरकार हो, लोक सेवक उसके प्रति निष्ठावान रहते हैं और सरकार यह अपेक्षा करती है कि लोक सेवक पूरी योग्यता और स्वामिभक्ति के साथ उसकी नीतियों को क्रियान्वित करेंगे।

(4) लोक सेवा में स्थायित्व (Permanency) पाया जाता है। मत्री राजनीतिक आधार पर अपना पद प्राप्त करते हैं और अपना कार्यकाल पूरा होने से पहले ही उन्हें कभी भी हटना पड़ सकता है, लेकिन लोक सेवकों को पद की सुरक्षा प्राप्त होती है, सरकार-परिवर्तन का उनकी स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। नियमानुसार कार्य करते रहने पर सेवा-निवृत्ति की आयु तक वे अपने पद पर बने रहते हैं। इसलिए मुनरो का

कथन है—"मन्त्रिमण्डल और संसद् आते और चले जाते है पर स्थायी कर्मचारी टैनिसन की सरिता की भाँति अपने मार्ग पर शान्तिपूर्वक चलते रहते हैं।"[1]

(5) लोक सेवकों की अप्रतिक्रियाशीलता (Unresponsiveness) उनका एक विशिष्ट लक्षण है। वास्तविक प्रशासन का कार्य यद्यपि लोक सेवक ही करते हैं तथापि इन कार्यों के लिए संसद् और जनता के समक्ष लोकसेवक नहीं बल्कि मंत्री ही उत्तरदायी होते हैं। लोक सेवक मन्त्रियों के अधीन रहते हुए उनके उत्तरदायित्व के अन्तर्गत अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हैं।

(6) लोक सेवक पर्दे के पीछे अज्ञात (Anonymous) होकर कार्य करते है—प्रशंसा या आलोचना के प्रति तटस्थ रहते है। दूसरी ओर मन्त्रिगण अधिकाधिक प्रकाश में आने के लिए सदैव प्रयास करते रहते हैं।

ब्रिटिश लोक सेवा ने विश्व के अनेक लोकतन्त्रीय देशों के लिए एक आदर्श कार्य किया है। भर्ती (नियुक्ति) मे लूट-खसोट (Spoils) अथवा संरक्षण (Patronage) जैसी बुराइयों से ब्रिटिश लोक सेवा बहुत सीमा तक बची रही है। ईमानदारी और कार्यक्षमता की दृष्टि से ब्रिटिश लोक सेवा का स्तर बहुत उच्च रहा है। फलत ब्रिटिश जनता ने अपने लोक सेवकों में सदैव विश्वास प्रकट किया है।

ब्रिटिश शासन-व्यवस्था अविशेषज्ञों या नौसिखियों (Amateurs) और विशेषज्ञों (Experts) मन्त्रियों और लोक सेवकों के समन्वय पर आधारित है।

ब्रिटिश नौकरशाही या लोक सेवा की आलोचना
(Criticism of British Bureaucracy or Civil Service)

ब्रिटिश लोक सेवा ने काफी ख्याति अर्जित की है, किन्तु इसमें कतिपय दुर्बलताएँ या कमियाँ भी निहित हैं। ब्रिटिश लोक सेवा की कुछ सामान्य कमियों का कोलिन एफ पैडफील्ड ने निम्नानुसार उल्लेख किया है—[2]

(1) कार्यक्षमता की कमी, कल्पना-शक्ति का अभाव, पहल करने की शक्ति की कमी।

(2) लालफीताशाही और रूढिवादिता, फलस्वरूप लोचहीनता।

(3) नौकरशाही प्रकृति।

(4) प्रशासनिक वर्ग के मध्यम वर्ग के लोगों का अधिक होना और फलस्वरूप संकीर्ण सामाजिक पृष्ठभूमि जनित दोषों का शिकार होना।

(5) विभागवादी (Departmentalism) प्रवृत्ति अर्थात् अपने स्वयं के विभाग के प्रति लोक सेवक का अत्यधिक झुकाव। इस प्रकार समग्र रूप में सार्वजनिक प्रशासन के महत्त्व को ठेस पहुँचाना।

(6) अत्यधिक सावधानी की भावना और गलतियों को स्वीकार करने से हिचकना।

(7) उच्चतर लोक सेवकों में स्वाभिमान की भावना।

---

1 *Munro* The Government of Europe.

2 *Colin, F Padfield* British Constitution Made Simple

1956 में गठित फुल्टन समिति (Fulton Committee) ने अपनी रिपोर्ट में ब्रिटिश लोक सेवा प्रणाली के निम्नलिखित 6 प्रमुख दोषों की ओर ध्यान आकर्षित किया है—

(1) लोक सेवा अभी भी अव्यवसायी-दर्शन (Philosophy of the Amateur) अथवा 'सामान्यतया या सर्वगुणसम्पन्नता' पर आधारित है। इस प्रकार की विचारधारा आज की स्थिति मे हानिकारक है।

(2) लोक सेवा के अन्तर्गत विभिन्न वर्गों की जो व्यवस्था प्रचलित है वह सेवा-कार्य को गम्भीर रूप से अवरुद्ध करती है।

(3) अनेक वैज्ञानिक, इन्जीनियर एव अन्य विशिष्ट वर्गों के सदस्यों को अपना कार्य सम्पन्न करने की दृष्टि से समुचित उत्तरदायित्व नहीं सौंपा जाता। उन्हें अपने कार्य के लिए पूर्ण अवसर प्राप्त नहीं होते।

(4) बहुत थोड़े लोक सेवक ही कुशल प्रबन्धक हैं।

(5) लोक सेवकों और समाज के बीच पर्याप्त सम्पर्क नहीं हो पाता।

(6) जीवन-वृत्ति नियोजन (Career Planning) लोकसेवा के एक बहुत छोटे वर्ग तक ही सीमित है।

लोक सेवकों को उनकी पसन्द और योग्यता के सामान्य सन्दर्भ के आधार पर ही स्थानान्तरित कर दिया जाता है। प्रधानमन्त्री हैरल्ड विल्सन की श्रमिक दल की सरकार ने समिति का संगठन सम्बन्धी कुछ सिफारिशों को स्वीकार करते हुए लोक सेवा का उत्तरदायित्व राजकोष (Treasury) से हटा कर एक नए मन्त्रालय या विभाग को सौंप दिया, लोक सेवा में प्रचलित वर्गों या श्रेणियों को समाप्त कर दिया और एक नए लोक सेवा प्रशिक्षण कॉलेज की दिशा में कदम उठाए।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि ब्रिटिश नौकरशाही ने अपनी निष्पक्षता तथा कुशलता के आधार पर देश की ससदीय शासन व्यवस्था को सुदृढ करने में अहम भूमिका का निर्वाह किया है।

प्रदत्त विधान (कानून)

(Delegated Legislation)

प्रदत्त व्यवस्थापन आधुनिक लोकतान्त्रिक राष्ट्रों की मुख्य प्रवृत्ति है। ब्रिटेन में भी इसका महत्त्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है।

प्रदत्त विधान का अर्थ

(Meaning of Delegated Legislation)

प्रदत्त विधान या व्यवस्थापन वे नियम और विनियम हैं जिनका प्रभाव विधियों (Laws) के समान होता है और जिन्हें संसद् द्वारा प्रदत्त अधिकार के आधार पर प्रशासनिक विभाग जारी करते हैं। इनको प्रकारान्तर से सविधि आदेश (Statutory Instruments) कहा जा सकता है।

इंग्लैण्ड में पहले जब प्रशासनिक कार्य बहुत सीमित थे तो विधान-मण्डल सर्वसाधारण के प्रतिनिधियों द्वारा विधि-निर्माण करते थे और विशेषज्ञ अधिकारी उन्हें लागू करते थे। इस तरह उस समय विधान-मण्डल तथा प्रशासन के मध्य अधिकार-क्षेत्र सम्बन्धी स्पष्ट विभाजन-रेखा थी। शनैः-शनैः प्रशासनिक कार्यों और सार्वजनिक समस्याओं में वृद्धि होती रही। आज स्थिति यह है कि संसद् पर व्यवस्थापन सम्बन्धी अत्यधिक कार्यभार आ पड़ा है। संसद् के पास प्रायः इतना समय नहीं बचता है कि वह विभिन्न प्रकार के विधेयकों पर पूरी तरह विचार कर सके। इसके अलावा संसद् सदस्यों में इतनी प्राविधिक योग्यता भी नहीं होती कि वे विधेयकों पर आवश्यक सूक्ष्मता के साथ विचार करें।

इन कठिनाइयों के कारण अब बहुत कुछ विधि-निर्माण-शक्ति व्यवस्थापिका के हाथों से निकल कर कार्यकारिणी के हाथों में आ गई है। आधुनिक काल में संसद् सामान्य रूप में कानून पास कर देती है और उनके स्पष्टीकरण का कार्य कार्यकारिणी के कन्धों पर आ पड़ता है, जिसे मन्त्रिगण प्रशासकीय अधिकारियों पर छोड़ देते हैं। इस तरह विभागों को यह छूट मिल जाती है कि वे विधि के सम्बन्ध में आवश्यक विनियम पास कर दें जिनका प्रभाव भी विधियों या विधान के समान ही होता है। सारांश यह है कि आज संसद् द्वारा व्यवस्थापन सम्बन्धी अपने अधिकार एक बड़ी सीमा तक प्रशासनिक विभागों को सौंप दिए गए हैं। यही प्रदत्त व्यवस्थापन या विधान (Delegated Legislation) है इसे 'अधीनस्थ व्यवस्थापन' (Subordinate Legislation) भी कहते हैं।

प्रदत्त या प्रत्यायोजित या अधीनस्थ विधान अथवा कानून या व्यवस्थापन का अर्थ 'मन्त्रियों के अधिकार सम्बन्धी समिति' (Committee of Ministers' Powers) के अनुसार निम्नांकित है—"प्रत्यायोजित या प्रदत्त विधान का अर्थ है संसद् द्वारा प्रत्यायोजित या प्रदत्त शक्ति के अधीन मन्त्री जैसी अधीनस्थ सत्ता द्वारा, विधायी शक्ति का प्रयोग अथवा यह ऐसा सहायक कानून है जिसे संवैधानिक नियमों, विनियमों और आदेशों के रूप में मन्त्री ने स्वयं पारित किया है।" अर्थात् ससद् अपनी कानून-निर्माण की सत्ता प्रशासनिक विभागाधिकारियों को प्रदत्त कर देती है और इस शक्ति के आधार पर इन अधिकारियों द्वारा जिन नियमों और उपनियमों का निर्माण किया जाता है उसे ही प्रदत्त विधान या कानून कहते हैं। संसद् द्वारा किसी कानून या अस्थि-पंजर ढाँचा ही मात्र तैयार किया जाता है और इसमें आवश्यकतानुसार रक्त-मास प्रदान करने का कार्य प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा किया जाता है। इस प्रकार ससद् द्वारा प्रदत्त (Delegated) शक्ति के आधार पर जो नियम, उपनियम, विनियम, आदेश, निर्देश आदि सरकारी विभागों के अधिकारियों द्वारा प्रसारित किए जाते है उन्हें प्रदत्त विधान कहा जाता है क्योंकि उन्हें विधान या कानून के समान ही मान्यता प्राप्त होती है। समयाभाव अथवा विशिष्ट ज्ञान के अभाव में संसद् किसी अधिनियम की रूपरेखा मात्र ही बना पाती है जिसे विभागीय आवश्यकताओ के अनुकूल पुनः स्पष्ट करने व विस्तृत रूप से उनकी व्याख्या करना वाछनीय हो जाता है। इसलिए संसद् प्रदत्त शक्ति के आधार पर विधान बनाने का अधिकार विभागीय अधिकारियों को दिया जाता है। अतः प्रदत्त विधान या व्यवस्थापन अथवा कानून की अपेक्षा सदैव बनी रहती है। प्रदत्त विधान व्यवस्थापिका और प्रशासन के मध्य विधायक कार्य का सुविधाजनक विभाजन भी है जो विभागीय आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

यद्यपि प्रदत्त व्यवस्थापन जनता की प्रतिनिधि सस्था ससद् द्वारा पारित नहीं होता तथापि उनकी मान्यता संसद् द्वारा निर्मित विधान के समान ही होती है तथा प्रदत्त विधान का उल्लंघन या उपेक्षा करना उसी प्रकार दण्डनीय होता है जिस प्रकार ससद् द्वारा पारित विधान का उल्लंघन। प्रदत्त विधान अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा बनाए जाते हैं, अतः उन्हें कार्यपालिका विधान तथा संवैधानिक प्रपत्र या दस्तावेज (Statutory Instrument) भी कहा जाता है। इन्हें संवैधानिक प्रपत्र इसलिए कहा जाता है कि ये विधान व्यवस्थापिका अर्थात् संसद द्वारा कार्यपालिका अर्थात् विभागीय अधिकारियों को प्रत्यायोजित या प्रदत्त शक्ति द्वारा बनाए जाते हैं जो संसदीय विधान के समान मान्य दस्तावेज दस्तावेज होते हैं।

प्रदत्त विधान के उद्देश्य एवं महत्त्व

(Objectives and Importance of Delegated Legislation)

प्रदत्त विधान के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य एवं महत्त्व हैं—

(1) **संसदीय कानूनों के संपूरक** (Supplement of Parliamentary Legislation)—ससद् समयाभाव अथवा विषय-विशेषज्ञता के अभाव में कानूनों की रूपरेखा मात्र ही पारित करती है जिनके संपूरक का कार्य सम्बन्धित विभागाधिकारी प्रदत्त

विधान के द्वारा करते हैं। प्रदत्त विधान संसदीय विधान की सूखी हड्डियों पर मांस चढ़ाने का कार्य करते हैं अर्थात् संसदीय विधान को प्रदत्त विधान द्वारा ही स्पष्ट, सुबोध और व्याख्यायुक्त बनाकर उसे विभागीय आवश्यकताओं के अनुकूल ढाला जाता है।

(2) संसदीय कानून की कठोरता कम करना (To Make Legislation Less Strict)—प्राय. संसदीय कानून बड़े कठोर प्रकृति के होते हैं जिनके विवेकहीन प्रयोग से अनुचित परिणाम निकल सकते हैं। विभागीय प्रदत्त विधान संसदीय विधानों को स्पष्टता प्रदान कर विभाग आवश्यकता एवं मानवीय दृष्टिकोण के आधार पर उनकी कठोरता कम कर उन्हें नम्य या लचीला (Flexible) बनाते हैं।

(3) विभागीय आवश्यकताओं की पूर्ति (To Fulfil Departmental Requirements)—प्रत्येक विभाग की अपनी विशिष्टता होती है जिसके कार्यों तथा कर्मचारियों की कार्यकारी स्थिति को समझने के लिए विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है। विभागीय कार्य एवं कर्मचारियों से सम्बन्धित नियम एवं निर्देश विभागीय विशेषज्ञ अधिकारी ही उचित प्रकार से प्रसारित कर सकते हैं। प्रदत्त विधान विभागों की इन आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

(4) संसद् का कार्यभार कम करना (To Less in the Workload of Parliament)—संसद् के पास समयाभाव होता है। यदि वह प्रत्येक विधान की विस्तृत रूपरेखा ही तैयार करती रहे तो उसे आवटित सभी विधानों का निर्माण करना असम्भव हो जाएगा और वह नीति-निर्माण सम्बन्धी कार्य नहीं कर सकेगी। संसद् के कार्यभार को कम करने में प्रदत्त विधान महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। प्रदत्त विधान संसद् के कार्यभार को ही कम नहीं करते अपितु वे संसद् द्वारा निर्मित कानूनी ढाँचे रूपी कंकाल को सजीवता प्रदान करते हैं। वे उन्हें व्यावहारिक बनाते हैं।

(5) आपात्कालीन स्थिति में अपरिहार्य (Inevitable in the Stage of Emergency)—युद्ध, बाढ़, सूखा, भूकम्प, महामारी, आन्तरिक विद्रोह इत्यादि राष्ट्रीय संकटों एवं आपात्काल में अतिशीघ्र कार्यवाही करना अपेक्षित होता है जिसके लिए संसदीय कानून बनाने में समय नष्ट करना मूर्खता होती है। अत. ऐसी आपात्कालीन स्थिति में प्रदत्त कानून या विधान ही अपरिहार्य माने जाते हैं।

(6) सार्वजनिक हित का सिद्धान्त (Principle of Public Welfare)—जनतन्त्रीय सरकार को सार्वजनिक हित का विशेष ध्यान रखना होता है। यह कार्य प्रत्येक विभाग का मंत्री करता है। वह अपने विभाग के प्रदत्त विधानों द्वारा सार्वजनिक हितों की पूर्ति करता है। वह संसदीय नियमों को सरल बनाकर उन्हें जनता के हित में व्यावहारिक बनाता है। जनतन्त्रीय सरकार को अपने ढंग से कार्य करने का अधिकार होता है। इसलिए प्रदत्त विधान का प्रावधान किया जाता है।

(7) अधिक विवेकपूर्ण होना (More Considerate)—संसद् द्वारा निर्मित विधान प्रायः शीघ्रता में पारित किए जाते हैं जिन पर पर्याप्त विचार-विमर्श नहीं हो पाता और न उनके निर्माण में विशेषज्ञों का योगदान ही होता है। फलत. उनमें अनेक कमियाँ व विसंगतियाँ रह जाती है जिन्हें बार-बार संशोधित करना पड़ता है। प्रदत्त विधान पर्याप्त

विचार-विमर्श व विशेषज्ञों के योगदान से निर्मित होते है, अतः वे संसदीय विधानों की अपेक्षा अधिक विवेकपूर्ण होते हैं और इसीलिए उत्तम भी ।

(8) **संविधि के अनुकूल होना (According to Law)**—प्रदत्त विधान सदैव संसदीय विधान के अनुकूल तथा उनकी संदर्भ-परिधि में ही निर्मित किए जाते हैं । इसलिए उन्हें संविधि के समान मान्यता प्राप्त होती है तथा जिन्हें न्यायालय में चुनौती देकर घोषित नहीं किया जा सकता ।

प्रदत्त विधान की प्रगति या विकास
(Development of Delegated Legislation)

प्रदत्त व्यवस्थापन की प्रवृत्ति संसदीय कार्यों के विकास के साथ-साथ बढ़ती जा रही है । 17वीं-18वीं शताब्दी में यह प्रवृत्ति बहुत कम थी, किन्तु 1832 के बाद से कार्यपालिका विभागों को व्यवस्थापन की शक्तियाँ देने की प्रवृत्ति विशेष रूप से बढती गई । प्रो. जेनिंग्स के अनुसार, "ज्यों-ज्यों समूहवाद (Collectivism) के विकास के कारण सरकारी शक्ति बढ़ती जाती है त्यों-त्यों प्रदत्त कानूनों की संख्या में भी वृद्धि होती जाती है ।"[1] 1906 से केन्द्रीय सरकार को अनेक प्रत्यक्ष प्रशासकीय कार्य सौंप दिए जाने के बाद से विभागों द्वारा निर्मित नियमों और व्यवस्थाओं की संख्या बढ़ गई है ।

प्रदत्त व्यवस्थापन की बढ़ती हुई प्रवृत्ति का अनुमान इसी एक तथ्य से लगाया जा सकता है कि 1927 में संसद् ने तो केवल 43 सविधियाँ (Statutes) पारित की थीं, लेकिन विभागों ने 1349 आदेश जारी किए थे । 1945 में विभिन्न संसदीय परिनियमों के अन्तर्गत प्रशासनिक विभागों द्वारा लगभग 1709 विनियम जारी किए गए और 1984 तक तो यह प्रवृत्ति अत्यधिक जोर पकड चुकी थी । प्रदत्त व्यवस्थापन के महत्त्व पर टिप्पणी करते हुए सेसिल टी. कार (Cecil T. Karr) ने लिखा है, "कानून की किताब उस वक्त तक अधूरी ही नहीं भ्रमात्मक भी होती है जब तक कि उसे प्रदत्त विधान के साथ मिलाकर न पढ़ा जाए जिसके द्वारा उसका बहुत कुछ विस्तार और संशोधन हो जाता है ।"

प्रदत्त व्यवस्थापन पर आवश्यक रोक

प्रशासकीय विभाग कानूनी सीमा के अन्तर्गत ही आदेश जारी कर सकते हैं । वे कानून को इस प्रकार तोड़-मरोड़ नहीं सकते कि उनका प्रयोजन ही समाप्त हो जाए । नागरिकों को किसी कानून विरोधी आदेश के विरुद्ध अपील करने का अधिकार है । न्यायालय ऐसे आदेश को अवैध घोषित कर सकते हैं । संसद्-सदस्य भी सदन में ऐसे आदेश का विरोध कर सकते हैं । संसद् ऐसे आदेशों को समाप्त कर सकती है ।

प्रदत्त व्यवस्थापन के विकास के कारण

प्रदत्त व्यवस्थापन के विकास के कारण निम्नांकित हैं—

(1) विधि-निर्माण का कार्य इतना बढ गया है कि समयाभाव के कारण संसद् उसे ठीक ढंग से निभा नहीं पाती ।

1. *Jennings* : Law of the Constitution.

(2) संसद् के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह दिन-प्रतिदिन की प्रशासकीय बारीकियों का पूर्ण ज्ञान रख सके।

(3) विभागीय अधिकारी संसद्-सदस्यों की तुलना में कानून की बारीकियों को समझने में अधिक विशेषज्ञ होते हैं। स्वयं संसद्-सदस्य भी इस तथ्य से परिचित होते हैं, अतः कानून के केवल सामान्य सिद्धान्तों का निश्चय करके उनके अन्तर्गत विस्तृत नियम-निर्माण का अधिकार विशेषज्ञों को सौंप देना उचित समझते हैं।

(4) जनता की इच्छानुसार संसद् किसी भी मामले पर नीति सम्बन्धी प्रारूप तो ठीक तरह से बना सकती है, लेकिन सम्बन्धित जटिल बातों को समझकर आवश्यक आदेश प्रशासकीय विभाग ही जारी कर सकते हैं। बदलती हुई परिस्थितियों के कारण कानूनों को लागू करने में उत्पन्न होने वाली विभिन्न कठिनाइयों का प्रशासन भली प्रकार मुकाबला तभी कर सकता है जब उसे विभिन्न नियमों-उपनियमों के निर्माण का अधिकार प्राप्त हो।

(5) संसद् का अधिवेशन हर समय नहीं होता, अतः आवश्यकता होने पर कार्यपालिका अपने ही उत्तरदायित्व पर नियम बना सकती है और आदेश जारी कर सकती है। संकटकाल में संसद् स्वयं भी कार्यपालिका को ऐसी शक्ति सौंप देती है। उदाहरणार्थ, 1939 में संसद् ने संकटकालीन शक्ति सुरक्षा कानून (The Emergency Power Defence Act, 1939) पास करके कार्यपालिका को युद्ध सम्बन्धी आवश्यक कार्यवाही के लिए नियम बनाने का अधिकार सौंप दिया था।

(6) किसी भी अच्छे शासन में लचीलेपन का होना आवश्यक है। शासन को स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल बनाने और आवश्यकतानुसार ढालने के उद्देश्य से संसद् प्रशासन को नियम-निर्माण सम्बन्धी शक्ति सौंपती है। प्रशासन अपने नियम इस प्रकार बनाता है कि वे संसद् द्वारा पारित अधिनियम या नीति के अनुरूप सिद्ध होते हैं।

प्रदत्त विधान की आलोचना और मूल्यांकन
(Criticism and Evaluation of Delegated Legislation)

विद्वानों ने प्रदत्त व्यवस्थापन की निम्नांकित आधारों पर आलोचना की है—

(1) प्रदत्त व्यवस्थापन संसद् की सर्वोच्च शक्ति पर आघात करने वाला है।

(2) इस व्यवस्था द्वारा नौकरशाही की शक्ति का तेजी से विस्तार हो रहा है। यह 'नई निरंकुशता' (The New Despotism) का विकास करता है जिसके द्वारा विभाग अपनी शक्ति का दुरुपयोग बड़ी सरलता से कर सकते हैं।

(3) इस व्यवस्था में यह खतरा है कि संसद् आवश्यकता से अधिक नियम-निर्माण की शक्ति प्रशासन को सौंप सकती है।

(4) नियमों या कानूनों के सम्बन्ध में अधिक लचीलापन घातक हो सकता है और इससे अराजक तत्वों को प्रोत्साहन मिलने का भय बना रहता है।

(5) नियमों के उचित प्रकाशन और प्रसार के अभाव में हो सकता है कि साधारणजन उनका उचित लाभ न उठा सकें और उससे और भी सन्देह की स्थिति बन जाये।

(6) नियम-निर्माण विशेषज्ञ के राजनीतिक दृष्टि से उचित बातों के प्रति लापरवाह होने की सम्भावना रहती है।

वस्तुतः प्रदत्त व्यवस्थापन की उपर्युक्त आलोचनाएँ अतिरंजित हैं । ऑग (Ogg) की मान्यता है कि "प्रदत्त व्यवस्थापन के विरोध का कोई महत्त्व नहीं है क्योंकि जिस समय इस पर विचार करना आरम्भ किया जाता है वह उसी समय समाप्त हो जाता है।"[1] प्रदत्त व्यवस्थापन के समर्थन में मुख्यतः निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं—

(1) इस व्यवस्था के कारण संसद् को इतना समय मिल जाता है कि वह विधेयक के उद्देश्यों और सिद्धान्तों पर समुचित विचार-विमर्श कर सके।

(2) प्रदत्त व्यवस्थापन द्वारा अज्ञात भविष्य की परिस्थितियों के अनुसार ठीक समय पर आवश्यकता के अनुसार कानून के बिना किसी संशोधन के काम चलाने की शक्ति मिल जाती है।

(3) प्रशासन को विधि-निर्माण का कार्य सौंपे जाने की व्यवस्था से विधायकों को विशेषज्ञों के अनुभव और ज्ञान का लाभ प्राप्त हो जाता है। प्रदत्त-विधान प्रणाली में विशेषज्ञ-प्रशासनिक-अधिकारी कानूनों की विस्तृत रूपरेखा तैयार करते हैं और तकनीकी परामर्श देते हैं।

(4) प्रदत्त व्यवस्थापन द्वारा नए परीक्षण करने और उनसे प्राप्त अनुभवों से लाभ उठाने का अवसर मिलता है।

(5) तत्काल और आकस्मिक आवश्यकताओं के लिए आदेश जारी करने हेतु प्रदत्त व्यवस्थापन की व्यवस्था ही एकमात्र सही विकल्प है। संसद् संकटकालीन परिस्थितियों का उचित अनुमान लगाने में भूल कर सकती है जबकि कार्यपालिका अपनी नियम-निर्माणकारी शक्ति द्वारा सकटों का तेजी से और कुशलतापूर्वक सामना कर सकती है। उसे ससदीय आदेश की प्रतीक्षा में समय नष्ट नहीं करना पड़ता।

(6) ससद् में अनेक बार उतावलेपन या जल्दबाजी के कारण कानून पारित किये जाते हैं, अतः उनमें गलतियाँ या कमियों का रह जाना स्वाभाविक है। लेकिन प्रदत्त व्यवस्थापन द्वारा नियम-विनियम खूब सोच-विचार कर तैयार किए जाते हैं जो अधिक बोधगम्य और तर्कसम्मत होते हैं।

(7) प्रशासन के हाथो विधि-निर्माण कार्यों की व्यवस्था का एक बड़ा लाभ यह है कि उन लोगों से परामर्श किया जा सकता है जिनके हित निर्माणाधीन विधियों से प्रभावित होते हैं।

प्रदत्त विधान के दुरुपयोग के विरुद्ध सुरक्षाएँ
(Safegurds against Misuse of Delegated Legislation)

प्रदत्त व्यवस्थापन की कटु आलोचना के प्रतिक्रियास्वरूप इंग्लैण्ड में 1929 में मन्त्रियों की शक्तियों पर विचार करने के लिए जो समिति नियुक्त की गई थी, उसने आवश्यक जाँच के बाद अपने प्रतिवेदन में कहा था कि "प्रदत्त व्यवस्थापन में ससद् की शक्तियों को कोई आघात नहीं पहुँचा है।" भविष्य में इस प्रक्रिया का दुरुपयोग नहीं होने देने के लिए समिति ने विभिन्न सुझाव दिये। प्रदत्त व्यवस्थापन के दुरुपयोग नहीं होने के सम्बन्ध मे अग्रांकित आवश्यक सुझाव दिये जाते हैं

1. *Ogg* : English Govt. and Politics.

(1) प्रदत्त व्यवस्थापन का प्रारूप विशेष सावधानी से, तैयार किया जाए ।

(2) प्रशासनिक अधिकारियों की स्वविवेक की शक्तियों पर कुछ सीमाएँ लगाई जाएँ ताकि वे अपनी शक्ति का दुरुपयोग न कर सकें । ऐसी व्यवस्था की जाए कि प्रशासनिक अधिकारियों के निर्णय के विरुद्ध न्यायालय में अपील की जा सके ।

(3) प्रशासनिक विनियमों को संसद् की जानकारी के लिए भेजा जाए ।

(4) प्रदत्त व्यवस्थापन की सीमाएँ स्पष्ट और निश्चित हों । भाषा इतनी स्पष्ट हो कि साधारण नागरिक उसे समझ सके ।

(5) असाधारण कार्यों के लिए प्रशासन को विधि-निर्माण की शक्तियाँ यथासम्भव न सौंपी जाएँ ।

ब्रिटेन में प्रदत्त व्यवस्थापन के दुरुपयोग के विरुद्ध प्रस्तावित इन सुझावों पर अमल किया जा रहा है । 1944 से ही प्रदत्त व्यवस्थापन के अन्तर्गत बनाए गए नियमों की समीक्षा के लिए एक स्थायी समिति 'सविधि-नियम सम्बन्धी प्रवर समिति' (Select Committee on Statutory Instruments) प्रतिवर्ष नियुक्त की जाती है । यह समिति विभागीय अधिकारियों द्वारा जारी किए गए आदेशों व नियमों-विनियमों की जाँच-पड़ताल करती है और देखती है कि संसदीय प्रभुसत्ता को कोई आघात तो नहीं पहुँच रहा है अथवा प्रशासनिक अधिकारी स्वविवेकी शक्तियों का दुरुपयोग तो नहीं कर रहे हैं । इस समिति ने बड़ा सुन्दर कार्य करके प्रशासकीय निरंकुशता को रोकने की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया है । संसद् अन्य तरीकों से भी प्रदत्त व्यवस्थापन पर अपना नियन्त्रण रखती है, जिन्हें निम्नानुसार रखा जा सकता है—(1) सरकारी विभागों द्वारा निर्मित कुछ नियमों पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया है कि वे संसद् द्वारा स्वीकृत होने पर ही लागू हो सकेंगे, (2) कुछ आदेशों, नियमों, विनियमों को संसद् का कोई भी सदन 40 दिन के भीतर प्रस्ताव द्वारा उन्हें रद्द कर सकता है, एवं (3) कुछ नियम-विनियम ऐसे हैं जो केवल संसद् की मेज पर रख दिए जाते हैं और यदि कोई संसद् सदस्य उन्हें पसन्द करता हो तो मन्त्री से प्रश्न पूछ सकता है या 'काम रोको' प्रस्ताव रख सकता है । प्रदत्त व्यवस्थापन पर न्यायिक नियन्त्रण की भी व्यवस्था है, यदि विभागों द्वारा निर्मित नियम संसद् द्वारा प्रदत्त शक्ति का उल्लंघन करते हों ।

कुल मिलाकर प्रदत्त व्यवस्थापन समय की माँग है और वर्तमान परिस्थितियों में इससे सर्वथा मुक्त होने की बात नहीं सोची जा सकती । अतः उचित यही है कि प्रदत्त व्यवस्थापन को समाप्त करने की अपेक्षा इसके दुरुपयोग के विरुद्ध प्रभावशाली सुरक्षाओं की व्यवस्था की जाए ।

ब्रिटेन में प्रदत्त विधान के स्वरूप अथवा प्रकार
(Forms of Delegated Legislations in Britain)

ब्रिटेन में प्रदत्त या प्रत्यायोजित विधान के स्वरूप तथा मुख्य प्रकार निम्नांकित हैं—

(1) उप-नियम (Bye-Laws)—उप-नियम संसद् द्वारा पारित विधान के अन्तर्गत किसी अभिकरण, संस्था, सार्वजनिक निगम, नगरपालिका, उद्यम (Enterprise), निकाय, लन्दन बन्दरगाह, सत्ता आदि जैसी सत्ताएँ उप-नियमों का निर्माण कर सकती हैं । ये उप-नियम न्यायालय में मान्य होते हैं ।

(2) नियम व अधिनियम (Rules and Regulations)—मन्त्री संवैधानिक सत्ता एवं संसद् द्वारा प्रदत्त अधिकारों के अधीन कार्य करता है। वह अपने मंत्रालय व विभाग से सम्बन्धित नियम व अधिनियम प्रसारित कर सकता है क्योंकि इनका प्रसारित किया जाना विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति हेतु होता है। नियम व अधिनियम साविधानिक प्रपत्र कहलाते हैं।

(3) आदेश व परिपत्र (Orders and Circulars)—विभागीय मन्त्री अथवा अधिकारी द्वारा विभागीय प्रक्रिया से सम्बन्धित कुछ स्थायी आदेश व परिपत्र प्रसारित किए जाते हैं जो संसदीय विधान के अन्तर्गत प्रदत्त शक्ति द्वारा निर्मित होते हैं। ये सभी साविधिक प्रपत्र कहलाते हैं जो विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रसारित किए जाते हैं।

(4) परिषद् आदेश (Orders-in-Council)—परिषद्-आदेश 'राजमुकुट' (Crown) की विशेषाधिकार शक्तियों (Special Privileges Powers) के अन्तर्गत प्रसारित किए जाते हैं। इनका उद्देश्य अधीनस्थ क्षेत्र की सरकार के स्वरूप में परिवर्तन करने अथवा युद्ध के आपात्काल मे वाणिज्य व व्यापार को नियन्त्रित करने हेतु निर्मित होते हैं। परिषद् आदेश साविधिक सत्ता अर्थात् प्रदत्त शक्ति के अन्तर्गत ही निकाले जाते हैं। औपचारिकता हेतु इन आदेशों की पुष्टि प्रिवी परिषद् (Privy Council) से होना आवश्यक है। ये मंत्री के आदेशों के समान ही होते हैं।

परिषद् आदेश निम्नांकित दो प्रकार के होते हैं—

(i) विशेषाधिकार आदेश (Special Privileges Orders), तथा

(ii) उद्घोषणाएँ (Proclamations)

(5) अस्थायी आदेश (Provisional Orders)—अस्थायी आदेश स्थानीय संस्थाओं या अभिकरणों की आवश्यकतानुसार सरकारी विभागों द्वारा प्रसारित किया जाता है जिससे कि संसद् के कार्य-भार में कमी हो सके और प्रार्थी को व्यय कम करना पड़े। इन्हें अस्थायी आदेश इसलिए कहा जाता है कि इनकी पुष्टि बाद में संसद द्वारा की जाती है।

(6) विशेष प्रक्रिया सम्बन्धी आदेश (Special Procedure Orders)—ये भी अस्थायी आदेशों की प्रकृति के होते हैं जिनकी पुष्टि संसद् द्वारा होती है। भिन्नता यही है कि ये किसी विशेष प्रक्रिया के स्पष्टीकरण हेतु सरकारी विभागों द्वारा प्रसारित किए जाते हैं। इनका उद्देश्य राष्ट्रीय नीति के निर्णयों को प्रभावकारी बनाने वाले विभागीय आदेशों पर शीघ्र व मितव्ययितापूर्ण पुष्टि प्राप्त करना होता है। 1962 के पश्चात् ऐसे आदेशों का प्रयोग नहीं किया गया क्योंकि मन्त्री को स्थानीय अधिनियमों को संशोधित करने की सांविधिक शक्ति प्रदान कर दी गई।

निष्कर्षतः ब्रिटेन में प्रदत्त-व्यवस्थापन एक अपरिहार्यता बन गई है। जैसा की ऑग (Ogg) ने कहा है—"राज्य के बढ़ते हुए कार्य-क्षेत्र ने प्रदत्त विधान को अनिवार्य बना दिया।"[1] इस तरह प्रदत्त व्यवस्थापन एक अनिवार्यता है।

---

1. *Ogg* : English Govt. and Politics.

10

दल-प्रणाली
(Party System)

ब्रिटेन एक महान् प्रजातान्त्रिक राष्ट्र है जिसकी सफलता के लिए दलीय प्रणाली अपरिहार्य है। ब्रिटिश सन्दर्भ में राजनीतिक दलों के महत्त्व को इंगित करते हुए लॉस्की ने कहा "राजनीतिक दल देश में कैसरशाही (Caesarism) से हमारी रक्षा के लिए सर्वोत्तम साधन हैं।"[1] ब्रिटिश संविधान के सभी अधिकृत लेखकों ने इस विचार से सहमति प्रकट की है कि दल व्यवस्था ब्रिटिश राजनीतिक जीवन की आधारशिला है। जैनिंग्स के शब्दों में, "ब्रिटिश शासन राजनीतिक दलों से ही प्रारम्भ होता है और राजनीतिक दलों में ही समाप्त हो जाता है।"[2]

ब्रिटिश दलीय-प्रथा का विकास
(The Development of the British Party-System)

ब्रिटेन में राजनीतिक दलों के विकास ने राजतंत्र का लोकतान्त्रीकरण करने में बड़ी सहायता पहुँचाई है। पहले राजा ही सरकार होता था और राजा तथा उसके दरबारी मित्र सरकार चलाते थे। सरकार द्वारा किए जाने वाले अत्याचार राजा के अत्याचार माने जाते थे। पर समय के साथ-साथ लोग यह समझ गये कि अत्याचार के लिए राजा नहीं बल्कि उसके दरबारी अधिक उत्तरदायी हैं, अतः दरबारियों को बदल लेना उचित होगा। धीरे-धीरे जनता में यह विचार बल पकड़ता गया कि राजा को बनाये रख कर भी सरकार को राष्ट्रीय संसद् के प्रति उत्तरदायी बनाने की चेष्टा की जा सकती है। फलस्वरूप विभिन्न राजनीतिक कार्यक्रमों के आधार पर शासन-सत्ता अपने हाथ में लेने के प्रयत्नों के कारण विभिन्न राजनीतिक दलों का विकास हुआ। कालान्तर में लोग यह अच्छी तरह समझ गए कि राजनीतिक दल संसद् के माध्यम से राजा की सरकार पर वांछित नियन्त्रण रखने में और आवश्यकता पड़ने पर उसे बदलने में सक्षम हो सकते हैं।

धीरे-धीरे राजनीतिक दल केवल धनिकों तक ही सीमित नहीं रहकर जनसाधारण में लोकप्रिय हो गये और उनके राष्ट्र-व्यापी संगठन अस्तित्व में आये। लोक-कल्याणकारी कार्यक्रमों के आधार पर चुनाव लड़े जाने लगे और प्रत्येक दल का यह प्रयत्न रहने लगा

1. Laski : Parliamentary Govt. in England.
2. "The British Government begins and ends with parties."
—Jennings : The British Constitution, p. 31.

कि वह जनता का अधिक से अधिक समर्थन प्राप्त कर संसदीय बहुमत प्राप्त करे। ब्रिटेन में जिस प्रणाली का विकास हुआ, उसने जनता में अनेक दलों को पनपने का अवसर नहीं दिया। अतः ब्रिटेन में सदैव दो ही दलों की प्रधानता रही और यदि दो से अधिक दल हुए भी तो उनका प्रभाव नगण्य-सा रहा। आज भी वहाँ अनुदार दल और मजदूर या श्रमिक दल (Conservative and Labour Parties) ही सर्वोपरि हैं। शेष दलों का महत्त्व नहीं के बराबर है।

ब्रिटेन में राजनीतिक दल का विकास स्टुअर्ट राजाओं और उनकी संसदों के बीच हुए संवैधानिक संघर्ष का परिणाम माना जा सकता है। प्रारम्भ में दल अधिक राजनीतिक नहीं थे, बल्कि उनका स्वरूप दलबन्दी का था। उनके तरीके बड़े असभ्य और उग्र थे। मध्यकालीन युग में ये संसद् में ही नहीं अपितु युद्ध-क्षेत्रों में भी लड़ा करते थे। पहला अवसर चार्ल्स प्रथम के शासन-काल में गृह-युद्ध (Civil War) 1641-1649 के समय उपस्थित हुआ। राजा के समर्थक कैवेलियर्स (Cavaliers) कहलाते थे जबकि संसद् के समर्थक राउण्डहैड्स (Roundheads) माने जाते थे। पुनःस्थापन (The Restoration) के युग कुछ समय के लिए इन दोनों के पारस्परिक मतभेदों को कम कर दिया, किन्तु रक्तहीन क्रान्ति (Glorious Revolution) ने इनको पुनः उभार दिया। जो व्यक्ति कभी जेम्स द्वितीय और उसके पुत्र का समर्थन करते थे, उन्हें टोरी (Tories) कहा जाने लगा और जो रक्तहीन क्रान्ति तथा हैनोवर घराने (House of Hanover) का समर्थन करते थे, उन्हें ह्विग (Whigs) कहा जाता था। टोरियों ने बहुत हद तक कैवेलियर्स की परम्पराओं का अनुसरण किया जबकि ह्विग राउण्डहैड्स के मार्ग पर चले। परन्तु इस अवधि में राजनीतिक दलों के दृष्टिकोण में एक विशेष परिवर्तन हुआ। अब ये दल सरकार बदलने के लिए राजा को बदलना आवश्यक न समझ करके संसद् पर नियन्त्रण करने की कोशिश करने लग।

कालान्तर में ह्विग और टोरियों ने अपने स्वरूप में परिवर्तन किया और उन्होंने लगभग विशुद्ध राजनीतिक स्वरूप ग्रहण कर लिया। कालान्तर में इन दलों के नामों में भी परिवर्तन हुआ। ह्विग और टोरी का स्थान क्रमशः उदार या लिबरल (Liberal) और अनुदार दल (Conservative) ने ले लिया। सन् 1830 ई. के बाद के कुछ विराम-कालों को छोड़कर उदार दल 1874 तक सत्तारूढ़ रहा। इसके पश्चात् 1905 तक सत्ता अनुदार दल के हाथ में रही।

1832, 1867 और 1884 ई. के सुधार अधिनियमों ने मताधिकार को बहुत उदार बनाते हुए निर्वाचन प्रणाली के दोषों को दूर कर दिया। अब श्रमजीवी वर्ग (Labour Class) को मतदान का अधिकार प्राप्त हो गया, जिससे एक नवीन राजनीतिक व्यवस्था का जन्म हुआ। यह श्रमिक दल (Labour Party) का प्रारम्भ था जो 1902में अस्तित्व में आया, तथा कालान्तर में यह शक्तिशाली होता गया। प्रथम महायुद्ध के बाद इस दल ने उदार दल का स्थान लेना प्रारम्भ कर दिया। धीरे-धीरे इसकी शक्ति में अभिवृद्धि हुई और अब यह देश का प्रमुख राजनीतिक दल है। वर्तमान में श्रमिक तथा अनुदार दल ही देश के प्रमुख राजनीतिक दल है। उदार या लिबरल दल की शक्ति में निरन्तर ह्रास हो रहा है।

ब्रिटेन में द्वि-दलीय पद्धति के विकास में ऐतिहासिक कारण, ब्रिटिश लोगों की व्यावहारिकता और राजनीतिक परिपक्वता तथा संसदीय शासन व्यवस्था के कुशल संचालन इत्यादि कारणों को उत्तरदायी माना जा सकता है। इस द्वि-दलीय व्यवस्था के कारण ही ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था सफलता के साथ कार्य कर रही है। ब्रिटिश लोग इस व्यवस्था के विकल्प की बात ही नहीं सोचते हैं। 1922 से लेकर अब तक ब्रिटेन में अनुदार दल या श्रमिक दल ही सत्ता में रहे हैं।

1990 में श्रीमती मारग्रेट थैचर ने अनुदार दल के नेता पद से त्यागपत्र दे दिया। उनके स्थान पर जॉन मेजर को अनुदार दल का नेता निर्वाचित किया गया। जॉन मेजर के नेतृत्व वाली अनुदार दल की सरकार पूर्ववर्ती सरकार की नीतियों का अनुसरण करती रही। अप्रैल, 1992 में देश में संसदीय निर्वाचन सम्पन्न हुए। एक बार पुनः अनुदार दल बहुमत प्राप्त करने में सफल रहा, लेकिन इसे पूर्व चुनाव की तुलना में कम सफलता प्राप्त हुई। जहाँ निम्न सदन में इसके 376 सदस्य थे, वहाँ इस बार उसे 336 स्थान ही प्राप्त हुए। श्रमिक दल ने अपनी स्थिति में सुधार किया। जहाँ निम्न सदन में इसके 229 स्थान थे, इस बार यह 271 स्थानों पर विजय प्राप्त करने में असफल रहा। लिबरल सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी को 20 स्थान प्राप्त हुए, जबकि पूर्व चुनाव में सोशल डेमोक्रेटिव पार्टी तथा लिबरल दल के गठजोड़ को 22 स्थान प्राप्त हुए थे। अनुदार दल के नेता जॉन मेजर पुनः देश के प्रधानमन्त्री बने। जॉन मेजर के नेतृत्व में अनुदार दल की सरकार ने 1997 तक कार्य किया लेकिन जून 1997 में हुए आम चुनावों में कंजर्वेटिव पार्टी की हार हुई और 19 वर्ष बाद लेबर पार्टी सत्ता में आयी और टोनी ब्लेयर प्रधानमंत्री बने।

ब्रिटिश दल-प्रणाली की विशेषताएँ

(Characteristics of British Party-System)

ब्रिटिश दलीय प्रणाली की मुख्य विशेषताओं को निम्नानुसार रखा जा सकता है—

(1) द्वि-दलीय प्रथा—ब्रिटेन में प्रारम्भ से द्वि-दलीय पद्धति रही है। चार्ल्स प्रथम के समय कैवेलियर्स तथा राउन्डहैड्स नामक दो दल थे तो चार्ल्स द्वितीय के समय टोरी और ह्विग दल प्रमुख रहे। तत्पश्चात् उन्नीसवीं शताब्दी में अनुदार और उदारवादी दल प्रमुख रहे। वर्तमान में अनुदार दल तथा श्रमिक दल की प्रधानता है। ब्रिटिश जनता का विश्वास रहा है कि द्वि-दलीय प्रणाली मन्त्रिमण्डल में स्थिरता, व्यक्तियों की स्वतन्त्रता और उनके अधिकारों को सुरक्षा तथा शक्ति का दुरुपयोग की संभावना नहीं रहती है। इन सब कारणों को संसदीय व्यवस्था की सफलता के लिए अनुकूल माना जाता है।

(2) केन्द्रीकरण—आबादी की एकरूपता और लघु भौगोलिक आकार के कारण ब्रिटिश दलों की प्रवृत्ति केन्द्रीकरण की रही है। सम्पूर्ण दल ऊपर से नीचे तक एक सूत्र में आबद्ध रहता है। दलीय नेताओं तथा दल के केन्द्र का पूरे दल पर नियन्त्रण रहता है। राष्ट्रीय संगठन का सदैव अस्तित्व रहता है और उसका ध्यान मुख्यतः राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय बातों की ओर लगा रहता है। ब्रिटेन के विपरीत अमेरिका में दलों की विशेषता विकेन्द्रीकरण की है।

(3) **अनुशासन एवं साहचर्य**—ब्रिटिश दल बहुत ही अनुशासित हैं। दल के सचेतक ही निश्चय करते हैं कि संसद् में किन दलीय सदस्यों को कब और क्या बोलना है अथवा किस विधेयक के पक्ष या विपक्ष में मत देना है। प्रत्येक दल की अपनी नीति है, अपना आदर्श और कार्यक्रम है। दलीय सदस्यों में सहयोग व साहचर्य की भावना प्रबल रूप से विद्यमान रहती है। दल की सदस्यता ऐच्छिक है, किन्तु सदस्य की दलीय सूत्र में आबद्धता के कारण पारस्परिक निकटता बढ़ जाती है। दल का समर्थन दल को एक व्यक्ति का रूप दे देता है और उसे संगठित तथा अनुशासित बनाता है।

(4) **नेता का महत्व**—ब्रिटेन में दल का नेता, दल का केन्द्र-स्थल और दल का प्रतीक माना जाता है। दल की नीतियों को दलीय नेता के व्यक्तित्व के माध्यम से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। मतदाता वस्तुतः किसी उम्मीदवार विशेष को नहीं, बल्कि भावी प्रधानमन्त्री को मत देता है और चुनाव बहुत कुछ नेता के व्यक्तित्व के प्रभावस्वरूप दिशा ग्रहण करता है, न कि नीति और दल के आधार पर। दल के नेता की इस महत्त्वपूर्ण स्थिति को प्रत्येक संसद् सदस्य समझता है और इसलिए वह नेता को पूर्ण समर्थन देता है।

(5) **संसद्-सदस्यों पर नियन्त्रण**—सदस्यगण दल-नियन्त्रण के समर्थन पर विजयी होते हैं। दलीय कार्यक्रम के आधार पर उन्हें मत मिलते है और दल की विजय में दलीय नेता की लोकप्रियता की अहम भूमिका होती है। अतः प्रत्येक सदस्य यह समझता है कि दलीय कार्यक्रम या नेता से अलग रहना या उनसे विद्रोह करना उनके राजनीतिक अस्तित्व के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। परिणामस्वरूप वह दलीय नियमों और दलीय अनुशासन का पालन करता है।

(6) **वर्ग, प्रकृति एवं सैद्धान्तिक मतभेद**—ब्रिटेन के राजनीतिक दलों का वर्ग के आधार पर सरलतापूर्वक पृथक्करण किया जा सकता है। उदार दल सभी वर्गों से मत प्राप्त करने की कोशिश करते हैं और अनुदार एवं मजदूर दोनों दल मध्यम वर्ग से मत की आशा करते हैं, किन्तु मजदूर दल स्पष्टतः मजदूरों का प्रतिनिधित्व करता है और बड़े उद्योगपतियों तथा व्यवसाइयों तथा पूँजीपतियों को कमजोर बनाने के पक्ष में है। इसके विपरीत अनुदार दल सामान्यतः धनिक एव कुलीन वर्गों का प्रतिनिधित्व करता है। स्पष्ट है कि दलों के बीच इतनी व्यापक भिन्नता है कि मतदाता को वास्तविक चयन का अवसर मिल जाता है। दलों के मतभेद सैद्धान्तिक होते हैं। मजदूर दल समाजवाद में विश्वंस करता है तो अनुदार दल स्वतन्त्र एवं निजी उद्योगों का समर्थक है। मजदूर दल का विश्वास राष्ट्रीयकरण अथवा एकाधिकार प्राप्त उद्योगों के समाजीकरण, अर्थात् उन पर राज्य के स्वामित्व की स्थापना में है जबकि उदार दल का विश्वास राजकीय केन्द्रीयकरण में है अथवा समाजवादी नौकरशाही का विरोध करना है।

(7) **उच्च उद्देश्य, गम्भीर प्रकृति एवं सतत कार्यशीलता**—ब्रिटिश राजनीतिक दलों के कार्यकर्ता उच्च उद्देश्यों से प्रभावित होकर राजनीति में भाग लेते हैं, नैतिक सिद्धान्तों का पालन करते हैं और निरन्तर कार्यशील रहते हैं। वे व्यक्तिगत हितों और स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों के लिए सामान्यतः राजनीति में प्रवेश नहीं करते। स्वार्थपरता का ब्रिटिश राजनीतिक व्यवस्था में अभाव-सा है। ब्रिटेन में राजनीतिक दल सामान्य

निर्वाचनों के बाद भी सदैव कार्यशील रहते हैं। इंग्लैण्ड में किस दिन निर्वाचन हो जाएगा, यह कहना कठिन होता है इसलिए दल निर्वाचन के लिए सदैव तैयार रहते हैं। शोधकार्य करना, साहित्य को तैयार करना, सभाएँ बुलाना, स्थानीय शाखाओं को संगठित करना, स्थानीय संस्थाओं के चुनावों में भाग लेना और संसद् व मन्त्रिमण्डल के सदस्यों से सम्पर्क स्थापित रखना आदि ऐसे कार्य हैं जिन्हें राजनीतिक दल अनवरत् रूप से करते रहते हैं। अन्त में ब्रिटिश राजनीतिक दलों का आचरण और व्यवहार बड़ा उच्चकोटि का होता है। वे ईश्वर की महत्ता में विश्वास करते हैं और अपनी ईसाई धर्म प्रेरित प्रवृत्ति की सरलता का परित्याग नहीं करते।

(8) लूट-प्रथा का अभाव—ब्रिटिश राजनीतिक दल लूट-प्रथा (The Spoils System) से ऊपर है। अमेरिका की भाँति ब्रिटिश राजनीति में राजनीतिक दलों द्वारा लूट-प्रथा का सहारा नहीं लिया जाता जिसके अनुसार सत्तारूढ दल के बदलते ही स्थायी पदाधिकारियों की एक बड़ी संख्या में नवनिर्वाचित राष्ट्रपति परिवर्तन कर देता है और पहले से कार्य कर रहे पदाधिकारियों की जगह उन लोगों को नियुक्त कर देता है जिन्होंने चुनाव में राष्ट्रपति को विजयी बनाने में योगदान दिया। ब्रिटेन में स्थायी लोकसेवा का सिद्धान्त प्रचलित है, अतः सरकारों में परिवर्तन होने से उनकी स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। वे अपने पदों पर बने रहते हैं।

(9) राजनीतिक दल और सरकार—ब्रिटेन में भी प्रत्येक राजनीतिक दल के दो रूप हैं—(i) संसदीय दल, और (ii) संसद् के बाहर का दल। संसदीय दल ही सरकार का निर्माण करता है। वही देश का प्रशासन करता है। संसदीय दल के तीन अंग हैं—(1) दल के सदस्यों का पूर्ण समूह, (2) समूह का नेता, और (3) सचेतक। दल का नेता प्रधानमन्त्री बनाया जाता है। दल के अन्य सदस्य या तो केवल लोकसदन के सदस्य ही रहते हैं अथवा उन्हें मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित कर लिया जाता है। सचेतकों (Whips) का कार्य प्रायः यह होता है कि वे सदस्यों को इस बात की सूचना दें कि उन्हें कब दल के समर्थन में सभा में मतदान करना है। संसदीय दल का देश के बाहरी दल से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। संसद के बाहर जिस नीति का निर्धारण होता है संसदीय दल उसी नीति को क्रियान्वित करता है।

संसदीय दल यदि बहुमत में होता है तो मन्त्रिमण्डल का निर्माण होता है परन्तु यदि वह अल्पमत में रहता है, तो विरोधी दल की भूमिका का निर्वाह करता है।

(10) सुदृढ़ संगठन और कठोर अनुशासन—ब्रिटिश दलीय व्यवस्था की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता राजनीतिक दलों का सुदृढ़ संगठन होना है। राजनीतिक दलों का राष्ट्र-व्यापी संगठन होता है और दल के सदस्य कठोर अनुशासन का पालन करते हैं। अनुशासनहीन आचरण करने वालों को दल से तुरन्त निष्कासित किया जाता है।

(11) विपक्ष का महत्त्वपूर्ण स्थान—ग्रेट ब्रिटेन में विपक्ष का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। उसे ब्रिटिश दलीय व्यवस्था का आवश्यक तथा अपरिहार्य अंग समझा जाता है। विपक्ष के नेता को वैकल्पिक प्रधानमन्त्री माना जाता है। राष्ट्रीय जीवन में भी विपक्ष के नेता को अत्यन्त सम्मान के साथ देखा जा सकता है।

प्रमुख राजनीतिक दल
(Major Political Parties)

इस समय ब्रिटेन के प्रमुख राजनीतिक दल निम्नांकित हैं—

(1) अनुदार या रूढ़िवादी दल (Conservative Party)

(2) श्रमिक दल (Labour Party)

(3) उदारवादी दल (Liberal Party)

(4) सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी (Social Democratic Party)

अनुदार दल
(Conservative Party)

जेनिंग्स के अनुसार "जब 1812 ई. में ह्विग लोगों (Whigs) के प्रमुत्वकाल में सुधारवादी अधिनियम पारित हो गया तो टोरी दल के अनुयायियों ने यह आवाज बुलन्द की कि ब्रिटिश सविधान का अस्तित्व खतरे में है। उस समय उन्होंने अपने संरक्षक के रूप में अपने दल का नाम कजरवेटिव अर्थात् रक्षा करने वाला दल रख लिया।"[1]

सिद्धान्त और कार्यक्रम

अनुदार दल क्रान्तिकारी और आमूल परिवर्तनों का विरोधी है। वह परम्परागत संस्थाओं, प्रथाओं और विचारधाओं के संरक्षण के पक्ष में है। अनुदार दल परिवर्तन-विरोधी नहीं है बल्कि सावधानीपूर्ण एवं मन्थर परिवर्तन पर जोर देता है और प्राचीन सामाजिक ढाँचे को यथापूर्व रखना चाहता है। यह पूँजीवाद का पोषक है। इसकी राष्ट्रीयता कट्टर राष्ट्रीयता है। अतीत में ब्रिटिश राजमुकुट की छत्रछाया में ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा और उसका विस्तार करना इस दल का सर्वोपरि ध्येय रहा। अनुदार दल निजी सम्पत्ति, राजमुकुट के विशेषाधिकारों, राष्ट्रीय एकता, शक्तिशाली नौकरशाही पूँजीपति और कुलीन वर्ग के प्रभुत्व का समर्थक है। अनुदारवादी ऐसी किसी आर्थिक व्यवस्था का समर्थन नहीं करते जिसके अन्तर्गत राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक समानता का पक्ष लेकर उत्पादन के साधनों और व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण किया जाता हो। इस दल की मान्यता है कि लॉर्ड सभा के संगठन में चाहे सुधार करने पड़ें लेकिन उसके वर्तमान स्वरूप में परिवर्तन किया जाना चाहिए।

साम्राज्यवाद अब समाप्त हो चुका है, अतः वर्तमान में अनुदार दल तथा मजदूर दल की विदेश नीति में कोई विशेष अन्तर नहीं रहा है। इस दल का यह विश्वास रहा है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करनी चाहिए। अनुदार दल का मत है कि शान्ति-रक्षा के लिए ब्रिटेन को अपनी सैनिक शक्ति का विकास करना चाहिए। सोवियत संघ तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच चलने वाले शीत-युद्ध में यह अमरीका समर्थक रहा। अनुदार संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ मैत्री-सम्बन्धों के विकास के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है। यह परमाणु-शक्ति के विकास का भी पक्षधर है।

---

1. *Jennings* : The British Constitution.

1975 में अनुदार दल ने एडवर्ड हीथ के स्थान पर श्रीमती मारग्रेट थैचर (Margret Thacher) को अपना नेता चुना और तभी से दल ने समन्वयवादी नीति त्याग कर स्पष्ट रूप से समाजवाद का विरोध करने की नीति अपना ली। यह नेतृत्व तीन शताब्दियों से चली आ रही 'सहमति की राजनीति' (Politics of Consensus) में विश्वास नहीं करता था वरन् 'टोरीवाद' के पुराने और विशिष्ट दर्शन में विश्वास करता था। श्रीमती थैचर ने 'फाकलैण्ड विवाद' में भी दृढ़ता का परिचय दिया। उनके नेतृत्व में अनुदार दल ने 1979, 1983 और 1987 के निर्वाचन लडे और बहुमत प्राप्त किया। उनकी दृढ़ता और सकल्प शक्ति के कारण ही उन्हें 'लौह-महिला' (Iron Lady) की सज्ञा दी गई। उनकी नीतियों को 'थैचरवाद' की भी सज्ञा दी गई। श्रीमती मारग्रेट थैचर की नीतियों के विरुद्ध दल में असन्तोष बढता गया। सन् 1990 में उन्होंने प्रधानमन्त्री तथा अनुदार दल के नेता पद से त्यागपत्र दे दिया। इसके पश्चात् जॉन मेजर को अनुदार दल का नया नेता निर्वाचित किया गया। उनके नेतृत्व में अनुदार दल ने 1992 में सम्पन्न हुए ससदीय निर्वाचन में सफलता प्राप्त की। उनके नेतृत्व में अनुदार दल सयुक्त राज्य अमेरिका तथा जी-7 राष्ट्रों के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित करने, यूरोपीय एकीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने, तथा आतकवाद का मुकाबला करने तथा भारत के साथ सम्बन्धों को सुदृढ करने में लगा हुआ है।

सदस्यता

अनुदार दल की सदस्यता प्रायः धनिक वर्ग के लोगों की है। कुछ सख्या में उच्च मध्यम वर्ग के ऐसे व्यक्ति भी हैं जो श्रमिकों की अपेक्षा स्वय को धनिक के अधिक निकट समझते हैं और उनकी प्रवृत्ति पूँजीपतियों के साथ मिलने की है। ससद् में प्रायः उच्च और मध्यम वर्ग के लोग ही अनुदार दल के सदस्य हैं।

संगठन

अनुदार दल का शक्तिशाली और सुदृढ संगठन है। वर्तमान में इसके संगठन के मुख्य अग निम्नाकित हैं—[1]

(1) निर्वाचन-क्षेत्रीय सघ (The Constituency Association)

(2) प्रान्तीय परिषद् (The Area Councils)

(3) राष्ट्रीय सगठन की केन्द्रीय परिषद् (The Central Council of the National Union)

(4) राष्ट्रीय सगठन की कार्यकारिणी समिति (The Executive Committee of National Union)

(5) नेता (The Leader)

(6) केन्द्रीय कार्यालय (The Central Office)

(7) अनुदार दलीय शोध-विभाग (Conservative Research Development)

(8) वार्षिक दलीय कॉन्फ्रेन्स (The Annual Party Conference)

---

1 *Colin F Padfield* op. cit., 1972, p. 40-41.

चार्ट रूप मे अनुदार दल के सगठन को निम्नानुसार व्यक्त किया जा सकता है—

LEADER · 1

NATIONAL
CENTRAL OFFFICE 6
PARLIAMENTARY PARTY (WESTMINSTER) 2

PROVINCIAL
AREA
CONTROL COUNCIL LONDON 3
AREA OFFICE 7
1-8

CONSTITUENCY
AREA COUNCIL 4 NATIONAL CONFE-RENCE

CONSTITUENCY OFFICE & AGENT
8 ASSOCIANTION EXECUTIVE COUNCIL 5
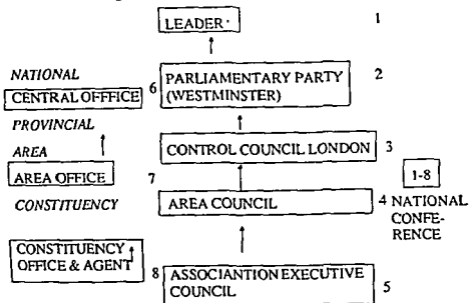
1832 का सुधार-अधिनियम पारित होने के पश्चात् ग्रेट ब्रिटेन में मतदाताओं की संख्या बढी। इस पर अनुदार दल ने केन्द्रीय संगठन की आवश्यकता अनुभव की। फलस्वरूप 1867 ई. में समूचे देश के लिए राष्ट्रीय संगठन स्थापित किया गया जिसे 'नेशनल यूनियन आफ कंजरवेटिव्ज एण्ड यूनियनिस्ट एसोसिएशन' (National Union of Conservatives and Unionist Association) के नाम से पुकारा जाता है। इस राष्ट्रीय सगठन का प्रमुख कार्य निर्वाचन क्षेत्रों में दलीय सघ की स्थापना करना, दल के सभी सगठनों के बीच सम्पर्क स्थापित करना तथा दल के केन्द्रीय कार्यालय से घनिष्ठ सम्पर्क बनाए रखना है। राष्ट्रीय सगठन का वर्ष में एक बार अधिवेशन होता है। इस वार्षिक अधिवेशन में दल की वार्षिक गतिविधियों का सिंहावलोकन किया जाता है और आगामी वर्ष के लिए दलीय कार्यक्रम तैयार किया जाता है। वार्षिक अधिवेशन में केन्द्रीय कार्यालय के सदस्य, क्षेत्रीय सगठनों के प्रतिनिधि, प्रत्येक क्षेत्रीय संगठन तथा केन्द्रीय सगठन के निर्वाचन एजेण्ट आदि भाग लेते हैं। विभिन्न समूहों के प्रतिनिधि अपने-अपने प्रस्ताव रखते हैं जिन पर खुली बहस होती है और अनुदार दल के प्रमुख नेताओं द्वारा उसका उत्तर दिया जाता है। यद्यपि अधिवेशन के प्रस्तावों से दल का नेता अपनी नीति-निर्माण के लिए प्रभावित हो सकता है, लेकिन ये प्रस्ताव कोई अनुदेश नहीं होते इसलिए नेता के लिए बाध्यकारी नहीं होते। यह वार्षिक अधिवेशन दल के सदस्यों में एकता और उत्साह का संचार करता है।

राष्ट्रीय सगठन की एक प्रबन्ध-समिति होती है जिसे केन्द्रीय परिषद् (The Central Council) कहते हैं। इस केन्द्रीय परिषद् में (अ) नेता, (ब) दल के अधिकारी, (स) ससदीय दल, (द) प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्रीय सघ के 4 प्रतिनिधि आदि सम्मिलित होते हैं। सैद्धान्तिक रूप से केन्द्रीय परिषद् राष्ट्रीय स्तर पर राजकीय सस्था है, किन्तु व्यवहार में, अपनी विशालता के कारण, यह कार्यपालिका-कर्तव्यों का निर्वाह नहीं कर पाती और केवल दल के ससद सदस्यों तथा दल के अधिकारियों के बीच एक द्विमार्गी श्रृखला (A two-way link) के रूप में काम करती है। यह अनुदार दल के प्रमुख हितों के सरक्षण करने वाली सस्था के रूप में कार्य करती है। यह ससदीय दल के केन्द्रीय कार्यालय का *नियन्त्रण नहीं करती तथापि राष्ट्रीय सगठन के पदाधिकारियों का निर्वाचन करती है,* कार्यकारिणी समिति के प्रतिवेदन पर विचार करती है और राष्ट्रीय सगठन के नियमों में सशोधन लाती है।

राष्ट्रीय सगठन की एक कार्यकारिणी समिति (The Executive Committee) होती है जिसकी सदस्य सख्या 150 है। ये सदस्य मुख्यत. प्रान्तीय क्षेत्रों (Provincial Areas) के लिए जाते हैं। दल के ससदीय और सार्वजनिक सगठनों के प्रमुख पदाधिकारी या प्रतिनिधि इसके सदस्य होते हैं। यह केन्द्रीय परिषद् के मामलों को निपटाती है। इसके प्रमुख कार्य राष्ट्रीय सगठन के पदाधिकारियों के चुनाव के लिए नामों का सुझाव देना, किसी क्षेत्रीय सगठन की कार्यकारिणी परिषद् द्वारा प्रेषित किसी मतभेद या विवाद पर निर्णय करना, आवश्यक पड़ने पर अन्य राष्ट्रीय परामर्शदात्री समितियों की स्थापना करना, वार्षिक सम्मेलन तथा केन्द्रीय परिषद् को अपनी कार्यवाहियों की रिपोर्ट देना तथा केन्द्रीय परिषद् की बैठकों के समाप्तिकाल में उसके कार्यों को सम्पन्न करना है। इसकी अनेक उप-समितियाँ भी है।

अनुदार-दल प्रान्तीय और क्षेत्रीय संगठनों की दृष्टि से भी सुव्यवस्थित और सुगठित है। इग्लैण्ड तथा वेल्स को दलीय सगठन की दृष्टि से 12 प्रान्तों (Areas) में बाँट दिया गया है, प्रत्येक प्रान्तीय संगठन का एक प्रधान होता है। प्रधान के अतिरिक्त अध्यक्ष, उपप्रधान तथा कोषाध्यक्ष आदि पदाधिकारी होते हैं। प्रान्तीय संगठन की केन्द्रीय परिषद् को प्रान्तीय परिषद् (The Area Council) कहा जाता है जो निर्वाचन क्षेत्रों और सदस्यों के प्रस्तावों पर विचार करती है। प्रान्तीय सगठन का प्रधान प्रान्त में निर्वाचन-क्षेत्रों के सघ का नेता और प्रवक्ता होता है।

अनुदार दल में सबसे नीचे के स्तर प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र में एक क्षेत्रीय संगठन होता है जिसे निर्वाचन क्षेत्रीय सघ (The Constituency Association) कहते हैं। इन निर्वाचन क्षेत्रीय संघ का काम अपने क्षेत्र में दल का प्रचार करना और निर्वाचन के समय दल के प्रत्याशी के लिए समर्थन प्राप्त करना होता है। ये निर्वाचन क्षेत्रीय संघ, दल के केन्द्रीय कार्यालय के परामर्श से संसद् के प्रत्याशियों का चयन भी करते हैं। अनुदार दल के सैकड़ों क्लब भी हैं जो जनता से सम्पर्क रखते हैं।

अनुदार दल का लन्दन में स्थित एक केन्द्रीय कार्यालय है, जिसकी स्थापना 1870 में डिजरैली (Disraeli) द्वारा की गई थी। यह केन्द्रीय कार्यालय नेता के

नियन्त्रण में रहता है तथा दल का स्थाई मुख्यालय भी माना जाता है। इसकी सक्रियता पर ही दल का भविष्य निर्भर करता है। इसके संचालन के लिए एक प्रधान संचालक होता है। आवश्यकतानुसार नए स्थानीय संगठनों की स्थापना करना, उनका मार्ग निर्देशन करना आदि इसके प्रमुख कार्य हैं। निर्वाचन-क्षेत्रों में वेतनभोगी एजेन्टों और संगठनकर्त्ताओं को भर्ती करने तथा उन्हें समुचित प्रशिक्षण देने के लिए भी केन्द्रीय कार्यालय ही उत्तरदायी होता है।

अनुदार दल में दल के नेता को महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त हैं। वह किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं होता। उसका चुनाव ससदीय दल तथा राष्ट्रीय संगठन की कार्यकारिणी समिति द्वारा किया जाता है। वह ही अनुदार दल के अध्यक्ष (Chairman) को चुनता है जो केन्द्रीय कार्यालय का प्रधान संचालक होता है। दल के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष आदि उसी के द्वारा मनोनीत होते हैं। नेता ही दल की नीति का निर्माण और उसकी व्याख्या करता है। दल के वार्षिक सम्मेलन के प्रस्ताव नियमित रूप से उसको भेजे जाते हैं, परन्तु वे उसके लिए बाध्यकारी नहीं होते। मुख्य सचेतक (Chief Whip) की नियुक्ति भी वही करता है जो संसदीय दल पर नियन्त्रण करता है। इस तरह से दलीय सचेतक के माध्यम से नेता संसदीय दल पर अपना प्रभुत्व बनाए रखता है। 1965 से पूर्व अनुदार दल में नेता का औपचारिक चुनाव करने की परिपाटी नहीं थी और दल का नेता जिसे अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर देता था, वही प्रायः दल का नेता हो जाता था। 1963 में नेता पद से त्याग-पत्र देते हुए मैकमिलन ने डगलस होम को अपना उत्तराधिकारी चुना और वह प्रधानमन्त्री के रूप में स्वीकार किया गया लेकिन ह्यूम का नेतृत्व दल के सभी नेताओं को स्वीकार नहीं हुआ और दलीय असन्तोष की वजह से 1965 में उसे त्याग-पत्र देना पड़ा। तभी से यह नियम बन गया है कि अनुदार दल में भी श्रमिक दल के समान नेता का चुनाव किया जाना चाहिए।

अनुदार दल का एक शोध विभाग (Conservative Research Department) है जो दलीय नीतियों में सहायता देने के लिए शोधकार्य करता है। यह दल के सदस्यों को आवश्यक सूचना और मार्गदर्शन देता है तथा केन्द्रीय कार्यालय के सभी विभागों की सहायता करता है। अनुदार दल में निर्वाचन एजेन्टों का काफी महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये सामयिक अधिकारी होते हैं जिनकी नियुक्ति प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र में की जाती है। केन्द्रीय कार्यालय द्वारा इन्हें प्रशिक्षित किया जाता है।

अनुदार दल का संसदीय संगठन भी है जिनका कार्य दल के उद्देश्यों का अनुपालन करना होता है। इसी संसदीय दल का नेता के निर्वाचन में प्रमुख हाथ होता है। यदि दल चुनावों में विजय प्राप्त करता है तो जिस व्यक्ति को यह नेता निर्वाचित करता है उसे राजा प्रधानमन्त्री नियुक्त करता है। शासक दल की स्थिति में नहीं होने पर यह लोकसदन के लिए दल के नेता का चुनाव करता है। दल का संसदीय संगठन दोनों सदन में होता है। लोकसदन में अनुदार दल के संगठन को '1922 की समिति' के नाम से पुकारा जाता है। संसदीय संगठन और उसकी

कार्यकारिणी समिति की प्रायः साप्ताहिक बैठकें होती हैं जिसमें व्यावसायिक समितियाँ रिपोर्ट प्रस्तुत करती हैं । सचेतक (Whips) आगामी सप्ताह के कार्यक्रम की घोषणा करते हैं । दल का सचेतक सदस्यों को अनुशासन में रखता है लेकिन लार्ड-सभा में दलीय सगठन अथवा अनुशासन की कोई चिन्ता नहीं रहती । संसद् में अनुदार दल जब विपक्षी दल के रूप में कार्य करता है तो नेता लोकसदन के सदस्यों में से अपना 'छाया मन्त्रिमण्डल' (Shadow Cabinet) का निर्माण करता है । ब्रिटेन में अनुदार दल सर्वाधिक शक्तिशाली राजनीतिक दल है ।

श्रमिक दल

(The Labour Party)

फरवरी, 1899-1900 ई. में ट्रेड यूनियन कांग्रेस (Trade Union Congress) के प्रस्ताव के आधार पर श्रमिक-दल की स्थापना हुई । उस समय इसका नाम श्रमिक प्रतिनिधित्व समिति (Labour Representation Committee) रखा गया जिसे 1906 में बदल कर श्रमिक दल (Labour Party) कर दिया गया । 1920 ई. में मार्क्सवादी विचारधार के लोग इस दल से पृथक् हो गए और उन्होंने साम्यवादी दल का निर्माण कर लिया । आज भी यह दल स्वयं को मार्क्सवाद अथवा साम्यवाद से अलग रखे हुए है ।

सिद्धान्त और कार्यक्रम

ब्रिटेन का श्रमिक दल मार्क्सवादी समाजवाद की अपेक्षा लोकतान्त्रिक समाजवाद में विश्वास रखता है । यह क्रान्ति के स्थान पर सुधार की नीति का पक्षधर है । यह सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन के लिए संवैधानिक और लोकतान्त्रिक मार्ग अपनाने का समर्थक है । डॉ. फाइनर के शब्दों में, "श्रमिक दल दास कैपिटल (Das Capital) की अपेक्षा बाइबिल (Bible) से अधिक प्रभावित है ।"[1] श्रमिक दल का घोषित उद्देश्य "हाथ और मस्तिष्क के कार्य करने वाले श्रमिकों को व्यवसायों में पूरा लाभ दिलाना, जहाँ तक सम्भव हो सके उत्पादन, वितरण व विनिमय के साधनों का साझेदारी के आधार पर उसका अधिक से अधिक औचित्यपूर्ण वितरण कराना तथा प्रत्येक व्यवसाय की सेवाओं में यथासम्भव सर्वोत्तम लोकप्रिय प्रशासन व नियन्त्रण की व्यवस्था करना है ।" श्रमिक दल आर्थिक नियोजन का संचालन लोकतान्त्रिक विधि से निर्वाचित सरकार द्वारा किये जाने के पक्ष में है, किन्तु आर्थिक नियोजन के नाम पर शासन की निरंकुशता का समर्थक नहीं है । नागरिक स्वतन्त्रता के मूल्य पर आर्थिक न्याय का पक्षपाती होने के स्थान पर नागरिक स्वतन्त्रता के साथ आर्थिक न्याय की प्राप्ति में उसका विश्वास है ।

समाजवाद के प्रति ब्रिटिश श्रमिक दल का सुझाव सिद्धान्तवादी न होकर यथार्थवादी है और इसीलिए राष्ट्रीयकरण का वह उसी सीमा तक पक्षधर है जिस सीमा तक इसे अपनाना आवश्यक हो । विगत कुछ दशकों से श्रमिक दल ने राष्ट्रीयकरण के स्थान पर 'समाजीकरण' (Socialization) पर बल देना आरम्भ किया है जिसका

1. *Finer* : Govt. of Greater European Powers.

अभिप्राय यह है कि उद्योग चाहे व्यक्तिगत स्वामित्व के क्षेत्र में रहें, किन्तु उनका संचालन सामाजिक हित की दृष्टि से होना चाहिए।

श्रमिक दल सामाजिक समानता (Social Equality) का प्रबल समर्थक है। वह समाज में समता और एकता पैदा करना चाहता है तथा समान शिक्षा, समान सम्पत्ति तथा समान राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक अवसरों का पक्षधर है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही वह पूँजीवादी ढाँचे को लोकतान्त्रिक साधनों द्वारा बदलना चाहता है। वैदेशिक क्षेत्र में श्रमिक दल साम्राज्यवाद का विरोधी और विश्व शान्ति का समर्थक है। यह संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रति आस्था रखता है। वह रक्षा व्यय को सीमित रखने के पक्ष में है।

श्रमिक दल समन्वयवादी नीति को उचित मानता है। उसका प्रमुख लक्ष्य श्रमिकों के हितों की रक्षा और श्रमिकों संघों की शक्ति को बनाए रखना है, लेकिन इसके लिए वह उग्र नीति तथा क्रांतिकारी साधन अपनाने के पक्ष में नहीं है। मार्च, 1976 में प्रधानमन्त्री हैरल्ड विल्सन के त्यागपत्र देने के पश्चात् श्रमिक दल एकता को गम्भीर आघात लगा, और इसके बाद श्रमिक दल की शक्ति में निरन्तर कमी होती गई। इसके पश्चात् श्रमिक दल के नेता दल को एकजुट नहीं रख सके और दल के असन्तुष्ट तत्वों ने 'सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी' का गठन कर लिया। सन् 1979 से 1997 तक श्रमिक दल निरन्तर विपक्ष में रहा है।

सदस्यता

श्रमिक दल की लगभग 70 प्रतिशत सदस्यता श्रमिक वर्ग की है। उनमें से अधिकांश नगर के लोग हैं। महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों और कार्यों से यह दल ब्रिटेन की सामान्य जनता में भी बहुत अधिक लोकप्रिय है, अत श्रमिकों के अतिरिक्त इनमें अन्य कई प्रकार के व्यक्ति शामिल हैं। स्त्रियों के मताधिकार और अन्य अधिकारों का समर्थन करने के कारण यह दल ब्रिटेन में महिलाओं में काफी लोकप्रिय है। पर्याप्त संख्या में मध्यम वर्ग के लोग भी श्रमिक दल का समर्थन करते हैं।

संगठन

श्रमिक दल किसी भी अन्य दल की अपेक्षा अधिक संगठित है। दल का संगठन संघीय आधार पर किया गया है। इसमें श्रमिक संघ, समाजवादी सभाएँ जिनमें फेबियन सोसायटी, समाजवादी वकीलों की सोसायटी, समाजवादी चिकित्सकों और अध्यापकों की सोसायटी, श्रमिकों की राष्ट्रीय सभा आदि प्रमुख हैं। श्रमिक दल के संगठन के मुख्य अंग निम्नांकित हैं—

(i) निर्वाचन क्षेत्रीय संगठन (The Constituency Organisation)
(ii) क्षेत्रीय परिषदें (Regional Councils)
(iii) राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति (National Executive Committee)
(iv) नेता (The Leader)
(v) मुख्य कार्यालय (The Head Office or Transport House)
(vi) वार्षिक दलीय अधिवेशन (Annual Party Conference)

श्रमिक दल में राष्ट्रीय स्तर पर सर्वोच्च उपकरण दल का वार्षिक सम्मेलन है। अधिकार की दृष्टि से यह सबसे ऊँचे स्तर की सत्ता है जिसमें विभिन्न संलग्न संगठनों के 1100 से भी अधिक प्रतिनिधि शामिल होते हैं। मतदान में श्रमिक संघों का विशेष प्रभाव होता है। यह वार्षिक सम्मेलन अकेले ही दलीय विधान में परिवर्तन कर सकता है। इसमें दलीय नीति का निरूपण किया जाता है।

श्रमिक दल की एक राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति होती है जिसके द्वारा केन्द्रीय कार्यालय का संचालन और दल की नीति का निर्माण होता है। इस समिति का निर्वाचन दल के वार्षिक सम्मेलन द्वारा किया जाता है। इसमें 25-26 सदस्य होते हैं। दल का नेता और उपनेता इसके पदेन सदस्य (Ex-officio Members) होते हैं। राष्ट्रीय कार्यकारिणी के मुख्य कार्य हैं—दल के वार्षिक सम्मेलन के निर्णयों की व्याख्या करना और उन्हें लागू करना, दल के लिए वित्त का प्रबन्ध करना, संसदीय दल के साथ सम्बन्ध स्थापित रखना, स्थानीय संघों का निरीक्षण करना, दल में अनुशासन बनाए रखना आदि।

श्रमिक दल का मुख्यालय (The Head Office) अनुदार दल के केन्द्रीय कार्यालय का प्रतिरूप है। इसका प्रधान जनरल सेक्रेटरी या महासचिव होता है जिनकी नियुक्ति राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति द्वारा की जाती है। दल के मुख्यालय द्वारा उसी प्रकार के मामलों का निपटारा किया जाता है जो अनुदार दल के केन्द्रीय कार्यालय द्वारा निपटाए जाते हैं। यह मुख्यालय क्षेत्रीय परिषदों के लिए पूर्णकालिक स्टॉफ की व्यवस्था करता है।

श्रमिक दल में क्षेत्रीय परिषदें (Regional Councils) होती हैं। ये संख्या में 11 हैं। दल के निम्नतम स्तर पर निर्वाचन क्षेत्रीय (The Constituency Organisation) होते हैं जिनमें युवा समाजवादी, स्थानीय श्रमिक संघ, प्रतिनिधि समाजवादी सोसाइटियाँ, सहकारी समितियों की स्थानीय शाखाएँ इत्यादि सम्मिलित होती हैं। इस प्रकार स्थानीय श्रमिक दल वास्तव में अनेक संगठनों का एक संघ होता है। निर्वाचन क्षेत्रीय संगठन के मुख्य उद्देश्य वैसे ही हैं जैसे अनुदार दल में निर्वाचन-क्षेत्रीय संघ के होते हैं।

श्रमिक दल का नेता (The Leader), जनवरी 1931 के दलीय सम्मेलन के निर्णय के अनुसार, एक निर्वाचक मण्डल द्वारा चुना जाता है, जिसमें संसदीय श्रमिक दल 30 प्रतिशत मत, निर्वाचन क्षेत्रीय श्रमिक दल को 30 प्रतिशत मत और श्रमिक संघों को शेष 40 प्रतिशत मत प्राप्त होते हैं।[1] वैसे व्यवहार में नेता का प्रायः पुनर्निर्वाचन हो जाता है और उसका विरोध नहीं होता। नेता का काफी प्रभाव होता है, लेकिन वह उतना प्रभावशाली नहीं होता जितना अनुदारदलीय नेता होता है। अनुदारदलीय नेता की भाँति वह दल के मुख्य कार्यालय का नियन्त्रण नहीं करता।

अनुदार दल की भाँति ही श्रमिक दल का भी संसदीय संगठन है जिसे 'संसदीय श्रमिक दल' कहते हैं। संसदीय दल ही प्रतिवर्ष दल के नेता का निर्वाचन करता है। यद्यपि नेता को ही नीति-निर्माण का अधिकार है, तथापि उसे दलीय सम्मेलन और कार्यकारिणी समिति के निर्देशन में चलना पड़ता है।

1. *S.E. Finer* : Comparative Government, p. 151.

उदार दल
(The Liberal Party)

उदार दल आज ब्रिटेन का मुख्य राजनीतिक दल नहीं रहा है। उसका स्थान श्रमिक दल ने ले लिया है। फिर भी इस दल के सदस्य अपनी योग्यता और अपने नेतृत्व के कारण ब्रिटेन में काफी सम्मान के साथ देखे जाते हैं।

उदारवादी दल अंग्रेजी नाम 'लिबरल पार्टी' (Liberal Party) का हिन्दी पर्याय है। लिबरल पार्टी के नाम से यह दल केवल 19वीं शताब्दी में अस्तित्व में आया था, परन्तु उदारवादियों का कहना है कि उनके दल का अस्तित्व गृह-युद्ध और स्वर्णिम क्रान्ति के समय से चला आ रहा है और वे ह्विग्स (Whigs) के उत्तराधिकारी हैं। 19वीं सदी के अन्त और 20वीं सदी के प्रारम्भिक चरण में उदार दल ने ब्रिटिश सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन में अनेक सुधार किए हैं। उदारवादी दल के नेतृत्व में ही आयरलैण्ड की स्वतन्त्रता, मताधिकार सम्बन्धी स्वतन्त्रता, स्त्रियों को मताधिकार, श्रमिक स्थिति में सुधार, लॉर्ड सभा की शक्तियों में कमी आदि महत्त्वपूर्ण सुधार सम्पन्न हुए।

उदार दल प्रारम्भ से ही सभी प्रकार की स्वतन्त्रता का समर्थक रहा है और वर्तमान में यह परम्परागत व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं के साथ-साथ आर्थिक समानता और स्वतन्त्रता का पोषक है। उदार दल श्रमिक अधिकारों को मान्यता देता है और उनकी स्थिति में सुधार करने का पक्षधर है। यह राष्ट्रीयकरण और समाजवाद का विरोधी है। उदार दल उद्योगों तथा आर्थिक जीवन के विकेन्द्रीकरण का समर्थक है। यह दल परम्परा के पक्ष में नहीं है, वरन् बदलती हुई परिस्थितियों के साथ-साथ सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों के पक्ष में है। यह दल औद्योगिकीकरण के माध्यम से जन-साधारण का आर्थिक स्तर ऊँचा उठाना चाहता है। वह स्वतन्त्र व्यवहार और स्वतन्त्र प्रतियोगिता के पक्ष में है। उदार दल मानवाधिकारों पर विशेष बल देता है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उदार दल विश्व-शान्ति को बनाये रखने का पक्षपाती है। उदार दल को न तो अनुदार दलीय नीति ही पसन्द है जिसके कारण पूँजीवाद को प्रोत्साहन मिलता है और न उन्हें समाजवादी नीति ही पसन्द है जो समष्टिवाद राजकीय नियन्त्रण द्वारा व्यक्ति की स्वतन्त्रता को समाप्त कर देना चाहती है। श्रमिकों के कल्याण के लिए उदारवादी सम्पत्ति के विस्तार के पक्षपाती हैं।

सन् 1987 में उदार दल की शक्ति में उस समय वृद्धि हुई जबकि 'सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी' ने अपना इस दल में विलय कर लिया। इस विलय से एक नये दल का आविर्भाव हुआ, जिसे 'लिबरल सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी' (Liberal Social Democratic Party) के रूप में जाना गया। सन् 1992 के संसदीय चुनाव में उदार दल 'लिबरल सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी' के रूप में चुनाव-मैदान में उतरा था और 20 स्थानों पर विजयी रहा।

एक समय था जबकि उदार दल अपनी उन्नति के शिखर पर था, किन्तु अब उसकी शक्ति में निरन्तर ह्रास हो रहा है। इसके पतन का मुख्य कारण यह है कि इस दल के पास कोई स्पष्ट और सीधा कार्यक्रम नहीं है। यह पूँजीवाद और समाजवाद के बीच का मार्ग ग्रहण करना चाहता है, अतः इसके पक्ष में न तो धनी वर्ग ही है और न

श्रमिक वर्ग ही। उदार दल की स्तिति लोकसदन में 20-25 से अधिक नहीं होती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उदार दलको जितने मत प्राप्त होते हैं, उसकी तुलना में लोकसदन में स्थान प्राप्त नहीं होते हैं।

सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी

(Social Democratic Party)

1980 में जब श्रमिक दल का नेतृत्व कट्टर वामपंथियों के हाथ में आ गया तो मध्यममार्गियों ने जनवरी 1981 में 'Council for Social Democracy' की स्थापना करके कुछ दिनों बाद विधिवत् रूप से एक नए राजनीतिक दल को जन्म दिया जिसका नाम 'सोशल डेमोक्रेटिव पार्टी' रखा गया। श्रमिक दल के 14 सांसदों ने अपना दल छोड़कर इस नए दल की स्थापना की और थोड़े समय पश्चात् अनुदार दल के कुछ सदस्य भी इसमें शामिल हो गए। सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी मध्यममार्गी है। जून 1983 के आम चुनावों में इस दल ने उदार दल के साथ गठबन्धन कर चुनाव लड़ा। इस गठबन्धन ने लगभग 25 प्रतिशत मत प्राप्त किए, किन्तु लोकसदन में इसे केवल 20 स्थान मिल सके। निर्वाचित सदस्यों में अधिकाँश उदार दल के ही सदस्य हैं, सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी के नहीं। सन् 1987 में इस दल का उदार दल में विलय हो गया।

अन्य दल

ब्रिटेन में कुछ अन्य छोटे-छोटे दल भी हैं जिनमें प्रमुख साम्यवादी दल, फासिस्ट दल, नेशनल फ्रंट और सोशलिस्ट वर्क्स पार्टी हैं। इनका ब्रिटिश राजनीति में कोई प्रभावपूर्ण स्थान नहीं है। साम्यवादी दल (Communist Party) को 1974, 1979 1983, 1987 और 1992 के चुनावों में कोई प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हुआ।

फासिस्ट दल (Fascist Party) का भी ब्रिटेन में अस्तित्व है। इस दल की स्थिति साम्यवादी दल से भी बुरी है। वर्तमान समय में एक फासिस्ट शक्ति के रूप में राष्ट्रीय मोर्चा (National Front) का उदय हुआ है जो घोर दक्षिणपन्थी संगठन है। इसके कुछ नेता हिटलरवाद के समर्थक हैं। नेशनल फ्रंट का मुख्य उद्देश्य ब्रिटेन में रहने वाले आव्रजकों को निकाल बाहर करना है ताकि गोरों के लिए ब्रिटेन में रोजगार की कमी न रहे। सोशलिस्ट वर्क्स पार्टी घोर वामपंथी संगठन है जिसका उद्देश्य भी आव्रजकों के हितों की रक्षा करना है।

इन दलों के अतिरिक्त स्कॉटलैण्ड, वैल्स, उत्तरी आयरलैण्ड के राष्ट्रवादी दल जैसे क्षेत्रीय दल भी अस्तित्व में हैं, जिनका राष्ट्रीय राजनीति में नगण्य रूप में ही प्रभाव है।

निष्कर्षतः ब्रिटेन की द्वि-दलीय व्यवस्था ने देश की संसदीय शासन व्यवस्था के संचालन में प्रभावशाली भूमिका का निर्वाह किया है।

11

अमरीकी संविधान का उदय, विकास, महत्व, स्त्रोत और उसकी विशेषताएँ

(Origin, Development, Importance, Sources and Sailent Features of American Constitution)

संयुक्त राज्य अमेरिका के सविधान की मुख्य विशेषताओं का अध्ययन करने के पूर्व इसकी भौगोलिक पृष्ठभूमि तथा समाजशास्त्रीय तत्वों का अध्ययन करना सामयिक और प्रासगिक बन जाता है। सयुक्त राज्य अमेरिका की भौगोलिक स्थिति के अनुरूप ही देश में लोकतान्त्रिक व्यवस्था का अभ्युदय हुआ।

संयुक्त राज्य अमेरिका उत्तरी अमेरिका महाद्वीप के मध्य भाग में स्थित है। इसके पूर्व में अटलांटिक महासागर, पश्चिमी सीमा पर प्रशान्त महासागर, उत्तर में कनाडा और दक्षिण में मैक्सिको राज्य व मैक्सिको की खाडी है। इसकी भौगोलिक स्थिति इसे संसार के अन्य देशों से पृथक् करती है। अपनी इसी भौगोलिक स्थिति के कारण अमेरिका बाह्य आक्रमण और आन्तरिक अशान्ति से सदैव सुरक्षित रहा और वहाँ प्रजातन्त्र को भली प्रकार फलने-फूलने का अवसर मिला।

क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व के महानतम देशों में से एक है। जिस समय इसकी स्थापना हुई थी उस समय इसका क्षेत्रफल 3,15,065 वर्गमील था और इसमें 13 राज्य थे, आज इसमें 50 राज्य हैं और इसका क्षेत्रफल 36,15,222 वर्गमील है।

संयुक्त राज्य अमेरिका की जनसख्या वर्तमान में 30 करोड़ के लगभग है फिर भी प्रचुर प्राकृतिक साधनों तथा कृषि-योग्य भूमि के अनुपात में यह जनसंख्या अधिक नहीं है। यह देश पूर्व सोवियत सघ की भाँति ही विभिन्न जातियों, भाषाओं और धर्मों का घर है। इसमें श्वेत एवं श्यामवर्णी नीग्रो जातियों की बहुलता है। श्वेतों में अनेक जातियों का सम्मिश्रण है, जैसे—अंग्रेज, आयरिश, फ्रांसीसी, जर्मन, इटालियन, हंगेरियन, पोलिश, रूसी आदि। इनके अतिरिक्त चीनी, जापानी एवं भारतीय भी अमेरिका में बसे हैं। जातियों की इस विभिन्नता ने श्वेतों और नीग्रो लोगों के पारस्परिक वैमनस्य की विकट समस्या खड़ी की है जो सरकार के लिए आज भी एक विकट समस्या बनी हुई है। यहां प्रोटेस्टेंट, रोमन, कैथोलिक, यहूदी, ओल्ड कैथोलिक, पोलिश, नेशनल कैथोलिक, बौद्ध आदि विभिन्न धर्मावलम्बी रहते हैं, परन्तु इस धार्मिक विभिन्नता से कोई समस्या पैदा नहीं

हुई है क्योंकि अधिकाश जनता ईसाई धर्म के ही किसी न किसी सम्प्रदाय को मानने वाली है। लगभग 143 राष्ट्रों के निवासी अमेरिका में रह रहे हैं। यहाँ भारी सख्या में यहूदी जनसख्या है जो इजरायल से भी अधिक है। यह जाति बडी प्रभावशाली है, और सयुक्त राज्य अमेरिका की इजरायल समर्थक नीति के लिए उत्तरदायी है। यहाँ के मूल निवासी 'रेड इन्डियन्स' हैं।

अमेरिका सरकार पर दबाव समूहों का भारी प्रभाव है। साधारणत सविधान पर सामाजिक व राजनीतिक परम्पराओं का प्रभाव देखा जा सकता है। सयुक्त राज्य अमेरिका का सविधान भी इन प्रभावों से अछूता नहीं है। उस पर उन परम्पराओं की अमिट छाप है जो अमेरिकी जनता को पूर्वजों से विरासत में मिली है। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण परम्परा या विचारधारा व्यक्तिवाद की है। अमेरिकी सविधान पर महान् व्यक्तिवादियों लॉक एव माण्टेस्क्यू का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। व्यक्ति की समानता और वैयक्तिक सम्पत्ति में आस्था इस प्रभाव का परिणाम रहा है।

अमरीकी संविधान का उदय तथा विकास

(Origin and Development of the American Constitution)

सयुक्त राज्य अमेरिका की वर्तमान शासन-पद्धति का आधार 1787 ई. में फिलाडेलफिया कॉन्फ्रेंस (Philadelphia Conference) द्वारा निर्मित सविधान है जो 1789 ई. का सविधान कहलाता है। पूर्णतः निर्मित और लिखित सविधान होते हुए भी विगत लगभग 208 वर्षों में यह निरन्तर विकासमान रहा है।

उपनिवेश-निर्माण

1492 ई. कोलम्बस द्वारा अमेरिका के विशाल महाद्वीप की खोज करने के बाद यूरोप की जातियों ने इस प्रदेश की भूमि पर बसना प्रारम किया, फलस्वरूप सयुक्त राज्य अमेरिका की जनसख्या में वृद्धि हुई। धीरे-धीरे इंग्लैण्ड ने इस देश में अपने उपनिवेश कायम करने प्रारम्भ किये। 1776 ई. तक उसने सयुक्त राज्य अमेरिका में 13 उपनिवेशों की स्थापना की जो आन्तरिक मामलों में स्व-शासित होते हुए भी उसके आधिपत्य में थे। ये उपनिवेश अपनी आन्तरिक नीति का निर्माण करने के लिए तो पर्याप्त रूप से स्वतन्त्र थे, तथापि इनके वैदेशिक मामलों व सेना एवं युद्ध तथा कस्टम (Custom) सम्बन्धी विषयों का सचालन इग्लैण्ड द्वारा किया जाता था।

स्वतन्त्रता की ओर

व्यवस्थित रूप से बस जाने के उपरान्त उपनिवेशों के निवासियों में सामाजिक और राजनीतिक चेतना जाग्रत हुई तथा इग्लैण्ड से उनका भावनात्मक सम्बन्ध पहले के समान घनिष्ठ नहीं रहा। उनमें पूर्ण स्वतन्त्रता पर आधारित पूर्ण स्वशासन की इच्छा बलवती होने लगी और इग्लैण्ड का नाममात्र का आधिपत्य भी उन्हें खटकने लगा। विभिन्न प्रशासकीय और आर्थिक कारणों से ब्रिटेन के विरुद्ध उपनिवेशवासियों का असतोष बढ़ता गया।

जब ब्रिटिश सरकार ने उपनिवेशवासियों पर नए कर लगाये तो उनमें विद्रोह की खुली भावना भड़क उठी। ब्रिटिश संसद् आरोपित करों को चुकाना अस्वीकार करते हुए

उन्होंने 'बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं' (No Taxation without Representation) की आवाज बुलन्द की। अर्थात् ब्रिटिश संसद, जिसमें अमरीकी उपनिवेशों को प्रतिनिधि भेजने का अधिकार नहीं है, वह अमेरिका पर कर नहीं लगा सकती। इस आवाज को साम (Sam), जॉन एडम्स (John Adams), पैट्रिक हैनरी (Patric Henry) तथा थॉमस जैफरसन (Thomas Jafferson) जैसे क्रान्तिकारियों ने बुलन्द किया। इंग्लैण्ड द्वारा आयोजित अवांछित कानूनों व आज्ञाओं का खुला उल्लंघन किया जाने लगा। ब्रिटिश सरकार ने इस विद्रोह को दबाने के लिए दमनकारी रुख अपनाया जिससे उपनिवेशों में क्रान्ति की ज्वाला और भी भड़क उठी।

मेसाच्यूसेट्स के निवासियों ने क्रान्ति का नेतृत्व किया। उनके प्रयासों के फलस्वरूप 5 सितम्बर, 1774 को 12 उपनिवेशों के प्रतिनिधियों का सम्मेलन फिलाडेलफिया नगर में हुआ जिसे 'प्रथम महाद्वीपीय कांग्रेस' (The First Continental Congress) की संज्ञा दी जाती है। इसी कांग्रेस द्वारा एक महाद्वीपीय संगठन (Continental Association) की स्थापना की गई ताकि क्रान्ति का संगठन हो सके। 1775 ई. में 'द्वितीय महाद्वीपीय काँग्रेस' (The Second Continental Congress) सम्पन्न हुई। जार्जिया के शामिल होने से इस बार विद्रोह में पूरे 13 उपनिवेश शामिल हो गए। यह काँग्रेस विशेष रूप से महत्वपूर्ण थी क्योंकि मार्च, 1781 तक यह 'संयुक्त-उपनिवेशों' की सरकार के अधिकारिक अंग (Official Organ) के रूप में कार्य करती रही। इस तरह यह अमेरिका की प्रथम राष्ट्रीय सरकार थी।

स्वतन्त्रता की घोषणा

स्थिति इतनी तेजी से बदली कि अमेरिकावासियों में स्वतन्त्रता की आशा तीव्रतर होती गई। जब इंग्लैण्ड से समझौते के सभी प्रयास असफल सिद्ध हो गए तो जॉर्ज वाशिंगटन के नेतृत्व में सभी 13 उपनिवेशों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया और 4 जुलाई, 1776 को ब्रिटिश सम्राट के प्रति अपनी स्वामिभक्ति का त्याग कर दिया। वे स्वतन्त्र और प्रभुसत्ता-सम्पूर्ण राज्य बन गए। 'अमेरिकी स्वतन्त्रता की घोषणा' में कहा गया कि "इन अधिकारों की रक्षा हेतु ही मनुष्य सरकारों की स्थापना करता है और उसे शासन करने का अधिकार भी जनता की अनुमति से ही प्राप्त होता है। जब कभी कोई शासन इन उद्देश्यों के लिए घातक बन जाये तब लोगों को अधिकार होता है कि वे उसे बदल दें या समाप्त कर दें और ऐसे नवीन शासन की स्थापना करें जिससे उनकी अपनी सुरक्षा और सुख-समृद्धि स्थायी रहने की सबसे अधिक आशा हो।"

स्वतन्त्रता की घोषणा के तुरन्त बाद ही उपनिवेशवासियों ने सबसे पहले अपना ध्यान संगठित होकर युद्ध करने पर दिया। यह युद्ध लगभग 6 वर्षों तक चला और अन्त में इंग्लैण्ड के विरुद्ध उपनिवेशों की जीत हुई। इंग्लैण्ड में लॉर्ड नॉर्थ की सरकार ने त्यागपत्र दे दिया तथा नई सरकार ने निश्चय किया कि स्वतन्त्रता की घोषणा के आधार पर शान्ति-सन्धि कर ली जाए। 1783 में सन्धि पर विधिवत् हस्ताक्षर हो गए जिसमें यह स्वीकार किया गया कि सभी 13 उपनिवेश पूर्णतया स्वतन्त्र तथा प्रभुतासम्पन्न राज्य होंगे।

संघीय व्यवस्था की स्थापना, 1776

1783 ई. में उक्त सन्धि पर हस्ताक्षर होने से पूर्व 12 जून, 1776 ई. को महाद्वीपीय कौंग्रेस ने प्रत्येक उपनिवेश से एक-एक सदस्य लेकर एक समिति का निर्माण किया था जिसका कार्य एक ऐसे संघ (Confederation) के संविधान पर विचार करना था जिसके अन्तर्गत एक होकर सभी उपनिवेश स्वाधीनता-संग्राम का संचालन कर सकें और आन्तरिक व्यवस्था कायम रख सकें। नवम्बर, 1777 ई. में महाद्वीपीय कौंग्रेस ने (जो सभी उपनिवेशीय राज्यों की सम्मिलित संस्था थी) स्थाई संघ के निर्माण से सम्बन्धित धाराओं को स्वीकार कर लिया। पहली मार्च, 1781 तक सभी राज्यों ने संघ या संवर्ग की इन धाराओं पर अपनी स्वीकृति दे दी और उसी दिन ये धाराएँ लागू हो गयीं। ये धाराएँ अथवा अनुच्छेद ही संयुक्त राज्य अमेरिका का 'प्रथम संविधान' थीं। इस संघीय व्यवस्था को अस्थायी रूप से तो 1777 ई. में ही लागू किया गया ताकि युद्ध में बाधा न पहुँचे।

उपर्युक्त संविधान के अन्तर्गत एक ऐसी केन्द्रित सरकार की स्थापना की गई जिसके अधिकार निश्चित और सीमित थे। यह अत्यन्त निर्बल तथा कमजोर संघीय व्यवस्था थी, जिसमें राज्यों की तुलना में केन्द्र की स्थिति बहुत कमजोर थी। उसके पास वास्तविक शक्ति का सर्वथा अभाव था। विभिन्न कमजोरियों के कारण यह व्यवस्था स्थायी सिद्ध नहीं हो सकी। कुछ ही समय बाद इस व्यवस्था के विरुद्ध असन्तोष व्याप्त हो गया।

फिलाडेलफिया सम्मेलन और नए संविधान का निर्माण

शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि 1776 की संघीय व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन किये जाने वाछनीय हैं। इस दृष्टि से संविधान की धाराओं में सुधार के भी प्रयत्न किए गए, किन्तु वे सफल न हो सके और राज्यों में गृह-युद्ध छिड़ जाने का भय उत्पन्न हो गया। इस स्थिति का परिणाम यह हुआ कि केन्द्र को शक्तिशाली बनाने और विधान में तुरत परिवर्तन करने के लिए सम्पूर्ण देश में एक आंदोलन उठ खड़ा हुआ।

इस आंदोलन का नेतृत्व जॉर्ज वाशिंगटन ने किया। 1787 में कौंग्रेस ने संघीय नियमावली को संशोधित करने तथा संघ को दृढ बनाने की दृष्टि से एक सम्मेलन बुलाने का प्रस्ताव पारित किया। फलस्वरूप 25 मई, 1787 में फिलाडेलफिया में यह महान् सम्मेलन हुआ जिसमें 12 राज्यों के 55 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। केवल रोड द्वीप (Rhode Island) ने अपना कोई प्रतिनिधि नहीं भेजा। इसकी अध्यक्षता जॉर्ज वाशिंगटन ने की। प्रतिनिधियों की योग्यता को देखकर जैफरसन ने इस सम्मेलन को 'देवताओं की सभा' कहा। फिलाडेलफिया सम्मेलन में विचार-विमर्श के समय यह स्पष्ट हो गया कि 1776 के संघीय ढाँचे में सुधार-मात्र से काम नहीं चलेगा, वरन् एक पूर्णतः नवीन सांविधानिक ढाँचा तैयार करना होगा जिसमें स्वशासित राज्यों और शक्तिशाली केन्द्र की शक्ति का उचित सामंजस्य होगा। लगभग 4 माह के बाद 17 सितंबर, 1787 को सर्वसम्मति से एक प्रलेख (Document) बन पाया जिसमें नवीन शासन-विधान स्वीकार किया गया। यह निश्चित किया गया कि इसे लागू करने के लिए 13 में से कम से कम 9 राज्यों का सम्मेलन उसे अलग-अलग स्वीकार कर ले।

इसके बाद ही संविधान में की गई प्रशासनिक व्यवस्था के सम्बन्ध में राज्यों में गंभीर मतभेद व्याप्त हो गया और 1787 ई. के अन्त तक केवल 3 राज्यों को ही स्वीकृति प्राप्त हो सकी। वास्तव में सम्पूर्ण देश दो दलों में बँट गया। एक दल के लोग संघ विरोधी (Anti-Federalists) थे। वे केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाने के पक्ष में नहीं थे और चाहते थे कि केन्द्रीय शासन स्वतन्त्र राज्यों का एक शिथिल संगठन मात्र बना रहे। दूसरे दल के लोग संघ समर्थक (Federalists) थे जो केन्द्रीय सरकार को पर्याप्त रूप से शक्तिशाली बनाना चाहते थे। नए प्रस्तावित संविधान का बहुत से लोगों द्वारा इस आधार पर भी विरोध किया गया कि उसमें अधिकार पत्र (Bill of Rights) की व्यवस्था नहीं की गई थी जिससे लोगों की स्वतन्त्रता को खतरा पैदा हो सकता था। संघात्मक शासन के समर्थकों ने संविधान में केवल अधिकार-पत्र की ही बात नहीं मानी वरन् संविधान में प्रथम दस नए संशोधन करके उसे लागू भी कर लिया। इसका परिणाम यह निकला कि उन राज्यों ने भी अब प्रस्तावित संविधान को राज्यों की आवश्यक संख्या द्वारा स्वीकृति प्रदान कर दी गई और तब संवर्ग का संघ की काँग्रेस ने एक विधि द्वारा यह आदेश जारी किया कि नए संविधान के अनुसार निर्वाचन हो तथा नई सरकार 4 मार्च, 1789 से देश का शासन भार सम्भाल ले। निर्वाचन हुए, सीनेट के सभापद और काँग्रेस के प्रतिनिधिगण चुने गए तथा जॉर्ज वाशिंगटन के राष्ट्रपतित्व में नई सरकार ने कार्य-भार सम्भाला। इस प्रकार पुराना संघ या संवर्ग समाप्त हो गया और नया संघ अस्तित्व में आया।

आज अमेरिका के संयुक्त राज्य में 50 राज्यों का संघ है। यह उसी संविधान से आबद्ध हैं जिसे 1789 का संविधान कहा जाता है।

अमेरिकी संविधान का महत्त्व

(Importance of the American Constitution)

संयुक्त राज्य अमेरिका की वर्तमान शक्ति और समृद्धि का एक ठोस आधार यहाँ का संविधान है। अपनी विलक्षण सांविधानिक और राजनीतिक व्यवस्था के कारण ही अमेरिका विगत दो सौ वर्षों से अधिक समय की विपुल चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना कर सका है। भारत और विश्व के अनेक देशों ने अपने संविधानों के निर्माण में इसके महान् संविधान से बहुत-कुछ ग्रहण किया है। इस संविधान के महत्व को इंगित करते हुए जेम्स बेक (James Bake) का कहना है कि "अमेरिकी संविधान एक महान् भावना है, एक उत्कृष्ट एवं उदात्त घोषणा है तथा वास्तव में, शासन की नैतिकता की विजय है। यह राज्य का समुचित कार्यक्षेत्र राज्य को समर्पित करती है, किन्तु जनता के मूलभूत नैतिक अधिकारों को सुरक्षित रखकर ईश्वर के विषय ईश्वर के पास ही रहने देती है।"

अमेरिका का संविधान एक क्रान्तिकारी प्रलेख है। यह मध्यमार्ग और समझौते का परिणाम रहा है तथा मानव स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का उद्घोषक है। जिन मुख्य बातों ने अमेरिकी संविधान के अध्ययन को विशेष महत्वपूर्ण बनाया है, वे निम्नांकित हैं—

(1) संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व की एकमात्र महाशक्ति (America is the only Super Power)—सोवियत संघ के विघटन के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका ही

विश्व की एकमात्र महाशक्ति रह गई है। वर्तमान में 'द्वि-ध्रुवीय विश्व' (Bi-Polar World) के स्थान पर 'एक-ध्रुवीय विश्व' (Uni-Polar World) की अवधारणा स्थापित हो गई है। वर्तमान में संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व-राजनीति को नियन्त्रित करता है। अतः उसकी साधारण-सी क्रिया-प्रतिक्रिया विश्व राजनीति को प्रभावित करती है। अमेरिकी राष्ट्रपति की कार्य-शैली पर विश्व का भाग्य निर्भर करता है। अतः स्वाभाविक है कि ऐसे महान् देश की शासन-व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त किया जाये।

(2) **विश्व का प्रथम लिखित संविधान** (First Written Constitution of the World)—अमेरिका को "नई दुनिया" कहा जाता है, लेकिन इसका संविधान विश्व का सर्वाधिक प्राचीन लिखित संविधान है। अमेरिकी संविधान के निर्माण से पूर्व प्रायः यही समझा जाता था कि संविधानों का विकास होता है, वे अलिखित होते हैं लेकिन फिलाडेलफिया सम्मेलन ने संविधान की लिखित रूप में रचना कर एक नवीन परम्परा का सूत्रपात किया जो आज सर्वमान्य हो गई है। ब्रिटेन भी, जिसका संविधान 'विकसित और अलिखित' माना जाता है, आज इस ओर अग्रसर है कि उसके संविधान के अलिखित अंशों को यथाशीघ्र और यथासम्भव लिखित रूप दे दिया जाए। हमें ग्लैडस्टन की इस उक्ति से सहमत होना पड़ेगा कि "अमेरिकी संविधान मानव जाति की आवश्यकता और मस्तिष्क से उत्पन्न किसी निश्चित समय की सर्वाधिक आवश्यकतापूर्ण कृति है।"[1]

(3) **संविधान की श्रेष्ठता** (Excellence of the Constitution)—अमेरिकी संविधान के महत्व का एक अन्य कारण इस संविधान की श्रेष्ठता है। यह संविधान विशिष्ट गुणों से विभूषित है और संविधान-शास्त्रियों ने इसे विश्व का 'सर्वश्रेष्ठ संविधान' माना है। लॉर्ड ब्राइस (Lord Bryce) के शब्दों में, "सारी काट-छाँट करने के बाद भी संयुक्त राज्य का संविधान अपनी योजना, जनता की स्थितियों के अनुकूल अपने को ढालने की शक्ति, अपनी सादगी, लघुता और भाषा की स्पष्टता तथा उपयुक्तता, अपनी सिद्धान्त-निश्चितता और विवरण की अनम्यता के उचित सम्मिश्रण का, आन्तरिक श्रेष्ठता के कारण, अन्य सभी संविधानों से श्रेष्ठ है।"

(4) **स्थिर संविधान** (Stable Constitution)—अमेरिकी संविधान का स्थायित्व इसे विशेष महत्व प्रदान करता है। संयुक्त राज्य अमेरिका विविधताओं से परिपूर्ण देश है। इन सब विविधताओं के बावजूद अमेरिकी संविधान अपने मौलिक स्वरूप को बनाये रखने में सफल रहा है। विभिन्न संविधान संशोधनों के बाद भी इसकी मूल 'आत्मा' अपरिवर्तित रही है, जो इसकी स्थिरता की परिचायक है।

(5) **संघात्मक शासन-व्यवस्था** (Federal System of Govt.)—संघात्मक शासन व्यवस्था अमरीकी संविधान की विश्व को एक महत्वपूर्ण देन है। जैसा कि न्यूमैन (Newman) ने भी कहा है—"ब्रिटिश संसद को जिस प्रकार संसदों की जननी

1 "The American Constitution is the most wonderful work ever struck off at a given time by the brain and purpose of man." —*Gladstone*

(Mother of Parliaments) कहा जाता है, उसी प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका को संघात्मक शासन-व्यवस्था का जनक (Father of Federations) कहा जा सकता है।"[1]

(6) नए और श्रेष्ठ सिद्धान्तों की देन (Contribution of New and Excellent Principles)—अमेरिकी शासन-व्यवस्था ने अनेक नए और श्रेष्ठ सिद्धान्तों को जन्म दिया है। शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त, न्यायिक पुनरावलोकन तथा विभिन्न प्रकार की स्तानीय संस्थाएँ इत्यादि इस विशाल प्रयोग की अमूल्य देन है।

(7) भारतीयों के लिए महत्वपूर्ण (Meaningful for Indians)—अमरीकी संविधान भारतीय के लिए विशेष महत्व है। संघात्मक शासन-व्यवस्था, संविधान की सर्वोच्चता की धारणा, मौलिक अधिकारों की व्यवस्था, सर्वोच्च न्यायालय आदि से सम्बन्धित अनेक प्रावधान हमने एक बड़ी सीमा तक अमेरिका संविधान से ग्रहण किए हैं। भारतीय राष्ट्रपति की विशिष्ट शक्तियाँ, न्यायिक पुनरावलोकन आदि भी अमेरिकी संविधान की देन रही है।

(8) एक गतिशील संविधान के रूप में प्रासंगिकता (Relevance as a Dynamic Constitution)—अमेरिकी संविधान यद्यपि कठोर है, तथापि बदलती हुई परस्थितियों के अनुसार ढलने की इसमें अपूर्व क्षमता है। ब्रोगन ने लिखा है कि "यह संविधान अभी तक जीवित और गतिशील है।" इस संविधान के अन्तर्गत जिस शासन-पद्धति की स्थापना हुई है उसने अमरीकी समाज और राष्ट्र को महानता प्रदान की है। अतः एक गतिशील संविधान के रूप में अमेरिकी संविधान की प्रासंगिकता बरकरार है।

अमेरिकी संविधान के स्रोत

(Sources of the American Constitution)

अथवा

संवैधानिक विकास की प्रक्रिया

(Process of Constitutional Development)

अमेरिका का वर्तमान संविधान सिर्फ 1787 ई. का लिखित प्रवेश है वरन् समय और परिस्थिति की माँग के अनुसार विभिन्न साधनों के आधार पर यह पर्याप्त विकसित हो चुका है। मुनरों के शब्दों में, "1787 ई. के निर्माताओं ने उस भवन की नींव मात्र रखी थी जिसमें खिड़की, दरवाजे व खम्भे इत्यादि का निर्माण उनकी सन्तान ने किया है।"[1]
अमेरिकी संविधान में विकास और परिवर्तन के लिए कौन से तत्व उत्तरदायी रहे हैं—

(1) न्यायिक व्याख्याएँ (Judicial Interpretations)—संविधान का विकास करने में न्यायपालिका के निर्णयों का योग देखते हुए व्याख्याकारों ने यहाँ तक कह डाला है कि "सर्वोच्च न्यायालय अविरल गति से चलने वाली एक संवैधानिक परिषद् (Continuous

1. "As the British Parliament has been the Mother of Parliaments, so the United States has been the Father of Federations."
—*R. G. Newman* : European & Comparative Govts., p. 601
2. *Munro, W.B.* : The Govt. of United States.

Constitutional Convention) है।" वस्तुत सविधान के अनुच्छेद की व्याख्या करने का कार्य शनैः-शनै, सर्वोच्च न्यायालय ने पूरी तरह अपने हाथ में ले लिया है और आज उसके निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य हैं। उदाहरणार्थ, सर्वोच्च न्यायालय ने सविधान की धाराओं को परिभाषित कर राष्ट्रपति को पूर्ण शक्तियाँ प्रदान की हैं। इसी प्रकार उसने वाणिज्य, सेना, सचार, परिवहन आदि शब्दों की उदार व्याख्याएँ कर कांग्रेस के सांविधानिक अधिकारों को काफी व्यापक बनाया है।

(2) प्रशासकीय निर्णय (Administrative Decisions)— न्यायिक निर्णयों के अतिरिक्त प्रशासकीय निर्णयों ने भी अमरीकी सविधान के विकास में काफी योगदान दिया है। विभिन्न विभागाध्यक्षों और प्रशासकीय अधिकारियों द्वारा सविधान की धाराओं के आधार पर स्वतन्त्र निर्णय लिए जाते हैं जिन्हें प्रायः न्यायिक मान्यता मिल जाती है। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन की भाँति अमेरिका में भी प्रदत्त विधान या कानून की प्रथा प्रचलित है। कांग्रेस कानून का सिद्धांत और ढाँचा तैयार कर देती है, प्रशासकीय क्षेत्र को यह अधिकार देती है कि वह कानून की कमियों की पूर्ति विनिमयों एवं आज्ञाओं द्वारा करे। मुनरो ने इन नियमों और उपनियमों को 'सविधान रूपी तने की शाखाएँ' कहा है।

(3) संविधान संशोधन (Constitutional Amendment)—समय-समय पर सविधान संशोधनों द्वारा मौलिक सविधान का रूप परिवर्तित और विकसित होता रहा है। अब तक हुए संशोधनों ने सविधान का बहुत कुछ विस्तार कर दिया है। उदाहरणार्थ, सशोधनों के फलस्वरूप ही सीनेट के सदस्यों के लिए प्रत्यक्ष निर्वाचन-पद्धति का प्रावधान हुआ है, नागरिकों के अधिकार-पत्र को सविधान में सम्मिलित किया गया है और महिलाओं को मताधिकार प्राप्त हुआ है। 26वें सशोधन (1970) से पहले 21 वर्ष की आयु वयस्क मताधिकार का आधार था, पर इस सशोधन द्वारा मताधिकार की आयु 18 वर्ष कर दी गई।

(4) राजनीतिज्ञों और नागरिकों की व्याख्याएँ (Interpretations by Politicians and Citizens)—सविधान के विकास में राजनीतिज्ञों और सामान्य नागरिकों की व्याख्याताओं का भी योग रहा है। उदाहरणार्थ, राजनीतिक दलों और लाखों अमेरिकी मतदाताओं ने राष्ट्रपति के निर्वाचन की पद्धति को बदल दिया है। आज राजनीतिक दल अमेरिकी शासन-व्यवस्था के अभिन्न अंग बन गए हैं।

(5) संवैधानिक अभिसमय (Conventions)—ब्रिटेन की भाँति ही अमेरिका में भी सविधान की मौलिक रूपरेखा में विविध रीतियों और परम्पराओं ने इतना परिवर्तन कर दिया है कि बिना उन्हें समझे सविधान को भली प्रकार नहीं समझा जा सकता। कुछ प्रमुख अमेरिकी संवैधानिक अभिसमय निम्नलिखित हैं—

(i) संविधान में दल-प्रणाली की चर्चा नहीं है, किन्तु व्यवहार में दल-प्रणाली इतनी महत्वपूर्ण बन गई है कि उसके अभाव में अमेरिकी शासन-व्यवस्था की अनुपालना ही संभव नहीं है।

(ii) संविधान में राष्ट्रपति के निर्वाचन की अप्रत्यक्ष पद्धति है, किन्तु प्रथाओं ने उसे प्रत्यक्ष निर्वाचन का रूप दे दिया है।

(iii) मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था भी परम्पराओं का ही परिणाम है।

(iv) प्रतिनिधि सदन की प्रक्रिया, स्पीकर की शक्तियाँ, महत्व आदि भी प्रथाओं पर आधारित है।

(v) अभिसमय द्वारा ही यह नियम बन गया है कि प्रतिनिधि-सदन के सदस्य उसी निर्वाचन-क्षेत्र के निवासी हों जहाँ से वे चुनाव लड़ रहे हों।

(vi) वित्त विधेयकों का प्रतिनिधि सभा में प्रस्तावित होना भी प्रथा पर ही आधारित है।

(vii) संचालन समिति (Steering Committee) बहुमत के फ्लोर लीडर तथा कॉकस (Caucus) का विकास भी अभिसमयों द्वारा हुआ है।

(6) संविधियों की व्याख्या (Statutory Elaboration)—संविधान निर्माताओं ने तो केवल संशोधन की रूपरेखा का निर्माण किया था, उन्हें विस्तृत करने का कार्य सरकार के लिए छोड़ दिया था। फलस्वरूप बाद के वर्षों में सरकारी व्याख्याओं ने संविधान को कुछ से कुछ बना दिया है। आज हमें संविधान के पृष्ठों में अमेरिकी शासन प्रणाली का पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं होता। असली बात तो संविधियों की पुस्तकों और प्रशासकीय नियमावली के बड़े-बड़े ग्रन्थों में मिलती है। उदाहरणार्थ, संविधान काँग्रेस की समितियों के बारे में मौन है और आधुनिक विधि-निर्माण प्रक्रिया की विभिन्न बातों के बारे में भी कुछ नहीं कहता। इन सबकी व्यवस्था काँग्रेस द्वारा ही की जाती है। काँग्रेस ने संविधियों द्वारा संविधान का भारी विकास किया है और बीयर्ड (Beard) के शब्दों में, "सर्वोच्च न्यायालय भी यह घोषणा कर चुका है कि वह काँग्रेस द्वारा की गई व्याख्याओं का आदर करेगा तथा उनको तभी अमान्य ठहराएगा जब वे स्पष्ट रूप से बहुत ही गलत हों।"

अमेरिकी संविधान की विशेषताएँ
(Salient Features of the American Constitution)

संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान की मुख्य विशेषताएँ निम्नानुसार है—

(1) लिखित संविधान (Written Constitution)—अमेरिकी संविधान आधुनिक युग का प्राचीनतम लिखित और निर्मित संविधान है। यद्यपि इसमें संशोधन और परिवर्तन होते रहे हैं, तथापि सम्पूर्ण संविधान एक क्रमबद्ध विधान के रूप में है जिसे आधे घण्टे में पढ़ा जा सकता है।

यह एक छोटा प्रलेख है जिसमें शासन के मूल सिद्धान्तों, शासन के विभिन्न अंगों के कार्यों और कार्य-क्षेत्रों, नागरिकों के अधिकारों, आदि को लिपिबद्ध किया गया है। इसका यह आशय नहीं है कि संविधान का अलिखित अंग है ही नहीं। ब्रिटिश संविधान की भाँति इसमें भी परम्पराएँ और अभिसमय उसी रूप में मान्य है जिस रूप में मूल संविधान। मन्त्रिमण्डल की व्यवस्था, सीनेट की सौहार्दता दल-पद्धति तथा राष्ट्रपति का प्रत्यक्ष निर्वाचन आदि के सम्बन्ध में संविधान मौन है।

(2) संक्षिप्त संविधान (Short Constitution)—लिखित होने के साथ ही अमेरिकी संविधान अति संक्षिप्त भी है। इसमें केवल 7 अनुच्छेद हैं। कुल चार हजार शब्दों का यह संविधान दस-बारह पृष्ठों में समाहित है और इसे कोई भी आधे घण्टे में पढ़ सकता है। संविधान इतना संक्षिप्त इसलिए है कि इसमें आधारभूत सिद्धान्तों (Fundamentals) का प्रतिपादन किया गया है और विस्तार की बातों को परम्परा अथवा प्रशासनिक आदेशों द्वारा निर्धारित किए जाने के लिए छोड़ दिया गया है। संविधान-निर्माताओं ने इसे एक 'स्ट्रेट जैकेट' (Strait Jacket) के रूप में तैयार नहीं किया था वरन् उन्होंने केवल उसका ढाँचा तैयार किया था जिसे भावी सन्तानों ने रक्त एवं मांस देकर जीवनदान किया है।

संविधान की इस संक्षिप्तता का प्रभाव हमें कई दिशाओं में स्पष्ट दिखाई देता है—

(i) कानून व परम्पराओं दोनों से ही सांविधानिक ढाँचे का निरूपण होता है जिसमें परम्पराओं का कलेवर कम तथा कानूनों का अधिक है।

(ii) संविधान अनेक बातों के विषय में मौन है। उदाहरणार्थ, बैंकों, बजट-निर्माण, कृषि, श्रम, शिक्षा आदि के सम्बन्ध में संविधान में कोई व्यवस्था नहीं की गई है।

(iii) संक्षिप्तता का प्रभाव संविधान के बाहरी विकास पर पड़ा है जो तीन रूपों में प्रकट हुआ है—(क) संक्षिप्तता के कारण संविधान का महत्व बढ़ गया है क्योंकि जिन विषयों पर यह मौन है उनके बारे में समय-समय पर दिए गए न्यायिक निर्णय संविधान के अंग बन जाते हैं और संविधान का विकास होता रहता है, (ख) इस संक्षिप्तता के फलस्वरूप निहित शक्तियों के सिद्धान्त (Doctrine of Implied Powers) का उदय हो गया है एवं (ग) इस संक्षिप्तता के कारण ही 'लूट-प्रणाली' (Spoil System) का उदय हुआ है। इस प्रणाली का यद्यपि आज भी प्रचलन है तथापि इसका प्रभाव पहले के समान नहीं रहा है।

मुनरो के शब्दों में—"अमेरिकी संविधान में केवल 400 शब्द हैं जिन्हें आधे घण्टों में पढ़ा जा सकता है।"[1] अमेरिकी संविधान की संक्षिप्तता के दो कारण है— (i) इसमें केवल केन्द्रीय सरकार की मूल संरचना का वर्णन है, राज्यों का विवरण राज्य के संविधान पर छोड़ दिया गया है, (ii) इसमें अनेक प्रकरण छोड़ दिए गए हैं जिनकी पूर्ति संविधियों, प्रशासनिक विज्ञप्तियों, न्यायिक निर्णयों व अभिसमयों से होती है।

(3) सुनिर्मित संविधान (Well-Prepared Constitution)—यह पूर्णतया एक निर्मित संविधान है जिसकी रचना एक सभा द्वारा हुई थी जो इसी कार्य के लिए फिलाडेलफिया में 1787 ई. में आमंत्रित की गई थी। यह विकास कांग्रेस के व्यवस्थापन, संविधान के संशोधन और न्यायिक निर्णयों के द्वारा भी होता है।

(4) कठोर संविधान (Rigid Consitution)—संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान कठोर या अचल (Rigid) है। यहाँ संविधान संशोधन की एक विशेष पद्धति है जो जटिल और धीमी है। इस जटिल या कठोर संविधान संशोधन पद्धति के कारण विगत 221 वर्षों में मात्र 27 संविधान संशोधन सम्पन्न हुए हैं। संविधान संशोधन पद्धति का आगे के अध्याय में विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

1. *Munro, W.B.* : The Governments of Europe.

(5) जनता का संविधान (People's Constitution)—अमेरिकी संविधान जनता का अपना संविधान है, इसका स्रोत सार्वजनिक इच्छा है। प्रस्तावना में स्पष्ट शब्दों में घोषित किया गया है कि हम संयुक्त राज्य अमेरिका के नागरिक इस शासन विधान की रचना और स्थापना करते हैं। जब हम अमेरिकी संविधान को जनता का संविधान कहते हैं तो इसका आशय तीन बातों से है—

(i) संविधान के अन्तर्गत जनता को आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त है, अर्थात् वह अपना संविधान बनाने का पूर्ण अधिकार रखती है।

(ii) संविधान में प्रभुता सम्पूर्ण देश की जनता में निहित है।

(iii) सम्प्रभु होने के कारण जनता को शान्तिपूर्ण या अन्य तरीकों से कुछ भी करने का अधिकार है। यदि कोई सरकार अधिनायकवादी आचरण कर संविधान का उल्लंघन करती है तो जनता को विद्रोह करने का अधिकार है।

जहाँ तक तीसरी बात का प्रश्न है, आज बल इस विचार पर दिया जा रहा है कि सरकार को बदलने का कार्य जनता निर्वाचनों के माध्यम से कर सकती है। जनता सिर्फ वैधानिक और शान्तिपूर्ण माँग ही अपना सकती है।

अन्त में, जनता की सर्वोपरिता को कायम रखने के लिए संविधान में यह व्यवस्था की गई है कि कार्यपालिका और व्यवस्थापिका जनता के उत्तरदायी हों। इसीलिए निश्चित समय बाद उन्हें जनादेश प्राप्त करना पड़ता है।

(6) अध्यक्षात्मक कार्यपालिका (Presidential Executive)—अमेरिकी संविधान अध्यक्षात्मक व्यवस्था का आदर्श उदाहरण है। राष्ट्रपति देश का वास्तविक प्रधान है। संघीय राज्यों की समस्त कार्यपालिका शक्ति उसमें निहित है। कार्यपालिका पर व्यवस्थापिका का नियन्त्रण नहीं है। राष्ट्रपति एक निश्चित अवधि के लिए निर्वाचित होता है और अपने कार्य के लिए काँग्रेस के प्रति उत्तरदायी नहीं होता। राष्ट्रपति और उसके मन्त्रिगण काँग्रेस के सदस्य भी नहीं होते। संयुक्त राज्य अमेरिका में एकल कार्यपालिका का सिद्धान्त प्रचलित है।

(7) प्रतिनिधि-सत्तात्मक गणराज्य (Representative Sovereign Republic)—अमेरिकी संविधान की एक अन्य विशेषता है—प्रतिनिध्यात्मक गणराज्य का स्वरूप। प्रतिनिध्यात्मक राज्य में जनता प्रतिनिधियों द्वारा शासन करती है, देश के बड़े आकार के कारण वह प्रत्यक्ष रूप से शासन कार्य में भाग नहीं ले सकती। गणराज्य के अन्तर्गत राज्य का अध्यक्ष 'वंशानुगत राजा नहीं' बल्कि निर्वाचित राष्ट्रपति होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में ये दोनों ही बातें विद्यमान हैं। यहाँ जनता अपने प्रतिनिधियों को चुनती है, जो निश्चित अवधि तक शासन का संचालन करते हैं और साथ ही राष्ट्रपति भी जनता द्वारा निर्वाचित होता है। राज्यों की शासन-प्रणाली भी प्रतिनिध्यात्मक और गणतन्त्रात्मक है। यद्यपि राज्यों के अपने पृथक् संविधान हैं, तथापि संघीय संविधान और राज्यों को गणतन्त्रात्मक शासन का आश्वासन दिया गया है। संविधान में प्रत्येक राज्य को विदेशी आक्रमण, सुरक्षा तथा राज्य के उचित प्राधिकारी द्वारा माँग किए जाने पर आन्तरिक विद्रोह के समय सहायता की गारंटी दी गई है। सम्प्रभुता (Sovereignty) अमेरिकी

जनता में निहित है। सविधान की प्रस्तावना में ही इस सम्प्रभुता का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—"हम, संयुक्त राज्यों के लोग, अधिक शक्तिशाली सघ बनाने.......स्वतन्त्रता के वरदान को सुरक्षित रखने के लिए सयुक्त राज्य अमेरिका के लिए इस सविधान को निर्मित एवं प्रतिष्ठित करते हैं।"

(8) संघीय स्वरूप (Federal Form)—सयुक्त राज्य अमेरिका का सविधान सघात्मक है। प्रारंभ में अमेरिकी सघ में 13 राज्य थे, आज यह सख्या 50 है। केन्द्र और राज्यों की शक्तियाँ सविधान द्वारा निर्धारित की गई हैं। साधारणत. यह सिद्धात अपनाया गया है कि राष्ट्रीय महत्व के विषय सघीय सरकार को और स्थानीय महत्व के विषय राज्यों की सरकारों को सौंपे गए हैं, अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों के पास हैं। आधुनिक काल में संघीय सरकार की शक्तियाँ बढती जा रही हैं। शासन के तीनों अगों में न्यायपालिका सर्वोच्च है। व्यवस्थापिका के उच्च सदन सीनेट में सघ के सभी राज्यों को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त है। सविधान में निर्देश है कि इस व्यवस्था को भग करने वाला कोई भी संशोधन वैध नहीं समझा जाएगा। सशोधन-प्रक्रिया को राज्यों द्वारा प्रस्तावित करने और उसकी पुष्टि करने संबंधी पर्याप्त अधिकार हैं। अन्त में, अमेरिका का सविधान लिखित एवं दुष्परिवर्तनशील है। इस तरह से अमरीकी सविधान में सघात्मक व्यवस्था के सभी तत्व निहित हैं।

(9) न्यायिक सर्वोच्चता (Judicial Supremacy)—अमेरिका के सविधान की एक मुख्य विशेषता न्यायिक सर्वोच्चता का सिद्धान्त है। मुनरो के शब्दों में—"सवैधानिक विवादों के अतिम निर्णायक के रूप में सर्वोच्च न्यायालय का विकास शासन विज्ञान को अमेरिकी लोगों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण देनों में से एक है।"[1] निम्नलिखित रूप से यह सर्वोच्चता उजागर होती है—प्रथम, सर्वोच्च न्यायालय के पास सविधान की व्याख्या करने की महत्वपूर्ण शक्ति है। सविधान के नियमों के बारे में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय अतिम होता है। द्वितीय, सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review) का अधिकार है, जिसके द्वारा वह विधान-मण्डल द्वारा निर्मित किसी भी ऐसे कानून को जो साविधानिक नियमों के विरुद्ध हो और नागरिकों की स्वतन्त्रता तथा उनके अधिकारों पर कुठाराघात करता हो, अवैध घोषित कर सकता है और उन्हें देश में लागू होने से रोक सकता है। इस प्रकार का कोई कानून काँग्रेस द्वारा ही नहीं वरन् यदि राज्यों के विधान-मण्डलों द्वारा भी बनाया गया है या कार्यपालिका द्वारा लागू किया गया है, तो भी उसे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रोका जा सकता है। जस्टिस फ्रैंकफर्टर (Justice Frankfurter) ने तो यहाँ तक कहा है कि—"सर्वोच्च न्यायालय ही सविधान है" (The Supreme Court is the Constitution) अर्थात् जो न्यायाधीश कह दें, वही सविधान है।

(10) मौलिक अधिकारों का समावेश (Including of Fundamental Rights)—अमेरिकी सविधान भारतीय सविधान की भाँति ही जनता को अनेक मौलिक

1. *Munro, W.B.* : The Govt. of U.S.A., p. 574.

अधिकार प्रदान करता है। जनता को भाषण और प्रकाशन की स्वतंत्रता है। शांतिपूर्वक एकत्र होने तथा कष्टों के निवारण के लिए सरकार को याचिका प्रस्तुत करने का अधिकार स्वीकार किया गया है। कोई सरकार बिल ऑफ अटेण्डर (Bill of Attainder) को पास नहीं कर सकती जिसके द्वारा किसी व्यक्ति को बिना मुकदमा चलाए फाँसी दी जा सके। किसी भी व्यक्ति को न तो मनमाने ढंग से बंदी बनाया जा सकता है और न हिरासत में ही लिया जा सकता है। युद्ध अथवा विद्रोह के समय के अतिरिक्त कभी भी बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख (Writ of Habeas Corpus) का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। प्रत्येक अभियुक्त यह माँग कर सकता है कि उस पर निष्पक्ष जूरी द्वारा सार्वजनिक न्यायालय में मुकदमा चलाया जाए। किसी भी व्यक्ति से अत्यधिक जमानत नहीं माँगी जा सकती और न ही कानूनी कार्यवाही के बिना किसी व्यक्ति का जीवन, उसकी स्वतंत्रता और सम्पत्ति से वंचित किया जा सकता है। मूल वंश, वर्ण, लिंग अथवा दासत्व की पूर्व दशाओं के आधार पर किसी व्यक्ति को मताधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति को भ्रमण और व्यवसाय की स्वतंत्रता है तथा समान कानूनी संरक्षण प्राप्त है। यह भी व्यवस्था है कि सरकार बिना उचित मुआवजा दिए किसी नागरिक की व्यक्तिगत सम्पत्ति हस्तगत नहीं कर सकती। जनता को शस्त्र रखने का भी अधिकार है।

संविधान के एक और संशोधन में यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि संविधान के अन्तर्गत मौलिक अधिकारों को समाविष्ट करने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि जनता ने शेष अधिकारों का परित्याग कर दिया है। वास्तव में शेष अधिकार जनता में निहित हैं और उनकी उपेक्षा किसी प्रकार भी नहीं की जा सकती। फिर भी मूल अधिकार असीमित नहीं है। सुरक्षा की दृष्टि से संविधान में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष अनेक ऐसे उपबन्ध हैं जो नागरिक-अधिकारों को सीमित करते हैं। युद्धकाल या शान्ति और सुव्यवस्था के लिए उन्हें प्रतिबन्धित किया जा सकता है।

(11) शक्ति-पृथक्करण तथा नियंत्रण एवं संतुलन की प्रणाली- (Separation of Powers and Checks & Balances System)—अमेरिकी संविधान की एक मुख्य विशेषता शक्ति का पृथक्करण और नियंत्रण व संतुलन की प्रणाली है। संविधान के निर्माता लॉक एवं मॉन्टेस्क्यू (Locke and Montesque) के राजनीतिक सिद्धांतों से अत्यधिक प्रभावित थे। वे इस विचार से सहमत थे कि व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के लिए व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका की शक्तियों का पृथक्करण किया जाए। सराकर के ये तीनों अंग परस्पर स्वतंत्र हों ताकि वे दूसरे की निरंकुशता को रोक सकें अथवा परस्पर नियंत्रण करते हुए सरकार पर संतुलन स्थापित कर सकें। अतः शक्ति-पृथक्करण और परस्पर नियंत्रण तथा संतुलन अमेरिकी शासन-व्यवस्था की मुख्य विशेषता बन गई और संविधान निर्माताओं द्वारा अमेरिकी संविधान में शक्ति-पृथक्करण संबंधी व्यवस्था की गई। तदनुसार काँग्रेस विधि-निर्माण करती है, राष्ट्रपति उसे विधि लागू करता है और सर्वोच्च न्यायालय उन विधियों की सांविधानिकता का अवलोकन करता है। कोई भी विभाग दूसरे विभाग के कार्यों को हस्तांतरित नहीं कर सकता। एक

विभाग अपनी शक्ति को दूसरे विभाग को प्रत्यायोजित (Delegate) अथवा हस्तान्तरित (Transfer) नहीं कर सकता। संविधान के संरक्षक के रूप में देश का सर्वोच्च न्यायालय सदा इस बात के लिए प्रयत्नशील रहता है कि उपर्युक्त मान्यता कायम रहे। फाइनर का कथन है कि "अमेरिका का संविधान जान-बूझकर एवं सप्रयास शक्तियों के पृथक्करण पर एक विस्तृत निबन्ध बनाया गया है। यह संविधान इस सिद्धांत पर चलने वाला विश्व में सर्वाधिक प्रसिद्ध राज्य शासन है।"[1] इस सिद्धान्त ने देश की राजनीतिक व्यवस्था को स्थिरता प्रदान की है, और अध्यक्षात्मक प्रणाली के क्रियान्वयन को सफल बनाया है।

(12) दोहरी नागरिकता (Dual Citizenship)—दोहरी नागरिकता अमरीकी संविधान की महत्वपूर्ण विशेषता है। नागरिक एक ओर तो संयुक्त राज्य अमेरिका का नागरिक है तो दूसरी ओर वह उस राज्य का भी निवासी है, जिसमें वह रहता है। यह दोहरी नागरिकता पृथकतावाद का विकास नहीं करती है।

(13) द्वितीय सदन में राज्यों का समान प्रतिनिधित्व (Equal Participation of States in Second Chamber)—संयुक्त राज्य अमेरिका में व्यवस्थापिका को 'कांग्रेस' कहा जाता है, जिसके 'प्रतिनिधि सभा' (House of Representatives) तथा सीनेट (Senate) नाम से दो सदन हैं। सीनेट द्वितीय सदन (Second Chamber) है। सीनेट में प्रत्येक राज्य से दो सदस्य निर्वाचित किये जाते हैं। इस सदन में सभी राज्यों को समान प्रतिनिधित्व दिया गया है। भौगोलिक आकार तथा जनसंख्या के आधार पर किसी तरह का भेदभाव नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त यह भी अमेरिकी संविधान का एक अनूठा पहलू है कि द्वितीय सदन 'सीनेट' प्रथम सदन 'प्रतिनिधि सभा' की तुलना में अधिक प्रभावशाली है। इसके विपरीत विश्व के अन्य लोकतांत्रिक देशों में द्वितीय सदनों की स्थिति निरंतर कमजोर होती गई।

निष्कर्षत. संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान व्यक्तिवाद, सीमित तथा प्रतिनिधि के सिद्धांत का अनूठा आदर्श प्रस्तुत करता है।

---

1 *Finer* : The Theory and Practice of Modern Govt., p. 29

12

शक्तियों का पृथक्करण तथा नियन्त्रण और सन्तुलन

(The Separation of Powers and Checks and Balance)

संयुक्त राज्य अमेरिका में शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त को अपनाया गया है। यहाँ इस सिद्धान्त को अपनाने का कारण बतलाते हुए जेम्स बैक ने कहा है कि—अमेरिका के संविधान निर्माता प्रशासन की शक्तियों के प्रति अत्यधिक ईर्ष्यालु थे। वे जानते थे कि अधिक शक्तियों को देने से उनके दुरुपयोग की आशंका रहती है।"[1]

प्रसिद्ध संविधानवेत्ता मेडीसन ने भी यही मत व्यक्त करते हुए कहा है कि—"सभी विधायी, कार्यपालिका व न्यायपालिका की शक्तियों का एक ही सत्ता के अधीन कर देना, चाहे वह सत्ता एक, कुछ या अनेक व्यक्तियों में निहित हो और चाहे वह वंशानुगत, स्व-नियुक्त या निर्वाचित हो, उसे वस्तुतः अत्याचार कहा जा सकता है।"[2] जॉन लॉक (John Lock) व मॉण्टेस्क्यू (Montesque) भी शक्तियों के पृथक्करण के समर्थक थे। उन्हीं के विचारों का प्रभाव अमेरिकी संविधान के निर्माताओं पर पड़ा था। मेडीसन ने कहा है—"हम निरन्तर माण्टेस्क्यू की अदृश्य छाया से प्रेरित होते रहे हैं।"[3] फाइनर का मत है कि—"अमेरिका का संविधान जान-बूझकर एवं सप्रयास शक्तियों के पृथक्करण पर एक निबन्ध बनाया गया था। यह संविधान इस सिद्धान्त पर चलने वाला विश्व में सर्वाधिक प्रसिद्ध राज्य-शासन की नीति के रूप में स्वीकृत है।"[4] संयुक्त राज्य अमेरिका के विपरीत ग्रेट ब्रिटेन में शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त को स्थान नहीं दिया गया है। वहाँ 'शक्तियों के सामंजस्य के सिद्धान्त' को अपनाया गया है।

अमरीकी संविधान और शक्ति-पृथक्करण

(American Constitution and Separation of Powers)

संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के प्रथम तीन अनुच्छेदों से शक्ति-पृथक्करण की अवधारणा का परिचय मिलता है, जिसके अनुसार—

(1) अनुच्छेद 1 खण्ड 1 के अनुसार सभी व्यवस्थापन या विधायी शक्तियों के निर्वाह करने का उत्तरदायित्व कांग्रेस का होगा अर्थात् देश-की व्यवस्थापन सम्बन्धी शक्तियाँ कांग्रेस द्वारा प्रयुक्त की जायेंगी।

1. *Beck, J.M* : Constitution of the United States.
2-3. *Medison, J* : The Federalist.
4. *Finer* : The Theory and Practice of Modern Govt., p. 29.

(2) अनुच्छेद 2, खण्ड 1 के अनुसार सभी कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित होंगी, जिसका आशय यह है कि राष्ट्रपति ही सारी कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियों का उपयोग करेगा।

(3) अनुच्छेद 3 खण्ड 1 के अन्तर्गत न्याय सम्बन्धी शक्तियाँ सर्वोच्च न्यायालय तथा अधीनस्थ न्यायालयों को प्रदान की गई हैं अर्थात् न्याय सम्बन्धी सभी शक्तियों के निर्वहन का दायित्व न्यायपालिका को सौंपा गया है।

उपर्युक्त अनुच्छेदों की व्यवस्थाओं की समीक्षा करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका को अलग-अलग शक्तियाँ तथा अधिकार सौंपे गये हैं। संविधान निर्माता चाहते थे कि शासन के उक्त तीनों ही अंग अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में रहकर कार्य करें तथा एक दूसरे के अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं करें। उन्होंने नागरिक स्वतन्त्रताओं को अक्षुण्ण रखने की दृष्टि से ही संविधान में शक्ति पृथक्करण की व्यवस्था को स्थान दिया।

संयुक्त राज्य अमेरिका में व्यवहार में भी शक्ति-पृथक्करण सिद्धांत को अपनाया गया है, जिसके अनुसार शासन के तीनों ही अंगों के निर्वाचन की प्रक्रिया, उनके कार्यकाल तथा उत्तरदायित्व की भिन्नता है, जिनका विस्तृत उल्लेख आगामी अध्यायों में विस्तार से किया जा रहा है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रचलित शक्ति-पृथक्करण कि अवधारणा आलोचना का विषय बनी है। वर्तमान में राज्य की प्रकृति तथा शासन व्यवस्था के स्वरूप को देखते हुए पूर्ण रूप से शक्ति-पृथक्करण के सिद्धात को व्यवहार में अपनाया जाना सम्भव नहीं है। काँग्रेस, राष्ट्रपति तथा न्यायपालिका एक दूसरे के साथ सहयोग करते हैं। फिर भी शक्ति-पृथकरण का सिद्धांत सयुक्त राज्य अमेरिका के सविधान की एक आधारभूत विशेषता है।

नियन्त्रण व संतुलन प्रणाली (Checks & Balance System)—यद्यपि अमेरिकी सविधान-निर्माताओं ने शासन के तीनों विभागों को पृथक् कर दिया, फिर भी उन्हें यह विदित था कि इनके मध्य परस्पर सम्बन्ध तथा सम्पर्क स्थापित करना भी सफल शासन के लिए परमावश्यक है अतः उपर्युक्त शक्ति-विभाजन को व्यावहारिक बनाने के लिए उन्होंने सविधान में नियंत्रण और संतुलन प्रणाली की व्यवस्था की। इसके अनुसार शासन के तीनों अंगों की शक्तियों के लिए ऐसी व्यवस्था कर दी गई कि वे एक-दूसरे पर इस तरह नियंत्रण रखें जिससे शक्ति का सतुलन बना रहे। यदि कोई विभाग कभी अपने उत्तरदायित्व को भुला दे तो दूसरा विभाग उसे सचेत कर कार्य करने के लिए विवश कर दे।

अमेरिका संविधान में नियंत्रण और संतुलन की इस प्रणाली को कुछ उदाहरणों द्वारा भली-भांति समझा जा सकता है। अमेरिकी राष्ट्रपति संसार का सबसे अधिक शक्तिशाली कार्यपालिका अध्यक्ष कहा जाता है, किन्तु उसकी सम्भावित निरंकुशता पर नियंत्रण रखने के लिए कांग्रेस को कुछ अधिकार प्राप्त है। काँग्रेस प्रतिवर्ष देश का बजट स्वीकार करती है और राष्ट्रपति का कर्त्तव्य है कि वह उस स्वीकृत बजट के अनुसार राष्ट्र

के धन का उपयोग करे। राष्ट्रपति सर्वोच्च सेनाध्यक्ष और विदेश नीति का संचालक होने के नाते कभी भी देश को युद्ध में धकेल सकता है, किन्तु संविधान में व्यवस्था है कि राष्ट्रपति द्वारा की गई युद्ध की घोषणा की पुष्टि कांग्रेस द्वारा होनी चाहिए। राष्ट्रपति द्वारा की गई सन्धियाँ भी तभी मान्य होती हैं जब सीनेट दो-तिहाई बहुमत से उनकी पुष्टि कर दे। अन्त में कांग्रेस को यह भी अधिकार है कि वह शक्तियों का दुरुपयोग करने वाले राष्ट्रपति के महाभियोग की कार्यवाही द्वारा हटा दे। भूतपूर्व राष्ट्रपति निक्सन (Nixon) के विरुद्ध वाटरगेट कांड पर कांग्रेस ने कठोर रवैया अपनाया और महाभियोग द्वारा हटाए जाने की स्थिति से बचने के लिए निक्सन ने विवश होकर 1 अगस्त, 1974 को जो त्याग-पत्र दिया वह काँग्रेस की शक्ति का ज्वलन्त प्रमाण था।

परन्तु साथ ही काँग्रेस निरंकुश न बन जाए, इसलिए राष्ट्रपति के हाथों में भी विशेष शक्तियाँ सौंपी गई हैं। काँग्रेस द्वारा पारित विधेयक तभी कानूनी बन सकते हैं जब उन्हें राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हो जाए। राष्ट्रपति को 'निषेधाधिकार' या 'वीटो' की व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं। यद्यपि यह व्यवस्था है कि काँग्रेस अस्वीकृत विधेयक को पुनः दो-तिहाई बहुमत से पारित कर दे तो राष्ट्रपति को उस पर अनिवार्य रूप से स्वीकृति देनी पड़ेगी, तथापि यह एक अति कठिन प्रक्रिया है। विधेयक को दुबारा इतने प्रबल बहुमत से पारित करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। इसके अतिरिक्त काँग्रेस को अपने उन सभी विधेयकों को स्वीकृति के लिए पूर्णतः राष्ट्रपति पर निर्भर रहना पड़ता है जिन्हें वह अपने अधिवेशन के अंतिम 10 दिनों में पारित करती है।

व्यवस्थापिका और कार्यपालिका निरंकुश न हो जावे, इसलिए उन पर न्यायपालिका का नियंत्रण है। सर्वोच्च न्यायालय की पुनरावलोकन की शक्ति बड़ा प्रभावशाली हथियार है। न्यायपालिका अपनी शक्तियों का दुरुपयोग न करे, इसके लिए सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों पर महाभियोग की कार्यवाही का प्रावधान किया गया है।

सारांशतः अमेरिकी संविधान शक्ति-पृथक्करण, नियन्त्रण तथा सन्तुलन प्रणाली का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसकी सफलता में भी इस अवधारणा का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।

13

संशोधन प्रक्रिया

(Amendment Procedure)

अमेरिकी सविधान का पाँचवा अनुच्छेद सशोधन प्रक्रिया का उल्लेख करता है। यह सशोधन प्रक्रिया विशिष्टता लिए हुए है जिसका सारगर्भित विश्लेषण निम्नानुसार किया जा सकता है—

संशोधन प्रक्रिया—सविधान में सशोधन करने के लिए दो विधियाँ हैं जिनमें (i) सशोधन प्रस्तावित किए जाते हैं एव (ii) प्रस्ताव का पुष्टिकरण किया जाता है। पुष्टिकरण के बाद ही सशोधन वैधानिक रूप से मान्य होता है। इन दोनों विधियों का विश्लेषण निम्नानुसार है—

सविधान के सशोधन का प्रस्ताव दो प्रकार से किया जा सकता है—

(1) यदि दोनों सदनों में पृथक्-पृथक् दो-तिहाई बहुमत उसकी आवश्यकता को स्वीकार करता हो तो कांग्रेस स्वयं ही सशोधन का प्रस्ताव कर सकती है।

(2) दो-तिहाई राज्यों की व्यवस्थापिकाएँ भी कांग्रेस से सशोधन के लिए प्रार्थना कर सकती हैं। ऐसा किए जाने पर काग्रेस को इन सशोधनों का प्रस्ताव करने के लिए एक सम्मेलन बुलाना पड़ता है।

सशोधन किसी भी विधि से प्रस्तावित किए गए हों, वे उसी अवस्था में मान्य हो सकते हैं जब निम्नलिखित विधियों में से किसी एक के द्वारा उनकी पुष्टि हो जाए—

(i) तीन-चौथाई राज्यों की व्यवस्थापिकाएँ उनका पुष्टिकरण कर दें, अथवा

(ii) इस उद्देश्य के लिए आमन्त्रित तीन-चौथाई राज्यों का सम्मेलन (Convention) उसकी पुष्टि कर दे।

स्पष्ट है कि संघीय सरकार और राज्य सरकार दोनों ही का सविधान के सशोधन में हाथ रहता है और यह सशोधन-पद्धति सरल भी नहीं है। ग्रिफिथ के शब्दों में—"इस कठोर सविधान ने व्यवहार में आश्चर्यजनक लचीलापन प्रदर्शित किया है।"[1]

पुष्टिकरण सम्बन्धी समय की सीमाएँ—काँग्रेस सशोधन-प्रस्ताव प्रस्तुत करते समय अवधि भी निश्चित कर सकती है कि अमुक अवधि तक यह पूर्ण हो जाए। वर्तमान

1. *Griffith, E.S.* : The American System of Govt., p. 17.

समय में 7 साल की अवधि निश्चित कर दी गई है जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने भी मान लिया है। यदि 7 वर्षों तक कोई सशोधन स्वीकृत न हो सके तो वह समाप्त मान लिया जाता है।

संशोधन की सीमा—सविधान की प्रथम धारा की 9वीं उपधारा के पहले व चौथे उपबन्धों पर किसी संवैधानिक सशोधन का प्रभाव नहीं पड़ सकता। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रत्येक राज्य को सीनेट में दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है और इस सम्बन्ध में भी कोई सशोधन राज्य की इच्छा के विरुद्ध स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त कोई भी राज्य किसी भी विषय पर न तो विरुद्ध राय देंगे और न दो राज्य मिलकर ही कोई बात तय करेंगे जब तक कि उन राज्यों की विधानसभाएँ उनके सम्बन्ध में स्वीकृति न दे दें कि—

(1) संविधान में संशोधन की इस प्रणाली के आधार पर एक व्यक्ति भी संशोधन में रुकावट डाल सकता है। उदाहरण के लिए, यदि सीनेट में 100 में से 85 सदस्य उपस्थित हों, जिनमें से 56 संशोधन के पक्ष में मत दें और 29 उसके विरोध में मत व्यक्त करें तो वह संशोधन सीनेट की दो-तिहाई संख्या द्वारा समर्थित न होने के कारण स्वीकार नहीं समझा जा सकता चाहे प्रतिनिधि-सभा में वह दो-तिहाई मत से पारित हो चुका हो।

(2) संशोधन प्रणाली अत्यन्त मन्थर अथवा धीमी है। यह बड़ी टेढ़ी और लम्बी है। मार्शल के शब्दों में, "संशोधन प्रणाली अत्यधिक कठिन और दुःसाध्य है।"[1] किन्तु संविधान सभा के सदस्य मेडीसन (Medison) ने इसका समर्थन करते हुए कहा है कि—"अमरीका में संविधान के संशोधन की विधि उस अत्यधिक सरलता के विरुद्ध भी सचेत है जिसके कारण संविधान को अत्यधिक सरलता से नष्ट किया जा सकता है और इस कठिनाई के विरुद्ध भी सचेत है जिसके कारण जाने हुए दोष भी दूर न किए जा सकें।"

(3) यह बहुमत शासन की निरंकुशता का प्रतीक है। संशोधन के प्रस्ताव के सम्बन्ध में 34 सीनेटर दोनों सदनों के बहुमत को रद्द कर सकते हैं। इसी प्रकार 13 राज्य किसी भी संशोधन को कानून बनने से रोक सकते हैं चाहे उसे सारा देश चाहता हो।

(4) संशोधन-प्रणाली में संशोधन की पुष्टि के लिए 7 वर्ष की अवधि बड़ी लम्बी है और संशोधन में होने वाली यह अनिश्चित देरी उसकी उपयोगिता को समाप्त कर देती है।

(5) यदि कोई संशोधन इतनी कठिनाइयों के बाद पारित भी हो जाए तो उसका भाग्य सर्वोच्च न्यायालय पर निर्भर करता है। अगर सर्वोच्च न्यायालय उस संविधान संशोधन को अवैध घोषित कर दे तो वह निरस्त समझा जाता है।

1. *Marshall, G.*: Constitutional Theory.

संविधान में अब तक हुए संशोधनों पर एक दृष्टि

(The Amendments so far made in the American Constitution)

अमेरिकी संविधान व्यवहार में बहुत अनमनीय सिद्ध हुआ है और पिछले लगभग 190 वर्षों में केवल 27 संशोधन हुए हैं। संशोधनों का सार-संक्षेप निम्नानुसार है—

(1) प्रथम 10 संशोधन नागरिकों के मौलिक अधिकारों को सूचीबद्ध करते हैं। फिलाडेलफिया सम्मेलन में निर्मित संविधान के मूल प्रलेख में नागरिकों के मौलिक अधिकारों की व्यवस्था नहीं की गई थी, लेकिन जॉर्ज वाशिंगटन और मेडीसन ने आश्वासन दिया कि संविधान-स्वीकृत हो जाने पर शीघ्र ही संशोधन द्वारा इन अधिकारों को संवैधानिक मान्यता दे दी जाएगी। अतः संविधान में 1791 में प्रथम 10 संशोधनों द्वारा मौलिक अधिकारों को अपनाया गया इन संशोधनों के आधार पर ही राज्यों द्वारा संविधान की पुष्टि की गई, अतः इन्हें संविधान का मूल अंग ही समझा जाना चाहिए।

(2) 11वें संशोधन द्वारा किसी राज्य के विरुद्ध नागरिकों द्वारा अभियोग चलाने के अधिकार को समाप्त कर दिया गया और 12वें संशोधन द्वारा राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति के अलग-अलग चुनाव की व्यवस्था की गई।

(3) 13, 14 और 15 वें संशोधन गृह-युद्ध के फलस्वरूप सामने आए। 13वें संशोधन द्वारा दास-प्रथा का अन्त किया गया। 14वें संशोधन में नागरिकता को परिभाषित किया गया और यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि राजद्रोह अथवा अन्य किसी भीषण अपराध को छोड़कर किसी अन्य सामान्य अपराध पर व्यक्ति को नागरिकता से वंचित नहीं किया जाएगा। 15वें संशोधन द्वारा जाति, वर्ण, दासता आदि के अपराध पर किसी को नागरिकता से वंचित न करने की व्यवस्था की गई।

(4) 16वें संशोधन के अनुसार सीनेट को आयकर लगाने का अधिकार दिया गया, 17वें संशोधन द्वारा सीनेट का प्रत्यक्ष निर्वाचन निश्चित हुआ, 18वें संशोधन द्वारा राष्ट्रीय मद्य-निषेध किया गया, 19वें संशोधन के अनुसार स्त्रियों को मताधिकार दिया गया, और 20वें संशोधन द्वारा राष्ट्रीय मद्य-निषेध को, जो 18वें संशोधन द्वारा लागू कर दिया गया था, समाप्त कर दिया गया। 21वें संशोधन द्वारा राष्ट्रपति के पद-ग्रहण की तिथि 20 जनवरी निश्चित की गई।

(5) 1951 के 22वें संशोधन द्वारा राष्ट्रपति-पद के सम्बन्ध में रूजवेल्ट द्वारा तोड़ी गई परम्परा को अनुचित ठहराकर यह निश्चित कर दिया गया कि कोई व्यक्ति राष्ट्रपति-पद के लिए दो से अधिक बार उम्मीदवार नहीं बन सकता। राष्ट्रपति का कार्यकाल 10 वर्ष से अधिक नहीं हो सकता।

(6) 1961 में 23वाँ संशोधन पारित हुआ जिसके द्वारा कोलम्बिया जिले को-अर्थात् राजधानी वाशिंगटन के निवासियों को राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लेने का सर्वप्रथम अवसर प्रदान किया गया। 1964 में 24वें संशोधन द्वारा मतदान-कर (Poll-Tax) की प्रथा का अन्त कर दिया गया। 1967 में 25वाँ संशोधन पारित कर राष्ट्रपति के शारीरिक या मानसिक रूप से अपना कार्य न कर सकने की अवस्था में कार्यकारी राष्ट्रपति के पद

की व्यवस्था की गई तथा राष्ट्रपति के मध्यावधि निर्वाचन का नियम निर्धारित किया गया। इस संशोधन से पूर्व तक स्थिति यह थी कि राष्ट्रपति की अस्वस्थता और मृत्यु के कारण जब उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता रहता था या उपराष्ट्रपति की अस्वस्थता, मृत्यु या त्याग-पत्र के कारण यह पद रिक्त हो जाता था तो दोनो ही दशाओं मे उपराष्ट्रपति का पद अगले उपराष्ट्रपति का चुनाव होने तक रिक्त रहता था। 25वें संशोधन द्वारा यह व्यवस्था कर दी गई कि राष्ट्रपति-पद पर कार्य करने वाले व्यक्ति को यह अधिकार होगा कि वह किसी को उपराष्ट्रपति पद पर नियुक्त कर दे। जब उपराष्ट्रपति एग्न्यू (Agnue) ने 10 अक्तूबर, 1973 को, अपने कार्यकाल से पूर्व ही, त्याग-पत्र दे दिया तो तत्कालीन राष्ट्रपति निक्सन (Nixon) ने संविधान के इसी 25वें संशोधन के अधीन जेराल्ड फोर्ड को उपराष्ट्रपति नियुक्त किया।

(7) 1970 में 'मतदान अधिकार अधिनियम' के आधार पर संविधान में 26वाँ संशोधन किया जिसके अनुसार 18 वर्ष की आयु प्राप्त स्त्री-पुरुष को मताधिकार प्रदान किया गया। इस संशोधन से पूर्व 21 वर्ष की आयु प्राप्त स्त्री-पुरुष को मतदान-अधिकार प्राप्त था। 26वें संशोधन द्वारा मतदाता सूची में नाम पंजीकृत कराने के लिए साक्षरता-परीक्षा का प्रतिबन्ध हटा दिया गया। इस प्रतिबन्ध को हटाने का मूल उद्देश्य नीग्रो (Negro) लोगों का भी मताधिकार प्राप्त कराना था।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संविधान संशोधनों ने नागरिकों के मूल-अधिकारों के संरक्षण करने की दिशा में अहम भूमिका का निर्वाह किया है।

अधिकार-पत्र

(Bill of Rights)

संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में उल्लिखित 'अधिकार पत्र' (Bill of Rights) की व्यवस्था नागरिकों के मूल अधिकारों अथवा नागरिक स्वतन्त्रताओं का प्रतीक बन गई है। संयुक्त राज्य अमेरिका में इन मौलिक अधिकारों की व्यवस्था को ही अधिकार-पत्र की संज्ञा दी जाती है।

अधिकार-पत्र का अर्थ (Meaning of Bill of Rights)—फिलाडेलफिया सम्मेलन द्वारा निर्मित अमेरिकी संविधान के मूल प्रलेख में नागरिकों के मूल अधिकारों (Fundamental Rights) का प्रावधान नहीं किया गया था, किन्तु संविधान ने अनुसमर्थन हेतु विभिन्न पक्षों के मध्य जो समझौता हुआ, उस समझौते के अभिन्न अंग के रूप में संविधान में 1791 में प्रथम 10 संशोधन करते हुए मौलिक अधिकारों को स्वीकार किया गया था। संविधान का 13वाँ, 14वाँ व 15वाँ संशोधन भी मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित था। प्रथम दस संशोधनों में निहित मौलिक अधिकारों को 'अधिकार-पत्र' की संज्ञा दी जाती है। कैली व हारबिन्सन का कथन है—"यह स्मरणीय है कि संविधान के अनुसमर्थन के सन्दर्भ में हुए वाद-विवाद के मध्य यह अनुसमर्थन अनेक राज्यों में इस वायदे के आधार पर प्राप्त हुआ है कि संवैधानिक संशोधनों की शृखला में अधिकार-पत्र अन्तर्निहित कर लिया जायेगा।"[1]

4 जुलाई, 1776 की 'अमेरिकी स्वतन्त्रता की घोषणा' में यह स्पष्ट कहा गया था कि—"सभी व्यक्तियों को समान उत्पन्न किया गया है... सृष्टिकर्ता ने उन्हें कुछ अपरिहार्य अधिकार प्रदान किये हैं। इनमें से कुछ हैं—जीवन, स्वतन्त्रता और सुख की खोज।... इन अधिकारों का सुरक्षित रखने हेतु ही व्यक्तियों में सरकार की स्थापना की जाती है।"[2] अमेरिकी संविधान-निर्माताओं ने नागरिकों के अधिकारों हेतु संविधान में उपर्युक्त प्रावधान ही पर्याप्त समझा। इसलिए संविधान के मूल प्रलेख में पृथक् से मौलिक अधिकारों का उल्लेख नहीं किया गया, किन्तु कुछ व्यक्तियों—मेडीसन (Medison), गैरी (Gerry), थॉमस टुकर (Thomas Tucker) आदि व्यक्तियों ने संविधान के संशोधनों का पक्ष लिया तथा कुछ व्यक्ति—फिशर अमेस (Fisher Ames) व रोजर शर्मन (Roger Sherman) ने इसका विरोध किया। अन्त में कुछ संशोधनों पर सहमति प्राप्त हो गई।

1. *Kelly, A.H. & Harbinson, W.A.* : The American Constitution, p. 174.
2. American Declaration of Independence—4th July, 1774

अमेरिकी संविधान में निहित नागरिकों के मौलिक अधिकार
(Provision of Fundamental or Civic Rights inherent in the Constitution of U.S.A.)

प्रशासन पर नियन्त्रण करने व नागरिकों की स्वतन्त्रता की रक्षा के उपाय के रूप में अमेरिकी संविधान में विभिन्न संविधान संशोधनों (Amendments) द्वारा मौलिक अधिकारों को अपनाया गया, जिनका वर्णन निम्नानुसार किया जा सकता है—

(1) प्रथम संशोधन द्वारा धर्म, भाषण, प्रेस व आवेदन-पत्र देने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई।

(2) दूसरे संशोधन द्वारा नागरिकों को शस्त्र रखने और धारण करने का अधिकार दिया गया।

(3) तीसरे संशोधन द्वारा शान्तिकाल में किसी मकान में उसके मालिक की अनुमति बिना कोई भी सैनिक प्रवेश नहीं कर सकता, किन्तु युद्धकाल विधि द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के आधार पर ऐसा किया जा सकता है।

(4) चौथे संशोधन द्वारा व्यक्तियों को स्वयं की, अपने मकान व सामान की अनुचित तलाशी और अधिकृत किए जाने से स्वतन्त्रता दी गई।

(5) पाँचवें से आठवें संशोधनों द्वारा व्यक्ति स्वातन्त्र्य, निष्पक्ष न्याय एवं सम्पत्ति के अधिकार की व्यवस्था की गई। पाँचवें संशोधन के अनुसार उचित कानूनी प्रक्रिया के अभाव में किसी के जीवन व सम्पत्ति का अपहरण नहीं किया जा सकता। बिना मुआवजा दिये सम्पत्ति हस्तगत नहीं हो सकती। एक अपराध हेतु एक बार ही दण्ड दिया जा सकता है तथा स्वयं के विरुद्ध किसी व्यक्ति को साक्षी देने हेतु बाध्य नहीं किया जा सकता।

(6) छठे संशोधन के अनुसार सभी फौजदारी अभियुक्तों को तुरन्त न्यायिक कार्यवाही का अधिकार होगा।

(7) सातवें संशोधन द्वारा 20 डालर से अधिक मूल्य के दीवानी मामलों में जूरी की माँग व वकील की सहायता प्राप्त करने का अधिकार होगा।

(8) आठवें संशोधन के अनुसार व्यक्तियों को अत्यधिक जमानत, जुर्माने या कठोर दण्ड से सुरक्षा मिलेगी।

(9) नवें सशोधन द्वारा वर्तमान में प्राप्त अन्य अधिकारों को सुरक्षित रखा गया है।

(10) दसवें संशोधन द्वारा जो शक्तियाँ अमेरिकी सरकार को नहीं दी गई हैं व राज्यों को निषिद्ध नहीं की गई हैं, वे राज्यों की जनता के लिए सुरक्षित रहेंगी।

(11) तेरहवें संशोधन के अनुसार दासता (Slavery) का निषेध किया गया है।

(12) चौदहवें संशोधन के अनुसार सभी को कानून का समान संरक्षण प्राप्त होगा।

(13) पन्द्रहवें संशोधन द्वारा रंग व जाति अथवा प्राचीन दासत्व के भेद के आधार पर किसी व्यक्ति को नागरिक अधिकारों व मताधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता।

उपर्युक्त अधिकारों से स्पष्ट होता है कि एक सभ्य राष्ट्र के अनुकूल अमेरिकी जनता को अच्छा जीवन व्यतीत करने के लिए विविध अधिकार प्रदान किये गये हैं। किन्तु मुनरो के अनुसार—"संविधान द्वारा प्रदत्त ये अधिकार असीमित (Unlimited) नहीं हैं।"[1]

नागरिक अधिकारों की प्रमुख विशेषताएँ

(Salient Features of Civic Rights)

नागरिक अधिकारों की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

(1) मूल संविधान-प्रलेख में प्रावधान नहीं (No Provision in the Original Constitutional Document)—अमेरिका के मूल संविधान-प्रलेख में अधिकार-पत्र या मौलिक अधिकारों का उल्लेख नहीं हैं, किन्तु संविधान के अनुमोदन के पूर्व संघवादी (Federalist) संविधान-सभा के सदस्यों व राज्यों के दबाव से प्रथम दस संविधान संशोधनों के रूप में 'अधिकार-पत्र' को संविधान का अंग मान लिया गया है। इस अधिकार-पत्र में 13वें, 14वें, 15वें और 19वें संशोधनों को भी सम्मिलित कर लिया गया है। इस प्रकार यत्र-तत्र बिखरे हुए नागरिक-अधिकारों को संवैधानिक संरक्षण प्रदान किया गया है।

(2) अधिकार-पत्र में उल्लिखित अधिकार लोगों को अभिसमयों द्वारा प्राप्त अधिकारों से वंचित नहीं करते (Rights Mentioned in the Bill of Rights do not deprive the People of their rights enjoyed by Conventions)—नवें संशोधन में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि पूर्व में प्राप्त नागरिक अधिकारों (जिनका उल्लेख 'अधिकार-पत्र अर्थात् संविधान-संशोधनों) से नागरिकों को वंचित नहीं किया जा सकता।

(3) अधिकारों, विशेषाधिकारों एवं उन्मुक्तियों का न्यायालय द्वारा संरक्षण (Safeguard of Rights, Special Privileges and Immunities by the Court)—न्यायालय द्वारा नागरिकों के अधिकारों, विशेषाधिकारों व उन्मुक्तियों को संरक्षित किया गया है जिनका उल्लेख संविधान में किया गया है। पूर्व-वर्णित नागरिक अधिकारों के अतिरिक्त निम्नांकित विशेषाधिकारों व उन्मुक्तियों का उपभोग अमेरिकी नागरिक करते हैं—

(i) विदेशों एवं महासागरों में सरकारी संरक्षण,

(ii) संघ के पदों हेतु चुनाव में प्रत्याशी होने व मतदान करने का संरक्षण,

(iii) सन्धियों में निर्धारित अधिकारों व लाभों का उपभोग करना,

(iv) सभा का शान्तिपूर्ण आयोजन का अधिकार,

(v) अभाव-अभियोग को दूर कराने हेतु प्रार्थना-पत्र देने का अधिकार।

(4) उदारवादी प्रकृति (Liberal Nature)—संयुक्त राज्य अमेरिका में नागरिकों को अपने अधिकारों के उपयोग करने में सरकार अनुचित हस्तक्षेप नहीं करती क्योंकि नागरिक अधिकारों की प्रकृति उदारवादी है। अधिनायकवादी देशों की तरह ये कठोर व निषेधकारी नहीं हैं।

(5) न्यायालय का संरक्षण (Protection by Courts)—कार्यपालिका की निरंकुशता से नागरिक अधिकारों की रक्षा करने हेतु न्यायालय संरक्षण प्रदान करते हैं।

---

1. *Munro, W.B.* : The National Govt. of the United States. "No Right conferred by either National or State Constitution is unlimited."

अगर कार्यपालिका का कोई भी कृत्य नागरिक अधिकारों के प्रतिकूल है तो उसे अवैध घोषित किया जा सकता है।

(6) अधिकार सीमित (Limited Rights)—नागरिक अधिकारों को सीमित व मर्यादित किया गया है। ताकि कोई भी नागरिक अपने अधिकारों का दुरुपयोग न कर सके। अतः अधिकार सापेक्ष (Relative) है, असीमित (Unlimited) नहीं हैं। न्यायिक-निर्णयों में इस सत्य को उजागर किया गया है।

(7) कर्त्तव्यों का उल्लेख नहीं (No Mention of Duties)—संविधान में अधिकारों के साथ नागरिकों के कर्त्तव्यों का उल्लेख नहीं किया गया है। कर्त्तव्यों को अधिकारों में निहित ही माना गया है और नागरिकों से यह अपेक्षा की गई है कि अधिकारों के संरक्षण के लिए वे अपने कर्त्तव्यों का भी उचित रूप में पालन करेंगे।

(8) अनिश्चितता एवं जटिलता (Indefiniteness of Complexities)—अधिकारों में निश्चितता एवं स्पष्टता के अभाव मे वे काफी अनिश्चित व जटिल बन गए हैं। अतः न्यायालयों के स्पष्टीकरण द्वारा ही उनकी सही व्याख्या होती हैं।

(9) इनके निर्माण पर रोक (Check on their Formulation)— संविधान में प्रावधान है कि "काँग्रेस या राज्य सरकारें इस प्रकार के कानून का निर्माण नहीं करेंगी।" अतः अधिकार सम्बन्धी कोई भी कानून संघ या राज्य सरकारें नहीं बना सकती हैं। केवल न्यायालय ही अधिकारों का स्पष्टीकरण कर सकते हैं।

(10) अधिकारों का आधार : संघ व राज्यों के संविधान (Basis of Rights : Federal and State Constitution)—अमेरिका में नागरिकों अधिकारों का दोहरा आधार है—संघ व राज्यों के संविधान। केवल संघीय संविधान अथवा संविधान और अभिसमय. (Conventions) नहीं।

(11) राष्ट्रीय स्वरूप (National Form)—अधिकारों को अब राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया जा रहा है। गृह-युद्ध 1861-65 के पूर्व केवल केन्द्रीय सरकार ही प्रतिबन्धित थी तथा राज्य सरकारें नागरिकों पर प्रतिबन्ध लगाने हेतु स्वतन्त्र थीं, किन्तु गृह-युद्ध के बाद 13वें व 14वें संशोधनों द्वारा राज्य सरकारों के ये अधिकार निरस्त कर दिए गए हैं।

(12) अधिकारों को निलम्बित करने हेतु औपचारिकता का अभाव (Lack of Formalities for Suspending Rights)—भारत की भाँति अमेरिका में संकटकाल के समय नागरिक-अधिकारों को निलम्बित करने का प्रावधान नहीं है। यद्यपि युद्ध या आन्तरिक अशान्ति की स्थिति में इन अधिकारों को स्थगित किया गया है, किन्तु अमेरिकी संविधान में इसके कोई औपचारिक प्रक्रिया निर्धारित नहीं की गई है। केवल न्यायालय ही इसके लिए अधिकृत हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अमेरिका में नागरिक अधिकार यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं। अधिकारों की प्रकृति उदारवादी और सापेक्षता लिए हुए है, जिसके कारण इनका स्वरूप बहुत व्यापक हो गया है। अधिकारों की व्याख्या और इनके संरक्षण करने में न्यायपालिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

15

संघवाद
(Federalism)

संयुक्त राज्य अमेरिका को एक ऐसी आदर्श संघवादी शासन-व्यवस्था का प्रतीक माना जाता है, जिसने विश्व के अन्य देशों की संघात्मक व्यवस्थाओं को प्रभावित किया। 1787 ई. से अब तक जितने भी संघात्मक संविधान बने हैं, उन्हें अमेरिकी संविधान से बहुत-कुछ प्रेरणा और पथ-प्रदर्शन प्राप्त हुआ है। इस सम्बन्ध में के. सी. ह्वीयर का यह कथन उल्लेखनीय है कि "अमेरिकी संविधान में कहीं पर भी 'संघीय' (Federal) या 'संघ' (Federation) शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है, लेकिन फिर भी इसे संघीय संविधान कहा जाता है और वर्तमान समय में सभी व्यक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका को संघीय शासन का एक आदर्श उदाहरण मानते हैं।"

अमेरिका में संघीय व्यवस्था अपनाए जाने के कारण
(Why Federal System in the U.S.A.?)

अमेरिका द्वारा संघीय-व्यवस्था अपनाए जाने के भी निम्नांकित कुछ विशेष कारण थे—[1]

(i) वर्तमान संविधान के निर्माण के पूर्व ही अमेरिका महाद्वीप में अनेक उपनिवेश अलग-अलग राज्यों के रूप में विद्यमान थे जिनमें अपने पृथक् अस्तित्व के प्रति मोह था, लेकिन तत्कालीन परिस्थितियों की माँग थी कि विविध राज्य अलग-अलग रहते हुए भी एक हों। ऐसा न होने पर उनका अस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता था। चूँकि ये दोनों बातें संघात्मक शासन व्यवस्था में पूरी हो सकती थीं, अतः अमेरिकी संविधान-निर्माताओं और अमेरिका की जनता ने यही उचित समझा कि संघीय व्यवस्था अपनाई जाए।

(ii) उस समय आजकल की भाँति आवागमन व सन्देशवाहन के साधन विकसित न थे। अतः तात्कालिक परिस्थितियों में देश के क्षेत्रफल की विशालता के कारण अमेरिकावासियों ने संघीय व्यवस्था को अपनाना आवश्यक समझा।

(iii) तत्कालीन राजनीतिक दलों का स्वरूप विकेन्द्रित अधिक था। वे राष्ट्रीय व केन्द्रीकृत कम और वे केन्द्र की अपेक्षा राज्यों को शक्तिशाली बनाए रखने के पक्ष में थे, अतः यह स्वाभाविक था कि देश की शासन-व्यवस्था का रूप संघात्मक हो।

(iv) संविधान-निर्माता व्यक्तिगत अधिकारों और व्यक्तिगत सम्पत्ति के प्रबल समर्थक थे और संघात्मक व्यवस्था ही इनकी रक्षा का सक्षम साधन था, क्योंकि यह

1. *Burns & Peltason* : Government by the People, p. 83.

राष्ट्रीय और राज्य-सरकारों के बीच शक्ति के विभाजन द्वारा दोहरी सुरक्षा प्रदान करती हैं।

(v) संयुक्त राज्य अमेरिका का विशाल आकार और 50 राज्यो का अस्तित्व भी सघात्मक व्यवस्था के लिए उत्तरदायी रहा।

इन सभी कारणों का यह सम्मिलित प्रभाव हुआ कि अमेरिकी जनता ने सम्पूर्ण देश के लिए संघात्मक शासन-व्यवस्था को ही उचित समझा। प्रारम्भ में अमरीकी सघ में जहाँ केवल 13 थे वहाँ अब 50 राज्य हो गए हैं।

अमेरिकी संघीय व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ
(Main Features of American Federal System)

संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में कहीं पर सघीय (Federal) या 'संघ' (Federation) शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है, लेकिन उसमें संघीय शासन के सभी तत्वो का समावेश हुआ है, जिनका विश्लेषण निम्नानुसार किया जा सकता है—

(1) राज्यों की स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय एकता का सामंजस्य
(Correlation of the Independence of States & National Unity)

अमेरिका महाद्वीप में वर्तमान संविधान बनने से पहले अनेक उपनिवेश विद्यमान थे। सुरक्षा की दृष्टि से वे संघ के रूप में एक होकर भी अपने पृथक् अस्तित्व को कायम रखना चाहते थे। इसके फलस्वरूप संयुक्त राज्य का जो संघ बना उसमें आज भी राज्यों की स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय एकता सामंजस्यपूर्ण रूप से विद्यमान है।

(2) प्रभुत्व शक्ति का दोहरा प्रयोग (Dual Application of Sovereign Power)

यद्यपि सम्प्रभुता अविभाज्य है, तथापि उसकी अभिव्यक्ति एक से अधिक केन्द्रों द्वारा हो सकती है। संघात्मक शासन-व्यवस्था में सम्प्रभुता की अभिव्यक्ति केन्द्रीय सरकार और इकाई-सरकारों (राज्य सरकारों) द्वारा होती है। अमेरिकी संविधान में प्रभुत्व शक्ति के दोहरे प्रयोग की व्यवस्था है—केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार अर्थात् दोनों को ही संवैधानिक मान्यता प्राप्त है और दोनों सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में कार्य करने के लिए स्वतन्त्र हैं। अमेरिकी संविधान एक सतत् संघीय संविधान है जिसका संघात्मक रूप समाप्त नहीं किया जा सकता, किसी भी राज्य के अस्तित्व को मिटाया नहीं जा सकता। दोनों सरकारों के अपने पृथक् शासन यन्त्र हैं। प्रत्येक राज्य का अपना संविधान है उसमें केवल यह शर्त है कि सरकार का स्वरूप गणतन्त्रात्मक और राज्य का संघीय संविधान की व्यवस्थाओं के अनुरूप हो। यह व्यवस्था 'आदर्श संघ' के अनुरूप है कि केन्द्रीय और राज्य सरकारें अपने अस्तित्व के लिए एक-दूसरे पर नहीं बल्कि संविधान पर आश्रित हैं।

(3) शक्तियों का विभाजन (Separation of Powers)

शक्तियों के विभाजन की व्याख्या पृथक् से अध्याय संख्या 2 में की गई है। केन्द्र और राज्य-सरकारों के मध्य शक्ति विभाजन की संकुचित व्यवस्था है जिसमें केन्द्रीय अथवा सघीय सरकार की स्थिति अधिक महत्त्वपूर्ण है और शक्तिसम्पन्न है।

शक्ति विभाजन के आधार—अमेरिकी संविधान द्वारा शक्तियों का विभाजन निम्नलिखित आधारों पर हुआ है—

(i) संघ-सरकार की अनेक महत्त्वपूर्ण शक्तियों का स्पष्ट रूप से संविधान में उल्लेख किया गया है, (ii) संघ-सरकार को कुछ निहित शक्तियाँ (Implied Powers) भी प्राप्त हैं, (iii) कुछ शक्तियाँ राज्यों के लिए आरक्षित (Reserved) हैं, (iv) कुछ शक्तियाँ समवर्ती (Concurrent) हैं, अर्थात् उनका प्रयोग संघीय एवं राज्य सरकारें दोनों ही कर सकती हैं, (v) कुछ शक्तियों का संघ सरकार के लिए निषेध है एवं (vi) कुछ शक्तियों का राज्य-सरकारों के लिए निषेध है।

उपर्युक्त शक्ति विभाजन करते समय संयुक्त राज्य अमेरिका में गणना व अवशेष के सिद्धान्त (Principle of Enumeration and Residium) का सहारा लिया गया है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत केन्द्र और राज्य सरकारों में से किसी एक की शक्तियों की गणना करके उन्हें निश्चित कर दिया जाता है और अवशिष्ट शक्तियों को दूसरे पक्ष की समझा जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में केन्द्रीय सरकार के अधिकार निश्चित कर दिए गए हैं और अवशिष्ट या शेष शक्तियाँ राज्यों को प्राप्त हैं। शक्तियों के विभाजन से सम्बन्धित व्यवस्था संविधान में दसवें संशोधन द्वारा की गई है जिसमें कहा गया है कि "वे सब शक्तियाँ जो संविधान द्वारा संयुक्त राज्य (संघ) को प्रदान न की गई हों और जिनका उसके द्वारा राज्यों के लिए निषेध न किया गया हो, क्रमशः राज्यों के लिए अथवा जनता के लिए सुरक्षित हैं।" इस संशोधन की शब्दावली से स्पष्ट होता है कि केन्द्रीय सरकार की शक्तियाँ 'प्रदत्त' हैं जबकि राज्य सरकार और जनता की शक्तियाँ 'मौलिक'। लेकिन कालान्तर में संविधान का विकास हुआ उसमें मौलिक और प्रदत्त शक्तियों के इस अन्तर का पहले जैसा महत्त्व नहीं रह गया है।

केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों में शक्तियों का विभाजन संविधान के अनुच्छेद 1 की 8वीं और 10वीं उपधाराओं में किया गया है।

केन्द्रीय सरकार की शक्तियाँ (Powers of Central Government)—संविधान के प्रथम अनुच्छेद की 8वीं उपधारा में कांग्रेस, अर्थात् केन्द्रीय सरकार को जो शक्तियाँ प्रदान की गई हैं वे राष्ट्रीय महत्त्व की हैं। ये शक्तियाँ निम्नानुसार हैं—

(1) "विविध प्रकार के कर लगाना और मुद्रा एकत्रित करना, ऋण चुकाना, संयुक्त राज्य की सुरक्षा और सार्वजनिक हित साधन का प्रबन्ध करना।

(2) संयुक्त राज्य की सम्पत्ति के आधार पर ऋण लेना।

(3) विदेशी राष्ट्रों से उपराष्ट्रों के बीच व मूल निवासियों के व्यापार सम्बन्धी नियम बनाना।

(4) नागरिकता प्रदान करने व दिवालिया निश्चित करने वाले एक समान नियम व अधिनियम सारे संयुक्त राज्य के लिए बनाना।

(5) मुद्रा-निर्माण, उसका मूल्य स्थिर करना, विदेशी मुद्रा का मूल्य स्थिर करना और माप-तौल स्थिर करना।

(6) संयुक्त राज्य से नकली प्रचलित मुद्रा व ऋण के प्रमाण-पत्रों के लिए दण्ड का विधान करना।

(7) डाकघर स्थापित करना और डाक मार्ग स्थापित करना।

(8) उपयोगी कला व विज्ञान की उन्नति करना, सर्वोच्च न्यायालय के छोटे संघ न्यायालय स्थापित करना।

(9) समुद्री लूटपाट रोकने की व्यवस्था करना व उसके लिए दण्ड का विधान करना, अन्तर्राष्ट्रीय अधिनियम के विरुद्ध किए गए अपराधों के लिए दण्ड देना।

(10) युद्ध की घोषणा करना, बदला लेने के लिए आज्ञा-पत्र देना और युद्ध में प्राप्त सम्पत्ति के सम्बन्ध में नियम बनाना।

(11) सेना एकत्रित करना व प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।

(12) जल-सेना संगठित कर उसका संपोषण करना।

(13) स्थल-सेना व जल-सेना के शासन व नियमन सम्बन्धी नियम बनाना।

(14) संघ के अधिनियम को कार्यान्वित करने के लिए, विद्रोह को दबाने के लिए और आक्रमण से रक्षा के लिए सेना बुलाने का आयोजन करना।

(15) संघीय जिलों का निर्माण करना और सार्वजनिक हित के आवश्यक कार्यों के लिए भवन-निर्माण हेतु भूमि प्राप्त करना, इस शक्ति के आधार पर कोलम्बिया जिले का निर्माण किया गया और उसे 'वाशिंगटन (Washington) का नाम देकर अमेरिका की राजधानी बना दिया गया।

उपर्युक्त शक्तियों के अतिरिक्त कांग्रेस को संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियों एवं अन्य शक्तियों के संचालन के लिए सभी प्रकार के आवश्यक व उचित कानून बनाने की शक्ति भी प्राप्त है।[1] यही 'निहित शक्तियों के सिद्धान्त' (Theory of Implied Powers) का आधार है।

केन्द्रीय सरकार के लिए निषिद्ध शक्तियाँ (Powers Forbidden to Central Govt.)—संविधान के प्रथम अनुच्छेद की 9वीं धारा में नकारात्मक प्रतिबन्ध लगाकर कांग्रेस की शक्तियाँ सीमित कर दी गई हैं, यथा (1) जब तक वास्तव में विद्रोह या आक्रमण न हुआ हो, काँग्रेस अपराधी को न्यायालय में उपस्थित किए जाने या बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus) का आदेश दिलवाने की सुविधा स्थगित नहीं कर सकती, (2) वह कोई 'गतानुदर्शी अधिनियम' (Expost Facto Law) अर्थात् व्यतीत हुए समय के लिए विधि नहीं बना सकती, (3) वह उपाधियाँ (Title of Nobility) प्रदान नहीं कर सकती।

1887 ई. में जब संविधान का निर्माण हुआ था तब नागरिकों के अधिकारों को संविधान में घोषित कराने का प्रश्न विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं रहा था क्योंकि उस समय यह प्रश्न अधिक महत्त्व रखता था कि केन्द्रीय सरकार की शक्तियों के विरुद्ध उपराज्यों को क्या अधिकार होने चाहिए। लेकिन चार वर्ष बाद 1891 ई. में संविधान में जो 10 संविधान संशोधन किए गए उनमें से 9 संशोधनों द्वारा नागरिकों के अधिकारों को संरक्षण

1. "To make all Laws which shall be necessary and proper for carrying into execution the foregoing powers and all other powers vested by the constitution in the Govt. of U.S.A."

प्रदान किया और इस प्रकार केन्द्रीय या संघीय सरकार की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाया गया। इन अंकुशों को निम्नांकित रूप में रखा जा सकता है—

(1) "कांग्रेस कोई ऐसी विधि नहीं बनाएगी जो किसी धर्म विशेष की स्थापना करे अथवा धार्मिक स्वतन्त्रता में बाधक हो अथवा विचार प्रकट करने की, मुद्रणालय की अथवा लोगों के शान्तिपूर्वक एकत्रित होने की और अपने कष्टों के निवारण हेतु सरकार से प्रार्थना करने की स्वतन्त्रता को कम करे।

(2) लोगों को अस्त्र रखने और प्रयोग करने के अधिकार का उल्लंघन नहीं होगा।

(3) किसी भी मकान में उसके स्वामी की आज्ञा के बिना शान्तिकाल में कोई सैनिक नहीं रखे जाएँगे।

(4) लोगों के शरीर, मकानों, कागजातों और सम्पत्ति की रक्षा की जाएगी तथा अकारण तलाशी और जब्ती नहीं की जाएगी और बिना वारन्ट के, जो किसी शपथ पर आधारित होगा, किसी की तलाशी न ली जाएगी।

(5) बिना जूरी की सहायता के किसी भी व्यक्ति को घृणित व अन्य जुर्म के लिए बन्दी न बनाया जाएगा और न किसी को एक ही दोष के लिए दो बार दण्डित किया जाएगा।

(6) किसी भी फौजदारी के अभियोगों में दोषी को शीघ्रातिशीघ्र और सार्वजनिक फैसला करने का अधिका होगा।

(7) असैनिक अथवा व्यावहारिक मामलों में बीस डॉलर से अधिक के झगड़ों में जूरी (Jury अर्थात् अभिनिर्णायक) द्वारा निर्णय कराया जाएगा।

(8) न तो अत्यधिक जमानत माँगी जाएगी, न अधिक जुर्माना किया जाएगा और न असाधारण अथवा क्रूर दण्ड दिया जाएगा।

(9) इस संविधान में वर्णित अधिकारों का यह आशय नहीं है कि लोगों को अन्य अधिकार प्राप्त नहीं हैं अथवा उनमें कोई कमी है।

(10) गुलामी या अनैच्छिक सेवा (जो किसी दण्ड के रूप में न हो) संयुक्त राज्य में नहीं रहेगी।

(11) संविधान द्वारा केन्द्रीय सरकार को न दी गई शक्तियाँ उपराज्यों अथवा लोगों में सुरक्षित रहेंगी।

(12) मताधिकार जनता को बिना जाति, वर्ग व पूर्व-स्थिति के भेदभाव के सभी को प्राप्त होगा।

(13) संयुक्त राज्य में नागरिकों के अधिकार स्त्री-पुरुष सभी को बिना भेदभाव के प्राप्त होंगे।

राज्यों की शक्तियाँ (Powers of the States)—अमेरिकी संविधान में केवल केन्द्रीय सरकार की शक्तियों का उल्लेख किया गया है शेष सभी शक्तियाँ या अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों को प्रदान की गई हैं। मुनरो ने राज्यों की निम्न शक्तियों का उल्लेख किया है—स्थानीय करारोपण, स्थानीय स्वशासन, संस्थाओं की स्थापना, राज्य की साख पर ऋण लेना, अनुदान और दान देना, शिक्षा-संचालन, सड़कों और

यातायात नियमों की स्थापना व नियन्त्रण, दीवानी और फौजदारी कानूनों के निर्माण, जन-सम्पति और जन-जीवन की सुरक्षा, जन-स्वास्थ्य और नैतिक जीवन का विकास, संघीय संविधान के संशोधन का अनुसमर्थन, राज्यों के संविधान में संशोधन और चुनावों का संचालन।[1] इस तरह से राज्यों को भी अपना प्रशासन चलाने के लिए पर्याप्त शक्तियाँ प्रदान की गई हैं।

राज्य सरकारों के लिए निषिद्ध शक्तियाँ (Powers Forbidden to the State Governments)—जो शक्तियाँ राज्य सरकारों के लिए निषिद्ध कर दी गई हैं वे मुख्य इस प्रकार हैं—राज्यों को सन्धि करने तथा राज्यों के साथ संवर्ग या संघ (Confederation) की स्थापना करने का अधिकार नहीं है, राज्य सिक्के नहीं ढाल सकते, राज्य शान्ति के समय सेना या युद्धपोत नहीं रख सकते, वे किसी विदेशी शक्ति से समझौता नहीं कर सकते तथा आक्रमण होने से पूर्व युद्ध नहीं कर सकते, वे दास-प्रथा की स्थापना नहीं कर सकते, वे संयुक्त राज्य अमेरिका के किसी नागरिक के विशेषाधिकार को कम नहीं कर सकते और किसी को विधि के समान संरक्षण से वंचित नहीं कर सकते आदि। इसी तरह अथवा रंगभेद के आधार पर राज्य सरकारें व्यक्तियों को उनके मताधिकार से वंचित नहीं कर सकती। ये सभी शक्तियाँ जनता में निहित मानी जाती हैं और राज्य उनमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते। स्पष्ट है कि इस व्यवस्था का आधार अमेरिकी व्यक्तिवाद है।

मुनरो के अनुसार संघीय (केन्द्रीय) एव राज्य सरकारों की शक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन निम्नांकित सारणी (Table) के अनुसार किया जा सकता है—

संघ या केन्द्र की शक्तियाँ	राज्यों की शक्तियाँ
1. संघीय कार्यों हेतु कर लगाना।	1. स्थानीय कार्यों हेतु कर लगाना।
2. राष्ट्र की साख (Credit) पर ऋण लेना।	2. राज्य की साख पर ऋण लेना।
3. अन्तर्राष्ट्रीय व अन्तःराज्यीय व्यापार का नियन्त्रण।	3. राज्यों के आन्तरिक व्यापार का नियन्त्रण।
4. मुद्रा (सिक्के व नोट) प्रसारित करना।	4. दीवानी व फौजदारी कानून बनाना।
5. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध व सन्धि-समझौते।	5. पुलिस-शक्तियाँ।
6. सेना व सुरक्षा	6. शिक्षा।
7. पेटेन्ट व कॉपीराइट अधिकार।	7. जन-कल्याण व सुधार।
8. डाक-सेवा।	8. स्थानीय स्वशासन का निर्देशन व नियन्त्रण।
9. नाप-तौल का नियन्त्रण।	9. राजमार्गों व यातायात की व्यवस्था।
10. नवीन राज्यों व जिलों का निर्माण।	10. निगमों का संगठन व संचालन।

1. *Munro, W.B* : The Govt. of the United States, p. 56.

अमेरिका में शक्तियों के विभाजन को भली-भाँति समझने हेतु राज्य-सरकारों तथा स्थानीय स्व-शासन की इकाइयों का ज्ञान होना आवश्यक है।

संघ व राज्य सरकारों की समवर्ती शक्तियाँ—कुछ शक्तियाँ ऐसी हैं जो संघ व राज्य सरकारों को समान रूप से प्राप्त हैं, जैसे-कर लगाना, बैंक तथा कॉरपोरेशन को चार्टर देना, कानून बनाना और उन्हें लागू करना, सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए सम्पत्ति लेना और सामान्य कल्याण के लिए व्यवस्था करना, आदी।

(4) संघ और राज्यों में मतभेद (Difference Between Federation and States)

संविधान और उसके अन्तर्गत निर्मित कानून, संयुक्त राज्य अमेरिकी की सत्ता के अधीन की गई अथवा की जाने वाली सन्धियाँ राज्य के सर्वोच्च कानून हैं। यदि कभी संघ और राज्यों के बीच किसी प्रश्न पर कोई विवाद उठ खड़ा होता है तो उसका अन्तिम निर्णय सर्वोच्च न्यायालय करता है। किसी समय किसी शक्ति अथवा अधिकार के सम्बन्ध में मतभेद स्थापित हो जाने पर वह शक्ति उस समय तक राज्य की होती है जिस समय तक यह निश्चित नहीं हो जाता कि उस शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार राज्य को नहीं है अथवा उस पर केन्द्रीय सरकार का अधिकार है।

(5) दोहरी नागरिकता (Dual Citizenship)

संयुक्त राज्य अमेरिका के संघ की स्थापना के बाद यद्यपि राज्यों के निवासी संघ के नागरिक बन गए तथापि उनकी अपने-अपने राज्य की नागरिकता का भी लोप नहीं हुआ। इस प्रकार दोहरी नागरिकता का उदय हुआ—एक संघ की और दूसरी राज्य की। आज अमेरिका के निवासी राज्यों के भी नागरिक हैं और संघ के भी। फिर भी उनमें पृथकतावादी दृष्टिकोण विकसित नहीं हुआ।

(6) संविधान की सर्वोच्चता (Supremacy of Constitution)

संविधान की छठी धारा की दूसरी उप-धारा ने स्पष्ट रूप से संविधान की सर्वोपरिता को प्रतिष्ठित किया है। जब कभी संघ अथवा किसी राज्य के कानून का संविधान से विरोध हो तो संविधान की विजय होती है क्योकि ऐसे विरोध में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय अन्तिम होता है। संविधान देश की सर्वोच्च विधि है। संविधान ही संघ-सरकार तथा राज्य सरकारों की शक्तियों का स्रोत है। वही शासन-शक्तियों का विभाजन करता है, अतः शक्तियों के अतिक्रमण का अर्थ संविधान का अतिक्रमण है। संविधान की व्यवस्था संघ-सरकार और राज्य सरकारों के लिए पवित्र मानी जाती है। संविधान का परिपालन पूरी तरह होता है या नहीं, यह देखने का न्यायपालिका का कार्य है। संविधान की पवित्रता बनाये रखने के लिए संविधान संशोधन की प्रक्रिया को भी कठोर बनाया गया है।

(7) स्वतन्त्र एवं सर्वोच्च न्यायपालिका (Independent and Supreme Judiciary)

संविधान की धारा 3 (अ) के अनुसार संयुक्त राज्य की न्याय-शक्ति एक सर्वोच्च न्यायालय और समय-समय पर कांग्रेस द्वारा स्थापित न्यायालयों को सौंप दी गई है। सर्वोच्च न्यायालय संविधान की रक्षा करता है और उसका स्पष्टीकरण करता है। संविधान

के प्रतिकूल समझने पर वह किसी भी कानूनी कार्य अथवा आदेश को अवैधानिक अथवा अवैध ठहरा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय स्वयं ही इस दिशा में कोई कार्य नहीं करता। वह अपना कार्य तभी करता है जब उसके लिए कोई पक्ष उसके समक्ष आवेदन करे।

(8) अन्य सहायक तत्व (Other Helping Factors)

दो अन्य गौण तत्व भी अमेरिका की संघीय व्यवस्था में विद्यमान हैं। संघीय व्यवस्था में संघ का निर्माण करने वाली इकाइयों को उचित महत्त्व देने के लिए प्रायः दो व्यवस्थाओं का अनुसरण किया जाता है—प्रथम, व्यवस्थापिका के ऊपरी सदन में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता है एवं द्वितीय, संघ का निर्माण करने वाली इकाइयों को सविधान के सशोधन में उचित महत्त्व दिया जाता है। अमेरिका की संघीय व्यवस्था में ये दोनों ही तत्व विद्यमान हैं। कांग्रेस के ऊपरी सदन सीनेट में सभी राज्यों को अपने दो-दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त वे अपने दो-तिहाई बहुमत से संशोधन प्रस्तावित कर सकते हैं। साथ ही कोई भी संशोधन तभी पारित समझा जाता है जबकि राज्यों की 3/4 संख्या उसकी पुष्टि कर दे।

लॉर्ड लेण्डन (Landon) के मत में अमेरिकी संघीय व्यवस्था एक आदर्श संघीय व्यवस्था' (A True Federal Model) है। स्ट्रांग ने अमेरिकी संविधान को विश्व का सर्वाधिक पूर्ण सविधान बताया है।[1]

अमेरिकी संघीय व्यवस्था तथा निहित शक्तियों का सिद्धान्त

(American Federal System and the Doctrine of Implied Powers)

अमरीकी संघीय व्यवस्था में शक्तियों के निहित सिद्धान्त का अपूर्व महत्त्व है। अतः इस सिद्धान्त की उत्पत्ति, प्रकृति, स्वरूप और विशेषताओं के बारे में जानना आवश्यक बन जाता है।

सिद्धान्त की उत्पत्ति (Origin of the Principle)

संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान अत्यन्त संक्षिप्त है। इसमें विधान की एक कमेटी रूपरेखा मात्र दी गई है। इसके विस्तार का कार्य समय तथा आवश्यकता के अनुसार किया जा सकता है। संघीय सरकार की शक्तियाँ निश्चित रूप से लिखित और स्थिर हैं, परन्तु इन शक्तियों की सूची बड़ी सामान्य है। उसमें ऐसी विभिन्न शक्तियों की कोई चर्चा नहीं है जिनका प्रयोग किए बिना संघ अपनी उन शक्तियों का प्रयोग पूरी तरह नहीं कर सकता जिनकी चर्चा संघीय सूची में है। इस सिद्धान्त की उत्तपत्ति अमेरिकी संविधान के अनुच्छेद 1 की उपधारा-8 के इन शब्दों में हुई है—"उपर्युक्त शक्तियों के कार्यान्वयन हेतु सभी आवश्यक और उचित कानूनों का निर्माण करने की शक्ति कांग्रेस को प्राप्त होगी।" इस स्थिति का परिणाम यह हुआ कि समय-समय पर संविधान में प्रदत्त अपनी मुख्य शक्तियों के उपयोग के लिए आवश्यक अन्य शक्तियों को भी संघीय सरकार अपने हाथ में इस आधार पर लेती है कि वे शक्तियाँ भी संविधान में वर्णित मूल

1. "The Constitution of the United States is the most Federal Constitution in the world."
—C.F. Strong : Modern Political Constitutions, p.143.

शक्तियों में निहित हैं। जॉन्सन (Johnson) के शब्दों में—"निहित शक्तियाँ वे शक्तियाँ हैं जो संविधान की संरचना के फलस्वरूप विकसित हुई हैं।" इससे उस सिद्धान्त का उदय हुआ जिसे हम निहित शक्तियों के सिद्धान्त (Doctrine of Implied Powers) के नाम से जानते हैं। इसका उदय एक परम्परा के रूप में हुआ है जिसे आगे चलकर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयानुसार मान्यता प्राप्त हो गई और वह अमेरिकी संवैधानिक व्यवस्था का अभिन्न अंग बन गया।

निहित शक्तियों का अभिप्राय और संविधान के विकास में उनका योगदान
(Meaning and Constitution of Implied Powers in the Development of Constitution)

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों से स्पष्ट है कि संविधान-निर्माताओं ने कांग्रेस को ऐसे समस्त कानूनों के निर्माण की शक्ति प्रदान की है जो संविधानिक उपबन्धों के अनुसार कांग्रेस की शक्तियों को तथा शासन तथा विभागों की शक्तियों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक और उचित हों। इस प्रकार निहित शक्तियों का अभिप्राय उन शक्तियों से हुआ जो संघीय सरकार की मूल शक्तियों को कार्यान्वित करने के उद्देश्य से उसमें *निहित मानी जाएँ। संघीय सरकार की इन निहित शक्तियों का रूप* किन्हीं नवीन शक्तियों का नहीं है, बल्कि ये वही शक्तियाँ हैं जो मौलिक शक्तियों में निहित हैं अथवा मौलिक शक्तियों का अंग हैं। निहित शक्तियाँ मौलिक शक्तियों को कार्यान्वित करने की साधन-मात्र हैं।

निहित शक्तियाँ निश्चित रूप से ऐसी होनी चाहिए जिनका सम्बन्ध किसी न किसी मूल शक्ति के क्रियान्वयन से हो। ऐसा न होने पर उनको निहित शक्तियों की संज्ञा नहीं दी जा सकती। कोई शक्ति निहित शक्ति है अथवा नहीं, इसका अन्तिम निर्णय करने की शक्ति न्यायपालिका की है। निहित शक्तियों के सिद्धान्त ने अमेरिकी संविधान के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इसका प्रयोग अनेक बार हो चुका है। ऐसा करने में न्यायधीशों ने संवैधानिक शक्तियों के उदार व व्यापक अर्थ लगाए हैं। परिणामस्वरूप केन्द्रीय सरकार की शक्तियों में वृद्धि हुई है। इसके कुछ उदाहरण निम्नानुसार हैं—

(1) संविधान की आठवीं धारा के अनुसार राष्ट्रीय सरकार को वैदेशिक या अन्तर्राज्यीय व्यापार करने के सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हुई है। सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी व्याख्याओं द्वारा 'वाणिज्य' शब्द का बहुत व्यापक अर्थ लगाया है और उसने कांग्रेस के रेलों, मोटरों, तार व टेलीफोन कम्पनियों, हवाई यातायात, जहाजरानी, रेडियो-संचार-स्टेशनों, स्टॉक-एक्सचेंज आदि अनेक विषयों से सम्बन्धित कानून बनाने के अधिकार को वैध माना है।

(2) संविधान ने कांग्रेस को सैनिकों को एकत्रित करने और उन्हें आवश्यक सामग्री देने की व्याख्या की है। इस शक्ति के अन्तर्गत कांग्रेस ने लाखों व्यक्तियों की सेना संगठित करने के लिए केवल युद्ध-काल में ही नहीं वरन् शान्ति-काल में भी कानून

बनाए हैं। सेनाओं को आवश्यक सामग्री देने का भी विस्तृत अर्थ लगाया गया है जिसके अनुसार सेना को भोजन देने के लिए जनता के खान-पान में कमी करने का कानून भी कांग्रेस पारित कर सकती है।

(3) संविधान की एक धारा के अनुसार कांग्रेस को सर्व-साधारण के कल्याण के लिए विधि-निर्माण करने का अधिकार प्रदान किया गया है। सामान्य कल्याण की साधना का दायित्व इतना व्यापक है कि उसके अन्तर्गत कांग्रेस को विस्तृत निहित शक्तियाँ प्राप्त हो सकती हैं। यही कारण है कि कांग्रेस ने रोजगार और वृद्धावस्था पेंशन की व्यवस्था जैसा कार्य अपने हाथ में लिया है।

(4) संविधान के अनुसार कांग्रेस को यह अधिकार दिया गया है कि वह संयुक्त राज्य की ओर से ऋण ले सकती है। अपने इस अधिकार द्वारा कांग्रेस ने संघीय बैंक तथा सहयोगी ऋण-समितियाँ स्थापित करने और राष्ट्रीय ऋणों की देखभाल करने की शक्तियाँ प्राप्त कर ली हैं।

स्पष्ट है कि संविधान में बिना संशोधन किए हुए ही निहित शक्तियों के सिद्धान्त द्वारा अनेक संशोधन हो गए हैं और विभिन्न कानूनों का निर्माण हो गया है।

निर्णायक कांग्रेस नहीं, वरन् सर्वोच्च न्यायालय

व्यावहारिक रूप में कांग्रेस को निहित शक्तियों के सिद्धान्त के आधार पर कोई भी शक्ति स्वेच्छानुसार और सरलता से प्राप्त नहीं हो जाती, क्योंकि यदि इस सम्बन्ध में कोई विवाद न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाये तो न्यायालय ही उस शक्ति विशेष के विषय में यह निर्णय देगा कि वह निहित शक्ति है अथवा नहीं और उसका निर्णय सभी पक्षों के लिए अनिवार्यतः मान्य होगा। मुनरो का कथन है, "अनेक अवसर आए हैं जब कांग्रेस के निहित शक्ति सम्बन्धित दावों को उसने अस्वीकार कर दिया है।"[1]

निहित शक्तियों के सिद्धान्त का प्रभाव (Effect of Implied Powers)

संयुक्त राज्य अमेरिका में निहित शक्तियों का सिद्धान्त बड़े महत्त्व का है। इसके प्रभावों को निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है—

(i) संघीय सरकार को संविधान प्रदत्त कर्त्तव्यों को पूरा करने में बहुत सहायता मिलती है।

(ii) संविधान के विकास में सहायता मिली है। उसमें परिस्थितियों की माँग के अनुसार आवश्यक परिवर्तन करना संभव हो सका है।

(iii) केन्द्रीय सरकार की शक्तियों में भारी वृद्धि हुई है और राज्यों के स्वशासन के अधिकार पर व्यापक आघात लगा है।

(iv) न्यायपालिका के प्रभाव और महत्त्व में इतनी वृद्धि हुई है कि "सर्वोच्च न्यायालय एक अनिर्वाचित उच्च व्यवस्थापिका (Non-elective Superlegislature) बन गया है।"

1. *Munro, W.B.*: The Govt. of United States.

संघीय सरकार में वृद्धि की प्रवृत्ति
(Tendency of Increasing Powers of Federal Govt.)
अथवा
अमेरिका में संघवाद के क्रियात्मक पक्ष (पहलू) का परीक्षण
(Operational Aspect of Federation in U.S.A.)

अन्य संघात्मक देशों की तरह संयुक्त राज्य अमेरिका में भी केन्द्र सरकार की शक्तियों में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। केन्द्र सरकार की शक्तियों में वृद्धि के लिए अग्रलिखित कारणों का मुख्य योगदान रहा है—

(1) **मौलिक विकास** (Original Development)—अमेरिकी संविधान परिस्थितियों के अनुरूप सदैव विकसित होता रहा है। प्रारम्भ में राज्य सरकारें ही अधिक शक्तिशाली थीं, परन्तु कालान्तर में विकास की प्रवृत्ति बदल गई और राज्य सरकारों की तुलना में संघीय सरकार शक्तिशाली होती गई। यद्यपि यह वृद्धि सभी स्तरों पर हुई, परन्तु राज्य सरकारें संघीय सरकार की शक्ति-वृद्धि को सन्तुलित करने में असमर्थ रहीं।

(2) **आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन** (Economic and Social Changes)—संघीय सरकार की शक्तियों में वृद्धि का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण देश में आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन को माना जा सकता है। 1789 ई. में अमेरिका एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रति उदासीन राष्ट्र था, लेकिन वह तेजी से भौतिक और आर्थिक उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होता गया। क्षेत्र विस्तार, जनसख्या में वृद्धि तथा आर्थिक और सामाजिक संगठन की जटिलताओं के कारण केन्द्रीय सरकार की शक्ति में निरन्तर विकास हुआ। कालान्तर में देश में शहरों के विकास होने, आवागमन तथा संचार के साधनों में वृद्धि होने, सामाजिक जीवन के पेचीदा होने तथा व्यापार तथा उद्योगों का स्वरूप राष्ट्रीय होने से स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन हुआ। इन राष्ट्रव्यापी उद्योगों और आर्थिक सकटों को सुलझाना राज्य-सरकारों के वश की बात नहीं रही। जनता की ओर से विभिन्न सेवाओं की माँगें बढ़ती गईं जिन्हें राज्य सरकारें पूरा नहीं कर सकती थीं। शनैः-शनैः केन्द्र उन सेवाओं को पूरा करता गया तथा इनसे सम्बन्धित शक्तियाँ अपने हाथ में लेता गया। कालान्तर में अमेरिकावासी यह अनुभव करने लगे कि एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार नितान्त आवश्यक है। फलतः लोगों ने केन्द्रीय सरकार के प्रति विरोध की भावना घटती गई और केन्द्रीय सरकार की शक्तियों में वृद्धि होती गई।

(3) **गृह-युद्ध** (Civil War)—1861 से 1865 ई. तक अमेरिका में जो गृह-युद्ध चला, उसने यह बात स्पष्ट कर दी कि अमेरिका संघ की कोई भी इकाई उससे अलग नहीं हो सकती है। इस गृह-युद्ध के फलस्वरूप राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास हुआ और सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रति भक्ति की तुलना में राज्य के प्रति भक्ति निर्बल हो गई। यह भी स्पष्ट हो गया कि केन्द्र इतना समर्थ है कि वह राज्यों की किसी भी चुनौती का सामना कर सकता है। गृह-युद्ध के बाद राष्ट्र के पुनर्निर्माण में केन्द्र ने जो भूमिका निभाई, उससे भी केन्द्र के प्रति लोगों की आस्था बढ़ी। ग्रिफिथ के शब्दों में, "गृह-युद्ध और

उसके उपरान्त पुनर्निर्माण में राष्ट्रपति और कांग्रेस के कार्यों ने बढ़ी हुई शक्तियों की परम्परा स्थापित की और बाद में इन शक्तियों का कभी परित्याग नहीं किया गया है।"[1]

(4) संवैधानिक संशोधन (Constitutional Amendments)—संवैधानिक संशोधनों ने भी संघीय शक्ति के विकास में पर्याप्त योगदान दिया। उदाहरणार्थ, 16वें संशोधन द्वारा राष्ट्रीय सरकार को आय-कर लगाने का अधिकार दिया गया और 15वें तथा 19वें संशोधन द्वारा मताधिकार का राष्ट्रीयकरण किया गया। इस प्रकार के संशोधनों के फलस्वरूप केन्द्रीय सरकार की शक्ति में भारी वृद्धि हुई।

(5) निहित शक्तियों का सिद्धान्त और न्यायिक निर्णय (Doctrine of Implied Powers and Judicial Decisions)—निहित शक्तियों के सिद्धान्त द्वारा केन्द्रीय सरकार को संविधान-प्रदत्त कर्त्तव्यों को पूरा करने में ही सहायता नहीं मिली है, बल्कि इसके कारण उसकी शक्तियों में भी भारी वृद्धि हुई है। इस स्थिति ने राज्यों के स्वशासन के अधिकार को व्यापक आघात पहुँचाया। संघीय सरकार ने निहित शक्तियों के रूप में अनेक ऐसे अधिकार प्राप्त कर लिये हैं जो उसकी शक्ति को अत्यधिक बढ़ाते हैं। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गई सांविधानिक व्याख्याओं ने भी केन्द्रीय सरकार की शक्ति में वृद्धि की है। सर्वोच्च न्यायालय ही अन्तिम रूप से यह निर्णय कर सकता है कि कोई शक्ति 'निहित शक्ति' है अथवा नहीं। सर्वोच्च न्यायालय के अधिकांश निर्णय कांग्रेस द्वारा निर्मित विधियों के पक्ष में रहे हैं, इससे भी केन्द्रीय सरकार की शक्तियों में वृद्धि हुई है।

(6) अनुदान सहायता (Grants-in-Aid)—केन्द्रीय शक्ति में वृद्धि का एक मुख्य कारण केन्द्र द्वारा राज्यों को प्रदान की जाने वाली वित्तीय सहायता अथवा दिया जाने वाला केन्द्रीय अनुदान है। प्रारम्भ में राज्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रायः आत्म-निर्भर रहते थे। इसके अतिरिक्त जो अल्प सहायता केन्द्र से दी जाती थी, वह प्रायः बिना किसी शर्त के दी जाती थी। किन्तु आज एक तो केन्द्रीय सहायता की मात्रा अत्यधिक बढ़ गई है और दूसरे उसके साथ विभिन्न शर्तें भी लगी होती हैं। केन्द्र को प्रायः यह अधिकार होता है कि वह राज्य सरकारों के लिए कतिपय क्षेत्रों में कार्य करने के स्तर व नियम निर्धारित करे, राज्यों के कार्यों का निरीक्षण करे और उनके हिसाब की जाँच करे तथा राज्य द्वारा केन्द्रीय आदेशों की अवहेलना करने पर वित्तीय सहायता पर रोक लगाये। वस्तुतः ज्यों-ज्यों केन्द्रीय सहायता का क्षेत्र विस्तृत हो रहा है, राज्य किसी न किसी रूप में अपनी स्वतन्त्रता खोते जा रहे हैं और उनके क्रियाकलाप केन्द्र द्वारा अधिकाधिक नियन्त्रित होते जा रहे हैं।

(7) अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति (International Situation)—तेजी से बदलती हुई अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति ने भी अमेरिका की केन्द्रीय सरकार की शक्ति में वृद्धि की है। प्रथम महायुद्ध के पूर्व तक अमेरिका यूरोपीय राजनीति के प्रति लगभग उदासीन था, लेकिन महायुद्ध के बाद उसकी पृथकतावादी नीति समाप्त हुई तथा उसके अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वों में भारी वृद्धि हुई। अब यह आवश्यक हो गया कि देश की केन्द्रीय सरकार पूर्ण शक्तिशाली हो जिसके पास देश के सभी साधनों का उपयोग कर सकने की क्षमता हो। सोवियत संघ के महाशक्ति के रूप में विकास ने अमेरिका में केन्द्रीय सत्ता को निरन्तर अधिकाधिक शक्तिशाली बनाया और सोवियत संघ के पतन के बाद संयुक्त राज्य

1. *Griffith*: The American System of Govt. p. 22.

अमेरिका ही विश्व की एकमात्र महाशक्ति रह गई है। फलतः अब उसके अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व बहुत अधिक बढ़ गये हैं। वर्तमान में यह सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को नियन्त्रित करता है। अतः केन्द्रीय सरकार की शक्तियों में वृद्धि होना स्वाभाविक ही है।

(8) **संघ-राज्य सहयोग (Union-State Co-operation)**—संघ और राज्यों में सहयोग भी केन्द्रीय सरकार की शक्ति में वृद्धि का एक कारण रहा है। आज की बदलती हुई परिस्थितियों में विभिन्न क्षेत्रों में संघ और राज्य सरकारों में सहयोग बढ़ता जा रहा है और हैमिल्टन का 'राष्ट्रीय और राज्य सरकारों की प्रतिद्वन्द्विता का सिद्धान्त' गलत सिद्ध हो गया है। यह सहयोग-सूत्र ऐसा रूप ले चुका है कि "राज्य सरकारें, अनेक क्षेत्रों की सहयोगी संस्थाएं मात्र रह गई हैं।"

(9) **जनता की केन्द्र के प्रति श्रद्धा (People's Regard for the Centre)**—पूर्व में राज्यों के प्रति लोगों की निष्ठा अधिक थी किन्तु कालान्तर में यह प्रवृत्ति बदल गई। अब लोगों की निष्ठा केन्द्र के प्रति प्रबल हो गई। इसका कारण राष्ट्रीय संकट के समय केन्द्र की क्षमता एवं शक्ति का प्रदर्शन रहा है। उदाहरणार्थ, प्रथम व द्वितीय महायुद्धों में क्रमशः राष्ट्रपति विल्सन (Wilson) व रूजवेल्ट (Roosevelt) का सफल नेतृत्व था। डिमोक व डिमोक का मत है कि—"केन्द्रीयकरण के कुछ अप्रिय अर्थ हो सकते हैं, किन्तु लोगों को इससे प्राप्त लाभों का ज्ञान है।"[1]

(10) **कल्याणकारी राज्य की अवधारणा (Concept of Welfare State)**—आधुनिक काल में राज्य का स्वरूप लोक-कल्याणकारी है। अतः लोक-कल्याणकारी कार्यों, यथा—बेरोजगारी, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवासन, ग्रामीण विकास आदि समस्याओं के समाधान हेतु कार्यक्रमों के नियोजन व क्रियान्वयन पर राज्यों को केन्द्र पर आधारित रहना होता है।

परन्तु इन सबसे यह नहीं समझा जाना चाहिए कि राज्य अपनी शक्ति खो बैठे हैं अथवा संघीय इकाइयों के रूप में उनका कोई महत्त्व नहीं रह जाता है। वास्तविकता यह है कि आज संघ और राज्य, दोनों ही राष्ट्रीय कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने की दिशा में अग्रसर रहते हैं। मुनरो का यह कथन उल्लेखनीय है कि "राज्य अब भी वे धुरी हैं जिनके आस-पास अमेरिका का सम्पूर्ण राजनीतिक चक्र घूमता है।"[2] किन्तु अमेरिका का संवैधानिक इतिहास केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को प्रकट करता है। ब्रोगन के शब्दों में, "संयुक्त राज्य अमेरिका का संवैधानिक इतिहास राज्यों की महत्त्वपूर्ण शक्तियों के केन्द्रीय सरकार को हस्तान्तरण की लम्बी प्रक्रिया है।"[3]

केन्द्रीय या संघीय सरकार की शक्तियों में वृद्धि का क्रियात्मक पहलू या पक्ष ही इस प्रवृत्ति में सहायक हुआ है। व्यवहार में शक्तिसम्पन्न संघीय सरकार ही अमेरिका को विश्व में एक उच्चतम शक्ति (Super Power) बनाने में सक्षम सिद्ध हुई है।

---

1 *Dimock & Dimock* American Govt. in Action, p 125
2 *Munro, W.B* . The Govts. of Europe.
3 *Brogan, D W* : The American Political System, p. 21

16

राष्ट्रपति एवं उसका मन्त्रिमण्डल

(President and his Cabinet)

विश्व की कार्यपालिकाओं में शक्ति और सम्मान की दृष्टि से संयुक्त राज्य अत्यन्त महत्व और प्रभाव का पद माना जाता है। वह देश का संवैधानिक तथा वास्तविक अध्यक्ष दोनों ही है। संविधान लागू होने के बाद से राष्ट्रपति की शक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही है और "वाशिंगटन से लेकर अब तक प्रत्येक राष्ट्रपति ने इसे अधिक शक्तिशाली बनाने में योग दिया है।"[1]

राष्ट्रपति की योग्यताएँ, पदावधि, वेतन, पदच्युति आदि

(Qualifications, Term, Salary, Removal from Post etc. of President)

राष्ट्रपति पद के सम्बन्ध में उसकी योग्यताओं, पदावधि, वेतन तथा उसकी पदच्युति के बारे में जानना भी आवश्यक तथा प्रासंगिक बन जाता है, जिसका विवरण निम्नानुसार है—

(i) योग्यताएँ—संविधान के अनुच्छेद 2 (i) में राष्ट्रपति पद की योग्यताओं का उल्लेख इस प्रकार है—(क) वह संयुक्त राज्य अमेरिका का जन्मजात नागरिक हो, (ख) 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो, एवं (ग) कम से कम 14 वर्ष तक अमेरिका में रह चुका हो। इन सांविधानिक योग्यताओं के अतिरिक्त राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार का व्यावहारिक रूप से निर्धारण राजनीतिक दल करते हैं। वे ऐसे व्यक्ति को ही छाँटते हैं जो अधिकाधिक मतदाताओं को अपने पक्ष में करने में सफल हो सके।

(ii) कार्यकाल एवं पदच्युति—संविधान के अनुसार राष्ट्रपति का कार्यकाल 4 वर्ष का है। इस अवधि में वह स्वयं त्याग-पत्र देकर अथवा मृत्यु हो जाने पर अथवा महाभियोग पारित हो जाने पर ही अपने पद से पृथक् हो सकता है या किया जा सकता है। महाभियोग (Impeachment) प्रतिनिधि सभा के बहुमत के प्रस्ताव से चलाया जाता है और उसकी सुनवाई सीनेट द्वारा होती है। सुनवाई के समय सीनेट की अध्यक्षता सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश करता है। दो-तिहाई बहुमत से सीनेट राष्ट्रपति को अपराधी घोषित कर सकती है। अब तक किसी राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग सिद्ध नहीं किया जा सका है। यह अभियोग देशद्रोह, घूसखोरी अथवा अन्य गम्भीर अपराधों के कारण ही लगाया जा सकता है।

1. *Arther M Schlesinger : Quoted from William H Riker : Democracy in the U.S A. p 201.*

संविधान में राष्ट्रपति पद पर एक ही व्यक्ति के पुनर्निर्वाचन के सम्बन्ध में प्रारम्भ में कुछ नहीं कहा गया था। 1951 के एक संशोधन के अनुसार अब यह व्यवस्था कर दी गई है कि कोई भी व्यक्ति दो बार से अधिक अवधि के लिए राष्ट्रपति नहीं रह सकता। राष्ट्रपति का कार्यकाल 366 दिन वाले वर्ष के पश्चात् आने वाले वर्ष की 20 जनवरी को दोपहर को समाप्त हो जाता है। युद्धकाल में काँग्रेस द्वारा राष्ट्रपति से चुनाव लड़कर तीसरी बार राष्ट्रपति पद ग्रहण करने के लिए आग्रह किया जा सकता है।

वेतन, भत्ते और अन्य सुविधाएँ (Salary, Allowances and Other Facilities)—राष्ट्रपति के वेतन, भत्तों आदि के सम्बन्ध में संविधान मौन है। इनका निश्चय काँग्रेस ही करती है जिन्हें राष्ट्रपति के कार्यकाल में घटाया या बढ़ाया नहीं जा सकता। 1909 और 1949 के बीच राष्ट्रपति का वार्षिक वेतन 75 हजार डॉलर था। 1949 से अमेरिका के राष्ट्रपति को 1 लाख डॉलर वार्षिक वेतन दिया जाने लगा और जनवरी, 1969 में निक्सन के राष्ट्रपति पद-ग्रहण करने की तिथि के बाद से यह वेतन 2 लाख डॉलर वार्षिक कर दिया गया है। यह वार्षिक वेतन कर-मुक्त नहीं है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति को अपने पद के गौरव के अनुसार पर्याप्त भत्ते तथा अन्य सुविधाएँ प्राप्त हैं। उसे 50 हजार डालर 'सामान्य खर्च कोष' के रूप में प्रदान किया जाता है। उसके रहने के लिए लगभग 17 एकड़ भूमि का 'ह्वाइट हाउस' (White House) है। अगस्त, 1958 के एक अधिनियम के अनुसार भूतपूर्व राष्ट्रपतियों को और उनकी विधवाओं को पेंशन की व्यवस्था भी कर दी गई है।

उन्मुक्तियाँ (Immunities)—अमेरिकी राष्ट्रपति को भारी उन्मुक्तियाँ प्राप्त हैं। राष्ट्रपति देश के प्रधान के रूप में कहीं भी आ-जा सकता है। किसी भी अपराध के लिए उसे गिरफ्तार नहीं किया जा सकता और किसी भी न्यायालय में उस पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। केवल महाभियोग ही एक अपवाद है। इसका अधिकार भी केवल काँग्रेस को ही प्राप्त है। राष्ट्रपति स्वेच्छा से किसी न्यायालय में साक्षी रूप में उपस्थित हो सकता है। 1973 में जब वाटरगेट काण्ड की जाँच के सिलसिले में न्यायाधीश सिरिका ने तत्कालीन राष्ट्रपति निक्सन के नाम "सब पोना" (गवाही के लिए उपस्थित होने अथवा आवश्यक कागजात पेश करने का आदेश) जारी किया तो तत्कालीन राष्ट्रपति निक्सन ने स्वयं को प्राप्त उन्मुक्तियों के आधार पर ही इसे अस्वीकार कर दिया लेकिन राष्ट्रपति को प्राप्त इस अधिकार की भी सीमा है। यही कारण था कि जब वाटरगेट काण्ड की जाँच-कार्य में ह्वाइट हाउस के टेप प्राप्त करना अत्यावश्यक हो गया तो सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिया कि ह्वाइट हाउस के 64 टेप और उससे सम्बन्धित दस्तावेज विशेष महाधिवक्ता लियोने जावोरस्की को सौंप दिए जाएँ, और राष्ट्रपति निक्सन इस आदेश की अवहेलना नहीं कर सके।

उत्तराधिकार के सम्बन्ध में व्यवस्था यह है कि राष्ट्रपति का पद रिक्त हो जाने पर उपराष्ट्रपति इस पद को धारण करता है और इन दोनों के अभाव में काँग्रेस ही निर्णय करती है कि कौन अधिकारी राष्ट्रपति पद पर कार्य करेगा। 1947 ई. से राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के उत्तराधिकार का एक नया क्रम काँग्रेस द्वारा निर्धारित कर दिया गया है।

राष्ट्रपति का निर्वाचन
(Election of the President)

राष्ट्रपति का निर्वाचन आज अमरीकी राजनीतिक व्यवस्था की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है। संविधान निर्माताओं ने यह कभी नहीं चाहा था कि राष्ट्रपति का निर्वाचन सम्पूर्ण देश में अशान्ति का वातावरण कायम करे। उन्होंने यह कल्पना भी नहीं की थी कि करोड़ों मतदाता अमेरिकी राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लें। अमेरिकी संविधान-निर्माताओं को दो बातों का विशेष भय था—पहला यह कि यदि राष्ट्रपति काँग्रेस के सदस्यों द्वारा निर्वाचित किया गया तो उस पर काँग्रेस का प्रभुत्व बना रहेगा और दूसरा यह कि यदि राष्ट्रपति को जनता प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित करती है तो इस बात की सम्भावना रहेगी कि उत्साही राजनीतिज्ञ इस पद पर पहुँच जायेंगे। अतः संविधान निर्माताओं ने इन दोनों ही तरीकों की बजाय एक ऐसी रीति अपनाई जिसमें शोरगुल और दुर्व्यवस्था की यथासम्भव कम से कम सम्भावना रहे। संविधान निर्माताओं ने राष्ट्रपति के निर्वाचन की जो व्यवस्था की उसका निम्नानुसार विवेचन किया जा सकता है—

"प्रत्येक राज्य अपनी व्यवस्थापिका के आदेशानुसार कुछ निर्वाचक चुने और उन निर्वाचकों की संख्या उस राज्य की सीनेट तथा प्रतिनिधि सभा के प्रतिनिधियों के बराबर हो। समय आने पर निर्वाचक अपने-अपने राज्य में एक स्थान पर एकत्र हों और लिखित रूप में अपने वोट दो व्यक्तियों को दें, जिनमें कम से कम एक उस राज्य का निवासी न हो जिस राज्य की ओर से वे नियुक्त हुए हैं। इसके बाद वोटों को सन्दूक में सील लगाकर सीनेट के अध्यक्ष के पास भेज दिया जाए जो काँग्रेस के दोनों सदनों की उपस्थिति में उनकी गणना करके परिणाम की घोषणा करे। जिस व्यक्ति को सबसे अधिक वोट प्राप्त हुए हों वही राष्ट्रपति पद सम्भाले, बशर्ते कि वह सब व्यक्तियों के पूर्ण बहुमत से निर्वाचित हो। उससे कम वोट पाने वाला व्यक्ति उसी प्रकार बहुमत पाने पर उपराष्ट्रपति बने।" यह भी व्यवस्था की गई है कि मत-गणना के परिणामस्वरूप यदि किसी भी प्रत्याशी को आवश्यक बहुमत प्राप्त न हो तो राष्ट्रपति के निर्वाचन का प्रश्न प्रतिनिधि सभा द्वारा किया जाये जो सबसे अधिक मत पाने वाले उन तीन प्रत्याशियों में से राष्ट्रपति का चयन करे जिनके नाम सीनेट के अध्यक्ष द्वारा उसके पास भेजे जाएँ। प्रतिनिधि-सभा इस प्रकार जब राष्ट्रपति का चुनाव करे तो सभा के सदस्य राज्यवार मतदान करें और उनके मतों की गणना 'एक राज्य एक मत' के आधार पर हो। उप-राष्ट्रपति के विषय में आवश्यकता पड़ने पर ऐसा सीनेट में किया जाए।

अमेरिकी संविधान निर्माताओं ने 'अशान्ति और अव्यवस्था' (Tumult and Disorder) को टालने की दृष्टि से निर्वाचकगण (Electoral Club) की पद्धति अपनाकर अप्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था की। प्रथम दो निर्वाचन सांविधानिक उपबन्ध के वास्तविक अर्थ के अनुकूल सम्पन्न हुए, लेकिन तृतीय निर्वाचन (1796 ई.) में कुछ तथा चौथे निर्वाचन (1800 ई.) के समय स्पष्ट परिवर्तन हो गए और आज तो व्यवहार में राष्ट्रपति

का निर्वाचन अप्रत्यक्ष निर्वाचन रहा ही नहीं है। ग्रिफिथ के कथनानुसार "राष्ट्रपति का निर्वाचन अब प्रथाओं का एक ऐसा ढाँचा बन गया है जिसका संविधान से कोई सम्बन्ध नहीं है पर जिसके कारण मूल उद्देश्य बहुत-कुछ बदल गया है।"[1]

राष्ट्रपति का निर्वाचन आज केवल सिद्धान्ततः अप्रत्यक्ष है, अन्यथा व्यवहार में यह पूर्णतः प्रत्यक्ष निर्वाचन बन गया है क्योंकि राष्ट्रपति पद के निर्वाचक मण्डल के सदस्यों का चुनाव अब राज्यों की व्यवस्थापिकाओं द्वारा न होकर सीधे जनता द्वारा होता है और जनता जिस दल के व्यक्तियों निर्वाचन-मण्डल के लिए निर्वाचित कर देती है, उसी दल का प्रत्याशी राष्ट्रपति बनता है। लॉस्की के शब्दों में—"संविधान निर्माताओं ने राष्ट्रपति के निर्वाचन की जो विधि अपनाई थी, उस पर उन्हें विशेष रूप से गर्व था परन्तु उनकी आशाओं में से इससे अधिक और कोई आशा भंग नहीं हुई है।"[2] वर्तमान में देश के दोनों ही प्रमुख राजनीतिक दल राष्ट्रपति के लिए अपने-अपने प्रत्याशी खड़े करते हैं। जनता निर्वाचक मण्डल के सदस्यों को निर्वाचित करके यह सुनिश्चित कर देती है कि भावी राष्ट्रपति कौन होगा ?

वर्तमान में, व्यवहार में राष्ट्रपति का निर्वाचन निम्नलिखित रीति से होता है—

(1) प्रत्याशियों का नामांकन और चुनाव प्रचार (Nomination of the Candidate & Election Campaign)—राष्ट्रपति-निर्वाचन का सबसे पहला और महत्वपूर्ण चरण प्रत्याशियों का नामांकन है। राष्ट्रपति के निर्वाचन के पूर्व जनवरी के महीने में प्रत्येक राजनीतिक दल एक राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित करता है। प्रत्येक दल का राष्ट्रीय सम्मेलन राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति पदों के लिए अपने-अपने दल के उम्मीदवारों को नामांकित (Nominate) करता है।

उप-राष्ट्रपति पद के लिए प्रायः उसी व्यक्ति का चयन किया जाता है जो राष्ट्रपति पद के प्रत्याशी के निवास के राज्य से भिन्न राज्य का निवासी हो। प्रायः ऐसा भी किया जाता है कि यदि राष्ट्रपति पद का प्रत्याशी देश के एक भाग का निवासी है तो उप-राष्ट्रपति पद का प्रत्याशी देश के दूसरे भाग का निवासी होता है।

राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति पद के प्रत्याशियों का नामांकन कर देने के उपरान्त तुरन्त ही दल अपने-अपने उम्मीदवारों के पक्ष में देशव्यापी प्रचार प्रारम्भ कर देते हैं। राष्ट्रपति का यह चुनाव घनघोर संघर्ष होता है। राष्ट्रपति के चुनाव-अभियान पर कानूनन 30 लाख डॉलर की अधिकतम सीमा है, लेकिन उल्लंघनकर्ता के विरुद्ध कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की जाती।

(2) राष्ट्रपति निर्वाचक-मण्डल का निर्वाचन (Election of Electoral College)—राष्ट्रपति के निर्वाचन की दूसरी सीढ़ी राष्ट्रपतीय निर्वाचकों (Presidential Electors) का निर्वाचन है। प्रारम्भ में निर्वाचक राज्यों की व्यवस्थापिकाओं द्वारा निर्वाचित होते थे। बाद में इस प्रणाली का परित्याग कर दिया गया और एक नई प्रणाली को अपनाया गया, जिसके अनुसार प्रत्येक राजनीतिक दल या तो अपनी

1. *Griffith, E.S.* : The American System of Govt.
2. *Laski* : American Presidency, p. 51.

प्राथमिक संस्थाओं (Primaries) या राज्यों के सम्मेलनों (State Conventions) द्वारा प्रत्येक राज्य में निर्वाचक मण्डल के लिए अपने उम्मीदवार खड़े करता है। प्रत्येक राज्य के निर्वाचक-मण्डल में उतने ही सदस्य होते हैं जितने उसके सीनेट और प्रतिनिधि में सदस्य होते हैं। संविधान के 23वें संशोधन के अनुसार कोलम्बिया जिले के 3 प्रतिनिधि भी निर्वाचक-मण्डल के सदस्य हैं। इस तरह वर्तमान में निर्वाचक मण्डल की सदस्य संख्या 538 (प्रतिनिधि सभा 435 + सीनेट 100 + कोलम्बिया 3 = 538) है। निर्वाचक मण्डल के सदस्यों का निर्वाचन व्यक्तिगत न होकर सामूहिक होता है। इसके परिणामस्वरूप जिस दल को किसी राज्य में जनता के मतों का बहुमत प्राप्त होता है, उसी दल के सब प्रत्याशी राष्ट्रपति के निर्वाचक-मण्डल के सदस्यों के रूप में निर्वाचित होते हैं अर्थात् यह कहा जा सकता है कि निर्वाचक-मण्डल के सदस्यों के लिए किया जाने वाला मतदान परोक्ष रूप से राष्ट्रपति के लिए ही होता है, क्योंकि जिस दल के लोगों को जनता निर्वाचक-मण्डल के लिए चुनती है, वे स्वाभाविक रूप से उसी दल के राष्ट्रपति-पद के प्रत्याशी को अपने मत देते हैं।

तत्पश्चात् नवम्बर माह के प्रथम सोमवार के बाद आने वाले मंगलवार को (जो निर्वाचन का दिन होता है) सब मतदाता अपने-अपने राज्य में एकत्र होकर इन निर्वाचकों के लिए अपना-अपना मत देते हैं। इसमें जो दल राज्य में बहुमत प्राप्त करता है समस्त निर्वाचकों को निर्वाचक-मण्डल के रूप में भेज देता है। इस प्रकार राष्ट्रपतीय निर्वाचकों का निर्वाचन, जो प्रत्यक्ष होता है, राष्ट्रपति का निर्वाचन निश्चित कर देता है। संविधान द्वारा निश्चित राष्ट्रपति के निर्वाचन-पद्धति के शेष चरण केवल औपचारिक ही रह जाते हैं।

निर्वाचकों के चुनाव तथा अन्य चुनावों में किन व्यक्तियों को मतदान का अधिकार होगा, इस सम्बन्ध में 1970 में 'मतदान अधिकार नियमन' में संशोधन किया गया है। इसके पूर्व 21 वर्ष की आयु प्राप्त प्रत्येक नर-नारी को मताधिकार प्राप्त था किन्तु इस संशोधन के बाद 18 वर्ष की आयु वाले को यह मताधिकार प्राप्त हो गया है। संशोधन के पूर्व अमेरिका में कम से कम 30 राज्य ऐसे थे जिनमें उसी व्यक्ति को मताधिकार प्राप्त था जो कम से कम एक वर्ष राज्य में रहा हो किन्तु अब यह अवधि 30 दिन कर दी गई है अर्थात् किसी भी राज्य के वे सब व्यक्ति मत देने के अधिकारी हैं जो चुनाव के तीस दिन पूर्व विदेश से स्वदेश लौट आए हैं। संशोधन के पूर्व व्यवस्था यह थी कि मतदाता को अपना नाम पंजीकृत कराने से पहले एक साक्षरता परीक्षा देनी होती थी, किन्तु अब यह प्रतिबन्ध भी हटा दिया गया है। नीग्रो नागरिकों को भी मताधिकार प्राप्त हो सके, इसी दृष्टि से यह परिवर्तन किया गया है।

(3) निर्वाचक-मण्डल द्वारा राष्ट्रपति के लिए मतदान (Voting for President by the Electoral College)—निर्वाचित होने पर समस्त निर्वाचक अपने-अपने राज्यों की राजधानी में एकत्र होते हैं और दिसम्बर माह के दूसरे बुधवार के बाद आने वाले पहले सोमवार को राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति के लिए मतदान करते हैं। यह चुनाव मात्र औपचारिकता होती है क्योंकि ऑग व रे के शब्दों में—"निर्वाचक-मण्डल के सदस्य अपने राजनीतिक दल की रेकॉर्डिंग मशीन की भाँति होते हैं।"[1]

1. *Ogg & Ray*: Essentials of American Govt., p. 175.

(4) मतगणना व परिणाम (Vote-counting and Result)—तत्पश्चात् सभी राज्यों के मतपत्रों को प्रमाणित के सील किए हुए लिफाफों में सीनेट के अध्यक्ष के पास वाशिंगटन भेज दिया जाता है, वहाँ सीनेट के अध्यक्ष द्वारा वे लिफाफे काँग्रेस के दोनों सदनों के सदस्यों के सामने खोले जाते हैं। इसके बाद मतगणना की जाती है और परिमाण की घोषणा की जाती है। जो प्रत्याशी निर्वाचकों के मतों का पूर्ण बहुमत प्राप्त कर लेता है, उसे राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है।

यदि मतगणना का परिणाम ऐसा निकलता हो जिसमें किसी भी प्रत्याशी को आवश्यक बहुमत प्राप्त न हो, तो राष्ट्रपति के निर्वाचन का कार्य प्रतिनिधि-सभा करती है। प्रतिनिधि-सभा प्रथम अधिकतम मत पाने वाले उन तीन प्रत्याशियों में से एक राष्ट्रपति चुन लेती है, जिनके नाम सीनेट का अध्यक्ष उसके पास भेजता है। यहाँ यह बात ध्यान में रखने की है कि इस निर्वाचन में सदस्य व्यक्तिगत रूप से मतदान नहीं करते। प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधियों से मिलकर उस राज्य का एक प्रतिनिधि-मण्डल बनता है और प्रत्येक मण्डल केवल एक ही मत देता है। गणपूर्ति (Quorum) के लिए दो-तिहाई राज्यों की उपस्थिति आवश्यक है। उप-राष्ट्रपति पद के विषय में आवश्यकता पड़ने पर ऐसा ही सीनेट द्वारा किया जाता है।

पद व शपथ-ग्रहण (Assuming Office and Oath-taking)—निर्वाचित राष्ट्रपति व उप-राष्ट्रपति संविधान के 20वें संशोधन के अनुसार 20 जनवरी को दोपहर के समय पद-ग्रहण करते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के मुख्य न्यायाधीश द्वारा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति को पद और गोपनीयता की शपथ दिलाई जाती है।

यदि किसी कारणवश राष्ट्रपति का निर्वाचन न हुआ हो अथवा राष्ट्रपति पद ग्रहण न कर पाए तो उसके स्थान पर उप-राष्ट्रपति कार्यभार सम्भालता है। यदि उप-राष्ट्रपति भी उस दिन कार्य-भार न सम्भाले तो काँग्रेस को यह अधिकार होता है कि इस बारे में उचित प्रबन्ध करे।

राष्ट्रपति की निर्वाचन-प्रणाली की आलोचना
(Criticism of the System of Presidential Election)

संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति के निर्वाचन में जिस तरह से धन का अपव्यय और राष्ट्रीय जीवन में उत्तेजना का वातावरण रहता है, उसके कारण इसकी निर्वाचन पद्धति आलोचना का शिकार बनी है। इसकी निम्नांकित आधारों पर आलोचना की जाती है—

(1) राष्ट्रपति का निर्वाचन वास्तव में धन का खेल है जिसके पीछे भ्रष्ट तत्त्व सक्रिय रहते हैं। उम्मीदवारों के प्रति खुले और छिपे तौर पर पूर्व-धारणाएँ सक्रिय रहती हैं तथा अवांछनीय चालें चली जाती हैं। ब्राइस का मत है कि—"राष्ट्रीय सम्मेलन के प्रतिनिधियों की असंगत, असैद्धान्तिक तथा स्वार्थपूर्ण प्रवृत्ति के कारण उम्मीदवारों की योग्यताओं पर ध्यान न देकर परस्पर समझौते किए जाते हैं और महान् व्यक्ति राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार नहीं बन पाते।"[1] लास्की ने भी कहा है कि "राष्ट्रपति का चुनाव सर्वाधिक भ्रष्ट चुनाव व वित्तीय साधनों का खेल (Game of Financial Resources) है।"[2]

1. *Brayce T* : Modern Democracies.
2. *Laski* : American Presidency.

(2) राजनीतिक दलों के राष्ट्रीय सम्मेलनों का वातावरण भी तनावपूर्ण, उलझनपूर्ण और अशान्त रहता है। इससे पारस्परिक वैमनस्य तथा संघर्ष की भावना को प्रोत्साहन मिलता है।

(3) निर्वाचन के समय छल-कपट, अफवाहों, अनुचित षड्यन्त्रों आदि का काफी जोर रहता है। इससे चरित्र-हनन की अनुचित राजनीति को बढ़ावा मिलता है।

(4) राष्ट्रपतीय निर्वाचकों के चुनाव में जिस दल को बहुमत प्राप्त होता है, उसे उस राज्य के सभी निर्वाचकों को चुनने का अधिकार प्राप्त होता है। इसका दूषित परिणाम यह है कि यदि किसी राज्य में किसी दल को 49% मत प्राप्त हो जाएँ तो उस दल का एक भी निर्वाचक नहीं चुना जाता है। यह जनता के साथ बहुत बड़ा मजाक है।

(5) इस निर्वाचन पद्धति की इस आधार पर भी आलोचना की जाती है कि राष्ट्रपति को भले ही जनता का बहुमत प्राप्त न हो, लेकिन निर्वाचकों का बहुमत उसके पास होता है।

(6) यह भी अनुचित है कि एक बार साधारण जनता द्वारा निर्वाचक-मण्डल के निर्वाचन के बाद निर्वाचक-मण्डल के सदस्य इस बात के लिए स्वतन्त्र रहते हैं कि वे किसी प्रत्याशी के पक्ष में मतदान करें। अनेक ऐसे अवसर आए हैं कि जब दल के निर्वाचन-मण्डल के सदस्यों ने दूसरे दल के राष्ट्रपति-पद के प्रत्याशी को मत दिया है।

(7) यह भी सम्भव है कि निर्वाचक-मण्डल के मतदान के फलस्वरूप किसी भी प्रत्याशी को आवश्यक बहुमत प्राप्त न हो और ऐसी स्थिति में जब निर्वाचन निर्धारण प्रतिनिधि सभा द्वारा किया जाए तो परिणाम उससे भिन्न निकले जो सामान्यतः होना चाहिए। यह आलोचना अधिक व्यावहारिक नहीं है। अब तक केवल एक बार 1824 ई. में ही ऐसा हुआ था जबकि चार प्रत्याशियों में से किसी एक को भी आवश्यक बहुमत नहीं मिला था।

(8) अमेरिकी राष्ट्रपति की निर्वाचन-प्रणाली का जो व्यावहारिक रूप बन गया है, उसके कारण पद पर अयोग्य व्यक्तियों का आना सम्भव है। लॉस्की ने इन निर्वाचकों की तुलना कठपुतलियों से की है जो दल की इच्छानुसार कार्य करते हैं। यह आलोचना आंशिक रूप से ही सत्य है क्योंकि विगत पचास-साठ वर्षों में राष्ट्रपति पद पर अद्भुत योग्यता रखने वाले व्यक्ति ही प्रतिष्ठित हुए हैं।

निर्वाचन-प्रणाली में सुधार के सुझाव

राष्ट्रपति की निर्वाचन-पद्धति में जो दोष विद्यमान हैं, उन्हें दूर करने के लिए समय-समय पर निम्नलिखित सुझाव दिए जाते रहे हैं—

(1) राष्ट्रपति का प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा निर्वाचन होना चाहिए।

(2) राज्य-निर्वाचकों का चुनाव पूरे राज्य (State at large) के आधार पर न करके जिलों (Districts) के आधार पर किया जाए।

(3) निर्वाचक-गण और निर्वाचकों का अन्त कर दिया जाए, परन्तु निर्वाचक-मत की पद्धति व्यवहार में बनी रहे। राज्यों में राष्ट्रपतीय निर्वाचन के मतपत्र (Presidential election ballot) बने रहें जो लोकप्रिय मत के आधार पर प्रत्याशियों को दिए जाएँ।

(4) प्रत्येक राज्य में प्रत्यक्ष एवं वयस्क मताधिकार के आधार पर मतदान हो तथा राष्ट्रपति पद के लिए प्रत्याशियों को प्राप्त लोकप्रिय मतों के अनुपात में निर्वाचक मत (Electoral Vote) मिलें।

क्लिण्टन अमरीका के पुनः राष्ट्रपति निर्वाचित

6 नवम्बर 1996 को क्लिण्टन अमरीका के पुनः राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। उन्होंने अपने निकटतम, प्रतिद्वंद्वी रिपब्लिकन पार्टी के बाब डोल को पराजित किया। 538 सदस्य निर्वाचक मण्डल में क्लिण्टन को 379 तथा बाब डोल को 159 मत प्राप्त हुए। रिफोर्म पार्टी के प्रत्याशी रॉस पैरी को एक भी मत प्राप्त नहीं हुआ। राष्ट्रपति क्लिण्टन की विजय में महिलाओं, अश्वेतों या नीग्रो तथा गरीब वर्ग का भारी समर्थन मुख्य रूप से उत्तरदायी रहा। इस चुनाव में कोई नीतिगत मुद्दा प्रमुख नहीं था, लेकिन यह अमेरिका का अब तक का सबसे महंगा चुनाव था। राष्ट्रपति रूजवेल्ट के बाद यह पहला अवसर था, जबकि कोई डेमोक्रेटिक प्रत्याशी दूसरी बार विजयी हुआ हो। ये बीसवीं शताब्दी के अन्तिम राष्ट्रपति तथा 21वीं शताब्दी के प्रथम राष्ट्रपति के रूप में जाने जायेंगे। 20 जनवरी, 1997 को उन्होंने पुनः राष्ट्रपति के रूप में शपथ ग्रहण की।

राष्ट्रपति की शक्तियाँ और कार्य

(Powers and Functions of the President)

आज राष्ट्रपति के अधिकारों और कर्तव्यों का क्षेत्र बहुत व्यापक है। उसकी ये विशाल शक्तियाँ वस्तुतः अनेक स्रोतों का परिणाम रही हैं। प्रथम स्रोत संविधान है। संविधान के अनुच्छेद-2 में कहा गया है कि "अमेरिकी संघ की कार्यपालिका शक्ति एक राष्ट्रपति में निहित होगी।"[1] यद्यपि संवैधानिक उपबन्ध थोड़े और संक्षिप्त हैं, तथापि उनमें जिस ढंग से राष्ट्रपति की शक्तियों और उसके विशेष अधिकारों को परिभाषित किया गया है, उससे राष्ट्रपति की शक्तियों का भारी प्रसार हुआ है। काँग्रेस को यह सत्ता प्राप्त नहीं है कि वह राष्ट्रपति की संवैधानिक शक्तियों को छीन सके या कम कर सके। दूसरा स्रोत न्यायिक निर्णय है जिनके द्वारा राष्ट्रपति की शक्तियों को परिभाषित किया गया है जहाँ संविधान अस्पष्ट था। इस न्यायिक स्पष्टता से राष्ट्रपति को अनेक निहित शक्तियाँ (Implied Powers) प्राप्त हुई हैं। तीसरा स्रोत काँग्रेस के अधिनियम हैं जिनसे समय-समय पर राष्ट्रपति को स्व-विवेक की शक्तियाँ (Discretionary Powers) मिली हैं। चौथा स्रोत परम्पराएँ एवं प्रथाएँ हैं, जिनके द्वारा भी राष्ट्रपति की शक्तियों में पर्याप्त वृद्धि हुई है। अमेरिकी राष्ट्रपति का पद आज किसी भी लोकतान्त्रिक राष्ट्र की तुलना में सर्वाधिक शक्तिशाली पद है।"[2] श्लेसिंगर के शब्दों में—"वाशिंगटन से लेकर अब तक प्रत्येक राष्ट्रपति ने इस पद को अधिक शक्तिशाली बनाने में योग दिया है।"[3] ऑग का मत है कि "अमेरिका का राष्ट्रपति संसार में सबसे अधिक महान् शासक हो गया है।"[4]

1. Article 2 of the American Constitution.
2. *Ferguson & Mc Henry* : Op. cit., p. 361.
3. *Schlesinger* : Riker's Democracy in U.S.A.
4. *Ogg* : Modern Foreign Govts.

मुनरो के अनुसार—"अब तक लोकतन्त्र में किसी भी व्यक्ति ने इतनी अधिक सत्ता का प्रयोग नहीं किया, जितना की अमरीकी राष्ट्रपति करता है।"[1]

यद्यपि अमेरिकी राष्ट्रपति विशाल शक्तियों का उपभोग करता है, तथापि वह सामान्यतः अनेक सीमाओं के अन्दर कार्य करती है और किसी भी दशा में संविधान का उल्लंघन नहीं कर सकता है। राष्ट्रपति की शक्तियाँ और कार्यों को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत विश्लेषित कर सकते हैं—

कार्यपालिका शक्तियाँ (Executive Powers)—अमरीकी राष्ट्रपति को व्यापक कार्यपालिका शक्तियाँ प्राप्त हैं, जो निम्नानुसार है—

(i) शासन-संचालन और विधि का पालन कराने की शक्तियाँ (Powers of Direction of Administration and Compliance of Law)—राष्ट्र का प्रमुख शासक होने के नाते राष्ट्रपति ही संघीय सरकार के प्रशासन सम्बन्धी समस्त कार्यों के लिए अन्तिम रूप से उत्तरदायी है। प्रशासकीय विभागों का संगठन और विस्तार तो काँग्रेस करती है, पर उसके पुनर्गठन और कार्यों का निरीक्षण करना राष्ट्रपति के अधिकार में है। वह देखता है कि सविधान, सविधियों और न्यायिक निर्णयों का पालन समस्त देश में हो रहा है या नहीं। शासन के सफल संचालन के लिए उसे विभिन्न आदेश, नियम, उपनियम आदि जारी करने का अधिकार है। वह कसी भी विभाग के अधिकारी से किसी भी विषय पर प्रतिवेदन अथवा परामर्श माँग सकता है। कार, बर्नस्टील व मर्फी के शब्दों में, "अमेरिकी राष्ट्रपति राज्य भी करता है और शासन भी।[2] स्ट्रॉंग का मत है कि "विश्व में आज किसी सवैधानिक राज्य में कोई ऐसा पदाधिकारी नहीं है जिसकी शक्तियाँ इतनी विशाल हों कि जितनी कि अमेरिकी राष्ट्रपति की हैं।"[3]

राष्ट्रपति का कर्तव्य है कि वह काँग्रेस द्वारा निर्मित कानूनों को पूरी तरह लागू कराए चाहे वह उनसे सहमत हो अथवा नहीं। किसी कानून की वांछनीयता अथवा वांछनीयता को देखने का कार्य काँग्रेस का है और उसकी वैधता या अवैधता का परीक्षण करने का कार्य न्यायपालिका का है।

राष्ट्रपति को पद-ग्रहण करते समय सविधान की रक्षा और उसका पालन करने की शपथ लेता है। अतः इस शपथ को निभाने के लिए राष्ट्रपति सदैव सचेष्ट और सतर्क रहता है। यदि किसी ओर से राष्ट्रपति को खुले विरोध का सामना करना पड़े तो उसे अधिकार है कि वह उस विरोध का प्रतिकार करने के लिए आवश्यक कदम उठाये। ऐसा करते समय वह सेना का भी सहारा ले सकता है।

(ii) नियुक्ति सम्बन्धी शक्तियाँ (Powers of Appointments)—इन शक्तियों के माध्यम से राष्ट्रपति को संघीय अधिकारों की निष्ठा और कांग्रेस के सदस्यों की सक्रिय सहायता प्राप्त होती है'। संविधान राष्ट्रपति को अधिकार देता है कि वह काँग्रेस के निश्चयों और कानूनों को क्रियान्वित करने के लिए आवश्यकतानुसार नियुक्तियाँ करे।

1. *Munro* : The Govts. of Europe.
2. *Carr, Burnstein & Murphy* : The Supreme Court of Judicial Review.
3. *Strong* : Modern Political Constitutions.

इनमें उच्चवर्गीय और निम्नवर्गीय नियुक्तियाँ भी शामिल हैं। उच्चवर्गीय पदों की नियुक्तियाँ राष्ट्रपति सीनेट की स्वीकृति से करता है जबकि निम्नवर्गीय पदों पर नियुक्तियाँ राष्ट्रपति अपनी इच्छा से ही कर सकता है। उच्चवर्गीय पदों में मन्त्री अथवा सचिव, विदेशों में अमेरिकी राजदूत, वाणिज्य दूत, विशेष दूत, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश, सुरक्षा समिति तथा सर्वोच्च परिषद् के सदस्य, केन्द्रीय शासन के अध्यक्ष तथा बड़े-बड़े अधिकारों के पद सम्मिलित होते हैं। इन सभी की नियुक्तियों के सम्बन्ध में संविधान के अनुसार सीनेट की स्वीकृति आवश्यक है। व्यवहार में प्राय: सीनेट इनको अस्वीकृत नहीं करती। न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति पर अथवा किसी अन्य महत्वपूर्ण नियुक्ति पर निश्चय ही सीनेट बड़े वाद-विवाद के बाद स्वीकृति देती है। ऐसे भी अवसर आए हैं जब सीनेट ने कुछ नियुक्तियों पर अपनी अस्वीकृति प्रदान की है।

निम्नस्तरीय पदों पर नियुक्तियाँ करने का अधिकार यद्यपि राष्ट्रपति का है तथापि सुविधा की दृष्टि से राष्ट्रपति ने यह भार विभिन्न विभागों के अध्यक्षों को सौंप दिया है।

उल्लेखनीय है कि उच्च-स्तरीय नियुक्तियों के विषय में सीनेट के अनुसमर्थन का जो प्रतिबन्ध है, उसका प्रभाव व्यवहार में राष्ट्रपति की नियुक्ति सम्बन्धी शक्ति पर विशेष नहीं पड़ता है। इसका प्रमुख कारण उस प्रथा का प्रचलन है, जिसे 'सीनेट की शालीनता या सौहार्दता' (Senatorial Courtesy) कहा जाता है। इस प्रथा के अनुसार सीनेट के सदस्य राष्ट्रपति द्वारा संघीय प्रशासन में की गई नियुक्तियों को इसलिए स्वीकार कर लेते हैं कि राष्ट्रपति राज्यों में उनकी पसन्द के व्यक्तियों को नियुक्त कर दें। इस परम्परा का लाभ वे सीनेटर भी उठा सकते हैं जो राष्ट्रपति के दल के नहीं हैं। सीनेट और राष्ट्रपति की इस पारस्परिक लेन-देन की परम्परा ने संविधान-निर्माताओं के उस उद्देश्य को लगभग समाप्त ही कर दिया है जिसकी पूर्ति के लिए उन्होंने नियुक्तियों पर सीनेट की सहमति की व्यवस्था की थी।

राष्ट्रपति कुछ नियुक्तियाँ उस समय भी कर सकता है जब सीनेट का अधिवेशन नहीं हो रहा हो। ऐसी नियुक्तियाँ 'अन्तरिम नियुक्तियाँ' (Recess Appointments) कहलाती हैं परन्तु सीनेट का सत्र आरम्भ होते ही राष्ट्रपति को इन नियुक्तियों के लिए उससे स्वीकृति लेनी पड़ती है। यदि सीनेट स्वीकृति देने से इन्कार कर दे तो राष्ट्रपति सीनेट का अधिवेशन समाप्त होने के बाद इन नियुक्तियों को पुनर्जीवित कर सकता है। अन्तरिम नियुक्तियों की इस शक्ति के कारण राष्ट्रपति का प्रभाव क्षेत्र पर्याप्त रूप से बढ़ गया है। राष्ट्रपति के द्वारा इस अधिकार का दुरुपयोग न हो, इसके लिए उस पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया है कि यदि राष्ट्रपति किसी ऐसे पद पर नियुक्ति करता है, जो सीनेट के अधिवेशन-काल में विद्यमान था, तो उस पर नियुक्त व्यक्ति को तब तक वेतन नहीं मिलेगा जब तक उसकी नियुक्ति की पुष्टि सीनेट विधिवत् रूप से न कर दे। संविधान के 25वें संशोधन ने राष्ट्रपति को यह अधिकार भी दे दिया है कि उप-राष्ट्रपति का पद रिक्त हो जाने पर वह उप-राष्ट्रपति की नियुक्ति कर दे, यद्यपि इस पर भी सीनेट की स्वीकृति प्राप्त होना अनिवार्य है।

(iii) पदच्युति की शक्तियाँ (Powers of Removal)—इस सम्बन्ध में संविधान मौन है तथापि काँग्रेस द्वारा अन्तिम रूप से यही निर्णय किया गया है कि किसी को

पदच्युत करने का अधिकार केवल राष्ट्रपति को ही होगा, और इसके लिए सीनेट की अनुमति आवश्यक नहीं होती। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तीन वर्ग अपवाद हैं, अर्थात् निम्नांकित वर्गों के अधिकारियों को राष्ट्रपति स्वयं पदच्युत् नहीं कर सकता—

(क) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश जिन्हें केवल महाभियोग द्वारा ही हटाया जा सकता है।

(ख) कॉंग्रेस द्वारा स्थापित विभिन्न आयोगों और बोर्डों के सदस्य जिन्हें कॉंग्रेस द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार ही पदच्युत किया जा सकता है।

(ग) लोक सेवा नियमों के अनुसार हुई नियुक्तियाँ जिन्हें केवल तभी विमुक्त किया जा सकता है जब उनके द्वारा लोक सेवा की कार्य-कुशलता में बाधा पड़े।

राष्ट्रपति के हाथों में राष्ट्र के सम्पूर्ण प्रशासनिक ढाँचे पर नियन्त्रण रखने की इतनी अधिक शक्ति है कि वह उसके बल पर लोगों को स्वयमेव त्याग-पत्र देने पर बाध्य कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा निश्चित किया गया है कि सीनेट अथवा कॉंग्रेस राष्ट्रपति को किसी अधिकारी को पदच्युत करने के लिए विवश नहीं कर सकती।

(iv) सशस्त्र बलों के प्रधान सेनापति के रूप में सैनिक शक्तियाँ (Military Powers as Supreme Commander of Armed Forces)—युद्ध और शान्ति दोनों ही काल में राष्ट्रपति संयुक्त राज्य अमेरिका की सेना का प्रधान सेनापति है। इस नाते वही उच्च सैनिक अधिकारियों की नियुक्तियाँ करता है, पर इन नियुक्तियों के लिए सीनेट का अनुसमर्थन आवश्यक होता है। युद्धकाल में राष्ट्रपति को सभी प्रकार के सैनिक अधिकारियों को सेवामुक्त करने का अधिकार होता है। वह आवश्यकता पड़ने पर सभी सेनाओं को कार्य करने का आदेश दे सकता है। सरकार के प्रत्यक्ष विरोध की स्थिति में, संघ परिनियमों के अन्तर्गत, वह संयुक्त राज्य की सैनिक शक्ति का प्रयोग कर सकता है। देश की प्रतिरक्षा और शत्रु को पराजित करने के उद्देश्य से वह कोई भी कार्यवाही कर सकता है। वह अमेरिकी सेनाओं को विश्व के किसी भी स्थान पर भेज सकता है। यद्यपि राष्ट्रपति कॉंग्रेस की स्वीकृति के बिना युद्ध की घोषणा नहीं कर सकता तथापि युद्ध को समाप्त करने तथा निलम्बित करने का अधिकार केवल राष्ट्रपति को ही है। यद्यपि सीनेट की सम्मति से ही वह युद्ध की घोषणा कर सकता है, तथापि अपनी व्यापक शक्तियों और प्रभाव के कारण ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकता है अथवा सेना को ऐसी स्थिति में खड़ा कर सका है कि युद्ध अनिवार्य हो जाए।

मुनरो कम का मत है कि "युद्धकाल में राष्ट्रपति की शक्तियाँ उतनी ही अधिक हैं, जितनी नैपोलियन या ऑलीवर क्राम्वेल की थीं।"[1]

सेना के प्रमुख के रूप में राष्ट्रपति को विजित प्रदेशों पर इच्छानुसार शासन करने का अधिकार है। विजित प्रदेशों का शासन वह उस समय तक एक अधिनायक (Dictator) की भाँति कराता है जब तक कॉंग्रेस नागरिक प्रशासन की व्यवस्था न कर

1 *Munro* : The National Govt. of United States.

है। संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व का सबसे शक्तिशाली राष्ट्र है। अतः अमेरिकी राष्ट्रपति विश्व का सबसे शक्तिशाली व्यक्ति है।

(v) वैदेशिक विषयों से सम्बन्धित शक्तियाँ (Powers Regarding Foreign Affairs)—वैदेशिक अथवा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में राष्ट्रपति ही देश का सबसे प्रमुख प्रवक्ता है। राष्ट्रीय विदेश-नीति का उत्तरदायित्व उसी पर है। राष्ट्रपति को राजदूतों और विदेशों में अपने देश के प्रतिनिधियों को नियुक्त करने का अधिकार है। विदेशी राजदूतों, वाणिज्य दूतों और विशेष दूतों के प्रमाण-पत्र वही स्वीकार करता है और इस प्रकार विदेशी सरकारों को मान्यता देता है। वह किसी राष्ट्र के राजनयिक प्रतिनिधि या दूत को अवांछनीय घोषित करके उसे देश छोड़ने के लिए बाध्य कर सकता है। राष्ट्रपति ही विदेशों से सन्धियाँ सम्पन्न करता है और उन पर हस्ताक्षर करता है। यद्यपि इन सन्धियों अथवा समझौतों पर सीनेट के दो-तिहाई मत से पुष्टि की आवश्यकता होती है, तथापि सन्धि का प्रारूप तैयार करने और उसके बारे में सम्बन्धित विदेशी राष्ट्रों से वार्ता करने आदि का कार्य राष्ट्रपति ही करता है। व्यावहारिक दृष्टि से विदेश नीति का स्वरूप राष्ट्रपति पर ही निर्भर करता है।

प्रशासकीय अथवा कार्यपालिका सम्बन्धी समझौते करने का अधिकार राष्ट्रपति को है। इन पर सीनेट की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती। उदाहरण के लिए, द्वितीय महायुद्ध काल में विध्वंसक समुद्री अड्डों के बारे में और ब्रिटिश उपनिवेश को पट्टे पर लेने के सम्बन्ध में जो समझौते ब्रिटेन से किए गए थे वे प्रशासकीय समझौते ही थे।

वैदेशिक सम्बन्धों के संचालन में राष्ट्रपति विदेशों से आवश्यकतानुसार गुप्त समझौते भी करता है। अपने व्यापक प्रभाव और अधिकार-क्षेत्र के कारण वह गुप्त रूप से किसी विदेश को अपने साथ और अपने को किसी विदेश के साथ किसी नीति विशेष पर चलने के लिए वचनबद्ध कर सकता है।

(vi) स्वविवेकीय शक्ति (Discretionary Powers)—इन शक्तियों के बल पर राष्ट्रपति किसी व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह को कोई काम करने से रोक सकता है अथवा कोई कार्य करने के लिए बाध्य कर सकता है। इस शक्ति के प्रयोग में न्यायालय रुकावट नहीं करता। वस्तुतः राष्ट्रपति इतनी व्यापक शक्तियों का स्वामी है कि न्यायालय भी अपने निर्णय कार्यान्वित कराने में राष्ट्रपति पर ही निर्भर रहता है।

विधायी शक्तियाँ (Legislative Powers)

संविधान निर्माताओं का प्रयत्न यह रहा था कि कार्यपालिका के अधिकारों का व्यवस्थापन में कोई हाथ न रहे, किन्तु आज राष्ट्रपति का विधि-निर्माण में बहुत बड़ी भूमिका है। व्यवस्थापन कार्यों में भाग लेने की शक्ति राष्ट्रपति ने संविधान के इन शब्दों से ग्रहण कर ली है—"राष्ट्रपति समय-समय पर राष्ट्र की स्थिति के सम्बन्ध में काँग्रेस को सूचना देता रहेगा और साथ ही उन पर विचार के लिए वह व्यवस्थाओं की सिफारिश भी करता रहेगा जिनको वह आवश्यक तथा उपयोगी समझता हो।"

पौटर के शब्दों में—"संविधान ने राष्ट्रपति को विधायी प्रक्रिया के प्रारम्भ और अन्त में स्थान दिया है।"[1]

व्यवस्थापन के क्षेत्र में राष्ट्रपति की शक्तियों को निम्नांकित रूप से विश्लेषित किया जाता है—

(i) काँग्रेस को सन्देश भेजने का अधिकार (Powers to send Message to Congress)—राष्ट्रपति काँग्रेस को आन्तरिक और बाह्य परिस्थिति का ज्ञान कराने के लिए सन्देश भेज सकता है और यह सुझाव भी दे सकता है कि क्या किया जाना चाहिए। सन्देश काँग्रेस के क्लर्क के पास मौखिक या लिखित रूप में भेजा जा सकता है। राष्ट्रपति अपने सन्देश में उपायों, सुझावों और विधेयकों तक का उल्लेख कर देता है। ये सन्देश राष्ट्रपति की नीति को स्पष्ट करते हैं और काँग्रेस इन्हें अपनी कार्यवाही में प्राथमिकता देती है। राष्ट्रपति के सन्देश समाचारपत्रों में प्रकाशित होते हैं जिनके माध्यम से वह जनमत को प्रभावित करता है। जनमत के प्रभाव के कारण काँग्रेस राष्ट्रपति के सन्देशों के अनुसार आचरण करने को बाध्य हो जाती है। वैधानिक रूप में काँग्रेस राष्ट्रपति के सन्देश मानने को बाध्य नहीं है, किन्तु व्यवहार में इन आदेशों के अनुसार ही वह अपना विधायी कार्य प्रारम्भ करती है। इसमें कोई संशय नहीं है कि बहुत से कानूनों का सूत्रपात केवल राष्ट्रपति के सन्देशों से ही होता है।

(ii) प्रशासकीय अध्यादेश (Ordinance Power)—हाल ही में यह परम्परा विकसित हो गई है कि राष्ट्रपति ऐसे प्रशासकीय आदेश जारी करता है, जिनकी शक्ति कानूनों के समान ही होती है। सामान्यतः सरकार के कार्यों का स्वरूप और विस्तार का निर्णय करने वाले सामान्य कानून काँग्रेस द्वारा बनाए जाते हैं लेकिन उनके सम्बन्ध में उपनियमों का निर्माण राष्ट्रपति करता है।

(iii) विशेष अधिवेशन बुलाने का अधिकार (Power of Calling Special Sessions of the Congress)—संविधान राष्ट्रपति को काँग्रेस का विशेष अधिवेशन आमन्त्रित करने की शक्ति प्रदान करता है। यह विशेष अधिवेशन कुछ दिनों तक चल सकता है अथवा उस समय तक चल सकता है जब तक कि नियमित अधिवेशन आरम्भ न हो। राष्ट्रपति काँग्रेस से नियमित अधिवेशन में अधिक काल तक बैठने के लिए माँग कर सकता है ताकि कानून बनाए जा सकें और यदि काँग्रेस इन्कार करे तो वह विशेष अधिवेशन बुलाने के अधिकार का प्रयोग कर सकता है।

(iv) विलम्बकारी निषेधाधिकार (Veto Power)—राष्ट्रपति काँग्रेस द्वारा निर्मित विधेयकों पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर सकता है। परन्तु यह प्रतिबन्ध या निषेध केवल निलम्बनकारी होता है, पूर्ण नहीं व्यवस्था यह है कि कोई भी विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति के बिना कानून का रूप धारण नहीं कर सकता। काँग्रेस के दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत जो विधेयक अनुमति के लिए राष्ट्रपति के पास आया हो, उसे राष्ट्रपति अपने आक्षेपों सहित दस दिन (रविवारों को छोड़कर) के भीतर वापस लौटा सकता है। यह राष्ट्रपति का निलम्बनकारी निषेधाधिकार अथवा नियमित निषेधाधिकार (Suspensive or

1. *Potter, A.M* : American Govt. and Politics p 197.

Regular Veto) कहलाता है। इस प्रकार लौटाए गए विधेयक तब तक कानून नहीं बन सकते जब तक कि काँग्रेस के दोनों सदनों में दो-तिहाई बहुमत से ज्यों के त्यों पारित न हो जाएँ। यदि विधेयक काँग्रेस द्वारा पुन: पारित कर दिया जाता है तो राष्ट्रपति उसे नहीं रोक सकता। राष्ट्रपति का निलम्बनकारी निषेधाधिकार बड़े काम का है क्योंकि इससे वह जल्दबाजी में किए हुए व्यवस्थापन पर फिर से विचार करने के लिए काँग्रेस को बाध्य कर सकता है।

(v) जेबी निषेधाधिकार (Pocket Veto)—विधेयक के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को एक अन्य प्रकार का भी निषेधाधिकार प्राप्त है जिसे जेबी निषेधाधिकार कहते हैं। व्यवस्था यह है कि जब काँग्रेस का सत्र चल रहा हो तो उसमें यदि राष्ट्रपति के पास कोई विधेयक स्वीकृति के लिए आता है और राष्ट्रपति की टेबिल पर ही दस दिन पड़ा रह जाता है तो वह स्वत. ही कानून का रूप ले लेता है चाहे राष्ट्रपति ने उस पर दृष्टिपात न किया हो, परन्तु कोई विधेयक राष्ट्रपति के काँग्रेस-सत्र के अन्त के निकट भेजा जाता है और दस दिन की अवधि की समाप्ति के पूर्व ही सत्र विघटित हो जाता है तब राष्ट्रपति उस विधेयक पर कोई कार्यवाही न कर उसको समाप्त कर सकता है अर्थात् यदि काँग्रेस के सत्र के अन्तिम दस दिनों में वह किन्हीं भी विधेयकों को बिना स्वीकृति या अस्वीकृति दिए पड़े रहने देता है, तो उन्हें काँग्रेस फिर अपने दो-तिहाई बहुमत से भी पारित नहीं कर सकती क्योंकि उसका सत्र समाप्त हो जाता है। परिणाम यह होता है कि वे विधेयक बिना अस्वीकृति के ही अस्वीकृत हो जाते हैं। इस प्रकार कोई कार्यवाही न कर विधेयक को समाप्त करने का अधिकार राष्ट्रपति का जेबी निषेधाधिकार कहलाता है।

स्मरणीय है कि राष्ट्रपति के निषेधाधिकार का प्रयोग प्रस्तावित संवैधानिक संशोधनों पर नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण विधेयक को वीटो किया जाता है, उसके किसी अंश को नहीं।

(vi) संरक्षण शक्तियाँ (Reserved Powers)—राष्ट्रपति अपनी विशाल संरक्षण शक्ति द्वारा काँग्रेस से अपने विधेयकों का समर्थन करा सकता है। राष्ट्रपति द्वारा बहुसख्यक नियुक्तियाँ की जाती हैं और काँग्रेस सदस्य अपने दल के अनुयायियों के लिए नौकरियाँ चाहते हैं। इनको नौकरियाँ दिलवाने के लिए बहुधा राष्ट्रपति का समर्थन करना होता है।

(vii) जनता से अपील (Power of Appeal)—राष्ट्रपति राष्ट्र का सम्मानित नेता होता है। जब वह काँग्रेस को अपने विरुद्ध समझता है तो वह जनता से सीधे अपील करके काँग्रेस में अपने विरोधियों के विरुद्ध लोकमत बनाने की सफल चेष्टा कर सकता है। काँग्रेस को सही रास्ते पर लाने के लिए अमेरिका में राष्ट्रपतियों ने कई बार इस शस्त्र का उपयोग किया है। इससे वह काँग्रेस पर दबाव स्थापित करता है।

वित्तीय शक्तियाँ (Financial Powers)

संविधान के अनुसार वित्त सम्बन्धी अधिकार यद्यपि काँग्रेस को ही प्राप्त हैं, तथापि व्यवहार में वित्तीय क्षेत्र में भी काँग्रेस तथा राष्ट्रपति के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है।

बजट के सम्बन्ध मे नीति-निर्धारण या दोनों सदनो के मध्य सहयोग के लिए कोई प्रभावशाली निकाय नहीं है। अतः व्यवस्थापिका नेतृत्व के लिए मुख्यतः कार्यपालिका पर निर्भर करती है। 1921 ई. के बजट एवं अकाउण्टिंग अधिनियम (Budget and Accounting Act of 1921) से राष्ट्रपति को बजट का निर्देशक बहुत-कुछ राष्ट्रपति के हाथ में आ गया है। फिर भी वह इस क्षेत्र में मनमानी शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता है। अनेक अवसरों पर कॉंग्रेस ने राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तावित आँकड़ों में कटौतियाँ और परिवर्तन किए है।

न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers)

देश का प्रधान होने के कारण राष्ट्रपति को अपराधी को क्षमा करने अथवा उसके प्राणदण्ड को स्थगित करने का अधिकार है। राष्ट्रपति कॉंग्रेस एवं न्यायालयों से पूर्ण स्वतन्त्र होकर अपने क्षमादान करने के अधिकार का प्रयोग करता है, तथापि इनके प्रयोग में उस पर दो वैधानिक सीमाएँ है—(1) जिस व्यक्ति को महाभियोग द्वारा दण्डित किया गया हो, राष्ट्रपति उसे क्षमा नहीं कर सकता, एव (2) राष्ट्रपति केवल उन्हीं मामलों में अपने क्षमादान के अधिकार का प्रयोग कर सकता है जिनमें अपराध सघीय कानूनों के विरुद्ध किया गया हो, न कि किसी राज्य के कानून के विरुद्ध। यदि कोई अपराधी राष्ट्रपति को क्षमादान के लिए प्रार्थना-पत्र भेजे तो राष्ट्रपति उस पर इनमें से कोई भी कार्यवाही कर सकता है : (1) पूर्ण अथवा बिना शर्त क्षमादान, (2) सशर्त क्षमादान, (3) बिना क्षमा किए अभिवचन (Parole) पर मुक्ति, (4) दण्ड घटा देना, (5) प्राणदण्ड का स्थगन अथवा विधिवत् स्थगन के दण्ड देने में विलम्ब करना, एवं (6) कोई भी कार्यवाही करने से इन्कार कर देना।

राष्ट्रपति ऐसे अपराधियों को सामूहिक क्षमादान भी दे सकता है जिन्हें व्यक्तिगत रूप में दण्डित न कर संघीय कानून को भंग करने के अपराध में एक साथ दण्डित किया गया हो। राष्ट्रपति क्षमादान के अपने अधिकार का प्रयोग न्याय विभाग की सिफारिश के अनुसार ही करता है। साधारणतया राष्ट्रपति का कार्य सिफारिश को लागू करना मात्र होता है, परन्तु जो कुछ भी किया जाता है उसका अन्तिम उत्तरदायित्व राष्ट्रपति पर ही होता है और इस दशा मे वह कॉंग्रेस एवं न्यायालयों से पूर्ण स्वतन्त्र होता है।

दलीय नेता और राष्ट्र-नेता के रूप मे
(As a Party Leader and National Leader)

राष्ट्रपति को राष्ट्रीय नेता के रूप में महती शक्तियाँ स्वतः प्राप्त हो जाती हैं। आज तो राष्ट्रपति द्वारा दल का नेतृत्व ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के दलीय नेतृत्व से कम महत्वपूर्ण नहीं रह गया है। दल के नेता के रूप में ही वह निर्वाचित होता है। अपनी विधायी योजनाओं के लिए राष्ट्रपति अपने दल के कॉंग्रेस सदस्यों पर निर्भर करता है। सम्पूर्ण देश में राष्ट्रपति ही दल का एक मात्र सर्वोच्च प्रतिनिधि होता है और दलीय नीतियों के कार्यान्वयन के लिए सम्पूर्ण राष्ट्र की आँखे उसकी तरफ लगी रहती हैं। राष्ट्रपति को दल के सर्वोच्च नेता और निर्देशक की स्थिति प्राप्त है। इस स्थिति में वह दल की राष्ट्रीय

चुनाव, कार्यकाल एवं उत्तरदायित्व—दोनों ही अपने-अपने राज्य के निर्वाचित प्रतिनिधि हैं। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री जनता की अप्रत्यक्ष पसन्द होता है। देश के मतदाता मत देकर उसे पद पर आसीन करते हैं। अमेरिका का राष्ट्रपति जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुना जाता है, इसलिए वह जनमत को अधिक प्रभावित करता है।

ब्रिटिश प्रधानमन्त्री का कार्यकाल संसद् के विश्वास पर निर्भर है जबकि राष्ट्रपति का कार्यकाल चार वर्ष के लिए सुनिश्चित है। प्रधानमन्त्री अपने मन्त्रिमण्डल सहित सामूहिक रूप से संसद् के प्रति उत्तरदायी होता है। उसकी स्थिति बड़ी नाजुक होती है और हर समय वह संसद के विश्वास पर निर्भर रहता है। उसे संसद् के विश्वास को बनाये रखने के लिए निरन्तर प्रयास करना पड़ता है। राष्ट्रपति का कांग्रेस के प्रति ऐसा कोई उत्तरदायित्व नहीं है। वह कांग्रेस की आलोचना और विश्वास की परवाह नहीं करता। कांग्रेस केवल महाभियोग द्वारा ही उसे हटा सकती है जो अत्यन्त कठिन कार्य है।

अधिकार एवं कार्य (Powers and Functions)

(1) राष्ट्रपति अपने मन्त्रिमण्डल का सर्वेसर्वा होता है। मनोनयन और पदच्युति के सम्बन्ध में उनका एकाधिकार होता है। राष्ट्रपति की मन्त्रिपरिषद् एक परामर्शदात्री संस्था के रूप में है जिसके परामर्श को मानना या ठुकराना पूर्णत: राष्ट्रपति की इच्छा पर है। यह भी अनिवार्य नहीं है कि वह मन्त्रिपरिषद् से परामर्श ले। दोनों का सम्बन्ध बहुत कुछ स्वामी और सेवक का सा है। 'मन्त्रिमण्डल में केवल एक मत, राष्ट्रपति के मत का महत्त्व होता है'[1] जबकि ब्रिटिश ओर प्रधानमन्त्री की मन्त्रिरिषद् के सदस्यों में गणना 'बराबर वालों में प्रथम' की है। वह मन्त्रिपरिषद् का स्वामी नहीं अपितु एक मान्य नेता होता है जिसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर अपने मन्त्रियों की सलाह लेनी होती है और उस सलाह की इज्जत करनी पड़ती है। प्रधानमन्त्री को अनेक अवसरों पर मन्त्रिपरिषद् के बहुमत के दृष्टिकोण को अपनी इच्छा के विरुद्ध भी अपनाना पड़ता है क्योंकि प्रभावशाली मन्त्रियों से टकराने पर उसके नेतृत्व और पद दोनों ही खतरे में पड़ सकते हैं। किसी मन्त्री से त्याग-पत्र माँगने से पहले उसे अपनी मजबूती को आकना पड़ता है।

(2) विधि-निर्माण के क्षेत्र (Legislation Sphere) में राष्ट्रपति की शक्ति प्रधानमन्त्री से कहीं कम है। इस क्षेत्र में प्रधानमन्त्री और उसका मन्त्रिमण्डल ही एक प्रकार से व्यवस्थापिका का कार्य करता है। राज्य की विधायी नीति और कार्यों का पथ-प्रदर्शन करना, विधेयकों को संसद् में प्रस्तावित करना और बहुमत के बल पर वहाँ से पारित कराना प्रधानमन्त्री तथा उसके सहयोगियों का काम है। सैद्धान्तिक रूप से संसद् कानून का काम करती है पर व्यावहारिक रूप में यह प्रधानमन्त्री और उसके मन्त्रिमण्डल का कार्य होता है। बहुमत के विश्वास का भोक्ता प्रधानमन्त्री व्यवहार में व्यवस्थापिका का स्वामी बना रहता है और सभी विधेयकों को से पारित कराने में समर्थ होता है। उसका यह क्षेत्र ऐसा व्यापक है कि अमेरिकी राष्ट्रपति उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। अमेरिका के राष्ट्रपति के पास ऐसी कोई विधायी शक्ति नहीं है। वह

1 *"The only Counts is the President's own"* —*Lincoln*

व्यवस्थापिका का अंग ही नहीं है। न वह किसी कानूनी कार्यवाही में भाग ले सकता है और न इच्छित विधेयकों को कांग्रेस से पारित ही कर सकता है। वह केवल कांग्रेस से सिफारिश करा सकता है और कांग्रेस को यह पूर्ण अधिकार है कि वह उसकी अभिशंषाओं को माने या ठुकरा दे। अमेरिका की जनता अनुचित कानूनों के लिए अपने राष्ट्रपति को दोषी नहीं मानती जबकि ब्रिटेन की जनता उनके लिए प्रधानमन्त्री को ही दोषी ठहराती है। लॉस्की के मतानुसार, "वह (अमरीकी राष्ट्रपति) तर्क कर सकता है, धमकी दे सकता है, खुशामद कर सकता है, समझा सकता है परन्तु वह सदैव कांग्रेस के बाहर है और एक ऐसी इच्छा के अधीन है जिस पर उसका कोई नियन्त्रण नहीं है।"[1]

(3) आर्थिक क्षेत्र (Economic Sphere) में भी ब्रिटिश प्रधानमन्त्री को ही अधिक शक्तियाँ प्राप्त हैं। वित्त मन्त्री बजट को प्रधानमन्त्री की देख-रेख में तैयार करता है और लोकसदन में उसे पारित कराने का पूर्ण उत्तरदायित्व प्रधानमन्त्री और उसके सहयोगियों का है। यदि बजट में नाममात्र के संशोधन किए भी जाते हैं तो वे प्रधानमन्त्री की सहमति से ही किए जाते हैं किन्तु अमेरिका में राष्ट्रपति का वित्तीय क्षेत्र में ऐसा कोई अधिकार नहीं है। यद्यपि वहाँ भी बजट राष्ट्रपति की देख-रेख में तैयार किया जाता है, तथापि कांग्रेस के समक्ष न तो वह स्वयं उसे प्रस्तुत कर सकता है और न उसके मन्त्री ही। राष्ट्रपति को ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की भाँति यह भरोसा नहीं होता कि बजट कांग्रेस द्वारा अपने मूल रूप में पारित भी हो जाएगा। अमेरिकी राष्ट्रपति के बजट को पास करना या ठुकरा देना पूर्णरूप से कांग्रेस के हाथ में है जबकि ब्रिटेन में प्रधानमन्त्री बहुमत के बल पर लोकसदन से उसे अपनी इच्छानुसार पारित करा लेता है।

(4) प्रशासनिक क्षेत्र (Administrative Sphere) में अमेरिकी राष्ट्रपति की स्थिति ब्रिटिश प्रधान मन्त्री से अधिक सुदृढ़ है। अमेरिकी राष्ट्रपति देश का प्रधान है और स्थल, जल व वायु सेना का प्रधान सेनापति है। वह सीनेट की सहमति से उच्च वर्ग के अधिकारियों की नियुक्ति करता है। उन्हें पदच्युत करने का भी उसे अधिकार है और इस विषय में उसे सीनेट की स्वीकृति की भी आवश्यकता नहीं होती। निम्नवर्गीय नियुक्तियाँ वह स्वविवेक से करता है। इस प्रकार उसे विशाल संरक्षण-शक्ति प्राप्त है। राज्य के कानूनों के उचित कार्यान्वयन का उत्तरदायित्व भी उसी पर है। वह अपने विवेक से अध्यादेश जारी कर सकता है एवं प्रशासकीय समझौता कर सकता है। सीनेट की सहमति से वह सन्धियाँ सम्पन्न करता है। संकटकाल में राष्ट्रपति एक प्रकार से तानाशाह बन जाता है।

ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के हाथ में कार्यकारिणी शक्तियाँ तो हैं साथ ही वह लोकसदन का नेता भी होता है। उसे यह अधिकार भी प्राप्त है कि वह एक अतिशय विरोधी एवं अवांछनीय लोकसदन को सम्राट द्वारा भंग करा दे; क्योंकि लोकसदन के सदस्य नव-निर्वाचन के संकट का सामना करना पसन्द नहीं करते अतः वे प्रायः प्रधानमन्त्री का विरोध एक सीमा तक ही करते हैं। यह बात अमेरिकी राष्ट्रपति पर लागू नहीं होती। वह केवल मात्र कार्यपालिका का अध्यक्ष है। वह न तो कांग्रेस का नेता ही है और न उसे कांग्रेस को भंग करने की ही शक्ति प्राप्त है।

1. *Laski, H.J.* : The American Presidency, p 24

(5) न्यायिक नियन्त्रण (Judicial Control) की दृष्टि से भी ब्रिटिश प्रधानमन्त्री राष्ट्रपति से अधिक शक्ति-सम्पन्न है। उस पर किसी प्रकार के संवैधानिक प्रतिबन्ध विशेष प्रभाव नहीं डालते। यदि वह कोई संविधान-विरोधी कार्य करे तो भी ब्रिटेन का सर्वोच्च न्यायालय उसे अवैध घोषित नहीं कर सकता किन्तु इसके विपरीत अमेरिकी राष्ट्रपति को पूर्णतः संवैधानिक सीमाओं के अन्तर्गत ही शासन करना पड़ता है अन्यथा सर्वोच्च न्यायालय उसके कार्यों को अवैध घोषित कर सकता है।

कार्यपालिका की उपर्युक्त सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक तुलना के बाद हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यदि कुछ क्षेत्रों में अमेरिकी राष्ट्रपति ब्रिटिश प्रधानमन्त्री से निर्बल है तो अन्य क्षेत्रों में वह उससे अधिक शक्तिशाली है। वास्तविकता यह है कि प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के पद का महत्त्व बहुत कुछ उनके व्यक्तित्व पर आधारित है।

राष्ट्रपति का मन्त्रिमण्डल

(Cabinet of the President)

ब्रिटेन की भाँति अमेरिका में भी मन्त्रिमण्डल का अस्तित्व है, किन्तु दोनों में पर्याप्त अन्तर है, जिसका पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है। अमेरिकन मन्त्रिमण्डल की संवैधानिक और संस्थागत स्थिति का विश्लेषण निम्नानुसार किया जा सकता है—

कानूनी स्थिति (Legal Position)

अमेरिकी संविधान में मन्त्रिमण्डल या मन्त्रिपरिषद् का उल्लेख नहीं है। केवल अनुच्छेद की धारा 2 में प्रावधान है कि "राष्ट्रपति सरकार के विविध प्रशासकीय विभागों के प्रधान पदाधिकारियों से उन विषयों पर लिखित रूप में परामर्श ले सकता है जिनका उन विभागों के साथ सम्बन्ध है।"[1] यह व्यवस्था करते हुए संविधान निर्माताओं में से अधिकांश का विचार था कि सीनेट के सदस्य ही राष्ट्रपति के परामर्शदाता के रूप में कार्य करेंगे। इस विचार का कारण यह था कि सीनेट उस समय एक छोटी-सी संस्था थी जिसमें मात्र 26 सदस्य थे। दुर्भाग्यवश सीनेट द्वारा परामर्श लेने की यह परम्परा चल नहीं सकी क्योंकि सीनेट ने राष्ट्रपति की इच्छाओं का खुलकर तिरस्कार किया। तब वाशिंगटन ने शासन के प्रमुख अधिकारियों से महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर सलाह लेना शुरु कर दिया। सन् 1791 के बाद तो उन्होंने प्रमुख विभागाध्यक्षों का प्रायः नियमित सम्मेलन प्रारम्भ कर दिया। उनसे नीति-नियन्त्रण के प्रश्नों पर भी सलाह ली जाने लगी। ये ही विभागाध्यक्ष बाद में सामूहिक रूप से मन्त्रिमण्डल कहे जाने लगे। सम्भवतः सन् 1793 से सर्वप्रथम उसके लिए मन्त्रिमण्डल शब्द का प्रयोग होने लगा। धीरे-धीरे यह स्थाई व्यवस्था या संस्था के रूप में स्थापित हो गया।

अमेरिकी मन्त्रिमण्डल किसी संवैधानिक कानून की उपज नहीं है। विलियम हावर्ड टैफ्ट (Taft) ने उसकी स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि "मन्त्रिमण्डल केवल राष्ट्रपति की इच्छा का उत्पादन है। वह एक ऐसी संस्था है जिसका कोई कानूनी या सांविधानिक आधार नहीं है। उसका अस्तित्व केवल प्रथागत है। यदि राष्ट्रपति उसे

1 Article II, Sec. II of U.S. Constitution

समाप्त करना चाहे तो वह कर सकता है।"[1] फिर भी व्यावहारिक रूप से आज मन्त्रिमण्डल की स्थिति सरकार का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन चुकी है।

मन्त्रिमण्डल की नियुक्ति एवं संगठन

(Appointment and Composition of the Cabinet)

राष्ट्रपति के मन्त्रियों को सचिव कहा जाता है जो प्रशासकीय विभागों के अध्यक्ष होते हैं। मन्त्रियों की नियुक्ति पर राष्ट्रपति को सीनेट की स्वीकृति लेनी होती है, किन्तु सीनेट राष्ट्रपति द्वारा की हुई नियुक्ति को प्रायः अस्वीकार नहीं करती है। राष्ट्रपति के मन्त्री न कांग्रेस के सदस्य होते हैं और न ही उसके प्रति उत्तरदायी। राष्ट्रपति अपने मन्त्रिमण्डल के गठन में पूर्ण स्वतन्त्र है, तथापि व्यवहार में उसे निम्नांकित बातों का ध्यान रखना पड़ता है—

(1) राष्ट्रपति को निर्वाचन में सहायता देने वाले प्रमुख व्यक्तियों में से एक या दो व्यक्तियों को भी मन्त्रिमण्डल में शामिल किया जाता है।

(2) राष्ट्रपति अपने दल के प्रमुख लोगों को मन्त्रिमण्डल में प्रतिनिधित्व देता है।

(3) राष्ट्रीय संकट के समय कभी-कभी सार्वजनिक जीवन के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों को भी मन्त्रिमण्डल में शामिल करना पड़ता है।

(4) राष्ट्रपति देश के प्रमुख क्षेत्रों और वर्गों को भी मन्त्रिमण्डल में स्थान देता है।

(5) राष्ट्रपति ऐसे ही व्यक्तियों को मन्त्रिमण्डल में स्थान देने का प्रयत्न करता है जो एक टीम की तरह कार्य कर सकें।

मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्यों का पद साधारण रूप से समान होता है, तथापि विदेश सचिव का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। 1947 ई. के राष्ट्रपति पद के उत्तराधिकार कानून द्वारा भी उसका स्थान अन्य सहयोगियों में प्रथम रखा गया है। मन्त्रिमण्डल के सम्बन्ध में राष्ट्रपति की सर्वोच्चता का उल्लेख करते हुए लास्की का कथन है कि "राष्ट्रपति में जब तक वह अपने पद पर रहता है सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतीक होता है जिसका कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं होता। उसके समक्ष मन्त्रिमण्डल के किसी मन्त्री की बात का कोई महत्त्व नहीं जिस पर राष्ट्रपति विचार कर भी सकता है और नहीं भी।"[2]

राष्ट्रपति और मन्त्रिमण्डल का पारस्परिक सम्बन्ध

(Relationship between President and the Cabinet)

मन्त्रिमण्डल राष्ट्रपति के सलाहकारों की एक समिति मात्र है जिसे आलोचकों ने उसका परिवार तक कह दिया है। कोई भी नया राष्ट्रपति शपथ लेने के बाद ही अपने मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के नाम घोषित कर देता है और वे लोग सामान्यतया तब तक अपने पदों पर कार्य करने की अपेक्षा रखते हैं जब तक कि राष्ट्रपति अपने पद पर रहता है। राष्ट्रपति जब चाहे तब उन्हें पदच्युत कर सकता है। मन्त्रिमण्डल के सदस्य राष्ट्रपति के विश्वासपर्यन्त तक ही अपने पदों पर बने रहते हैं। ऑग के शब्दों में, "मन्त्रिमण्डल के मन्त्री को यह समझ लेना चाहिए कि वह राष्ट्रपति की छत्र-छाया में ही जीवित रह

1. *Taft, W.H.* : Our Chief Magistrate and His Powers, p 30
2. *Laski, H.J* : The American Presidency

सकता है।"[1] अमेरिका में वास्तविक कार्यपालक केवल एक ही व्यक्ति, अर्थात् राष्ट्रपति है और मन्त्रिमण्डल के दूसरे सदस्य तो केवल उसके सहायक-मात्र हैं। उनका उत्तरदायित्व पूर्णतः राष्ट्रपति के प्रति ही है। प्रो. लॉस्की के अनुसार, "अमेरिकी मन्त्रिमण्डल यूरोप के प्रतिनिधि शासन के आधार पर स्थापित मन्त्रिमण्डल से बिल्कुल भिन्न है।" संविधान के अनुसार अमेरिकी मन्त्रिमण्डल के सदस्य कांग्रेस के किसी सदन के सदस्य नहीं होते और न वे किसी वाद-विवाद में भाग ले सकते हैं। मन्त्रिमण्डल के अधिकारी राष्ट्रपति के परामर्शदाता या सलाहकार होते हैं। वे कांग्रेस को सूचना दे सकते हैं। वे किसी बैठक में अपनी नीति का समर्थन करने के लिए उपस्थित हो सकते हैं। वे जनता में भाषण दे सकते हैं परन्तु इतना सब कुछ होने पर भी अमेरिकी मन्त्रिमण्डल के सदस्य राष्ट्रपति की कृपा पर निर्भर हैं। मन्त्रिमण्डल का कोई भी सदस्य राष्ट्रपति के विरुद्ध नहीं हो सकता, और यदि वह ऐसा करता है तो उसके लिए त्याग-पत्र देने के सिवाय दूसरा कोई मार्ग नहीं रहता। मन्त्रिमण्डल के सदस्य अपनी बैठक में बहस कर सकते हैं और राष्ट्रपति को अपना मतभेद प्रकट कर सकते हैं, परन्तु जब राष्ट्रपति किसी बात पर अन्तिम निर्णय ले लेता है तो सबको उसे स्वीकार करना पड़ता है। इसके बाद भी उस नीति से विमत रखने वाले मन्त्रियों को त्यागपत्र देना पड़ता है। सभी मन्त्रियों को उसके आदेशों का पालन करना पड़ता है। राष्ट्रपति अपना निर्णय मन्त्रिमण्डल के समक्ष प्रस्तुत कर उनसे परामर्श ले सकता है, उनसे परामर्श करके अपना निर्णय दे सकता है और उसका निर्णय अन्तिम होता है, चाहे समस्त सदस्य उसके निर्णय के विरुद्ध हों। राष्ट्रपति लिंकन द्वारा समर्थित एक प्रस्ताव का जब उसके सातों मन्त्रियों ने विरोध किया तो उसने कहा था कि "सात प्रस्ताव के विपक्ष में हों और एक प्रस्ताव के पक्ष में हो, जीत एक की ही होती है" (Seven nayes, one ayes and the ayes have it.)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि अमेरिका में मन्त्रिमण्डल मात्र एक सलाहकार मण्डल है और वहाँ एकमात्र राष्ट्रपति की ही इच्छा शासन करती है। सिडनी टी. बेली के शब्दों में—"अमेरिकी मन्त्रिमण्डल को उस अर्थ में सरकार नहीं कहा जा सकता, जिस अर्थ में ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल को सरकार कहा जाता है।"[2] हर विषय में राष्ट्रपति की शक्ति और उसके गौरव तथा उत्तरदायित्व की ही झलक मिलती है। अमेरिकी मन्त्रिमण्डल की बैठकों का वस्तुतः वह महत्त्व नहीं है जो ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की बैठकों का है। राष्ट्रपति के लिए अपने मन्त्रिमण्डल की बैठकों को नियमित रूप से आमन्त्रित करना आवश्यक नहीं है। वह जब आवश्यक समझता है मन्त्रिमण्डल की बैठक बुला लेता है। इन बैठकों की कार्यवाही प्रायः गुप्त होती है, उनका कोई लेखा नहीं रखा जाता है। प्रत्येक विभाग के मामलों के विषय में राष्ट्रपति विभागीय मन्त्रियों के साथ पृथक्-पृथक् वार्ता करता है। अतः परे मन्त्रिमण्डल की बैठकों में प्रायः सामान्य नीति विषयक प्रश्न ही विचारार्थ प्रस्तुत होते हैं और इसमें भी उद्देश्य केवल राय जानने के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। यह भी हो सकता है कि राष्ट्रपति अपने मन्त्रियों को

1. *Ogg* : Modern Foreign Govts.
2. *Sydney, T. Bailey* : Aspects of American Govt., p. 30.

छोड़कर अपने निजी मित्रों और कतिपय विश्वस्त परामर्शदाताओं के परामर्श पर अधिक निर्भर करे। जैसा कि राष्ट्रपति जैक्सन ने किया था। उसके इन परामर्शदाताओं को सामूहिक रूप से 'अतरंग मन्त्रिमण्डल' या 'किचन केबिनेट' (Kitchen Cabinet) या 'प्रासाद रक्षक' (Palace Guards) कहा जाता था। रूजवेल्ट भी मन्त्रिमण्डल से भिन्न कुछ अन्य परामर्शदाताओ पर अधिक विश्वास करते थे और राष्ट्रपति निक्सन के प्रथम कार्य-काल में हैनरी किसींगर (Henery Kessinger) की महत्त्वपूर्ण स्थिति थी और जेराल्ड फोर्ड के कार्यकाल मे भी उनकी यह महत्त्वपूर्ण स्थिति बनी रही।

मन्त्रिमण्डल के किसी सदस्य के त्याग-पत्र का राष्ट्रपति की स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ब्रिटेन में या फ्रांस में जब मन्त्रिमण्डल का कोई सदस्य त्याग-पत्र देता है तो प्रधानमन्त्री के लिए सकटपूर्ण स्थिति कायम हो जाती है। अनेक बार तो मन्त्रिमण्डल के सम्मुख गभीर राजनीतिक सकट भी उपस्थित हो जाता है। लेकिन अमेरिका में राष्ट्रपति को कभी कोई ऐसी परेशानी नहीं होती। वह समझता है कि मन्त्रिमण्डल तो उसका एक प्रकार से सेवक है जिसकी शक्ति को घटाना-बढ़ाना उसके हाथ में है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि मन्त्रिमण्डल का रूप केवल वही है जो राष्ट्रपति उसे देना चाहता है। कांग्रेस ने सीनेट को यद्यपि मन्त्रियों की नियुक्ति की स्वीकृति का अधिकार दिया है, तथापि व्यवहार में यह केवल औपचारिकता-मात्र है। काग्रेस को यह प्रभावशाली अधिकार है कि वह मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के अधीनस्थ विभिन्न विभागों में सुधार और परिवर्तन कर सकती है, किसी भी विभाग को समाप्त कर सकती है, उसके कार्यों की जाँच के लिए समितियाँ नियुक्त कर सकती है और उसके अध्यक्ष के विरुद्ध महाभियोग भी चला सकती है।

मन्त्रिमण्डल की संस्थागत और वास्तविक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लास्की ने कहा है कि—"अमेरिकी मन्त्रिमण्डल राष्ट्रपति के सलाहकारों की एक संस्था है। यह सहयोगियों की एक ऐसी परिषद् नहीं है जिसके साथ उसे कार्य करना है और जिसकी सहमति पर वह निर्भर करता है। सयुक्त राज्य अमेरिका में केबिनेट का सामूहिक उत्तरदायित्व नहीं है।"[1]

अमेरिकी मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली में सुधार के उपाय

हरमन फाइनर ने अमेरिकी मन्त्रिमण्डल में निम्नांकित सुधार प्रस्तावित किये हैं—

(1) राष्ट्रपति और उसके मन्त्रिमण्डलीय साथी जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित हो तथा मन्त्रिमण्डल का प्रत्येक सदस्य राष्ट्रपति कहलाये। इस प्रकार ग्यारह राष्ट्रपतियों का एक नवीन मन्त्रिमण्डल निर्वाचित किया जाए और इन सबका निर्वाचन राष्ट्रपति के साथ ही हो।

(2) सीनेट का सभापति राष्ट्रपति न हो।

(3) मन्त्रिमण्डल के सब सदस्य प्रशासनिक कार्य से ही सम्बद्ध हों।

(4) मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्यों का निर्वाचन-काल चार वर्ष हो।

1. *Laski* : The American Presidency, p. 82.

(5) कांग्रेस के दोनों सदन भी राष्ट्रपति के समानान्तर चार वर्ष के लिए ही निर्वाचित हों।

(6) राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त हो कि वह मन्त्रिमण्डल के सदस्यों को पदच्युत कर कांग्रेस के सदस्यों में से नए सदस्य चुन सके।

(7) मन्त्रिमण्डल में उसी व्यक्ति को सम्मिलित किया जाए जो कांग्रेस के किसी सदन का सदस्य हो, अथवा उसका चार वर्ष तक सदस्य रह चुका हो।

उपर्युक्त सुझावों को व्यवहार में क्रियान्वित किये जाने पर अमेरिकी मन्त्रिमण्डल के दोषों का निराकरण किया जा सकता है।

राष्ट्रपति और कांग्रेस के मध्य सम्बन्ध का मूल्यांकन
(Evaluation of the Relationship between the President and the Congress)

संयुक्त राज्य अमेरिका में अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली के कारण कांग्रेस एवं राष्ट्रपति दोनों एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं। संविधान के अनुसार स्वतन्त्रता की जो स्थिति राष्ट्रपति और कांग्रेस दोनों को प्राप्त है, वह उन्हें परस्पर एक-दूसरे के निकट नहीं आने देती चूँकि दोनों ही जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं। अतः वे स्वयं को एक दूसरे से अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं और अपने-अपने अधिकारों और सम्मान के लिए एक दूसरे के प्रति विशेष सतर्क रहते हैं। शक्ति-विभाजन की संवैधानिक व्यवस्था के कारण दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र में एक दूसरे से स्वतन्त्र रहते हैं और न कांग्रेस राष्ट्रपति को हटा सकती है (महाभियोग की प्रक्रिया को छोड़कर) और न राष्ट्रपति को कांग्रेस को भंग करने का अधिकार प्राप्त है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति अपने पद पर राष्ट्रीय निर्वाचन के परिणामस्वरूप आता है, अतः उसका दृष्टिकोण राष्ट्रीय होता है। इसके विपरीत कांग्रेस उन सदस्यों की संस्था है जो अपने-अपने राज्यों से क्षेत्रीय आधार पर निर्वाचित होते हैं, अतः समस्याओं पर उनके विचार क्षेत्रीय दृष्टिकोण से प्रभावित रहते हैं। इसके अलावा अगर राष्ट्रपति दूसरे दल का है, और कांग्रेस दूसरे दल की, तो भी राष्ट्रपति तथा कांग्रेस में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। वर्तमान में राष्ट्रपति बिल क्लिण्टन डेमोक्रेटिक पार्टी के हैं और कांग्रेस में रिपब्लिकन पार्टी का बहुमत है। इससे भी संघर्ष और तनाव की स्थिति बनती है।

परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि राष्ट्रपति और कांग्रेस में कोई सहयोग नहीं पाया जाता है। शक्ति-विभाजन और पारस्परिक स्वतन्त्रता के होते हुए भी शासन के इन दो प्रमुख अंगों में समन्वय पाया जाता है और साथ ही नियन्त्रण एवं सन्तुलन प्रणाली के माध्यम से एक दूसरे की स्वेच्छाचारिता पर नियन्त्रण रहता है। फाइनर का मत है कि "राष्ट्रपति और कांग्रेस की शक्तियाँ एक बैंक नोट के दो भागों के समान हैं जो एक दूसरे के अभाव में निरर्थक हैं।"[1] कांग्रेस और राष्ट्रपति के पारस्परिक सम्बन्धों और एक दूसरे के पारस्परिक नियन्त्रणों आदि का अध्ययन अग्रलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

1. *Finer* - The Theory and Practice of Modern Govts.

प्रशासकीय क्षेत्र में

राष्ट्रपति राज्य का अध्यक्ष होने से सर्वोच्च कार्यपालिका होता है रकन्तु कार्यपालिका शक्तियों का वह एकमात्र अधिकारी नहीं है। उनके प्रयोग मे कांग्रेस राष्ट्रपति की सहभागिनी है। मुख्य कार्यपालक के रूप में राष्ट्रपति राज्य के विभिन्न उच्च एव निम्नवर्गीय पदो पर नियुक्तियाँ करता है, परन्तु केवल निम्नवर्गीय नियुक्तियाँ ही वह पूर्णत. स्वेच्छा से कर सकता है, उच्चवर्गीय नियुक्तियों पर सीनेट की स्वीकृति आवश्यक होती है। व्यवहार मे सीनेट प्रायः राष्ट्रपति की नियुक्तियों को अस्वीकृत नहीं करती, किन्तु महत्त्वपूर्ण नियुक्तियों पर वह निश्चय ही पर्याप्त वाद-विवाद करने के बाद स्वीकृति प्रदान करती है और उसने अनेक बार ऐसी नियुक्तियों पर अपनी अस्वीकृति भी दी है। इसी तरह बहुत से पदो का जब कांग्रेस द्वारा सृजन किया जाता है, तब भी उन पर नियुक्ति के लिए, यदि कांग्रेस ऐसा निश्चय करे तो सीनेट की स्वीकृति आवश्यक हो सकती है। फिर नियुक्तियों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को व्यावहारिक रूप से प्रायः 'सीनेट की शालीनता या सीनेट के प्रति शिष्टाचार' (Scnatonal Courtesy) की परम्परा का पालन करना पड़ता है और वह नियुक्तियाँ करते हुए सबंधित राज्यों के सीनेटरों की सिफारिशों के अनुसार ही कर देता है। यद्यपि राष्ट्रपति को, जब सीनेट का अधिवेशन नहीं हो रहा हो, अन्तरिम नियुक्तियाँ करने का अधिकार है, लेकिन सीनेट के सत्र आरम्भ होने पर उसे इन नियुक्तियों पर सीनेट की स्वीकृति लेनी होती है। राष्ट्रपति सीनेट का अधिवेशन समाप्त होते ही उन नियुक्तियों को पुनर्जीवित कर सकता है, जो सीनेट ने ठुकरा दी हों, अतः उसकी मनमानी पर अंकुश रखने के लिए यह व्यवस्था है कि राष्ट्रपति यदि ऐसी किसी जगह पर नियुक्ति करता है जो सीनेट के अधिवेशन काल में विद्यमान थी, तो उस पर नियुक्त व्यक्ति को तब तक वेतन नहीं मिलेगा जब तक उसकी नियुक्ति की सीनेट द्वारा विधिवत पुष्टि न हो जाए।

जहाँ उच्च पदों पर नियुक्तियों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति पर कांग्रेस के उच्च सदन-सीनेट की स्वीकृति या प्रतिबन्ध लगा हुआ है, वहाँ कुछ वर्गों के पदों को छोड़कर (सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश, कांग्रेस द्वारा स्थापित आयोगों आदि के सदस्यों तथा लोकसेवा के नियमों के अनुसार नियुक्त पदाधिकारी) अन्य अधिकारियों को राष्ट्रपति स्वेच्छा से हटा सकता है और ऐसा करने में उसे सीनेट की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती है। इस प्रकार पदच्युति के अपने इस अधिकार के बल पर राष्ट्रपति एक विरोधी सीनेट पर उससे सहयोग करने का दबाव डाल सकता है। कांग्रेस के सदस्य अपने मित्रों और रिश्तेदारो की नियुक्तियों के सदैव आकांक्षी रहते हैं और इसलिए वे राष्ट्रपति का अनावश्यक विरोध नहीं करते।

विदेश नीति के संचालक के रूप में राष्ट्रपति विदेशों से सन्धियाँ करता है और आवश्यकता पड़ने पर युद्ध का निर्णय भी करता है, परन्तु अपने इन कार्यों के सम्पादन मे भी वह किसी न किसी रूप मे कांग्रेस पर निर्भर रहता है। सन्धियाँ तभी लागू हो सकती हैं जब सीनेट बहुमत से उनकी पुष्टि कर दे। सीनेट की विदेशी मामलों की समिति की राय का राष्ट्रपति को महत्त्व देना पड़ता है। इसी तरह विदेशों के साथ युद्ध की घोषणा

करने से पूर्व भी राष्ट्रपति के लिए यह आवश्यक होता है कि वह कांग्रेस के दोनों सदनों की सम्मिलित स्वीकृति प्राप्त कर ले। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि काँग्रेस इस क्षेत्र में राष्ट्रपति पर पूर्ण नियंत्रण रखती है। वास्तविक प्रधान के रूप में राष्ट्रपति ऐसे कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित कर सकता है या ऐसी विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकता है अथवा सेना को ऐसी अवस्था में नियुक्त या तैनात कर सकता है कि युद्ध अनिवार्य हो जाए। वर्तमान समय में राष्ट्रपति की युद्ध करने की शक्ति ने व्यवहार में काँग्रेस के युद्ध की घोषणा के अधिकार को हस्तगत कर लिया है। फिर भी काँग्रेस के निश्चय का उसे सम्मान करना पड़ता है।

स्पष्ट है कि राष्ट्रपति के कार्यपालिका सम्बन्धी कार्यों पर काँग्रेस का पर्याप्त प्रभाव तथा सहभागिता रहती है, लेकिन काँग्रेस भी इतनी शक्ति-सम्पन्न नहीं है कि वह कार्यपालिका सम्बन्धी कार्यों में राष्ट्रपति का नेतृत्व करे। दोनों में पारस्परिकता की स्थिति ही अमरीकी राजनीतिक व्यवस्था को शक्ति प्रदान करती है।

व्यवस्थापन के क्षेत्र में काँग्रेस व राष्ट्रपति

संविधान के शक्ति-विभाजन के अनुसार व्यवस्थापन के क्षेत्र में काँग्रेस का एकाधिकार है और राष्ट्रपति को उससे कोई प्रयोजन नहीं है परन्तु वास्तविकता यह है कि व्यवहार मे राष्ट्रपति एक बड़ी सीमा तक कांग्रेस के व्यवस्थापन-कार्य में सहभागी या सहयोगी होता है। स्वय संविधान में कहा गया है कि "राष्ट्रपति समय-समय पर संघ की स्थिति के बारे में कांग्रेस को सूचना देगा और उसके विचारार्थ ऐसे प्रस्तावों की सिफारिश करेगा, जिन्हें वह आवश्यक समझे।" स्पष्टतः इस व्यवस्था के अनुसार राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह समय-समय पर आन्तरिक व बाह्य परिस्थिति का ज्ञान कराते हुए काँग्रेस को अपने लिखित या मौलिक संदेश भेजता रहे। चूँकि प्रशासन और वैदेशिक मामलों में राष्ट्रपति का अनुभव प्राय गहन होता है अतः काँग्रेस राष्ट्रपति के इन सन्देशों को पर्याप्त महत्त्व देती है। प्रायः बहुत से कानूनों का सूत्रपात राष्ट्रपति के इन्हीं संदेशों से होता है। राष्ट्रपति कांग्रेस को भेजे जाने वाले अपने संदेश में देश की सामान्य स्थिति से अवगत कराते हुए उसे सुझाव देता है कि विद्यमान परिस्थितियों या समस्याओं का सामना करने के लिए सामान्यतया किस प्रकार का व्यवस्थापन आवश्यक है। राष्ट्रपति अपने संदेशों के माध्यम से विभिन्न कानूनों के निर्माण का भी सुझाव भेजता है। यद्यपि संवैधानिक दृष्टि से कांग्रेस राष्ट्रपति को प्राय ठुकराने का साहस नहीं करती, क्योंकि उसे भी अनेक बातों के लिए राष्ट्रपति पर निर्भर रहना पड़ता है। बियर्ड का मत है कि "रचनात्मक कार्य-कुशलता के क्षेत्र में काँग्रेस का ह्रास हुआ है और इसके साथ ही कार्यपालिका के क्षेत्र में लगभग क्रान्तिकारी वृद्धि हुई है।"[1]

काँग्रेस द्वारा राष्ट्रपति के सन्देशों का प्राय. आदर ही होता रहा है। यदि काँग्रेस राष्ट्रपति के सन्देशों की अवहेलना करे, तो राष्ट्रपति सीधे जनता से अपील करके अथवा अन्य प्रकार से लोकमत को प्रभावित कर सकता है और तब जनता काँग्रेस के सदस्यों को राष्ट्रपति की इच्छानुसार आचरण करने के लिए बाध्य कर सकती है। अब यह

1 *Beard, C* : "The decline of Congress in creative efficiency has been accompanied by an almost revolutionary increase in the powers of the executive "

परम्परा सी स्थापित हो गई है कि राष्ट्रपति नियमित रूप से कॉंग्रेस को सन्देश भेजता है और व्यवस्थापन का अधिकांश कार्य कॉंग्रेस द्वारा राष्ट्रपति के सन्देशों के आधार पर ही किया जाता है।

व्यवस्थापन के क्षेत्र में काग्रेस पर अपनी इच्छा थोपने की दृष्टि से राष्ट्रपति अनेक प्रकार से सक्षम रहता है—(i) प्रमुख काग्रेस सदस्यों की इच्छा के अनुकूल नियुक्तियाँ कर वह उन्हें व्यवस्थापन सम्बन्धी कार्य के लिए अपने अनुकूल बना सकता है। (ii) विरोधी कॉंग्रेस सदस्यों को वह उसके द्वारा दिए हुए लाभों से वंचित किए जाने का भय दिखाकर (उदाहरणार्थ उच्च पदों पर नियुक्त उनके मित्रों व रिश्तेदारों आदि को पदच्युत करने की धमकी देकर) भी अपने अनुकूल बना सकता है। (iii) कॉंग्रेस के प्रमुख सदस्यों से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करके और उन्हें आन्तरिक प्रशासनिक आवश्यकताओं व वैदेशिक सम्बन्धो की समस्याओं से अवगत कराकर भी राष्ट्रपति कॉंग्रेस सदस्यों को इस बात के लिए तैयार कर सकता है कि वे उसकी इच्छानुकूल व्यवस्थापन करने की दिशा में अग्रसर हों। (iv) एक प्रमुख राजनीतिक दल का सर्वोच्च नेता होने के कारण भी वह अपनी इच्छानुकूल व्यवस्थापन कराने में पर्याप्त सक्षम है। राष्ट्रपति के दल का भी काग्रेस में बहुमत हो सकता है। फलतः काग्रेस में उसके दल के सदस्य स्वयं इस बात के लिए प्रयत्नशील रहते हैं कि उनके नेता राष्ट्रपति द्वारा सुझाया हुआ व्यवस्थापन कार्यक्रम कॉंग्रेस द्वारा कार्यान्वित हो जाए।

कॉंग्रेस के व्यवस्थापन के एकाधिकार को राष्ट्रपति अपनी निषेधाधिकार की शक्ति या वीटो (Veto Power) द्वारा भी नियन्त्रित करता है। विधि-निर्माण कार्य कॉंग्रेस का है परन्तु कॉंग्रेस द्वारा पारित कोई भी विधेयक कानून तभी बन सकता है जबकि राष्ट्रपति उस पर हस्ताक्षर कर दे। राष्ट्रपति कॉंग्रेस द्वारा पारित विधेयक पर अपना निलम्बन प्रतिषेध या विलम्बकारी वीटो (Suspensory Veto) लगा सकता है, किन्तु कॉंग्रेस के दोनों सदनों द्वारा बहुमत से उन विधेयकों को पुनः पारित कर देने पर राष्ट्रपति उसे रोक नहीं सकता तथापि व्यवहार में देखा गया है कि राष्ट्रपति द्वारा वीटो किए गए विधेयकों में प्रायः एक प्रतिशत विधेयक भी दुबारा कॉंग्रेस द्वारा पारित नहीं किए गये। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति अधिवेशन के अन्त के निकट भेजे गए विधेयकों को जेबी वीटो (Pocket Veto) कर सकता है। राष्ट्रपति अपनी वीटो (Veto) शक्ति का प्रयोग करके ही नहीं, प्रत्युत् उसे प्रयुक्त करने की धमकी देकर भी कॉंग्रेस का अपना प्रभाव डाल सकता है। वहाँ काग्रेस देश के वित्त पर अपनी नियन्त्रण शक्ति द्वारा एवं विधेयकों को दुबारा पारित करने की शक्ति द्वारा राष्ट्रपति को सीमा में रहने को विवश कर सकती है। संविधान के अनुसार वित्त सम्बन्धी अधिकार तो पूर्णतः कांग्रेस को ही प्राप्त हैं। व्यवहार में यद्यपि बजट राष्ट्रपति के संरक्षण में तैयार किया जाता है, किन्तु उसे स्वीकार, अस्वीकार या कम करना पूर्णतः कांग्रेस पर निर्भर है। इस प्रकार राष्ट्रपति द्वारा चाहे गए धन में कमी करके कॉंग्रेस उसकी सारी योजनाओं को निरस्त कर सकती है और प्रशासनिक क्षेत्र में उसे असफल बना सकती है।

इस प्रकार व्यवस्थापन क्षेत्र में जहाँ राष्ट्रपति, कॉंग्रेस के क्रियाकलापों को पर्याप्त रूप से प्रभावित करता है, वहाँ कॉंग्रेस इस स्थिति में रहती है कि वह राष्ट्रपति के स्वेच्छाचारी आचरण को नियन्त्रित रख सके। एक अत्यन्त दुराग्रही तथा तानाशाह

राष्ट्रपति को सही मार्ग पर लाने के लिए काँग्रेस के पास महाभियोग का ब्रह्मास्त्र होता है, यद्यपि व्यवहार में अब तक किसी भी राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग पारित नहीं किया जा सकता है। 1974 ई. में राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन ने महाभियोग के भय से आतंकित होकर अपने पद से त्यागपत्र दे दिया था।

निष्कर्ष रूप में, राष्ट्रपति और काँग्रेस दोनों संवैधानिक व्यवस्थाओं और प्रथाओं के अनुसार एक-दूसरे के कार्यों को प्रभावित करते हैं और अपने सम्बन्धों में अवरोध व संतुलन प्रणाली के कारण अन्योन्याश्रित हैं।

उपराष्ट्रपति

(Vice-President)

संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में उपराष्ट्रपति पद की व्यवस्था है, लेकिन देश की शासन-प्रशासन में उपराष्ट्रपति का महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। उसका कार्य उसी समय प्रारम्भ होता है जिस समय राष्ट्रपति का अपना पद किसी भी कारण से रिक्त हो जाता है। उपराष्ट्रपति के निर्वाचन की विधि वही है जो राष्ट्रपति की है। राष्ट्रपति के निर्वाचक दो वोट देते हैं—एक राष्ट्रपति के लिए दूसरा उपराष्ट्रपति के लिए। जिस व्यक्ति को पूर्ण बहुमत प्राप्त होता है वही उपराष्ट्रपति बनता है, किन्तु इस सम्बन्ध में प्रतिबन्ध यह है कि उसके पक्ष में आधे से अधिक मत आने चाहिए। यदि किसी को भी पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं होता तो सीनेट दो उम्मीदवारों में से एक को निर्वाचित करती है और वह व्यक्ति उपराष्ट्रपति पद पर आसीन हो जाता है। यह निश्चय करने के लिए कौन उपराष्ट्रपति हो, सीनेट के कम से कम दो-तिहाई सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक है तथा उपराष्ट्रपति को कुल सदस्यों के आधे से अधिक मत प्राप्त होना जरूरी है। इस बात का ध्यान रखा जाता है कि राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति एक ही राज्य के न हों।

उपराष्ट्रपति पद के प्रत्याशी में निम्न योग्यताएँ होनी चाहिए—

(1) वह संयुक्त राज्य अमेरिका का जन्मजात नागरिक हो।

(2) उसकी आयु 35 वर्ष से अधिक हो।

(3) वह कम से कम 14 वर्ष से संयुक्त राज्य अमेरिका में निवास करता हो।

उपराष्ट्रपति पद के प्रत्याशी का निश्चय करने के लिए दो बातों का ध्यान रखा जाता है—

(i) उपराष्ट्रपति उस भौगोलिक भाग का निवासी न हो जिसका निवासी राष्ट्रपति है। यदि राष्ट्रपति उत्तर या पूर्व का है तो उपराष्ट्रपति दक्षिण या पश्चिम का निवासी होना चाहिए।

(ii) उपराष्ट्रपति और राष्ट्रपति दोनों एक पार्टी-कक्ष से सम्बन्धित न हों वरन् भिन्न-भिन्न कक्ष के हों।

उल्लेखनीय है कि 1967 ई. में पारित 25वें संशोधन के अनुसार राष्ट्रपति को यह अधिकार मिल गया है कि वह निर्वाचनों के मध्य उपराष्ट्रपति का पद रिक्त हो जाने पर किसी को उस पद पर मनोनीत कर सकता है और वह व्यक्ति काँग्रेस के दोनों सदनों की पुष्टि या अनुसमर्थन के अपने पद की शपथ ग्रहण करता है। 1973 ई. में जब उपराष्ट्रपति एग्न्यू (Agnue) पर भ्रष्टाचार के आरोप लगाए गए थे तो उन्होंने 10 अक्टूबर, 1973 को अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया और रिक्त स्थान पर राष्ट्रपति निक्सन

(Nixon) द्वारा जेरॉल्ड फोर्ड (Ford) को उपराष्ट्रपति नियुक्त किया गया जिन्होंने 7 दिसंबर, 1973 को पद की शपथ ग्रहण की। अमेरिका के इतिहास में जेरॉल्ड फोर्ड पहले उपराष्ट्रपति थे जो निर्वाचन द्वारा अपने पद पर नहीं आए। फोर्ड तब और भी भाग्यशाली रहे जब 9 अगस्त, 1974 को राष्ट्रपति निक्सन द्वारा त्यागपत्र दिए जाने पर वे (फोर्ड) देश के राष्ट्रपति बन गए। अमेरिका के 198 वर्ष के इतिहास में यह पहला अवसर था जब अमेरिका के किसी राष्ट्रपति ने पद पर रहते हुए कार्यावधि पूरी हुए बिना ही त्याग-पत्र दिया हो।

जहाँ तक उपराष्ट्रपति के अधिकारों और कार्यों का सम्बन्ध है, वे महत्वपूर्ण नहीं हैं। उपराष्ट्रपति को प्रायः दो मुख्य कार्यों को सम्पादित करना पडता है : (i) यदि राष्ट्रपति की मृत्यु के कारण अथवा अन्य किसी कारण उसका पद रिक्त हो जाए तो शेष अवधि के लिए उसका कार्यभार सम्भालना। (ii) उपराष्ट्रपति को कुछ शक्ति प्रदान करने के लिए संविधान-निर्माताओं ने उसे सीनेट के अध्यक्ष (Chairman) का पद प्रदान किया है। परन्तु सीनेट में भी वह केवल निर्णायक मत ही दे सकता है, मतदान में वह भाग नहीं ले सकता क्योंकि वह सीनेट का सदस्य न होकर बाहर का व्यक्ति होता है। सीनेट के अध्यक्ष के रूप में उपराष्ट्रपति को यह लाभ है कि वह विधि-निर्माण के कार्यकलापों से परिचित रहता है। उपराष्ट्रपति द्वारा प्रशासन की नीतियों और योजनाओं से परिचित होना लाभप्रद ही है, अतः भूतकाल में उपराष्ट्रपति को मन्त्रिमण्डलीय बैठकों में निमन्त्रित किया जाता रहा और राष्ट्रपति रूजवेल्ट के समय से तो उसे प्रायः नियमित रूप से मन्त्रिण्डल में आमंत्रित किया जाता था। राष्ट्रपति आइजन होवर के काल से उपराष्ट्रपति का पद सशक्त, सम्मानजनक व प्रभावशाली बना। 1949 ई. से उपराष्ट्रपति राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् का सदस्य होता है। 1954 ई. में यह घोषणा भी की गई कि जब कभी राष्ट्रपति परिषद् की बैठकों में अनुपस्थित होगा तो उपराष्ट्रपति ही इसका सभापतित्व करेगा। राष्ट्रपति के अस्वस्थ होने की दशा में उपराष्ट्रपति ही मंत्रिमंडल की बैठकों का सभापतित्व करता है। अब उपराष्ट्रपति के पद का महत्व बढ़ता जा रहा है और उसको एक राजनीतिक एवं प्रशासकीय पदाधिकारी के रूप में स्थापित किये जाने के प्रयास किये जा रहे हैं। उपराष्ट्रपति पद का महत्व इस दृष्टि से बहुत अधिक बढ गया है कि किसी कारणवश राष्ट्रपति-पद के रिक्त हो जाने पर उसे कभी भी राष्ट्रपति बनना पड़ सकता है।

उपराष्ट्रपति को वेतन और नियमानुसार भत्ते प्राप्त हैं। उसका कार्यकाल यद्यपि चार वर्ष का होता है, किन्तु काँग्रेस महाभियोग द्वारा उसे भी अपने पद से हटा सकती है। उपराष्ट्रपति पद को उपयोगी बनाने हेतु लॉस्की ने कहा है कि "उपराष्ट्रपति को और अधिक कार्य सौंपे जायें, जिससे राष्ट्रपति का कार्यभार कुछ कम हो सके।"[1] सारांश में, यही कहा जा सकता है कि राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति, अमेरिकी कार्यपालिका के दो सशक्त पहिये हैं।

---

1. *Laski, H* : The American Presidency.

कॉंग्रेस

(Congress)

संयुक्त राज्य अमेरिका की व्यवस्थापन शक्तियाँ कांग्रेस में निहित हैं । जैसा कि संविधान में कहा गया है, "इसके अन्तर्गत आवटित की गई समस्त विधायिकी शक्तियाँ संयुक्त राज्य की एक कॉंग्रेस में निहित होंगी, जिसका निर्माण एक सीनेट व प्रतिनिधि सभा के रूप में होगा।"[1]

अमेरिकी शासन व्यवस्था में कांग्रेस की शक्तिशाली भूमिका होने के बावजूद भी वह ब्रिटिश संसद की तरह सर्वोच्च नहीं है क्योंकि उसके द्वारा निर्मित कानून संविधान विरोधी होने पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवैधानिक घोषित किए जा सकते हैं । साथ ही उसे राज्यीय विषयों पर कानून बनाने का अधिकार नहीं है । अमेरिका में 'नियन्त्रण तथा शक्ति-सन्तुलन का सिद्धान्त' इतना व्यापक है कि शासन का कोई अंग चाह कर भी तानाशाह नहीं बन सकता है । इससे भी कांग्रेस की स्थिति और शक्ति प्रभावित हुई है ।

कॉंग्रेस की शक्तियाँ और कार्य

(Powers and Functions of the Congress)

अमेरिकी कांग्रेस की शक्तियों और कार्यों को निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है—

(1) विधायी शक्तियाँ (Legislature Powers)—ये निम्नलिखित पाँच भागों में विभक्त की जा सकती हैं—

(i) अभिव्यक्त शक्तियाँ (Expressed Powers)—ये शक्तियाँ संविधान में स्पष्ट रूप से उल्लेखित है, जैसे—कर लगाने एवं वसूल करने की, युद्ध की घोषणा करने की, डाकघरों की स्थापना करने की, वैदेशिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का संचालन करने, विदेशी मुद्रा का मूल्य निर्धारण करने की शक्तियाँ, आदि ।

(ii) निहित शक्तियाँ (Implied Powers)—ये शक्तियाँ अभिव्यक्त शक्तियों में निहित होती हैं । अभिव्यक्त शक्तियों के प्रयोग के लिए ये आवश्यक हैं । सर्वोच्च न्यायालय की व्याख्याओं ने अभिव्यक्त शक्तियों में निहित शक्तियों का स्पष्टीकरण किया है । उदाहरणार्थ, संविधान में उल्लेख है कि "कॉंग्रेस को वाणिज्य-व्यवसाय का नियंत्रण करने का अधिकार है ।" परन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने निहित अर्थ की लगभग 100 से भी

अधिक निर्णयात्मक व्याख्याएँ दी हैं उनके द्वारा काँग्रेस को बड़े विस्तृत अधिकार प्राप्त हो गए हैं।

(iii) समवर्ती शक्तियाँ (Concurrent Powers)—ये वे शक्तियाँ हैं जिन पर राज्य के विधान-मण्डलों और कांग्रेस दोनों को विधि-निर्माण करने का अधिकार है। ये शक्तियाँ निश्चयात्मक रूप से संविधान में स्पष्ट कर दी गई हैं। संविधान के अनुसार जो शक्तियाँ संघ को प्रदान की गई हैं, वे राज्यों की हैं अथवा जनता की।

(iv) निर्देशात्मक एवं अनिर्देशात्मक शक्तियाँ (Mandatory and Permissive Powers)—संविधान द्वारा कांग्रेस को दिए गए अधिकार अधिकांशतः अनिर्देशात्मक हैं अर्थात् कांग्रेस चाहे तो उन्हें प्रयोग में ला सकती है और चाहे तो नहीं। उदाहरणार्थ, काँग्रेस को ऋण लेने का अधिकार है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वह ऋण ले ही। काँग्रेस को निर्देशात्मक अधिकार भी प्राप्त हैं। उदाहरणार्थ, संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को अपील सम्बन्धी अधिकार प्राप्त हैं और कांग्रेस के नियमों के अन्तर्गत होने पर ही किसी मामले की अपील सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख की जा सकती है। यदि काँग्रेस इस अधिकार का प्रयोग करती है तो न्याय की व्यवस्था दुर्बल हो जाएगी क्योंकि कांग्रेस हर जगह हस्तक्षेप करती रहेगी। परन्तु काँग्रेस की इच्छा है कि अपनी विवेक-शक्ति का प्रयोग कर वह कोई भी ऐसा काम न करे जिससे शासन के अन्य विभागों की व्यवस्था खराब हो जाए।

(v) संशोधन की शक्तियाँ (Powers of Amendment)—संविधान तब तक संशोधित नहीं किया जा सकता, जब तक कि उस संशोधन को काँग्रेस के दो-तिहाई बहुमत द्वारा स्वीकार किया जाये।

काँग्रेस की मूल शक्तियाँ विधायी क्षेत्र में ही हैं। वैसे कानून-निर्माण करने का कार्य काँग्रेस और राष्ट्रपति दोनों के द्वारा सम्पन्न होता है, क्योंकि समस्त विधेयक काँग्रेस द्वारा पारित होने के बाद राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजे जाते हैं और राष्ट्रपति के हस्ताक्षरों के उपरांत ही वे कानून का रूप धारण कर पाते हैं। राष्ट्रपति को कांग्रेस द्वारा पारित किए हुए विधेयक को वीटो (Veto) करने का अधिकार है, परन्तु काँग्रेस विधेयक को दो-तिहाई बहुमत से पुनः पारित कर उस वीटो या निषेधाधिकार को प्रभावहीन कर सकती है। संविधान-संशोधनों के बारे में राष्ट्रपति को विशेषाधिकार अथवा वीटो करने की शक्ति प्राप्त नहीं है।

(2) देश की सुरक्षा का अधिकार (Powers of the Defence of the Country)—देश की सुरक्षा के सम्बन्ध में कांग्रेस की शक्तियाँ प्रायः असीमित हैं। इस पर संविधान में केवल एक ही प्रतिबन्ध है कि राष्ट्रपति प्रधान सेनापति होगा तथा सेना के नियोजन दो वर्ष से अधिक नहीं किए जाएँगे। काँग्रेस सेनाओं का निर्माण और उनकी व्यस्था कर सकती है। वह जन-सेवा तथा सैनिक दलों का निर्माण कर सकती है और राज्यों की सेना के संगठन की भी व्यवस्था कर सकती है। काँग्रेस ही युद्ध की घोषणा करती है। वह प्रत्येक समर्थ व्यक्ति को राष्ट्रीय-सुरक्षा में भाग लेने अथवा सैनिक सेवा

1. Section I of Article of American Constitution.

देने के लिए बाध्य कर सकती है। वही देश की सेना के व्यय के लिए धन स्वीकार करती है। वही यह निश्चय करती है कि सेना का कितनी संख्या में रखना उपयोगी होगा और सेना को किन शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित किया जाए। राज्य के सेवा सम्बन्धी अधिकार भी काग्रेस के अधीन हैं क्योंकि वे शांति के समय भी बिना काँग्रेस की अनुमति के स्थाई सेना अथवा जहाज नहीं रख सकते।

(3) महाभियोग लगाने का अधिकार (Power of Impeachment)—काँग्रेस को राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति एवं संघीय सरकार के अन्य व उच्च पदाधिकारियों पर तथा न्यायाधीशों पर महाभियोग चलाने का अधिकार प्राप्त है। अभियोग प्रतिनिधि सभा द्वारा लगाए जाते हैं और सीनेट उनका निर्णय करती है। यदि सीनेट का निर्णय महाभियोग के पक्ष में हो तो अपराधी पदाधिकारी को अपना पद त्याग करना पड़ता है। काँग्रेस के दोनों सदनों को अपने सदनों के सदस्यों के विरुद्ध भी कार्यवाही करने का अधिकार प्राप्त है।

(4) निर्वाचन सम्बन्धी अधिकार (Electoral Powers)—राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति के निर्वाचन के समय किसी व्यक्ति को पूर्ण बहुमत प्राप्त न होने पर काँग्रेस को उनमें से राष्ट्रपति चुनने का अधिकार है। काँग्रेस को सीनेटरों और प्रतिनिधियों के चुनाव के समय, स्थानों और विधि के सम्बन्ध में भी कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है और काग्रेस का प्रत्येक सदन अपने सदस्यों की निर्वाचन सम्बन्धी योग्यता निश्चित करता है और निर्णय करता है कि उनका चुनाव वैध है या अवैध ? 1926 ई. में पेन्सिलवानिया से विलियम एस. वेयर और इलियोनिस से फ्रेंक एल. स्मिथ सीनेट के सदस्य चुने गए, लेकिन सीनेट में इन सदस्यों को सदन में इस आधार पर पद-ग्रहण नहीं करने दिया कि उन्होंने अपने चुनाव में भारी धनराशि खर्च की थी। काँग्रेस सीनेट और प्रतिनिधि सभा के निर्वाचन को रद्द कर सकती है यदि वह ऐसा करना न्यायसगत समझे।

(5) सन्धियों का अनुसमर्थन या पुष्टि का अधिकार (Power of Recufying Treaties)—सीनेट राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तावित सन्धियों की पुष्टि करती है और व्यवहार में राष्ट्रपति उनको वास्तविक रूप में स्वीकृत करने से पूर्व सीनेट का समर्थन प्राप्त कर लेते हैं। बिना सीनेट की स्वीकृति के राष्ट्रपति किसी सन्धि या युद्ध की घोषणा नहीं कर सकता। राष्ट्रपति विल्सन द्वारा की गई 1919 की वर्साय की सन्धि को सीनेट ने मानने से अस्वीकार कर दिया था। फलतः संयुक्त राज्य अमेरिका राष्ट्रसघ का सदस्य नहीं बन सका था।

(6) कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ (Executive Powers)—शक्ति-विभाजन के सिद्धान्त के होते हुए भी काँग्रेस बहुत हद तक कार्यकारिणी के विभागों पर नियन्त्रण रखती है। वह विनियमों द्वारा मन्त्रिमण्डल की छोटी से छोटी बात का विनियमन कर सकती है, जैसे—विभागों की संख्या नियत करना, उनके आन्तरिक संगठन की व्यवस्था करना, मन्त्रियों और अन्य उच्चाधिकारियों का वेतन नियत करना, कार्यक्षेत्र नियत करना, आदि। राष्ट्रपति द्वारा की जाने वाली नियुक्तियों में भी कांग्रेस का हाथ होता है। राष्ट्रपति द्वारा की जाने वाली समस्त उच्चवर्गीय नियुक्तियों के लिए, सीनेट की अनुमति लेना आवश्यक है, अन्यथा वे नियुक्तियाँ मान्य नहीं हो सकतीं। इसके अतिरिक्त सीनेट के

प्रति शिष्टाचार' की माँग है कि राष्ट्रपति को किसी राज्य में केवल उन व्यक्तियों को नियुक्त करना चाहिए जिनको उस राज्य से सम्बन्धित सीनेटर पसंद करे।

(7) वित्तीय अधिकार (Financial Powers)—काँग्रेस को कर लगाने, वसूल करने और चुकाने का अधिकार है। वह देश की सुरक्षा और सामान्य हित के लिए नियोजन कर सकती है। काँग्रेस द्वारा लगाए गए कर सारे देश पर लागू होते है, किन्तु राज्यों के आयात पर वह कर नहीं लगा सकती। यद्यपि व्यवहार में राष्ट्रीय बजट राष्ट्रपति की देख-रेख में तैयार किया जाता है, परन्तु उसको पारित काँग्रेस ही करती है। काँग्रेस को ही उसमें संशोधन करने का अधिकार प्राप्त है। कभी-कभी तो वह उसमें ऐसे परिवर्तन भी प्रस्तावित कर देती है कि उसका वास्तविक स्वरूप ही बदल जाये। अपने इस अधिकार के प्रयोग द्वारा काँग्रेस प्रशासकीय विभागों पर अपना पर्याप्त नियत्रण और प्रभाव रखती है।

धन-नियोजन करने की काँग्रेस की शक्ति प्रायः असीमित है। उसमें अपवाद केवल यह है कि सेना के नियोजन एक साथ दो वर्ष से अधिक समय के लिए नहीं किए जा सकते। देश की मुद्रा सम्बन्धी व्यवस्था का विनिमय पूर्णरूप से काँग्रेस के हाथ में है। वह सिक्के ढलवा सकती है, उनका मूल्य निर्धारण कर सकती है और विदेशी सिक्कों का मूल्य निश्चित कर सकती है। काँग्रेस को यह भी अधिकार है कि वह देश के धन को अन्य राज्यों की सहायता के लिए व्यय करे और अन्य देशों को ऋण के रूप में धन दे।

(8) व्यापार-व्यवसाय सम्बन्धी शक्तियाँ (Powers Concerning Trade & Commerce)—काँग्रेस को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सम्बन्ध में अनेक अधिकार प्राप्त हैं। वह उनको नियन्त्रित करने के लिए कानूनों का निर्माण कर सकती है। वह माप-तौल को नियमित करने, कॉपीराइट और पेटेन्ट के नियमों की व्यवस्था करने, कारखानों में मजदूरों के कार्य की दशा आदि के सम्बन्ध में नियम बना सकती है। 'वाणिज्य' शब्द का अर्थ बडा व्यापक लिया गया है और उसमें यातायात, साधन तथा समागम की सब महत्वपूर्ण शाखाएँ, जैसे—रेल, तार, डाक आदि शामिल हैं।

(9) राज्य सम्बन्धी शक्ति (Power Regarding States)—नये राज्यों को संघ में सम्मिलित करने और विभिन्न राज्यों में प्रादेशिक परिवर्तन करने का अधिकार भी काँग्रेस को ही प्राप्त है। प्रारम्भ में संयुक्त राज्य संघ के अन्तर्गत 13 राज्य थे जबकि आज उनकी संख्या 50 है। यह काँग्रेस के व्यवस्थापन का ही परिणाम माना जा सकता है।

(10) न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers)—काँग्रेस न्यायिक कार्य भी करती है। काँग्रेस की प्रतिनिधि सभा राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति और दूसरे संघीय अधिकारियों पर महाभियोग लगा सकती है जिसकी सीनेट जाँच करती है। काँग्रेस संघीय कानूनो के विरुद्ध अपराधों की व्याख्या कर सकती है, परन्तु उसे सामान्य अपराधों की व्याख्या करने का अधिकार प्राप्त नहीं है क्योंकि यह राज्यों के क्षेत्र में शामिल है। वही यह निश्चय करती है कि सर्वोच्च न्यायालय में कितने न्यायाधीश होंगे। उनकी

नियुक्ति में भी सीनेट की स्वीकृति आवश्यक होती है। कुछ प्रतिबन्धों के अन्तर्गत काँग्रेस न्यायाधीशों का वेतन भी निर्धारित कर सकती है और पुनर्विचार अधिकार क्षेत्र की व्यवस्था कर सकती है। निम्नवर्गीय संघीय न्यायालयों का निर्माण भी काँग्रेस की स्वीकृति से ही किया जाता है और वही इन न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र की व्याख्या करती है।

संक्षेप में, अमेरिकी काँग्रेस की शक्तियाँ बहुमुखी विश्व का शक्तिशाली निकाय हैं। लेकिन अमेरिका की न्यायिक पुनरावलोकन की शक्तियों ने उसकी शक्तियों को सीमित कर दिया है।

सीनेट
(Senate)

शक्ति और सम्मान की दृष्टि से सीनेट का विशेष महत्व है। वह काँग्रेस के प्रथम सदन से अधिक शक्तिशाली है। समय के साथ सीनेट की शक्तियों में इतनी वृद्धि हुई है कि उसे आज विश्व के द्वितीय सदनों में सर्वाधिक शक्तिशाली कहा जाता है।

संगठन, निर्वाचन, पदाधिकारी आदि
(Composition, Election, Office-bearers etc.)

अमेरिका की सीनेट का निर्माण राज्यों की समानता के संघीय सिद्धान्त के आधार पर हुआ है। सीनेट में प्रत्येक राज्य को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त है। सभी राज्य अपने-अपने यहाँ से दो प्रतिनिधि चुनकर सीनेट के लिए भेजते हैं। संविधान के अनुच्छेद 5 में स्पष्ट उल्लेख है कि "किसी राज्य को उसकी सहमति के बिना सीनेट में प्रतिनिधित्व की समानता से वंचित नहीं किया जा सकता है।"[1] लार्ड ब्राइस के शब्दों में—"सीनेट शासन में गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र है। एक ओर तो वह प्रतिनिधि सभा की लोकतन्त्रात्मक असावधानी और धृष्टता पर और दूसरी ओर राष्ट्रपति की महत्त्वाकांक्षाओं पर रोक लगाने वाली एक सत्ता है।"[2] प्रारम्भ में जब 13 राज्यों ने मिलकर अमेरिकन संघ का निर्माण किया तो सीनेट के सदस्यों की संख्या केवल 26 थी। वर्तमान समय में अमेरिका संघ में 50 राज्य हैं, और सीनेट के सदस्यों की संख्या 100 है।

सीनेट का सदस्य होने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति कम से कम 9 वर्ष से संयुक्त राज्य अमेरिका में रह रहा हो, उसकी आयु 30 वर्ष से कम न हो और वह उस राज्य का निवासी हो जिससे उसका निर्वाचन हुआ हो। निर्वाचित होने पर सीनेट का सदस्य अमेरिकी शासन के किसी वैधानिक पद को ग्रहण नहीं कर सकता।

सीनेट के सदस्यों की अवधि 6 वर्ष है, किन्तु प्रति दूसरे वर्ष एक-तिहाई सदस्य अपने पद को रिक्त कर देते हैं और उनका स्थान नव-निर्वाचित सदस्य ग्रहण करते हैं। संविधान के 17वें संशोधन के अनुसार अब सीनेटरों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष न रह कर प्रत्यक्ष हो गया है। सीनेट का सदस्य पुनः निर्वाचित हो सकता है, और उसके निर्वाचित होने पर समयावधि का कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

1. American Constitution, Article-V
2. *Bryce, James*: Modern Democracies

उप-राष्ट्रपति सीनेट का पदेन समापति होता है। उसे वाद-विवाद में भाग लेने का अधिकार नहीं है और न ही मतदान करने का। समान मत आने पर उसको निर्णायक मत देने का अधिकार है। उसकी अनुपस्थिति में अध्यक्ष-पद ग्रहण करने के लिए सीनेट के सदस्य अस्थायी अध्यक्ष का निर्वाचन करते हैं जो प्रायः बहुमत दल का सदस्य होता है। सीनेट के सचिव, सार्जेण्ट-एट-आर्म्स आदि अन्य पदाधिकारी भी होते हैं।

सीनेट की शक्तियाँ एवं भूमिका
(Powers and Role of the Senate)

सीनेट की शक्तियों को मुख्यतः तीन भागों म ावभाजित किया जा सकता है—व्यवस्थापन सम्बन्धी, कार्यपालिका सम्बन्धी एवं न्यायपालिका सम्बन्धी।

(1) व्यवस्थापन सम्बन्धी शक्तियाँ (Legislauve Powers)—काँग्रेस के दोनों सदन समान पदीय हैं और व्यवस्थापन के क्षेत्र में उनकी शक्तियाँ समान हैं।

कोई भी विधेयक उस समय तक अधिनियम (कानून) नहीं बन सकता जब तक वह सीनेट की स्वीकृति प्राप्त नहीं कर लेता। वित्त-विधेयक यद्यपि प्रतिनिधि सभा में ही प्रस्तावित किए जाते हैं, तथापि सीनेट उन्हें स्वीकृति प्रदान करती है, उनमें सशोधन कर सकती है अथवा उन्हें निरस्त कर सकती है। सीनेट वित्त-विधेयक की प्रारम्भिक धारा (Enacting Clause) में कोई भी संशोधन नहीं कर सकती, परन्तु शेष विधेयक में वह इतना संशोधन कर सकती है कि उसका रूप ही बदल जाये।

साधारण विधेयक—साधारण विधेयक किसी भी सदन में प्रस्तावित किए जा सकते हैं। इस सम्बन्ध में दोनों सदनों को समान अधिकार प्राप्त हैं। दोनों सदनों द्वारा स्वीकार होने पर ही कोई विधेयक कानून बन सकता है। यदि दोनों सदनों में मतभेद हों तो दोनों सदनों की संयुक्त समिति द्वारा उसे दूर किया जाता है, जहाँ सीनेट ही सदा लाभदायक स्थिति में रहती है।

साविधानिक विधेयकों के विषय में भी दोनों सदनों की स्थिति पूर्णतः समान है। दोनों ही सदनों में संविधान सशोधन सम्बन्धी विधेयक प्रस्तावित हो सकते हैं और प्रत्येक ऐसे विधेयक को पारित समझा जाने के लिए यह आवश्यक है कि उसे दोनों सदन अपने-अपने दो-तिहाई बहुमत से पारित करें। मुनरो के शब्दों में—"यह काँग्रेस की एक समकक्ष शाखा है, अधीनस्थ शाखा नहीं है और निम्न सदन के साथ राष्ट्रीय विधान (कानून) बनाने का कार्य करती है।"[1]

(2) कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ (Executive Powers)—कार्यपालिका सम्बन्धी महत्वपूर्ण शक्तियों ने सीनेट को संसार के समस्त उच्च सदनों में अधिक शक्तिशाली बना दिया। उसकी महत्वपूर्ण शक्ति सन्धियों की पुष्टि की है। राष्ट्रपति द्वारा विदेशों के साथ की गई सधियाँ तब तक लागू नहीं की जातीं जब तक उन्हें सीनेट अपने दो-तिहाई बहुमत से अनुमोदित न कर दे। इस शक्ति ने उसे राष्ट्र के वैदेशिक मामलों के नियंत्रण और निर्देशन करने की शक्ति प्रदान करते हुए विदेश नीति के सम्बन्ध में राष्ट्रपति की शक्ति पर नियंत्रण स्थापित कर दिया।

---

1. *Munro* : The National Govt. of the U.S.A., p. 301

सन्धियों के सबध में सीनेट की शक्ति का उल्लेख करते हुए जॉन हे का मत है कि—"सीनेट में आने वाली सन्धि अखाड़े में जाने वाले साँड के समान है। यह नहीं कहा जा सकता कि उस पर अंतिम प्रहार किस प्रकार और कब होगा, किन्तु एक बात सुनिश्चित है कि वह अखाड़े से बाहर नहीं जायेगी।"[1] लॉस्की का भी यही मत है कि "अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में प्रमादी होने के कारण विश्व की कोई भी विधान सभा सीनेट की बराबरी नहीं कर सकती।"[2]

(i) प्रायः कहा जाता है कि राष्ट्रपति के प्रशासकीय समझौतों की परम्परा के कारण इस शक्ति का महत्व घट गया है। राष्ट्रपति प्रशासकीय समझौतों को गुप्त रख सकता है, परिणामस्वरूप उसके वैदेशिक मामलों पर सीनेट का नियंत्रण ढीला हो जाता है। पर यह विचार अतिशयोक्तिपूर्ण है। राष्ट्रपति यदि ऐसे प्रशासकीय समझौते करले जो सीनेट न चाहती हो तो राष्ट्रपति बहुत समय तक उन्हें कायम नहीं रख सकता और यह पूर्ण सभव है कि सीनेट कानून द्वारा उस प्रथा को ही समाप्त कर दे।

(ii) सीनेट की दूसरी कार्यपालिका सम्बन्धी शक्ति राष्ट्रपति द्वारा की हुई नियुक्तियों के पुष्टिकरण की है। इस पुष्टिकरण के लिए केवल साधारण बहुमत की आवश्यकता होती है। नियुक्तियों के विषय में, यदि सीनेट अपने निश्चय पर दृढ रहे तो राष्ट्रपति सीनेट द्वारा इंगित मार्ग पर चलता है। व्यवहार में साधारणतया सीनेट राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तावित नियुक्तियों का अनुमोदन कर देती है, पर विशेष परिस्थितियों में वह इन्हें रद्द भी कर सकती है। ऐसा करके वह राष्ट्रपति पर नियत्रण रखती है।

(iii) तीसरी शक्ति विविध विभागों के विरुद्ध शक्तियों की जाँच से सम्बन्धित है। इस बारे में सीनेट का निर्णय अंतिम होता है। सीनेट को सब प्रकार के कार्यों में जाँच-पड़ताल करने का अधिकार है। सीनेट द्वारा की जाने वाली खोजें बहुत गंभीर और दूरगामी परिणाम रखने वाली होती हैं। बहुत से अधिकारी सीनेटरों से बहुत भयभीत और आशंकित रहते हैं। सीनेट की खोजें बहुत प्रसिद्धि पाती हैं और बहुधा इन कार्यवाहियों की न्यूज रील बनाई जाती है या इन्हें टेलीविजन कैमरों में लिया जाता है। सीनेटर जेम्स इरविन की अध्यक्षता में सीनेट की न्यायिक समिति ने कुख्यात 'वाटरगेट काण्ड' की जो क्रान्तिकारी जाँच-पड़ताल की उसने सीनेट की 'आकर्षण शक्ति' को विश्वविख्यात बना दिया। इस जाँच के फलस्वरूप भूतपूर्व शक्तिशाली राष्ट्रपति निक्सन को पद-त्याग करने के लिए विवश होना पड़ा था।

सीनेट को यह भी अधिकार है कि वह राष्ट्रपति से किसी विदेशी शक्ति से किसी विषय पर वार्ता करने की प्रार्थना करे, परन्तु आरम्भण (Initiative) की शक्ति सीनेट के पास न होकर राष्ट्रपति के पास होती है।

सीनेट की अन्तिम कार्यकारी शक्ति युद्ध की घोषणा सम्बन्धी है। इस विषय में प्रतिनिधि सभा के साथ सीनेट भी युद्ध की घोषणा किए जाने से पहले उसे अपनी स्वीकृति प्रदान करती है। सैद्धान्तिक रूप से सीनेट की शक्ति यद्यपि प्रतिनिधि सभा के

1. *John Hay* - Quoted from above mentioned book, p. 294
3. *Laski*, American Presidency

समकक्ष ही है, परन्तु सन्धियों के अनुसमर्थन या पुष्टि करने की शर्तों के साथ सीनेट का महत्व इस शक्ति की दृष्टि से भी प्रतिनिधि सभा से बढ जाता है।

(3) अन्वेषण सम्बन्धी शक्तियाँ (Powers of Invesugation)—सीनेट को समस्त महाभियोगों को सुनने का एकाधिकार प्राप्त है। सीनेट राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, राजदूत, मन्त्रिमण्डल के सदस्यो, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशो एव अन्य उच्च सिविल अफसरो के अभियोगों के मुकदमे सुनने के लिए न्यायालय का कार्य करती है। प्रतिनिधि सभा द्वारा दोषारोपण करके प्रस्तावो को सीनेट के समक्ष रखा जाता है और सीनेट दो-तिहाई बहुमत से इन महाभियोगो पर निर्णय देती है। महाभियोग की सुनवाई के समय सीनेट का अध्यक्ष सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश होता है और इस सदन के कोरम के लिए दो-तिहाई सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक है। अभी तक सीनेट द्वारा कुल 12 महाभियोग प्रस्तावो की जाँच की गई। इनमे से 4 महाभियोगो के प्रस्ताव पारित किए गए। राष्ट्रपति एण्ड्रयू जॉनसन पर लगाया गया महाभियोग असफल रहा। महाभियोग की जाँच करने की प्रक्रिया में सीनेट सभी कार्य, जैसे—आदेश, जारी करना, गवाहों को बुलाना, उन्हें शपथ दिलाना आदि कार्य करती है। सीनेट अन्वेषण समितियों द्वारा यह कार्य करती है। गेलोवे "सीनेट की इन अन्वेषण समितियों को कार्यपालिका के साथ सम्बन्ध स्थापित करने वाली कड़ी बताया है।"[1]

(4) अन्य अधिकार—सीनेट सविधान सशोधन प्रक्रिया में भाग लेती है, सघ मे नए राज्य के प्रवेश की स्वीकृति देती है और राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए किए गए मतदान की गणना करती है। यदि उप-राष्ट्रपति के निर्वाचन में किसी व्यक्ति को पूर्ण बहुमत प्राप्त न हो तो दो सर्वाधिक मत पाने वाले प्रत्याशियों में से किसी एक को उप-राष्ट्रपति निर्वाचित करती है। सीनेट ही अपने निर्वाचनों, निर्वाचन-विवरणों और सदस्यों की योग्यताओं का निर्धारण करती है।

उपर्युक्त अधिकारों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सीनेट विश्व का एक शक्तिशाली सदन है।

सीनेट की शक्ति के आधार या कारण

(Bases or Reasons of Power of Senate)

सीनेट को विश्व का सबसे शक्तिशाली द्वितीय सदन कहा जाता है। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(1) संविधान-निर्माताओं की इच्छा (Will of the Constitution-makers)—संविधान-निर्माता सीनेट को संघीय-शासन प्रणाली की रीढ (Backbone) बनाना चाहते थे। राष्ट्रपति द्वारा शक्तियों का स्वेच्छाचारी प्रयोग न हो सके, इसके लिए सीनेट को कतिपय ऐसी शक्तियाँ प्रदान की गईं कि ताकि वह निरंकुश न बन सके और शक्ति-संतुलन बना रहे। इसी तरह प्रतिनिधि सभा की मनमानी पर अंकुश रखने के लिए व्यवस्थापन के क्षेत्र में भी सीनेट को प्रतिनिधि सभा का समानपदीय बनाया गया और यह व्यवस्था की गई कि सभी प्रकार के विधेयक तभी कानून का रूप ले सकेंगे जब

* *Galloway, G.R.* : Investigative Functions of Congress The Political Science Review.

उन पर दोनों सदनों की सहमति हो जाए। स्पष्ट है कि संविधान निर्माताओं ने सीनेट को ऐसी सन्तुलनकारी भूमिका का रूप देना चाहा जो राष्ट्रपति और प्रतिनिधि सभा दोनों को अपनी सीमाओं में रख सके। उनकी इच्छा का यह स्वाभाविक परिणाम हुआ कि आज सीनेट ससार के सभी द्वितीय सदनों में अधिक शक्तिशाली है।

(2) **प्रतिष्ठित सदन** (Honoured Chamber)—सीनेट कानून बनाने वाले लोगों का प्रतिष्ठित सदन है। वह राज्यों का राजनीतिक इकाइयों के रूप में प्रतिनिधित्व करता है। आज की स्थिति में सीनेट के सदस्य राज्यों के प्रतिनिधि नहीं वरन् समस्त राष्ट्र के प्रतिनिधि हैं। प्रतिनिधि-सभा में स्थानीय हितों का प्रभुत्व रहा है परन्तु सीनेट में ऐसा नहीं है। इससे द्वितीय सदन ने स्वभावतः प्रथम सदन की तुलना में श्रेष्ठता अर्जित की है और उसका सम्मान भी बढा है।

(3) **प्रभावशाली मंच** (Effective House)—राष्ट्रपति-पद के बाद अमेरिका में सीनेट ही सबसे प्रभावशाली मच है। राष्ट्रपति की ही तरह प्रमुख सीनेटरों के भाषणों और विचारों को समाचार-पत्रों में प्रथम पृष्ठ पर स्थान दिया जाता है। सीनेटरों के विचार जनमत को पर्याप्त रूप से प्रभावित करते हैं। सीनेटर सरकार की किसी भी धाँधली, भ्रष्टाचार या अनियमितता को प्रकाश में लाकर जनमत को सरकार के विरुद्ध करने की क्षमता रखते हैं। इसके अतिरिक्त वे किसी भी रहस्यपूर्ण विषय पर कार्यपालिका से सूचना माँग सकते हैं। इसके फलस्वरूप सीनेट के प्रभाव में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

(4) **आकार एवं रचना** (Size and Composition)—सीनेट का संगठन भी उसके सम्मान का एक सहायक तत्व है। प्रतिनिधि-सभा की अपेक्षा सीनेट एक छोटा सदन है। प्रतिनिधि सभा में 435 सदस्य होते हैं जबकि सीनेट में 100 सदस्य हैं। सीनेट के छोटे आकार के कारण उसमें प्रत्येक सदस्य का अपना महत्त्व होता है। एक छोटा-सा गुट, यहाँ तक कि एक सदस्य भी कभी-कभी इसकी कार्यवाही में निर्णयात्मक भाग लेता है। सीनेट का छोटा आकार सदस्यों में एकता की भावना को उत्पन्न करता है।

(5) **स्थायित्व और स्थिरता** (Permanency and Stability)—सीनेट के सदस्यों की अवधि 6 वर्ष की होती है, अत. वे पर्याप्त समय तक प्रशासन का अनुभव प्राप्त करके उसे कुशलता प्रदान करते हैं। प्रायः सीनेटर दूसरी और तीसरी बार भी निर्वाचित होते रहते हैं और इस लम्बी अवधि के कारण वे भारी अनुभव प्राप्त करते हैं। यह एक स्थायी सदन है। प्रति दो वर्ष बाद इसके एक-तिहाई सदस्य 'रिटायर' होते जाते हैं। कार्यकाल की अधिकता के कारण प्रतिभाशाली लोग सीनेट में जाने का प्रयत्न करते हैं। प्रतिनिधि सभा के योग्य सदस्य जब वहाँ सम्मान प्राप्त कर लेते हैं तो सीनेट में चुन लिए जाते हैं। अपनी स्थिरता के कारण यह आकस्मिक परिवर्तनों के विरुद्ध एक अवरोध का काम करती है।

(6) **विशिष्ट क्रिया-प्रणाली** (Special Procedure)—सीनेट की कार्य-प्रणाली भी उसकी शक्ति का स्रोत है। सीनेट की कार्य-विधि ऐसी है कि उसमें सदस्यों के बोलने का समय प्राय. निश्चित नहीं किया जाता। सीनेटर जब एक बार सीनेट में बोलने खड़ा हो जाता है, तब वह जितनी देर चाहे बोल सकता है। यद्यपि 1917 से यह नियम बन

गया है कि यदि सीनेट का दो तिहाई बहुमत किसी भी सीनेटर को एक घण्टे से अधिक बोलने से रोक सकता है, परन्तु इस नियन्त्रण का प्रायः बहुत कम प्रयोग किया जाता है। भाषण की स्वतंत्रता ने सीनेट को पर्याप्त शक्ति प्रदान की है, क्योंकि इस सदन के द्वारा किसी महत्वपूर्ण प्रश्न पर स्वतन्त्रतापूर्वक विचार किया जा सकता है।

(7) दलीय नियन्त्रण का अभाव (Lack of Party Control)—सीनेट में दल-सगठन, दल नेतृत्व तथा दलीय अनुशासन का अभाव है। सीनेट के सदस्य स्वतन्त्रतापूर्वक किसी भी समय और किसी भी विषय पर बोल सकते हैं। वे व्यक्तिगत रूप से यह निश्चित करते हैं कि कौन-सा रास्ता अपनाया जाए अथवा किस पक्ष को मत दिया जाए। इसके अतिरिक्त सीनेट के सदस्यों को किसी वर्ग विशेष अथवा संस्था का तनिक भी भय नहीं होता। वे न केवल सरकार की अपितु सर्वोच्च न्यायालय की आलोचना करने में भी नहीं हिचकते। इससे राष्ट्रपति भी अंकुश में रहता है और वह सीनेट के प्रति पूर्ण आदर करके सम्मान प्रदर्शित करता है।

(8) मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था का अभाव (Lack of Cabinet System)—मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था के अभाव ने भी अप्रत्यक्ष रूप से सीनेट को विशेष शक्तिशाली बनाया है। अन्य देशों के प्रथम सदन द्वितीय सदन की तुलना में इसलिए अधिक शक्तिशाली हो जाते हैं कि वे मन्त्रिमण्डल को बना या मिटा सकते हैं परन्तु अमेरिका में ऐसी कोई बात नहीं है। अमेरिका में तो मन्त्रिमण्डल की स्थिति भी बहुत दुर्बल है।

(9) प्रभावी कार्यकारिणी एवं न्यायिक शक्तियाँ (Effective Executive & Judicial Powers)—सीनेट के पास महत्वपूर्ण कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ हैं। वह राष्ट्रपति की निरंकुशता पर अंकुश लगाती है, सन्धियों एवं नियुक्तियों में उसका निर्णय अंतिम रहता है। जॉन हे के अनुसार, "सन्धि को सीनेट में भेजना एक बैल को अखाड़े में भेजने के समान है। वहाँ से उसके अग-भंग हुए बिना जीवित लौटने की आशा कभी नहीं की जा सकती है।"[1] न्यायिक शक्तियों के रूप में सीनेट एक प्रमुख जाँच निकाय का कार्य करती है। सीनेट द्वारा की जाने वाली खोजें इतनी भयानक होती हैं कि बहुत से अधिकारी विरोधी काँग्रेस-सदस्यों के प्रश्नों से बहुत घबराते हैं। इसके अतिरिक्त सीनेट को ही समस्त महाभियोगों पर निर्णय देने की अंतिम शक्ति प्राप्त है।

(10) प्रत्यक्ष निर्वाचन (Direct Election)—सीनेट की शक्ति का एक अन्य कारण उसके सदस्यों के प्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था है। 1913 ई. से ही प्रतिनिधि सभा और सीनेट दोनों ही के निर्वाचन प्रत्यक्ष होने लगे हैं। अतः अब दोनों ही सस्थाओं के सदस्य स्वयं को जनता का प्रतिनिधि कहने के अधिकारी हैं।

(11) गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र (A Centre of Gravity)—सीनेट आज राष्ट्रीय जीवन में 'गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र' बना हुआ है। यह राज्य के योग्य एवं महत्वाकांक्षी व्यक्तियों को अपनी ओर आकृष्ट करता है। फोर्टलीट के शब्दों में—"पर्यवेक्षण एवं वित्त

1. *John Hay* : Quoted from Munir's The National Government of United States, p. 294.

सम्बन्धी अपनी शक्तियों के कारण प्रशासन सम्बन्धी अंतिम शक्ति राष्ट्रपति से भी अधिक कांग्रेस को प्राप्त है तथा महाभियोग सम्बन्धी अपनी शक्ति के कारण ...... "वह देश का सर्वोच्च न्यायालय से भी अधिक उच्चतर न्यायालय है।"[1]

सीनेट का मूल्यांकन (Evaluation of the Senate)

सीनेट की शक्तियों और कार्यों के उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि वह एक अत्यन्त सक्षम और प्रभावशाली संस्था है जो एक ओर तो प्रतिनिधि सभा की व्यवस्थापन सम्बन्धी उतावलेपन को रोकती है, दूसरी ओर राष्ट्रपति की तानाशाही महत्वाकांक्षाओं पर अंकुश लगाए रहती है किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी सीनेट दोष-रहित संस्था नहीं है। इसके मुख्य दोषों को निम्नांकित रूप से गिनाया जा सकता है—

(i) सीनेट धनी वर्ग का क्लब है। संयुक्त राज्य अमेरिका में पूँजीपति ही राजनीतिक व्यवस्था के वास्तविक स्वामी हैं। सीनेट उनका प्रतिनिधित्व करती है।

(ii) सीनेट में सभी राज्यों के दो-दो प्रतिनिधि हैं, परन्तु यह प्रतिनिधित्व लोकतंत्र की भावना के अनुकूल नहीं है क्योंकि इस प्रकार सीनेट राज्यों की प्रतिनिधि संस्था हो जाती है, जनता की नहीं।

(iii) सीनेट की कार्य-विधि को भी आदर्श नहीं कहा जा सकता। इसके नियुक्ति सम्बन्धीअधिकार के परिणामस्वरूप राष्ट्रपति को दल के सदस्यों का मुँह देखना पड़ता है। सन्धि के अनुसमर्थन के अधिकार ने विदेश नीति को नकारात्मक बना दिया है।

(iv) सीनेट में भाषण के रोक के बारे में भी कोई प्रभावशाली नियन्त्रण नहीं है। इस परम्परा का सदन द्वारा दुरुपयोग किया जाता है। सीनेटर किसी भी विचारणीय विषय पर जितना चाहे उतना बोल सकता है।

(v) जब दोनों सदनों में किसी विधेयक पर गतिरोध पैदा हो जाए तो संविधान में ऐसे गतिरोध को समाप्त करने की कोई व्यवस्था नहीं दी गई है। प्रायः विरोध की व्यवस्था में सीनेट की स्थिति अधिक प्रभावी रहती है।

(vi) सीनेट जितना समय नष्ट करती है उतना बहुत कम सदन करते हैं। इससे सार्वजनिक धन का अनुचित व्यय होता है।

(vii) अधिकार होते हुए भी प्रशासन के सम्बन्ध में सीनेट का कोई उत्तरदायित्व नहीं है जो अनुचित है।

(viii) सीनेट के प्रति शिष्टाचार (Senatorial Courtesy) जैसी परम्परा को न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता। इससे सीनेटर राष्ट्रपति पर अनुचित प्रभाव डालने में सफल हो जाते हैं और अनेक बार ऐसी नियुक्तियाँ भी हो जाती हैं, जिसे योग्यता क्रम के अनुसार नहीं माना जा सकता है।

(ix) सीनेट अनेक बार अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने को तैयार रही है। साथ ही यह अपने विशेषाधिकारों के प्रति आवश्यकता से अधिक भावुक रहती है। सीनेट के इतिहास में ऐसे अवसर आए हैं जब इसने राष्ट्रपति की नीति को ध्वस्त (Wreck)

1 *Fourtellot, A.B.* : An Anatomy of American Politics, p 78

करना ही अपना उद्देश्य और लक्ष्य समझा है। स्वतन्त्रता दिखाने के चक्कर में यह सदन अनेक बार ऐसे निर्णय ले लेता है, जिससे राष्ट्रीय हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

परन्तु उपर्युक्त दोषों के होते हुए भी सीनेट एक सफल, विशाल और अद्वितीय द्वितीय सदन है और इसने संविधान निर्माताओं के उद्देश्य की पूर्ति की है। अमेरिकी शासन-व्यवस्था में सीनेट ही एक ऐसा सदन है जो व्यावहारिक एवं कारगर रूप में राष्ट्रपति के अधिकारों पर नियंत्रण रखने में समर्थ हो सका है। सीनेट अमेरिकी प्रशासन यन्त्र की धुरी है। यदि उसे निकाल दिया जाए तो अमेरिकी शासन-व्यवस्था धराशायी हो जाएगी। अमेरिकी सीनेट को हटाने का अर्थ संघीय सरकार की आँतें निकाल देना है। सर हैनरीमैन के शब्दों में, "जब से आधुनिक लोकतन्त्र का ज्वार चढा है, तब से जितनी भी संस्थाओं का जन्म हुआ है उनमें यही केवल एकमात्र पूर्णतया सफल संस्था रही है। न केवल यह महत्वपूर्ण मामलों में बल्कि सरकारी क्षेत्र की प्रत्येक छोटी से छोटी बात पर सीनेट का प्रत्यक्ष प्रभाव है।"[1] निस्सदेह, सीनेट विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली द्वितीय सदन है।

प्रतिनिधि सभा

(The House of Representatives)

प्रतिनिधि सभा सयुक्त राज्य अमेरिका का निम्न सदन है। इसकी स्थिति इंग्लैण्ड के लोकसदन तथा भारत की लोकसभा की तुलना में कमजोर है।

पैटर्सन के अनुसार—"प्रतिनिधि सभा लघु (Miniature) रूप में अमेरिकी राष्ट्र है यह अमेरिकी जीवन की सुन्दर तस्वीर है जिसमे वहाँ की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा स्वाभाविक विभिन्नताओं, उग्रताओं तथा मध्यम-अवस्थाओं का पूर्ण चित्रण है। इसके सदस्य विभिन्न राज्यों से जनसख्या के आधार पर चुने जाने के कारण इसमें अमेरिकी जीवन की विविधता दिखाई देती है।"

प्रतिनिधि सभा का संगठन

(Composition of the House of Representatives)

संविधान में केवल इतना उल्लेख है कि प्रतिनिधि-सभा का प्रत्येक प्रतिनिधि कम से कम 30 हजार लोगों का प्रतिनिधित्व करेगा और प्रत्येक राज्य का कम से कम एक प्रतिनिधि अवश्य होगा चाहे उस राज्य की जनसंख्या 30 हजार से कम ही क्यों न हो लेकिन वर्तमान व्यवस्था के अनुसार एक प्रतिनिधि लगभग 5 लाख मतदाताओं का प्रतिनिधित्व करता है। इकाइयों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था संविधान की व्यवस्था के अनुसार ही बनी हुई है। प्रतिनिधि सभा के लिए वर्तमान में न्यूयार्क राज्य से 43 प्रतिनिधि चुने जाते है जबकि अलास्का, डैलावेयर, नेवादा और व्योमिंग राज्यों से एक-एक प्रतिनिधि चुना जाता है।

प्रतिनिधि सभा के संगठन से सम्बन्धित एक प्रथा जैरीमैण्डरिंग (Gerrymandering) है जिसके अनुसार सत्ताधारी दल चुनाव क्षेत्रों का निर्धारण इस

1. *C.F. Strong* : Op. cit., p. 13.

प्रकार करता है कि विरोधी दल के समर्थकों की संख्या कम चुनाव क्षेत्रों में व अपने समर्थकों की संख्या अधिक क्षेत्रों में हो जाती है। बियर्ड (Beard) ने इस प्रथा की आलोचना करते हुए कहा है कि—"प्रतिनिधि सभा राजनीतिक विचारों का सही दर्पण नहीं है।"

प्रारम्भ में प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों की संख्या 65 थी, किन्तु बाद में जनसंख्या के अनुसार बढ़ती गई। 1959 में जब अलास्का और हवाई राज्य संघ में सम्मिलित हुए तो सभा की संख्या 437 कर दी गई, लेकिन तत्पश्चात् 1960 की जनगणना के अनुसार सदस्य संख्या पुनः 435 निश्चित कर दी गई (1929 में काँग्रेस द्वारा यही निश्चित किया गया था कि प्रतिनिधि-सभा की सदस्य-संख्या स्थायी रूप से निश्चित कर दी जाए)। वर्तमान में प्रतिनिधि सभा के 435 सदस्य हैं। इंग्लैण्ड के लोकसदन तथा भारत की लोकसभा की तुलना में यह सदस्य संख्या कम ही है।

सदस्यों की योग्यताएँ, निर्वाचन, कार्यकाल, वेतन आदि (Qualifications of Members, their Election, Term, Salary etc.)—प्रतिनिधि सभा का सदस्य बनने के लिए निम्नांकित योग्यताओं का होना आवश्यक है—

(i) व्यक्ति कम से कम 7 वर्ष से संयुक्त राज्य अमेरिका का नागरिक हो। इस सम्बन्ध में यह आवश्यक नहीं है कि वह अमेरिका का जन्मजात नागरिक हो।

(ii) व्यक्ति की आयु कम से कम 25 वर्ष हो।

(iii) निर्वाचन के समय वह उस राज्य का निवासी हो जहाँ से वह चुनाव लड़ रहा हो। वर्तमान समय में अधिकांश राज्यों में यह परम्परा-सी बन गई है कि उम्मीदवार न केवल उस राज्य का बल्कि उस निर्वाचन क्षेत्र का भी निवासी होना चाहिए जहाँ से वह चुनाव लड़ रहा है। इसे "स्थानीयता का नियम" (Locality Rule) कहा जाता है।

इन योग्यताओं के अतिरिक्त यह व्यवस्था भी है कि व्यक्ति उन विशेष निवास योग्यताओं को भी पूर्ण करता हो जो राज्य-विशेष निर्धारित करे। संविधान में कुछ निर्योग्यताएँ (Disqualifications) भी उपबन्धित की गई हैं—(क) कोई व्यक्ति संयुक्त राज्य की सेवा में रहते हुए काँग्रेस के किसी सदन का सदस्य उस समय तक नहीं हो सकता जब तक वह उस पद पर आसीन हो, एवं (ख) कोई भी सदस्य अपनी सदस्यता काल में किसी ऐसे सार्वजनिक पद पर नियुक्त नहीं हो सकता जिसका निर्माण उसी काल में हुआ हो अथवा जिस पद का वेतन अपने सदस्यता-काल में वह अपनी व्यवस्थापिका की सदस्यता के प्रभाव के कारण अधिक करवा ले।

प्रतिनिधि-सभा के सदस्य प्रति दूसरे वर्ष चुने जाते हैं, अर्थात् सभा का कार्यकाल केवल 2 वर्ष है। इस निश्चित अवधि को घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता। प्रतिनिधि-सभा को इसकी अवधि पूर्व विघटित नहीं किया जा सकता।

प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों के वेतन, भत्ते, विशेषाधिकार, उन्मुक्तियाँ आदि वे ही हैं जो सीनेट के सदस्यों की हैं। गणपूर्ति की व्यवस्था भी सीनेट के समान ही है कि प्रतिनिधि सभा की बैठक तभी वैध मानी जाएगी जब सदस्यों की कुल संख्या का बहुमत उपस्थित हो। सीनेट के समान ही प्रतिनिधि सभा भी अपने सदस्यों की योग्यताएँ

निर्धारित करने में सक्षम अथवा उत्तरदायी है। प्रतिनिधि सभा दो-तिहाई बहुमत से किसी भी सदस्य को बहिष्कृत कर सकती है।

प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष को स्पीकर कहते हैं जिसका निर्वाचन सदन के सदस्य स्वयं करते हैं। अमेरिका का स्पीकर प्रतिनिधि सभा के बहुमत दल का नेता होता है।

प्रतिनिधि-सभा की शक्तियाँ और भूमिका
(Powers and Role of the House of Representatives)

प्रतिनिधि-सभा की शक्तियाँ और उसके कार्य सीनेट के समान व्यापक नहीं हैं। कुछ क्षेत्रों में यद्यपि वह सीनेट के समकक्ष है तथापि अन्य क्षेत्रों में वह सीनेट से बहुत कम शक्तिशाली है। प्रतिनिधि सभा की मुख्य शक्तियाँ निम्नानुसार हैं—

(1) व्यवस्थापन सम्बन्धी शक्तियाँ (Legislative Powers)—इस क्षेत्र में सीनेट एवं प्रतिनिधि-सभा को समान शक्तियाँ प्राप्त हैं; केवल वित्त-विधेयकों का प्रस्तुतीकरण प्रतिनिधि सभा में ही हो सकता है, सीनेट में नहीं। इस सदन में सभी प्रकार के विधेयक प्रस्तुत किए जा सकते हैं और कोई भी विधेयक तब तक कांग्रेस द्वारा पारित नहीं समझा जा सकता जब तक सीनेट के समान ही प्रतिनिधि सभा की स्वीकृति भी उस पर प्राप्त न हो जाए। इस क्षेत्र में ब्रिटिश लोकसदन स्पष्टतः प्रतिनिधि सभा से अधिक शक्तिशाली है क्योंकि उसे व्यवस्थापन क्षेत्र मे अंतिम निर्णय का अधिकार प्राप्त है। सांविधानिक विधेयकों के सम्बन्ध में भी सभा की शक्ति सीनेट के ही समकक्ष है।

दोनों सदनों में किसी बात पर मतभेद हो जाता है तो उसका निर्णय दोनों सदनों की एक सम्मिलित समिति द्वारा किया जाता है और यदि सम्मिलित समिति में कोई समझौता नहीं हो पाता तो अन्त में सीनेट की ही विजय होती है। दोनों ही सदनों को संयुक्त रूप से युद्ध की घोषणा करने का भी अधिकार प्राप्त है।

(2) कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ (Executive Powers)—सीनेट की तुलना में प्रतिनिधि-सभा की कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ नहीं के बराबर हैं। सन्धियों के अनुसमर्थन राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्तियों की स्वीकृति एवं विविध विभागों की जाँच-पड़ताल आदि से सम्बन्धित कार्यकारी शक्तियाँ केवल सीनेट को ही प्राप्त हैं, प्रतिनिधि सभा को नहीं। परन्तु उसे यह महत्वपूर्ण अधिकार अवश्य है कि विशेष परिस्थिति में वह राष्ट्रपति का निर्वाचन कर सकती है। जब राष्ट्रपति पद के लिए निर्वाचन लड़ने वाले प्रत्याशी को निर्वाचकों की पूर्ण संख्या का बहुमत प्राप्त न हो तो प्रतिनिधि-सभा सबसे अधिक मत पाने वाले तीन प्रत्याशियों में से एक को राष्ट्रपति पद के लिए छाँट सकती है।

प्रतिनिधि-सभा अपने सदस्यों की योग्यता की जाँच-पड़ताल करती है और उनके चुनावों की वैधानिकता की भी जाँच करती है।

(3) न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers)—न्यायिक क्षेत्र में प्रतिनिधि-सभा को केवल महाभियोग से सम्बन्धित अधिकार प्राप्त हैं। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति एवं अन्य उच्च अधिकारियों पर वह महाभियोग का आरोप ही लगा सकती है, परन्तु शेष सब कुछ अर्थात्

अभियोग को सुनने, अभियोग की जाँच करने एव उस पर निर्णय देने का अधिकार सीनेट को प्राप्त है । इसके अतिरिक्त प्रतिनिधि-सभा अपने सदस्यों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही भी कर सकती है और किसी भी ऐसे व्यक्ति को सजा दे सकती है जिसके व्यवहार से सदन की कार्यवाही में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप अथवा व्यवधान पड़ता हो।

(4) संविधान-संशोधन की शक्ति (Power to Amend the Constitution)— प्रतिनिधि सभा व सीनेट मिलकर दो-तिहाई बहुमत से संविधान में संशोधन कर सकती हैं ।

(5) राष्ट्रपति निर्वाचन की शक्ति (Power to elect the President)—यदि राष्ट्रपति के प्रत्याशी को निर्वाचक मण्डल का बहुमत प्राप्त न हो तो प्रतिनिधि सभा प्रथम तीन प्रत्याशियों में से किसी एक को राष्ट्रपति निर्वाचित कर सकती है ।

(6) अन्य शक्तियाँ (Other Powers)—वह अपने सदस्यों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सकती है, दण्डित कर सकती है, कार्यप्रणाली के नियम निर्धारित कर सकती है तथा सदस्यों की योग्यता तय कर सकती है तथा चुनाव सम्बन्धी विवादों का निर्णय कर सकती है ।

प्रतिनिधि सभा सीनेट से कम शक्तिशाली क्यों ?

(Why House of Representatives Weaker than Senate ?)

सीनेट की तुलना में प्रतिनिधि सभा की स्थिति बहुत कमजोर है । प्रतिनिधि सभा *के सीनेट की तुलना में कम शक्तिशाली होने के कारणों को निम्नानुसार गिनाया जा* सकता है—

(1) यदि किसी विधेयक पर दोनों सदनों में मतभेद को सुलझाने के लिए बुलाइ गई दोनों सदनों की सम्मिलित समिति में कोई समझौता नहीं हो पाता, तो सीनेट की विजय होती है । वित्त-विधेयकों में भी सीनेट अपने संशोधन करने के अधिकार द्वारा महत्वपूर्ण परिवर्तन कर सकती है अथवा एक प्रकार से नया प्रस्ताव भी रख सकती है । इस प्रकार से प्रतिनिधि-सभा के इस अधिकार का कोई विशेष महत्व नहीं रह जाता कि वित्त विधेयक सबसे पहले प्रतिनिधि सभा में ही प्रस्तुत हो ।

(2) राष्ट्रपति द्वारा उच्चवर्गीय नियुक्तियों पर सीनेट की स्वीकृति आवश्यक होती है, न कि प्रतिनिधि सभा की । विदेशों से की जाने वाली सन्धियों में भी सीनेट की दो-तिहाई पुष्टि होना अनिवार्य है, न कि प्रतिनिधि सभा की । अपनी इस शक्ति द्वारा सीनेट राष्ट्र के वैदेशिक मामलों में महत्वपूर्ण रूप से भाग लेती है । प्रतिनिधि सभा को ऐसी कोई शक्ति प्राप्त नहीं है ।

(3) प्रतिनिधि सभा केवल महाभियोग (Impeachment) का आरम्भ कर सकती है जबकि महाभियोग का सुनना, उसकी जाँच करना और उस पर निर्णय देना आदि सब कुछ सीनेट के क्षेत्राधिकार में है । इस तरह प्रतिनिधि सभा की शक्ति इस क्षेत्र में भी सीनेट की अपेक्षा अत्यधिक गौण है । इसके अतिरिक्त केवल सीनेट को ही यह अधिकार है कि वह प्रत्येक मामले की आवश्यक जाँच-पड़ताल करे ।

(4) अमेरिका में शक्ति-विभाजन का सिद्धान्त लागू होने से व्यवस्थापिका और कार्यपालिका परस्पर स्वतन्त्र है । फिर भी सीनेट नियुक्तियों, सन्धियों, जाँच-पड़तालों एव

महाभियोग के क्षेत्र में अपने विशेष अधिकारों द्वारा कार्यपालिका (राष्ट्रपति) पर पर्याप्त नियन्त्रण रखने में समर्थ है, जबकि प्रतिनिधि सभा इस क्षेत्र में पिछडी हुई है।

(5) प्रतिनिधि-सभा में ऐसे सर्वमान्य नेता का अभाव होता है जो सदन के समक्ष राष्ट्रीय नीति की रूपरेखा प्रस्तुत कर सके और विधायी प्रस्ताव उसके सम्मुख रख सके। अधिकृत नेता के अभाव में प्रतिनिधि-सभा की शक्तियाँ बहुत कम हो जाती हैं।

(6) प्रतिनिधि-सभा में दलीय एकता का अभाव भी उसकी दुर्बलता का एक मुख्य कारण है। सीनेट में सदस्य पारस्परिक एकता के सिद्धांत के अनुसार कार्य करते हैं, जबकि प्रतिनिधि-सभा मे ऐसी एकता नहीं दिखाई देती। सदस्य स्थानीय हितों को अधिक महत्व देते हैं।

(7) प्रतिनिधि सभा की अवधि केवल दो वर्ष की होती है। जिस प्रकार इस सदन के सत्र बुलाए जाते हैं उससे यह अवधि और भी कम हो जाती है। कभी-कभी तो ग्यारह महीने बाद ही सदस्यों को चुनाव लडना पडता है। अत. ऐसी अवस्था में प्रतिनिधि सभा महत्वपूर्ण कार्यों को निर्णय हेतु सीनेट पर छोड देती है जो एक स्थायी सदन है और जिसके सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष है।

(8) अमेरिका में प्रतिनिधि सभा व्यवस्थापन के क्षेत्र में अतिम निर्णायक स्थिति में नहीं होती। उसके द्वारा पारित विधेयक तब तक कानून नहीं बन सकता जब तक कि सीनेट भी उसे स्वीकार न कर ले।

(9) अमेरिका का उच्च सदन (सीनेट) भी जनता द्वारा निर्वाचित होता है, अत उसका महत्त्व निर्वाचित प्रतिनिधि सभा से कम नहीं होता।

(10) प्रतिनिधि सभा में विचार-विनिमय अधिक नहीं हो पाता, अतः इसके निर्णय अधिकाशत. उतने विवेकपूर्ण नहीं होते जितने सीनेट के होते हैं।

(11) प्रतिनिधि सभा में 435 सदस्य होते हैं। इसके विपरीत सीनेट मे कुल 100 सदस्य होते हैं। ये सदस्य अनुभवी, योग्य और शासन के कार्यों को समझने वाले और अपने-अपने राज्य के राजनीतिक दलों के नेता भी होते हैं।

उपर्युक्त सभी कारणों से प्रतिनिधि-सभा न केवल सीनेट की अपेक्षा कम शक्तिशाली है, अपितु विश्व के अन्य निचले सदनों से भी कम प्रभावपूर्ण है। पर यह समझ लेना भ्रामक होगा कि प्रतिनिधि-सभा का अमेरिका की शासन व्यवस्था के नियंत्रण में कोई प्रभाव नहीं है। वस्तुतः प्रतिनिधि-सभा ही जनता की वास्तविक प्रतिनिधि संस्था है और लोकमत की प्रतीक है। व्यवस्थापन का कार्य, बजट-निर्माण और युद्ध की घोषणा की स्वीकृति आदि से सम्बन्धित उसके प्रमुख कार्यों के महत्त्व को कम नहीं आँका जा सकता है।

प्रतिनिधि-सभा का अध्यक्ष
(Speaker)

इंग्लैण्ड के समान ही अमेरिका में भी निचले सदन का अध्यक्ष स्पीकर कहलाता है, परन्तु इंग्लैण्ड के स्पीकर की अपेक्षा अमेरिका का स्पीकर बहुत अधिक शक्तिशाली है। पद के प्रभाव की दृष्टि से वह राष्ट्रपति के बाद दूसरा व्यक्ति माना जाता है और

उत्तराधिकार के रूप में उपराष्ट्रपति के बाद राष्ट्रपति का पद स्पीकर या अध्यक्ष को ही मिलता है। संविधान में प्रावधान है कि "प्रतिनिधि-सभा के सदस्य सभा के सभापति व अन्य अधिकारियों का चुनाव करेंगे।"[1]

अध्यक्ष का निर्वाचन (Election of the Speaker)

सिद्धान्त में तो प्रतिनिधि-सभा ही अपने अध्यक्ष का चुनाव करती है, परन्तु व्यवहार में दलीय कॉकस (Caucus) द्वारा यह निर्धारित कर लिया जाता है कि कौन व्यक्ति अध्यक्ष बनेगा। देश के दोनों ही प्रमुख राजनीतिक दलों की बैठकों में अध्यक्ष पद के लिए दलीय प्रत्याशी का चयन किया जाता है। बाद में जब अध्यक्ष का निर्वाचन करने के लिए प्रतिनिधि-सभा की बैठक होती है तो दल अपने-अपने प्रत्याशी का नाम प्रस्तावित करते हैं। मतदान के बाद जिसे बहुमत प्राप्त होता है, वह अध्यक्ष निर्वाचित हो जाता है। ऑग व रे के शब्दों में—"अमेरिकी स्पीकर के पद का विकास भिन्न रूप में हुआ है तथा वह दलीय आधार पर हुआ है। रीड व कैनन (Read & Cannon) के समय तो स्पीकर का स्थान राष्ट्रपति के बाद ही माना जाता था।"[2]

अध्यक्ष के अधिकार एवं कर्त्तव्य
(Powers and Functions of the Speaker)

संविधान प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष के अधिकारों एवं कार्यों का उल्लेख नहीं करता, अत: उसके अधिकारों में समय-समय पर उतार-चढाव आता रहा है। आरम्भ में उसका पद अधिक शक्तिशाली नहीं था, परन्तु समय के साथ इस पद का प्रभाव एवं शक्ति बहुत अधिक बढ गई। वह सदन के तानाशाह की स्थिति में आ गया और विधेयकों के जीवन-मरण का नियामक बन गया। अन्त में यह स्थिति डेमोक्रेटिक दल के विरोध का कारण बनी और 1910-11 में यह दल अध्यक्ष की स्थिति और प्रभाव को कम करने की स्थिति में लग गया। 1910 में अध्यक्ष कैन के विरुद्ध सदन में विद्रोह हुआ और अनेक महत्वपूर्ण अधिकार छीन लिए गए। वाद-विवाद के नियमों में कई परिवर्तन हुए। अध्यक्ष को नियम-निर्मात्री समिति से हटा दिया गया और स्थाई समितियों का चुनाव प्रतिनिधि-सभा करने लगी। अध्यक्ष का मान्यता का अधिकार भी छीन लिया गया। इन क्रान्तिकारी संशोधनों के परिणामस्वरूप अध्यक्ष पहले के समान शक्तिशाली नहीं रहा। परंतु फिर भी अपनी स्थिति और अपने विशेष कर्त्तव्यों के कारण वह विशिष्ट शक्तियों का स्वामी बना रहा। आज अध्यक्ष जिन शक्तियों का उपयोग करता है, वे निम्नानुसार हैं—

(i) सभापतित्व करना और बोलने की व्यवस्था करना—अध्यक्ष प्रतिनिधि-सभा की बैठकों का सभापतित्व करता है। वही सदन की बैठकों को आरम्भ और समाप्त करता है तथा सदस्यों को भाषण देने की अनुमति प्रदान करता है। उसके आदेश पर ही सदस्य अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में वह दलीय पक्षपात से ऊपर उठा हुआ नहीं रहता है और अपने दल के सदस्यों को अधिक समय देता है।

1. American Constitution : Article I, Section 2.
2. *Ogg & Ray* : Essentials of American Govt., p. 199

(ii) अनुशासन और व्यवस्था कायम रखना—सदन मे अनुशासन और व्यवस्था कायम रखने का मुख्य दायित्व अध्यक्ष का ही है। इस दायित्व का निर्वाह करने के लिए उसे अधिकार है कि वह सदस्यों को मौखिक चेतावनी दे सके। सदन में अशान्ति और अव्यवस्था होने पर वह अपना गैवल (Gable) लटका कर सदस्यो को अनुशासित होने के लिए सकेत कर सकता है। यदि कोई सदस्य अनुशासन भंग करने पर उतारू हो तो अध्यक्ष उसका नाम लेकर उसे चेतावनी दे सकता है और अत्यन्त अव्यवस्था की स्थिति में वह उस समय तक सदन की कार्यवाही स्थगित कर सकता है जब तक उसका आदेश माना नहीं जाता और सदन में शान्ति स्थापित नहीं हो जाती। वह सार्जेन्ट एट आर्म्स (Sargent-at-Arms) को भी शान्ति स्थापित करने के लिए आदेश दे सकता है, लेकिन ग्रेट ब्रिटेन के लोकसदन के अध्यक्ष के समान वह किसी प्रकार से दण्डित करने का अधिकार नहीं रखता और न ही किसी सदस्य को सदन से बाहर निकल जाने का आदेश दे सकता है। ऐसा आदेश तो स्वयं सदन ही दे सकता है।

(iii) नियमों की व्यवस्था और उनको कार्यान्वित करना—अध्यक्ष का तीसरा प्रमुख कर्त्तव्य नियमों की व्याख्या करना व उन्हें लागू करना है। परन्तु वह इस अधिकार के प्रयोग में स्वेच्छाचारी नहीं बन सकता क्योंकि उसे नियम-निर्मात्री समिति द्वारा बनाए गए नियमों के अन्तर्गत रहकर ही कार्य करना पड़ता है। फिर भी जहाँ नियमों की व्यवस्था अस्पष्ट अथवा अपर्याप्त हो वहाँ अध्यक्ष को अपने विवेक से बहुत कुछ करने का अधिकार है। किसी नियम पर अध्यक्ष द्वारा की गई व्यवस्था को सदन का बहुमत अस्वीकार कर सकता है, अतः ब्रिटिश अथवा भारतीय अध्यक्ष की भाँति अमेरिकी अध्यक्ष का निर्णय अन्तिम नहीं होता।

नियमों की व्यवस्था के अधीन अध्यक्ष प्रश्नों पर मतदान कराता है, सदन द्वारा पारित अधिनियमों, भाषणों, सयुक्त प्रस्तावों, वीटो, वारण्टों और सम्मनों पर हस्ताक्षर करता है। वह कार्य के क्रम तथा मतदान के परिणाम की घोषणा करता है।

(iv) अन्य अधिकार—मुख्य पदाधिकारी के रूप में अध्यक्ष बराबर मत आने की स्थिति में अपना मत दे सकता है। दलीय व्यक्ति होने के कारण उसका मत अपने दल के पक्ष में ही जाता है। अध्यक्ष को यह भी अधिकार है कि वह प्रतिनिधि-सभा के सदस्य के रूप में सभा की कार्यवाही में भाग ले और वाद-विवाद में सदन की कार्यसूची की प्राथमिकता का निर्णय करना उसी का काम है। 1911 ई. तक अध्यक्ष ही समस्त स्थायी समितियों और नियम-समितियों के सदस्यों की नियुक्ति करता था, परन्तु अब यह केवल प्रवर समितियों और कांग्रेस की उन समितियों की नियुक्ति करता है जिनके लिए प्रतिनिधि-सभा उसको आदेश दे। ब्रिटिश परम्परा के विपरीत उसे यह अधिकार है कि वह अपना पद हस्तान्तरित कर सके, परन्तु ऐसा वह केवल तीन दिन के लिए ही कर सकता है। वह किसी भी सदस्य से यह आग्रह कर सकता है कि वह उसका पद तीन दिन के लिए सम्भाल ले।

फरग्यूसन व मैक्हेनरी ने स्पीकर पद की गरिमा के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि "स्पीकर पद कभी बहुत अधिक महत्त्व का और कभी साधारण

महत्त्व का हो जाता है। इसकी स्थिति पदधारी व्यक्ति के व्यक्तित्व और अपने दल तथा देश की परिस्थितियों पर निर्भर करती है। शक्तिशाली स्पीकरों (रीड, कैनन व लौगवर्थ) ने इस पद की सत्ता व सम्मान को सर्वोच्च शिखर पर पहुँचाया किन्तु कुछ स्पीकरों ने औपचारिक अध्यक्ष के रूप में कार्य कर ही सन्तोष किया था।"[1] इस तरह अमरीकी राज-व्यवस्था में प्रतिनिधि सभा के स्पीकर को महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ तथा अधिकार प्राप्त हैं, जिसके कारण उसकी स्थिति शक्तिशाली बन गई है।

प्रतिनिधि-सभा के अध्यक्ष की ब्रिटिश लोकसदन के अध्यक्ष से तुलना
(Comparison of the Speaker of the House of Representatives and the Speaker of British House of Commons)

ब्रिटेन के लोकसदन तथा प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष की तुलना करने पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

(1) ब्रिटेन में लोकसदन का अध्यक्ष दलीय आधार पर नहीं चुना जाता, जबकि अमेरिका में प्रतिनिधि-सभा का अध्यक्ष दलीय आधार पर निर्वाचित होता है।

(2) ब्रिटिश लोकसदन का अध्यक्ष निर्वाचन के पश्चात् निर्दलीय व्यक्ति हो जाता है, किन्तु अमेरिका में वह निर्वाचित होने के बाद दलीय व्यक्ति बना रहता है।

(3) ब्रिटिश लोकसदन का अध्यक्ष सदन की कार्यवाही में निष्पक्ष होकर कार्य करता है, जबकि अमेरिकी अध्यक्ष कभी भी निष्पक्ष नहीं होता। वह सदन में भी दलीय व्यक्ति के रूप में कार्य करता है।

(4) ब्रिटेन में अध्यक्ष सक्रिय दलीय राजनीति में कभी भाग नहीं लेता जबकि अमेरिकी अध्यक्ष सदन में अपने दल का नेतृत्व करता है और अपने दल के विधेयकों तथा प्रस्तावों को पास (पारित) करवाने में योगदान करता है। वह विरोधी दल के विधेयकों तथा प्रस्तावों के पारित होने में अवरोध उपस्थित करता है। वह वास्तव में सीनेट के सभापति तथा राष्ट्रपति से परामर्श करता है। यदि वे एक ही राजनीतिक दल के होते हैं तो अध्यक्ष इस प्रकार का प्रयत्न करता है कि कार्यपालिका द्वारा प्रस्तावित प्रस्ताव तथा विधेयक शीघ्रातिशीघ्र प्रतिनिधि सभा द्वारा पारित कर दिए जाएँ।

(5) प्रतिनिधि-सभा का अध्यक्ष लोकसदन के अध्यक्ष की भाँति पुनः निर्विरोध नहीं चुना जाता। उसे चुनाव लड़ना पड़ता है और अपने निर्वाचकों का भी ध्यान रखना पड़ता है।

(6) प्रतिनिधि-सभा का अध्यक्ष नियमों का निर्माण और क्रियान्वयन बहुत कुछ अपने विवेक के आधार पर करता है, जबकि ब्रिटिश लोकसदन का अध्यक्ष अपने कर्त्तव्यों की पूर्ति के लिए नियमानुसार निष्पक्ष रूप से कार्य करता है।

(7) ब्रिटिश लोकसदन का अध्यक्ष किसी भी सदस्य को उसका 'नाम' लेकर निलम्बित कर सकता है, जबकि प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष को यह अधिकार प्राप्त नहीं है।

1. *Ferguson & Mc Henry*: The American Federal Govt., p. 256.

किन्तु दोनो ही अध्यक्षों मे कतिपय समानताएँ भी दृष्टिगत होती हैं। दोनो ही अध्यक्ष सदन की अध्यक्षता करने, सदन में शान्ति और व्यवस्था को बनाये रखने, सदन की प्रतिष्ठा तथा गरिमा को बनाये रखने, विवादास्पद सवैधानिक मुद्दों पर निर्णय देना तथा सदन की कार्यवाही का सचालन करते हैं।

साराश में, यही कहा जा सकता है कि प्रतिनिधि सभा तथा सीनेट अमरीकी काग्रेस के दो महान् सदन है।

विधि-निर्माण प्रक्रिया
(The Law-making Process)

सयुक्त राज्य अमेरिका में विधि-निर्माण की एक व्यवस्थित प्रक्रिया है। विधि-निर्माण का दायित्व मूलः काग्रेस का है। कांग्रेस के दोनों ही सदन इस प्रक्रिया में भाग लेते हैं। सयुक्त राज्य अमेरिका में किसी भी विधयेक को पारित होने से पूर्व निम्नलिखित प्रक्रियाओं मे होकर क्रमश. जाना पडता है—

(1) प्रस्तावना (Introduction)

(2) चुनाव व प्रथम वाचन (Sorting and First Reading)

(3) समिति अवस्था (Committee Stage)

(4) कलेण्डर अवस्था (Calendar Stage)

(5) द्वितीय वाचन (Second Reading)

(6) तृतीय वाचन (Third Reading)

(7) विधेयक दूसरे सदन में (Bill in the Other House)

(8) विधेयक राष्ट्रपति के समक्ष (Bill before the President)

(1) प्रस्तावना या प्रस्तुतीकरण

अमेरिकी कांग्रेस में भी ब्रिटिश ससद् की भाँति ही विधि-निमार्ण प्रक्रिया की प्रथमावस्था विधेयक के प्रस्तुतीकरण की है। वित्त-विधेयक को छोडकर अन्य कोई भी विधेयक काग्रेस के किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। वित्त-विधेयक सर्वप्रथम केवल प्रतिनिधि-सभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता है। विधेयक—(क) काग्रेस के किसी भी सदस्य द्वारा, (ख) काग्रेस की किसी भी स्थायी समिति द्वारा, अथवा (ग) राष्ट्रपति या किसी कार्यकारी अधिकारी के कहने पर कांग्रेस की निर्मित विशेष समिति द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है।

विधेयक को प्रस्तुत करने की प्रणाली भी अत्यन्त साधारण है जो निम्नानुसार है—

(क) यदि सदस्य विधेयक को प्रस्तावित करना चाहते हैं तो वह उसकी एक प्रति सचिव को मेज पर रखे'सन्दूक पर डाल देते हैं।

(ख) यदि सदस्य विधेयक को प्रतिनिधि-सभा में प्रस्तावित करना चाहते हैं तो उसकी प्रति लिपिक की मेज पर रखे सन्दूक में डाल देते हैं जिसे 'हूपर' (Hooper) कहते हैं।

दोनों दशाओं में अन्तर केवल यही है कि सीनेट में उक्त व्यक्ति को 'सचिव' कहा जाता है और प्रतिनिधि सभा में उसे 'क्लर्क'।

प्रस्तावित विधेयक उस समय तक समाप्त नहीं होता जब तक कि उसका निपटारा नहीं होता अथवा जब तक वर्तमान कांग्रेस समाप्त नहीं होती। यदि कांग्रेस कार्यकाल में विधेयक न निपटाया जा सके, तो उसके प्रस्तावक को उसे दूसरी कांग्रेस में पुन प्रस्तावित करना पड़ता है। सदन में प्रस्तावित विधेयकों को एक क्रमिक सख्या प्रदान कर दी जाती है और प्रत्येक प्रस्तावित विधेयक पर प्रस्तावक का नाम लिख दिया जाता है।

सयुक्तराज्य अमेरिका में विधेयक के प्रस्तुतीकरण की प्रक्रिया इग्लैण्ड की प्रक्रिया से निम्नलिखित प्रकार से भिन्न है—

(i) इग्लैण्ड की प्रक्रिया अमेरिका की प्रक्रिया जितनी सरल नहीं है। इग्लैण्ड में विधेयक का प्रस्तुतीकरण दो विधियों से होता है, जिसमें एक साधारण प्रस्तुतीकरण और दूसरी दस मिनट के प्रस्तुतीकरण की अवधि कहलाती है। अमेरिका की प्रस्तुतीकरण की अवधि इग्लैण्ड की पहली प्रकार की अवधि से मेल नहीं खाती है जिसके अन्तर्गत विधेयक के प्रस्तावक को विधेयक पर केवल अपने हस्ताक्षर करने पड़ते हैं और उस पर एक शब्द भी कहने की आवश्यकता नहीं होती।

(ii) अमेरिका में विधेयकों का विभाजन ब्रिटेन जैसा नहीं है। ब्रिटेन में तीन प्रकार के विधेयक—सार्वजनिक, व्यक्तिगत सदस्यों द्वारा प्रस्तावित सार्वजनिक विधेयक एव असार्वजनिक विधेयक—संसद् के सामने प्रस्तावित किए जाते हैं और इन तीनों ही प्रकार के विधेयकों के पारित होने की प्रक्रिया एक-दूसरे से भिन्न है। किन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका में समस्त विधेयक गैर-सरकारी अर्थात् कांग्रेस के सदस्यों के ही होते हैं।

(2) चुनाव व प्रथम वाचन

यह दूसरा चरण होता है। प्रस्तुतीकरण के बाद सदन का लिपिक विधेयकों को विषयवार छाँट लेता है। तत्पश्चात् वह उन्हें सरकारी सूचना के रूप में छपवा लेता है। इस प्रकार विधेयक का प्रथम वाचन समाप्त हो जाता है।

सयुक्त राज्य अमेरिका की व्यवस्थापन-प्रक्रिया के प्रथम वाचन की तुलना यदि ब्रिटिश व्यवस्थापन की प्रक्रिया के प्रथम वाचन से की जाए तो अनेक अन्तर दिखाई पड़ते हैं—(i) ब्रिटेन में विधेयक की छपाई तभी होती है जब प्रस्तुतकर्ता का यह प्रस्ताव सदन द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है कि विधेयक का प्रथम वाचन हो और उसे छपवाने की आज्ञा दी जाए, एव (ii) ब्रिटेन में प्रस्तुतीकरण और प्रथम वाचन सम्मिलित होते हैं जबकि अमेरिका में समय की दृष्टि से दोनों अलग-अलग होते हैं।

(3) समिति अवस्था

संयुक्त राज्य अमेरिका में विधेयक का तीसरा चरण समिति अवस्था का होता है। प्रथम वाचन के बाद विधेयक उस विषय की समिति के पास जाता है जिससे सम्बन्धित वह विषय होता है। अमेरिका में समितियाँ विषयवार बनाई जाती हैं। यदि विवाद उत्पन्न

हो जाए कि विधेयक किस समिति को सुपुर्द किया जाना है इसका निर्णय सदन का अध्यक्ष करता है। उसके निर्णय के विरुद्ध सदन से अपील की भी जा सकती है।

समिति अवस्था विधेयक के जीवन और मरण की स्थिति होती है अर्थात् उन्हें गुणावगुण के आधार पर विवेचित किया जाता है। समितियाँ विधेयक के स्वरूप और तत्सम्बन्धी सामग्री एकत्र करती हैं। पूर्ण जाँच-पडताल के बाद समिति एक गोपनीय बैठक में यह निश्चय करती है कि विधेयक पर उसे क्या निर्णय देना है। वह अपना निर्णय निम्नलिखित रूपों में से किसी भी एक रूप में दे सकती है—

(क) विधेयक के प्रस्तावित रूप को स्वीकार करे बिना किसी संशोधन के लिए अपना प्रतिवेदन दे सकती है।

(ख) विधेयक पर संशोधन सहित प्रतिवेदन दे सकती है।

(ग) केवल उसके प्रस्तावित स्वरूप और विषय-वस्तु को छोड़ कर विधेयक को पूर्ण रूप से बदल सकती है।

(घ) विधेयक पर कोई प्रतिवेदन न देकर उसको समाप्त कर सकती है। समिति द्वारा ऐसा किए जाने को विधेयक को 'कबूतर के दरबे मे डाल देना' (Pigeon Holding) अर्थात् रद्द करना कहा जाता है।

सयुक्त राज्य अमेरिका में चूँकि सभी विधेयक साधारण सदस्यों द्वारा प्रस्तावित होते हैं, अतः वे प्रायः पूर्ण नहीं होते। इसका परिणाम यह निकलता है कि वहाँ लगभग 90% से भी अधिक विधेयकों का अन्त समिति अवस्था मे ही हो जाता है। कांग्रेस को यद्यपि यह अधिकार है कि वह ऐसे किसी भी विधेयक को, जिस पर समिति ने कोई प्रतिवेदन देना उचित नहीं समझा है, अपने समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत करने का आदेश दे, तथापि व्यवहार में ऐसा प्रायः बहुत कम किया जाता है। जब कभी किसी विधेयक पर समिति के सदस्यगण एकमत नहीं होते तो व्यवस्था यह है कि बहुमत और अल्पमत दोनों के ही प्रतिवेदनों के साथ विधेयक कांग्रेस को लौटाया जाता है। समिति के प्रतिवदेन भी छपवा कर विधेयक के साथ सदस्यों को दिए जाते हैं।

इस सम्बन्ध में अमेरिकी व्यवस्थापन-प्रक्रिया और ब्रिटेन की व्यवस्थापन-प्रक्रिया में विभिन्न अन्तर दृष्टिगोचर होते हैं—(i) ब्रिटेन में द्वितीय वाचन के पश्चात् विधेयक को समिति में भेजा जाता है, जबकि अमेरिका में उसे प्रथम वाचन के बाद ही समिति के सपुर्द कर दिया जाता है, (ii) ब्रिटेन मे संसद् ही विधेयक के आधारमूल स्वरूप तथा सिद्धान्तों पर विचार करके निर्णय करती है जबकि अमेरिका में विधेयकों के सिद्धान्तों और उसकी उपयोगिता आदि पर विचार व निर्णय पहले समिति में हो सकता है और कांग्रेस को अवसर बाद में मिलता है, (iii) ब्रिटेन में समितियाँ उतनी समर्थ और शक्तिपूर्ण नहीं हैं जितनी अमेरिका में, एवं (iv) ब्रिटेन में समितियाँ आवश्यकतानुसार बनती हैं, वे विषयवार नहीं होतीं और अधिकांशतः पूर्ण रूप से स्थायी भी नहीं होती हैं। वहाँ कुछ समितियाँ होती हैं, जिनमें विधेयक के विषय के अनुसार कुछ विशेषज्ञ और शामिल कर दिए जाते हैं। किन्तु अमेरिका में समितियों का निर्माण विषयवार और स्थाई रूप में किया जाता है, अतः उनमें विशेषज्ञों को जोड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

(4) सूचीकरण अथवा कलेण्डर अवस्था

विधेयक का यह चौथा चरण सूचीकरण है। इस स्तर को निम्नलिखित पाँच सूचियों (Five Calendars) में से किसी एक में रख दिया जाता है—

(i) **संघीय सूची** (Union Calendar)—इसमें राजस्व, विनियोग तथा सार्वजनिक सम्पत्ति से सम्बन्धित विधेयक समाहित होते हैं जिन पर पक्ष में प्रतिवेदन दिया जाता है।

(ii) **सदन सूची** (House Calendar)— इसमें प्रथम श्रेणी की सूची के आने वाले विधेयकों को छोड़कर अन्य सभी सार्वजनिक विधेयक शामिल होते हैं जिनका सम्बन्ध वित्त से नहीं होता है।

(iii) **सम्पूर्ण सदन सूची** (Calendar of the Whole House)—इसमें वे विधेयक रखे जाते हैं जो स्थानीय विषय व निजी निगमों आदि से सम्बन्धित होते हैं, अर्थात् सार्वजनिक या सम्पूर्ण राष्ट्रीय हितों से सम्बन्धित नहीं होते हैं।

(iv) **सहमति सूची** (Consent Calendar)—जिन विधेयकों में कोई विरोध नहीं होता उनको अन्य सूची से निकाल कर इस सूची में रखा जा सकता है अर्थात् जो विधेयक राष्ट्रीय महत्त्व के होते हैं और जिन्हें सर्वसम्मति से पारित किया जाना होता है वे इसमें सम्मिलित किये जाते हैं।

(v) **निष्कासन सूची** (Discharge Calendar)—इसमें वे विधेयक रखे जाते हैं जिन्हें सदन के बहुमत द्वारा समितियों के पास से निकाला जाता है। यदि कोई विधेयक समिति के पास 30 दिन तक रहा हो तो उसका प्रस्तावक सदन के बहुमत से उस विधेयक को समिति के पास निकाल सकता है।

(5) द्वितीय वाचन

विधेयकों का वर्गीकरण करने और उन्हें उचित सूची में रखने के बाद नियम दिनांक को सदन उन पर विचार करता है। इसके लिए सदन सम्पूर्ण सदन की समिति के रूप में परिवर्तित हो जाता है। ऐसा प्रत्येक विधेयक के विषय में होता है। सम्पूर्ण सदन की समिति विधेयक के सिद्धान्तों व स्वरूप पर पूरी तरह विचार करती है। द्वितीय वाचन की अवस्था में सदस्य विधेयक के पक्ष और विपक्ष में बोलते हैं और उसमें संशोधन के सुझाव प्रस्तुत करते हैं। प्रतिनिधि सभा में प्रत्येक सदस्य को बोलने का एक बार अवसर दिया जाता है और कोई भी सदस्य एक विधेयक पर एक घण्टे से अधिक नहीं बोल सकता। सीनेट में इस प्रकार का कोई प्रबन्ध नहीं है। वहाँ कोई भी सदस्य कितनी ही बार व कितने ही समय तक बोल सकता है। विधेयक का वास्तविक विवेचन द्वितीय वाचन के समय ही होता है।

विधेयक के द्वितीय वाचन के विषय में भी अमेरिकी व ब्रिटिश व्यवस्थापन प्रणाली में अन्तर इस प्रकार है—(i) अमेरिका में द्वितीय वाचन से पूर्व समिति-अवस्था आती है जबकि ब्रिटेन में द्वितीय वाचन के बाद, (ii) ब्रिटेन में द्वितीय वाचन में विधेयक के सिद्धान्त स्वीकार किए जाते हैं और तत्पश्चात् केवल उसका स्वरूप ठीक करने के लिए उसे समिति को सौंपा जाता है किन्तु अमेरिका में प्रथम वाचन के उपरान्त ही विधेयक को समिति को सौंप दिया जाता है जिसे विधेयक के सिद्धान्तों और रूप में भी परिवर्तित करने का अधिकार होता है, (iii) अमेरिका की तरह ब्रिटेन में कलेण्डर-व्यवस्था नहीं है, (iv) अमेरिका में प्रस्तावित होने के उपरान्त बजट प्रतिनिधि सभा की उपाय व साधन

समिति (Ways and Means Committee) में विचार के लिए जाता है जबकि ब्रिटेन मे लोकसभा ही सम्पूर्ण सदन की समिति (Committee of the Whole House) के रूप में बजट पर विचार करती है. (v) ब्रिटेन मे ससद् के निचले सदन, अर्थात् लोकसभा के सदस्यों पर भाषण सम्बन्धी कोई प्रतिबन्ध नहीं है. जबकि अमेरिकी कांग्रेस के निचले सदन प्रतिनिधि सभा के सदस्यों को भाषण सम्बन्धी वह स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है जो ऊपरी सदन (Senate) के सदस्यों को प्राप्त है. एव (vi) ब्रिटेन में द्वितीय वाचन विधेयक के सिद्धान्तो पर ही विचार होता है. जबकि अमेरिका मे न केवल विधेयक के सिद्धान्तो अपितु उसके रूप पर भी पूर्ण विचार होता है।

(6) तृतीय वाचन

विधेयक का यह छठा स्तर तृतीय वाचन का होता है। यह वाचन केवल औपचारिक होता है। विधेयक के सिद्धान्त पर केवल मोटे रूप से ही विचार किया जाता है। उसकी धाराओ, उपधाराओ, वाक्यो और शब्दो पर कोई विचार नहीं किया जाता है। यदि कोई सदस्य विधेयक के पूरे पढे जाने की माँग न करे तो केवल विधेयक का शीर्षक (Title) ही पढ दिया जाता है। इसके बाद अध्यक्ष सदन का अन्तिम निर्णय लेता है। इसकी चार रीतियाँ—मौखिक मतदान, खडे होकर, गणना द्वारा एव 'हाँ' या 'ना' द्वारा।

ब्रिटेन व अमेरिका में व्यवस्थापन प्रणाली का तृतीय वाचन लगभग एक-सा है, केवल मतदान की प्रक्रिया में अन्तर है। ब्रिटेन मे मतदान प्राय गणना के द्वारा अथवा खडे होकर होता है। अमेरिका मे खडे होकर व 'हाँ' या 'ना' वाले ढग का अधिक प्रयोग किया जाता है।

(7) विधेयक दूसरे सदन में

विधेयक का सातवाँ चरण यह है जब तृतीय वाचन के बाद विधेयक दूसरे सदन मे भेजा जाता है। दूसरे सदन में भी विधेयक को प्राय. उन्हीं अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है जिन अवस्थाओं मे उसे पहले वाले सदन में गुजरना पडा था। दूसरा सदन विधेयक को पहले वाले सदन को पुनः विचारार्थ लौटा सकता है, अथवा उसे किसी समिति को भेज सकता है, जहाँ विधेयक पूर्णतः समाप्त भी हो सकता है।

(8) सम्मेलन समिति के समक्ष

यदि किसी विधेयक के सम्बन्ध में दोनों सदनों में गत्यावरोध पैदा हो जाए तो एक सम्मेलन समिति का निर्माण किया जाता है जिसमें दोनों सदनों के बराबर-बराबर प्रतिनिधि होते हैं। यह समिति विवादग्रस्त विषयों पर गुप्त रूप से वाद-विवाद करती है और समाधान करने के उपायों पर विचार करती है। यह समिति समाधान करने में सफल रहती है तो उसके सदस्य उसे अपने-अपने सदनों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। यदि प्रत्येक सदन समिति द्वारा प्रस्तावित सुझावों को स्वीकार कर लेता है तो विधेयक दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत मान लिया जाता है। किन्तु यदि ये सुझाव स्वीकृत नहीं होते हैं तो विधेयक का वहीं अन्त हो जाता है। यह भी सम्भव है कि यदि सम्मेलन समिति निश्चित हल न खोज सके तो ऐसी दशा मे भी विधेयक का अन्त हो जाता है।

इस सम्बन्ध में ब्रिटिश व अमेरिकी प्रणाली में भिन्नता पाई जाती है। अमेरिका में कोई भी विधेयक दोनों सदनों के मतैक्य के बिना पारित नहीं हो सकता, जबकि ब्रिटेन में दोनों सदनों में मतभेद की अवस्था में लॉर्ड सभा वित्त-विधेयकों को अधिक से अधिक एक माह तक और अन्य विधेयकों को अधिक से अधिक एक साल तक रोक सकती है। वहाँ विधेयकों के पारित होने में अन्तिम शब्द लोक सदन का होता है, लॉर्ड सभा इस दृष्टि से असहाय है। गैलोवे के मतानुसार—"विधेयक पारित करने सम्बन्धी वास्तविक शक्ति प्रतिनिधि सभा या सीनेट में नहीं है यह तो उनकी स्थायी समितियों में निहित है।"[1]

विधेयक राष्ट्रपति के समक्ष

दोनों सदनों की स्वीकृति के पश्चात् विधेयक को राष्ट्रपति के हस्ताक्षरों के लिए भेज दिया जाता है और उसकी स्वीकृति मिल जाने पर वह अधिनियम का रूप धारण कर लेता है। विधेयक के सम्बन्ध में राष्ट्रपति के पास तीन विकल्प होते हैं—(i) वह 10 दिन के भीतर विधेयक पर अपनी स्वीकृति दे दे। (ii) वह विधेयक को अस्वीकार कर दे और कारण बताते हुए उसे कांग्रेस को पुन:विचारार्थ लौटा दे। विधेयक उसी सदन को लौटाया जाता है जिसने उसे प्रारम्भ किया था। किन्तु यदि कांग्रेस के दोनों सदन अपने दो-तिहाई बहुमत से विधेयक को पुनः स्वीकृत कर दे तो राष्ट्रपति को विधेयक की स्वीकृति के विषय में अन्तिम रूप से केवल विलम्ब करने का निषेधाधिकार प्राप्त है। (iii) राष्ट्रपति तटस्थ रहने के उद्देश्य से विधेयक पर न तो हस्ताक्षर करता है और न उसे लौटाता है। ऐसी दशा में विधेयक स्वत. राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत मान लिया जाता है और कानून बन जाता है। यह उल्लेखनीय है कि यदि राष्ट्रपति विधेयक को न लौटाए और 10 दिन के अन्दर कांग्रेस का अधिवेशन समाप्त हो जाए, तो वह विधेयक राष्ट्रपति द्वारा बिना अस्वीकार किए हुए ही अस्वीकृत हो जाता है। इसे राष्ट्रपति का जेबी निषेधाधिकार या पॉकेट वीटो (Pocket Veto) कहा जाता है। यह अधिकार वैधानिक न होकर केवल परम्परागत है।

कांग्रेस के अधिवेशन की समाप्ति के बाद सभी कानूनों, प्रस्तावों, सन्धियों आदि को संविधान पुस्तक में संगृहीत कर दिया जाता है। राज्य-सचिव विधियों को घोषित करता है।

उल्लेखनीय है कि ब्रिटेन में संसद् द्वारा पारित विधेयक को सम्राट की स्वीकृति मिल ही जाती है। उसका निषेधाधिकार केवल नाममात्र का ही है जबकि अमेरिकी राष्ट्रपति का निषेधाधिकार वास्तविक है और वह उसका प्रयोग भी बहुत अधिक करता है।

साराश में, यही कहा जा सकता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ग्रेट ब्रिटेन में विधि-निर्माण की एक निश्चित प्रक्रिया है।

समिति प्रणाली

(Committee System)

आधुनिक युग में विधि-निर्माण में समितियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में भी समिति-व्यवस्था का अहम स्थान है। अमेरिकी समितियों की शक्ति

1 *Galloway, G.R* - Investigative Functions Congress (The Political Science Review).

तथा भूमिका ग्रेट ब्रिटेन की तुलना में अधिक शक्तिशाली तथा प्रभावी है। ग्रेट ब्रिटेन में विधि-निर्माण में जो भूमिका मन्त्रिमण्डल की है, वही कार्य अमेरिका में समितियों द्वारा सम्पादित किया जाता हैं।

समितियों : प्रकृति एवं कार्य
(Nature and Working of Committees)

अमेरिकी कांग्रेस के दोनों सदनों—प्रतिनिधि सभा और सीनेट में पृथक्-पृथक् रूप से समितियों की व्यवस्था की गई है। इन समितियों की नियुक्ति स्वयं सदन करता है। उनमे बहुमत दल और अल्पमत दल दोनों के ही सदस्य होते हैं। समितियों के बारे में सविधान में कोई उल्लेख नहीं है। बल्कि उत्पत्ति और इसका विकास आवश्यकताओं का परिणाम है। अमेरिका में प्राय. निम्नलिखित 8 महत्त्वपूर्ण समितियाँ पाई जाती हैं—

(1) स्थायी समितियाँ (Standing Committees)—इनका अमेरिकी समिति व्यवस्था में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। ब्रिटेन की तुलना में अमेरिका में इनकी संख्या अधिक है, किन्तु इनमें सदस्य संख्या अपेक्षाकृत कम है। फर्ग्यूसन व मैकहेनरी के शब्दों मे—"स्थायी समितियाँ वे बडी चलनी हैं जो प्रस्तावित विधान (कानून) के एक बड़े भाग का सूक्ष्म परीक्षण करती हैं।"[1] साधारणतः इनमें 12 से लेकर 30 तक सदस्य होते हैं, यद्यपि कुछ समितियों में सख्या कभी-कभी 50 तक रही है। स्थायी समितियां की नियुक्ति सदन स्वयं करता है, पर वास्तव में राजनीतिक दल अपनी शक्ति के आधार पर निर्णय करते हैं। सदन तो केवल उनका अनुमोदन करता है। इन समितियों के सभापति बहुमत दल के प्रमुख नेता होते हैं। 1946 ई. तक अमेरिका में स्थायी समितियों की सख्या 47 थी पर 1946 के विधायी पुनर्गठन द्वारा इनकी सख्या प्रतिनिधि सभा में 19 तथा सीनेट में 15 है प्रत्येक स्थायी समिति अपने-अपने सदन में व्यवस्थापन के निश्चित विभाग की देख-रेख करती है। अनेक समितियाँ उपसमितियों से भी काम लेती हैं जिनमें से कुछ स्थायी होती हैं। प्रतिनिधि सभा और सीनेट की समितियों के नाम लगभग समान हैं। अमेरिकी कांग्रेस की ये स्थायी समितियाँ व्यवस्थापन के क्षेत्र में बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य करती हैं। ये ही कांग्रेस का अधिकाश व्यवस्थापन कार्य सम्पादित करती हैं।

(2) नियम समिति (Committee of Rules)—इस महत्त्वपूर्ण समिति में लगभग 15 सदस्य होते हैं। इसका मुख्य कार्य काग्रेस की कार्य-विधि के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के नियमों का निर्माण करना होता है। सदन में प्रत्येक कार्यकाल के प्रारम्भ में यह कार्य-विधि सम्बन्धी नियमों को प्रस्तावित करती है। सदन के अध्यक्ष को यह अधिकार होता है कि विशेष परिस्थितियों में वह उन नियमों को न भी माने। ये नियम प्रत्येक नए सदन के निर्माण के साथ प्रायः बदल जाते हैं।

नियम समिति ही विधेयकों के छाँटने का कार्य करती है और यह निर्णय लेती है कि कौनसा विधेयक विचार-विमर्श के लिए प्रस्तुत किया जाए। समितियों द्वारा रिपोर्ट किए गए विधेयकों को नियम-समिति के पास भी भेजा जाता है। यह समिति जिन विधेयको को महत्त्वपूर्ण मान लेती है उन पर सदन आसानी से विचार कर लेता है। इस

1 *Ferguson & McHenry*: American System of Govt., p. 35.

प्रकार यह समिति सदन और स्थायी समितियों के बीच मध्यस्थता का कार्य करती है। इसके पास विधेयक को विलम्बित करने की शक्ति भी है। इसे यह अधिकार है कि महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए समय-समय पर यह सदन के कार्यों में हस्तक्षेप करे और आवश्यक होने पर नियम की आड़ लेकर नए प्रस्ताव प्रस्तुत करे। ऑग एव रे ने लिखा है कि "यह स्वय ही किसी विधेयक को प्रस्तुत कर सकती है और दूसरे दिन ही सदन की कार्यवाही के लिए उसे रख सकती है तथा विषय समिति के पास बिना भेजे ही उसे पास तक करवा सकती है।"[1]

(3) प्रवर या विशिष्ट समितियाँ (Select Committees)—इन समितियों की नियुक्ति समय-समय पर किसी विशेष उद्देश्य से की जाती है। सदस्यों की नियुक्ति सदन का अध्यक्ष करता है। अपना काम पूरा करते ही वे समाप्त हो जाती है तथा इसकी सदस्य सख्या निश्चित नहीं है।

(4) सम्पूर्ण सदन की समिति (Committee of the Whole House)—यह समिति वित्त विधेयकों सहित महत्त्वपूर्ण एव विवादग्रस्त विषयों पर विचार-विमर्श करती है। सदन के सभी सदस्य समिति के सदस्य होते हैं। जब कोई सदस्य इस समिति के लिए प्रस्ताव करता है और सदन समिति का रूप धारण कर लेता है। सदन और समिति में अन्तर केवल इतना ही होता है कि सदन की बैठक में सदन का अध्यक्ष सभापतित्व करता है जबकि समिति की बैठक मे वह नहीं बैठता। उसके स्थान पर समिति के द्वारा चुना हुआ कोई व्यक्ति सभापतित्व करता है। मेस (Mace) अर्थात् 'गदा' जो अध्यक्ष के अधिकार का चिह्न होता है, मेज के नीचे रख दिया जाता है। सम्पूर्ण सदन की समिति की गणपूर्ति के लिए केवल 100 सदस्यों का होना आवश्यक है। इसमें भाषण की सीमा केवल पाँच मिनट प्रति व्यक्ति प्रति विधेयक होती है जबकि सदन की बैठक मे एक विधेयक पर एक व्यक्ति एक घण्टे तक बोल सकता है। सम्पूर्ण सदन की समिति का प्रयोग अधिकाशतः प्रतिनिधि सभा मे ही होता है, सीनेट उसका प्रयोग बहुत ही कम करती है।

(5) सम्मेलन समिति (Conference Committee)—इस समिति का निर्माण उस समय किया जाता है जब किसी विधेयक पर काग्रेस के दोनों सदनों में मतभेद होता है। इस समिति में दोनों सदनों में से बराबर-बराबर संख्या में सदस्य लिये जाते हैं—प्रायः तीन-तीन सदस्य, किन्तु विशेष दशा में पाँच-पाँच सदस्य भी लिये जाते हैं। ये सभी सदस्य मिलकर मतभेद सुलझाने का प्रयत्न करते हैं। मतभेद को सुलझाने के अपने प्रयत्नों की समाप्ति के बाद सम्मेलन समिति स्वय ही समाप्त हो जाती है। समिति की बैठकें गुप्त होती हैं और इसकी कार्यवाही का कोई लेखा नहीं रखा जाता। सैद्धान्तिक रूप से समिति विधेयकों के केवल विवादग्रस्त भागों पर ही विचार करती है, परन्तु व्यवहार में अन्य भागों पर भी विचार करके यह इस बात का प्रयत्न करती है कि दोनों सदनों के मतभेद किसी प्रकार समाप्त हो जाएँ। सम्मेलन समिति में प्रत्येक सदन एक इकाई के रूप में मत देता है। सदस्यों को अपने-अपने सदनों द्वारा भी आदेश दिये जा सकते हैं। प्रायः सीनेट के सदस्य ही, जो परिपक्व राजनीतिज्ञ होते हैं और जिन्हें ससदीय अनुभव होता है, अन्त में सफल होते हैं।

1 *Ogg & Ray* Essentials of American Govt.

(6) **संयुक्त समितियाँ** (Joint Committees)—ऐसे विषयो की जाँच के लिए, जिनमे सयुक्त कार्यवाही की आवश्यकता हो या जिन पर दोनों सदनो का समवर्ती अधिकार क्षेत्र हो, कांग्रेस द्वारा संयुक्त समितियो का निर्माण किया जाता है। कार्य की समाप्ति पर ये समितियाँ भी समाप्त हो जाती है।

(7) **संचालन समितियाँ** (Steering Committees)—अमेरिका में कार्यपालिका और व्यवस्थापिका का पृथक्करण होने के कारण ब्रिटेन की तरह मन्त्रिमण्डल विधि-निर्माण का कार्य नहीं करता, अतः वहाँ पर सचालन समिति का निर्माण किया जाता है जिसका कार्य बहुमत-दल की तरफ से विधि निर्माण करना होता है। इस समिति का चयन सदन के बहुमत दल द्वारा अपने दल के सदस्यो में से किया जाता है और सदन के बहुमत दल का नेता इसका अध्यक्ष हाता है। बहुमत दल की ओर से यही समिति विधेयको को सदन में प्रस्तुत करती है और अपने दल के समर्थन के दल पर उसे सदन मे पारित भी कराती है।

महत्त्व एवं मूल्यांकन (Importance and Evaluation)

समितियो के महत्त्व विश्लेषित करते हुए अध्यक्ष थॉमस वी. रीड ने लिखा है कि "समितियाँ सदन की आँख, कान, हाथ और कभी-कभी बुद्धि का कार्य भी करती हैं।"[1] प्रधानमन्त्री विल्सन (Wilson) ने समितियो को 'लघु व्यवस्थापिकाएँ (Little Legislatures) कहा था।

अमेरिका की समिति व्यवस्था प्रभावशाली होते हुए भी उसमें निम्न दोष है—

(i) एक समिति के कार्य और दूसरी समिति के कार्य के बीच प्रायः सामजस्य नहीं होता। अत समितियो द्वारा एक ही विषय पर अपने कानूनों में परस्पर संघर्ष तथा भ्रम फैलने की सम्भावना रहती है। (ii) समितियाँ सदन के सब विचारो का प्रतिनिधित्व नहीं करतीं। यद्यपि सभी समितियाँ प्रायः द्वि-दलीय होती है, किन्तु वे बहुधा विशिष्ट हितों की साधना करने वाली बन जाती हैं। (iii) अनेक समितियाँ प्रायः निष्क्रिय रहती हैं उनके पास कोई कार्य नहीं रहता।

समितियों का अध्यक्ष

संयुक्त राज्य अमेरिका में समितियों के अध्यक्ष का पद विशेष महत्त्व रखता है। वह वरिष्ठता के आधार पर समिति का अध्यक्ष बनता है और समिति की बैठक बुलाने तथा समिति के विभिन्न कर्मचारियों के चयन के लिए कार्यवाही करता है। समिति के अन्तर्गत नियुक्त की जाने वाली उपसमितियों के सदस्यों की भी नियुक्ति उसी के द्वारा होती है। सदन में वही विधेयकों का सचालन करता है। यद्यपि सैद्धान्तिक रूप में समिति को यह अधिकार है कि वह अध्यक्ष द्वारा शक्ति प्रयोग पर नियन्त्रण रखे लेकिन व्यवहार में बहुत कम समितियाँ ही ऐसी हैं जो अपने अध्यक्ष पर नियन्त्रण रख पाती हैं। समितियो के अध्यक्ष न केवल अपनी समितियों और अपनी शक्तियों का स्वतन्त्र प्रयोग करते हैं, बलिक वे परस्पर एक दूसरे से स्वतन्त्र रहते हुए कार्य करते हैं। लाभप्रद और एकतावर्द्धक कानूनों को स्वीकार करने के लिए वे परस्पर कोई सम्पर्क नहीं करते और एकमत होने

1. "The eye the ear, the hand and very often the brain of the House." —*Thomas B. Reed*

का कोई प्रयास नहीं करते। उनमें एक सहकारी संस्था के रूप में कार्य करने का किसी प्रकार का विचार नहीं होता। इसके अतिरिक्त वे निष्पक्षता का कोई ध्यान न रख कर पूर्णतः अपने दलीय हितों की रचना व निहित स्वार्थों की पूर्ति में लगे रहते हैं।

ब्रिटिश व अमेरिकी समिति व्यवस्था पर तुलनात्मक दृष्टि

(Comparative View of British and American Committee Systems)

ब्रिटिश एवं अमेरिकी व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन करने पर निम्नांकित तथ्य उजागर होते हैं—

(1) स्थायी समितियों की संख्या ब्रिटेन और अमेरिका में भिन्न-भिन्न है। ब्रिटेन में स्थायी समितियाँ लोकसदन में केवल 5 हैं जबकि अमेरिका में प्रतिनिधि-सभा में इनकी संख्या 10 है। समितियों के सदस्यों की संख्या में भी दोनों देशों में अन्तर पाया जाता है। ब्रिटिश समितियों के सदस्यों की संख्या प्रायः 20 से 30 तक होती है। आवश्यकतानुसार अस्थायी सदस्यों के सम्मिलित होने पर उनकी संख्या 30 से 50 तक हो जाती है। परन्तु अमेरिका में यह सदस्य संख्या सामान्यतः 30 से अधिक नहीं हो पाती, यद्यपि विशेष अवस्थाओं में इसकी संख्या में वृद्धि हो सकती है, ब्रिटेन की तरह अमेरिका में अतिरिक्त सदस्यों को लेने की व्यवस्था नहीं है। अमेरिकी समितियों में केवल निश्चित सदस्य रहते हैं। व्हीयर के शब्दों में, "इंग्लैण्ड को यदि संसदीय व्यवस्था पर गर्व है, तो संयुक्त राज्य अमेरिका को समिति विधान पर गौरव है।"[1]

(2) ब्रिटेन में जहाँ सभी स्थायी समितियाँ सदैव क्रियाशील रहती हैं, वहाँ अमेरिका में केवल कुछ ही स्थायी समितियाँ कार्यशील रह पाती हैं। 12 से लेकर 15 तक समितियाँ ही इस प्रकार की हैं जिनके पास प्रायः कोई कार्य नहीं रहता है।

(3) ब्रिटेन के लोकसदन में विभिन्न समितियों का चुनाव 'चयन समिति' (Selection Committee) के द्वारा होता है जबकि अमेरिका में दलों के नेता समितियों के लिए एक समिति का चयन करते हैं और यह समिति विभिन्न दलों के सदस्यों को चुनती है। इसके अलावा समितियों में सदस्य संख्या सदन के दलों के सदस्यों की संख्या के अनुपात में होती है, परन्तु यह समानता है कि दोनों की जगह सिद्धान्ततः सदन ही समितियों का निर्माण करते हैं।

(4) अमेरिका में स्थायी समितियों के निर्माण के आधार विषय होते हैं और विषय के अनुसार ही उनका नामकरण किया जाता है। परन्तु ब्रिटेन में समितियों का निर्माण विषयवार नहीं होता। वहाँ किसी भी समिति में कोई भी विधेयक भेजा जा सकता है। इसके अतिरिक्त वहाँ वर्णमाला के क्रमानुसार समितियों का नाम 'ए' 'बी' 'सी' आदि होता है।

(5) ब्रिटिश समितियों में सदस्यों की वरिष्ठता (Seniority) पर इतना विचार नहीं होता जितना अमेरिका में। यही नहीं, समिति के अध्यक्ष की नियुक्ति भी दोनों देशों में भिन्न प्रकार से की जाती है। अमेरिका में समिति के अध्यक्ष की नियुक्ति बहुमत दल की वही एजेन्सी करती है जो समिति के बहुमत दल के सदस्यों की सूची बनाती है। इसके

1. Wheare, K.C. : Modern Constitutions.

विपरीत ब्रिटेन में यह काम चयन समिति करती है। वह नियुक्तियों का एक पैनल (Panel) बना देती है और वे लोग मिलकर अपने में से अध्यक्ष चुनते हैं। ब्रिटेन में सदस्यों की व्यक्तिगत योग्यताओं को ही महत्त्व दिया जाता है न कि वरिष्ठता को। ब्रिटिश समितियो के अध्यक्ष निष्पक्ष रूप से कार्य करते हैं, अतः वहाँ यह आवश्यक नहीं होता कि समिति का अध्यक्ष बहुमत दल का ही हो।

(6) अमेरिका में समितियों का स्थान व्यवस्थापन क्षेत्र में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उन्हें विधेयको का अन्त करने तक का अधिकार है। यह भी आवश्यक नहीं है कि वे विधेयक की रिपोर्ट सदन को दें। ब्रिटेन में समितियाँ विधेयक के साथ जीवन-मरण का खेल नहीं खेल सकतीं। उनके लिए यह भी जरूरी है कि सदन को प्रत्येक विधेयक की रिपोर्ट दें।

(7) अमेरिका में समितियों को स्वय ही उप-समितियाँ (Sub-Committees) बनाने का अधिकार है, परन्तु ब्रिटेन में समितियाँ ऐसा नहीं कर सकतीं।

(8) अमेरिका के समान ब्रिटेन में कोई सम्मेलन समिति, नियम समिति और सचालन समिति नहीं पाई जाती। दूसरी ओर अमेरिका में ब्रिटेन की तरह सत्रीय समितियाँ और व्यक्तिगत विधेयक समितियाँ (Sessional Committees and Private Bills Committees) नहीं पाई जाती।

(9) ब्रिटेन में लोकसदन की समितियों के अध्यक्ष को विशेष प्रसिद्धि प्राप्त नहीं होती, क्योंकि राजनीतिक दृष्टि से वे तटस्थ होते हैं। इसके विपरीत अमेरिका में समितियों के अध्यक्ष दलगत राजनीति में फँसे रहते हैं और उन्हें इतनी प्रमुखता प्राप्त होती है कि महत्त्वपूर्ण विधेयकों के नाम तक समितियों के अध्यक्षों के नामों पर रख दिए जाते हैं।

(10) ब्रिटेन में सरकारी विधेयक, गैर-सरकारी विधेयक एवं गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक पृथक्-पृथक् समितियों को भेजे जाते हैं परन्तु अमेरिका में गैर-सरकारी और सरकारी विधेयकों के मध्य इस प्रकार का कोई अन्तर नहीं है। वहाँ सरकारी विधेयक भी गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा प्रस्तावित किए जाते हैं।

उपर्युक्त तुलनात्मक विवरण से स्पष्ट है कि अमेरिका में ब्रिटेन की अपेक्षा समितियों की शक्ति बहुत अधिक है। ये एक प्रकार से विधायिनी शक्ति के यन्त्र में तेल का काम करती हैं। यह कहना युक्तियुक्त है कि ब्रिटेन में विधि-निर्माण सम्बन्धी नेतृत्व कार्यपालिका को प्राप्त है जबकि अमेरिका में विभिन्न समितियों को। थॉमस रीड की यह युक्ति सर्वथा उचित है कि "ये समितियाँ सदन की आँख, कान, हाथ और अधिकांशतः उसका मस्तिष्क होती हैं।"[1]

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका की राजनीतिक व्यवस्था में कांग्रेस की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

---

1. "These Committees are the eye, the ear, the hand and very often the brain of the House."
—*Thomas, B Reed.*

18

सर्वोच्च न्यायालय एवं न्यायिक पुनरीक्षण

(Supreme Court and Judicial Review)

संयुक्त राज्य अमेरिका में न्यायपालिका की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका है। देश की संघात्मक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में न्यायपालिका का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। अमेरिकी संविधान की तीसरी धारा में यह व्यवस्था की गई है कि "न्याय-सम्बन्धी शक्ति एक सर्वोच्च न्यायालय और उन अन्य नीचे के न्यायालयों में निहित होगी जिनकी स्थापना व प्रतिष्ठा कांग्रेस विधि द्वारा समय-समय पर करेगी।"[1] इस अनुच्छेद के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना को 'आदेशित' (Mandatory) बनाया गया और अधीनस्थ न्यायालयों की स्थापना का उत्तरदायित्व कांग्रेस के विवेक पर छोड़ दिया गया।

संघीय न्यायालय का संगठन

(Organisation of Federal Judiciary)

संघीय न्यायालय निम्नांकित दो प्रकार के हैं—

(1) व्यवस्थापिका न्यायालय, एवं

(2) संवैधानिक न्यायालय।

(1) व्यवस्थापिका न्यायालय (Legislative Courts)

ये वे न्यायालय हैं जिनकी स्थापना कांग्रेस अपनी विधायिनी शक्ति द्वारा करती है। इन न्यायालयों द्वारा संविधान की तीसरी धारा में उल्लिखित न्यायिक शक्ति का उपभोग नहीं किया जाता। उनका कार्य तो उन कानूनों के क्रियान्वयन में प्रशासन को सहयोग देना है जिन्हें कांग्रेस अपनी निहित शक्ति अथवा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करने के लिए निर्मित करती है। कोलम्बिया जिला तथा उन प्रदेशों के लिए, जिन पर संयुक्त राज्य अमेरिका का अधिशासन है, कांग्रेस द्वारा न्यायालयों की स्थापना की गई है।

इन व्यवस्थापिका न्यायालयों के कुछ प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं—

(i) दावा न्यायालय (Court of Claims)—1855 में स्थापित इस न्यायालय में संघीय शासन के विरुद्ध नागरिकों के दावों की सुनवाई होती है।

1. American Constitution, Article III.

(ii) आयात-निर्यात शुल्क न्यायालय (Court of Customs)—इसमें आयात-निर्यात शुल्क एकत्रित करने वाले अधिकारियों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें सुनी जाती हैं।

(iii) आयात-निर्यात तथा पेटेण्ट्स अपील न्यायालय (Court of Customs and Patents Appeal)—यह न्यायालय आयात-निर्यात शुल्क और पेटेण्ट्स के निर्णयों की सुनवाई तथा सीमा-कर आयोग की आज्ञाओं के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई करता है।

(iv) कर न्यायालय (Tax Court)—इसमें कर सम्बन्धी विवादों की सुनवाई होती है।

व्यवस्थापिका न्यायालयों और संवैधानिक न्यायालयों में प्रमुख अन्तर

(1) दोनों की उत्पत्ति के स्रोत भिन्न हैं। उनके द्वारा सुनवाई किये जाने वाले मामले भी भिन्न होते हैं। व्यवस्थापिका न्यायालय उन मामलों की सुनवाई करते हैं जिनका सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, सार्वजनिक धन का व्यय, करों की वसूली आदि से होता है। सांविधानिक न्यायालय उन विवादों का निर्णय करते हैं जिनकी चर्चा संविधान के तीसरे अनुच्छेद में की गई है।

(2) सांविधानिक न्यायालयों के न्यायाधीश आजीवन न्यायाधीश रह सकते हैं जबकि व्यवस्थापिका न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति निश्चित अवधि के लिए होती है।

(2) संवैधानिक न्यायालय (Constitutional Courts)

इन न्यायालयों की स्थापना संविधान के अनुच्छेद 3 द्वारा की गई है। ये न्यायालय निम्नांकित तीन श्रेणियों में विभक्त हैं—[1]

(1) जिला न्यायालय—संघीय न्यायालयों में से सबसे नीचे स्तर के न्यायालय हैं। सम्पूर्ण देश में 88 जिला न्यायालय हैं। प्रत्येक राज्य में एक जिले का होना अनिवार्य है। इनके न्यायाधीशों की नियुक्ति अटार्नी-जनरल (Attorney General) की सलाह से राष्ट्रपति द्वारा की जाती है जिस पर सीनेट की स्वीकृति आवश्यक है।

सामान्यतः जिला-न्यायालयों में एक ही न्यायाधीश अभियोगों का निर्णय करता है जिसके विरुद्ध अपील उचित अपील-न्यायालय में की जाती है। किन्तु यदि अभियोग में संघीय परिनियमों की सांविधानिकता को चुनौती दी गई हो तो तीन न्यायाधीशों द्वारा निर्णय आवश्यक है। अपील सीधी सर्वोच्च न्यायालय को की जा सकती है।

(2) संघीय अपील न्यायालय—देश में इस प्रकार के ग्यारह न्यायालय हैं जो अपने-अपने क्षेत्र में कार्य करते हैं। पहले इनके न्यायाधीश न्याय-कार्य के लिए दौरा करते थे, किन्तु अब ऐसा बहुत कम होता है। संघीय न्यायालयों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य सर्वोच्च न्यायालय के कार्यभार को हल्का करना है। प्रत्येक संघीय अपील के न्यायालय में तीन से लेकर छः न्यायाधीश होते हैं। जिला न्यायाधीशों का भी सहयोग लिया जाता है। इनका न्याय-क्षेत्र अपील सम्बन्धी है। इनमें जिला न्यायालयों और

1. American Constitution, Article III.

संघीय अभिकरणों के निर्णयों के विरुद्ध अपील की जाती है। सर्वोच्च न्यायालय को उनके निर्णय के पुनरावलोकन का अधिकार है।

(3) सर्वोच्च न्यायालय—न्यायालयों की व्यवस्था में सबसे उच्च स्तर का न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय है। इसकी व्यवस्था स्वय संविधान में की गई है। इसकी स्थापना 1789 ई. के न्यायपालिका-अधिनियम द्वारा की गई थी।

संगठन (Organisation)

संविधान में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या निश्चित नहीं की गई है। प्रारम्भ में इसके न्यायाधीशों में एक मुख्य न्यायाधीश तथा पाँच अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति की गई थी। 1801 में इस संख्या को 5, 1807 में 7, 1837 में 9, 1863 में 10 और 1866 में पुन. 7 कर दिया गया। अन्त में 1869 में कांग्रेस द्वारा 9 न्यायाधीशों की व्यवस्था की गई और उस समय से यह संख्या अब तक चली आ रही है, यद्यपि इसमे परिवर्तन हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी। वर्तमान में सर्वोच्च न्यायालय की कुल संख्या 9 है, जिनमें 1 मुख्य न्यायाधीश तथा 8 अन्य न्यायाधीश हैं।

न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है किन्तु इन नियुक्तियों की पुष्टि सीनेट द्वारा होना आवश्यक है। सीनेट इन नियुक्तियों को अस्वीकृत कर सकती है। उदाहरणार्थ, 1930 में जॉन पार्कर अप्रेल, 1970 में राष्ट्रपति निक्सन द्वारा प्रस्तावित नाम (हैरल्ड कार्सवेल) भी सीनेट को मान्य नहीं हुआ था। न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति प्राय. न्यायालय के वर्गीय, धार्मिक एव दलीय स्वरूप को ध्यान में रखता है।

न्यायाधीश जब तक सदाचारी रहते हैं, अपने पद पर बने रहते हैं। यदि किसी न्यायाधीश ने 10 वर्ष तक निरन्तर सर्वोच्च न्यायालय की सेवा की है तो 70 वर्ष की आयु प्राप्त होने पर पूर्ण वेतन सहित वह अवकाश ग्रहण कर सकता है। अमेरिका के न्यायाधीशों पर इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है कि वे राजनीति में भाग न लें, किन्तु यथार्थ में वे राजनीतिक गतिविधियों से पृथक् ही रहते हैं।

इस समय सर्वोच्च न्यायाल के सहायक न्यायाधीशों (Associate Judges) का वार्षिक वेतन 35 हजार डालर है। मुख्य न्यायाधीश को 40 हजार डालर वार्षिक मिलता है। वेतन का निर्धारण कांग्रेस द्वारा निर्धारित किया जाता है, जो न्यायाधीशों के कार्यकाल में कम नहीं किया जा सकता है। यह वेतन आयकर रहित नहीं है। वेतन के अतिरिक्त न्यायाधीशों को अनेक प्रकार के भत्ते मिलते हैं।

किसी भी न्यायाधीश को उसकी इच्छा के विरुद्ध त्यागपत्र देने को विवश नहीं किया जा सकता। किन्तु यदि वह रिश्वत लेने, सगीन अपराध करने तथा दुराचरण सम्बन्धी कृत्य करता है तो उसे महाभियोग (Impeachment) द्वारा हटाया जा सकता है। अब तक केवल 9 मामलों में महाभियोग प्रस्तावित किये गये हैं जिनमें से केवल 4 मामलों में ही न्यायाधीशों को इस प्रक्रिया के द्वारा हटाया गया। इस तरह से राष्ट्रपति अपनी इच्छा से किसी न्यायाधीश को उसके पद से नहीं हटा सकता है। न्यायाधीश स्वेच्छा से अपने पद को त्याग सकते हैं लेकिन इससे तरह के मामले भी आधे से कम ही हुए हैं।

न्यायाधीशों की योग्यता के सम्बन्ध में संविधान मौन है। किन्तु प्रायः ऐसे व्यक्ति को न्यायाधीश नियुक्त किया जाता है जो ख्याति प्राप्त वकील, कानून के प्राध्यापक, सार्वजनिक व्यक्ति तथा प्रशासकीय अभिकरणों के परामर्शदाता रह चुके हों।

कार्य-प्रणाली (Working-Procedure)

सर्वोच्च न्यायालय का कार्य अक्तूबर मे प्रारम्भ होता है और मई के मध्य तक समाप्त हो जाता है। इस प्रकार केवल आठ महीने कार्य होता है। शीत और पतझड़ के समय दो सप्ताह की छुट्टी रहती है, मंगलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार और शुक्रवार को मुकदमे सुने जाते है। शनिवार को न्यायाधीश आपस में मिलकर उन पर विचार-विनिमय करते हैं। निर्णय बहुमत से लिया जाता है और सोमवार को सुनाया जाता है। मुकदमे की सुनवाई तथा निर्णय के लिए 6 न्यायाधीश की गणपूर्ति (Quorum) आवश्यक है। निर्णय के पक्ष में मत देने वाले किसी भी न्यायाधीश को निर्णय लिखने के लिए कहा जा सकता है, अत: सभी न्यायाधीश सभी मुकदमों या अभियोगों में काफी सचेत रहते हैं। यद्यपि मुकदमे का निर्णय बहुमत से होता है, तथापि बहुमत के निर्णय के विरुद्ध कोई न्यायाधीश विमत (Dissenting Opinion) भी दे सकता है। विमत वाले निर्णय महत्त्वहीन होते है, फिर भी जनमत पर इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ता है और अन्त में वह देश की विधियों को प्रभावित करता है।

सर्वोच्च न्यायालय के विचारों तथा निर्णयों को 'संयुक्त राज्य रिपोर्ट्स' में प्रकाशित किया जाता है जो सांविधानिक कानून के ऐतिहासिक और वर्तमान विकास एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है।

सर्वोच्च न्यायालय की कार्य-प्रणाली में कभी-कभी पुराने ,निर्णयों को पलट दिया जाता है और उनके स्थान पर पूर्णतः नवीन निर्णय व सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है। अनेक मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने पुराने निर्णयों को बदल दिया है।

शक्तियाँ एवं कार्य (Powers and Functions)

अमेरिकी संविधान में सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र की स्पष्ट व्याख्या की गई है। इसके अधिकार-क्षेत्र और कार्यों का विवेचन निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है—

(1) प्रारम्भिक अथवा मौलिक क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction)

(2) अपीलीय क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction)

(3) न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार (Power of Judicial Review)

(4) संविधान तथा नागरिक अधिकारों का संरक्षक तथा अभिरक्षक (Custodian and Guardian of the Constitution and the Rights of Citizens)

(5) अन्य अधिकार (Miscellaneous Powers)

उपर्युक्त शक्तियों व कार्यों का विस्तृत विवेचन निम्नांकित है—

(1) प्रारम्भिक अधिकार-क्षेत्र (Original Jurisdiction)—सर्वोच्च न्यायालय का प्रारम्भिक अधिकार-क्षेत्र अत्यन्त सीमित है। संविधान में स्पष्ट उल्लेख है कि "उन सब मामलों मे जिनका सम्बन्ध राजदूतों से, राज्य के मन्त्रियों से अथवा अन्य दौत्य

अधिकारियों से है और उन सब मामलों में जिनमें कोई राज्य एक पक्ष है, सर्वोच्च न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र प्रारम्भिक होगा ।" यद्यपि कांग्रेस इस अधिकार-क्षेत्र को घटा-बढ़ा नहीं सकती, फिर भी वह कानून और अपने विवेक के अन्तर्गत उक्त मामलों के लिए नीचे के न्यायालयों में सुनवाई की अनुमति दे सकती है।

यद्यपि संविधान ऐसे मामलों पर, जिनका सम्बन्ध राजदूतों, वाणिज्य दूतों अथवा अन्य प्रकार के विदेशी राजनयिक प्रतिनिधियों से हो, प्रारम्भिक अधिकार-क्षेत्र प्रदान करता है, परन्तु आधुनिक युग में ऐसे विवाद राष्ट्रीय न्यायालय में प्रायः नहीं उठाए जाते हैं क्योंकि ये अन्तर्राष्ट्रीय विधि तथा परम्पराओं के अन्तर्गत आते हैं।

अन्य न्यायालयों द्वारा केवल उन मामलों की सुनवाई हो सकती है जिनका सम्बन्ध राजनयिक मुक्ति (Diplomatic Immunity) के अन्तर्गत न आने वाले राजनयिक प्रतिनिधियों से हो और जिनमें राज्य एक पक्ष हो। ऐसी दशा में भी ऐसे मामलों की सुनवाई तभी हो सकती है जबकि दूसरा पक्ष कोई अन्य राज्य हो।

(2) अपीलीय अधिकार-क्षेत्र (Appellate Jurisdiction)—सर्वोच्च न्यायालय में अधिकांश मुकदमे पुनर्विचार अर्थात् अपील के लिए आते हैं। दूसरे शब्दों में, राज्यों के उच्च न्यायालयों और निम्न संघीय न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध की गई अपीलों पर विचार करना सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य कार्य है लेकिन अमेरिका में सर्वोच्च न्यायालय में उन सभी मामलों की अपील नहीं हो सकती जिनमें निम्न न्यायालयों के निर्णय से किसी पक्ष को असन्तोष हो। साथ ही ऐसा भी नहीं है कि राज्यों के उच्चतम न्यायालयों के सभी निर्णयों के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सके। सर्वोच्च न्यायालय के अपील सम्बन्धी न्याय-क्षेत्र को स्पष्ट करते हुए मुनरो ने लिखा है कि "केवल उस स्थिति के अतिरिक्त जिसमें—(क) राज्य के उच्चतम न्यायालय ने राज्य के किसी ऐसे कानून को वैध घोषित कर दिया हो, जिस पर संघीय संविधान के विरुद्ध होने का आरोप लगा हो, अथवा (ख) जिसने किसी संघीय कानून अथवा सन्धि को अवैध घोषित कर दिया हो, किसी भी पक्ष को राज्य के संघीय न्याय क्षेत्र के विरुद्ध अपील करने का अधिकार नहीं है।"[1] फिर भी उन मामलों में जिनमें राज्य के उच्चतम न्यायालय ने अपील की अनुमति दे दी हो, अपील सीधी सर्वोच्च न्यायालय में की जा सकती है।

स्पष्ट है कि सर्वोच्च न्यायालय का अपीलीय क्षेत्राधिकार केवल सांविधानिक मामलों में है और साधारण मामलों में सर्वोच्च न्यायालय में अपील तभी होती है जबकि राज्य के उच्च न्यायालय ने इसकी अनुमति दे दी हो।

(3) न्यायिक पुनरीक्षा या पुनरावलोकन का अधिकार (Power of Judicial Review)—संयुक्त राज्य अमेरिका में सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति ने उसकी प्रतिष्ठा और महत्त्व को अद्वितीय बना दिया। इस शक्ति के अधीन वह संविधान की व्याख्या करता है और कांग्रेस तथा राज्यों की व्यवस्थापिकाओं के कानूनों एवं अन्य प्रशासनिक आदेशों की वैधानिकता एवं अवैधानिकता का निर्णय करता

1 *Munro* : The National Govt. of the United States.

है । जैसी कि भ्रान्त धारणा है, सर्वोच्च न्यायालय को अकेले पुनरावलोकन व समीक्षा का अधिकार प्राप्त नहीं है । प्रत्येक राज्य के उच्च न्यायालय को यह निर्धारित करने का अधिकार है कि राज्य का अमुक कानून संविधान के अनुकूल है अथवा नहीं और संघीय जिला न्यायालय तथा अपील न्यायालय दोनों किसी संघीय कानून, राज्य कानून या राज्य के संविधान की किसी भी व्यवस्था को संघीय संविधान के प्रतिकूल घोषित कर उसके कार्यान्वयन को अमान्य कर सकते हैं । लेकिन संघीय संविधान के विरुद्ध होने के सब अभियोगों का अन्तिम निर्णय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ही किया जाता है । यद्यपि ऐसे मामले संघीय निम्न न्यायालयों और राज्य के उच्च न्यायालयो में भी प्रस्तुत किए जा सकते है, परन्तु उनका निर्णय अन्तिम नहीं होता । उनके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय मे अपील की जा सकती है । प्रो. ब्रोगन के अनुसार, "सर्वोच्च न्यायालय की सत्ता को हम एक राजनीतिक संस्था और एक ऐसे तृतीय सदन के रूप मे समझ सकते है जो कार्यपालिका और विधानमण्डल के कार्यों को विशेष सिद्धान्त के अनुसार नियमित करता है ।"[1]

न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का आधार या प्रकृति (Nature and Basis of Judicial Review)—कुछ विचारको के अनुसार न्यायिक पुनरावलोकन की इस शक्ति का कोई सांविधानिक आधार नहीं है । संविधान निर्माताओं का भी ऐसा कोई विचार नहीं था कि न्यायपालिका को इस प्रकार की शक्ति प्रदान की जाये । राष्ट्रपति जैफरसन ने कहा था कि यदि न्यायपालिका काग्रेस एवं राष्ट्रपति, अर्थात् व्यवस्थापिका एव कार्यपालिका के कार्यों का पुनरावलोकन करने के अधिकार का प्रयोग करती है तो न केवल यह शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का ही उल्लंघन है, वरन् संविधान निर्माताओं के विचारों का भी अनादर है ।

परन्तु अधिकांश विचारकों का मत है कि संविधान की दो धाराओ में न्यायपालिका की वह शक्ति अप्रत्यक्ष रूप में निहित है जिसका उपयोग करते हुए वह काग्रेस एव राष्ट्रपति के कार्यों का, पुनरावलोकन कर सकता है । ये दो धाराएँ है—(i) संविधान की चौथी धारा की दूसरी उपधारा, एवं (ii) संविधान की तीसरी धारा की दूसरी उपधारा । संविधान की चौथी धारा की दूसरी उपधारा में उल्लिखित है कि "यह संविधान और संयुक्त राज्य के वे कानून, जो उसके अनुसार बनाए जाएँ एवं वे सन्धियाँ जो संयुक्त राज्य के अधिकार के अन्तर्गत की गई हों या की जाएँ, देश के सर्वोच्च कानून होंगे ।"[2] संविधान की धारा तीन की उपधारा दो में कहा गया है कि "कानून और औचित्य के अनुसार न्यायपालिका की शक्ति के क्षेत्र में वे सभी मामले आएँगे जो इस संविधान, संयुक्त राज्य के कानूनों एवं उनके अन्तर्गत की गई अथवा की जाने वाली सन्धियों के अन्तर्गत उत्पन्न हों ।"[3]

संविधान की चौथी धारा स्पष्टतः प्रतिपादित करती है कि संविधान को देश का सर्वोच्च आधारभूत कानून माना जाना चाहिए । तीसरी धारा का आशय है कि वे सभी मामले, जो उस आधारभूत कानून के अन्तर्गत उत्पन्न होंगे, न्यायिक शक्ति के क्षेत्राधिकार

1 *Brogan, D W* · The American Political System
2-3. American Constitution, Article III.

में होंगे। इस प्रकार इन दोनों ही धाराओं के निष्कर्ष रूप में यह देखना न्यायपालिका का कर्त्तव्य है कि संविधान की सर्वोच्चता कायम रहे और किसी भी प्रकार उसका उल्लंघन न हो। न्यायपालिका अपने इस कार्य को उचित रूप से तभी सम्पादित कर सकती है जब वह संविधान और व्यवस्थापिका के कानूनों को अवैधानिक घोषित करने में सक्षम हो। न्यायिक पुनरावलोकन की इस शक्ति का संविधान की धारा 6 (खण्ड 8) द्वारा भी समर्थन होता है जिसमें न केवल यह कहा गया है कि "संविधान और इसके अन्तर्गत निर्मित संयुक्त राज्य के समस्त कानून तथा संयुक्त राज्य की ओर से की गई या की जाने वाल समस्त सन्धियाँ इस देश के सर्वोच्च कानून होंगे।"[1] वरन् यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि "प्रत्येक राज्य में न्यायाधीश उन्हें मानने के लिए बाध्य होंगे, उनसे असंगत राज्य के संविधान या कानूनों को नहीं।"[2] स्पष्ट है कि संविधान राष्ट्रीय सर्वोच्चता के सिद्धान्त को मान्यता देता है जिसके अनुसार राष्ट्रीय संविधान और कानूनों के विपरीत अन्य किसी कानून या कार्य को विधिक मान्यता नहीं दी जाएगी। इसका आशय यही है कि कोई कार्य या कानून संवैधानिक है अथवा नहीं, इसकी जाँच न्यायपालिका करने की अधिकारिणी होगी। संविधान के उपबन्धों के अतिरिक्त संविधान-निर्माताओं तथा विधिवेत्ताओं ने भी संघीय न्यायालय की पुनरावलोकन शक्ति को मान्यता दी है।

1803 ई. में अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश मार्शल ने 'मारबरी बनाम मैडीसन' (Marburry v/s Medison) नामक प्रसिद्ध मुकदमे में न्यायिक पुनरवलोकन की शक्तियों की स्पष्ट रूप से व्याख्या की और अपना निर्णय देते हुए स्पष्ट किया कि संविधान समस्त देश का सर्वोच्च कानून है तथा न्यायाधीशों का यह प्रमुख कर्त्तव्य है कि वे इसी के अनुरूप निर्णय दें एवं जब कभी कांग्रेस द्वारा पारित कोई अधिनियम देश के सर्वोच्च कानून, अर्थात् संविधान के विरुद्ध पाया जाए तो न्यायालय का कर्त्तव्य है कि वह संविधान को प्राथमिकता दे। इस निर्णय के बाद से ही अमेरिकी न्यायपालिका को न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्राप्त हो गया।

न्यायपालिका न्यायिक पुनरावलोकन के समय व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका के कार्यों और संविधान के शाब्दिक रूप पर ही विचार नहीं करती बल्कि उसकी अन्तरात्मा पर भी ध्यान देती है। इसके अतिरिक्त न्यायपालिका केवल किसी कानून को, संविधान की किसी व्यवस्था के प्रतिकूल होने पर, अवैध घोषित कर सकती है अपने निर्णय को क्रियान्वित करना उसके अधिकार की बात नहीं है। उस निर्णय पर अमल करना कार्यपालिका का कार्य है।

न्यायिक पुनरावलोकन का प्रभाव (Effect of Judicial Review)—संयुक्त राज्य अमेरिका की राजनीतिक व्यवस्था को न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति ने बहुत अधिक प्रभावित किया है। इन प्रभावों को निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है—

(i) इस शक्ति के आधार पर ही सर्वोच्च न्यायालय ने राज्य विधान-मण्डलों और संघीय कांग्रेस द्वारा निर्मित सैकड़ों नियमों को अवैधानिक घोषित कर न्यायिक सर्वोच्चता का सिद्धान्त प्रतिष्ठित किया है।

(ii) इसके आधार पर ही राज्यों की तुलना में संघ की स्थिति सुदृढ़ हो गई है और साथ ही इस शक्ति ने राज्यों के अधिकारों की रक्षा करने में भी सहायता प्रदान की है।

1 2 American Constitution, Article III

(iii) इसका व्यापक प्रभाव राज्य के पुलिस अधिकार पर पड़ता है, जिसमें सार्वजनिक सुरक्षा, जन-कल्याण, स्वास्थ्य, नैतिकता आदि सामाजिक विषय निहित हैं।

(iv) इसने सामाजिक विधायन के क्षेत्र में संघीय सरकार के अधिकारों को प्रभावित किया है।

(v) इस शक्ति के बल पर सर्वोच्च न्यायालय ने केवल संविधान की आत्मा और भाषा का ही निर्वचन नहीं किया है बल्कि नीतियों का निर्धारण भी किया है। इसलिए न्यायाधीशों को 'संविधान का नया निर्माता' तक कह दिया गया है। अनेक अवसरों पर संघीय न्यायालयों ने राज्यों की प्रान्तीयता की संकीर्ण प्रवृत्ति को रोक कर राष्ट्रीय एकता को पुष्ट किया है।

न्यायिक पुनरावलोकन की आलोचना (Criticism of Judicial Review)—सर्वोच्च न्यायालय की इस शक्ति की आलोचना में निम्नांकित तर्क दिये जा सकते हैं—

(i) सर्वोच्च न्यायालय ने इस शक्ति के आधार पर व्यवस्थापिका के कार्यों को इतना अधिक अपना लिया है कि प्रतिनिधि सभा जनता की इच्छा को स्वतन्त्र रूप से व्यक्त नहीं कर सकती। इस शक्ति के सहारे सर्वोच्च न्यायालय अनिर्वाचित उच्चतर व्यवस्थापिका बन बैठा है और उसका रूप एक तृतीय व्यवस्थापिका सदन का-सा हो गया है। ब्रोगन के शब्दों में, "सर्वोच्च न्यायालय कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका के कार्यों को एक तृतीय सदन के रूप में नियमित करने लगा है और अपने मौलिक कार्यों को समुचित ढंग से नहीं निभा पाता।"[1]

(ii) इस शक्ति के बल पर राज्यों के विभिन्न कानूनों की वैधता पर विचार करते समय सर्वोच्च न्यायालय इनके सामान्य औचित्य पर भी विचार कर लेता है। यह उचित नहीं है क्योंकि उसको तो केवल उनकी वैधता-अवैधता पर ही विचार करना चाहिए।

(iii) सर्वोच्च न्यायालय की नीति में अथवा इसके निर्णयों में एकरूपता का अभाव रहा है। ऐसा देखा गया है कि संघीय न्यायालय के निर्णय कभी उदार रहे हैं तो कभी संकीर्ण और कभी संघ के पक्ष में। अनेक अवसर ऐसे आए हैं जब निर्णय विशुद्ध वैधता या अवैधता पर आधारित न होकर न्यायाधीशों की अपनी मान्यताओं और उनके अपने राजनीतिक और सामाजिक विचारों से प्रभावित रहे हैं।

(iv) न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था आधुनिक सामाजिक और आर्थिक अवस्थाओं के लिए अनुपयुक्त है। न्यायिक पुनर्वीक्षा की शक्ति की सहायता से कई अवसरों पर न्यायपालिका निहित स्वार्थों का संरक्षण करती है और प्रगतिशील एवं लोकतन्त्रात्मक नीतियों का विरोध कर कुलीनतन्त्र का पक्ष लेती है।

(v) न्यायिक पुनरवलोकन की शक्ति के बल पर कांग्रेस द्वारा कठोर परिश्रम से निर्मित विधि न्यायपालिका द्वारा कभी-कभी अवांछित रूप में नष्ट कर दी जाती है। फलस्वरूप जनता के प्रतिनिधियों के प्रयासों का कोई उल्लेखनीय परिणाम नहीं हुआ है।

विगत कतिपय वर्षों से जनमत के कारण सर्वोच्च न्यायालय की अनियन्त्रित तथा अमर्यादित शक्ति पर प्रतिबन्ध आरोपित हुई हैं। न्यायाधीश डगलस का तो यहाँ तक कहना है कि न्यायिक सर्वोच्चता' की स्थिति समाप्त हो गई है। यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है। आज भी देश की राजनीतिक व्यवस्था पर न्यायपालिका का बहुत प्रभाव है।

1. *Brogan*. The American Political System

(4) संविधान, नागरिक अधिकारो का रक्षक एवं अभिभावक—जस्टिस ह्यूज (Justice Hugues) के शब्दों में, "अमरीकी जनता संविधान के अधीन तो है किन्तु संविधान वही है जो न्यायाधीश कहते हैं।" सर्वोच्च न्यायालय अमेरिकी जनता के अधिकारों, स्वतन्त्रताओं तथा संविधान का रक्षक एव संघीय व्यवस्था का अभिभावक है। यह संविधान की अन्तिम व्याख्या कर उसका अन्तिम निर्णय करता है। संविधान के विकास में अपनी संवैधानिक व्याख्याओं द्वारा उसने बहुत सहयोग प्रदान किया है। निहित शक्तियों का विकास करके उसने केन्द्र की शक्तियों में वृद्धि की है। इसलिए जेम्स बैक (James Beck) ने कहा है, "सर्वोच्च न्यायालय केवल एक न्यायालय मात्र नहीं है, वरन् यह विशेष अर्थों में एक सतत संविधान-निर्मात्री सभा है।" जस्टिस फ्रैंकफर्टर (Justice Frankfurter) के शब्दों में, "सर्वोच्च न्यायालय ही संविधान है" व्हीयर का मत है कि "संविधान को नवीन समाज की आवश्यकताओं के अनुसार ढालना सर्वोच्च न्यायालय का ही कार्य है।"[1]

इस न्यायालय ने अमेरिका के नागरिकों के मौलिक अधिकारो की सदैव रक्षा की है। वह निर्देश, आदेश, परमादेश, लेख, प्रतिलेख, अधिकार-पृच्छा आदि द्वारा मौलिक अधिकारो एव संवैधानिक संरचना की रक्षा करता है।

(5) अन्य अधिकार—सर्वोच्च न्यायालय अन्य छोटे-छोटे कार्य भी करता है। उदाहरणार्थ, निम्न श्रेणी के कर्मचारियों, जैसे—सदेशवाहक, स्टेनोग्राफर आदि की नियुक्ति करता है, दीवानी एव फौजदारी कार्य-विशेषज्ञों का निर्देशन करता है और अपनी आज्ञाओं को लागू करता है। इस कार्य को आदेश (Writs) के माध्यम से किया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय के कार्यों के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि उसे परामर्श देने का अधिकार नहीं है जो कि भारतीय सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त हैं।

उपर्युक्त विवरण से यही निष्कर्ष निकलता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने अद्वितीय शक्ति प्राप्त कर ली है और देश के संविधान का चौथा पहिया (The Fourth Wheel) कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। मुनरो के अनुसार, "सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक पुनरवलोकन की शक्तियों के लाभप्रद परिणाम निकले है। यदि इसने कोई अन्य ढग अपनाया होता तो अमेरिकी संविधान 50 प्रतिद्वन्द्वी राज्यों का लक्षण बन जाता। न्यायपालिका ही सम्पूर्ण व्यवस्था का सन्तुलन-चक्र है।"[2]

संयुक्त राज्य अमेरिका में न्यायपालिका की स्वतन्त्रता तथा निष्पक्षता बनाये रखने के लिए विविध प्रयास किये गये है। न्यायाधीशों का कार्यकाल पर्याप्त समयावधि का है तथा उन्हें केवल महाभियोग प्रक्रिया द्वारा ही हटाया जा सकता है। न्यायाधीशों को पर्याप्त वेतन-भत्ते दिये जाते हैं जिन्हें उनके कार्यकाल में कम नहीं किया जा सकता है। सारांश में, संयुक्त राज्य अमेरिका की अध्यक्षात्मक व्यवस्था के संचालन में न्यायपालिका की प्रभावशाली भूमिका है।

---

1 *Wheare*: Modern Constitution, p. 160

2 *Munro*: The National Govt. of the United States

19

दल-प्रणाली
(Party-System)

अमेरिकी संविधान-निर्माताओं की कल्पना तथा आशाओ के सर्वथ" विरुद्ध आज राजनीतिक दल अमेरिका के शासन-संचालन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं, और उनका स्थान वैधानिक संस्थाओ से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बन गया है। मुनरो के शब्दो मे, "संविधान-निर्माताओं ने जिस शिला को अस्वीकृत कर दिया था, वहीं शिला शासन-पद्धति का प्रमुख कौना बन गई है।'[1] राजनीतिक दल अमेरिकी राजनीतिक जीवन का अविच्छिन्न अंग बन गये है। वर्तमान में संयुक्त राज्य अमेरिका की अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था के संचालन में राजनीतिक दलों की अहम भूमिका रही है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में द्वि-दलीय व्यवस्था का उदय
(The Rise of Bi-Party System in the U.S.A.)

अमेरिकी संविधान-निर्माता दलीय व्यवस्था में विश्वास नहीं करते थे। राजनीतिक दलों को निरकुश दृष्टि से देखते थे और ऐसी शासन-व्यवस्था का निर्माण करना चाहते थे जो दलीय गुटबन्दियों से मुक्त हो, तथापि उन्हें यह आडेंका भी थी कि जिस प्रकार के लोकतन्त्र को वे स्थानीयकृत करने जा रहे थे, उसमें राजनीतिक दलों का विकास अवश्य हो जाएगा। इतना ही नहीं फिलाडेल्फिया सम्मेलन मे भाग लेने वाले प्रतिनिधि दलीय आधार पर विभाजित होने लगे थे, भले ही उन्होंने ऐसा अनुभव न किया हो। फिलाडेल्फिया सम्मेलन में प्रतिनिधि दो गुटों में विभक्त थे—(i) संघवादी और (ii) संघ-विरोधी। संघवादी संघीय सरकार को शक्तिशाली बनाना चाहते थे जबकि सत्र-विरोधी राज्य-सरकारों को शक्तिशाली बनाने के पक्ष में थे।

इस पृष्ठभूमि में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी कि प्रथम राष्ट्रपति वाशिंगटन के शासन-काल में ही अमेरिका में राजनीतिक दलों का स्पष्ट रूप से विकास हो गया था। उनके यद्यपि जार्ज वाशिंगटन ने अपने विदाई भाषण में अमेरिका की जनता को राजनीतिक दलों से बचने का परामर्श देते हुए कहा था कि "दलीय विद्वेष में सब के लिए बुराई व हानि निहित है। अतः प्रत्येक विद्वान् का यह परम कर्त्तव्य है कि वे

1. "The stone which the builders rejected has become the chief stone of the corner"
—*Munro* : The National Govt. of the United States.

ऐसी भावनाओं का दमन करे और उनसे दूर रहे। दलीय विद्वेष से लोकप्रिय संस्थाएँ क्षीण होती हैं व प्रशासन निर्बल होता है। यह दलीय भावना निराधार विद्वेष व महत्त्वाकांक्षाओं हेतु समाज को उत्प्रेरित करती है तथा उसमें फूट डालकर परस्पर शत्रुता व विद्रोह एवं हिंसक संघर्षों को उत्पन्न करती है।"[1] मेडीसन (Medison) ने भी दलीय प्रणाली का विरोध किया था। हैमिल्टन के अधीन एक समूह को शक्तिशाली बनाने का समर्थक था, जिन्हें 'संघवादी' कहा जाने लगा। दूसरी ओर वे लोग थे जिनकी निष्ठा राज्य-सरकारों के पक्ष में थी। थॉमस जैफरसन के नेतृत्व में इन्होंने अपने-आपको रिपब्लिकन या डेमोक्रेटिक रिपब्लिकन कहना आरम्भ कर दिया। ये ही आज के डेमोक्रेटिक दल के पूर्वज थे। संघवादियों और रिपब्लिकनों में विदेश नीति, कानून-निर्माण आदि के प्रश्नों पर तो मतभेद थे ही, संविधान की व्याख्या करने में भी ये एकमत नहीं थे। इस प्रकार स्पष्ट रूप से दो विभिन्न दलों का प्रादुर्भाव हो चुका था जिनके अपने-अपने नेता थे और जिनके सिद्धान्तों तथा विचारों में परस्पर अन्तर था।

फिर भी अभी तक राजनीतिक दल राजनीतिक मंच पर अपने पूर्ण रूप में प्रकट नहीं हुए थे। वाशिंगटन ने अपने मन्त्रिमण्डल में दोनों गुटों के अग्रणी नेताओं हैमिल्टन और जैफरसन को स्थान देते हुए दोनों गुटों के वैमनस्य को दूर करने का प्रयत्न किया। इसके बावजूद अमरीकी शासन-व्यवस्था में राजनीतिक दलों का बीजारोपण हो चुका था। 1796 के राष्ट्रपति के चुनाव के समय यह दलबन्दी स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आ गई जिसमें संघवादियों ने राष्ट्रपति भवन (White House) में प्रवेश किया। अगले चुनावों में सत्ता जैफरसन के अनुयायियों के हाथ में पहुँच गई। धीरे-धीरे संघवादियों को इतनी क्षति पहुँची कि 1815 के बाद ही राजनीतिक मंच से लुप्त हो गए।

अब रिपब्लिकन डेमोक्रेटिव दल दो गुटों में विभक्त हो गया—(i) एक गुट नैशनल रिपब्लिकन (National Republican) कहलाया और (ii) दूसरा डेमोक्रेटिक रिपब्लिकन (Democratic Republican)। 1852 से 1856 ई. तक नेशनल रिपब्लिकन दल का पूर्ण रूप से विघटन हो गया। उसके अवशेषों पर एक नवीन दल का जन्म हुआ जिसका नाम रिपब्लिकन दल (Republican Party) रखा गया। इस प्रकार मौलिक रिपब्लिकन दल में से ही वर्तमान विद्यमान दोनों राजनीतिक दलों रिपब्लिकन दल (The Republican Party) तथा डेमोक्रेटिक दल (The Democratic Party) का उदय और विकास हुआ।

1856 में आधुनिक रिपब्लिकन दल का उदय हुआ और लगभग चार वर्ष बाद ही 1860 में इस दल के हाथ में शासन-सत्ता आ गई तथा अब्राहम लिंकन राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। उनके नेतृत्व में दासता का घोर विरोध करने, गृह-युद्ध में विजय पाने तथा उद्योगपतियों एवं किसानों की भलाई के लिए काफी काम करने के फलस्वरूप इस दल की स्थिति सुदृढ़ हो गई और जनता पर इसका प्रभाव स्थापित हो गया। 1860 ई. के बाद से ही रिपब्लिकन और डेमोक्रेटिक दल के बीच ही सत्ता का बटवारा होता रहा

1. *George Washington: Farewel Address.*

है। अमेरिका में दोनों ही दल लगभग समान रूप से शक्तिशाली हैं। अमरीकी लोकमत कभी एक के पक्ष में तो कभी दूसरे के पक्ष में होता रहता है। 1992 ई. में डेमोक्रेटिक पार्टी के बिल क्लिण्टन देश के राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। सन् 1996 ई. में उन्हें पुनः राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचित हुए। उन्होंने रिपब्लिकन पार्टी के प्रत्याशी बाबडोल को भारी मतों से पराजित किया।

आर्थर मैकमोहन (Arther MacMohan) ने द्वि-दलीय प्रणाली के सुदृढ होने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा है—"राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रणाली तीसरे दल को हतोत्साहित कर देती हैं, जिसके फलस्वरूप द्वि-दलीय व्यवस्था सुदृढ बन गई है।" फरग्यूसन व मैक हेनरी (Ferguson and McHenry) ने किसी अन्य दल के कार्यक्रम को उपर्युक्त दो दलों द्वारा अपनाए जाने के कारण तीसरा अन्य दल के न पनपने का कारण भी द्वि-दलीय प्रणाली के उदय का आधार बतलाया है। उनका कथन है—"आज से दो-तीन शताब्दी पूर्व वामपक्षी दल जिन सिद्धान्तों का समर्थन करते थे, उनको अधिकांश अब डेमोक्रेटिक व रिपब्लिकन दलों में सम्मिलित कर लिया गया है। तीसरे दल की गतिविधियों में भाग लेने वाले लोग प्रशासनिक पदों का लाभ भले ही प्राप्त न कर सकें किन्तु उनके द्वारा प्रतिपादित नीतियाँ जनता द्वारा स्वीकृत होने पर अमेरिका का कानून बन जाती है।"

द्वि-दलीय प्रणाली के उदय के प्रभाव

(The Effect of the Rise of Bi-Party System)

संयुक्त राज्य अमेरिका में द्विदलीय प्रणाली के अभ्युदय के लिए निम्नांकित कारणों का योगदान रहा है—

(1) कभी-कभी यह स्थिति पैदा हो जाती है कि राष्ट्रपति के निर्वाचन में एक दल और कांग्रेस के निर्वाचन में दूसरा दल विजयी हो जाता है। ऐसी स्थिति में कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के बीच सम्बन्ध मधुर नहीं रहते और संवैधानिक गत्यावरोध तथा संघर्ष की स्थिति देश के लिए सुखद नहीं मानी जा सकती है।

(2) दोनों ही दलों के समान रूप से शक्तिशाली होने के कारण दोनों में स्वस्थ राजनीतिक प्रतियोगिता चलती रहती है। इस स्वस्थ लोकतान्त्रिक राजनीतिक प्रतियोगिता का ही परिणाम है कि दोनों दलों के कार्यक्रमों और नीतियों में कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं पाया जाता। दोनों दलों की एकमतता का उल्लेख करते हुए लॉस्की का कथन है कि "कोई मापदण्ड नहीं है जिसके आधार पर यह निश्चित किया जा सके कि रिपब्लिकन और डेमोक्रेटिक दलों के भिन्न-भिन्न स्थायी विचार क्या हैं।"[1]

(3) इस द्विदलीय व्यवस्था ने संयुक्त राज्य अमेरिका की राजनीतिक व्यवस्था को स्थायित्व प्रदान किया है।

(4) संयुक्तराज्य अमेरिका की अध्यक्षात्मक व्यवस्था की सफलता के लिए भी इस द्वि-दलीय प्रणाली की मुख्य भूमिका रही।

1. *Beard, C.A.*: An Economic Interpretation of the Constitution of the United States.

राजनीतिक दलों के अतिरिक्त अमेरिकी राजनीतिक क्षेत्र में अनेक सघ क्लब, गुट समुदाय, समितियाँ, सगठन और अन्य प्रकार की सस्थाओं का समय-समय पर प्रादुर्भाव होता रहता है जो प्रस्तावित कानून या सरकारी नीति का समर्थन अथवा विरोध कर यथाशक्ति समकालीन राजनीति को प्रभावित करने का प्रयत्न करती हैं।

दलीय कार्यक्रम

(Party Issues or Programmes)

सयुक्त राज्य अमेरिका में राजनीतिक दलों में कोई महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक अन्तर नहीं पाए जाते, अतएव इनका कोई निश्चित ध्येय और कार्यक्रम नहीं रहा है। प्रजातन्त्रीय और प्रतिनिधि शासन के बारे में दोनों का समान विचार रहा है और दोनों ही दल एक-सी शासन व्यवस्था में विश्वास रखते हैं। फिर भी समय-समय पर उनमें कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर मतभेद पैदा होता रहा है।

कुछ समय से रिपब्लिकन दल का कार्यक्रम रहा कि देश के सभी राज्यों के बीच सुदृढ सगठन, सयुक्त राष्ट्र सघ का समर्थन, सैनिक तैयारी, श्रमिकों के लिए बीमा और सामाजिक बीमे की योजनाएँ, उत्पादकों तथा श्रमिकों के हितों में आयकर की नीति, उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का विरोध आदि हो। रिपब्लिकन पार्टी सोवियत सघ तथा साम्यवादी विचारधारा का भी विरोध करती रही है।

डेमोक्रेटिक दल के कार्यक्रम में भी कुछ इसी प्रकार की बातें सम्मिलित हैं, जैसे—निजी उद्योगों तथा सघ सरकार का समर्थन, राज्य में जातिभेद का अन्त, सयुक्त राष्ट्रसघ का समर्थन, साम्यवाद का विरोध, साम्यवाद के समर्थकों को सरकारी पदों से हटाना, उत्तर अटलाण्टिक सन्धि का समर्थन, पिछड़े देशों को आर्थिक सहायता तथा रूस में बोरिस येल्तसिन के नेतृत्व वाली सरकार का समर्थन आदि। स्पष्ट है कि दोनों ही दलों की वैदेशिक तथा आर्थिक नीति में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। इसीलिए ब्राइस ने कहा है कि "अमेरिका के राजनीतिक दल ऐसी दो बोतलों के समान हैं जो खाली हैं और जिन पर अलग-अलग लेबिल लगे हुए हैं।"[1] फाइनर के अनुसार, "अमेरिका में केवल एक दल रिपब्लिकन-कम-डेमोक्रेटिक है जो आदतों और पद की होड के द्वारा दो समान भागों में विभाजित है और जिसमें से एक का नाम रिपब्लिकन तथा दूसरे का डेमोक्रेटिक है।"[2] ब्रोगन के कथनानुसार, "अमेरिका के राजनीतिक दलों के नाम ऐसे हैं, जिनमें अमेरिका के सभी राजनीतिक विचारों की व्यापकता निहित है और यदि किसी एक दल को एकदम अलग करना हो तो उसमें कोई ऐसी विचारधारा नहीं मिलती जो उसके बाद के दल में न पाई जाए तथा उस विचारधारा का महत्त्व बाद के दल में उस दल से अधिक नहीं होगा, जो समाप्त होता है।"[3] एफ मैक्डोनाल्ड के शब्दों में, "अमेरिकी दलों के नेता भौतिक उन्नति के लिए सम्मिलित प्रयास करने की दृष्टि से भले ही एक न हों किन्तु पद की आशा और सरक्षण के वचन से वे एक सूत्र में बधे रहते हैं।" तथापि

1. *Bryce, J* Modern Democracies.
2. *Finer* · The Theory & Practice of Modern Govt.
3 *Brogan, D W* The American Political System

सिद्धान्तों और कार्यक्रमो मे आधारभूत अन्तरो के न होते हुए भी दोनों दलो के निश्चित राजनीतिक कार्यक्रम हैं जिनके अनुसार वे कार्य करते हैं और चुनाव लडते है ।

दलीय संगठन
(Party Organisation)

अमेरिका के दोनों प्रधान दलो का सगठन प्रायः समान है । दोनो ही दलों का संगठन राष्ट्रीय, राज्यीय और स्थानीय स्तरों पर है । दलीय सगठन को, जो 5 स्तरीय है, चार्ट रूप मे इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है—
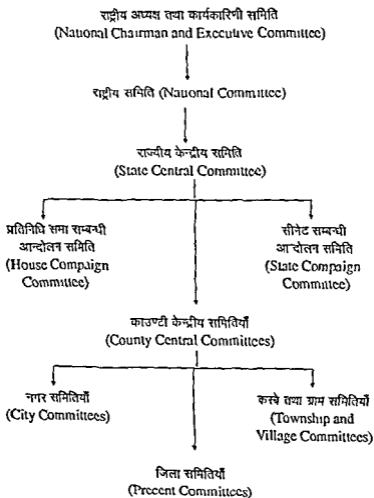
राष्ट्रीय या केन्द्रीय स्तर पर दलीय संगठन
(Party Organisation at the National and State Level)

केन्द्र और राज्य दोनों स्तरों पर दलों का सगठन सुव्यवस्थित है। दल अपनी चार इकाइयों द्वारा कार्य करते हैं। केन्द्र में ये चारों इकाइयाँ निम्नानुसार हैं—

(i) **राष्ट्रीय सम्मेलन**—केन्द्रीय स्तर पर दल का राष्ट्रीय सम्मेलन होता है। यह दल का सर्वोच्च अंग होता है। यह विभिन्न विधियों से निर्वाचित एक विशाल प्रतिनिधि संस्था है जिसमें राज्यों के प्रतिनिधि होते हैं। जिस वर्ष राष्ट्रपति का निर्वाचन होता है, उसी वर्ष इसका अधिवेशन होता है अर्थात् सामान्यतः यह सम्मेलन प्रति चौथे वर्ष होता है। इसे केवल राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति पदों के लिए उम्मीदवारों को मनोनीत करने और चुनाव आन्दोलन के लिए दलीय कार्यक्रम निर्धारित करने का ही नहीं, बल्कि दल के मूलभूत सगठन और नियमों के 'विधान' को भी नियन्त्रित करने का अधिकार होता है। काग्रेस की सदस्यता के प्रत्याशियों के विषय में यह सम्मेलन कुछ नहीं करता। साथ ही यह सम्मेलन कांग्रेस के सदस्यों को इस बात के लिए बाध्य भी नहीं कर सकता कि वे दलीय कार्यक्रम का ही समर्थन करें।

(ii) **राष्ट्रीय समिति**—दल के सामान्य कार्य-सचालन के लिए प्रत्येक दल की एक स्थायी कार्यकारिणी समिति होती है जिसे राष्ट्रीय समिति कहते हैं। रिपब्लिकन दल की राष्ट्रीय समिति में प्रत्येक राज्य और प्रत्येक क्षेत्र के दो प्रतिनिधि होते हैं—एक पुरुष और एक महिला। डेमोक्रेटिक दल में भी यही व्यवस्था है, केवल अन्तर यह है कि उसमें पनामा नहर क्षेत्र और वर्जीनिया आइलैण्ड के भी प्रतिनिधि होते हैं। राष्ट्रीय समिति के प्रतिनिधि सामान्यतः राष्ट्रीय सम्मेलन के लिए राज्यों से निर्वाचित प्रतिनिधि मण्डलों द्वारा चुने जाते हैं।

राष्ट्रीय समिति का मुख्य कार्य अपने में से दो कार्यकारिणी समितियों का निर्माण करना है जो उसके लगभग सभी कार्यों का सचालन करती है। इन समितियों के नाम हैं—(i) काग्रेसीय आन्दोलन समिति (Congression Compaign Committee) तथा (ii) सीनेट निर्वाचन आन्दोलन समिति (Senatorial Compaign Committee)। इन समितियों के प्रमुख कार्य हैं—राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाना, दल के व्यय के लिए कोष एकत्रित करना, राज्य के प्रतिनिधियों की सख्या निश्चित करना, प्रतिनिधि सभा एव सीनेट के निर्वाचन कार्य का सचालन करना आदि। राष्ट्रपति के निर्वाचन में राष्ट्रीय समिति स्वय भाग लेती है। इसके लिए वह प्रत्येक चौथे वर्ष राष्ट्रीय सम्मेलन आमन्त्रित करती है डेमोक्रेटिक दल की राष्ट्रीय समिति में लगभग 108 सदस्य होते हैं और रिपब्लिकन दल की समिति में लगभग 147।

(iii) **राष्ट्रीय अध्यक्ष**—राष्ट्रीय संगठन की एक अन्य इकाई राष्ट्रीय अध्यक्ष होता है, जो राष्ट्रीय समिति द्वारा राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति पद के प्रत्याशियों के *निर्वाचन* के बाद प्रत्येक 4 वर्ष बाद चुना जाता है, लेकिन व्यवहार में राष्ट्रीय अध्यक्ष प्रायः वही व्यक्ति होता है जिसे राष्ट्रपति मनोनीत करना चाहता है। समिति तो केवल उसके द्वारा प्रस्तावित व्यक्ति के नाम की पुष्टी करती है।

राष्ट्रीय अध्यक्ष का प्रमुख कार्य राष्ट्रपति पद के निर्वाचन के अभियान का संचालन करना होता है। दल के, राज्य के और क्षेत्रों के सगठन से उसका निकट सम्पर्क रहता है। व्यवहार में राष्ट्रपति की शक्ति के बढने के कारण उसकी शक्ति सीमित हो रही है।

(iv) राष्ट्रीय समिति सचिवालय (Secretariat)—अमेरिका में दलीय संगठन के कार्य का वास्तविक सचालन बहुत कुछ उन लोगों की बुद्धिमत्ता पर निर्भर करता है जो राष्ट्रीय समिति के सचिवालय से जुड़े रहते हैं। प्रत्येक दल के सचिवालय का संगठन भिन्न-भिन्न है और उनके कार्य भी विविध प्रकार के हैं। सचिवालय ही नेताओं की ओर से दिए जाने वाले भाषणों को तैयार करता है। वही दल के लिए धन एकत्रित करने तथा उसका हिसाब-किताब रखता है। सचिवालय स्थानीय और राज्य के दलीय संगठनों से पत्र व्यवहार करने जैसे कार्य भी सम्पादित करता है।

राज्य स्तर पर संगठन (Organisation at State Level)

राज्य स्तर पर दोनों दलो का सगठन समान-सा है। हर राज्य मे दोनो दलों की एक-एक केन्द्रीय समिति है जिसका आकार और निर्माण विभिन्न राज्यों में विभिन्न प्रकार का है। अनेक राज्यों की केन्द्रीय समितियो मे केवल राज्य की काउण्टी समितियों के चेयरमैन ही होते हैं। इन समितियों के सदस्य सामान्यतया प्रारम्भिक इकाइयों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित किए जाते हैं और इनमें पुरुष तथा महिलाओं की सख्या समान होती है। राजकीय केन्द्रीय समिति द्वारा राज्य के समस्त दलीय संगठनो पर नियन्त्रण रखा जाता है। वह धन एकत्र करती है तथा छोटे पदों के लिए दलीय उम्मीदवारों का नामाकन करती है। इसकी भी एक कार्यकारिणी समिति तथा एक कोषाध्यक्ष होता है। समिति के अध्यक्ष पद के लिए नामांकन दल के गवर्नर या किसी प्रसिद्ध दलीय नेता द्वारा किया जाता है।

स्थानीय स्तर पर संगठन (Organisation at the Local Level)

दलों का निम्नतम संगठन स्थानीय संगठन कहलाता है जिसे विभागीय संगठन भी कहा जाता है। इस सगठन के सम्बन्ध में अमेरिका की दलीय व्यवस्था में समानता नहीं पाई जाती। स्थानीय सगठन का स्वरूप इस प्रकार है—

(1) प्रिसिंक्ट समिति (Precinct Committee),

(2) वार्ड समिति (Ward Committee),

(3) काउण्टी समिति (County Central Committee),

(4) नगर समिति (Town Committee)

इस स्तर पर सबसे छोटी इकाई प्रिसिंक्ट समिति है जिसके प्राय 100 से 500 तक मतदाता होते हैं। प्रत्येक समिति में प्रत्येक दल का एक नेता और एक कप्तान होता है जिसे समिति अधिकारी भी कहा जाता है और जिसकी नियुक्ति कभी-कभी उच्चतर दलीय संगठन द्वारा की जाती है, किन्तु सामान्यत. प्रिसिंक्ट के मतदाताओं द्वारा ही होती है। इन्हीं मतदान समितियों की कार्यकुशलता पर दल की हार या

जीत निर्भर करती है । वास्तव में ये दलीय व्यवस्था के मूलाधार हैं । शहरी क्षेत्रों में वार्ड-समितियाँ भी होती हैं जो शहरी मतदान समितियों के कार्य का सचालन करती हैं । वार्ड मतदान और अन्य शहरी दलीय सगठन की इकाइयों के कार्यों के निरीक्षण हेतु प्रत्येक दल की नगर समिति होती है । ग्रामीण सगठन की इकाइयों का क्रम निम्नानुसार है—

(1) ग्रामीण मतदान समिति (Rural Precinct Committee)—यह सबसे छोटी इकाई है ।

(2) ग्राम एव कस्बा समिति (Village and Township Committee)—इसके द्वारा ग्रामीण मतदान समितियों के कार्यों का निरीक्षण किया जाता है ।

ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों की दलीय इकाइयों के ऊपर काउण्टी सगठन है जिसका संचालन काउण्टी समिति द्वारा किया जाता है । इस काउण्टी समिति में चेयरमैन तथा एक केन्द्रीय काउण्टी होती है जिसका अर्थ नीचे की स्थानीय इकाइयों के कार्यों का निरीक्षण तथा नियन्त्रण करना होता है । समिति का चेयरमैन बहुत प्रभावशाली व्यक्ति होता है और यह कुछ ऐसे पदों पर नियुक्ति भी करता है जिसका राजकीय या सघीय सेवाओं से सम्बन्ध होता है । इन काउन्टियों की सख्या पूरे देश में तीन हजार से अधिक है । हर जिले में हर दल की एक जिला समिति होती है ।

सयुक्त राज्य अमेरिका में महत्त्वपूर्ण पदों, जिनके लिए निर्वाचन होता है, वे निम्नांकित हैं—राष्ट्रीय, कांग्रेस, राज्यों के गवर्नरों तथा न्यायाधीशों के पद । इन पदों को प्राप्त करने की लालसा में ही अमरीका में लोग राजनीतिक दलों के सदस्य बनते हैं और इनको सुदृढ़ करने में लगे रहते है । इस तरह से सयुक्त राज्य अमेरिका में राजनीतिक दलों का एक व्यवस्थित ढाँचा है ।

अमेरिकी दल पद्धति की विशेषताएँ

(Features of American Party System)

सयुक्त राज्य अमेरिका की दलीय व्यवस्था की विशेषताएँ निम्नानुसार है—

(1) कठोर संगठन (Rigid Organisation)—अमेरिका में दलीय सगठन बड़ा कठोर, नियन्त्रित और केन्द्रित होता है । अनेक लोग प्रतियोगिता की भावना से कार्य करते हैं । कुछ लोग इनमें दलीय भावना से कार्य करते हैं, परन्तु अधिकाश लोग इनमें इसलिए कार्य करते हैं कि उन्हें कोई नौकरी मिल जाए । दलीय सघर्ष में लोगों का स्थायी स्वार्थ होता है । प्रो. फोर्ड के अनुसार, "अमेरिका में जितने आदमी सगठनों में कार्य करते हैं उतने शेष सभी सभ्य ससार के किसी भी देश में काम नहीं करते ।"

(2) परम्पराओं एवं प्रथाओं पर आधारित (Based on Conventions and Customs)—अमेरिकी-दलीय-व्यवस्था भी ब्रिटिश-दलीय-व्यवस्था की भाँति परम्पराओं और प्रथाओं पर आधारित है । सविधान निर्माताओं ने दलीय व्यवस्था को शरारत,

भ्रष्टाचार और अनैतिकता फैलाने वाला तत्व कह कर संविधान से निकाल दिया था। किन्तु वर्तमान में दलीय व्यवस्था एक वास्तविकता बन गई है। लार्ड ब्राइस का कथन है—"दल का संगठन संविधान द्वारा स्थापित कानूनी सरकार के साथ-साथ एक दूसरी ही सरकार बना हुआ है जिसका कानून मे कहीं उल्लेख नहीं हैं।"[1]

(3) वर्गीय मतभेद (Group Differences)—संयुक्त राज्य अमेरिका में राजनीतिक दलो मे सैद्धान्तिक मतभेद न होकर वर्गीय मतभेद पाये जाते हैं। वहाँ राजनीतिक दलों में विचारधारा के स्थान पर परम्परा एव भौगोलिक प्रभाव का आधार अधिक है। कोई अमेरिकी दल को प्रायः इस कारण नहीं अपनाता है कि वह दल उसकी विचारधार के अनुकूल हैं, अपितु इसलिए ग्रहण करता है कि उसके पिता या सम्बन्धियों ने उसे अपना रखा है, या वह दल उसके समाज, जाति, व्यवस्था या धर्म के साथ जुड़ा है। वस्तुतः अमरीकी दल दबाव समूहों के गुट है, सिद्धान्तो के समूह नहीं। इसके अतिरिक्त दलों का वर्गीय आधार आर्थिक व्यवस्था पर निर्भर है। अमेरिकी उद्योगपतियों के अपने-अपने सगठन हैं और इनका यह एक प्रमुख कार्य है कि धन के बल पर किसी एक राजनीतिक दल पर अपनी सत्ता जमाये रखे।

(4) द्वि-दलीय प्रणाली (Two-Party System)—अमेरिका की दलीय व्यवस्था द्वि-दलीय है। वहाँ के लोगो ने तीसरे सशक्त दल की आवश्यकता ही अनुभव नहीं की। इसका प्रमुख कारण यह है कि छोटे-छोटे दल जिस कार्यक्रम को लेकर उठते हैं वह उक्त दोनों दलों द्वारा अपना लिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त छोटे-छोटे दलों के पास योग्य नेतृत्व संगठन शक्ति तथा अनुशासन का अभाव रहता है। अमेरिका मे जाति-भेद, वर्ग-भेद, धर्म-भेद आदि का कोई महत्त्व नहीं हैं, अतः वहाँ इस आधार पर राजनीतिक दलों का उद्भव नहीं हुआ।

(5) मौलिक सैद्धान्तिक मतभेदों का अभाव (Lack of Fundamental Ideological Differences)—अमेरिका के राजनीतिक दलों मे मौलिक सैद्धान्तिक मतभेदों का अभाव है। दोनों ही दलों की मुख्य नीतियों लगभग समान हैं। अतः राष्ट्रपति में परिवर्तन होने के बावजूद अमरीका की नीतियों में मौलिक परिवर्तन नहीं होता है।

(6) दलीय नेता का महत्त्व (Importance of Party Leader)—अमेरिका में दल के नेता का महत्त्व ब्रिटिश दलीय नेता की तुलना में बहुत कम है। कोई भी व्यक्ति दल का एकमात्र और सर्वोच्च नेता नहीं हो सकता। ब्रिटिश नेता के समान वह दल का भाग्य-विधाता नहीं होता और न ही दल के अनुयायी निर्विरोध रूप से उसका अनुकरण ही करते हैं। फिर भी वर्तमान में दल के नेता का महत्त्व बढ़ता जा रहा है।

(7) एकल सदस्यीय निर्वाचन-क्षेत्र (One-member Electoral Areas)—अमेरिका में एकल सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र-व्यवस्था होने से सदैव द्वि-दलीय पद्धति को प्रोत्साहन मिला है क्योंकि इस व्यवस्था में छोट-छोटे राजनीतिक दलों को पनपने का अवसर नहीं मिलता।

1. *Bryce, J.*: Modern Democracies.

(3) दोनों ही देशों में प्रधान दलों का संगठन राष्ट्रीय स्तर पर है और सम्पूर्ण देश में उनका जाल फैला हुआ है।

(4) दोनों ही देशों की दलीय-व्यवस्था नेता की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

असमानताएँ (Dissimilarities)

दोनों देशों की दलीय व्यवस्था में निहित मुख्य अन्तर पर प्रकाश डालते हुए कावेल ने लिखा है कि "संयुक्त राज्य अमेरिका के राजनीतिक दल उद्देश्य एवं रूप की दृष्टि से इंग्लैण्ड तथा अधिकांश अन्य देशों से भिन्न हैं।"[1] अमेरिकी और ब्रिटिश दलीय पद्धति में प्रमुख अन्तर निम्नांकित हैं—

(1) ब्रिटेन में श्रमिक और अनुदार दलों के सिद्धान्तों और उनकी विचारधाराओं में स्पष्ट अन्तर है। दूसरी ओर अमेरिका के दोनों प्रधान दलों की विचारधाराओं में भी कोई विशेष अन्तर नहीं है। विदेश नीति, राष्ट्रीय नीति, आर्थिक जीवन के आदर्शों आदि के सम्बन्ध में दोनों ही राजनीतिक दल लगभग समान दृष्टिकोण अपनाए हुए हैं। इसलिए लार्ड ब्राइस ने अमेरिकी राजनीति के दोनों दलों की तुलना दो ऐसी खाली बोतलों से की है जिनमें अलग-अलग पेय के लेबल लगे हुए हैं।"[2] एमरसन के शब्दों में, "साधारणतया हमारे (अमेरिका) दल परिस्थितियों के दल हैं, सिद्धान्तों के नहीं।"[3]

(2) ब्रिटिश दलों की तुलना में अमेरिकी राजनीतिक दलों का संगठन कमजोर है और उनमें स्थानीयता की भावना अधिक प्रबल है। अमेरिका में राजनीतिक दलों का राष्ट्रीय स्वरूप केवल राष्ट्रपतीय चुनावों के समय ही उजागर होता है अन्यथा साधारणत. उनका स्थानीय और राज्यीय रूप ही प्रबल रहता है। इसके विपरीत ब्रिटेन में हर समय श्रमिक तथा अनुदार दल देश स्थानीयता की अपेक्षा राष्ट्रीय हितों को सदैव अधिक महत्त्व देते हैं। राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा कर स्थानीयता को महत्त्व देने वाले दलों को ब्रिटिश जनता पसन्द नहीं करती। ब्रिटिश राजनीतिक दल अपने कार्यक्रमों और नीतियों का राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में निर्धारण करते हैं।

(3) ब्रिटिश राजनीतिक दल अमेरिकी दलों की तुलना में अधिक अनुशासित हैं। यही कारण है कि वहाँ दल-बदल की घटनाएँ अपवाद के रूप में होती हैं और दलीय अनुशासन भी प्रायः बहुत कम भंग किया जाता है। दूसरी ओर अमेरिका के दलों में इन दोनों का बाहुल्य है। जहाँ ब्रिटेन में दल के नेता के आदेशों-निर्देशों की प्राय. अवहेलना नहीं की जाती और यदि की जाती है तो असामान्य परिस्थितियों में ही, वहाँ अमेरिकी कांग्रेस के सदस्य अपने दलीय नेता के आदेशों की विशेष परवाह नहीं करते।

(4) ब्रिटेन में संसदीय शासन-व्यवस्था है जबकि अमेरिका में अध्यक्षात्मक अतः स्वाभाविक रूप से जहाँ ब्रिटेन में राजनीतिक दल सदैव सक्रिय रहते हैं वहाँ अमेरिका में केवल राष्ट्रपति के चुनाव के समय ही उनमें सक्रियता आती है। ब्रिटेन में कोई नहीं कह

1. "The Political Parties in the United States of America essentially differ in their aims and character from those in England and most other Countries" —*Cowel*
2. *Bryce*, Modern Democracies
3. "Primarily our Parties of circumstances and not of principles" —*Amerson*

सकता कि चुनाव कब हो जाएँ (क्योंकि मन्त्रिमण्डल का कभी भी पतन हो सकता है और कभी भी लोकसदन को भंग कर नए चुनाव करवाए जा सकते हैं) जबकि अमेरिका में राष्ट्रपति और कांग्रेस का कार्यकाल निश्चित होता है। फलतः राजनीतिक दलों में सक्रियता का अभाव पाया जाता है।

(5) ब्रिटेन की तुलना में अमेरिका के राजनीतिक दलों मे दबाव-समूह (Pressure Groups) बहुत अधिक सक्रिय और प्रभावशाली रहते हैं।

(6) अमेरिका में 'लूट-व्यवस्था' (Spoils System) जैसी कोई बात ब्रिटिश राजनीतिक दलों के सम्बन्ध में नहीं पाई जाती। ब्रिटेन में मन्त्रिमण्डल में परिवर्तन होने पर प्रशासनिक अधिकारियों की स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता जबकि अमेरिका में राष्ट्रपति के बदलने के साथ ही उच्चाधिकारियों में भी परिवर्तन आ जाता है।

अन्त में, अमेरिकी दलीय व्यवस्था के योगदान के सम्बन्ध में डी. बेले का यह कथन दोहराया जा सकता है कि "राजनीतिक दल मूल अमेरिकी राजनीतिक संस्थाएँ हैं। उन्होंने सरकार का संचालन किया है। उन्होंने शक्ति-पृथक्करण और संघीय-व्यवस्था द्वारा उत्पन्न की गई बाधाओं को नष्ट किया है। उन्होंने राष्ट्रीय भावना को सुदृढ़ किया है, वर्ग-संघर्ष को दुर्बल किया है तथा प्रजातन्त्र विकसित किया है। अमेरिकी सरकार की जटिल व्यवस्था का राजनीतिक दलों ने ही सफलतापूर्वक संचालन किया है तथा परस्पर सौहार्द उत्पन्न किया है। दल की राष्ट्र और राज्य के हितों में समन्वय करते हैं। वर्ग भावनाओं और मतभेदों को कम कर दलों ने राष्ट्रीय भावना को सुदृढ़ किया है।" और वे अध्यक्षात्मक व्यवस्था की सफलता के आधार बन गये हैं।

सारांशतः अमेरिका की राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों की अहम भूमिका है।

स्विस संविधान का विकास और विशेषताएँ
(Growth and Characteristics of the Swiss Constitution)

स्विट्जरलैण्ड विश्व का एक अनूठा देश है। यूरोपीय महाद्वीप के मध्य स्थित लगभग 41,288 किलोमीटर का और 63 लाख की जनसंख्या वाला इस छोटे से देश को विश्व का अनुपम लोकतान्त्रिक देश माना जाता है। इसके उत्तर में जर्मनी, पूर्व में आस्ट्रिया, दक्षिण में इटली और पश्चिम में फ्रांस स्थित है। इस देश की कोई ऐसी प्राकृतिक सीमा नहीं है जो इसे पड़ोसी राष्ट्रों से पृथक् करती हो। वर्तमान अशान्त विश्व में स्विट्जरलैण्ड शान्ति का प्रतीक है। यह स्थायी तटस्थ राष्ट्र है।

स्विट्जरलैण्ड का संवैधानिक महत्व
(Constitutional Importance of Switzerland)

प्रत्यक्ष लोकतन्त्र के कारण यह देश लोकतन्त्र का पर्याय बन गया है। स्विट्जरलैण्ड के संवैधानिक महत्व को निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है—

प्राचीनतम गणतन्त्रीय परम्परा (Ancient Republican Tradition)

स्विट्जरलैण्ड विश्व का सबसे प्राचीन गणतन्त्रीय लोकतन्त्र है जिसमें अमेरिका के गणतन्त्रीय संविधान के उदय के भी लगभग 500 वर्ष पूर्व से गणतन्त्र का प्रयोग होता चला आ रहा है। रैपार्ड (Rappard) के शब्दों में—"स्विट्जरलैण्ड युगों से गणराज्य रहा है।" बहुल कार्यपालिका इस गणतन्त्रीय परम्परा का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक है।

लोकतन्त्र की प्रयोगशाला (Laboratory of Democracy)

स्विट्जरलैण्ड की ख्याति उसके प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के कारण है। आरम्भिक (Initiative) और जनमत-संग्रह (Referendum) यहाँ के राजनीतिक जीवन के प्रमुख आधार हैं। इनसे जनता को शासन में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने का अवसर मिलता है। इनके अतिरिक्त प्रारम्भिक सभाएँ (Primary Assemblies) भी जनता को प्रशासनिक नीति के निर्माण में भाग लेने का अवसर देती हैं। स्विट्जरलैण्ड को सच्चे अर्थों में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के लिए विश्व की राजनीतिक प्रयोगशाला कहा जा सकता है।

विविधता में एकता (Unity in Diversity)

स्विट्जरलैण्ड में विभिन्न भाषा-भाषी और धर्मावलम्बी पाए जाते हैं तथापि उनमें राष्ट्रीय एकता विद्यमान है। स्विस गणतन्त्र राष्ट्र की एकता और सुदृढ़ता का अपूर्व आदर्श

है। देश के 19 पूर्ण कैण्टनो और 6 अर्द्ध-कैण्टनों में कई प्रजातियाँ निवास करती हैं जो विभिन्न भाषाओं और धर्मों की अनुगामिनी हैं। देश की लगभग तीन-चौथाई जनसंख्या जर्मन भाषा-भाषी है, लगभग पाँचवाँ भाग फ्रेंच भाषा-भाषी है और शेष इटालियन भाषा बोलते है। लगभग एक प्रतिशत लोग रोमाँश (Romansch) नामक आदि-भाषा बोलने वाले हैं। यहाँ धार्मिक विभिन्नताएँ भी हैं, किन्तु इन सब विविधताओं के बावजूद देश में अपूर्व एकता की स्थिति है।

स्विट्जरलैण्ड की इस विविधता में एकता के लिए अनेक कारण उत्तरदायी रहे हैं। प्रथम, स्विट्जरलैण्ड में धार्मिक और भाषायी क्षेत्रो की सीमाएँ एक न होकर भिन्न-भिन्न है। एक धर्म के अनुयायियों की अनेक भाषाएँ हैं और एक भाषा-भाषी अनेक धर्मों को मानने वाले हैं। द्वितीय, कैण्टनो की सीमाएँ भी धर्म और भाषा के क्षेत्रों की सीमाओं से भिन्न है। एक ही कैण्टन के अन्तर्गत विभिन्न धर्मावलम्बी और भाषा-भाषी पाए जाते हैं तथा एक ही धर्म और भाषा के लोग कई कैण्टनों में निवास करते है। तृतीय, स्विस संविधान भी धर्म, भाषा और संस्कृति के आधार पर नागरिकों में कोई भेदभाव नहीं करता। सविधान ने देश की सभी भाषाओं को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया है। कुल मिलाकर इन सभी कारणों का यह परिणाम है कि स्विट्जरलैण्ड में विरोधाभासों के बीच भी एकात्मकता दिखाई देती है। स्विस जनता में राष्ट्रीय एकता की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। बुएल का कथन है कि "स्विट्जरलैण्ड ने यह दिखा दिया है कि उन लोगों में भी घनिष्ठ सहयोग की भावना हो सकती है, जो कभी राजनीतिक दृष्टि से परस्पर स्वतन्त्र थे किन्तु आज भाषा व धर्म के आधार पर काफी विभाजित हैं।"[1]

जॉन ब्राउन मैसन का भी यही मत है कि "भाषा व धर्म की विविधता होते हुए भी जो उच्चकोटि की राष्ट्रीय एकता स्विट्जरलैण्ड में पाई जाती है, उसने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में लोगो का ध्यान आकर्षित किया है।"[2]

स्थायी तटस्थता (Permanent Neutrality)

स्विट्जरलैण्ड एक स्थायी तटस्थ राष्ट्र है। इसकी इस तटस्थता को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त है। जर्मनी, इटली, फ्रास जैसे शक्तिशाली राष्ट्रों से घिरा होने पर भी वह अपनी तटस्थता और स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने में सफल रहा है। राष्ट्रसंघ और अब संयुक्त राष्ट्र संघ में भी स्विट्जरलैण्ड इसी शर्त पर सम्मिलित हुआ कि उसकी तटस्थता को मान्यता मिलती रहेगी। हिटलर तथा मुसोलिनी जैसे तानाशाहों ने भी स्विट्जरलैण्ड की तटस्थता को भंग नहीं किया। तटस्थता की नीति के कारण ही अधिकाश अन्तर्राष्ट्रीय शिखर सम्मेलन स्विट्जरलैण्ड में ही होते हैं।

स्विट्जरलैण्ड की तटस्थता 'एकाकी' नहीं है। यह देश विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओं का सक्रिय सदस्य है लेकिन प्रत्येक कार्य राजनीतिक निष्पक्षता और तटस्थता

1 *Buell & Others :* Democratic Govt. in Europe. p 558
2 *Mason, J. Brown :* Switzerland in Foreign Govt., p. 320

धारण किए रहता है। यह 'अशान्ति के सागर में स्थित सुखी द्वीप' की भाँति है। विश्व की शान्ति की एकमात्र आशा है।

स्विस संविधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
(The Historical Background of the Swiss Constitution)

स्विस संविधान वस्तुतः एक क्रमिक विकास का परिणाम है। इसके संवैधानिक इतिहास को 5 भागों में बाँटा जा सकता है—(1) प्राचीन संघ (1291-1798), (2) हैल्वेटिक प्रजातन्त्र (1798-1803, (3) नैपोलियन काल (1803-1815), (4) संघ राज्य (1815-1848), एवं (5) 1848 से अब तक का वर्तमान संघ-शासन।

प्राचीन संघ (1291-1798)

पहली अगस्त, 1291 को अपनी आत्मरक्षा तथा आस्ट्रिया के प्रभुत्व को कम करने के लिए उरी, स्वेज तथा स्विट्जरलैण्ड नामक तीन सम्प्रभु राज्यों ने एक 'स्थायी संघ' (Perpetual League) की स्थापना की।

संघ बनने पर आस्ट्रिया के राजा ने राज्यों अथवा कैण्टनों (Cantons) पर आक्रमण किया, किन्तु युद्ध में कैण्टनों की विजय हुई। 1353 में आठ कैण्टनों का स्थायी मैत्री संघ (Confederation) बन गया। फ्रांसीसी-क्रान्ति (1789) के समय संघ में 13 स्वतन्त्र राज्य थे जिनमें अनेक समझौतों द्वारा यह निश्चय हुआ था कि किसी एक राज्य पर आक्रमण होने की दशा में सभी राज्य तुरन्त सहायता करेंगे। आपसी विवादों के हल के लिए पंच-फैसले (Arbitration) की व्यवस्था थी।

लेकिन यह संघ शासन-प्रणालियों में विभिन्नता, धार्मिक मत-मतान्तरों, केन्द्रीय सत्ता की कमी, आदि के कारण बहुत ही निर्बल था। ब्रुक्स (Brooks) के शब्दों में—"इस समय स्विट्जरलैण्ड का केन्द्रीय शासन 'संघ के विधान' (Articles of Confederation) के अन्तर्गत संचालित संयुक्त राज्य अमेरिका के केन्द्रीय शासन से भी अधिक शक्तिहीन था।" यह एक भौगोलिक संघ (Geographical Expression) मात्र था। संघ-शासन का एकमात्र अंग 'डाइट' (Diet) प्रभावहीन संस्था थी जिसके निर्णय सब कैण्टनों पर लागू नहीं हो सकते थे। 14वीं शताब्दी में स्थायी संघ के लिए 'स्विटजरलैण्ड' शब्द का प्रयोग हुआ।

हैल्वेटिक प्रजातन्त्र (1798-1803)

यद्यपि सभी कैण्टनों में आए दिन संघर्ष होते रहते थे, तथापि उपर्युक्त संघ अपना राजनीतिक व्यक्तित्व किसी न किसी तरह बनाए रहा। ब्राह्य आक्रमणों से रक्षा के लिए उनका संघ-रूप में एक बने रहना आवश्यक था किन्तु 1789 की फ्रांसीसी क्रान्ति के बाद नैपोलियन ने आक्रमण कर स्विट्जरलैण्ड पर अधिकार कर लिया। नैपोलियन ने फ्रांसीसी प्रतिमान पर हैल्वेटिक गणतंत्र (Helvetic Republic) की स्थापना करके एकात्मक संविधान की स्थापना की गई। गणतन्त्र में सब कैण्टन केन्द्रीय सरकार के प्रशासनिक क्षेत्र बना दिए गए। सारे देश के शासन के लिए सीनेट (Senate) तथा ग्राण्ड कौंसिल (Grand Council) नामक दो सदनों का विधान-मण्डल स्थापित किया

गया। कार्यपालिका-शक्ति पाँच व्यक्तियों की एक ऐसी संचालक समिति (Directory) में निहित की गई जिसका निर्वाचन विधान-मण्डल के दोनों सदनों द्वारा किया जाता था। इस नवीन शासन व्यवस्था ने जन-आक्रोश को जन्म दिया।

एक तो स्विस जनता ऐसे केन्द्रीकृत प्रशासन की अभ्यस्त नहीं थी और दूसरे फ्रांसीसी-सत्ता आचरण स्विस जनता को बर्दाश्त नहीं हो सका। फलस्वरूप कैण्टनों में विद्रोह उठ खड़ा हुआ। जब फ्रांस और आस्ट्रिया में युद्ध छिड़ा तो स्विट्जरलैण्ड उसकी युद्ध-भूमि बन गया।

नैपोलियन युग (1803-1815)

स्विस लोगों के विद्रोह से बाध्य होकर 1803 में नैपोलियन को कैण्टनों की स्वतन्त्रता फिर से स्वीकार करनी पड़ी। 1803 के मध्यस्थता अधिनियम (The Act of Mediation 1803) द्वारा स्विट्जरलैण्ड में पुनः एक संघात्मक राज्य में परिवर्तित कर दिया। केन्द्र में एक सभा (Diet) की स्थापना हुई। 6 नए कैण्टन स्थापित किए गए। इस प्रकार कुल कैण्टनों की संख्या 19 हो गई। लगभग 10 वर्ष तक देश में शान्ति रही, किन्तु नैपोलियन के पराभव के बाद कैण्टनों के आपसी संघर्ष प्रारम्भ हुए तथा संविधान की अवहेलना प्रारम्भ हुई।

संघ राज्य (1815-1848)

उपर्युक्त स्थिति अधिक समय तक नहीं चल सकी। मित्र-राष्ट्रों (Allied Powers) ने 1814 में स्विस डाइट (Diet) को एक नया संविधान बनाने के लिए विवश किया। यह नव-निर्मित संविधान 1815 के पैरिस समझौते (Pact of Paris) के रूप में वियना काँग्रेस (Congress of Vienna) द्वारा स्वीकार कर लिया गया। इसके द्वारा कैण्टनों के शासन के उस रूप में बनाए रखने की अनुमति दे दी गई, जो उनके पुराने संविधान में प्रचलित थी। वियना काँग्रेस ने जहाँ एक ओर स्विट्जरलैण्ड की आन्तरिक राजनीतिक व्यवस्था निर्धारित की, वहाँ स्थायी रूप से इसकी तटस्थता को मान्यता प्रदान कर सदैव के लिए इसकी वैदेशिक नीति भी निर्धारित कर दी। यह वस्तुतः इस काँग्रेस का सबसे महत्वपूर्ण और स्थायी कार्य था। पैरिस समझौते ने स्विस-संघ में तीन अन्य सदस्यों की भी वृद्धि की—वलाइस (Valais), न्यू-चटेल (New-Chatel) तथा जेनेवा (Geneva) ये कैण्टन अभी तक फ्रांस के अधीन थे। इनके स्विस संघ में मिल जाने से स्विस राज्यों की संख्या 22 हो गई। इन 22 कैण्टनों में तीन कैण्टनों में से प्रत्येक कैण्टन से दो अर्द्ध-कैण्टन बनाए गए, अतः इस प्रकार स्विट्जरलैण्ड में कैण्टनों की कुल संख्या 25 हो गई अर्थात् 19 पूर्ण कैण्टन और 6 अर्द्ध-कैण्टन।

1815 के पैरिस समझौते द्वारा अनुसमर्थित संविधान के अन्तर्गत सब कैण्टनों का समान राजनीतिक-स्तर का मान लिया गया और स्थानीय मामलों में उन्हें स्वतन्त्रता दे दी गई। इस व्यवस्था के फलस्वरूप 1815 से 1830 तक देश में शांति और समृद्धि रही परन्तु उदारवादी भावना और लोकतन्त्र की प्रगति की अवश्य हानि हुई। जुलाई, 1830

में फ्रांस में पुन: क्रान्ति होते ही स्विट्जरलैण्ड में भी उदारवादी क्रांति का बिगुल बज गया। इसके फलस्वरूप देश में प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर एक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ जिसका उद्देश्य कैण्टनों के संविधान में परिवर्तन करना था। राज्य परिषद् या डाइट (Diet) ने संघीय समझौता तैयार करने के लिए एक समिति नियुक्ति की। किन्तु कैण्टनों में विद्यमान धार्मिक मतभेदों के कारण यह समिति कार्य नहीं कर सकी। 1845 में कैथोलिक बहुमत वाले कैण्टनों ने अपना अलग संघ बना लिया। संघ की स्थापना से गृह-युद्ध प्रारम्भ हुआ, जिसका एक माह में ही अन्त कर दिया गया और कैथोलिक लोगों की रूढ़िवादिता को जड़ से समाप्त कर दिया गया। इन कैथोलिक कैण्टनों की पराजय के साथ ही राष्ट्रीय एकता के आन्दोलन की विजय हुई। डाइट (Diet) ने एक नया संविधान बनाया जिसे लोगों ने जनमत-संग्रह द्वारा स्वीकार किया। इससे 1848 का संविधान अस्तित्व में आया और जो समय-समय पर, विशेषकर 1874 में हुए महत्वपूर्ण परिवर्तनों के साथ भी विद्यमान है।

स्विस संविधान की विशेषताएँ
(Characteristics of the Swiss Constitution)

1848 ई. के मूल संविधान का 1874 में पूर्णतया संशोधित किया गया रूप ही वर्तमान स्विस संविधान है। इस संविधान की मुख्य विशेषताओं को निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है—

(1) निर्मित एवं लिखित संविधान (Prepared and Written)—स्विट्जरलैण्ड का संविधान अपने मूल रूप में निर्मित और लिखित है जिसे एक आयोग ने काफी सोच-विचार के बाद तैयार किया था और जो संघ की डाइट द्वारा स्वीकृत होकर 12 सितम्बर, 1848 से देश में लागू किया गया। बाद में 1874 ई. में संविधान में पुन: व्यापक परिवर्तन किए गए। फलत: स्विस संविधान का समयानुकूल विकास होता रहा है, तथापि शासन की मूल संरचना 1848 में निर्मित और 1874 में संशोधित प्रस्ताव पर ही आधारित है।

स्विट्जरलैण्ड का संविधान (जिसमें 123 धाराएँ और 3 अध्याय हैं) अमेरिकी संविधान से विस्तृत है। इसमें अनेक ऐसी बातें हैं जो सांविधानिक प्रकृति की नहीं हैं। उदाहरणार्थ, संविधान में मछली मारने, शिकार खेलने, जुआ खेलने आदि के बारे में भी उल्लेख है। स्विस संविधान इसलिए भी लम्बा है कि उसमें संघ और कैण्टनों के अधिकार-क्षेत्र पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। जहाँ अमेरिका के संविधान में निहित शक्तियों के सिद्धान्त को महत्ता दी गई है वहाँ स्विट्जरलैण्ड के संविधान में स्पष्टतया उल्लिखित शक्तियों का समावेश किया गया है ताकि संघ तथा कैण्टनों में कोई विरोध नहीं हो।

लिखित संविधान के साथ ही स्विस संविधान में कुछ परम्पराओं तथा अभिसमयों (Conventions) का विकास भी हुआ है। उदाहरणार्थ, संविधान द्वारा विदेशियों का नागरीकरण संघीय सरकार का अधिकार है, किन्तु कोई भी कैण्टन किसी भी व्यक्ति को अपने पृथक् नियमों के अनुसार, यदि अपनी नागरिकता प्रदान करता है तो संघ विकसित अभिसमय के कारण, उसे संघीय नागरिक मान लेता है।

(2) **कठोर संविधान** (Rigid Consutution)—इस देश का संविधान कठोर है जिसमें संशोधन करने की रीति साधारण विधि-निर्माण से है। फिर भी यह संविधान उतना कठोर नहीं है जितना कि अमेरिका का। यही कारण है कि जहाँ स्विस संविधान में 145 वर्षों में ही 57 संशोधन हुए हैं। वहाँ अमेरिकी संविधान में 200 वर्षों मे 27 संशोधन ही हुए हैं। स्विस संविधान की कठोरता से इसकी संघात्मकता की रक्षा होती है। इस संविधान में परिस्थितियों के अनुरूप ढलने की अपूर्व क्षमता भी है।

(3) **विशिष्ट संघात्मक स्वरूप** (Special Federal Form)—स्विस संविधान का संघात्मक स्वरूप विशिष्टता लिये हुए है। इस विशिष्टता के निम्नांकित लक्षण हैं—

(i) स्विटजरलैण्ड 25 कैण्टनों (19 पूर्ण तथा 6 अर्द्ध-कैण्टनो) का शाश्वत संघ है। उसके कैण्टनों को कभी समाप्त नहीं किया जा सकता। फलतः संघ भी समाप्त नहीं हो सकता।

(ii) अमेरिका की भाँति नई इकाइयों को संघ में सम्मिलित करने की भी संविधान में कोई व्यवस्था नहीं है।

(iii) अमेरिकी संविधान संघवाद की सम्प्रभुता पर आधारित है वहाँ स्विस संविधान में कैण्टनों की सम्प्रभुता को महत्व दिया गया है।

(iv) स्विस संघीय व्यवस्था में संविधान की सर्वोच्चता है, केन्द्र और कैण्टनों के मध्य शक्ति-विभाजन की व्यवस्था भी है, किन्तु न्यायपालिका को विधियों को अवैध घोषित करने, संविधान की व्याख्या करने तथा न्यायिक पुनरावलोकन का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। न्यायाधीशों का निर्वाचन एक नियत अवधि के लिए व्यवस्थापिका द्वारा किया जाता है। न्यायपालिका को सांविधानिक विवादों को तय करने का भी कोई अधिकार प्रदान नहीं किया गया है।

(v) स्विस संविधान सांस्कृतिक संघ की भी स्थापना करता है। उसमें विविध भाषाएँ, धर्म और संस्कृतियाँ एक राष्ट्र के रूप में समाहित हो गई हैं। संविधान में चारों भाषाओं को राज्य-भाषा का स्तर प्रदान किया गया है और सभी नागरिकों को अपने धर्म-पालन की पूरी स्वतन्त्रता है। राज्य का रूप भी धर्म-निरपेक्ष है।

(vi) स्विट्जरलैण्ड में दोहरी नागरिकता प्रचलित है। प्रत्येक नागरिक अपने कैण्टन का तथा संघ अथवा राज्य-मण्डल का नागरिक है। संविधान लिखित है जिसमें प्रशासन की विभिन्न शाखाओं के कार्यों का निर्देश है। विधान-मण्डल द्वि-सदनीय है तथा उच्च सदनों में सब इकाइयों का समान अनुपात में प्रतिनिधित्व रहता है। संविधान संघीय व्यवस्था के अनुरूप कठोर है।

(4) **गणतन्त्रवादी स्वरूप** (Republican Form)—स्विस संविधान का स्वरूप गणतन्त्रात्मक है। जनता में ही प्रभुसत्ता निहित है। राज्य का प्रधान प्रत्यक्ष चुनाव के आधार पर निर्वाचित होता है। संविधान के छठे अनुच्छेदों में कैण्टनों को गणतन्त्रीय स्वरूप देने और अपनी संस्थाओं को गणतन्त्रीय ढंग पर निर्मित करने का उल्लेख है। संविधान में कुलीनतन्त्रीय और ऐसी ही अन्य प्रवृत्तियों को रोकने का समुचित प्रबन्ध किया गया है।

स्विस गणराज्य को विश्व में प्राचीनतम माना जाता है। संवैधानिक दृष्टि से इस गणतन्त्र का जन्म 1848 में ही हुआ, किन्तु गणतन्त्र की परम्परा यहाँ लगभग 600 वर्ष से चली आ रही है। 1870 तक सान मेरिना तथा हाँसा टाउन जैसे दो कम महत्वपूर्ण राज्यों के अतिरिक्त स्विट्जरलैण्ड ही यूरोप का एकमात्र गणराज्य था।

(5) प्रत्यक्ष लोकतन्त्र (Direct Democracy)—स्विट्जरलैण्ड प्रत्यक्ष लोकतन्त्र का श्रेष्ठतम उदाहरण है। शासन के प्रत्येक कार्य में जनता प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य भाग लेती है। जनता की इच्छा का निर्माण नीचे से ऊपर की ओर हुआ है। कैण्टनों से अधिक महत्व कम्यूनों का है और संघ से अधिक महत्व कैण्टनों का है। संविधान में जनता द्वारा संशोधन किया जाता है। आरम्भिक, लोक निर्णय आदि द्वारा सर्व-साधारण की इच्छा को सर्वोपरि महत्व दिया जाता है। स्विस संविधान में अन्य संविधानों की अपेक्षा स्वतन्त्रता और समानता पर विशेष बल दिया गया है, यहाँ तक की सभी मन्त्री भी परस्पर स्वतन्त्र और समान हैं।

स्विट्जरलैण्ड में लोकतन्त्र के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण का विवेचन करते हुए ब्राइस का कथन है कि "वर्तमान लोकतन्त्रीय राष्ट्रों में, जो कि वस्तुत लोकतन्त्र हैं, अध्ययन की दृष्टि से स्विट्जरलैण्ड का उदाहरण उल्लेखनीय है। यह सर्वाधिक प्राचीन लोकतन्त्र है क्योंकि इसके समुदायों मे लोकप्रिय शासन संसार में सर्वप्रथम प्रारम्भ हुआ था। इसने लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों का विकास किया है और यूरोप के किसी अन्य राष्ट्र की अपेक्षा उन्हें अधिक दृढ निश्चय से अनुप्रयुक्त किया है।"[1] जुर्चर ने भी यह मत व्यक्त किया है—"गत वर्षों में स्विट्जरलैण्ड व लोकतन्त्र प्रायः समानार्थी बन गये हैं।"[2]

स्विस लोकतन्त्र अनेक दृष्टियों से अनुपम है। स्विट्जरलैण्ड में वयस्क मताधिकार का प्रयोग मतदाताओं की मर्जी पर ही नहीं छोड़ दिया गया है, अपितु कुछ कैण्टनों में उसे अनिवार्य बना दिया गया है और यदि कोई मतदाता अपने मत का प्रयोग नहीं करता तो उसे जुर्माना देना होता है। स्त्रियाँ पहले मताधिकार से वंचित थीं, किन्तु 8 फरवरी, 1971 से उनको भी मताधिकार प्राप्त हो गया है। इस प्रकार अब 20 वर्ष की आयु प्राप्त प्रत्येक स्त्री-पुरुष को मताधिकार प्राप्त है। स्विस लोग यह उपयुक्त नहीं समझते कि स्त्रियाँ राजनीतिक में भाग लें।

(6) बहुल कार्यपालिका (Plural Executive)—स्विस कार्यपालिका, जो संघीय परिषद् (Federal Council) कहलाती है, बडी अनूठी है। यह व्यवस्थापिका के दोनों सदनों द्वारा निर्वाचित सात सदस्यों से मिलकर बनती है। बहुल कार्यकारिणी के सभी सदस्यों की शक्तियाँ समान हैं। अध्यक्ष भी अन्य सदस्यों के समान स्तर का होता है। सभी सदस्य बारी-बारी से अध्यक्ष बनते हैं। स्विस कार्यपालिका इस दृष्टि से भी अनोखी है कि उसमें उत्तरदायित्व और स्थायित्व दोनों के गुण विद्यमान है। एक ओर वह व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी है तथा दूसरी ओर व्यवस्थापिका द्वारा हटायी नहीं जा सकती। मन्त्रीगण वेतनभोगी असैनिक सेवकों की तरह हैं जो व्यवस्थापिका की आज्ञानुसार काम करते हैं।

1 *Bryce*. Modern Democracies, p 367
2 *Zurcher, A.J* The Political System of Switzerland, p. 984

(7) संसदीय व अध्यक्षात्मक शासन-प्रणालियों का समन्वय (Integration of Parliamentary and Presidential Systems of Govt.)—स्विस ससदीय व्यवस्था अनेक दृष्टियो से विलक्षण है—(i) स्विस शासन-व्यवस्था न पूरी तरह ससदीय है और न पूरी तरह अध्यक्षात्मक ही। (ii) शासन का प्रमुख (President) राष्ट्रपति भी है और प्रधानमन्त्री भी, तथा वह नाम मात्र का शासन प्रमुख भी है और वास्तविक शासन प्रमुख भी। (iii) स्विस कार्यपालिका ससद् मे से ली जाती है, ससदीय कार्यवाही मे भाग लेती है तथा संसद् के प्रति उत्तरदायी भी होती है, किन्तु ससद् के अविश्वास के फलस्वरूप उसे त्याग-पत्र नहीं देना पडता। (iv) स्थायित्व की दृष्टि से स्विस शासन यद्यपि अध्यक्षात्मक है, किन्तु शक्तियो का पृथक्करण नहीं पाया जाता। कार्यपालिका और व्यवस्थापिका दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं। (v) मन्त्रिगण, ससदीय व्यवस्था की तरह, उत्तरदायित्व और पारस्परिक सहयोग की भावना से काम करते हैं, किन्तु सामूहिक उत्तरदायित्व के नाम पर उन्हे अपनी आत्मा का बलिदान नहीं करना पडता। ये न केवल मन्त्रिमण्डल वरन् संसद की बैठको में भी अपना स्वतन्त्र मत व्यक्त कर सकते हैं। (vi) स्विस व्यवस्थापिका द्वि-सदनीय है और दोनो सदनों के अधिकार बराबर है। सी एफ. स्ट्राग के शब्दो मे, "ससार में स्विस व्यवस्थापिका ही एक ऐसी व्यवस्थापिका है जिसके दोनो सदनों के कार्य में कोई महत्वपूर्ण भेद नहीं है।"[1]

(8) मूल अधिकार (Fundamental Rights)—भारतीय अथवा अमेरिकी संविधानों के विपरीत स्विस सविधान में किसी भी औपचारिक अधिकार-पत्र का अभाव है। फिर भी बहुत से अनुच्छेद सम्पूर्ण प्रलेखो मे बिखरे पडे हैं जो नागरिकों को अनेक महत्वपूर्ण अधिकार प्रदान करते हैं।

अनुच्छेद 4 के अनुसार सब लोग कानून की दृष्टि से समान है। अनुच्छेद 27 यह व्यवस्था करता है कि कैण्टनों के स्कूलों मे धर्म-निरपेक्षता के साथ प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने की सबको सुविधा होगी। अनुच्छेद 31 में नागरिको को व्यापार व्यवसाय के व्यापक अधिकार दिए गए हैं। अनुच्छेद 44 में कहा गया है कि किसी भी स्विस नागरिक को संघ या अपने जन्म की कैण्टन की सीमा के बाहर निर्वासित नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद 49 के अन्तर्गत सबको धर्म और पूजा की स्वतन्त्रता प्राप्त है। अनुच्छेद 25 द्वारा प्रेस एवं प्रकाशन सम्बन्धी स्वतन्त्रता प्रदान की गई है, बशर्ते कि इसका दुरुपयोग न किया जाए। अनुच्छेद 56 नागरिको को समुदाय बनाने की स्वतन्त्रता और अनुच्छेद 57 याचिका प्रस्तुत करने का अधिकार देता है। अनुच्छेद 60 द्वारा स्विस नागरिको को यह अधिकार दिया गया है कि वे किसी भी कैण्टन में स्वतन्त्रतापूर्वक निवास कर सकेंगे और उनके साथ कोई भेद-भाव नहीं होगा।

अधिकारों के साथ ही सविधानों में नागरिकों के कुछ कर्त्तव्यो का भी उल्लेख किया गया है, यथा—राज्य के प्रति भक्ति, कानूनों का अनुपालन और सैनिक सेवा। नागरिक अपने अधिकार को लागू करवाने के लिए 'संघीय न्यायाधिकरण' (Federal Tribunal) में अपील कर सकते हैं।

1. *Strong C.F* : Modern Political Constitutions

(9) समाजवादी दर्शन पर आधारित संविधान (Constitution Based on Socialistic Philosophy)—स्विस संविधान पर उदारवादी दर्शन का ही प्रभाव है। इस संविधान का मूल दर्शन यही है कि नागरिकों को सभी क्षेत्रों में अधिकतम स्वतन्त्रता प्राप्त हो और राज्य हस्तक्षेपवादी नीति पर कम से कम चले। यद्यपि लोककल्याणकारी प्रवृत्तियों के विकास के फलस्वरूप स्विट्जरलैण्ड में भी राज्य के कार्यक्षेत्र का विस्तार हो रहा है।

(10) विभिन्नता में एकता का प्रतीक (Symbol of Unity in Diversity)—स्विस संविधान विविधता में एकता को प्रोत्साहन देने वाला और जनता के व्यावहारिक दृष्टिकोण को प्रतिबिम्बित करता है। स्विट्जरलैण्ड इतना छोटा देश है कि उसका क्षेत्रफल भारत के केरल राज्य के बराबर है और जनसंख्या तो केरल की तुलना में एक-तिहाई से भी कम है। इतना छोटा देश होते हुए भी इसमें जाति, भाषा और धर्म की काफी विविधता है। तीन अलग-अलग भाषाएँ बोलने वाली तीन जातियाँ हैं तथा स्विस लोगों की अपनी कोई राष्ट्रभाषा नहीं है। लगभग 74 प्रतिशत लोग जर्मन 20 प्रतिशत फ्रैंच और 5 प्रतिशत इटालियन भाषा-भाषी हैं। एक प्रतिशत व्यक्ति रोमाँश (Romansch) नामक आदिभाषा का प्रयोग करते हैं। यही बात धर्म के विषय में है। अधिक लोग प्रोटेस्टेंट मत के हैं, किन्तु कुछ क्षेत्रों में बहुसंख्या कैथोलिकों की है। अत: ऊपर से देखने में लगता है कि स्विट्जरलैण्ड में राष्ट्रीयता का मूल तत्व विद्यमान नहीं है, लेकिन व्यवहार में स्विस जनता अपने आपको एक राष्ट्र मानकर गौरव का अनुभव करती है और स्विट्जरलैण्ड का संविधान इस गौरव का प्रतीक है। जर्मन, फ्रैंच और इटालियन भाषाओं के अतिरिक्त रोमास नामक आदिभाषा भी स्विट्जरलैण्ड की राज्यभाषा है। हमारे देश की तुलना में लगभग एक प्रतिशत जनसंख्या वाले इस राज्य द्वारा चार भाषाओं को राज्य-भाषा के रूप में अपनाना स्विस संविधान और शासन की उल्लेखनीय विशेषता है।

(11) प्रशासनिक कानून पर आधारित न्यायपालिका (Judiciary Based on Administrative Law)—स्विस संविधान इंग्लैण्ड की भाँति 'कानून के शासन' की स्थापना न कर प्रशासकीय कानून की व्यवस्था करता है। प्रशासकीय कानून की व्यवस्था के अन्तर्गत जन-साधारण तथा प्रशासनिक कर्मचारियों के लिए पृथक्-पृथक् कार्यालय होते हैं। स्विस संविधान और स्विस चरित्र की यह विशेषता है कि यहाँ प्रशासकीय कानून की व्यवस्था ने न्याय-व्यवस्था को आघात नहीं पहुंचाया है। स्विट्जरलैण्ड में प्रशासनिक कानून और न्यायिक व्यवस्था ने नागरिक अधिकारों और स्वतन्त्रताओं की रक्षा की है।

(12) संघीय क्षेत्र में न्यायिक पुनरावलोकन का अभाव (Absence of Judicial Review in Federal Sphere)—स्विस संविधान न्यायपालिका को न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार केवल आंशिक रूप में ही देता है। स्विस सर्वोच्च न्यायालय, जिसे संघीय न्यायाधिकरण (Federal Tribunal) कहा जाता है, कैण्टनों के कानूनों और प्रशासनिक कार्यों को तो अवैध घोषित कर सकता है, पर संघीय व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानून अथवा संघीय प्रशासन के कार्यों को अवैध घोषित नहीं कर सकता। स्पष्ट है कि स्विस

संघीय न्यायपालिका के संविधान की रक्षा का कार्य नहीं सौंपा गया है। यह कार्य स्वयं जनता द्वारा किया जाता है क्योंकि जनता लोक-निर्णय के अन्तर्गत संघीय व्यवस्थापिका के किसी भी कानून को अवैध ठहरा सकती है। सन् 1939 में इस बात का प्रयत्न किया गया था कि स्विस संघीय न्यायपालिका को भी न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्राप्त हो लेकिन जनता ने यह व्यवस्था स्वीकार नहीं की।

(13) शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त का अभाव (Lack of Principle of Separation of Powers)—स्विस संविधान में अमेरिकी संविधान की भाँति ही शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त को नहीं अपनाया गया है। वहाँ सारी शक्ति के अन्तिम उपभोक्ता वहाँ के कैन्टन और नागरिक हैं। स्विस विधानमण्डल का कार्यपालिका पर पूर्ण अधिकार है। कार्यपालिका केवल विधानमण्डल के निर्णयों को लागू करती है, स्वयं राजनीति का निर्माण नहीं करती। स्विस न्यायपालिका को भी अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय की भाँति संविधान की व्याख्या करने अथवा न्यायिक पुनरवलोकन का कोई अधिकार नहीं है। उसके न्यायाधीशों का निर्वाचन भी एक निर्धारित अवधि के लिए विधान मण्डल करता है। संविधान का संशोधन प्रत्यक्ष लोकतन्त्र द्वारा होता है और न्यायपालिका पर (अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के विपरीत) स्विस संविधान की रक्षा करने का दायित्व नहीं है।

(14) धर्मनिरपेक्ष राज्य (Secular State)—स्विस संविधान की धारा 49 व 50 में सभी नागरिकों को धर्म व पूजा सम्बन्धी स्वतन्त्रता दी गई है। धारा 51 में जेस्यूट्स धर्मावलम्बियों पर प्रतिबन्ध है।[1]

(15) प्राचीनतम गणराज्य (Oldest Republic)—स्विस गणराज्य विश्व में प्राचीनतम है। 1870 तक विश्व में सर्वाधिक प्राचीन बड़ा गणराज्य था। वहाँ कभी भी राजतन्त्र का अस्तित्व नहीं रहा है। रेपार्ड के शब्दों में—"स्विट्जरलैण्ड आरम्भ से ही गणतन्त्र रहा है।"[2]

निष्कर्ष रूप में स्विस संविधान बहुत ही मौलिक और अनूठा है तथा सम्पूर्ण विश्व के लिए आकर्षण बना हुआ है। प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र, बहुल कार्यपालिका तथा विधानमण्डल के दोनों सदनों की समानता के आदर्श ने इसे एक अद्वितीय स्थान प्रदान कर दिया है।

---

1 Swiss Constitution-Article 49, 50 & 51.
2 *Reppard, W.E* : The Govt. of Switzerland.

21

संविधान में संशोधन की प्रक्रिया

(Procedure of Amending in the Constitution)

विश्व के अन्य देशों की तरह स्विस संविधान में भी संशोधन की व्यवस्था की गई है। स्विट्जरलैण्ड में संशोधन करने वाली और विधि-निर्माण करने वाली संस्थाएँ भी अलग-अलग हैं तथा उनके संगठन और कार्य भी अलग-अलग हैं। संशोधन का प्रस्ताव व्यवस्थापिका के दोनों सदनों तथा संघीय परिषद् (कार्यपालिका) द्वारा प्रस्तावित किया जाता है। संशोधन 50,000 से अधिक मतदाताओं द्वारा भी प्रस्तावित किया जा सकता है। संशोधन पारित होने के लिए लोक-निर्णय (Referendum) तथा कैण्टनों का बहुमत प्राप्त करना आवश्यक होता है। संविधान की इस संशोधन प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से निम्नानुसार समझा जा सकता है—

संशोधन प्रक्रिया—स्विस संविधान में दो प्रकार के संशोधनों का प्रयोजन है—

(1) पूर्ण संशोधन (Complete Amendment)—(i) संविधान में पूर्ण संशोधन करने का प्रस्ताव संघीय व्यवस्थापिका के एक सदन अथवा सदनों द्वारा रखा जा सकता है। यदि दोनों सदन उस पर सहमत हों तो उस पर लोकनिर्णय लेना आवश्यक होता है, जिसमें सम्पूर्ण नागरिकों के बहुमत तथा समस्त कैण्टनों की बहुसंख्या का समर्थन होना चाहिए। उसके पश्चात् ही वह संशोधन स्वीकृत हो सकता है। इस रीति को अनिवार्य लोक-निर्णय (Obligatory Referendum) कहा जाता है।

(ii) यदि दोनों में से एक सदन संशोधन से सहमत न हो अथवा पचास हजार स्विस नागरिक उसकी माँग का प्रस्ताव रखें तो उस प्रश्न को लोक-निर्णय हेतु उपस्थित कर दिया जाता है और तब उस पर पुनर्विचार करने के लिए दोनों सदनों का पुनः निर्वाचन किया जाता है। निर्वाचन के पश्चात् नव-निर्वाचित विधान-मण्डल उस पर पुनर्विचार करता है। यदि दोनों सदन सहमत हों तो यह प्रस्ताव नागरिकों के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जाता, परन्तु उसके संशोधित प्रारूप को जनता की स्वीकृति के लिए रखना आवश्यक है।

(2) आंशिक संशोधन (Partly Amendment)—इस प्रकार के संशोधन भी उपर्युक्त दोनों रीतियों से प्रस्तुत किए जा सकते हैं। केवल इसमें अन्तर यह है कि यदि दूसरी रीति के अनुसार आंशिक संशोधन का प्रस्ताव 50,000 नागरिकों द्वारा रखा जाता है तो वे असूत्रबद्ध उपक्रम (Unformulated Initiative) प्रस्तुत कर सकते हैं। उस पर

विधानमण्डल यदि अपनी स्वीकृति दे देता है तो वह स्वयं विधेयक का प्रारूप तैयार कर लोक-निर्णय के लिए भेज देता है, परन्तु यदि उसे वह अस्वीकार कर देता है तो भी उस प्रश्न को जनता के समक्ष उपस्थित करना पड़ता है। यदि जनता इस सिद्धान्त को स्वीकृत कर लेती है तो उसे विधेयक तैयार करके लोक-निर्णय हेतु भेजना पड़ता है।

यदि वह सशोधन का भाग विधेयक के रूप मे हो तो उसे ससद् को शीघ्र ही जनमत सग्रह के लिए भेजना पड़ता है परन्तु इसके साथ वह अपना भी विधेयक प्रस्तुत करती है। दोनों ही लोक-निर्णय के लिए रखे जा सकते हैं। परन्तु इनमें भी आवश्यक है कि अब सशोधन अधिकाश कैण्टनों मे अधिकांश मतदाताओं द्वारा स्वीकृत हो। कैण्टनों का बहुमत जानने के लिए पूर्ण कैण्टन का एक मत तथा अर्द्ध-कैण्टन का आधा मत गिना जाता है। अतः स्वीकृति के लिए $12\frac{1}{2}$ कैण्टनों की सहमति आवश्यक होती है।

साराश मे, सविधान के अनुसार स्विस जनता और सघीय व्यवस्थापिका दोनों ही संशोधन का प्रस्ताव रख सकती है तथा उसकी अन्तिम स्वीकृति नागरिकों पर ही निर्भर है। यह व्यवस्था इस संशोधन प्रक्रिया को अनूठा स्वरूप प्रदान करती है। विश्व के अन्य किसी भी देश मे संविधान सशोधन प्रक्रिया में इस प्रकार की जन-साझेदारी नहीं है।

स्विस व अमेरिकी संविधान संशोधन-प्रक्रिया की तुलना

(Comparison of American and Swiss Constitution-Amendment)

अमेरिका और स्विट्जरलैण्ड दोनों ही देशो के सविधान कठोर हैं और दोनों ही सविधान में सशोधन-प्रक्रिया के दो चरण हैं—(i) सशोधन प्रस्ताव की प्रस्तावना या उनका आरम्भ और (ii) सशोधन की पुष्टि। लेकिन अन्य विस्तार की बातों में दोनों ही सविधान-प्रक्रिया में अनेक मौलिक अन्तर दृष्टिगत होते है—

(1) स्विस सशोधन पद्धति में दो प्रकार के सशोधनों का आयोजन है—पूर्ण संशोधन तथा आंशिक संशोधन, लेकिन अमेरिकी संविधान की सशोधन-प्रक्रिया मे इस प्रकार का कोई अन्तर नहीं है।

(2) स्विस संविधान के अनुसार जनता द्वारा सशोधन का प्रस्ताव प्रस्तावित किया जा सकता है और यह प्रस्ताव तभी पारित होता है जब जनता के बहुमत द्वारा उसे स्वीकृति प्रदान कर दी जाए। लेकिन अमेरिका में जनता को संवैधानिक संशोधन प्रस्तावित करने का ऐसा कोई अधिकार नहीं दिया गया है। इन देशों में सवैधानिक संशोधन की पुष्टि के लिए जनमत-सग्रह (Referendum) की भी व्यवस्था नहीं है।

(3) स्विट्जरलैण्ड में कार्यपालिका द्वारा भी सशोधन प्रस्तावित किया जा सकता है जबकि अमेरिका में ऐसा नहीं है।

(4) अमेरिका में सघीय इकाइयों (Units) को सविधान में संशोधन प्रस्तावित करने का अधिकार नहीं है।

(5) अमेरिकी सविधान की संशोधन-प्रक्रिया स्विस सविधान की संशोधन प्रक्रिया से अधिक जटिल है। अमेरिका में कॉग्रेस के दोनों सदनों द्वारा दो-तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित किए जाने पर ही सवैधानिक संशोधन प्रस्तावित होता है और संविधान-सशोधन की पुष्टि तब होती है जबकि तीन-चौथाई इकाइयों के विधानमण्डल या तीन-चौथाई

इकाइयों के संविधान-संशोधन-सम्मेलनों द्वारा वह संशोधन प्रस्ताव पारित कर दिया जाए। स्विट्जरलैण्ड में इस प्रकार की जटिल व्यवस्था नहीं है। वहाँ संघीय सभा के सदनों का बहुमत, कैण्टनों का बहुमत और जनता का बहुमत ही आवश्यक है। इनमें से किसी के द्वारा भी दो-तिहाई या इस प्रकार के किसी विशेष बहुमत से प्रस्ताव पारित किया जाना जरूरी नहीं है। स्विस पद्धति अमेरिकी पद्धति की तुलना में सरल है। इसी कारण जहाँ अमेरिका के लगभग 200 वर्षीय संवैधानिक इतिहास में केवल 27 संशोधन हुए हैं वहाँ स्विट्जरलैण्ड के लगभग 145 वर्षीय संवैधानिक इतिहास में 57 संशोधन हो चुके हैं।

(6) अमेरिका में न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था है अत. संवैधानिक विकास का एक छोटा अंश औपचारिक संशोधन से किन्तु एक बड़ा अंश न्यायिक व्याख्याओं से सम्पन्न हुआ है। स्विस संविधान में न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था का अभाव है और वहाँ संवैधानिक विकास का समस्त कार्य औपचारिक संशोधनों द्वारा ही सम्पन्न हुआ है।

स्विस संविधान संशोधन प्रणाली की आलोचना

(Criticism of Amendment Process of Swiss Constitution)

स्विट्जरलैण्ड की संविधान संशोधन की भी अनेक आधारों पर आलोचना की जाती है, जो निम्नानुसार है—

1. यह एक जटिल प्रक्रिया है।

2. संशोधन-प्रक्रिया में देश की व्यवस्थापिका की केन्द्रीय स्थिति नहीं है।

3 संशोधन-प्रक्रिया के दोनों ही चरणों में जनता को भाग लेने का जो अधिकार है, वह अव्यावहारिक है।

4. इस प्रक्रिया से जनता और संघीय सभा के सदस्यों के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होने की आशंका बनी रहती है।

सारांशतः स्विस संविधान संशोधन प्रणाली अनुपम है।

22

स्विस नागरिकों के अधिकार और कर्त्तव्य

(Rights and Duties of Swiss Citizens)

स्विस संविधान में ऐसे मूल अधिकारों का कोई विशेष समेकित घोषणा-पत्र नहीं है तथापि यह संविधान अपने भिन्न-भिन्न अनुच्छेदों द्वारा नागरिकों को महत्वपूर्ण अधिकार प्रदान करता है। संविधान में यत्र-तत्र लगभग 25 अनुच्छेदों में नागरिकों के अधिकारों की व्याख्या की गई है और साथ ही नागरिक कर्त्तव्यों का भी उल्लेख किया गया है।

स्विस सविधान में प्रमुख मूल अधिकारों का उल्लेख इस प्रकार है[1]—

(1) कानून के समक्ष समानता (Equality before Law)—सविधान के अनुच्छेद 4 के अनुसार, "सारे स्विस नागरिक कानून के समक्ष समान हैं।" स्विट्जरलैण्ड में कोई प्रजा नहीं है अर्थात् दूसरे के आधिपत्य में नहीं है और पद जन्म या कुल के आधार पर किसी व्यक्ति को कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है। इसी प्रकार संविधान का अनुच्छेद 60 यह व्यवस्था देता है कि "प्रत्येक कैण्टन का यह कर्त्तव्य है कि वह दूसरे कैण्टनों के नागरिकों के साथ कानूनी और न्यायिक कार्यवाहियों में अपने नागरिकों की भाँति समानता का व्यवहार करे।"

(2) प्रेस की स्वतन्त्रता (Freedom of Press)—अनुच्छेद 55 के अनुसार प्रेस को स्वतन्त्रता प्रदान की गई है, साथ ही यह शर्त भी लगा दी गई है कि यदि समाचार-पत्र इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करते हैं तो कैण्टनों को अधिकार है कि वे आवश्यक कार्यवाही द्वारा इसके दुरुपयोग पर रोक लगा दें। इस सम्बन्ध में कैण्टनों के प्रतिबन्धात्मक कानून अनुमोदन के लिए संघीय परिषद् के समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं। स्विस संघीय सरकार को भी अधिकार है कि वह प्रेस की स्वतन्त्रता के दुरुपयोग से उत्पन्न स्थिति को रोकने के लिए कानून का निर्माण करे।

(3) समुदाय-निर्माण तथा याचिका भेजने का अधिकार (Right of Association and Filing Petition)—अनुच्छेद 56 नागरिकों को समुदाय (Associations) बनाने की स्वतन्त्रता प्रदान करता है। लेकिन आवश्यक है कि समुदाय के उद्देश्य और साधन न तो गैर-कानूनी हों और न राज्य के लिए खतरनाक हों। कैण्टन इसका दुरुपयोग रोक सकेंगे। अनुच्छेद 57 द्वारा लोगों को याचिका भेजने का अधिकार दिया गया है।

1. Swiss Constitution.

(4) शिक्षित होने का अधिकार (Right of getting Educated)—अनुच्छेद 27 में उल्लेख है कि कैण्टन पर्याप्त प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध करेंगे जो असैनिक शक्ति द्वारा ही प्रचारित होगी। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य और सरकारी स्कूलों में नि:शुल्क है। सभी धर्मों के अनुयायियों के लिए सरकारी स्कूल उपलब्ध और किसी के मार्ग में धार्मिक विश्वासों के कारण कोई भेदभाव नहीं किया जाता है। यदि कैण्टन इन शर्तों का पालन नहीं करेंगे तो संघ सरकार उनके विरुद्ध आवश्यक कदम उठाएगा। इसी अनुच्छेद के अनुसार संघीय सरकार को एक संघीय विश्वविद्यालय और उच्च शिक्षा की अन्य संस्थाएँ स्थापित करने या उन्हें सहायता देने का अधिकार प्राप्त है।

(5) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (Right of Religious Freedom)—अनुच्छेद 49 के अनुसार सभी नागरिकों को अन्तःकरण और धर्म की स्वतन्त्रता तथा अनुच्छेद 50 के अनुसार पूजा-पाठ की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है। किसी धर्म अथवा मत के आधार पर असैनिक और राजनीतिक अधिकारों को सीमित नहीं किया जा सकता। लेकिन इन स्वतन्त्रताओं का प्रयोग सार्वजनिक व्यवस्था तथा नैतिकता की सीमाओं में रहकर ही किया जा सकता है। अनुच्छेद 50 में ही यह प्रावधान भी है कि धार्मिक स्वतन्त्रता को सार्वजनिक आचार, शान्ति और व्यवस्था के अनुकूल प्रत्याभूत किया जाएगा। इस सम्बन्ध में संघीय तथा कैण्टनों की सरकारें कोई भी कानून बना सकती हैं। धार्मिक स्वतन्त्रता सम्बन्धी यह अधिकार तब महत्व खो बैठता है जब संविधान के अनुच्छेद 51 में "जीजस धर्म" (ईसाई धर्म की एक शाखा या रोमन कैथोलिक चर्च) और उससे सम्बन्धित संस्थाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है।

(6) नागरिकता का अधिकार (Right of Citizenship)—स्विट्‌जरलैण्ड में प्रत्येक व्यक्ति को तीन नागरिकताएँ प्राप्त हैं—कम्यून की नागरिकता, कैण्टन की नागरिकता और स्विस संघ की नागरिकता। सबसे पहले व्यक्ति को अपने कम्यून का नागरिक होना पड़ता है, बाद में उसे कैण्टन की नागरिकता प्राप्त होती है और इसके उपरान्त ही उसे संघ की नागरिकता मिलती है। नागरिकता रक्त या वंश के सिद्धान्त के आधार पर भी दी जाती है और देशीकरण के आधार पर भी प्राप्त की जा सकती है।

(7) मत देने का अधिकार (Right of Casting Vote)—अनुच्छेद 43 में व्यवस्था है "अपनी अर्हता प्रमाणित करने पर, स्विस नागरिक अपने कैण्टन तथा संघ सम्बन्धी निर्वाचनों में मतदान का अधिकारी होता है। कोई भी व्यक्ति एक से अधिक कैण्टन में राजनीतिक अधिकारों का उपयोग नहीं करेगा।" सभी वयस्क नागरिकों (नर-नारी दोनों) को जिनकी आयु 20 वर्ष से अधिक है, मत देने का अधिकार होता है।

(8) निवास का अधिकार (Right of Residence)—अनुच्छेद 45 के अनुसार, "प्रत्येक स्विस नागरिक को, जन्म आदि के प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करने पर स्विट्‌जरलैण्ड के किसी भी भाग में निवास करने का अधिकार है।" अनुच्छेद 44 में उल्लेख है कि "किसी भी स्विस नागरिक को संघ अथवा अपने जन्म के कैण्टन की सीमा के बाहर निर्वासित नहीं किया जाएगा।"

(9) आर्थिक अधिकार (Economic Rights)—अनुच्छेद 31 के अनुसार, "सारे सघ के अन्तर्गत व्यापार और उद्योग की स्वतन्त्रता है।" अनुच्छेद 3 (ब) के अनुसार, "सघ रोग तथा दुर्घटना से पीड़ित व्यक्ति के बीमा सम्बन्धी नियम बना सकेगा। ऐसा अधिनियम सभी लोगों अथवा निर्धारित वर्गों के लिए अनिवार्य होगा।" संघीय कानूनों द्वारा यह व्यवस्था भी की गई है कि यदि कोई गरीब नागरिक अपने कैण्टन के बजाय दूसरे कैण्टन में बीमार हो जाए या मर जाए तो उसकी बीमारी या अन्तिम क्रिया का खर्च उस कैण्टन को देना पड़ेगा जिसमें वह बीमार हुआ हो या मरा हो।

(10) अन्य अधिकार (Other Rights)—अनुच्छेद 58 के अनुसार, "प्रत्येक नागरिक को सामान्य न्याय प्राप्त होगा।" अनुच्छेद 60 के अनुसार, "शारीरिक दण्ड नहीं दिया जाएगा। राजनीतिक अपराधों के लिए प्राणदण्ड नहीं दिया जाएगा।" अनुच्छेद 54 के अनुसार, "विवाह का अधिकार संघ के संरक्षण में है। धर्म, निर्धनता अथवा किसी भी पक्ष के आचार-विचार के कारण विवाह में बाधा नहीं आएगी। किसी भी कैण्टन में अथवा विदेश में विवाह सारे सघ में मान्य होंगे। विवाह हो जाने पर पत्नी अपने पति के कम्यून की नागरिक समझी जाएगी। पति अथवा पत्नी से कोई विवाह शुल्क नहीं लिया जाएगा।"[1]

हैन्स हूबर के शब्दों में—"उपर्युक्त अधिकार भाषा, धर्म, राजनीति व समाज में अल्पसंख्यकों के क्षेत्र में बहुमत वर्ग से सुरक्षा प्रदान करते हैं तथा मानवीय विकास हेतु कार्य-क्षेत्र प्रदान करते हैं।"[2]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्विस संविधान द्वारा प्रदत्त ये अधिकार आदर्शात्मक होने के साथ ही यथार्थवादी भी हैं क्योंकि अधिकारों के साथ ही नागरिकों के लिए कर्त्तव्यों की भी व्यवस्था की गई है, जैसे—राज्य के प्रति भक्ति, कानूनों का अनुपालन और सैनिक सेवा। नागरिक अपने अधिकारों को लागू करवाने के लिए संघीय न्यायाधिकरण से अपील कर सकते हैं। नागरिकों के मूल अधिकार स्विस लोकतन्त्र को सशक्त और व्यावहारिक रूप प्रदान करते हैं। ये अधिकार स्विस संविधान को एक उदारवादी संविधान के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।

---

1. Swiss Constitution.
2. *Hans Huber* : How Switzerland is Governed ?, p. 41

23

स्विट्जरलैण्ड की संघ-व्यवस्था

(Federal System of Switzerland)

स्विट्जरलैण्ड संघ (Federation) है या नहीं, इस प्रश्न पर काफी मतभेद है। इसे संघ न मानने वालों का तर्क है कि 1848 ई. की जिस सन्धि से इसका निर्माण हुआ है वह कोई संविधान नहीं है और इसलिए इसको किसी संविधान पर आधारित संघ मानने की अपेक्षा एक परिसंघ या संवर्ग (Confederation) माना जाना चाहिए जिसका तात्पर्य राज्यों के ढीले-ढाले गठबन्धन से होता है। उनका यह तर्क भी है कि संविधान में भी स्विट्जरलैण्ड को संवर्ग या परिसंघ कहा गया है न कि संघ। आज मान्यता यही है कि स्विट्जरलैण्ड संवर्ग न होकर संघ है। यह ढीला-ढाला गठबन्धन नहीं है वरन् उसमें केन्द्र को पर्याप्त शक्तिशाली बनाया गया है। संविधान में 'संवर्ग' शब्द का प्रयोग केवल एक औपचारिकता है, अन्यथा प्रस्तावना में स्विस संवर्ग की स्थापना का उद्देश्य यह है कि "अवयवी कैण्टनों के संघ को सुदृढ़ बनाया जाए तथा उसके द्वारा स्विस राष्ट्र की एकता, शक्ति और सम्मान की रक्षा एवं वृद्धि की जाए।"[1] के. सी. ह्वीयर ने 'संवर्ग' और 'संघ' को इस स्थल पर पर्यायवाची माना है।[2] संविधान के अनुच्छेद 2 अन्तर्गत भी एक ठोस और एकतापूर्ण संघ बनाने का विचार प्रकट किया गया है। संगठन की दृष्टि से भी संविधान द्वारा एक संघीय ढाँचे की व्यवस्था की गई है। उदाहरणार्थ, दोहरे शासन की व्यवस्था है तथा केन्द्रीय और कैण्टनों की सरकारों के अधिकारों का स्पष्ट वर्णन है। इसके अलावा कैण्टनों को संघ का निर्माण करने वाले समान भागीदारों के रूप में माना गया है। संघ को सदैव के लिए अटूट और स्थायी बनाया गया है। संवर्ग में से इकाइयाँ इच्छानुसार अपने को पृथक् कर सकती हैं, लेकिन स्विस संघ में ऐसी व्यवस्था है कि उसकी कोई इकाई स्वेच्छा से संघ पृथक् नहीं हो सकती। इसीलिए स्विस संघ को शाश्वत कैण्टनों का शाश्वत संघ (Indestructible Union of Indestructible Cantons) कहा गया है। ब्रुक्स का मत है कि "स्विट्जरलैण्ड की एक संघीय शासन-व्यवस्था है और मूल रूप से वह जर्मन साम्राज्य व अमेरिका के संघ जैसी है।"

---

1 *Swiss Constitution*

2 *Wheare, K.C* : Federal Govt.

3 *Brooks, R* Govt. and Politics of Switzerland

इस संघ में 19 पूर्ण कैण्टन और 6 अर्द्ध कैण्टन सम्मिलित है अर्थात् 22 प्रभुसत्ताधारी कैण्टनो (जिनमें 3 कैण्टनो का विभाजन कर दिया गया है अत, 19 पूरे और 6 अर्द्ध कैण्टनो) से मिलकर स्विस संघ का निर्माण हुआ है। प्रत्येक अर्द्ध-कैण्टन भी पूर्ण स्वतन्त्र है। वह किसी भी पूर्ण कैण्टन से केवल दो बातों में भिन्न है—प्रथम, वह राज्य परिषद् (Council of State) में केवल एक प्रतिनिधि भेजता है जबकि पूर्ण कैण्टन को दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है, एव द्वितीय वह उन सब प्रश्नों पर जिनका सम्बन्ध संविधान में संशोधन करने से है केवल आधे मत का अधिकारी है। बर्कहार्ट वाल्टर (Burkhardt Walter) का कथन है कि "सन् 1848 ई. में भी लोगों का यह मत था कि वे संविधान बना रहे थे और अब भी प्राय: लोगों का यही विश्वास है।"

स्विस संघ-व्यवस्था के प्रमुख लक्षण
(Major Features of Swiss Federal System)

स्विट्जरलैण्ड की संघीय व्यवस्था में संघात्मक व्यवस्था के सभी लक्षण विद्यमान हैं, जो निम्नानुसार है—

(1) दोहरी शासन व्यवस्था (Dual Governments)

संघ-व्यवस्था के अनुरूप स्विट्जरलैण्ड में दोहरी शासन प्रणाली है। यह संघ 25 कैण्टनों के सम्मेलन से बना है—जिनमें 19 पूर्ण कैण्टन है और 6 अर्द्ध-कैण्टन। अर्द्ध-कैण्टन भी पूर्ण कैण्टनों के समान ही स्वतन्त्र है। केवल दो बातों में वे पूर्ण कैण्टन से भिन्न हैं—(i) प्रत्येक अर्द्ध-कैण्टन उच्च सदन (राज्य परिषद्) में केवल एक प्रतिनिधि भेजता है, जबकि प्रत्येक पूर्ण कैण्टन को दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है। (ii) प्रत्येक अर्द्ध-कैण्टन को उन सभी प्रश्नों पर, जिनका सम्बन्ध संविधान मे संशोधन से है, केवल आधे मत का अधिकार है। स्विस संघ में केन्द्रीय और इकाई सरकारें अपने निर्माण और जीवन के लिए एक-दूसरे पर आश्रित नहीं हैं। वे संविधान की कृति हैं वे स्वयं एक दूसरे को नष्ट नहीं कर सकतीं। संविधान में संशोधन द्वारा ही किसी के अस्तित्व में परिवर्तन लाया जा सकता है। संघ और कैण्टनों की सरकारों को समान स्थिति प्राप्त है। संविधान द्वारा निर्धारित अपने-अपने कार्य-क्षेत्र में दोनों ही स्वतन्त्र हैं और एक-दूसरे के कार्य-क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं कर सकते।

स्विस संघीय व्यवस्था की यह विशेषता है कि सभी कैण्टन समान हैं। प्रत्येक कैण्टन का अपना संविधान है। उनकी नागरिकता के अपने अलग-अलग नियम हैं, उनकी अपनी निजी विधियाँ और परम्पराएँ हैं। आशय यह है कि संघात्मक व्यवस्था के अनुकूल स्विट्जरलैण्ड में दोहरी नागरिकता, दोहरे अधिकार और दोहरी न्यायपालिका की व्यवस्था की गई है।

इस प्रकार दोहरी शासन-व्यवस्था का संघात्मक तत्त्व स्विस संघ में पूरी तरह विद्यमान है।

(2) शक्तियों का विभाजन (Divison of Powers)

केन्द्र और अवयवी इकाइयों के बीच शक्तियों का विभाजन दूसरा महत्वपूर्ण संघीय सिद्धान्त है। स्विट्जरलैण्ड में अन्य संघीय संविधानों की तरह ही संविधान द्वारा शक्तियों

का विभाजन किया गया है। 'शक्तियों के वितरण में गणना व अवशेष' के सिद्धान्त (Principle of Enumeration and Residum) को अपनाया गया है। संघीय सरकार की शक्तियों की गणना कर अवशिष्ट शक्तियों को कैण्टनों की सरकारों के अधीन रखा गया है। राष्ट्रीय महत्व के विषय संघ-सरकार के कार्य-क्षेत्र में रखे गए हैं और शेष विषय कैण्टनों के अधिकार में। संविधान में शक्तियों का विभाजन अग्रलिखित चार भागों में बाँटा जा सकता है—

(i) संघीय आधार क्षेत्र—कुछ कार्य अनन्य रूप (Exclusively) से संघीय सरकार के अधिकार-क्षेत्र में रखे गए हैं, जैसे—विदेशों के साथ सम्बन्ध स्थापित करना, सभा-नियन्त्रण करना, कैण्टनों के झगड़ों को निपटाना आदि।

(ii) समवर्ती अधिकार—कुछ विषय ऐसे हैं जिन पर कैण्टनों तथा संघीय सरकार दोनों का अधिकार-क्षेत्र (Concurrent Jurisdiction) है। परन्तु यदि संघ और कैण्टनों के कानूनों में विरोध हो तो संघीय कानून ही मान्य होते हैं, कैण्टनों के नहीं।

(iii) विभक्त अधिकार—स्विस शासन-व्यवस्था में शक्तियों के वितरण की एक विशेषता यह है कि वहाँ एक सूची विभाजित विषयों की है। ऐसे विषयों का कुछ भाग केन्द्र के अधिकार में है और कुछ भाग कैण्टनों के अधिकार में है। उदाहरणस्वरूप, विदेशों में सन्धियाँ करना संघीय अधिकार क्षेत्र में है, परन्तु कैण्टन अपने निकटवर्ती देशों से संविधान द्वारा निश्चित सीमाओं के अन्तर्गत कुछ विषयों पर सन्धियाँ कर सकते हैं। इसी तरह शिक्षा की व्यवस्था और संचालन का कार्य भी संघ तथा कैण्टनों में विभक्त है। अनिवार्य और नि:शुल्क प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था करना कैण्टनों का कर्त्तव्य है, परन्तु संघ को यह निरीक्षण करने का अधिकार है कि कैण्टन अपने कर्त्तव्य का पालन सुचारु रूप से कर रहे हैं या नहीं कृषि और विवाह जैसे विषय विभाजित विषयों की सूची के अन्तर्गत रखे गये हैं।

(iv) अवशिष्ट अधिकार—उपर्युक्त अधिकारों के अतिरिक्त सब अवशिष्ट अधिकार या शक्तियाँ (Residuary Powers) कैण्टनों को सौंपे गए हैं। इन अवशिष्ट अधिकारों का कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

(3) संविधान की सर्वोच्चता (Supremacy of Consutution)

स्विस संघीय व्यवस्था की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता संविधान की सर्वोच्चता है। यह संविधान लिखित है तथा किसी प्रकार के विवाद का निर्णय संविधान के उपबन्धों के अन्तर्गत ही होता है। संविधान वहाँ सर्वोच्च कानून है और शासन के सभी अंगों को उसी के द्वारा शक्ति प्राप्त होती है। कैण्टनों की सरकारों को शासन सम्बन्धी अधिकार केन्द्र-प्रदत्त न होकर संविधान द्वारा प्रदान किये गये हैं। संविधान जैसे संघ को स्वतन्त्र अस्तित्व प्रदान करता है, इसी प्रकार वह कैण्टनों को भी स्वतन्त्र अस्तित्व प्रदान करता है और संघ व कैण्टन दोनों के लिए ही वह समान रूप से मान्य है। दोनों में से कोई भी संविधान की अवहेलना नहीं कर सकता। किन्तु इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि संविधान सर्वोच्च है, तथापि उस पर जनमत-संग्रह (Referendum) और आरम्भण (Initiative) के उपकरणों द्वारा प्रत्येक बात में पूर्ण जनतान्त्रिक नियन्त्रण रखा गया है। संविधान की सर्वोच्चता के विषय में अन्तिम बात यह है कि संघीय न्यायपालिका को संविधान की व्याख्या करने का कोई अधिकार नहीं है।

(4) न्यायपालिका की सर्वोच्चता (Supremacy of Judiciary)

न्यायपालिका की सर्वोच्चता के विषय में स्विट्ज़रलैण्ड सघात्मकता की कसौटी पर पूरा नहीं उतरता। स्विस सर्वोच्च न्यायालय को अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के समान सविधान की व्याख्या करने का अधिकार नहीं है, क्योंकि स्विट्ज़रलैण्ड का न्यायालय किसी भी सघीय कानून को सघीय सविधान के किन्हीं उपबन्धों का अतिक्रमण करने वाला बतलाकर उसे अमान्य घोषित नहीं कर सकता है। यह शक्ति तो स्पष्ट रूप से विधान मण्डल के लिए छोड़ दी गई है जो विधि अथवा कानून को पारित करने का प्रमुखत. यही कारण रहा है कि स्विस लोग वस्तुतः जनता की प्रत्यक्ष सत्ता में विश्वास करते हैं।

(5) उच्च सदन में इकाइयो का समान प्रतिनिधित्व
(Equal Representation of Units in the Upper Chamber)

संघीय व्यवस्था का एक मुख्य लक्षण यह है कि व्यवस्थापिका के उच्च सदन में सघ की इकाइयों को समान प्रतिनिधित्व दिया जाता है, यद्यपि निचले सदन में उनका प्रतिनिधित्व उनकी जनसख्या के अनुपात के अनुसार होता है।

स्विस संघात्मक में पूर्ण कैण्टनों व अर्द्ध-कैण्टनों में अन्तर पाया जाता है। विधान-मण्डल के उच्च सदन मे प्रतिनिधित्व की व्यवस्था ऐसी है कि प्रत्येक पूर्ण कैण्टन दो और अर्द्ध-कैण्टन एक प्रतिनिधि भेजता है। स्विस व्यवस्था की यह विशेषता भी है कि यहाँ कैण्टनों को अपने प्रतिनिधियों का कार्यकाल स्वयं निश्चित करने का अधिकार है। परिणामस्वरूप वहाँ उच्च सदन के जो सदस्य होते हैं, वे भिन्न-भिन्न कार्यकाल के होते हैं।

(6) संशोधन-कार्य में इकाइयों की शक्तियाँ
(Power of Units in Constitutional Amendment)

संघीय व्यवस्था के अनुरूप स्विट्ज़रलैण्ड में संशोधन प्रस्तावित करने और उसकी पुष्टि करने में संघ की इकाइयों का पूरा हाथ होता है। सविधान में कोई भी संशोधन केवल तभी पारित समझा जा सकता है जबकि आधे से अधिक कैण्टनों द्वारा वह स्वीकार कर लिया जाए। स्विट्ज़रलैण्ड में स्वीकृति कैण्टनों की जनता की होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सिर्फ न्यायपालिका की सर्वोच्चता के तत्त्व को छोड़कर स्विट्ज़रलैण्ड के संविधान में संघीय शासन प्रणाली के सभी लक्षण विद्यमान हैं। स्विट्ज़रलैण्ड में अन्तिम निर्णय शक्ति जनता के हाथ में रहती है।

केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति एवं कैण्टनों और संघ सरकार के आपसी सम्बन्ध
(Tendency of Centralization and Mutual Relationship of Federal Government)

अन्य देशों की तरह स्विट्ज़रलैण्ड की संघात्मक व्यवस्था में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति का विकास हो रहा है, जो निम्नानुसार है—

(1) स्विट्ज़रलैण्ड की केन्द्रीय सत्ता बहुत शक्तिशाली है और आवश्यकता पड़ने पर कैण्टनों में अपनी सैनिक शक्ति का प्रयोग कर सकती है।

(2) केन्द्र को अधिकार है कि आन्तरिक अव्यवस्था होने पर वह किसी भी कैण्टन का शासन अपने अधिकार में ले ले।

(3) प्रत्येक क्षेत्र में संघीय संविधान के नियम लागू होते हैं। इस प्रकार कैण्टनों पर संघ का नियन्त्रण है।

(4) कैंटन का कोई कानून यदि संघीय कानून के प्रतिकूल हो तो संघीय कानून को ही मान्यता मिलती है।

(5) कैण्टनों के पास केवल स्थानीय महत्त्व की शक्तियाँ हैं जबकि संघीय सरकार के पास सम्प्रभु शक्तियाँ हैं जिनके माध्यम से वह कैण्टनों पर नियन्त्रण या प्रभुत्व स्थापित करती है। अकेला मुद्रा एवं बैंक व्यवस्था से सम्बन्धित अधिकार ही इतना व्यापक है कि उसके प्रयोग से केन्द्र समस्त कैण्टनों के आर्थिक और व्यापारिक जीवन पर नियन्त्रण कर सकता है।

(6) कैण्टनों का अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अनुसार अपना कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं है।

(7) कैण्टन के संघीय क्षेत्र में हस्तक्षेप को केन्द्र अनेक उपायों से रोक सकता है पर संघीय हस्तक्षेप को रोकने के साधन कैंटनों के पास नहीं है।

(8) कैंटनों के आपसी झगड़ों में संघ को ही निर्णायक शक्ति प्राप्त है।

(9) कैंटन न संघ से पृथक् हो सकते हैं और न परस्पर कोई सन्धि ही कर सकते हैं।

(10) कैंटन अपने विकास के लिए संघ की वित्तीय सहायता पर आश्रित होते हैं। अशान्ति अथवा उपद्रव के समय भी उन्हें संघ सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है।

(11) कैण्टनों को अपने संवैधानिक संशोधनों पर संघ की स्वीकृति लेनी पड़ती है। कैंटनों का संशोधन संघीय संविधान के प्रतिकूल नहीं हो सकता है।

(12) संघीय न्यायालय कैंटन के कानूनों को अवैध घोषित कर सकता है, पर संघीय कानूनों को अवैध घोषित करने का अधिकार कैन्टनों को नहीं है।

उपर्युक्त व्यवस्थाओं के कारण ही ड्यूप्रीज ने कहा कि "स्विट्जरलैण्ड के संविधान ने संघ को वस्तुतः ऐसा रूप प्रदान कर दिया है मानो वह कैन्टनों का शिक्षक और निरीक्षक हो।"[1] केन्द्रीयकरण की इस स्थिति ने कैंटनों की स्थिति को कमजोर कर दिया है। इससे संघीय सरकार का प्रभुत्व कायम हो गया है।

कैंटन स्विस-राजनीति का आकर्षण-केन्द्र

(Attraction-Centre of Swiss Politics)

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि कैंटनों की संवैधानिक शक्ति शून्य है। आज भी स्विस राजनीति का आकर्षण-केन्द्र कैंटन हैं और कैंटनों की अपनी राजनीति तथा उनका अपना संस्थागत स्वरूप भी है। यदि केन्द्रीय सरकार कैण्टनों की शक्तियों पर अनाधिकार प्रहार करती है तो कैंटनों के पास अपनी रक्षा के साधन आरम्भक और जनमत-संग्रह हैं। छोटे या बड़े सभी कैण्टनों को स्विट्जरलैण्ड के उच्च सदन के समान प्रतिनिधित्व प्राप्त है और इसके द्वारा कैण्टनों के हितों का संरक्षण

1 *Dupreiz* : "The Swiss Constitution really creates the confederation in some measure into a tutor and inspector of Cantons."

किया जाता है तथा केन्द्र द्वारा कैण्टनों की शक्ति को सीमित करने या उनका दमन करने का प्रयास सफल नहीं हो पाता है। इसके अतिरिक्त नागरिकों के जीवन में संघ की अपेक्षा कैण्टनों का प्रभाव अधिक व्यापक है। कैण्टनों की स्वायत्तता और स्वतन्त्रता स्विस लोगों के लिए महत्वपूर्ण है। वह समझती है कि नैतिक व सांस्कृतिक जीवन की परम्परा तभी रह सकती है, जब कैण्टनों की स्वाधीनता अक्षुण्ण रहे। कैण्टन इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि उनके सरकारी अधिकारी संघीय संसद् के सदस्य हो सकते हैं। ब्रुक्स (Brooks) के शब्दों में—"प्रत्येक कैण्टन सक्रिय राजनीतिक जीवन का केन्द्र है।" अवशिष्ट विषयों पर कैण्टनों के अधिकार हैं और ये अधिकार व्यापक हैं क्योंकि ये संघीय अधिकारों के समान स्पष्ट और लिखित नहीं हैं। कैण्टन समवर्ती विषयों पर भी कानून बना सकते हैं, शर्त केवल यही है कि वे संघीय कानून के प्रतिकूल न हों। फिर, संघीय कार्यपालिका में अधिक कैण्टनों को प्रतिनिधित्व देने का प्रयत्न किया गया है और राज्य-परिषद् या उच्च सदन में अध्यक्ष और उपाध्यक्ष पद को प्राप्त करने के लिए बारी-बारी से अलग-अलग कैण्टनों को अवसर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त यह बात भी महत्वपूर्ण है कि संघ की सरकार जनता पर स्वयं सीधे कर नहीं लगा सकती। स्विट्‌जरलैण्ड की जनता ने ऐसे किसी भी प्रस्ताव को अभी तक अस्वीकार ही किया है। स्विट्‌जरलैण्ड में नागरिक का निवास कैण्टनों में है। प्रत्येक व्यक्ति को संघ का नागरिकता होने के लिए आवश्यक है कि वह किसी न किसी कैण्टन का नागरिक हो अतः नागरिकता की दृष्टि से भी कैण्टन अधिक महत्वपूर्ण हैं।

निष्कर्षतः संघ द्वारा शक्ति का केन्द्रीयकरण इतना नहीं हुआ है कि कैण्टनों का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व ही नहीं रह गया है। फिर भी केन्द्रीयकरण की बढ़ती हुई प्रवृत्ति के जिस खतरे के प्रति अण्ड्रे (Andre) ने संकेत किया है, उसके प्रति स्विस जनता का सचेत रहना उचित ही होगा, इसमें कोई संशय नहीं। अण्ड्रे के अनुसार, "इस विकासमान केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति में यह भय निहित है कि ज्यों-ज्यों केन्द्रीय शक्ति अपना अधिकार-क्षेत्र बढ़ाएगी, त्यों-त्यों कैण्टन की प्रभुता नष्ट होती जाएगी और अन्त में वे साधारण प्रशासन के जिले मात्र रह जाएँगे और केन्द्रीय शासन की प्रत्येक आज्ञा को मानना-भर ही उनका काम रह जाएगा।"[1] केन्द्रीयकरण के विकास के सम्बन्ध में रैपार्ड (Reppard) का मत है कि "अमेरिका के समान स्विट्‌जरलैण्ड में भी ऐतिहासिक विकास राष्ट्र के राजनीतिक जीवन के आकर्षण केन्द्र को उसकी इकाइयों की अपेक्षा अधिकाधिक सम्पूर्ण की ओर उन्मुख कर रहा है।"[2]

स्विस संघ एवं अमेरिकी संघ में तुलना

(Comparison of Swiss & American Federations)

स्विट्‌जरलैण्ड और अमेरिका दोनों ही संघात्मक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं, अतः दोनों की समानताओं तथा असमानताओं पर दृष्टि डालना उपयुक्त होगा।

1. *Andre, N.* : Modern Swedish Govt.
2. *Reppard* : The Govt. of Switzerland, p. 82.

समानताएँ (Similarities)

स्विट्जरलैण्ड और अमेरिकी संघात्मक व्यवस्था में निम्नांकित समानताएँ देखी जा सकती हैं—

(1) दोनों ही संघों का निर्माण सुरक्षा की भावना के आधार पर हुआ है। स्विस कैण्टनों ने यूरोप के पड़ोसी राज्यों से सुरक्षा हेतु अपने संघ का निर्माण किया तो अमेरिकी उपनिवेशों ने ब्रिटिश एवं स्पेनिश साम्राज्यवाद से अपनी सुरक्षा के लिए संघ बनाया।

(2) दोनों ही देशों के संघों का निर्माण केन्द्रोन्मुखी (Centripetal) अर्थात् सम्मिलन की प्रक्रिया के आधार पर हुआ है। दोनों ही संघों की इकाइयाँ संघ के निर्माण से पहले स्वतन्त्र राज्यों के रूप में थीं जिनके परस्पर मिलने से दोनों देशों में संघात्मक व्यवस्था का जन्म हुआ।

(3) दोनों ही संघों में शक्ति-विभाजन के लिए गणना एवं अवशेष की पद्धति अपनाई गई जिसके अनुसार केन्द्रीय सरकार की शक्तियाँ निश्चित कर दी गई हैं और अवशिष्ट शक्तियाँ इकाइयों को सौंप दी गई हैं।

(4) दोनों ही संघों में इकाइयों के अपने पृथक् संविधान हैं, दोनों ही संघों में यह शर्त है कि इकाइयों के संविधान संघीय संविधान के प्रतिकूल न हों, और दोनों ही संघों में इकाइयों को संघ से सम्बन्ध-विच्छेद करने का अधिकार नहीं है।

(5) दोनों ही संघों में संघीय व्यवस्थापिका के द्वितीय सदन में छोटी-बड़ी सभी इकाइयों को समान प्रतिनिधित्व दिया गया है। अमेरिकी संघ में प्रत्येक राज्य सीनेट में अपने दो प्रतिनिधि भेजता है और स्विस संघ में प्रत्येक पूर्ण कैण्टन द्वारा दो प्रतिनिधि भेजे जाते हैं। केवल पूर्ण कैण्टन और अर्द्ध-कैण्टन में अन्तर किया गया है।

(6) दोनों ही देशों की संघात्मक व्यवस्था में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति बढ़ रही है और केन्द्रीय सरकार की स्थिति शक्तिशाली होती जा रही है।

असमानताएँ (Dissimilarities)

(1) अमेरिका के संविधान में शक्ति-विभाजन में समवर्ती अधिकार-क्षेत्र की कोई व्यवस्था नहीं है जबकि स्विस संविधान में है।

(2) अमेरिका के संविधान में शक्ति-विभाजन एक सूत्र में हुआ है जबकि स्विस संविधान में संघीय सरकार के अधिकार जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े हैं।

(3) अमेरिका में संघीय विषयों का प्रबन्ध स्वयं संघीय शासन द्वारा किया जाता है जबकि स्विस संघ में अनेक संघीय विषयों का प्रबन्ध कैण्टनों की सरकारों द्वारा होता है।

(4) अमेरिका के संविधान में केवल इतना प्रावधान है कि राज्यों के संविधान संघीय संविधान के अनुकूल होने चाहिए, जबकि स्विस संघ में कैण्टनों के संविधानों के बारे में भी कहा गया है कि संविधान जनता द्वारा स्वीकृत और उसकी इच्छानुसार संशोधन-योग्य होना चाहिए, शासन की गणतन्त्रीय प्रणाली अपनाई जानी चाहिए और जनता को राजनीतिक अधिकारों के प्रयोग का अवसर दिया जाना चाहिए।

(5) दोनों संघों के संविधानों की संशोधन-प्रक्रिया में महत्वपूर्ण अन्तर है। अमेरिका के संविधान के अनुसार संघीय इकाइयों को संशोधन की पुष्टि करने और संशोधन प्रस्तावित करने का अधिकार है जबकि स्विस संविधान के अनुसार इकाइयों को केवल संशोधन की पुष्टि का ही अधिकार दिया गया है, संशोधन प्रस्तावित करने का अधिकार नहीं। इसके अतिरिक्त, अमेरिकी संविधान के अन्तर्गत जनता को सांविधानिक संशोधन के बारे में कोई अधिकार प्राप्त नहीं है जबकि स्विस संविधान के अन्तर्गत यह महत्वपूर्ण अधिकार जनता को प्राप्त है।

(6) दोनों संघों की न्यायपालिका की शक्ति में भी बहुत अन्तर है। अमेरिका में संघीय न्यायपालिका सर्वोच्च है जो संघ और राज्य सरकारों के सम्बन्ध में न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का सहारा लेती है। उसके निर्णय दोनों ही सरकारों के लिए बाध्यकारी होते हैं।

(7) स्विस संघ में संघीय न्यायपालिका की संरचना में एक ही न्यायालय संघीय न्यायालय है, कोई अधीनस्थ संघीय न्यायालय नहीं है जबकि अमेरिकी संघीय न्यायपालिका में सर्वोच्च न्यायपालिका के नीचे अपीलीय न्यायालय और सबसे नीचे जिला न्यायालयों की व्यवस्था है।

(8) स्विस संघ में कैण्टनों को अपने समीपस्थ राज्यों से व्यापारिक एवं सांस्कृतिक सन्धियाँ करने और सीमित रूप में सेना रखने का अधिकार है जबकि अमेरिकी संघ में दूसरे राज्यों से सन्धियाँ करने के अधिकार इकायों को प्राप्त नहीं हैं।

(9) इसके अतिरिक्त दोनों देशों में निम्न संवैधानिक अन्तर हैं—(i) अमेरिका में एकल कार्यपालिका है जबकि स्विट्जरलैण्ड में बहुल कार्यपालिका है, (ii) अमेरिका के संविधान में औपचारिक अधिकार-पत्र की व्यवस्था है जबकि स्विस संविधान में औपचारिक अधिकार-पत्र की व्यवस्था नहीं है, एवं (iii) अमेरिका की भाँति स्वि.. संविधान में शक्ति-विभाजन का सिद्धान्त नहीं अपनाया गया है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यही कहा जा सकता है कि स्विट्जरलैण्ड में एक ऐसी संघीय व्यवस्था का प्रचलन है, जिसमें कैंटनों की महत्वपूर्ण स्थिति है।

स्विट्जरलैण्ड की व्यवस्थापिका : संघीय सभा

(The Swiss Legislature : Federal Assembly)

स्विस संविधान के अनुच्छेद 71 के अनुसार संघीय व्यवस्थापिका, जिसे संघीय सभा (Federal Council) के नाम से सम्बोधित किया जाता है, शासन का संचालन करने में सर्वोच्च सत्ता का उपभोग करती है। इसका स्वरूप द्वि-सदनात्मक है। देश की शासन-व्यवस्था में इसकी स्थिति केन्द्रीय है। शासन के अन्य दो अगों, अर्थात् संघीय परिषद् तथा संघीय न्यायालय की सत्ता उससे निम्न है।

संघीय व्यवस्थापिका या विधान मण्डल की विशेषताएँ

(The Peculiarities of the Swiss Legislature)

सत्ता की सर्वोपरिता (Supremacy of Authority)—प्राय संघीय शासन-व्यवस्था में कार्यपालिका पर व्यवस्थापिका और न्यायपालिका का अंकुश रखा जाता है किन्तु स्विस व्यवस्थापिका इस दृष्टि से निराली है। स्विट्जरलैण्ड में व्यवस्थापिका की सर्वोच्चता इस सीमा तक स्थापित की गई है कि न्यायपालिका को व्यवस्थापिका द्वारा पारित कानून के पुनरावलोकन (Judicial Review) का अधिकार भी प्राप्त नहीं है। इतना ही नहीं, कुछ मामलों में तो उसे संघीय न्यायपालिका के निर्णयों को रद्द करने का भी अधिकार है। संघीय सभा ही स्विस कार्यपालिका अर्थात् संघीय परिषद् (Federal Council) के सदस्यों का निर्वाचन करती है तथा संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों का चयन करती है। वस्तुतः स्विस संघीय सभा की स्थिति अमेरिकी काँग्रेस और भारतीय संसद् दोनों से ही उच्चतर है। कैण्टन के कानून से संघीय कानून की उच्च स्थिति भी संघीय व्यवस्थापिका की सर्वोच्च शक्ति को इंगित करती है।

इस सम्बन्ध में संविधान के अनुसार संघीय सभा पर एक प्रतिबन्ध अवश्य आरोपित किया गया है। संविधान में यह स्पष्टतः उल्लिखित है कि "संघ की सर्वोच्च शक्ति का उपभोग संघीय-सभा नागरिकों और कैण्टनों के अधिकारों के अधीन करती है।" आशय यह है कि व्यवस्थापन सम्बन्धी अधिकार-क्षेत्र में किन्हीं मामलों में जनता और कैण्टन भी उसके सह-अधिकारी हैं और वे अपने इस अधिकार का प्रयोग जनमत-संग्रह (Referendum) तथा उपक्रमण या पहल (Initiative) द्वारा करते हैं। इन साधनों के द्वारा जनता और कैंटन संघीय सभा द्वारा पारित कानूनों को रद्द कर सकते हैं।

समानपदीय द्वि-सदनीय व्यवस्था—स्विस संघीय सभा के दोनों सदन राष्ट्रीय सभा (National Assembly) तथा राज्य-सभा (Council of State) समपक्षीय है । यह स्थिति स्विस संघीय सभा को अनूठा स्वरूप प्रदान करती है । विश्व में कहीं भी समानपदीय द्वि-सदनीय व्यवस्थापिका का अस्तित्व नहीं है ।

विविध भाषाओं का प्रयोग—स्विस व्यवस्थापिका के सदस्य देश की विविध भाषाओं का प्रयोग करने में पूर्ण स्वतन्त्र हैं क्योंकि संविधान के अन्तर्गत उन सभी भाषाओं को राजकीय मान्यता प्राप्त है । संसदीय कार्यवाही का प्रकाशन भी जर्मन, फ्रेंच तथा कभी-कभी इटालियन भाषा में किया जाता है ।

संघीय सभा का संगठन

(Organisation of the Federal Assembly)

स्विस व्यवस्थापिका अथवा संघीय सभा का निर्माण द्वि-सदनात्मक प्रणाली के आधार पर हुआ है । इसके दोनों सदन निम्नांकित हैं—

(1) राष्ट्रीय परिषद् (National Council)—यह निचला सदन है ।

(2) राज्य परिषद् (Council of State)—यह उच्च सदन है ।

राष्ट्रीय परिषद्

(National Council)

रचना (Organisation)—संविधान के अनुसार राष्ट्रीय परिषद् की अधिकतम सदस्य-संख्या 200 हो सकती है । वर्तमान में इनकी वास्तविक सदस्य संख्या यही है । 1951 ई. में इसकी सदस्य-संख्या 196 थी । राष्ट्रीय परिषद् का निर्माण जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा होता है । प्रत्येक कैण्टन या अर्द्ध-कैण्टन को प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों में विभक्त किया जाता है । प्रत्येक 24 हजार व्यक्तियों पर एक प्रतिनिधि चुना जाता है, किन्तु 12 हजार से अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्र से भी एक प्रतिनिधि को राष्ट्रीय परिषद् में स्थान दिया जाता है । इसके अतिरिक्त प्रत्येक कैण्टन और अर्द्ध-कैण्टन को दो या एक प्रतिनिधि भेजने का अवसर अवश्य दिया जाता है । इस तरह से इस सदन में जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व की व्यवस्था के कारण बर्न एवं ज्यूरिच जैसे बड़े कैण्टन राष्ट्रीय सभा के लिए क्रमशः 33 और 32 प्रतिनिधि भेजते हैं जबकि ऊरी जैसे छोटे कैण्टन एक ही प्रतिनिधि भेजते हैं । प्रतिनिधित्व का आधार जनसंख्या है । सभा की सदस्य-संख्या 200 की सीमा में ही रहे, इसके लिए यदि आवश्यक हो तो जनसंख्या की सीमा बढ़ायी जा सकती है । पहले दो बार ऐसा किया भी जा चुका है । 1931 ई. में यह संख्या 20 हजार से बढ़कर 21 हजार और 1940 में 24 हजार कर दी गई थी । चूँकि प्रतिनिधित्व का आधार जनसंख्या है, अतः स्वाभाविक रूप से बड़ी जनसंख्या वाले कैण्टनों के प्रतिनिधि अधिक है और छोटी जनसंख्या वाले कैण्टनों के प्रतिनिधि कम हैं ।

कार्य काल, बैठकें, वेतन आदि (Term, Session, Salary etc.)—राष्ट्रीय सभा का कार्यकाल चार वर्ष है । संविधान के पूर्ण संशोधन पर मतभेद की दशा में इस सदन का विघटन 4 वर्ष से पहले भी किया जा सकता है । सभा की बैठकें राज्य सभा की

बैठकों के साथ ही होती हैं। राष्ट्रीय सभा में निर्णय बहुमत से लिए जाते हैं और गणपूर्ति-संख्या 101 है।

यदि राष्ट्रीय सभा के सदस्यों के एक-चौथाई लोग या कैण्टनों की सम्पूर्ण संख्या के एक-चौथाई कैण्टनों की ओर से माँग की जाए तो संघीय परिषद् (Federal Council) दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकती है।

राष्ट्रीय सभा के सदस्यों को मासिक वेतन नहीं दिया जाता। सदन की बैठक के समय केवल दैनिक भत्ता और मार्ग-व्यय दिया जाता है। अतः अपने जीवन-निर्वाह के लिए सदस्यों को प्रायः दूसरे वैतनिक पदों पर कार्य करना पड़ता है। इस व्यवस्था ने राष्ट्रीय परिषद् में व्यावसायिक राजनीतिज्ञों के वर्ग को जन्म नहीं दिया है।

सदस्यों की योग्यतायें (Qualifications of the Members)—राष्ट्रीय सभा की सदस्यता के लिए वही योग्यताएँ निर्धारित की गई हैं जो मतदाताओं के लिए हैं अर्थात् मताधिकार प्राप्त प्रत्येक स्विस-नागरिक इसका सदस्य बन सकता है। इस बारे में प्रतिबन्ध यह है कि धर्माधिकारी (Clergy) तथा राज्य सभा एवं संघीय-परिषद् के सदस्य राष्ट्रीय सभा के सदस्य नहीं बन सकते हैं।

मतदान (Electorate)—20 वर्ष की आयु पूरी करने वाला प्रत्येक पुरुष/महिला राष्ट्रीय सभा के निर्वाचन में मतदान कर सकता है। कैण्टन की नागरिकता से वंचित व्यक्तियों को मताधिकार प्राप्त नहीं है। फरवरी 1971 से पहले स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त नहीं था, पर 8 फरवरी, 1971 से उनको भी मताधिकार प्रदान किया गया। विभिन्न कैण्टनों में दिवालियों, भिक्षुओं तथा दुश्चरित्र व्यक्तियों को मताधिकार नहीं दिया गया है। कोई भी मताधिकार प्राप्त व्यक्ति राष्ट्रीय सभा की सदस्यता के लिए प्रत्याशी हो सकता है।

निर्वाचन-प्रणाली (Electoral System)—इस सदन का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से गुप्त मतदान द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक कैण्टन एक निर्वाचन क्षेत्र है जिसमें विविध दल अपने प्रत्याशियों की सूची प्रस्तुत करते हैं। प्रत्येक सूची में उतने ही नाम होते हैं जितने स्थान पर उस कैण्टन के हैं और मतदाता उतने ही मत देने का अधिकारी होता है जितने सदस्यों का निर्वाचन उस कैण्टन से होता है। आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का प्रयोग उन्हीं कैण्टनों में किया जाता है जहाँ एक से अधिक सदस्यों का निर्वाचन होना हो। जिन कैण्टनों में केवल एक सदस्य चुना जाता है, वहाँ मतदान साधारण प्रणाली द्वारा होता है।

अध्यक्ष व उपाध्यक्ष (Chairman & Vice-Chairman)—राष्ट्रीय सभा को प्रत्येक साधारण और असाधारण अधिवेशन के लिए अपने सदस्यों में से एक अध्यक्ष और एक उपाध्यक्ष चुनने का अधिकार दिया गया है। अब परम्परा के अनुसार, ये अधिकारी प्रत्येक अधिवेशन में नहीं वरन् प्रतिवर्ष चुने जाते हैं। कोई भी सदस्य लगातार दो वर्षों तक अध्यक्ष नहीं बन सकता और न कोई जो एक वर्ष तक अध्यक्ष रह चुका हो, अगले वर्ष के लिए पुनः अध्यक्ष या उपाध्यक्ष निर्वाचित हो सकता है। अध्यक्ष राष्ट्रीय सभा की अध्यक्षता तथा उसकी कार्यवाही का संचालन करता है। उस पर सदन में शान्ति और

व्यवस्था बनाए रखने तथा सदन के सम्मान, गरिमा और प्रतिष्ठा को बनाये रखने का उत्तरदायित्व होता है। उसे निर्णायक मत देने का अधिकार है। सदन में जब विभिन्न समितियों का निर्वाचन होता है तो अध्यक्ष भी साधारण सदस्य के समान मतदान करता है। दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन की अध्यक्षता राष्ट्रीय सभा का अध्यक्ष करता है।

राष्ट्रीय सभा के अध्यक्ष को कोई वेतन नहीं मिलता। उसका पद उतना निष्पक्ष भी नहीं होता जितना ब्रिटिश लोकसदन या अमेरिकी प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष का होता है। प्रभाव और शक्ति की दृष्टि से भी यह पद विशेष महत्व का नहीं है। फिर भी इस पद के लिए सभी लालायित रहते हैं क्योंकि अध्यक्ष को बहुत ही सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। ब्रुक्स के शब्दों मे, "यह पद आदर का है जिसकी आकांक्षा बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ नेता करते हैं।"[1]

राज्य-परिषद्
(Council of State)

राज्य-परिषद् स्विस संघीय सभा का उच्च या द्वितीय सदन (Upper or Second Chamber) है। संविधान के अनुसार यह निम्न सदन का अधीनस्थ नहीं बल्कि समकक्ष सदन है अर्थात् स्विट्जरलैण्ड की संघीय सभा के दोनों सदनों की स्थिति समान है।

रचना (Organisation)—राज्य-सभा की सदस्य-संख्या 44 है। प्रत्येक कैण्टन के दो और प्रत्येक अर्द्ध-कैण्टन का एक प्रतिनिधि होता है। अतः 19 कैंटनों के दो प्रतिनिधियों के हिसाब से 38 तथा 6 अर्द्ध-कैण्टन एक प्रतिनिधि के हिसाब से 6 प्रतिनिधि भेजते हैं। इस तरह से यह सदन कैंटनों का ही प्रतिनिधित्व करता है, संवर्ग के नागरिकों का नहीं।

कार्यकाल व बैठकें (Term & Sessions)—स्विस राज्य-परिषद् के सदस्यों के कार्यकाल में भी असमानता है। विभिन्न कैंटन भिन्न-भिन्न अवधियों के लिए सदस्यों का निर्वाचन करते है। इसके फलस्वरूप राज्य-परिषद् के 35 सदस्य 4 वर्ष के लिए, 5 सदस्य 3 वर्ष के लिए और 4 सदस्य केवल 1 वर्ष के लिए चुने जाते हैं। प्रायः उनका बार-बार पुनर्निर्वाचन होता रहता है। राज्य-परिषद् की बैठकें राष्ट्रीय सभा की बैठकों के साथ ही होती हैं। किसी भी विषय पर सम्मिलित रूप से विचार करने के लिए राज्य-परिषद और राष्ट्रीय परिषद् की सम्मिलित बैठक भी हो सकती है। यदि राष्ट्रीय परिषद् के सदस्यों का एक-चौथाई भाग या कैंटनों की एक-चौथाई संख्या संघीय परिषद् से प्रार्थना करे तो संघीय परिषद् ऐसी संयुक्त बैठक आमन्त्रित कर सकती है।

सदस्यों की योग्यता व प्रतिबन्ध एवं निर्वाचन आदि (Qualifications of Members & Election etc.)—सदस्यों की योग्यताएँ उनकी निर्वाचन-पद्धति, पदावधि आदि का निर्धारण करना कैंटनों का दायित्व माना जाता है। चार कैंटनों के प्रतिनिधि

1. *Brooks* : Govt & Politics of Switzerland.

वहाँ के विधान-मण्डल द्वारा, एक कैंटन तथा तीन अर्द्ध कैंटनों के प्रतिनिधि सार्वजनिक सभाओं द्वारा और 14 कैंटनों तथा 3 अर्द्ध-कैंटनों के प्रतिनिधि वयस्क नागरिकों द्वारा चुने जाते हैं। वेतन और भत्तों आदि निश्चित करने के सम्बन्ध में कैंटनों को स्वतन्त्रता प्राप्त है।

राज्य-सभा के सदस्यों पर यह प्रतिबन्ध है कि वे राष्ट्रीय सभा व संघीय परिषद् के सदस्य नहीं हो सकेंगे। उनके संघीय न्यायालय का सदस्य होने पर भी प्रतिबन्ध है। साथ ही कैंटनों को यह अधिकार है कि वे अपनी सरकार के सदस्यों को राज्य-परिषद् की सदस्यता ग्रहण करने की अनुमति दे दें।

अध्यक्ष और उपाध्यक्ष (Chairman & Vice-Chairman)—राष्ट्रीय परिषद् की भाँति ही राज्य-परिषद् भी अपने सदस्यों में से ही अपना अध्यक्ष और एक उपाध्यक्ष चुनती है, किन्तु यह चुनाव एक वर्ष के लिए किया जाता है। संविधान के अनुसार यह निश्चय किया गया है कि किसी एक कैंटन के प्रतिनिधियों में से अध्यक्ष-उपाध्यक्ष लगातार दो वर्ष तक नहीं चुने जा सकते। इस व्यवस्था का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि समस्त कैंटनों के प्रतिनिधियों को इन पदों पर आसीन होने का अवसर मिल जाता है। प्रचलित परम्परा के अनुसार एक सत्र का उपाध्यक्ष दूसरे सत्र में अध्यक्ष बना दिया जाता है। राज्य-परिषद् के अध्यक्ष को भी वही अधिकार प्राप्त हैं जो राष्ट्रीय परिषद् के अध्यक्ष को हैं। वही सभा की बैठकों का सभापतित्व करता है, सदन में शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित रखता है, सदन के नियमों का क्रियान्वयन करता है तथा समान मत आने पर निर्णायक मत देता है।

संघीय-सभा की शक्तियाँ और कार्य

(Powers and Functions of the Federal Assembly)

राष्ट्रीय परिषद् और राज्य परिषद् के संयुक्त रूप में संघीय-सभा को प्रायः वे ही व्यवस्थापन सम्बन्धी अधिकार प्राप्त हैं जो साधारणतः अन्य व्यवस्थापिका को प्राप्त होते हैं।

(1) प्रशासन सम्बन्धी शक्तियाँ (Administrative Powers)

(i) संघीय सभा दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में संघीय परिषद् के सदस्यों, उसके अध्यक्ष और उपाध्यक्ष, संघीय न्यायपालिका के न्यायाधीशों, संघीय बीमा निकाय (Federal Insurance Tribunal) के सदस्य, सर्वोच्च सेनापति, विशेष जन-अभियोजक (Extra-ordinary Public Prosecutor), चांसलर आदि का निर्वाचन करती है। संघीय विधि द्वारा इसको अन्य किसी अधिकारी का चुनाव करने अथवा किसी चुनाव की पुष्टि करने का अधिकार दिया जा सकता है।

(ii) संघीय सभा, संघ-शासन और संघ-न्यायपालिका की कार्यवाहियों पर दृष्टि रखती है। इस सभा का अधिकार संघ की सामान्य अधिनियम-शक्ति को क्रियान्वित करने, संविधान को क्रियान्वित कराने तथा संघ के कर्त्तव्यों का अच्छी तरह से पालन कराने का प्रयत्न करना है।

(iii) कैंटनों की शासन-व्यवस्था पर भी संघीय सभा का नियन्त्रण रहता है। उसे यह अधिकार है कि कैंटनों के संविधानों तथा उनके संविधानों की उचित जाँच करे और

उन्हें स्वीकार करे। कैंटनों व विदेशों से यदि कोई सन्धि-समझौते हों तो उनकी जाँच करना और उन्हें स्वीकार या अस्वीकार करना संघीय सभा के कार्य-क्षेत्र के अन्तर्गत है। आन्तरिक शान्ति कायम रखने के लिए वह संघीय सेना का प्रयोग करने की भी अधिकारिणी है। व्यवहार में यह कार्य वस्तुतः संघीय परिषद् द्वारा किया जाता है और संघीय सभा उसके द्वारा किए हुए कार्य पर अपनी स्वीकृति-मात्र देती है।

(iv) संघीय सभा के अन्य प्रमुख प्रशासकीय कार्य हैं—दण्डित अपराधियों को क्षमादान (Pardon) अथवा सामूहिक क्षमादान (Amnesty) प्रदान करना, संघीय सेना का नियमन व नियन्त्रण करना तथा संघीय प्रशासन का निरीक्षण और निर्देशन करना, आदि। संघीय सभा को यह अधिकार भी है कि वह सरकार के अन्य अंगों के कार्यों के प्रतिवेदन प्राप्त करे। इन प्रतिवेदनों की जाँच करके वह सम्बन्धित अंगों को उसकी त्रुटियों से अवगत कराकर भूल-सुधार के लिए कह सकती है। संघीय परिषद् के विषय में नियम यह है कि संघीय परिषद् उसके निर्णयों को पलट नहीं सकती है। उसके आदेशों का भविष्य में प्रतिपालन करना संघीय परिषद् के लिए आवश्यक होता है।

(v) वैदेशिक सम्बन्धों पर संघीय सभा का पूर्ण नियन्त्रण है। बाह्य आक्रमणों से राष्ट्र की रक्षा करना, उसकी स्वतन्त्रता और तटस्थता की रक्षा करना, युद्ध की घोषणा करना, सन्धियों और समझौतों को सम्पन्न करना आदि सभी कार्य संघीय सभा के अधिकार-क्षेत्र में हैं। सन्धि-वार्ता सामान्यतः संघीय परिषद् द्वारा की जाती है, परन्तु उसके अन्तिम रूप को संघीय सभा के समक्ष प्रस्तुत करना होता है। संघीय सभा यदि आवश्यक समझती है तो उस सन्धि को स्वीकार करने के लिए संघीय परिषद् को अनुमति दे देती है। उल्लेखनीय है कि इस सम्बन्ध में संघीय सभा प्रायः अध्यादेश (Arretes) पारित कर देती है। यद्यपि कुछ सन्धियों के विषय में अध्यादेशों पर वैकल्पिक जनमत-संग्रह का प्रतिबन्ध भी लागू है।

(2) व्यवस्थापन सम्बन्धी शक्तियाँ (Legislative Powers)

संघीय सभा को व्यवस्थापन के क्षेत्र में भी व्यापक अधिकार प्राप्त हैं। संघीय सभा संघीय विषयों पर कानून बनाती है। संघीय परिषद् भी विधेयक आदि तैयार करके व्यवस्थापिका के विचार-विमर्श और स्वीकृति के लिए प्रस्तावित करती है, किन्तु प्रायः व्यवस्थापिका अर्थात् संघीय परिषद् ही अपनी ओर से विधि निर्माण के प्रस्ताव प्रस्तावित करती है, यद्यपि उसकी इस शक्ति पर जनमत-संग्रह तथा जनता के आरम्भन का अंकुश रहता है। जनता अपने वैकल्पिक व्यवस्थापन सम्बन्धी जनमत-संग्रह के अधिकार के अन्तर्गत संघीय सभा द्वारा पारित कानूनों को अस्वीकार कर सकती है, परन्तु ऐसा केवल उसी व्यवस्थापन के विषय में होता है जिसे नियम के अन्तर्गत 'विधि' (Law) की संज्ञा दी जाती है। संघीय परिषद् प्रायः दूसरे प्रकार के व्यवस्थापन का अधिक आश्रय लेती है जिसे अध्यादेश कहते हैं। उन अध्यादेशों पर वैकल्पिक व्यवस्थापन सम्बन्धी जनमत-संग्रह का प्रतिबन्ध नहीं होता जो सर्वव्यापी रूप से बाध्यकारी न हों अथवा जिन्हें संसद के दोनों सदनों के सब सदस्यों ने 'आवश्यक' घोषित कर दिया हो। वैकल्पिक जनमत संग्रह के प्रतिबन्ध से बचने के लिए व्यवस्थापन का अधिकांश प्रायः अध्यादेशों के रूप में होता है।

संघीय सभा के निर्णयों अथवा उसके द्वारा पारित विधेयकों पर कार्यकारिणी अर्थात् संघीय परिषद् को निषेध या वीटो (Veto) करने का अधिकार नहीं है। यद्यपि कार्यकारिणी व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी है, तथापि व्यवस्थापिका उसे पदच्युत् नहीं कर सकती।

(3) वित्त-सम्बन्धी अधिकार (Financial Powers)

संघीय सभा का संघ के वित्त पर पूर्ण नियन्त्रण है। वह संघ के आय-व्यय के लेखे को स्वीकार करती है और संघ की आर्थिक स्थिति पर नियन्त्रण रखती है। उसको करों की मात्रा निश्चित करने तथा सरकारी आय को व्यय करने का अधिकार है। संघीय सभा ही संघीय सरकार के प्रमुख पदों का सृजन और उनके वेतन आदि का निर्णय करती है। संघ की ओर से दिए जाने वाले ऋणों के विषय में भी निर्णय करना संघीय सभा का ही काम है। बजट पर संघीय सभा की स्वीकृति अन्तिम होती है क्योंकि इस पर वैकल्पिक जनमत संग्रह का प्रतिबन्ध नहीं होता।

संघीय परिषद् को अपना वित्त सम्बन्धी वार्षिक प्रतिवेदन संघीय सभा में भेजना पड़ता है। संघीय परिषद् पर वित्तीय नियन्त्रण रखने के लिए सभा के दोनों सदनों की वित्त समितियों (Finance Committees) के तीन-तीन सदस्यों का एक वित्तीय प्रतिनिधि मण्डल (Financial Delegation) नियुक्त होता है जो संघीय परिषद् के व्यय पर नियन्त्रण रखता है।

(4) न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers)

संघीय सभा ही संघीय न्यायपालिका का निरीक्षण तथा निर्देशन करती है, न्यायिक संगठन सम्बन्धी कानून बनाती है तथा संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों को निर्वाचित करती है। संघीय न्यायालय अपनी वार्षिक रिपोर्ट संघीय सभा के सम्मुख ही प्रस्तुत करता है। सभा कई मामलों में स्वय अन्तिम निर्णय देती है। संघीय परिषद् और संघीय न्यायालय अथवा बीमा न्यायालय के मध्य उत्पन्न विवादों पर संघीय सभा का निर्णय अन्तिम होता है। सभा प्रशासन विधि सम्बन्धी मामलों में संघीय परिषद् के नियमों के विरुद्ध अपील सुनती है और उन पर अपना अन्तिम निर्णय देती है। अपने द्वारा नियुक्त अधिकारियों के विरुद्ध भी यह कार्यवाही कर सकती है। संघ के न्याय-विभाग के अधिकारियों द्वारा दण्डित व्यक्तियों को ५६ क्षमादान भी दे सकती है।

संघीय सभा का मूल्यांकन

(Evaluation of Federal Assembly)

जितने बहुमुखी और विविध कार्य स्विस संघीय सभा द्वारा किए जाते हैं, उतने कार्य विश्व की बहुत कम व्यवस्थापिकाएँ करती हैं अगर इसकी तुलना ब्रिटिश संसद से की जाये तो यह उस सीमा तक सर्वोच्च और शक्तिशाली नहीं है जिस सीमा तक ब्रिटिश संसद् है। इसकी शक्ति पर संविधान द्वारा विविध प्रतिबन्ध लगा दिए गए हैं, जैसे— जनता के अधिकार, कैंटनों के अधिकार तथा संविधान द्वारा अन्य संघीय प्राधिकारियों को सौंपे गए अधिकार। जुर्चर के शब्दों में—"यह पूर्णतया स्पष्ट है कि संघीय परिषद् का विधायी महत्व स्थायी रूप से बढ़ गया है अन्य पश्चिमी प्रजातन्त्रों के समान ही

स्विट्जरलैण्ड में भी वस्तुतः संघीय परिषद् शासन का सर्वोच्च बन गई है। ....संघीय सभा की स्थापना करते हुए स्विस संविधान के निर्माताओं ने शक्ति-विभाजन के परम्परागत सिद्धान्त पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया है क्योंकि उन्होंने इसे विधायी, प्रशासनिक और न्यायिक सभी प्रकार की शक्तियाँ प्रदान की हैं।"[1] वास्तविकता यह है कि स्विस शासन-प्रणाली में संसदीय सम्प्रभुता (Parliamentary Sovereignty) की अपेक्षा लोकप्रिय या सार्वजनिक सम्प्रभुता (Popular Sovereignty) को उच्च स्थान प्रदान किया गया है। जनमत संग्रह और आरम्भण द्वारा स्वयं जनता वैधानिक एवं संवैधानिक कार्य में सक्रिय रूप से भाग लेती है तथा स्वयं विधि-निर्माण की प्रक्रिया को संचालित/नियन्त्रित करती है। संघीय सभा पर संवैधानिक दृष्टि से वैकल्पिक जनमत संग्रह (Optional Legislative Referendum) की व्यवस्था का प्रतिबन्ध तो है ही, व्यवहार में भी इसका अबाध गति से प्रयोग हुआ है। संघीय सभा का महत्व इस दृष्टि से पूर्वापेक्षा कम हुआ है। संघीय सभा ने स्विस ने शासन व्यवस्था में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका और स्थान बना लिया है। लार्ड ब्राइस ने ठीक ही कहा है कि "स्विट्जरलैण्ड की संघीय सभा अत्यन्त ईमानदारी से कार्य करने वाली संस्था है जो शान्ति और देश प्रेम से प्रेरित होकर अपना कार्य करती है।" अन्य देशों के समान ही स्विट्जरलैण्ड में भी व्यवस्थापन कार्य इतना अधिक बढ़ गया है कि संघीय सभा अधिकांश कार्यों के लिए संघीय परिषद् की मुखापेक्षी है।

कैण्टनों की व्यवस्थापिकाएँ

(Legislatures of Cantons)

प्रायः प्रत्येक सदन में एका-सदनीय (Uni Cameral) व्यवस्थापिका है जिसे महापरिषद् (Grand Council) या कैण्टन परिषद् (Cantom Council) कहा जाता है। इसके सदस्यों की संख्या और उनका कार्यकाल विभिन्न कैण्टनों में भिन्न-भिन्न है। सदस्य संख्या प्रायः 50 से 200 तक होती है। इनका कार्यकाल 2 से 6 वर्ष तक होता है। व्यवस्थापिका का संगठन जनसंख्या के आधार पर किया जाता है और अधिकांश कैण्टनों में आनुपातिक प्रतिनिधित्व की निर्वाचन प्रणाली को अपनाया गया है। कैण्टन परिषद् कानून बनाती है, सरकार कर लगाती है, वार्षिक बजट स्वीकार करती है, संविधान में संशोधन करती है और सरकार का निरीक्षण करती है।

———

1. *Zurcher* : Govts. of Continental Europe, p. 437.

विधि-निर्माण-प्रक्रिया

(The Law-making Procedure)

अन्य देशों की तरह स्विट्जरलैण्ड में भी कानून-निर्माण की एक निश्चित प्रक्रिया प्रयोग में लाई जाती है, किन्तु यह प्रक्रिया अन्य देशों की अपेक्षा विलक्षण है। स्विस कानून-निर्माण की प्रक्रिया के प्रमुख स्तरों का विवेचन निम्नांकित शीर्षकों में किया जा सकता है—

विधेयक का प्रस्तुतीकरण (Presentation of the Bill)

स्विट्जरलैण्ड में संघीय सभा के किसी भी सदन में कोई भी विधेयक प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रत्येक अधिवेशन के प्रारम्भ में संघीय सभा के दोनों सदनों के अध्यक्ष परस्पर वार्तालाप द्वारा यह निश्चित करते हैं कि कौनसा सदन किस विषय या विधेयक पर पहले विचार करेगा, उन विधेयकों को छोड़कर जिन्हें संघीय परिषद् ने 'आवश्यक' घोषित कर दिया हो, सभी विधेयकों का कार्य-विभाजन दोनों सदनों द्वारा स्वीकार किया जाना आवश्यक है। 'आवश्यक' विधेयक के विषय में जो भी निर्णय सदनों के अध्यक्ष लेते हैं, वही सबके लिए मान्य होता है। कार्य-विभाजन के विषय में यदि दोनों सदनों में मतभेद होता है तो फिर लॉटरी द्वारा निर्णय किया जाता है।

सदनों में विधेयक चार प्रकार से प्रस्तुत या प्रस्तावित किए जा सकते हैं— (1) संघीय परिषद् द्वारा, (2) प्रत्येक कैण्टन या अर्द्ध-कैण्टन द्वारा, (3) संघीय सभा के किसी भी सदन द्वारा एवं (4) संघीय सभा के किसी भी सदन के किसी भी सदस्य द्वारा अपने सदन में वास्तव में अब विधेयकों को तैयार करने और उनका प्रस्तुतीकरण करने का कार्य धीरे-धीरे संघीय परिषद् में केन्द्रित हो गया है। व्यवहार में अधिकांश विधेयकों का प्रस्तुतीकरण परिषद् ही करती है। कैण्टन तो अपने इस अधिकार का प्रयोग बहुत कम करते हैं। वित्त विधेयकों पर संघीय परिषद् का पूर्ण नियन्त्रण रहता है। साधारण सदस्यों को विधेयक प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं है। इसके अतिरिक्त जब कभी संघीय परिषद् आवश्यक समझती है कि प्रशासनिक कर्त्तव्यों के निर्वहन के लिए किसी कानून का निर्माण करना आवश्यक है तो वह अपने कर्मचारियों की सहायता से विधेयक का प्रारूप तैयार करती है और उसे अपने विचारों के प्रतिवेदन के साथ संघीय सभा के दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत कर देती है। संघीय सभा के किसी भी सदन द्वारा विधेयक प्रस्तावित करने का केवल यह अर्थ है कि जब कोई विधेयक किसी सदन में अस्वीकार हो जाता है तब दूसरा सदन उस पर विचार करता है। उसे किसी औपचारिक विधि से प्रेषित या प्रस्तावित करने की आवश्यकता नहीं होती।

किसी भी प्रकार प्रस्तुत किए गए किसी विधेयक के विषय में यदि संघीय सभा का यह मत होता है कि इस विषय में किसी अन्य प्रकार के विधेयक की आवश्यकता है, तो वह उस पर विचार प्रारम्भ न कर संघीय परिषद् से कार्यवाही करने के लिए कहती है। संघीय सभा ऐसा दो विधियों द्वारा करती है—(i) प्रस्ताव (Motion) की विधि द्वारा एवं (ii) सुझाव (Postulate) की विधि द्वारा। प्रस्ताव (Motion) एक प्रकार का आदेश है जो संघीय सभा की ओर से संघीय परिषद् को दिया जाता है। इस प्रकार का आदेश संघीय सभा के दोनों सदन ही मिलाकर दे सकते हैं, अतः 'प्रस्ताव' के द्वारा संघीय परिषद् को आदेश नहीं दिया जाता बल्कि उसे विधेयक पर पुनः विचार करने के लिए आमन्त्रित किया जाता है। 'सुझाव', 'प्रस्ताव' से कम महत्वपूर्ण होता है और उसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह सदनों की ओर से दिया जाए। प्रस्ताव या सुझाव प्राप्त होने पर संघीय परिषद् सम्बन्धित विधेयक पर संघीय सभा के सुझावों के आधार पर पुनर्विचार करके विधेयक के प्रारूप को अपने प्रतिवेदन सहित पुनः सभा के समक्ष प्रस्तुत करता है। संघीय परिषद् यह मत प्रकट कर सकती है कि विधेयक को अस्वीकार कर दिया जाए।

यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि संघीय सभा द्वारा प्रेरित 'प्रस्ताव' व 'सुझाव' का बहुत महत्व होता है और सामान्यतः संघीय परिषद् उनका पालन भी करती है तथापि उसके लिए यह अनिवार्य नहीं है कि उन पर कार्यवाही करे ही। 'प्रस्ताव' पर यदि दो वर्ष तक कोई विचार न हो अथवा यदि संघीय परिषद् 4 वर्ष तक उसका कोई उत्तर न दे तो यह 'प्रस्ताव' समाप्त समझा जाता है। 'सुझाव' की अवधि तो और भी छोटी है। यदि संघीय परिषद् कोई कार्यवाही न करे तो वह समाप्त हो जाता है।

संघीय सभा द्वारा विचार (Consideration by Federation Assembly)

कार्य विभाजन (Division of Work)—विधेयक का दूसरा स्तर संघीय सभा द्वारा उस पर विचार करना है। सभा के दोनों ही सदन कभी विधेयकों पर विचार करते हैं, अतः संघीय परिषद् सभी विधेयकों एवं सन्देशों की प्रतियाँ दोनों के अध्यक्षों को देती है जो परस्पर मिलकर यह निर्णय करते हैं कि कौनसा सदन किस विधेयक पर पहले विचार करेगा। उन विधेयकों को छोड़कर जिन्हें संघीय परिषद् ने 'आवश्यक' घोषित कर दिया हो, सभी विधेयकों का कार्य-विभाजन दोनों सदनों द्वारा स्वीकार किया जाना आवश्यक है। यदि इस सम्बन्ध में दोनों में मतभेद हो तो लॉटरी निर्णय कर लिया जाता है। 'आवश्यक' (Urgent) विधेयकों पर 'प्रथम विचार' सम्बन्धी दोनो सदनों के अध्यक्षों के बीच हुए निर्णय के लिए सदनों की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं पड़ती।

समिति स्तर (Committee Stage)—विधेयक के सदन में प्रेषित होने पर उसके सिद्धान्तों पर विचार किया जाता है और यदि सदन उनसे सहमत होता है तो उसे उचित समिति के पास विचारार्थ भेज दिया जाता है। स्विट्जरलैण्ड की समितियाँ अपना अधिकांश कार्य उस समय करती हैं जो सदनों की बैठकों के सत्रों के बीच में खाली रहता है। समितियाँ अपनी बैठकें केवल राजधानी में नहीं करतीं वरन् देश के विभिन्न नगरों में भी करती हैं। समितियाँ स्थायी और अस्थायी दोनों ही प्रकार की होती हैं तथा सभी विधेयक उनके समक्ष भेजे जाते हैं। समितियों में संसद् में राजनीतिक दलों की संख्या के अनुपात में उन्हें स्थान दिया जाता है।

स्विट्जरलैण्ड में समितियाँ विधेयकों पर निष्पक्ष और विस्तृत रूप में विचार करती हैं। वे साधारणतः विधेयकों के सार को नहीं बदलती हैं, पर उनमें अनेक संशोधन करती हैं। आवश्यक विचार करने के उपरान्त समिति अपना प्रतिवेदन सदन को प्रस्तुत करती

है। यदि समितियों के सदस्यों में गम्भीर मतभेद होता है तो बहुमत से प्रतिवेदन के साथ अल्पमत के प्रतिवेदन भी प्रस्तुत किए जाते हैं।

प्रतिवेदन एवं स्वीकृति (Report and Passing of the Bill)—समितियों के प्रतिवेदन के साथ विधेयक पुनः सदनों में प्रस्तुत होता है। विधेयक पर 'विचार करने के लिए' (Entering upon the Matter) प्रस्ताव रखा जाता है और तदुपरान्त उसके प्रत्येक अनुच्छेद पर विस्तृत वाद-विवाद (Article by Article Debate) होता है। प्रत्येक सदन में विधेयकों पर तीन प्रमुख भागों में विचार होता है—(i) पहले सदन यह निश्चय करता है कि विचार के लिए किस विधेयक को प्राथमिकता दी जाए। (ii) इस निश्चय के उपरान्त सदन विधेयक पर धारा-प्रति-धारा (Article by Article) विचार करता है एवं तत्पश्चात् विधेयक पर एक साथ मत लिया जाता है। (iii) यदि मतदान के परिणामस्वरूप विधेयक स्वीकार हो जाता है तो उसे दूसरे सदन में विचारार्थ भेज दिया जाता है, जहाँ उपर्युक्त प्रक्रिया पुनः दोहराई जाती है। अत्यावश्यक परिस्थितियों में विधेयक के भागों पर दोनों सदनों में साथ-साथ विचार हो सकता है और एक सदन द्वारा स्वीकार किये जाने पर विधेयक के भागों को दूसरे सदन में विचारार्थ भेज दिया जाता है।

मतभेद दूर करना (Removing Disputes)

यदि किसी विधेयक के सम्बन्ध में दोनों सदनों में मतभेद उत्पन्न हो जाये या सदन उसे अस्वीकृत कर देता है या विधेयक में ऐसे संशोधन प्रस्तुत करता है जो दूसरे सदन को स्वीकार नहीं है, तो ऐसी स्थिति में दोनों सदनों में प्रतिनिधियों की एक मध्यस्थ समिति (Arbitration Committee) की नियुक्ति की जाती है। इस समिति में दोनों सदनों के सदस्य समान संख्या में होते हैं। संयुक्त समिति विधेयक पर विचार करके कोई समझौता करने की कोशिश करती है। यदि वह कोई समझौता कर सकने में असमर्थ रहती है तो विधेयक को संघीय सभा द्वारा अस्वीकार किया हुआ समझा जाता है, परन्तु यदि कोई समझौता हो जाता है तो उस पर दोनों सदन विचार करते हैं। यदि दोनों सदनों को वह समझौता स्वीकार नहीं होता तो भी विधेयक रद्द समझा जाता है, परन्तु ऐसा प्रायः बहुत कम होता है।

विधेयक का प्रकाशन (Publication of the Bill)

जब कोई विधेयक संघीय सभा के दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत हो जाता है तो संघ की चांसलरी द्वारा उसका प्रारूप तैयार किया जाता है, जिस पर दोनों सदनों के अध्यक्षों और सचिवों के हस्ताक्षर होते हैं। हस्ताक्षर होने के उपरान्त विधेयक कानून बन जाता है और उसे संघीय-परिषद् के पास प्रकाशन एवं क्रियान्वयन के लिए भेज दिया जाता है। जनमत-संग्रह द्वारा उसका विरोध न किए जाने पर कानून की दी हुई तिथि के बाद यदि ऐसी कोई तिथि दी गई हो, अन्यथा प्रकाशन के पाँच दिन बाद लागू हो जाता है। यह ध्यान में रखने की बात है कि वित्तीय विधेयकों पर जनमत संग्रह की माँग नहीं की जा सकती। साधारण कानूनों पर तीन मास तक 30 हजार मतदाता जनमत की माँग कर सकते हैं। यदि जनमत संग्रह में किसी कानून को मतदाताओं का बहुमत प्राप्त न हो तो वह कानून रद्द हो जाता है, परन्तु वित्तीय विधेयक इस व्यवस्था से मुक्त है।

सारांशतः स्विट्ज़रलैण्ड में कानून-निर्माण क्रिया में संघीय सभा तथा जनता की अहम भूमिका है।

स्विट्जरलैण्ड की कार्यपालिका : संघीय परिषद्

(The Swiss Executive : Federal Council)

स्विट्जरलैण्ड की कार्यपालिका को सघीय (Federal) परिषद् कहा जाता है। यह विश्व की शासकीय संस्थाओं में सबसे अनोखी है।[1] इसे बहुल कार्यपालिका (Plural Executive) की भी संज्ञा दी जाती है। इसमें अध्यक्षात्मक और मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था के गुण विद्यमान है। यह एक अनूठी संस्था है, जो न तो सघीय सभा का पथ-प्रदर्शन करती है और न ही उसके द्वारा पदच्युत की जा सकती है। साथ ही यह सघीय सभा से स्वतन्त्र भी नहीं है। इसका निर्वाचन किसी राजनीतिक दल विशेष के कार्यक्रम को पूरा करने के लिए नहीं किया जाता। इसे किसी दल की नीति निर्धारित नहीं करनी पडती, लेकिन फिर भी इस पर दलीय प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है।

बहुल कार्यपालिका का अर्थ

(Meaning of Plural Executive)

स्विट्जरलैण्ड में कार्यपालिका की शक्तियाँ सात सदस्यों की एक संघीय परिषद् को प्रदान की गई है और इन सातों सदस्यों की शक्तियाँ समान हैं। इसीलिए इसे 'बहुल कार्यपालिका' कहा जाता है। इस कार्यपालिका का अध्यक्ष भी इसके 7 सदस्यों में से क्रमशः बनता रहता है, किन्तु उसकी शक्ति भी अन्य सदस्यों के समान होती है। यह प्रजातन्त्रीय भावना का अन्यतम उदाहरण प्रस्तुत करती है। ब्राइस के शब्दों में—"यह एक ऐसी संस्था है, जिसका अध्ययन करना अन्य सभी संस्थाओं से महत्वपूर्ण है।"[2]

संघीय परिषद् का संगठन

(Composition of the Federal Council)

सदस्य संख्या (Membership)—जहाँ ससार के सभी देशों की कार्य-पालिका सम्राट में या राष्ट्रपति में निहित होती है, वहाँ स्विट्जरलैण्ड की कार्यपालिका-शक्ति सात सदस्यों वाली परिषद् में निहित है। इस तरह से इसमें 7 सदस्य होते हैं।

चुनाव एवं कार्यकाल (Term & Period)—परिषद् के सातों सदस्यों का चुनाव सघीय-सभा द्वारा होता है। चुन लिए जाने के बाद इन सदस्यों को सघीय-सभा की सदस्यता त्याग देनी पड़ती है। चुनाव के सम्बन्ध में कतिपय परम्परायें अग्रांकित हैं—

1. *C.F Strong* : Op cit., p 241.
2. *Bryce* : Modern Democracies.

(1) परिषद् में एक कैण्टन से सिर्फ एक व्यक्ति ही निर्वाचित हो सकता है।

(2) ऐसे लोग जो रक्त या वैवाहिक सम्बन्ध से प्रत्यक्ष-परम्परा में कहीं तक भी तथा अप्रत्यक्ष परम्परा में चौथी पीढ़ी तक परस्पर सम्बन्धित हों, जिन्होंने बहिनों से विवाह कर लिया हो तथा जो गोद रखे जाने के कारण परस्पर सम्बन्धित हों, एक समय पर परिषद् के सदस्य नहीं हो सकते।

(3) एक अभिसमय (Convention) के अनुसार दो सबसे बड़े और प्रमुख कैण्टन—बैरन तथा ज्युरिच का सदैव ही परिषद् में प्रतिनिधित्व रहता है। यह विशेषाधिकार सबसे बड़े फ्रेंच भाषा-भाषी कैण्टन वॉड (Vaud) को भी प्राप्त है।

(4) एक अन्य अभिसमय द्वारा परिषद् के संगठन को व्यापक प्रतिनिधित्व दिया गया है, जैसे—प्रमुख धर्मावलम्बियों, भाषा-भाषियों तथा राजनीतिक दलों को समुचित प्रतिनिधित्व दिया जाता है। मैसन का कथन है कि "इस प्रकार क्षेत्रीय एव भाषायी संतोषजनक वितरण का आश्वासन दिया गया है।"[1]

(5) वस्तुतः यह विचित्र बात है कि प्रत्यक्ष लोकतन्त्र के घर स्विट्जरलैण्ड में भी कार्यपालिका को लोग प्रत्यक्ष रूप से नहीं चुनते किन्तु इसके दो विशेष कारण हैं : (i) स्विस ससद् के सदस्य जनता के इतने निकटतम सम्पर्क में रहते हैं कि उनके द्वारा किए गए निर्वाचन वास्तव में जनता द्वारा दिए हुए निर्वाचन ही होते हैं। (ii) प्रत्यक्ष निर्वाचन के फलस्वरूप दलीय विवादों और संघर्षों से स्विस जनता बचना चाहती है।

संघीय-परिषद् का कार्यकाल संघीय सभा के समान ही है अर्थात् चार वर्ष। यदि अवधि से पूर्व राष्ट्रीय परिषद् विघटित कर दी जाती है तो संघीय-परिषद् भी विघटित हो जाती है और नई संघीय-परिषद् के नए चुनाव के बाद चुन ली जाती है। यदि परिषद् का कोई स्थान पदावधि से पहले रिक्त हो जाता है तो संघीय-सभा अपनी अगली बैठक में पदावधि के शेष समय के लिए उसकी पूर्ति कर लेती है।

परिषद् के सदस्यों के बार-बार चुने जाने पर कोई संवैधानिक प्रतिबन्ध नहीं है। यही कारण है कि कुछ सदस्य तो 25 से 30 वर्ष तक बने रहते हैं। योग्य सदस्यों के कारण ही यह परिषद् एक शक्तिशाली और आदरणीय कार्यपालिका के रूप में उभरी है।

सदस्यों की योग्यताएँ, वेतन एवं उन्मुक्तियाँ (Qualifications of Members, Salary and Immunities)—संविधान की धारा 96 के अनुसार, "संघीय परिषद् के सदस्य उन सभी स्विस नागरिकों में से चुने जाते हैं जो राष्ट्रीय सभा की सदस्यता की योग्यता रखते हैं।" धारा 97 यह प्रतिबन्ध लगाती है कि परिषद् के सदस्य संघ या कैण्टन के अन्तर्गत न तो कोई अन्य पद-ग्रहण कर सकते हैं और न कोई अन्य व्यवसाय ही कर सकते हैं। सदस्यों को संघीय निधि से 80 हजार फ्रेंक वार्षिक वेतन मिलता है। परिषद् के अध्यक्ष को अन्य सदस्य से 10 हजार फ्रेंक अधिक मिलते हैं। 55 वर्ष की आयु के सदस्यों को पेंशन दे दी जाती है बशर्ते कि वे 10 वर्षों तक सदस्य रह चुके हों। पेंशन वेतन का लगभग 40 से 60 प्रतिशत होती है। स्विस संघीय परिषद् के सदस्यों का वेतन अन्य देशों के मन्त्रियों से तुलनात्मक रूप से बहुत कम है और वे प्रायः बहुत

1 *Mason, J. B* : Switzerland in Foreign Govts. p. 373.

सादगी से रहते हैं। परिषद् के सदस्यों को लगभग वे ही विशेषाधिकार और उन्मुक्तियाँ प्राप्त हैं जो संघीय सभा के सदस्यों को प्राप्त हैं।

कार्य-प्रणाली (Working-Procedure)—साधारणतया परिषद् की बैठकें सप्ताह में दो बार होती हैं। कार्यवाही गुप्त रहती है। गणपूर्ति के लिए चार सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक है निर्णय बहुमत से होता है। अध्यक्ष को निर्णायक मत देने का अधिकार है। संघीय चांसलर (Federal Chancellor), जो व्यवस्थापिका तथा संघीय परिषद् के कार्यालय का अध्यक्ष होता है, परिषद् के सचिव के रूप में परिषद् की बैठकों में उपस्थित रहता है। चाँसलर की अनुपस्थिति में कोई उप-चासलर भी उसके कार्यों को कर सकता है।

अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष (President and Vice-President)—संघीय परिषद् अपने सदस्यों में से ही प्रतिवर्ष अपने अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का निर्वाचन करती है जिन्हें संघ का राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति कहा जाता है। दोनों ही पदों के लिए व्यक्ति दुबारा निर्वाचित किये जा सकते हैं, किन्तु उनका निर्वाचन लगातार दो बार नहीं हो सकता। यही कारण है कि लगातार दो वर्ष नहीं, लेकिन अनेक बार लोगों ने इन पदों पर कार्य किया है। उदाहरणार्थ, फिलिप इटर 1939, 1942, 1947 और 1953 में परिषद के अध्यक्ष रहे। उपाध्यक्ष पद पर कार्य करने वाला व्यक्ति अध्यक्ष चुना जा सकता है। आजकल की परम्परा के अनुसार उपाध्यक्ष अर्थात् उप-राष्ट्रपति का निर्वाचन वरिष्ठता के सिद्धांत (Seniority System) के आधार पर परिषद् के सदस्यों में से होता है। अध्यक्ष या राष्ट्रपति को परिषद् के अन्य सदस्यों के समान ही वेतन मिलता है, केवल 10 हजार फ्रेंक अतिरिक्त भत्ते के रूप में दिए जाते हैं।

संघीय परिषद् के अध्यक्ष की स्थिति न तो अमेरिकी राष्ट्रपति जैसी होती है और न ब्रिटिश प्रधानमंत्री के समान। उसे कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होते। अपने साथियों के समान वह भी एक विभाग का अध्यक्ष होता है। अध्यक्ष की शक्तियाँ बहुत ही कम हैं। देश के प्रशासन के लिए अन्य सदस्यों की अपेक्षा किसी भी प्रकार वह अधिक उत्तरदायी नहीं है। समस्त निर्णय संघीय परिषद् की एकल सत्ता (Single Authority) के रूप में करती है। अध्यक्ष न किसी अधिकारी की नियुक्ति करता है और न कोई सन्धि-वार्ता आदि ही कर सकता है। किसी विधेयक पर उसे निषेधात्मक अधिकार भी नहीं है। उसकी शक्ति इतनी ही है कि वह संघ की सभाओं का सभापतित्व करता है, विभिन्न विभागों द्वारा भेजी गई रिपोर्टों को देखता है, विभिन्न प्रशासकीय विभागों के कार्य का सामान्य निरीक्षण करता है और किसी मामले पर समान मत होने पर अपना निर्णायक मत (Casting Vote) देता है। उसकी स्थिति वास्तव में एक प्रतीकात्मक या नाममात्र के प्रधान की-सी है। वह सार्वजनिक उत्सवों पर स्विस-प्रजातन्त्र का प्रतिनिधित्व करता है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यही कहा जा सकता है कि स्विस राष्ट्रपति की स्थिति विश्व के अन्य राष्ट्राध्यक्षों की तुलना में अलग तरह की है। संघीय परिषद् के अध्यक्ष या संघ के राष्ट्रपति की स्थिति के बारे में लोवेल के निम्नलिखित शब्द उल्लेखनीय हैं कि "वह साररूप में राष्ट्र की कार्यपालिका समिति के अध्यक्ष की हैसियत से यह जानने का प्रयत्न करता है कि उसके साथी क्या कर रहे हैं? वह राज्य के

नाममात्र के अध्यक्ष के औपचारिक कर्त्तव्यों को पूरा करता है।"[1] इतना होने पर भी अध्यक्ष-पद प्रत्येक राजनीतिज्ञ के लिए सर्वोच पद है और इसे जन-सेवा का सर्वोच्च पुरस्कार समझा जाता है। उसे स्विट्जरलैण्ड में अत्यन्त सम्मानित व्यक्ति माना जाता है। इसके बावजूद अनेक विचारकों का मत है कि स्विट्जरलैण्ड में न तो राष्ट्रपति नाम से कोई संस्था है और न ही उसका कोई विशेष महत्व है। हैंस हूबर का कहना है कि "स्विट्जरलैण्ड में राज्यमण्डल (Confederation) का कोई अध्यक्ष नहीं है।"[2] रेपार्ड के शब्दों में "राष्ट्रपति पद का कोई राष्ट्रीय महत्व नहीं है। उसका न तो कोई विशेष अधिकार है और न कोई विशेष प्रभाव ही है।"[3] सारांश में, स्विटजरलैण्ड में संघीय परिषद् के अध्यक्ष को संघ के औपचारिक प्रधान की सी स्थिति प्राप्त होने पर भी उसे बड़ी प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त है।

प्रशासकीय विभागों का वितरण (Distribution of Administrative Departments)—स्विस प्रशासन के सभी कार्यों को सात विभागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रत्येक विभाग एक संघीय परिषद् के सदस्य के अधीन होता है जो उसके कार्य-संचालन के लिए सम्पूर्ण परिषद् के प्रति उत्तरदायी होता है। विभागों का वितरण औपचारिक रूप से परिषद् द्वारा किया जाता है, किन्तु व्यवहार में निर्वाचन के समय ही यह स्पष्ट हो जाता है कि कौनसा सदस्य किस विभाग को सम्भालेगा। एक विभाग के प्रमुख की अनुपस्थिति में कार्य करने के लिए प्रत्येक विभाग का प्रमुख दूसरे विभाग का उप-प्रमुख होता है।

परम्परा के अनुसार परिषद् के सदस्य पुनः निर्वाचित हो सकते हैं और उन्हें पहले वाले विभाग ही सौंप दिए जाते हैं। इसके फलस्वरूप विभागों के मंत्री नौसिखिए नहीं रहते वरन् उनमें से अधिकांश अपने-अपने विभाग के विशेषज्ञ बन जाते हैं। वर्तमान में स्विट्जरलैण्ड के प्रशासनिक विभाग ये हैं—राजनीतिक विभाग, गृह विभाग, सैनिक विभाग, न्याय एवं पुलिस विभाग, वित्त एवं प्रशुल्क विभाग सार्वजनिक अर्थ विभाग, तथा डाक और रेल विभाग। इस प्रकार स्विस संघीय परिषद् के सदस्य प्रशासन का संचालन करने में महती भूमिका का निर्वाह करते हैं।

संघीय परिषद् के अधिकार एवं कर्त्तव्य या भूमिका

(Powers and Functions or Role of the Federal Council)

अथवा

बहुल कार्यपालिका की कार्य-पद्धति

(Working of Plural Executive)

स्विस राजनीतिक व्यवस्था में संघीय परिषद् की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसे व्यापक शक्तियाँ तथा अधिकार प्राप्त हैं, जिसे अग्रानुसार विश्लेषित किया जा सकता है—

---

1. *Lowell* Govt. and Parties in Continental Europe.
2. *Hans Huber*, The Federal Constitution of Switzerland.
3. *Reppard, W.E.* - The Govt. of Switzerland.

प्रशासकीय अधिकार एवं कर्त्तव्य
(Administrative Powers and Duties)

संघीय परिषद् स्विस संघ की सर्वोच्च कार्यपालिका सत्ता है और इसे संघीय आज्ञाओं तथा कानूनों के अनुसार सम्पूर्ण संघ के प्रशासन का नियंत्रण करने का अधिकार प्राप्त है। यह देखती है कि संघीय कानूनों का पालन हो रहा है अथवा नहीं। इसके लिए यह आवश्यक कार्यवाही करती है। प्रशासनिक क्षेत्र में संघीय परिषद् का मुख्य कर्त्तव्य है कि वह संघ में शान्ति-व्यवस्था का उचित प्रबन्ध करे, बाह्य आक्रमणों एवं आन्तरिक उपद्रवों से देश की रक्षा करे तथा स्विट्जरलैण्ड की स्वतन्त्रता और तटस्थता की सुरक्षा करे। यथार्थ में आन्तरिक शांति और सुरक्षा की व्यवस्था कैण्टनों का उत्तरदायित्व है, लेकिन यदि आन्तरिक अव्यवस्था हो जाए तो संघीय-सभा निर्णय करती है कि क्या कार्यवाही की जाए और संघीय परिषद् उसकी आज्ञाओं को क्रियान्वित करती है।

आपातकाल की स्थिति में यदि संघीय सभा का सत्रावसान हो गया हो तो संघीय परिषद् को अधिकार है कि वह शांति एवं व्यवस्था की स्थापना के लिए सेनाओं का प्रयोग करे। किन्तु परिषद् के लिए यह आवश्यक है कि यदि उपर्युक्त कार्य में दो हजार से अधिक सैनिकों की आवश्यकता हो अथवा उन सैनिकों को तीन सप्ताहों से अधिक युद्धरत रहना हो, तो तुरत वह संघीय सभा का सत्र (Session) बुलाये।

संघीय सभा (Federal Assembly) के कानूनों और अधिनियमों, संघीय न्यायालय के निर्णयों तथा विभिन्न कैण्टनों के पारस्परिक विवादों के समाधान के लिए किए गए समझौतों और मध्यस्थता को लागू कराने की व्यवस्था भी संघीय परिषद् करती है। वही संघीय प्रशासन के सब अधिकारियों एवं कर्मचारियों के व्यवहार एवं कार्य का निर्धारण करती है। जिन पदों पर संघीय-सभा, क्षेत्रीय न्यायालय अथवा अन्य किसी संघीय प्राधिकारी को नियुक्ति का अधिकार न दिया गया हो, उन पर संघीय-परिषद् की नियुक्ति करती है। व्यवहार में संघीय-परिषद् अपने नियुक्ति सम्बन्धी अधिकारों को प्रशासन के विभिन्न विभागों को प्रत्यायोजित कर देती है और विभिन्न निगमों एवं अन्य स्वतन्त्र-सत्ताओं अथवा निकायों को सौंप देती है।

स्विट्जरलैण्ड के वैदेशिक सम्बन्धों के नियमों और उनके क्रियान्वयन का अधिकार भी संघीय-परिषद् को ही दिया गया है। संघीय परिषद् ही उन विभिन्न संधियों का परीक्षण करती है जो कैंटन आपस में अथवा विदेशों के साथ करते हैं, अन्यथा संघीय-परिषद् अवाचनीय सन्धि या सन्धियों के विरुद्ध संघीय-सभा में अपील करता है और उन्हें निरस्त करने की सिफारिश करती है।

संघीय-परिषद् अपने समस्त कार्यकलापों की रिपोर्ट संघीय सभा के समक्ष प्रत्येक साधारण सत्र में प्रस्तुत करती है, देश की आन्तरिक स्थिति के बारे में प्रतिवेदन पेश करती है और संघ के विदेशों के साथ सम्बन्धों के बारे में आवश्यक प्रकाश डालती है। परिषद् संघीय-सभा के विचारार्थ ऐसे प्रस्ताव अथवा विधेयक भी प्रस्तुत करती है जो उसके मतानुसार सर्व-साधारण के कल्याण की दृष्टि से लाभदायक एवं आवश्यक हों।

यदि कभी संघीय-सभा या उसका कोई सदन विशेष जानकारी प्राप्त करना चाहता है तो संघीय-परिषद् आवश्यक प्रतिवेदन भेजती है। संघीय-परिषद् के नियंत्रण में संघीय सेना और उसके प्रशासन की शाखाएँ भी रहती हैं जिन पर संघ का नियंत्रण है।

संघीय-परिषद् कैंटनों द्वारा पारित सभी कानूनों और उनके सभी अध्यादेशों का भी परीक्षण करती है। कैंटनों के लिए यह आवश्यक है कि वे अपने सभी कानूनों और अध्यादेशों को संघीय परिषद् से स्वीकृति करवाएँ। साथ ही संघीय परिषद् कैंटनों के उस प्रशासन व शाखाओं पर भी नियंत्रण रखती है जिनका नियंत्रण परिषद् के अधिकार-क्षेत्र में हो। संघीय सभा की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत कैंटन-संविधान में संशोधन के प्रस्तावों की संघीय परिषद् जाँच करती है और विधानमण्डल में तत्सम्बन्धी प्रस्ताव प्रस्तुत करती है। किसी भी कैंटन में उपद्रव अथवा अशान्ति की स्थिति में संघीय परिषद् ही संघीय हस्तक्षेप का निश्चय करती है और संघीय सभा का अनुमोदन प्राप्त कर आवश्यक कार्यवाही करती है।

विधायी अधिकार एवं कर्त्तव्य (Legislative Powers & Duties)

विधि-निर्माण में भी परिषद् की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। संविधान की धारा 102 के अनुसार उसे अधिकार है कि वह कानूनों के विधेयक संसद् में प्रस्तुत करे। वस्तुत. लगभग 95 प्रतिशत विधेयक संघीय परिषद् द्वारा ही प्रस्तुत किए जाते हैं। सदस्यों के अपने विधेयक भी प्राय पहले परिषद् के पास आवश्यक सुधार और सुझावों के लिए भेजे जाते हैं और तत्पश्चात् उन पर संसद् विचार करती है।

संघीय परिषद् को अध्यादेश जारी करने एवं प्रदत्त व्यवस्थापन (Delegated Legislation) की प्रणाली के अन्तर्गत नियम बनाने का भी अधिकार है। परिषद् के अध्यादेशों एवं प्रदत्त व्यवस्था-व्यवस्थापन के अन्तर्गत बनाए गए नियमों का प्रभाव कानूनों के समान ही होता है और न्यायालयों द्वारा उन्हें मान्यता दी जाती है। अध्यादेशों के विषय में किसी भी प्रकार के जनमत-संग्रह (Referendum) की व्यवस्था नहीं है जबकि कानूनों के विषय में ऐसा है। अध्यादेश जारी करने की यह शक्ति संघीय परिषद् की स्थिति और उसके महत्त्व को बड़ा सम्बल प्रदान करती है।

संघीय परिषद् के सदस्य विधान-मण्डल की बैठकों में उपस्थित हो सकते हैं। वे अपने विचार, मत और सुझाव प्रस्तुत कर सकते हैं, तथा विचाराधीन विषय पर प्रस्ताव रख सकते हैं। परिषद् के सदस्य संघीय सभा के वाद-विवादों में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं और संघीय सभा भी उनके विचारों, मतों तथा वाद-विवादों को बड़े ध्यान से सुनती है और उन्हें ग्रहण करती है। संघीय सभा की समितियों में भी संघीय परिषद् के सदस्यों का स्थान व प्रभाव महत्त्वपूर्ण होता है। समितियों के प्रतिवेदन तैयार करने में समितियाँ मंत्रियों अर्थात् परिषद् के सदस्यों के विशेष ज्ञान एवं अनुभव की सहायता लेती हैं।

वित्तीय अधिकार एवं कर्त्तव्य (Financial Powers & Duties)

वित्तीय क्षेत्र में भी संघीय परिषद् को पर्याप्त शक्तियाँ प्राप्त हैं। संघीय बजट इसी के द्वारा तैयार किया जाकर संघीय सभा के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। इसी के द्वारा

इसको सभा से स्वीकृत भी कराया जाता है। यह संघीय आय-व्यय की देखभाल करती है और राजस्व संग्रह करती है। वित्तीय व्यवस्था की सुचारुता और सुप्रबन्ध के लिए संघीय परिषद् उत्तरदायी होती है। आय-व्यय का समुचित हिसाब रखने का उत्तरदायित्व भी इसी पर ही है।

न्यायिक अधिकार एवं कर्त्तव्य (Judicial Powers & Duties)

संघीय परिषद् को कुछ न्यायिक अधिकार भी प्राप्त हैं। वह कुछ विशेष प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों और संविधान की कुछ धाराओं के अन्तर्गत उत्पन्न विवादों के सम्बन्ध में की गई अपीलों पर निर्णय देती है। संघीय रेलवे प्रशासन एवं विभिन्न प्रशासकीय विभागों के निर्णयों के विरुद्ध की गई अपीलों की भी सुनवाई करती है। इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि संघीय-परिषद् अंतिम अपीलीय न्यायालय नहीं है, इसके निर्णय के विरूद्ध अपील संघीय न्यायालय तथा संघीय सभा में की जा सकती है। क्षमादान (Pardon) का अधिकार अन्य देशों में प्रायः कार्यपालिका को प्राप्त होता है, परन्तु स्विस संघीय परिषद् को यह अधिकार प्राप्त नहीं है।

संकटकालीन अधिकार एवं कर्त्तव्य (Emergency Powers & Duties)

संविधान के अन्तर्गत संघीय परिषद् का कोई संकटकालीन अधिकार प्राप्त नहीं है, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध, आर्थिक-मंदी या ऐसे ही अन्य संकटों के समय संघीय सभा अपने सब अधिकार संघीय परिषद् को सौंप सकती है और ऐसा कई अवसरों पर हो चुका है। उदाहरणार्थ 1849, 1853, 1859 और 1870 में देश की तटस्थता की रक्षार्थ, 1914 तथा 1939 में विश्व युद्ध के समय राष्ट्र की तटस्थता, स्वतन्त्रता एवं आर्थिक हितों की रक्षा के लिए और 1930 में आर्थिक संकट का समाधान करने के लिए संघीय परिषद् को 'पूर्णाधिकार' सौंपे गए थे।

लॉवेल के शब्दों में यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि "संघीय परिषद् को मुख्य शक्ति-स्रोत कहा जा सकता है और निश्चित रूप से यह राष्ट्रीय सरकार का संतुलन चक्र है।"[1] स्विस संघीय परिषद् की उपर्युक्त शक्तियाँ, विश्व के अन्य लोकतान्त्रिक देशों की कार्यपालिकाओं की शक्तियों के अनुरूप ही हैं। संघीय परिषद् देश की कार्यपालिका, व्यवस्थापिका, वित्तीय न्यायिक और आपातकालीन शक्तियों का प्रयोग करती है। इसका देश की संघीय व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

संघीय परिषद् की विशिष्ट विशेषताएँ

(Specific Features of the Federal Council)

संघीय परिषद् की स्थिति विश्व में अनूठी और विशिष्ट है। यह न तो विशुद्ध रूप से ब्रिटिश मन्त्रिमंडल के अनुरूप है और न ही अमेरिका की अध्यक्षात्मक कार्यपालिका के समान है, फिर भी इनमें दोनों के गुण और लक्षण विद्यमान हैं जो अग्रांकित हैं—

1 "The Federal Council may almost be regarded as main spring and is certainly the balance wheel of the National Government."

—*Lowell* : Government and Parties in Continental Europe, Vol. II, p. 205.

(1) बहुल कार्यपालिका (Plural Executive)

स्विस कार्यपालिका एक बहुल कार्यपालिका है। इसकी तुलना मे ब्रिटेन, अमेरिका आदि की कार्यपालिकाएँ एकल (Singular) है। वहाँ कार्यपालिका सम्बन्धी अन्तिम उत्तरदायित्व एक ही व्यक्ति पर अर्थात् प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति पर होता है। संघीय परिषद् एकल कार्यपालिका से इन सबसे अनूठी है क्योंकि कार्यपालिका शक्ति एक व्यक्ति में निहित न होकर व्यक्तियो के एक समूह मे निहित होती है जो सब समानपदी हैं यहाँ तक कि परिषद् का अध्यक्ष भी विशेषाधिकार नही रखता।

रेपार्ड के मतानुसार—"हमारी प्रजातन्त्रीय भावना किसी एक व्यक्ति की अतिशय प्रभुसत्ता के विरुद्ध है।"[1] परिषद् एक मण्डलीय संस्था के समान है जिसके अध्यक्ष की स्थिति, बराबर वालों मे से एक की है। अपने साथियो के चुनाव आदि का उसे कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता।

(2) संसदीय और अध्यक्षात्मक शासन-प्रणालियो का मध्य मार्ग या समन्वय (Integration or Midway or Parliamentary & Presidential Systems of Govt.)

स्विस कार्यपालिका का दूसरा अनूठापन यह है कि वह न तो संसदात्मक है और न अध्यक्षात्मक, वरन् उसमें दोनो पद्धतियों की विशेषताओ का सम्मिश्रण है। इसमे दोनों पद्धतियों के गुणों को अपनाने और अवगुणों से बचने का प्रयत्न किया गया है।[2] वह संसदीय इसलिए है कि—(i) उसके सदस्यों का निर्वाचन व्यवस्थापिका या संघीय सभा द्वारा होता है, (ii) उसके सदस्यों को संघीय सभा की बैठकों मे उपस्थित रहने और विधायकों को प्रस्तुत करने का अधिकार है, (iii) उसके सदस्य ही व्यवस्थापिका से विधेयक पारित करवाते है। स्विस कार्यकारिणी असंसदीय इसलिए है क्योंकि— (i) उसके सदस्य व्यवस्थापिका के सदस्य नहीं होते। कार्यकारिणी के सदस्य चुने जाने के बाद वे व्यवस्थापिका में पदों में पृथक् हो जाते हैं, (ii) उसका कार्यकाल निश्चित है क्योंकि व्यवस्थापिका सभा मे अपनी हार हो जाने पर यह पदच्युत नहीं होती और न ही संघ के प्रधान कार्यपालक को उन्हें अपने पद से अलग करने का अधिकार है।

गार्नर के अनुसार, "स्विस शासन-व्यवस्था अपने आप में एक वर्ग है। यह संसदात्मक व अध्यक्षात्मक दोनों प्रकार के शासन-व्यवस्थाओं से मूलभूत रूप में भिन्न है किन्तु इन दोनों व्यवस्थाओ के लक्षणों का समन्वय है।[3]

(3) उत्तरदायित्व और स्थायित्व का स्वस्थ मिश्रण (Integration of Responsibility and Stability)

स्विस संघीय परिषद में उत्तरदायित्व और स्थायित्व अद्भुत सम्मिश्रण पाया जाता है। संघीय परिषद् संघीय सभा के प्रति इस दृष्टि से उत्तरदायी है कि उसके सदस्य प्रश्नों-प्रति-प्रश्नों पर उत्तर देते हैं और सरकार की नीति का औचित्य सिद्ध करते हैं।

---

1 *Reppard*, Govt. in Switzerland, p. 84

2 "The Swiss Federal Council-combines the merits and excludes the defects of both the parliamentary and the non-parliamentary executive.

3. *Garner* Political Science & Govt., p. 344

सघीय परिषद् पर सघीय सभा का नियन्त्रण भी होता है। वह विशेष सघीय नीति अपनाने और कार्य करने के लिए आदेश दे सकती है और उसको मानना उसके लिए अनिवार्य है लेकिन उत्तरदायित्व केवल यहीं तक सीमित है, क्योकि ब्रिटिश प्रणाली के समान संघीय सभा सघीय परिषद् को पदच्युत नहीं कर सकती। यदि किसी विषय पर सघीय परिषद् के सदस्य हार जाते है तो वे इग्लैण्ड और फ्रास के मन्त्रियो की तरह पद-त्याग नहीं करते। वे अपनी माँग पर अडे न रहकर सघीय सभा के निर्णय को मान लेते है और यह कार्य अत्यन्त सरलता और सद्भाव से कर लिया जाता है। मुनरो ने इस बात को प्रकट करते हुए कहा है कि "सघीय परिषद् विधि-निर्माण कार्य मे पूर्ण सक्रिय रूप से भाग ले परन्तु यदि उसका सुझाव न माना जाए तो वह इसे अपमान न समझे—ऐसी आशा सघीय परिषद् से की जाती है।"

(4) निर्दलीय चरित्र (Non-party Character)

मन्त्रिमण्डलीय शासन में सयुक्त सरकारे (Coalition Government) असाधारण काल में ही सघटित की जाती है, किन्तु संघीय परिषद् में देश के लगभग सभी प्रमुख दलो का प्रतिनिधित्व होता है। परिषद जो कुछ भी करना चाहे वह किसी दल के यन्त्र के रूप मे नहीं करती। उसके सदस्य परिषद् की बैठक में भी और सांसद की बैठकों में भी अपने-अपने मत व्यक्त करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र होते हैं। इतना ही नहीं, आवश्यकता पडने पर वे ससद मे अपने साथी सदस्यों के निर्णयों के विरुद्ध भी बोल सकते हैं। इस प्रकार स्विट्जरलैण्ड में यह एक विचित्र किन्तु आदर्श व्यवस्था है कि सघीय परिषद् में और सघीय सभा में जो कुछ भी होता है वह प्राय: दलबन्दी की सीमा से उठकर होता है और उसका उद्देश्य हितों की पूर्ति करना होता है।

(5) व्यवस्थापिका या संघीय सभा द्वारा निर्वाचन (Elected by Legislature)

जहाँ अमेरिका की कार्यपालिका के मन्त्री राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं और ब्रिटेन में वे राजा द्वारा प्रधानमत्री के परामर्श से नियुक्त किए जाते हैं, वहाँ स्विट्जरलैण्ड में कार्यपालिका के सदस्य व्यवस्थापिका या संघीय सभा द्वारा चुने जाते हैं।

(6) विशेषज्ञों का मन्त्रिमण्डल (Cabinet of Specialists)

स्विस संघीय परिषद् की अंतिम विशेषता यह है कि उसमें मन्त्रिगण प्राय: नौसिखिए नहीं रहते है। सदस्यों के बार-बार निर्वाचन हो जाने के कारण उन्हें लम्बे समय तक राजनीतिक अनुभव और प्रशासनिक योग्यता प्राप्त करने का अवसर मिलता है। इसी कारण उनमें उचित निर्णय और कर्त्तव्य-परायणता आदि विशिष्ट गुण पाए जाते हैं। सघीय सभा संघीय परिषद् से शासन सम्बन्धी सभी विषयों में विचार-विमर्श करती है और प्राय: उसके परामर्श की अवहेलना करने का साहस नहीं करती। जनता को भी यह पूरा विश्वास रहता है कि संघीय परिषद् निरन्तर जनकल्याण में लगी हुई है और स्वार्थपरता तथा दलबन्दी के प्रभाव से ऊपर है। स्विट्जरलैण्ड में ऐसे उदाहरण हैं कि संघीय परिषद् के सदस्य 25 से 30 वर्ष तक पदासीन रहे हैं। स्वाभाविक है कि ऐसे सदस्य अपने विषयों के विशेषज्ञ बन जाते हैं इसीलिए लॉवेल ने कहा है कि "स्विट्जरलैण्ड में परिषद् के सदस्य अपने-अपने विभागों के राजनीतिक अध्यक्ष और प्रमुख उपसचिव दोनों होते हैं।" यह विशेषज्ञ ज्ञान सदस्यों की प्रशासन पर पकड़ को

सम्भव बनाता है। उनका देश के प्रशासन पर पूर्ण नियंत्रण होता है। इससे जनकल्याणकारी गतिविधियों को साकार करने में सहायता मिलती है।

स्विस संघीय परिषद् की कमियाँ
(Shortcomings of Swiss Federal Council)

यद्यपि स्विस परिषद् अपनी विशेषताओं के कारण बहुत ही अनूठी और प्रशंसनीय है तथापि उसमें कुछ दोष भी निहित हैं। संघीय परिषद् के सदस्य न किसी एक नेता के प्रति वफादार होते हैं और न उनमें पारस्परिक एकता की ही भावना होती है। प्रायः ऐसा भी होता है कि संघीय परिषद् के सदस्य शासन की बागडोर अपनी-अपनी ओर खींचते है। इससे प्रशासन पर दुष्प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त संघीय परिषद् में विभिन्न राजनीतिक दलों का प्रतिनिधित्व होने से इनमें एकता और सजायता की भावना नहीं रह पाती है।

संघीय परिषद् का संघीय सभा से सम्बन्ध
(Relation of the Federal Council with the Federal Assembly)

स्विट्जरलैण्ड में संघीय परिषद् का संघीय सभा से सम्बन्ध अन्य देशों की अपेक्षा नितान्त भिन्न है। न तो स्विस संघीय परिषद् अमेरिका की तरह संघीय सभा से पूर्णतया स्वतन्त्र है और न ब्रिटेन की तरह उसका अंग है। स्विट्जरलैण्ड में दोनों देशों के संविधान की अच्छी बातों को ग्रहण किया गया है।

स्विस संघीय परिषद् के सदस्यों का चुनाव वहाँ की संघीय सभा द्वारा प्रायः संघीय सभा के सदस्यों में से ही किया जाता है, किन्तु चुने जाने के बाद उन्हें संघीय सभा की सदस्यता से त्याग-पत्र दे देना होता है। संघीय परिषद् के संघीय सभा द्वारा चुने जाते हैं, किन्तु वे उसके द्वारा हटाए नहीं जा सकते। पदच्युति के सम्बन्ध में उन्हें संघीय सभा से कोई भय नहीं रहता। संघीय परिषद् के सदस्य संघीय सभा के सदस्य न होने पर भी संघीय सभा के अधिवेशनों में भाग लेते हैं, उनमें विधेयक प्रस्तुत करते हैं, विधेयकों को पारित करवाते हैं और सभी योग्यता एवं अनुभव के कारण व्यवस्थापन-कार्य में संघीय सभा का पर्याप्त पथ-प्रदर्शन करते हैं। संघीय सभा को यह अधिकार प्राप्त है कि वह संघीय प्रारूप के कार्यों की आलोचना कर सकती है, उन पर वाद-विवाद कर सकती है, मन्त्रियों से प्रश्न पूछ सकती है और यदि आवश्यक समझे तो उनके किसी भी कार्य या प्रस्ताव को अस्वीकृत कर सकती है। संघीय परिषद् अपने कार्यों के लिए संघीय सभा के सामने उत्तरदायी होती है। यह आवश्यक है कि उसे अपने उन सब कार्यों का विवरण जो संघीय सभा माँगे, साधारणतः संघीय सभा को देना पड़ता है और संघीय सभी द्वारा पूछे गए सब प्रश्नों का उचित उत्तर देना पड़ता है, परन्तु संघीय सभा संघीय परिषद् के कार्यों से असहमति प्रकट करे या संघीय परिषद् की आलोचना करे अथवा उसके किसी भी कार्य को, चाहे वह कितना ही महत्वपूर्ण क्यों न हो, अस्वीकृत कर दे, तो संघीय परिषद् को त्याग-पत्र देने की कोई आवश्यकता नहीं होती। उसके लिए वांछनीय यही है कि वह संघीय सभा की आलोचना से लाभ उठाकर अपने कार्य और अपनी नीति में सुधार करे तथा संघीय सभा द्वारा किए गए "असम्मान को सहन कर ले और संघीय सभा की इच्छा-शक्ति के सम्मुख झुक जाए।" जुर्यर के अनुसार

"स्विस संविधान का यह सिद्धान्त ऐसा प्रतीत होता है कि कार्यपालिका शासन की एक स्वतन्त्र या संयुक्त शाखा न होकर संघीय सभा की दासी है।"[1]

प्रश्न यह उठता है कि उत्तरदायित्व की ऐसी निराली व्यवस्था स्विट्जरलैण्ड में क्यों रखी गई है। डायसी के अनुसार, "इसका मूल कारण स्विस लोगों का प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के प्रति अगाध प्रेम है।"[2] स्विस लोग एक ऐसी व्यवस्था के पक्षपाती हैं जिसमें लोकतन्त्रात्मक मान्यताओं को अधिकाधिक व्यवहार में लाए जाए और प्रशासकीय शक्ति का वास्तविक प्रयोग अधिकाधिक रूप से जनता के हाथों में हो। इसी कारण उन्होंने अनेक बातों के निर्णय के लिए जनमत-संग्रह की व्यवस्था की है और मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व की भी ऐसी व्यवस्था की है जिससे मन्त्रिपरिषद् अर्थात् स्विस कार्यपालिका जनता की प्रतिनिधि संघीय सभा के निर्णयों को कार्यान्वित करने का यन्त्र बनी रहे, ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की भाँति अधिनायक न बन जाए अर्थात् संघीय परिषद् को अधिनायकवादी बनने से रोकने के लिए स्विस संविधान में पर्याप्त नियंत्रण आरोपित किये गये हैं।

संघीय परिषद् और संघीय सभा के सम्बन्धों का अवलोकन करने से यह तथ्य भी सामने आता है कि दोनों का अंतिम और सर्वोपरि लक्ष्य राष्ट्रीय हित है, तथा दोनों इस लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। दोनों ही संस्थाएँ एक दूसरे की पूरक बनकर कार्य करती हैं।

यह निष्कर्ष निकालना भ्रामक होगा कि संघीय परिषद् की स्थिति महत्वहीन है और वह संघीय सभा की सेविका या दासी मात्र है। सांविधानिक दृष्टि से भले ही संघीय परिषद् शासन का एक स्वतन्त्र अथवा सहयोगी अंग न होकर संघीय सभा की सेविका है तथापि वास्तविक स्थिति ठीक इसके विपरीत है। वर्तमान में लगभग सभी देशों में व्यवस्थापिका की शक्ति में ह्रास हो रहा है और कार्यपालिका के अधिकारों में विकास। यह प्रवृत्ति स्विट्जरलैण्ड में भी प्रभावी है। संघीय परिषद् के सदस्य अपने राजनीतिक दल के प्रभावशाली नेता होते हैं और वे वास्तविक रूप से संघीय सभा में जनमत का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे स्थायी रूप से वर्षों तक पदासीन रहने के कारण अनुभवी और कुशल प्रशासक हो जाते हैं। अतः व्यवहार में सम्पूर्ण प्रशासनिक एवं विधायी कार्य इन्हीं के नियंत्रण और मार्ग-दर्शन में चलता है। आज, अन्य देशों की भाँति, स्विट्जरलैण्ड में भी विधायी एवं वित्तीय कार्य संघीय परिषद् के हाथ में चला गया है। संघीय परिषद्, संघीय सभा को 'विधायी प्रारूप बनाने वाला प्रतिष्ठित विभाग' (Glorified Legislative Drafting Bureau) बन गई है। इसके फलस्वरूप संघीय परिषद् संघीय सभा का नियंत्रण शिथिल पड़ता जा रहा है। व्यवहार में परिषद् अपनी इच्छानुसार विधेयक पारित करवा लेती है। प्रशासन का संचालन वह प्रत्यक्ष रूप में स्वयं करती है। संकटकाल में तो उसकी शक्ति प्रायः असीमित हो जाती है। संघीय परिषद् की इसी प्रभावपूर्ण स्थिति की ओर संकेत करते हुए ह्यूज ने कहा है कि आज संघीय परिषद् संघीय सभा की कार्यकारिणी समिति (Executive Committee) न होकर राष्ट्र की कार्यपालिका

1. *Zurcher* : Govt. of Continental Europe, p. 94.
2. *Dicey* : Law of the Constitution.

(National Executive) है। ब्राइस ने ठीक ही कहा है कि "वैधानिक दृष्टि से व्यवस्थापिका की सेविका होते हुए भी व्यवहार में संघीय परिषद् ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के बराबर एवं फ्रांसीसी मन्त्रिमण्डल से अधिक शक्तियों का प्रयोग करती है। वह पथ-प्रदर्शक भी है और साधन भी। बहुधा वह सुझाव भी देती है और मसविदा भी तैयार करती है।"[1] रेपार्ड के शब्दों में, "संघीय सभा से संवैधानिक अधिकारों के होते हुए भी स्पष्ट रूप से नेतृत्व संघीय परिषद् के हाथों में चला गया है।"[2] सारांशतः संघीय परिषद् और संघीय सभा में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। दोनों एक दूसरे की पूरक हैं। संघीय सभा का संघीय परिषद् पर जो नियन्त्रण है, उसे आंशिक ही कहा जाता है।

स्विस संघीय परिषद् की ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल और अमेरिकी कार्यपालिका से तुलना

(The Swiss Federal Executive Compared with the British Cabinet and American Executive)

स्विस संघीय परिषद् के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि वह न तो पूर्णतया ब्रिटिश संसदीय प्रणाली के ही अनुसार है और न अमेरिकी अध्यक्षात्मक प्रणाली के अनुरूप है। उसमें इन दोनों व्यवस्थाओं से मौलिक असमानताएँ विद्यमान हैं, पर साथ ही समानताएँ भी पाई जाती हैं।

संगठन सम्बन्धी तुलना

स्विस संघीय परिषद् ब्रिटिश एवं अमेरिकी मन्त्रिमण्डल से अत्यन्त छोटी होती है और इसके सदस्यों की संख्या भी निश्चित होती है। ब्रिटेन में प्रधानमंत्री अपने सहयोगियों की संख्या स्वयं निर्धारित करता है और अमेरिका का राष्ट्रपति आवश्यकतानुसार अपने मन्त्रिमण्डल के सदस्यों में परिवर्तन कर सकता है, जबकि स्विस कार्यपालिका के अध्यक्ष को ऐसा कोई अधिकार नहीं है। स्विट्जरलैण्ड और ब्रिटेन दोनों देशों में कार्यपालिका के सदस्य संसद् के सदस्यों में से ही लिए जाते हैं तथापि जहाँ ब्रिटेन में सामान्यतः एक ही दल के सदस्य चुने जाते हैं जबकि स्विट्जरलैण्ड में वे विभिन्न दलों के होते हैं। अमेरिका में यह आवश्यक नहीं है कि मन्त्रिगण कांग्रेस में से ही लिए जाएँ। बाहर के ख्याति प्राप्त व्यक्तियों को अमरीकी राष्ट्रपति अपने मन्त्रिमण्डल में शामिल करता है।

कार्यकाल सम्बन्धी तुलना

स्विस संघीय परिषद् की अवधि चार वर्ष होती है। पदच्युति के सम्बन्ध में वह व्यवस्थापिका के प्रति अनुत्तरदायी है। इसके विपरीत ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल संसद् के विश्वास पर झूलता रहता है। अमेरिकी कार्यपालिका भी व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होती, किन्तु मन्त्रिगण पूर्णरूप से राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

उत्तरदायित्व सम्बन्धी तुलना

स्विस संघीय परिषद् ने ब्रिटिश शासन-पद्धति के उत्तरदायित्व को तो ग्रहण किया है परन्तु पद-त्याग के अर्थ में उसको नहीं लिया है। ब्रिटिश संसद की भाँति ही स्विस

1. *Bryce* : Modern Democracies.
2. *Reppard* : Govt. in Switzerland.

संघीय सभा भी संघीय परिषद् पर प्रश्नों, प्रस्तावों, निर्णयों और अन्य आदेशों द्वारा नियन्त्रण रखती है। स्विस संघीय परिषद् के सदस्य संघीय सभा में उपस्थित होते हैं, वाद-विवादों में भाग लेते हैं। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के सामन स्विस मंत्री संघीय सभा द्वारा अविश्वास प्रस्ताव के शिकार नहीं बनते। जहाँ ब्रिटेन में मंत्रिमंडल लोकसदन के विश्वासपर्यन्त पदासीन रह सकता है वहाँ स्विस संघीय परिषद् के सदस्यों को व्यवस्थापिका में किसी विधेयक पर हार हो जाने पर पद-त्याग नहीं करना पड़ता। स्विस संघीय परिषद्, संघीय सभा की इच्छा को सहर्ष स्वीकार कर लेती है। अमेरिकी कार्यपालिका भी काँग्रेस के प्रति अनुत्तरदायी होती है। यह अन्तर अवश्य है कि स्विस संघीय परिषद् के सदस्यों की भाँति अमेरिका में मंत्री अथवा सचिव कांग्रेस में उपस्थित नहीं होते और उसकी किसी कार्यवाही में प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लेते।

कार्यपालिका के अध्यक्ष-पद की तुलना

स्विस संघीय परिषद् के प्रधान की स्थिति 'बराबर वालों में एक' (One in Equals) की है जबकि ब्रिटिश प्रधानमंत्री 'समकक्षों में प्रथम' (First in Equals) होता है और अमेरिकी राष्ट्रपति अपने मन्त्रिमण्डल का 'स्वामी' होता है। स्विस संघीय परिषद् का अध्यक्ष ब्रिटिश प्रधानमंत्री के समान मन्त्रियों का चुनाव नहीं करता और न ही विधानमण्डल का नेतृत्व करता है। इसी प्रकार की गौण-स्थिति अमेरिकी राष्ट्रपति की तुलना में है। अमेरिकी राष्ट्रपति कार्यपालिका-परिवार का प्रमुख होता है। मन्त्रियों का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व राष्ट्रपति के प्रति माना जाता है। स्विट्जरलैण्ड में संघीय परिषद् या कार्यपालिका के अध्यक्ष की स्थिति ऐसी नहीं है। एक बड़ा अन्तर यह है कि अमेरिकी राष्ट्रपति का निर्वाचन वहाँ की जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है जबकि स्विस संघीय परिषद् के अध्यक्ष का निर्वाचन संघीय सभा द्वारा होता है। केवल अध्यक्ष का ही नहीं वरन् संघीय परिषद् के सदस्यों का निर्वाचन संघीय सभा ही करती है। ब्रिटेन में सम्राट या साम्राज्ञी द्वारा लोकसदन के बहुमत के नेता को प्रधानमंत्री पद के लिए आमंत्रित करना होता है और उसके द्वारा प्रस्तावित अन्य व्यक्तियों को मंत्री नियुक्त करना पड़ता है। यदि कोई मंत्री संसद् का सदस्य न हो तो छः माह के अन्तर्गत निर्वाचित होकर उसे सदस्य बनना पड़ता है अन्यथा मन्त्रि-पद से त्याग-पत्र देना पड़ता है।

दलीय सम्बन्धों का अन्तर

स्विस संघीय परिषद् के सदस्यों का निर्वाचन दलीय आधार पर नहीं होता। उसमें सभी दलों के सदस्य होते हैं। वह दलीय भावना से प्रायः प्रेरित नहीं होती है और बहुमत की आवाज की ही नहीं वरन् राष्ट्र और देश की सर्वोत्तम सेविका होती है, किन्तु अमेरिका और ब्रिटेन दोनों ही में कार्यपालिका के सदस्यों का निर्वाचन प्रायः पूर्णतः दलीय आधार पर होता है। वे अपने पदों पर रहते हुए भी अपने दल के पक्ष में कार्य करते हैं।

कार्यपालिका के विभागों की वितरण सम्बन्धी तुलना

स्विट्जरलैण्ड में कार्यपालिका के सात विभाग होते हैं जो संघीय परिषद् के सात सदस्यों में विभाजित होते हैं। विभागों का वितरण औपचारिक रूप से संघीय परिषद् द्वारा किया जाता है और यह परम्परा है कि जो सदस्य पुनः निर्वाचित होते हैं उन्हें प्रायः पहले वाला विभाग ही सौंप दिया जाता है। इस प्रकार कार्यपालिका के सदस्य

अधिकांशतः अपने-अपने विभाग के विशेषज्ञ बन चुके हैं और वे लोक-सेवा के अधिकारियों के हाथ की कठपुतली नहीं रहते।

परन्तु ब्रिटेन और अमेरिका में कार्यपालिका के विभागों का वितरण प्रायः व्यक्त की योग्यता एवं कार्यकुशलता के आधार पर नहीं, बल्कि उसके राजनैतिक महत्व के आधार पर होता है। दूसरा अन्तर यह है कि दोनों देशों में विभाग के वितरण में शासन-प्रमुख की इच्छा को ही प्रायः प्रधानता प्राप्त होती है। स्विट्जरलैण्ड में अध्यक्ष को इस सम्बन्ध में किसी तरह की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है।

स्पष्ट है कि स्विट्जरलैण्ड की संघीय कार्यपालिका अर्थात् संघीय परिषद् न तो ब्रिटेन की और न अमेरिका संघ की कार्यपालिका के समान है। वह वास्तव में दोनों व्यवस्थाओं का सम्मिश्रण है और उसमें दोनों व्यवस्थाओं के गुण और लक्षण निहित हैं, फिर भी वह ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली के अधिक निकट है।

मुनरो के मतानुसार—"स्विट्जरलैण्ड की संघीय परिषद् संसदीय तथा असंसदीय, दोनों प्रकार की कार्यपालिकाओं के गुणों से युक्त तथा दोषों से मुक्त है। बहुल कार्यपालिका होते हुए भी इसमें एकल कार्यपालिका के गुण पाये जाते हैं।"[1]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्विट्जरलैण्ड की संघीय परिषद् ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की तुलना में शक्तिशाली नहीं है, तो अमरीकी मन्त्रिमण्डल से अधिक सक्षम है। संघीय परिषद् की कार्य-प्रणाली पर वहाँ की संघीय सभा तथा जनता का नियन्त्रण है। इसे विश्व की अद्वितीय कार्यपालिका की संज्ञा दी जा सकती है।

कैण्टनों की कार्यपालिका

(The Executive of Cantons)

संघीय कार्यपालिका के समान प्रत्येक कैण्टन में एक सामूहिक या बहुल कार्यपालिका (Collegial Executive) होती है। इस कार्यपालिका को राज्य परिषद् (Council of State) या लघु परिषद् (Small Council) कहते हैं जिसमें प्रायः 5 से 11 तक सदस्य होते हैं। ये सभी सदस्य कैन्टन के विधानमण्डल द्वारा एक वर्ष से पाँच वर्ष तक के लिए निर्वाचित होते हैं। संघ की भाँति कैंटनों में भी पुनर्निर्वाचन की परम्परा का प्रचलन है। संघीय परिषद् (Federal Council) की भाँति ही कैंटनों की कार्यपालिका के भी सभी सदस्यों की स्थिति समान होती है। कार्यपालिका का प्रत्येक सदस्य शासन के किसी विभाग का अध्यक्ष होता है। कार्यपालिका कैंटन के विधान-मण्डल के प्रति पूर्ण रूप से उत्तरदायी होती है। संघीय परिषद् की भाँति उसे अधिकांश कानूनों का प्रारूप तैयार करना होता है, वह उन्हें प्रस्तावित करती है और व्यवस्थापिका का अनुगमन करने के साथ-साथ उसका पथ-प्रदर्शन भी करती है।

सारांश में, यही कहा जा सकता है कि स्विट्जरलैण्ड की लोकतान्त्रिक व्यवस्था में संघीय परिषद् की बहु-आयामी भूमिका है। इसका स्वरूप तथा कार्य-प्रणाली अनूठी है।

---

1 *Munro*, Govts. of Europe.

27

स्विट्जरलैण्ड की संघीय न्यायपालिका

(The Swiss Federal Judiciary)

स्विट्जरलैण्ड में 'संघीय न्यायालय' या फेडरल ट्रिब्यूनल (Federal Tribunal) ही एकमात्र न्यायालय है, जो देश का सर्वोच्च न्यायालय है। संयुक्त राज्य अमेरिका की भाँति स्विट्जरलैण्ड में अधीनस्थ न्यायालय (Subordinate Courts) नहीं हैं। अवश्य ही संघीय न्यायपालिका के संगठन में उन अनेक निम्न न्यायालयों को लिया जा सकता है जो कैंटनों की न्यायपालिकाओं के अंग हैं क्योंकि संघ की ओर से कैंटनों में अपने न्यायालयों की व्यवस्था नहीं है, वरन् कैंटनों के न्यायालय ही संघीय कानूनों को कार्यान्वित करते हैं।

1848 ई. के संविधान द्वारा संघीय न्यायालय अथवा बुन्दसजेरिश्त (Bundesgerisht) की स्थापना की गई और उसने इसे अत्यन्त सीमित अधिकार प्रदान किए थे। बाद में संविधान में कुछ संशोधनों के माध्यम से इसकी शक्ति में भी वृद्धि हो गई।

संघीय शासन के अन्य प्रधान कार्यालय जर्मन-भाषी कैंटबर्न की राजधानी में है, किन्तु संघीय न्यायालय आजकल स्थायी रूप से वॉड (Vaud) नामक फ्रेंच-भाषी कैंटन की राजधानी लासेन (Lausanne) नगर में स्थित है। इनकी बैठक नियमित रूप से होती रहती है।

संघीय न्यायालय

(Federal Tribunal)

संगठन (Organisation)

देश का संविधान संघीय न्यायालय के संगठन के बारे में कोई सख्या निश्चित नहीं करता है। यह अधिकार संघीय सभा (Federal Assembly) को दिया गया है जो अपने दोनों दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में न्यायाधीशों का निर्वाचन करती है। संविधान द्वारा न्यायाधीशों की संख्या निश्चित न होने के परिणामस्वरूप समय के साथ-साथ यह संख्या निरन्तर परिवर्तनशील रही है। 1943 ई. में एक कानून द्वारा इनकी संख्या 9 से बढ़ाकर 26-28 तथा उप-न्यायाधीशों की संख्या 11-13 कर दी गई। वर्तमान में संघीय न्यायालय में 26 न्यायाधीश और 12 वैकल्पिक न्यायाधीश

हैं। उप-न्यायाधीश, न्यायाधीशों की अनुपस्थिति मे उनके पद पर कार्य करते हैं। संघीय सभा संघ-न्यायालय के न्यायाधीशों में से एक अध्यक्ष, तथा एक उपाध्यक्ष का दो वर्षों के लिए। निर्वाचन करती है। न्यायाधीशों का चुनाव इस भाँति होता है कि वे तीनों राष्ट्र-भाषाओं (फ्रेंच, जर्मन एव इटैलियन) का प्रतिनिधित्व कर सकें। ये न्यायाधीश 5 वर्ष के लिए चुने जाते है। न्यायाधीशों के पुन. निर्वाचन पर कोई प्रतिबन्ध न होने से ये निरन्तर निर्वाचित होते जाते हैं, और तब तक अपने पदों पर बने रहते हैं, जब तक कि उनकी आयु 70 वर्ष की न हो जाये। 70 वर्ष की अवस्था में वह अपने पद से त्यागपत्र दे देता है।

न्यायाधीशों को संघीय सभा अथवा संघीय परिषद् की सदस्यता से वंचित रखा जाता है। कोई भी स्विस नागरिक, जो राष्ट्रीय परिषद् (National Council) की सदस्यता की योग्यता रखता हो, न्यायाधीश नियुक्त किया जा सकता है। यह व्यवस्था है कि अपने कार्यकाल में न्यायाधीश संघ अथवा कैंटन के अन्तर्गत कोई पद धारण नहीं कर सकते हैं और न कोई व्यवसाय या नौकरी ही कर सकते हैं, परन्तु उन न्यायाधीशों पर यह प्रतिबन्ध लागू नहीं है, क्योंकि उन्हें कोई वार्षिक वेतन नहीं दिया जाता। केवल जिन दिनों वे कार्य करते हैं, उन्हें प्रतिदिन के हिसाब से कुछ भत्ता दिया जाता है। न्यायाधीशों को वेतन एव अतिरिक्त भत्ते दिये जाते हैं। वैकल्पिक न्यायाधीशों को नियमित वेतन नहीं मिलता बल्कि उनके सेवाकाल के दिनों में दैनिक दर से भत्ता दिया जाता है। न्यायाधीशों को पेंशन दिए जाने की भी व्यवस्था है। न्यायाधीश बनने के बाद भी उसे अपने मूल कैंटन में पूरे नागरिक अधिकार प्राप्त रहते हैं।

संघीय न्यायालय का अपना सचिवालय (Chancellory) होता है जिसके संगठन और कर्मचारियों की नियुक्ति आदि का भार उसी पर है।

कार्य-प्रणाली (Working Procedure)

न्यायालय की अन्तरंग कार्य-प्रणाली निश्चित करने, विविध विभागों का दायित्व तय करने और कार्य करने के लिए नियम आदि का निर्माण करने के लिए पूरे संघीय, न्यायालय की बैठक होती है। इसके अतिरिक्त उन मामलो की सुनवाई भी पूरे संघीय न्यायालय द्वारा होती है जिनके विषय में संघ के किसी कानून अथवा न्यायालय के किसी नियम के अनुसार व्यवस्था कर दी जाती है।

कार्य की सुविधा की दृष्टि से संघीय न्यायालय को निम्नलिखित तीन भागों मे विभक्त किया गया है—

(1) संवैधानिक तथा प्रशासनिक कानून न्यायालय (Constitutional and Administrative Law Court) जिसके अन्तर्गत संविधान एव प्रशासन से सम्बन्धित विषयों के अलग-अलग दो उपविभाग हैं।

(2) दीवानी कानून न्यायालय (Civil Law Court) जो संख्या में दो हैं और प्रत्येक में 6-6 सदस्य हैं।

(3) फौजदारी अपीलीय न्यायालय (Criminal Appellate Court) जिसमें 5 न्यायाधीश होते हैं।

उपर्युक्त प्रमुख विभागो तथा उपविभागो के अतिरिक्त संघीय न्यायालय के अन्तर्गत और भी अनेक छोटे-छोटे न्यायालय हैं जिनमें मुख्य ये है—ऋण तथा दीवालियापन का न्यायालय (The Chamber of Debts & Bankruptcy), दोषारोपण न्यायालय (Chamber of Accusation), संघीय फौजदारी न्यायालय (Federal Penal Court) एवं संघीय एसाइजेज (Federal Assizes)। इनमें से प्रत्येक मे प्राय: तीन न्यायाधीश होते हैं।

संघीय न्यायालय का एक अध्यक्ष तथा एक उपाध्यक्ष होता है। अध्यक्ष पर महाभियोग लगाए जाने पर उपाध्यक्ष अध्यक्ष का पद सम्भालता है। यदि अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष दोनो पर महाभियोग लगाया जाए तो वरिष्ठतम न्यायाधीश अध्यक्ष पद ग्रहण करता है।

न्यायालय के कार्य सम्बन्धी नियम अधिक नहीं हैं और वे बहुत कठोर भी नहीं है। उनका सम्बन्ध न्यायाधीशो की गणपूर्ति (Quorum), न्यायालय की सार्वजनेक अथवा गुप्त बैठकों आदि से है। न्यायालय का एक महत्वपूर्ण नियम यह है कि यदि कोई न्यायाधीश किसी प्रकार के पक्षपात का दोषी सिद्ध हो जाए तो वह न्यायाधीश के पद के लिए अयोग्य मान लिया जाता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका की भाँति स्विस संघीय न्यायालय के पास अपने निर्णय को लागू करने के लिए स्वयं के कर्मचारी नहीं होते। इसके लिए संघीय न्यायालय कैंटनों पर निर्भर करता है और यदि कोई कैंटन कर्तव्य-पालन से विमुख हो तो संघीय परिषद् (Federal Council) से आवश्यक कार्यवाही करने के लिए अनुरोध किया जा सकता है।

अधिकार-क्षेत्र (Jurisdiction)

संयुक्त राज्य अमेरिका और आस्ट्रेलिया की भाँति स्विस न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र की संविधान में व्याख्या नहीं की गई है, क्योंकि स्विस संघीय सभा को इसके अधिकार-क्षेत्र में वृद्धि करने का अधिकार है। फिर भी इसका क्षेत्राधिकार बहुत व्यापक तथा विस्तृत है, जिसे निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(1) दीवानी (*Civil*)

(2) फौजदारी (Criminal)

(3) सांविधानिक (Constitutional)

(4) प्रशासकीय (Administrative)

(1) दीवानी क्षेत्राधिकार (Civil Jurisdiction)—दीवानी मामलों में संघीय न्यायालय का क्षेत्राधिकार प्रारम्भिक (Original) और अपीलीय (Appellate) दोनों प्रकार का है। प्रारम्भिक रूप में संविधान की धारा 110 के अन्तर्गत न्यायालय के समक्ष निर्णय के लिए निम्नलिखित प्रकार के दीवानी मामले जाए जा सकते हैं—

(i) संघ तथा कैंटनों के मध्य उत्पन्न विवाद।

(ii) संघ और किसी निगम (Corporation), कंपनी अथवा साधारण नागरिकों के मध्य उत्पन्न विवाद। इसमें यह आवश्यक है कि वादी (Plaintiff) नागरिक अथवा निगम हो, संघ नहीं, और विवादग्रस्त राशि 8 हजार फ्रैंक से कम न हो।

(iii) विभिन्न कैण्टनों के बीच पारस्परिक विवाद ।

(iv) किसी एक कैण्टन तथा साधारण नागरिक अथवा निगम के बीच उत्पन्न विवाद बशर्ते कि विवादग्रस्त राशि 8 हजार फ्रैंक से कम न हो ।

(v) विभिन्न कैण्टनों में कम्यूनों के बीच नागरिकता तथा अधिवास (Domicile) सम्बन्धी विवाद ।

(vi) यह उल्लेखनीय है कि प्रारम्भिक रूप में संघीय न्यायालय के समक्ष निर्णय हेतु बहुत कम दीवानी मामले लाए जाते हैं । उदाहरणार्थ, 1950 में मामलों की कुल संख्या केवल 10 थी । इसका मुख्य कारण यह है कि अधिकांश दीवानी मामलों का निबटारा कैंटनों के न्यायालय मे ही कर लिया जाता है ।

संघीय न्यायालय के समक्ष दीवानी अपीलीय (Appellate) क्षेत्राधिकार में निम्नलिखित प्रकार के मामले प्रस्तुत होते हैं—

(क) इसमें 10,000 फ्रैंक या उससे अधिक धनराशि के मुकदमों की अपील की जा सकती है परन्तु इसके लिए दोनों पक्षों की सहमति आवश्यक है ।

(ख) इसको कैण्टनों के न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध भी अपील सुनने का अधिकार है । इस प्रकार के मुकदमों की अपील निर्णय सुनाने के बाद 10 दिन के अन्दर कर दी जानी चाहिए ।

(2) फौजदारी क्षेत्राधिकार (Criminal Jurisdiction)—संविधान की धारा 112 के अनुसार संघीय न्यायालय को निम्नलिखित प्रकार के फौजदारी मामलों में निर्णय करने का अधिकार है—

(i) संघ के विरुद्ध राजद्रोह (High Treason) तथा संघीय अधिकारियों के विरुद्ध विद्रोह अथवा हिंसा के मामले ।

(ii) अन्तर्राज्यीय विधियों के विरुद्ध अपराध एवं दुराचार के मामले ।

(iii) राजनीतिक अपराध अथवा दुराचार के ऐसे मामले जिनके कारण संघीय सैनिक हस्तक्षेप की आवश्यकता हुई हो ।

(iv) उच्च सरकारी कर्मचारियों द्वारा अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के विरुद्ध फौजदारी आरोप ।

(3) संवैधानिक क्षेत्राधिकार (Constitutional Jurisdiction)—संघीय न्यायालय को निम्नलिखित प्रकार के संवैधानिक मामलों के निर्णय का अधिकार है—

(i) संघीय और कैंटनों के प्राधिकारियों के पारस्परिक क्षमता-सम्बन्धी विवाद ।

(ii) संघ एवं कैंटनों के मध्य उत्पन्न सांविधानिक विवाद ।

(iii) कैंटनों के मध्य पारस्परिक सार्वजनिक कानून सम्बन्धी विवाद ।

(iv) संविधान में सम्मिलित नागरिक अधिकारों के अतिक्रमण या सन्धि और समझौतों की शर्तों के अतिक्रमण संबंधी नागरिकों की शिकायतों पर संघीय न्यायालय अपीलों को तब तक नहीं सुनता जब तक सम्बन्धित मामलों की कैंटनों के न्यायालयों द्वारा सुनवाई न की जा चुकी हो । संघीय न्यायालय व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा उस दशा में करता है, जब कैंटनों की सरकारों द्वारा उनका उल्लंघन किया गया हो । वह

संघीय सरकार के कार्यों का पुनरावलोकन (Review) नहीं कर सकता और उसके कार्यों की वैधानिकता व अवैधानिकता के विषय में वह कोई निर्णय नहीं दे सकता।

(v) कैंटनों के कानूनों को असांविधानिक घोषित करने का अधिकार—संघीय न्यायालय को न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्राप्त नहीं है। इस सम्बन्ध में उसका अधिकार कैंटनों के कानूनों तक ही सीमित है। वह संघीय कानूनों की व्याख्या अवश्य कर सकता है, लेकिन उनकी वैधानिकता अथवा अवैधानिकता के बारे में निर्णय नहीं कर सकता है।

(4) प्रशासनिक क्षेत्राधिकार (Administrative Jurisdiction)—स्विस संघीय न्यायालय प्रशासनिक अभियोगों, सरकारी कर्मचारियों के वैधानिक क्षमता सम्बन्धी विवादों, रेल प्रशासन सम्बन्धी विवादों, करारोपण सम्बन्धी प्रशासनिक मामलों आदि पर विचार करता है।

अन्त में, स्विस न्यायालयों के अधिकारों का स्पष्ट स्वरूप केवल सांविधानिक उपबन्धों द्वारा ही नहीं जाना जा सकता। संविधान में उल्लिखित अधिकारों के अतिरिक्त संघीय कानूनों द्वारा भी न्यायालय के अधिकारों में वृद्धि की जा सकती है। संघीय सभा की स्वीकृति से कैंटनों के विधान-मण्डल भी कुछ दीवानी मामले संघीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार में रख सकते हैं। न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत होने वाले लगभग 95% मामले इन बढ़ाए गए अधिकार-क्षेत्रों के अन्तर्गत ही आते हैं।

कैण्टनों की न्यायपालिका

(Judiciary of the Cantons)

संघीय कानूनों के क्रियान्वयन का दायित्व कैंटनों के न्यायाधीशों पर ही है, अतः वे भी इस दृष्टि से संघीय न्यायपालिका के अभिन्न अंग माने जाते हैं। दीवानी, फौजदारी और व्यापार सम्बन्धी कानूनों का एकीकरण हो जाने के बाद ही लगभग सभी कैंटनों के न्यायालय समान कानूनों के अनुसार ही न्यायिक-कार्य सम्पादन करते हैं, फिर भी न्यायालय के ढाँचे आदि की व्यवस्था करना कैंटनों के अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत है। इसीलिए विविध कैंटनों के न्यायालय के संगठनों और कार्य-प्रणाली में अन्तर आना स्वाभाविक ही है।

उच्च न्यायालय (Superior Cantonal Courts)

प्रायः प्रत्येक कैंटन में न्याय-प्रशासन के लिए एक उच्च न्यायालय (Superior Cantonal Court) होता है जिसमें 7 से 12 तक न्यायाधीश होते हैं। इसका निर्वाचन कैंटन की विधान-सभा द्वारा किया जाता है। उच्च न्यायालय को दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार के मुकदमों पर विचार करने का क्षेत्राधिकार प्राप्त है, परन्तु उसे कानूनों की संवैधानिकता पर विचार करने का अधिकार नहीं है। उच्च न्यायालय के अधीन कुछ दीवानी और फौजदारी न्यायालय हैं जो क्रमशः इस प्रकार हैं—

दीवानी न्यायालय—दीवानी क्षेत्र में प्रायः प्रत्येक कैंटन के उच्च न्यायालय के अधीन क्रमशः प्रादेशिक न्यायालय (District Courts) व शान्ति न्यायाधीशों (Justice of Peace) के न्यायालय होते हैं। प्रादेशिक अथवा जिला न्यायालय (District Courts) का

न्याय क्षेत्र एक जिला या अरण्डाइजमेंट होते हैं, जबकि सबसे नीचे के स्तर के शान्ति न्यायाधीश (Justice of Peace) के न्यायालय का न्याय-क्षेत्र प्राय: कानून होता है।

निम्न स्तर के न्यायालय के ऊपर के स्तर के न्यायालय का न्याय-क्षेत्र दावों के मूल्य के अनुसार विकसित होता जाता है। इसके अतिरिक्त निम्न स्तर के न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई भी ऊपर के न्यायालय करते हैं।

फौजदारी न्यायालय—फौजदारी क्षेत्र में सबसे नीचे के स्तर का न्यायालय पुलिस न्यायालय (Police Tribunal) होता है। कहीं-कहीं शांति न्यायाधीश के न्यायालय भी फौजदारी के सबसे नीचे के स्तर के न्यायालय के कार्य करते हैं। फौजदारी के भी जिला न्यायालय (District Courts) होते हैं। सबसे उच्च स्तर का न्यायालय उच्च न्यायालय (Superior Cantonal Court) होता है।

नीचे के स्तर के न्यायालय से ऊपर के स्तर के न्यायालय का न्याय-क्षेत्र अपराध की गम्भीरता तथा दण्ड की मात्रा की अधिकता के आधार पर बढ़ता जाता है। कैंटनों के उच्च न्यायालयों (Superior Cantonal Courts) के निर्णयों के विरुद्ध अपील संघीय न्यायालय (Federal Tribunal) में की जाती है।

कैंटनों में न्यायाधीशों का निर्वाचन किया जाता है। उनका निर्वाचन या तो जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से अथवा कैंटनों की व्यवस्थापिकाओं द्वारा अप्रत्यक्ष रूप में किया जाता है। न्यायाधीशों की सेवा की शर्तें आदि का निर्धारण कैंटनों द्वारा किया जाता है। न्यायाधीशों के पुनर्निर्वाचित होने की परम्परा है।

स्विस संघीय न्यायालय और अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय का तुलनात्मक अध्ययन
(Comparative Study of Swiss Federal Tribunal and American Supreme Court)

स्विट्जरलैण्ड और संयुक्त राज्य अमेरिका दोनों ही संघात्मक शासन-व्यवस्था वाले देश हैं, तथापि दोनों देशों की न्यायपालिका के संगठन और शक्तियों में महत्वपूर्ण अन्तर है। स्विस संघीय न्यायालय कतिपय गौण मामलों में अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय से अधिक प्रभावशाली सिद्ध होता है, लेकिन आधारभूत शक्ति की दृष्टि से अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय अधिक शक्तिशाली है।

संगठन की दृष्टि से अन्तर (Difference of Organisation)

स्विट्जरलैण्ड के संघीय न्यायालय तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के बीच के तुलनात्मक अध्ययन को निम्नानुसार रखा जा सकता है—

(1) स्विट्जरलैण्ड में संघीय स्तर पर केवल एक ही न्यायालय है जबकि अमेरिका में संघीय स्तर पर सर्वोच्च न्यायालय के अतिरिक्त अधीनस्थ अथवा निम्न न्यायालय भी हैं। यहाँ संघीय स्तर पर न्यायालय का एक श्रृंखलाबद्ध संगठन उपलब्ध है। काँग्रेस को निम्न न्यायालय स्थापित करने का अधिकार भी दिया गया है और इस अधिकार का

प्रयोग करते हुए काँग्रेस ने लगभग 11 अपीलीय न्यायालय और जिला न्यायालयों का संगठन किया है।

(2) स्विस संघीय न्यायालय का आकार अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय से बड़ा है। स्विस न्यायालय में 26 न्यायाधीश और 12 वैकल्पिक न्यायाधीश हैं जबकि अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय में केवल 9 न्यायाधीश है।

(3) स्विस संघीय न्यायालय चार विभागों में विभक्त हैं जबकि अमेरिका में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है।

(4) स्विस संघीय न्यायालय का सगठन बहुत लोकतान्त्रिक है। इसके न्यायाधीशों का निर्वाचन संघीय सभा करती है जबकि अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है, जिसका अनुसमर्थन या पुष्टि सीनेट द्वारा की जाती है। न्यायाधीशों की योग्यता के सम्बन्ध में भी स्विट्जरलैण्ड में कोई विशेष व्यवस्था नहीं है जबकि दूसरे देशों मे प्राय- इस बारे में विशेष प्रावधान मिलता है।

(5) अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश 'सदाचरण काल' (Good Behaviour) पर्यन्त अपने पद पर आसीन रहते हैं जबकि स्विस संघीय न्यायालय के न्यायाधीश केवल 6 वर्ष के लिए निर्वाचित किए जाते हैं तथापि व्यवहार में पुनर्निर्वाचन की परम्परा होने से स्विस न्यायाधीशों का कार्यकाल भी बहुत लम्बा और 'सदाचरण काल-पर्यन्त' जैसा हो गया है।

(6) अमेरिकी संविधान मे शक्ति-पृथक्करण की जो व्यवस्था है, वह स्विस सविधान में नहीं है। अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय काँग्रेस तथा राष्ट्रपति के प्रभाव और हस्तक्षेप से मुक्त रहते हुए अपना कार्य करता है जबकि स्विस संघीय न्यायालय व्यवस्थापिका (सघीय सभा) के अधीक्षण में कार्य करता है और उसके समक्ष अपने कार्यों की वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करता है।

अधिकार-क्षेत्र में अन्तर (Differences of Jurisdiction)

(1) दीवानी तथा फौजदारी मामलों में स्विस सघीय न्यायालय का अधिकार क्षेत्र अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय की अपेक्षा अधिक व्यापक है। जहाँ अमेरिका में दीवानी एवं फौजदारी विधि-निर्माण का अधिकार राज्य-सरकारों का है और इस संबंध में राज्यों के उच्चतम न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध संघीय न्यायालय में कोई अपील नहीं की जा सकती, वहाँ स्विट्जरलैण्ड में दीवानी एव फौजदारी विधि-निर्माण का अधिकार स्वयं संघीय सरकार को है। इन मामलों में कैंटनों के न्यायालयों को संघ द्वारा निर्मित दीवानी एवं फौजदारी संहिताओं के अनुसार निर्णय करना होता है और इन निर्णयों के विरुद्ध संघीय न्यायालय में अपील हो सकती है।

(2) स्विस संघीय न्यायालय को प्रशासनिक विवादों के संबंध में अधिकार-क्षेत्र प्राप्त है जबकि अमेरिकी संघीय न्यायपालिका को प्रशासनिक न्याय-सम्बन्धी शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं।

(3) सबसे प्रमुख अन्तर सवैधानिक क्षेत्र में है और दीवानी, फौजदारी या प्रशासनिक अधिकार-क्षेत्रों की तुलना में संवैधानिक अधिकार-क्षेत्र ही अधिक महत्व का है। इस दृष्टि से अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय स्विस सघीय न्यायालय की तुलना में बहुत अधिक शक्तिशाली और प्रभावपूर्ण है। जहाँ अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति प्राप्त है। अमेरिकी सर्वोच्च व्यायालय को, उसकी न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति प्राप्त है और वह सविधान के सरक्षक की भूमिका का निर्वाह करता है, वहाँ स्विस सघीय न्यायालय को केवल कैंटनों के संबंध में ही न्यायिक पुनरावलोकन-शक्ति के कारण, 'कॉंग्रेस का तृतीय सदन' (Third Chamber of Congress) तक कह दिया जाता है। वह सघीय एवं राज्य-व्यवस्थापिकाओं द्वारा निर्मित कानूनों अथवा सघीय एव राज्य-सरकारों के प्रशासकनिक कार्यों की सवैधानिकता की जाँच करता है और सविधान के प्रतिकूल होने पर उन्हें अवैध घोषित कर देता है। स्विस सघीय न्यायालय ऐसी शक्ति से वचित है। वस्तुत. स्विस नागरिक सवैधानिकता की अपेक्षा लोकतन्त्रात्मकता को अधिक महत्व देते हैं।

साराश में, यही कहा जा सकता है कि स्विस शासन व्यवस्था में न्यायपालिका नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है।

प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र

(Direct Democracy)

विश्व में स्विट्जरलैण्ड ही एकमात्र ऐसा देश है जहाँ प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र-प्रचलित है। प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के जो भी साधन हैं, उनका प्रयोग इस देश से अधिक अन्यत्र कहीं नहीं होता। प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के सफल प्रयोग ने स्विट्जरलैण्ड को एक महान् देश के रूप में प्रतिष्ठित किया है। उसके इस प्रयोग को 'अद्वितीय' या 'विलक्षण' माना जाता है।

स्विट्जरलैण्ड प्रजातन्त्र का गृह अथवा प्रयोगशाला है

(Switzerland is the Home or Laboratory of Democracy)

ब्राइस के मतानुसार—"विश्व के आधुनिक लोकतन्त्रों में जो कि वास्तविक लोकतन्त्र हैं, अध्ययन की दृष्टि से स्विट्जरलैण्ड का सर्वाधिक महत्व है।"[1] स्विट्जरलैण्ड की लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था के सम्बन्ध में लॉयड व हॉब्सन का कथन है—"प्रभुसत्ता जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप में यहाँ प्रयुक्त होती है तथा सभी मतदाताओं द्वारा बनी हुई संघीय सभा उस लोकतन्त्र का उत्तम उदाहरण है जिसे रूसो तथा अन्य दार्शनिकों ने वास्तविक लोकतन्त्र कहा है।"[2]

स्विट्जरलैण्ड को प्रजातन्त्र की प्रयोगशाला कहा जाता है क्योंकि सिग्फ्रीड (Seigfried) के शब्दों में—"यहाँ लोकतन्त्र प्रत्यक्ष ही रहता है और अपनी शक्तियाँ सौंपते समय स्विस जनता उन्हें त्याग नहीं देती। वह लोक निर्णय के माध्यम से मत संग्रह द्वारा प्रथम शब्द कहने का अधिकार सदैव अपने पास रखती है।" मैसन ने तो यहाँ तक कहा है कि लोकमत की पद्धतियाँ स्विट्जरलैण्ड में—"वस्तुतः स्विस पद्धतियाँ हो गई हैं।"[3] दूसरे शब्दों में, प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र और स्विट्जरलैण्ड एक दूसरे के पर्याय बन गये हैं।

प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की विधियाँ

(Methods of Direct Democracy)

स्विट्जरलैण्ड के निवासियों ने प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के अग्रांकित तीन प्रमुख साधनों को लगभग पूर्ण रूप से अपनाया है—

1. *Bryce* : Modem Democracies
2. "The Sovereing Power of the people is directly exercised in all the cnucal acts of the Govt....." —*Loyd & Hobson*
3. *Mason, J.B* : Switzerland in Govt. of Foreign Powers, p. 398

(1) प्रारम्भिक सभाएँ (Primary Assemblies)

प्रारम्भिक सभाओं का अभिप्राय यह है कि निर्धारित समय पर देश के सभी वयस्क नागरिक एक स्थान पर एकत्र होकर कानूनों का निर्माण और नीतियों का निर्धारण करें। इस प्रक्रिया में नागरिक अपनी प्रभुसत्ता का प्रत्यक्ष रूप से प्रयोग करते हैं। यह प्रजातन्त्र का सबसे विशुद्ध प्राचीन रूप है।

प्रारम्भिक सभाओं की व्यवस्था स्विट्जरलैण्ड के 4 अर्द्ध-कैंटनों तथा 1 पूर्ण कैंटन में प्रचलित है। इन लोकसभाओं को 'लैंड्सजीमाइंड' (Landsgemeinde) कहते हैं। ये लोकसभाएँ जिन कैंटनों में है वहाँ कैंटनों के नागरिक इन सभाओं के सदस्य होते हैं। इन सभाओं की वार्षिक बैठक होती है जो सामान्यतः व्यवस्थापिका सभाओं की तरह कार्य करती हैं। प्रतिवर्ष कैंटन के सभी वयस्क पुरुष नागरिक एक खुले मैदान में एकत्र होकर संविधान में संशोधन, सामान्य कानूनों का निर्धारण, करारोपण, मताधिकार, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के अधिकारों के निर्वाचन आदि कार्यों का सम्पादन करते हैं।

प्रारम्भिक सभाओं अथवा लोकसभाओं का यह रूप, देश की जनसंख्या और आकार में वृद्धि एवं प्रशासन की आधुनिक पेचीदगियों आदि के कारण आधुनिक काल में अव्यावहारिक होता जा रहा है तथा धीरे-धीरे इनका ह्रास हो रहा है।

(2) जनमत-संग्रह या लोकनिर्णय (Referendum)

जनमत-संग्रह का सामान्य अर्थ यह है कि विधान-मण्डल द्वारा पारित अधिनियमों अथवा प्रस्तावित कानूनों पर जनता का मत लिया जाए। इस तरह जनमत-संग्रह की विधि के माध्यम से जनता प्रत्यक्ष रूप से देश के संवैधानिक एवं साधारण कानूनों पर अपना मत प्रकट करके शासन-कार्य में भाग लेती है। यदि जनमत पक्ष में हो तो कानून पारित समझा जाता है और यदि विपक्ष में हो तो अस्वीकृत। इस प्रकार जनमत-संग्रह एक ऐसी व्यवस्था है जिससे जनता के हाथों में व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानूनों पर निषेधाधिकार या वीटो करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। जनता के हाथ में यह एक नकारात्मक अस्त्र है। लेकिन स्विस शासन व्यवस्था में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र में यह ढाल (Shield) का काम करता है जिसके द्वारा जनता अवांछनीय कानूनों को निरस्त कर सकती है। स्विट्जरलैण्ड में जनमत-संग्रह का प्रयोग केन्द्र व कैंटनों दोनों में होता है।

(3) आरम्भक या उपक्रम (Initiative)

आरम्भक या उपक्रम वह साधन है जिसके द्वारा नागरिक स्वयं कानून को प्रस्तुत कर सकते हैं। इसका प्रयोग भी केन्द्र व कैंटनों दोनों में होता है। आरम्भक वस्तुतः एक हथियार है जिसके द्वारा जनता अपनी इच्छा अथवा विचारों के अनुसार कानून निर्माण का मार्ग प्रशस्त करती है। यह नागरिकों को विधि-निर्माण में सकारात्मक अधिकार प्रदान करती है। इसके द्वारा व्यवस्थापिका की अनिच्छा के बावजूद जनता विधि-निर्माण के सम्बन्ध में कार्यवाही कर सकती है।

केन्द्र में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र

(Direct Democracy in the Centre)

केन्द्र में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की जनमत-संग्रह और आरम्भक की अग्रांकित दोनों ही विधियाँ प्रयुक्त होती हैं—

(I) जनमत-संग्रह अथवा लोक-निर्णय (Referendum)

जनमत-संग्रह से हमारा तात्पर्य व्यवस्थापिका द्वारा पारित कानूनों को जनता के समक्ष उसकी स्वीकृति अथवा अस्वीकृति के लिए रखने से है।

स्विट्ज़रलैण्ड में जनमत संग्रह दो प्रकार का है—

अनिवार्य जनमत-संग्रह—जब व्यवस्थापिका द्वारा पारित प्रत्येक कानून अनिवार्यतः जनता की स्वीकृति के लिए रखा जाता है तो वह अनिवार्य जनमत-संग्रह (Compulsory Referendum) कहलाता है। यह अनिवार्य जनमत-संग्रह 1818 ई. के संविधान द्वारा प्रचलित किया गया था। संविधान की धारा 123 में इस विषय में यह व्यवस्था है कि "संघ का संशोधित संविधान या उसका कोई संशोधित अंश तभी क्रियान्वित हो सकेगा, जब स्विस मतदाताओं का बहुमत तथा राज्यों का बहुमत उसे स्वीकार कर ले।"[1] संविधान में दी गई इस व्यवस्था से स्पष्ट है कि—

(i) जनमत-संग्रह का रूप अनिवार्य जनमत-संग्रह का है।

(ii) यह व्यवस्था केवल संविधान के संशोधन सम्बन्धी कानूनों के विषय में है।

(iii) संशोधित तभी पूर्ण समझा जाता है जबकि उसे स्विट्ज़रलैण्ड के उन नागरिकों के बहुमत द्वारा स्वीकार कर लिया जाए जो उससे सम्बन्धित जनमत-संग्रह में मतदान करें तथा उसे कैंटनों के बहुमत द्वारा भी स्वीकार कर लिया जाए।

(iv) जनमत-संग्रह पूरे संविधान के विषय में भी हो सकता है और उसके किसी अंश के संशोधन के विषय में भी।

क्योंकि उपर्युक्त जनमत-संग्रह अनिवार्य है और इसका सम्बन्ध संविधान से है, अतः इसे अनिवार्य संवैधानिक जनमत-संग्रह (Compulsory Constitutional Referendum) कहा जाता है।

ऐच्छिक या वैकल्पिक जनमत-संग्रह—ऐच्छिक जनमत-संग्रह वह होता है जिसमें व्यवस्थापिका द्वारा पारित कानून उसी अवस्था में जनता के समक्ष उसकी स्वीकृति हेतु रखा जाता है जब नागरिकों की एक निश्चित संख्या इस सम्बन्ध में प्रार्थना करती है। 1874 ई. में संघीय कानूनों के ऐच्छिक जनमत-संग्रह की व्यवस्था की गई थी। संविधान की 89वीं धारा के अन्तर्गत यह व्यवस्था है कि संघ के सब कानूनों और सब पर लागू होने वाले सब अध्यादेशों (Arretes) को जनमत संग्रह के लिए प्रस्तुत किया जाए जबकि 30 हजार स्विस नागरिक मतदाता अथवा8 कैंटनों के 30 हजार स्विस नागरिक उनके विषय में ऐसी माँग करें। ऐसी माँग के लिए 90 दिन का समय निर्धारित है। किसी कानून अथवा अध्यादेश के प्रकाशन के 90 दिन के अन्दर यदि ऐसी माँग कर दी जाए तो उस पर जनमत-संग्रह आवश्यक समझा जाता है।

सामान्यतः सभी कानूनों को, जिनके विषय में जनमत-संग्रह की माँग की जाए, जनमत संग्रह के लिए प्रस्तुत करना होता है। केवल मात्र अध्यादेशों के विषय में एक अपवाद है कि यदि किसी अध्यादेश को व्यवस्थापिका द्वारा 'आवश्यक' (Urgent) अथवा 'सब पर लागू न होने वाला' (Not universally binding) घोषित कर दिया जाए तो उस पर जनमत-संग्रह की माँग नहीं की जा सकती। लेकिन वर्तमान काल में जनमत-संग्रह की माँग से बचने के लिए व्यवस्थापिका प्रायः उन सब कानूनों को

1. Swiss Constitution, Article 123.

अध्यादेशों का रूप दे देती है जिनका सम्बन्ध बजट आदि महत्वपूर्ण बातों से होता है और ऐसे अध्यादेशों को 'आवश्यक' अथवा 'सब पर लागू न होने वाला' घोषित कर देती है। कहीं कार्यपालिका और व्यवस्थापिका इस ढंग से अपनी शक्ति का स्थाई रूप से दुरुपयोग न करने लगें, इसके लिए 1949 के एक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था कर दी गई है कि 'आवश्यक' व 'सब पर लागू न होने वाले' आदेश (Arretes) एक वर्ष बाद स्वयं समाप्त समझे जाएँगे यदि उनके विषय में वैकल्पिक जनमत-संग्रह की माँग की जाए और उन्हें उसके द्वारा स्वीकार न किया जाए। ऐसे अध्यादेशों के विषय में, जिनसे संविधान की किसी व्यवस्था का उल्लंघन होता हो, यह व्यवस्था की गई है कि उनके लिए प्रशासन के एक वर्ष के भीतर जनता एवं कैंटन की स्वीकृति अवश्य प्राप्त होनी चाहिए, अन्यथा एक वर्ष व्यतीत हो जाने पर वे स्वयं ही समाप्त हो जाएँगे।

ऐच्छिक अथवा वैकल्पिक जनमत-संग्रह की व्यवस्था उन अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों पर भी लागू होती है, जो या तो अनिश्चित काल के लिए की जाती हैं या जो 15 वर्ष से अधिक अवधि के लिए होती हैं। यदि 30 हजार सक्रिय नागरिक अथवा 8 कैंटन माँग करें तो उन पर जनमत-संग्रह लेना आवश्यक होता है। वैकल्पिक जनमत-संग्रह के लिए जो भी कानून या अध्यादेश या सन्धि अतवा समजौता प्रस्तुत होता है वह तभी कार्यान्वित किया जा सकता है जब उसे स्विट्ज़रलैण्ड के उन मतदाताओं द्वारा बहुमत से स्वीकार कर लिया जाए।

(2) आरम्भक या निर्बन्ध उपक्रम (Initiative)

आरम्भक वह साधन है जिससे नागरिकों की कुछ संख्या स्वयं कानून को प्रस्तुत कर सकती है अर्थात् कानूनों के सुझाव रख सकती है। संघीय शासन-व्यवस्था के अन्तर्गत केवल संविधान के संशोधन' अथवा पुनर्निरीक्षण (Revision) के सम्बन्ध में आरम्भक की व्यवस्था की गई है, सारे कानूनों के सम्बन्ध में नहीं अर्थात् नागरिकों को केवल संविधान में संशोधन करने की माँग का अधिकार है, समस्त विषयों पर कानून निर्माण की माँग करने का नहीं। आरम्भक के प्रयोग की व्यवस्था केवल संवैधानिक संशोधनों के विषय में की गई है। अत: इसे संवैधानिक आरम्भक (Constitutional Initiative) की संज्ञा भी दी जाती हैं। वर्तमान व्यवस्था के अनुसार संविधान के पूर्ण संशोधन (Total Revision) अथवा आंशिक संशोधन (Partial Revision) दोनों के ही विषय में आरम्भक का प्रयोग किया जा सकता है। इस आधार पर आरम्भक का रूप दो प्रकार का हो जाता है—(i) पूर्ण संशोधन सम्बन्धी आरम्भक (Initiative for Total Revision), एवं (ii) आंशिक संशोधन सम्बन्धी आरम्भक (Initiative for Partial Revision)। दोनों ही प्रकार के आरम्भक का प्रयोग 50 हजार मतदाताओं द्वारा किया जा सकता है। यदि उपर्युक्त संख्या में स्विस नागरिक पूर्ण अथवा आंशिक संशोधन के लिए प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत करें तो उस प्रार्थना-पत्र पर जनमत-संग्रह कराया जाना आवश्यक होता है।

यदि जनता ने आरम्भक द्वारा संविधान के पूर्ण संशोधन या पुनर्निरीक्षण (Total Revision) की माँग की है अथवा यदि पूर्ण संशोधन सम्बन्धी प्रस्ताव का आरम्भक व्यवस्थापिका के किसी एक सदन ने किया है, लेकिन दूसरा सदन उससे सहमत नहीं है, तो अग्रांकित दो दशाओं में अग्रलिखित प्रक्रिया अपनाई जाने की व्यवस्था है—

(i) प्रस्तावित संशोधन स्विस मतदाताओं के जनमत-संग्रह के लिए प्रस्तुत किया जाएगा।

(ii) मतदाताओं के बहुमत द्वारा प्रस्ताव स्वीकृत होने पर संघीय सभा का पुनर्निर्वाचन होगा। इसमें कैण्टनों के बहुमत की आवश्यकता नहीं होगी।

(iii) पुनर्निर्वाचन के पश्चात् नई संघीय सभा के दोनों सदन उक्त प्रस्तावित संशोधन पर विचार करते हैं और उनके बहुमत द्वारा पारित होने पर वह संशोधन प्रस्ताव सर्व-साधारण और कैण्टनों के जनमत-संग्रह के लिए प्रस्तुत किया जाता है तथा लोक-निर्णय के पक्ष में होने पर यह संशोधन प्रस्ताव क्रियान्वित होता है। आंशिक संशोधन (Partial Revision) के लिए प्रस्तुत आरम्भक के विषय में यह व्यवस्था है कि वह प्रस्ताव सूत्रबद्ध के रूप में (Formulated) भी प्रस्तुत किया जा सकता है और असूत्रबद्ध रूप में (Unformulated) भी किया जा सकता है।

यदि आंशिक संशोधन का आरम्भक मोटे सुझावों के रूप में (Unformulated) होता है तो निम्नलिखित दो व्यवस्थाएँ हैं—

(i) संघीय व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत होने पर उसका विधेयक तैयार होगा और विधेयक को सर्व-साधारण तथा कैंटनों की स्वीकृति (Ratification) मिलने के बाद क्रियान्वित किया जाएगा।

(ii) यदि संघीय सभा संशोधन-प्रस्ताव के विपक्ष में है तो वह संशोधन प्रस्ताव को सर्व-साधारण के निर्णय के लिए भेज देती है। यहाँ पर कैंटनों के मत जानने की आवयकता नहीं होती। यदि बहुमत संशोधन के पक्ष में होता है तो संघीय सभा प्रस्ताव के अनुरूप विधेयक तैयार करती है और उसे सर्व-साधारण तथा कैंटनों के जनमत-संग्रह के लिए प्रस्तुत करती है।

यदि आंशिक संशोधन की याचिका सूत्रबद्ध विधेयक (Formulated) के रूप में प्रस्तुत की जाती है, तो इस सम्बन्ध में निम्नांकित व्यवस्था है—

(i) संघीय सभा पक्ष में होने पर, उस विधेयक को सर्व-साधारण एवं कैण्टनों के जनमत-संग्रह के लिए प्रस्तुत करेगी।

(ii) विपक्ष में होने पर संघीय सभा यह सिफारिश कर सकती है कि प्रत्येक प्रस्तावित संशोधन स्वीकृत कर दिया जाए अथवा वह जनता द्वारा प्रस्तावित प्रारूप के साथ एक स्वयं का निर्मित प्रारूप भी जनमत-संग्रह के लिए रख सकती है। संशोधन प्रस्ताव को जनमत-संग्रह में जनता और कैण्टनों के बहुमत का समर्थन मिलना आवश्यक है।

उपर्युक्त प्रसंग में यह स्मरणीय है कि साधारण कानूनों के विषय में स्विट्जरलैण्ड में आरम्भक (Initiative) की व्यवस्था नहीं है, फिर भी स्विस लोग सांविधानिक संशोधन के नाम से साधारण कानूनों से भी सम्बन्धित प्रस्ताव प्रस्तुत कर देते हैं। वृद्धावस्था का बीमा, पशु-वध, गेहूँ की पैदावार की वृद्धि आदि से सम्बन्धित अनेक प्रस्ताव सांविधानिक संशोधन के नाम से प्रस्तुत किए गए हैं और उनमें से अनेक संविधान का अंग बन चुके हैं।

कैण्टनों में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र

(Direct Democracy in Cantons)

स्विट्जरलैण्ड की कतिपय कैण्टनों में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की व्यवस्था का प्रचलन है। कैंटनों में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के प्रयोग की तीनों ही विधियाँ काम में लाई जाती

हैं—स्थानीय सभाएँ, जनमत-संग्रह और आरम्भक । कैण्टनों में इन तीनों का प्रयोग निम्नानुसार किया जा सकता है—

(1) स्थानीय सभाएँ (Landsgemeinde)

इस प्रकार की लोक-सभाएँ, जो प्रत्यक्ष रूप से कैण्टनों के प्रशासन में भाग लेती हैं, इस समय उरी (Uri) व ग्लेरस (Glarus) के दो पूरे कैण्टनों तथा अण्टरवाल्डेन (Unterwalden), श्वेज (Schweyz), जुग (Zug) व अपेंजिल (Appenzull) के चार अर्द्ध-कैण्टनों में कार्य करती हैं । इन कैण्टनों में विधायी शक्ति सीधी जनता में निहित है । इन कैण्टनों के बारे में यह ठीक ही कहा गया है कि "वे मुक्त वायुमण्डल के लोकतन्त्र (Democracies of the open air type) हैं ।"

स्थानीय सभाओं अथवा स्थानीय लोकसभाओं का रूप स्वतन्त्र नागरिकों की राजनीतिक सभाओं का होता है जो प्रत्येक वर्ष एक निर्वाचित अध्यक्ष की अध्यक्षता में खुले में होती हैं । विधियों का निर्माण और कैंटनों के अधिकारियों का चुनाव करने के लिए नागरिक प्रत्येक वर्ष अप्रेल या मई में किसी रविवार के दिन खुले मैदान में एकत्र होते हैं । वे समस्त पुरुष नागरिक जिन्होंने मताधिकार की आयु प्राप्त कर ली है, इन लोकसभाओं में उपस्थित होकर उनकी कार्यवाहियों में भाग ले सकते हैं । सिद्धान्त रूप से सभी वयस्क नागरिकों के लिए यह आवश्यक है कि वे सम्बन्धित क्षेत्र अथवा कैंटन की स्थानीय सभा में उपस्थित हों । कुछ कैंटनों में तो उन अनुपस्थित सदस्यों पर जुर्माना तक करने की प्रथा है जो बिना उचित कारणों के सभाओं से अनुपस्थित रहते हैं । स्थानीय सभा कानून बनाती है और निर्वाचित कार्यकारिणी समिति द्वारा निर्मित कानूनों की पुष्टि करती है । वह विविध उपयोगी प्रस्ताव पारित करती है और वित्त एव सार्वजनिक कार्यों के विषय में विभिन्न महत्वपूर्ण निर्णय करती है । स्थानीय सभाएँ कार्यकारिणी एवं शासन-समितियों का चयन करती हैं तथा प्रमुख अधिकारियों और न्यायाधीशों की नियुक्तियाँ करती हैं । स्थानीय सभाओं की शक्तियाँ और उनके अधिकार भिन्न-भिन्न कैंटनों में भिन्न-भिन्न हैं । इनमें संविधान का पूर्ण व आंशिक संशोधन, कानूनों का निर्माण, कर-निर्धारण, ऋण लेना और अनुदानों को स्वीकार करना, कार्यपालिका एवं न्यायाधीशों का निर्वाचन तथा नवीन पदों की स्वीकृति और वेतन-क्रम का निर्धारण आदि सम्मिलित हैं ।

विभिन्न विद्वानों ने स्थानीय सभाओं की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है किन्तु रेपर्ड का कहना है कि "यह विश्वास करना कठिन है कि लोकसभाएँ अनिश्चितकाल तक स्थिर रह सकती हैं । ये आदिम लोकतन्त्र के नुमायशी नमूनों या बीते हुए दिनों के स्मृति-चिह्नों के रूप में रह जाएँगी ।"[1]

जनमत-संग्रह (Referendum)

कैंटन में जनमत-संग्रह की व्यवस्था इस प्रकार है—

(i) प्रत्येक प्रतिनिधि-कैंटनों में सांविधानिक संशोधन के लिए अनिवार्य जनमत-संग्रह (Compulsory Referendum) की व्यवस्था है । संविधान में किसी प्रकार का संशोधन तब तक नहीं हो सकता, जब तक उसे कैंटन की जनता स्वीकार न कर ले ।

1 *Reppard, W E* · Govt. of Switzerland

(ii) साधारण कानूनों के सम्बन्ध में कैंटनों में अनिवार्य जनमत-संग्रह और कुछ में वैकल्पिक जनमत-संग्रह (Optional Referendum) की व्यवस्था है। दस पूरे व एक अर्द्ध-कैंटन में अनिवार्य (Compulsory) तथा आठ पूर्ण व एक अर्द्ध-कैंटन में वैकल्पिक (Optional) व्यवस्था है।

(iii) शेष एक कैंटन और चार अर्द्ध-कैंटनों में जहाँ स्थानीय सभाओं की व्यवस्था है, जनमत-संग्रह का कोई प्रश्न नहीं उठता है।

(iv) कुछ कैंटनों में वित्तीय मामलों के लिए भी जनमत-संग्रह की व्यवस्था है। कुछ में यह व्यवस्था अनिवार्य है और कुछ में वैकल्पिक। 16 कैंटनों में वित्तीय प्रस्तावों पर अनिवार्य जनमत-संग्रह और 5 कैंटनों में वैकल्पिक जनमत-संग्रह की व्यवस्था है यदि प्रस्तावों की धनराशि एक निर्धारित सीमा से अधिक हो। प्रत्येक कैंटन में यह सीमा भिन्न है।

आरम्भक (Initiative)

जेनेवा के अतिरिक्त, जहाँ सिर्फ सांविधानिक आरम्भक (Consututional Initiative) की व्यवस्था है, अन्य सब कैंटनों में सांविधानिक और व्यवस्था सम्बन्धी दोनों ही प्रकार के आरम्भक की व्यवस्था प्रचलित है। दोनों में केवल अन्तर यह है कि सांविधानिक आरम्भक के लिए अधिक और व्यवस्थापन सम्बन्धी आरम्भक के लिए कम लोगों के हस्ताक्षरों की आवश्यकता होती है। किन्हीं-किन्हीं कैंटनों में दोनों ही प्रकार के आरम्भकों के लिए बराबर मतदाताओं के हस्ताक्षरों की आवश्यकता होती है।

प्रत्यक्ष प्रजातन्त्रीय व्यवस्था का मूल्यांकन
(Evaluation of the System of Direct Democracy)

स्विट्जरलैण्ड में प्रचलित इस प्रत्यक्ष प्रजातन्त्रीय पद्धति के पक्ष और विपक्ष के बिन्दुओं को जानकर ही इस व्यवस्था का मूल्यांकन किया जा सकता है अथवा इसके बारे में निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

पक्ष में तर्क (Arguments for Its Favour)

प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं—

(1) इसके द्वारा प्रजातन्त्र का वास्तविक स्वरूप प्रकट होता है और जनता को दैनिक प्रशासन में भाग लेने का अधिकार प्राप्त होता है। अनिवार्य लोक-निर्णय के कारण जनता को समय-समय पर मतदान करना पड़ता है और इस प्रकार उसे प्रशासन में अपनी महत्ता का अनुभव होता है। ऐच्छिक लोक-निर्णय में जनता स्वेच्छा से भाग लेकर महत्वपूर्ण विषयों पर विचार करती है।

(2) प्रत्यक्ष विधि-निर्माण की प्रक्रिया के होने से जनता पर उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई अधिनियम नहीं थोपा जा सकता है।

(3) जब कानूनों को जनता स्वयं बनाती है तो स्वभावतः वह उनका उचित रूप से पालन करती है। अतः कानूनों के पालन करने की स्वाभाविक आदत का विकास होता है।

(4) इनके द्वारा जनता को राजनीतिक शिक्षा प्राप्त होती है। शासक उसको सरलतापूर्वक प्रभावित नहीं कर सकते। राजनीतिक विषयों पर विचार करने और उन पर मताधिकार प्राप्त होने से जनता के प्रशासकीय ज्ञान में वृद्धि होती है।

(5) लोक-निर्णय के कारण राजनीतिक दलबन्दी उग्र नहीं हो पाती। जनता को नागरिकता की शिक्षा मिलती है और उसमें एकता की भावना का विकास होता है।

(6) जनता की इस शक्ति के भय से संघीय सभा अपरिपक्व प्रस्ताव पारित करने से दूर रहती है समय-समय पर ऐसे प्रस्तावों को, जो लोक-इच्छा के विरुद्ध हो सकते थे, संघीय सभा ने ठुकराया है।

(7) लोक-निर्णय और आरम्भक दोनों जनता में यह चेतना जाग्रत करते हैं कि वे विधि-निर्माता हैं और उनकी शासन में प्रत्यक्ष भूमिका है। इस प्रणाली में इसलिए न तो बहुमत की निरंकुशता पाई जाती है और न अल्पसंख्यकों में निराशा या अवसाद की भावना ही।

(8) संघीय सभा के निर्वाचित सदस्यों को जनता से सदा सम्पर्क स्थापित रखना पड़ता है और जनता की माँगों तथा उनके हितों को ध्यान रखना पड़ता है।

(9) बाँजोर (Banjor) लोक-निर्णय को राजनीतिक वातावरण का सुन्दरतम बैरोमीटर मानता है। इसके द्वारा प्रत्येक बात पर जनता की इच्छा या मत ज्ञात हो सकता है।

(10) इसके द्वारा जनता का औद्योगिक और व्यापारिक वर्ग शासन पर अपना प्रभुत्व स्थापित नहीं कर पाता है।

ब्राइस के अनुसार "जिस प्रकार लोक-निर्णय विधान मण्डल की त्रुटियों से जनता की रक्षा करता है, उसी प्रकार आरम्भक उसकी भूल भूलों का सुधार है।"[1]

विपक्ष में तर्क (Arguments for Against it)

स्विट्जरलैण्ड की यह प्रत्यक्ष प्रजातन्त्रीय व्यवस्था आलोचना से परे नहीं रही है। इसकी आलोचना में निम्नांकित तर्क दिये जा सकते हैं—

(1) सर्व-साधारण में इतनी योग्यता नहीं होती कि वह विधि-निर्माण जैसे महत्वपूर्ण और जटिल कार्य में उचित रूप से भाग ले सके। अतः जनता को यह अधिकार प्रदान करना देश के लिए घातक सिद्ध हो सकता है।

(2) इसके कारण संघीय सभा के सदस्यों का महत्व कम हो जाता है और वह पूर्ण रुचि तथा तत्परता से कार्य नहीं करते। डिप्लोजी का मत है कि "इन पद्धतियों को अपनाकर व्यवस्थापिका मात्र परामर्शदात्री संस्था हो जाती है।"[2]

(3) लोक-निर्णय के मुख्य सिद्धान्तों की उपेक्षा होती है और सूक्ष्म तथा साधारण बातों को भी महत्वपूर्ण माना जाता है।

(4) मतदान की उपेक्षा या मतदान में आलस्य के कारण लोक-निर्णय जनता की वास्तविक इच्छा का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाता। कभी-कभी सुसंगठित अल्पमत लोक-निर्णय में सफलता प्राप्त कर जनता की वास्तविक इच्छा का प्रदर्शन करने लगता है।

(5) एक साधारण काम-काजी व्यक्ति कानून बनाने के काम में न तो विशेष रुचि, फुरसत और इच्छा ही होती है। वह अपने अधिकार निर्वाचित प्रतिनिधियों को सौंप देना पसन्द करता है।

1. *Bryce* : Modern Democracies.
2. *Simon Diploige* : The Referendum in Switzerland, p 99

(6) वैल्टी (Welti) के अनुसार, "जनता व्यावसायिक कानून निर्माता का स्थान नहीं ले सकती और न वह उस काम को कर सकती है। जटिल शासन कार्यों में साधारण नागरिकों से उपयुक्त निर्णय की आशा करना रेत में से तेल निकालना है।" इस तरह साधारण जनता से जटिल व्यवस्थापन प्रक्रिया में भाग लेने की अपेक्षा नहीं की जा सकती है।

(7) प्रत्यक्ष विधि-निर्माण में समझौता या संशोधन की गुंजाइश नहीं होती। जनता को किसी विधेयक के प्रश्न पर ज्यों के त्यों 'हाँ' या 'ना' सूचक सम्मति या राय देनी होती है। जनता को विचार-विमर्श का न तो उचित अवसर ही मिल पाता है और न जनमत-संग्रह से पूर्व प्रश्नों या उनका स्वरूप निश्चित करने में उसकी कोई भूमिका ही होती है।

(8) वर्तमान में अधिकांश कानून राष्ट्रीय नीति से सम्बन्धित होते हैं। नागरिक प्रत्यक्ष रूप से स्वार्थरत होने के कारण इन पर निष्पक्ष दृष्टिकोण से विचार नहीं करते। ऐसी स्थिति में पूर्वाग्रहों और दुराग्रहों के वशीभूत होकर निर्णय लिया जाता है।

(9) जनता द्वारा स्वीकृत हो सके, इसके लिए सरकार द्वारा प्रेषित प्रस्ताव, समझौते की भावना से प्रभावित होते हैं, किसी निर्भीक कार्यक्रम से नहीं। इससे राष्ट्रीय जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(10) जनता अधिकांशतः अन्धविश्वासी तथा रूढ़िवादी होने के कारण प्रगतिशील कानूनों का विरोध करती है।

(11) यह पद्धति अत्यन्त खर्चीली और बाधा उत्पन्न करने वाली है। इससे थोड़े-थोड़े समय के बाद देश में राजनीतिक अनिश्चय तथा अनिश्चितता को जन्म मिलता है। भारत सरीखे देश में तो इसका प्रयोग सम्भव ही नहीं।

(12) कई बार लोक-निर्णय के अनुसार मत लेने का अवसर उपस्थित होने तक प्रश्न सामयिक न रहकर अनावश्यक अथवा अप्रासंगिक हो जाता है।

प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के सफलतापूर्वक कार्य करने के प्रमुख कारण
(Main Reasons for the Successful Working of Direct Democracy)

विगत अनेक शताब्दियों से स्विट्ज़रलैण्ड में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का प्रयोग सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है। इसकी सफलता के मुख्य कारण निम्नानुसार है—

(1) जनता का चरित्र (People's Character)—प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र में जनता की सीधी भूमिका रहती है जिसकी सफलता जनता की सुयोग्यता अथवा उच्च चरित्र पर निर्भर करती है। सौभाग्यवश स्विस जनता अपने कर्तव्यों और अधिकारों के पूर्ण निष्ठावान् और जागरूक है जो योग्य व्यक्तियों को ही निर्वाचित है। स्विस निवासियों में व्यवहार-कुशलता, राष्ट्र-प्रेम, राजनीतिक जागरूकता, उदारता जैसे सभी नागरिक गुण पाए जाते हैं। यहाँ के नागरिक सुशिक्षित तथा सुसंस्कृत हैं। यहाँ की जनता में विधि-निर्माण के लिए आवश्यक निर्णय शक्ति और शान्त स्वभाव दोनों बातें पाई जाती हैं। स्विस लोग न तो अत्यन्त रूढ़िवादी हैं और न अत्यन्त उग्रवादी। उनकी वृत्ति मध्य-मार्ग पर चलने की है इसीलिए प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की व्यवस्था द्वारा प्राप्त अपने

अधिकारों का ये अत्यन्त विवेकपूर्ण ढंग से प्रयोग करते हैं। इस तरह नागरिकों का उच्च चरित्र प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र को शक्ति देने में सफल रहा है।

(2) प्रजातान्त्रिक परम्पराएँ (Democratic Conventions)—स्विट्जरलैण्ड में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की सफलता का दूसरा कारण वहाँ प्रचलित प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की परम्पराएँ हैं जो सैंकड़ों वर्षों से सुचारु रूप में चलती आ रही हैं। जनमत-संग्रह तथा आरम्भक के साधनों के अनेक लाभ स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। यह सार्वजनिक सम्प्रभुता के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप प्रदान करता है, व्यवस्थापिका पर अंकुश लगाने का कार्य करता है, नागरिकों में देश-प्रेम, जनसेवा एवं कर्त्तव्य-परायणता की भावना का विकास करता है, दलगत भावना को शान्त करता है तथा लगभग प्रत्येक प्रश्न पर जनता के निर्णय को अन्तिम स्थान देता है। इन साधनों के फलस्वरूप जन-इच्छा के प्रतिबिम्बित होने के साथ-साथ प्रशासन को सुयोग्य राजनीतिज्ञों के अनुभव का पूर्ण लाभ प्राप्त होता है।

(3) तटस्थता की नीति (Policy of Neutrality)—स्विट्जरलैण्ड एक ऐसा देश है जो तटस्थता की नीति का अनुसरण करता रहा है और जिसे विश्व के राष्ट्रों ने मान्यता दी है। अतः यह देश सदैव संकटों से मुक्त रहा है और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों और संघर्षों के कुप्रभाव से लगभग अछूता रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में तटस्थता अपनाने का कारण स्विट्जरलैण्ड आन्तरिक मामलों की ओर अधिक ध्यान दे सका है। उसकी यह स्थिति देश में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के विकास में सहायक सिद्ध हुई है।

(4) देश का छोटा आकार (Small Size of the Country)—वर्तमान युग में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्रीय प्रणाली स्विट्जरलैण्ड में सर्वाधिक सफलतापूर्वक इसीलिए चल पा रही है क्योंकि यह एक छोटा पहाड़ी देश है और यहाँ जनता की राय जानना सुगम है। स्विट्जरलैण्ड छोटे-छोटे कैंटनों में विभाजित है अतः यहाँ के लोग प्रत्यक्ष रूप से शासन-कार्य में भाग ले सकते हैं और लोक-सभाओं, आरम्भक एवं जनमत संग्रह के माध्यम से प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकते हैं।

(5) सीमित जनसंख्या (Limited Population)—प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का करोड़ों की जनसंख्या वाले राष्ट्रों में सफल होना सम्भव नहीं है क्योंकि इतनी जनसंख्या में लोक निर्णय और आरम्भक की सफलता असम्भव है। स्विट्जरलैण्ड की जनसंख्या 90 लाख के लगभग है, अतः वहाँ प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का सफल होना आश्चर्य की बात नहीं है।

(6) स्थानीय स्वशासन की परम्परा (Tradition of Local Self-govt.)—स्विस प्रजातन्त्र की सफलता का प्रमुख कारण वहाँ की स्थानीय स्वशासन संस्थाएँ हैं जिनकी तीन महत्वपूर्ण देनें हैं—(i) कुशल शासन, (ii) स्थानीय स्वतन्त्रता एवं प्रेम और (iii) नागरिकों को राजनीतिक शिक्षा एवं अनुभव।

स्विस प्रजातन्त्र का मूल सिद्धान्त है—"पहले कम्यून, फिर कैंटन और बाद में राज्य-मण्डल।" वहाँ की जनसत्ता का आधार स्वायत्त संस्थाएँ हैं और जनता की इच्छा यहीं से प्रतिबिम्बित होकर राष्ट्रीय संस्थाओं में प्रतिध्वनित होती है।

(7) राष्ट्रीय एकता (National Unity)—स्विट्जरलैण्ड विविध भाषाओं, धर्मों और जातियों वाला राष्ट्र है, फिर भी यहाँ राष्ट्रीय एकता विद्यमान है, विविधता में एकता मौजूद

है धर्म और भाषाएँ स्विस राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधक सिद्ध नहीं हुई हैं। पृथकतावादी और अलगाववादी प्रवृत्तियाँ प्रजातन्त्र के लिए सदैव घातक होती हैं, लेकिन स्विस प्रजातन्त्र इस अभिशाप से अछूता रहा है।

(8) सुसंगठित राजनीतिक दलों का अभाव (Lack of Organised Political Parties)—सुसंगठित राजनीतिक दल अप्रत्यक्ष प्रजातन्त्र को प्रोत्साहित करते हैं, किन्तु स्विट्जरलैण्ड में ऐसे दलों के न होने से प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के विकास को बल मिला है। स्विस राजनीतिक व्यवस्था पर राजनीतिक दलों का कुप्रभाव भी नहीं पड़ा है।

(9) आर्थिक असमानता का अभाव (Absence of Economic Inequality)—स्विस जनता में सामान्यतः तीव्र आर्थिक असमानता का अभाव है। आर्थिक असमानता या विषमता के अभाव के कारण उनमें आपसी वैमनस्य और संघर्ष की स्थिति का अभाव पाया जाता है। देश की सामाजिक और आर्थिक समानता की भावना स्विस जनता को एक सूत्र में बाँधे रहती है।

(10) स्वतन्त्रता की अदम्य भावना (High Sense of Liberty)—स्विट्जरलैण्ड हजारों वर्षों से एक स्वाधीन राष्ट्र रहा है। अत: यहाँ की जनता में स्वतन्त्रता की अदम्य भावना पाई जाती है। इस स्वतन्त्रता की भावना ने ही स्विट्जरलैण्ड की प्रजातान्त्रिक शासन-प्रणाली को सुरक्षित रखने में अहम भूमिका का निर्वाह किया है।

(11) शक्तियों का विकेन्द्रीकरण (Decentralisation of Powers)—स्विट्जरलैण्ड में भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी रहते हैं। उनकी भाषाएँ और उनके रीति-रिवाज सभी कुछ परस्पर भिन्न हैं। अतः वे प्रशासन पर आधिपत्य स्थापित करने के प्रयास में नहीं रहते और शक्तियों का केन्द्रीयकरण न कर विकेन्द्रीकरण से ही प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की नींव पुष्ट करते हैं।

(12) पेशेवर राजनीतिज्ञों का अभाव (Lack of Professional Politicians)—स्विट्जरलैण्ड में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की सफलता में राजनीतिज्ञों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है जो राजनीति को एक 'पेशा या व्यवसाय' नहीं समझकर जन-सेवा का साधन मानते हैं। इन पेशेवर राजनीतिज्ञों के अभाव के कारण देश राजनीतिक भ्रष्टाचार तथा घोटालों की दूषित प्रवृत्ति से बचता रहता है।

स्विट्जरलैण्ड की प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र व्यवस्था का मूल्यांकन

(Evaluation of Swiss Direct Democracy System)

स्विट्जरलैण्ड प्रजातन्त्र का विशिष्ट रूप है। आज विश्व में यह एक अनुकरणीय आदर्श बना हुआ है।

कोडिंग्स (Coddings) के शब्दों में, "वस्तुस्थिति यह है कि स्विट्जरलैण्ड में लोक-निर्णय और आरम्भक का प्रयोग निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है, यह इनकी सफलता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।"

स्विट्जरलैण्ड ने दिखा दिया है कि प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का प्रयोग बिना भ्रष्टाचार के किया जा सकता है। वहाँ के प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र में अनुचित दबाव, मतपत्रों की खरीद,

जाली हस्ताक्षर, मतदाताओं को बहकाना आदि भ्रष्ट उपायों का प्रयोग नहीं किया जाता। इसके लिए मुख्यत. स्विस जनता का उच्च चरित्र ही मुख्य रूप से उत्तरदायी रहा है।

स्विस जनता अविवेकी, आवेशपूर्ण अथवा समस्याओं के प्रति अज्ञानी नहीं है। 1848 से 1952 तक 104 बार सांविधानिक संशोधनों के सम्बन्ध में मतदान हुए। इनमें संघीय सभा द्वारा 61 प्रस्तावों पर अनिवार्य जनमत संग्रह हुआ जिनमें से 43 प्रस्तावों को जनता ने स्वीकार किया और 18 को अस्वीकार। लगभग इसी समय के अन्तर्गत 34 संविधान सम्बन्धी आरम्भिक प्रस्ताव प्रस्तुत किए गए जिनमें से 6 अस्वीकार हुए। इसी तरह 46 व्यवस्थापन सम्बन्धी प्रस्तावों पर जनमत-संग्रह (Legislative Referendum) लिया गया जिनमें से 17 पर जनता ने अपनी स्वीकृति प्रदान की। दो बार संविधान के पूर्ण संशोधन के प्रस्ताव आए—1880 ई. में और 1935 ई. में, परन्तु दोनों प्रस्ताव अस्वीकृत हो गए। 1874 ई. से 1954 तक स्विस संघीय सभा ने 500 से अधिक कानून निर्मित किए जिनमें से केवल 63 पर जनमत-संग्रह की माँग की गई और इनमें 23 कानून जनमत-संग्रह द्वारा स्वीकृत हुए और 40 कानून अस्वीकृत।

उपर्युक्त प्रत्यक्ष जनतन्त्र की पद्धतियों के प्रति स्विस जनता की पूर्ण निष्ठा है। रेपार्ड का कथन है कि "जब कोई व्यक्ति स्विट्जरलैण्ड की किसी सड़क के व्यक्ति से यह पूछता है कि क्या उसका देश प्रत्यक्ष लोकतन्त्र के प्रयोग और उसके परिणाम से सन्तुष्ट है तो वह निस्संदेह सकारात्मक अर्थात् 'हाँ' में उत्तर देगा। वह प्रयोग शब्द को स्वीकार न करेगा क्योंकि प्रयोग की स्थिति समाप्त हो गई है। आरम्भक व लोक-निर्णय का विरोध करने वालों के सन्देह समाप्त हो चुके हैं, जिस प्रकार इन प्रविधियों के अंध-समर्थकों का अन्धविश्वास भी समाप्त हो चुका है।"[1]

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि स्विस प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के प्रयोग ने विश्व के प्रजातन्त्रीय देशों के सम्मुख अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित किया है।

---

1. *Reppard, W.E.*: The Govt. of Switzerland, p. 74-75

29

स्विट्जरलैण्ड के राजनीतिक दल

(Political Parties of Switzerland)

स्विट्जरलैण्ड की प्रजातान्त्रिक व्यवस्था दलीय अवगुणों से मुक्त है। फिर भी राजनीतिक दल देश की सभी राजनीतिक संस्थाओं—संघीय सभा, संघीय परिषद् और अन्य सभी प्रतिनिधि संस्थाएँ अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं। इसके बावजूद स्विस दलीय व्यवस्था को 'दुर्बल दलीय' व्यवस्था की संज्ञा दी जाती है। यहाँ दलीय व्यवस्था उस रूप में कार्य नहीं करती है, जिस तरह से संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ग्रेट ब्रिटेन में कार्यरत है।

दुर्बल दलीय व्यवस्था के कारण

(Causes of Weak Party System)

ब्राइस का मत है कि "स्विट्जरलैण्ड में राजनीतिक दल ब्रिटेन, फ्रांस या अन्य किसी लोकतान्त्रिक देश की अपेक्षा अत्यन्त कम भूमिका निभाते हैं।"[1] स्विट्जरलैण्ड में दुर्बल दलीय व्यवस्था के निम्न निम्नांकित कारण उत्तरदायी रहे हैं—

(1) स्विस कार्यकारिणी का स्थायित्व स्विस दलबन्दी की दुर्बलता और अशक्तता का प्रमुख कारण है। अपने कार्यकाल में संघीय परिषद् या फेडरल कौंसिल के सदस्य हटाए नहीं जा सकते, अतः वे दलबन्दी के प्रपंच में नहीं पड़ते। साथ ही संघीय परिषद् को हटाने के लिए जनता में भी दलबन्दी की भावनाएँ विकसित नहीं होतीं।

(2) फेडरल कौंसिल (संघीय परिषद्) का निर्माण भी दलीय आधार पर नहीं होता और किसी दलीय पूर्वाग्रहों तथा दुराग्रहों के आधार पर कार्य करने की अपेक्षा नहीं की जा सकती है।

(3) संघीय परिषद् के सदस्य प्रायः पुनर्निर्वाचित होते रहते हैं अतः वहाँ दलबन्दी का सवाल ही पैदा नहीं होता। वहाँ सत्ता की अनुचित स्पर्धा या दौड़ नहीं है।

(4) दलबन्दी सदैव भ्रष्ट शासन-व्यवस्था (Corrupt System) में जोर पकड़ती है। लूट-प्रथा (Spoil System) में भी इसका विकास होता है। जहाँ शक्ति प्राप्त करने पर शासक-दल के लोगों को पदों पर भर दिया जाता है। सौभाग्यवश स्विट्जरलैण्ड में यह प्रणाली नहीं है। प्रथम यहाँ पर नियुक्तियाँ योग्यता के आधार पर की जाती हैं और

1. *Bryce* : Modern Democracies, Vol. I, p. 390.

द्वितीय, पदों की संख्या भी इतनी अधिक नहीं होती कि कोई दल अपने समर्थकों को भर सके।

(5) स्विट्जरलैण्ड में पदों के वेतन भी इतने नहीं है कि वे महत्वाकांक्षी व्यक्तियों को आकर्षित कर सकें।

(6) स्विट्जरलैण्ड में व्यवस्थापिका अर्थात् संघीय सभा की विधायी शक्तियाँ सीमित हैं और इस सीमित क्षेत्र में भी उसकी शक्ति अन्तिम नहीं मानी जा सकती है। वहाँ अन्तिम शक्ति जनता के हाथों में है। लोक-निर्णय, निदन्ध-उपक्रम तथा प्रत्याहरण (Referendum, Initiate and Re-call)—प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के तीन मुख्य उपकरण हैं, जिसके कारण भी दलबन्दी को अनुचित रूप से महत्त्व नहीं मिल पाया है।

(7) स्विट्जरलैण्ड में वैधानिक एवं विदेशी मामलों में कोई मतभेद नहीं होता, अतः दलगत सक्रियता की कोई स्थिति उत्पन्न नहीं हो पाती।

(8) स्विस संघीय सभा का अधिवेशन बहुत थोड़े दिनों तक चलता है। वह प्रायः एक महीने से अधिक नहीं चलता। इस अल्प अवधि में संघीय सभा के सदस्य अपने कार्यों में ही इतने व्यस्त रहते हैं कि उनको दलबन्दी की जटिलताओं में फँसने का अवकाश ही नहीं मिलता।

(9) स्विस नागरिकों में आर्थिक विषमता अथवा असमानता का अभाव पाया जाता है। आर्थिक समानता के इस वातावरण में दलबन्दी की उग्र भावना को विकसित होने का अवसर ही नहीं मिला।

(10) स्विस जनता का उच्च चरित्र राष्ट्रीय हितों को सुरक्षित रखता है। स्विस नागरिक दलबन्दी के चक्कर से अपने को मुक्त रखते हैं।

(11) स्विस नागरिकों के उन्नत आर्थिक जीवन-स्तर ने भी उन्हें दलबन्दी से बचाया है।

(12) पेशेवर या व्यावसायिक प्रवृत्ति के राजनीतिज्ञों के अभाव ने भी दलबन्दी बुराइयों को पनपने नहीं दिया है।

(13) स्विट्जरलैण्ड द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में 'स्थायी तटस्थता' के सिद्धान्त को अपनाने के कारण इसे प्रबल समस्याओं या चुनौतियों का सामना नहीं करना पड़ा, फलतः देश में उग्र दलबन्दी की भावना का विकास नहीं हो पाया।

दल-प्रणाली का संक्षिप्त इतिहास

(Brief History of the Swiss Party System)

1948 ई. के संविधान के निर्माण के समय तक दलीय स्थिति स्पष्टतः दृष्टिगोचर हो चुकी थी। उस समय तीन दलों की नींव पड़ चुकी थी—(i) उदारवादी दल (Liberal Party), (ii) क्रान्तिकारी या उग्रवादी दल (Radical Party, (iii) कैथोलिक अनुदार दल (Catholic Conservative Party)। ये तीनों दल आज भी विद्यमान हैं।

उदार दल का निर्माण बुद्धिजीवियों, श्रमिकों और किसानों ने मिलकर किया था। ये लोग 1815 के समझौते (The Pact of 1815) द्वारा स्थापित सामंती व्यवस्था के

विरोध में थे। 1830 के उदार दल के विशेष प्रयासों के फलस्वरूप ही अधिकांश कैंटनों में ऐसी व्यवस्था स्थापित हो सकी जिसमें लगभग सभी को राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी। 1832 ई. में उदार दल वाम-पक्ष दल से अलग हो गया और उसने अपना नाम क्रान्तिकारी लोकतान्त्रिक दल (Radical Democratic Party) रख लिया। इस दल का उद्देश्य एक ऐसे लोकतान्त्रिक राष्ट्रीय राज्य की स्थापना था जिसमें व्यक्ति को सर्वत्र राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो सके। उदार दल और क्रान्तिकारी दल का विरोध करने के लिए एक नवीन 'कैथोलिक अनुदार दल' (Cathoic Conservative Party) का अभ्युदय हुआ। सात कैथोलिक बहुमत दल वाले कैण्टनों में इस दल के लोगों का पूर्ण प्रभाव था। 1845 ई. में सातों कैथोलिक कैण्टनों में इस दल के लोगों का पूर्ण प्रभाव था। 1845 ई. में सातों कैथोलिक कैण्टनों ने अपना अलग संघ बनाया जिसका नाम साउण्डरबन्द (Sounderband) रखा गया। इस संघ की स्थापना से गृह-युद्ध का सूत्रपात हुआ जिसे एक माह में समाप्त कर दिया गया। कैथोलिकों की हार वास्तव में राष्ट्रीय आन्दोलन की विजय थी। 1848 ई. में जब नवीन संविधान का निर्माण हुआ तो उदार दल एवं क्रान्तिकारी दल ने मिलकर उसे प्रगति का प्रतीक बनाने का प्रयत्न किया और कैथोलिक दल के उग्र विरोध के बावजूद वे काफी हद तक उस समय सफल भी हुए।

परन्तु 1848 ई. के बाद उदारवादी और क्रान्तिकारी दलों में सहयोग नहीं रह सका क्योंकि उदारवादी उन सुधारों का समर्थन नहीं कर सके जिन्हें क्रान्तिकारी करना चाहते थे। क्रान्तिकारी दल को जनता का समर्थन प्राप्त हुआ और उस समर्थन के आधार पर क्रान्तिकारी दल ने 1874 ई. संविधान का संशोधन पारित कराया। तत्पश्चात् 1919 तक क्रान्तिकारी दल का प्रभुत्व रहा, यद्यपि इसी मध्य 1890 में देश के राजनीतिक मंच पर समाजवादी दल (Socialistic Party) नामक एक नवीन दल का भी अभ्युदय हो गया। 1918 में क्रान्तिकारी दल का पुनर्विभाजन हुआ। इसके कुछ सदस्यों ने दल की ग्रामीण नीति से असन्तुष्ट होकर एक नए दल 'कृषक दल' का संगठन किया। 1919 में एक जनमत-संग्रह द्वारा जनता ने व्यवस्थापिका में प्रतिनिधित्व के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) की प्रणाली स्वीकार की। फलस्वरूप 1919 में चुनाव हुए और उसमें स्विस राजनीतिक दल प्रणाली का रूप बहुदल प्रणाली (Multi-Party System) का हो गया।

उपर्युक्त कैथोलिक, उदारवादी, क्रान्तिकारी, समाजवादी व कृषक दलों के अतिरिक्त स्विट्जरलैण्ड में और भी अनेक छोटे-छोटे दल अस्तित्व में आए। 1935 ई. में स्वतन्त्र दल (Independent Party) का जन्म हुआ। इसने कृषक दल से अलग होकर एक पृथक् दल बनाया। 1941 ई. में प्रजातन्त्रवादी दल का उदय हुआ। इसके अतिरिक्त साम्यवादी दल भी अस्तित्व में आया।

स्विट्जरलैण्ड की दल-प्रणाली का इस प्रकार जो बहुदलीय रूप बना, वह अब तक चला आ रहा है और किसी भी एक दल को इतना प्रभुत्व प्राप्त नहीं हुआ है कि उसे शासन-सत्ता पर एकाधिकार प्राप्त हो सके।

दलों का संगठन
(Organisation of the Parties)

स्विट्जरलैण्ड में ब्रिटेन, अमेरिका, पूर्व सोवियत संघ आदि की तुलना में राजनीतिक दलों के सगठन अत्यधिक शिथिल व अव्यवस्थित हैं यहाँ तक कि कैंटनों के दलीय सगठन भी संघीय संगठन के अधीन नहीं हैं। केवल समाजवादी दल को छोड़कर स्विट्जरलैण्ड में अन्य दलों के स्वतन्त्र राष्ट्रीय संगठन नहीं हैं। स्विस मतदाता दलों की अपेक्षा उम्मीदवारों के व्यक्तिगत गुणों को अधिक महत्व देते हैं। अनेक सदस्य संघीय सभा में चुने जाने के पश्चात् यह निश्चय करते हैं कि वे किस दल से सम्बन्धित रहें। इसके अतिरिक्त संघीय सभा के दोनों सदनों में प्रतिनिधियों के बैठने का प्रबन्ध दल के अनुसार न किया जाकर प्रदेशों के अनुसार किया जाता है। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी आधुनिक समय में दलों के संगठन में कुछ दृढ़ता और नियमितता आने लगी है।

संगठन अथवा ढाँचे की दृष्टि से सामान्यतः प्रत्येक दल के तीन प्रमुख अंग हैं—

(i) डायट (Diet), (ii) केन्द्रीय समिति (Central Committee) एव (iii) कार्यकारिणी समिति (Executive Committee)। डायट दल की सर्वोच्च सभा होती है। इसकी बैठक वर्ष में प्रायः एक बार की जाती है जिसमें दल की वार्षिक रिपोर्ट, वार्षिक आय-व्यय, समकालीन समस्याओं आदि पर दल के रुख और दल की नीतियों पर विचार-विमर्श होता है और निर्णय लिए जाते हैं। केन्द्रीय समिति दल की कार्यकारिणी समिति होती है जिसका निर्वाचन प्रत्येक वर्ष डायट द्वारा होता है परन्तु आकार बढ़ जाने के कारण एक छोटी कार्यकारिणी समिति का निर्वाचन करती है। दल के प्रमुख अधिकारियों में अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा कोषाध्यक्ष आदि होते हैं।

प्रमुख राजनीतिक दलों की नीतियाँ एवं कार्य-पद्धतियाँ
(Policies and Working-Procedures of Major Political Parties)

स्विट्जरलैण्ड के प्रमुख राजनीतिक दलों की नीतियों एवं कार्य-पद्धति का विश्लेषण निम्नानुसार किया जा सकता है—

(1) कैथोलिक दल (Catholic Party)

इस दल को कैथोलिक अनुदार या रुढ़िवादी दल (Catholic Conservative Party) भी कहते हैं। यह स्विट्जरलैण्ड का एक प्रमुख दल है। साउण्डरबन्द के युद्ध के समय से यह दल कैथोलिक चर्च की रीतियों, नीतियों की रक्षा करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहा है। ग्रामीण कैण्टनों में कैथोलिक चर्च के प्रभाव को स्थिर रखने के लिए यह दल कैण्टनों के अधिकारों का समर्थक और संघीय शक्ति के केन्द्रीयकरण का विरोधी रहा है। इस दल की निरन्तर यह चेष्टा रही है कि स्विस संविधान से उन भागों को निकाल दिया जाए जो चर्च के कार्यकलापों पर प्रतिबन्ध लगाने वाले हैं। दल सरकार के पारिवारिक मामलों और शिक्षा में हस्तक्षेप का भी विरोधी है। दल का विश्वास है कि

सामाजिक समर्थन और अनुशासन तभी सम्भव है जब धर्म और शिक्षा का प्रसार हो तथा उसका पूरा उत्तरदायित्व चर्च पर हो।

कैथोलिक दल व्यक्ति की स्वतन्त्रता के उस रूप का समर्थक है जिसके अन्तर्गत व्यक्तिगत सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार को असीमित माना जाता है। दल इस बात का विरोधी है कि लोक-कल्याण के नाम पर व्यक्ति को व्यक्तिगत सम्पत्ति अधिकार से वंचित किया जाये और उस पर किसी प्रकार के प्रतिबन्ध लगाए जाएँ। इस दल में एक समाजवादी वर्ग का अभ्युदय है जो अधिक प्रगतिशील विचारों का है। इस पक्ष के प्रभाव के कारण कैथोलिक दल अब श्रमिकों के सम्बन्ध में उदारवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए श्रमिकों के अधिकारों में पारिवारिक भत्ते, सामाजिक सुरक्षा कानूनों तथा श्रमिक संघों को प्रोत्साहन जैसी बातों को अपने कार्यक्रमों में स्थान दिया है। किन्तु इसकी नीति का मूल अब भी रूढ़िवादिता ही है। कृषकों, श्रमिकों एवं छोटे रोजगार पाने वाले लोगों के प्रति इस दल की सहानुभूति शनैः-शनैः बढ़ती जा रही है।

(2) क्रान्तिकारी दल (Radical Party)

1832 ई. में उदारवादी दल से अलग होकर कुछ लोगों ने क्रान्तिकारी दल की स्थापना थी। यह दल कुछ मामलों में कैथोलिक दल का समर्थन करता है तो कुछ मामलों में समाजवादी दल का साथ देता है। इस तरह यह दल न तो अत्यधिक अनुदार है और न अत्यधिक प्रगतिशील ही। यह तो एक मध्यम-मार्गी राजनीतिक दल है। इस दल का विश्वास है कि राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने के लिए संघीय सरकार को शक्ति-सम्पन्न बनाया जाए। साथ ही यह कैंटनों के अधिकारों को एकदम कम कर देने के पक्ष में भी नहीं है, क्योंकि यह मुख्यतः कैंटनों का ही दल है और इसके समर्थक देश के सभी भागों तथा जनता के सभी वर्गों में पाए जाते हैं। इस दल का झुकाव इस ओर है कि जो अधिकार केन्द्र को प्राप्त हैं उनका प्रयोग यह यथासम्भव कैंटनों के सहयोग से करे, लेकिन यह सहयोग इस तरह का हो कि संघीय शासन की शक्ति में ह्रास न आ पाए। पर्याप्त राष्ट्रीय प्रतिरक्षा के लिए यह दल सैनिक संगठन की स्थापना पर जोर देता है। धर्म-निरपेक्षता, राजनीतिक स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र में इस दल की पूर्ण आस्था है और विदेशी मामलों में यह निष्पक्षता चाहता है। यह कैथोलिक चर्च की शक्ति की वृद्धि का और धार्मिक स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप का विरोधी है। यह दल सम्पत्ति के अधिकार का समर्थक है, किन्तु वह असीमित अधिकार के पक्ष में नहीं है।

(3) समाजवादी प्रजातान्त्रिक दल (Socialist Democratic Party)

1890 ई. में समाजवादी प्रजातान्त्रिक दल की स्थापना की गई। यह दल स्विट्जरलैण्ड के तीन प्रमुख दलों में से एक है और वर्तमान में संघीय परिषद् में इसके दो सदस्य हैं। यह दल सभी उद्योगों का राष्ट्रीयकरण और सभी व्यक्तिगत एकाधिकारों पर सामूहिक अधिकार चाहता है। उसकी नीति में इस बात पर बल नहीं दिया जाता कि राजनीतिक शक्ति प्रमुख रूप से श्रमिकों के हाथ में हो। यह श्रमिकों के लिए अधिक वेतन तथा सामाजिक सुरक्षा व बेकारी में सहायता, सभी को रोजगार देने, स्त्रियों को

मताधिकार देने और संघीय परिषद् के प्रत्यक्ष निर्वाचन का पक्षपाती है। 1971 ई. में स्विट्जरलैण्ड में स्त्रियों को मताधिकार दिया गया है, उसकी पृष्ठभूमि में इस दल की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। यह दल इस बात का भी समर्थक है कि जहाँ तक सम्भव हो, श्रमिकों को संगठित वार्ता के द्वारा अपनी दशा सुधारने के लिए प्रयत्न करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए और राज्य को तभी हस्तक्षेप करना चाहिए जब संगठित वार्ता असफल हो जाए। इस दल का मत है कि स्विट्जरलैण्ड को संयुक्त राष्ट्र संघ का सक्रिय सदस्य बनना चाहिए।

यह दल इस बात का भी पक्षपाती है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था से व्यक्ति और समाज दोनों का ही कल्याण सम्भव है। 1959 के दलीय कार्यक्रम में यह स्पष्टतः स्वीकार किया गया था कि "बिना किसी वंश और सम्पत्ति सम्बन्धी भेदभाव के प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्रतिभा एवं योग्यता का विकास करने के लिए स्वतन्त्र हो।" वस्तुतः यह दल जन-सहयोग, सन्तुलित अर्थव्यवस्था तथा पूँजीवाद और समाजवाद के समन्वय का पक्षपाती है। अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यह दल शान्तिपूर्वक संवैधानिक तथा लोकतान्त्रिक तरीके अपनाने का समर्थक है।

(4) कृषक दल (Agrarian Party)

कृषक, श्रमिक तथा मध्यवर्गीय दल (Agrarian, Artisans and Middle Class Party) को संक्षेप में कृषक दल (Farmers Party) का नाम दिया जाता है। 1918 में उदार दल के विघटित हो जाने के फलस्वरूप इस दल का जन्म हुआ। यह स्विट्जरलैण्ड के छोटे दलों में सबसे प्रमुख है। इसका प्रधान ध्येय किसानों, कारीगरों और मध्यवर्गीय जनता की दशा में सुधार करना है। केवल नीति सम्बन्धी घोषणाओं के बजाय यह दल उन कार्यों के करने में अधिक विश्वास करता है जिनसे उपर्युक्त लोगों की दशा में सुधार हो। इस दल का प्रमुख नारा है—"प्रबल राष्ट्रीय सुरक्षा, महान् केन्द्रीकरण, विशाल संघीय आर्थिक सहायता, अनाज की उत्पत्ति को प्रोत्साहन, अनाज पर सरकार का पूर्ण अधिकार तथा सरकार द्वारा कृषि सम्बन्धी वस्तुओं का मूल्य-निर्धारण।"

(5) साम्यवादी दल (Communist or Labour Party)

साम्यवादी दल का वर्तमान नाम श्रमिक दल है। यह दल अभी तक कोई विशेष शक्ति प्राप्त नहीं कर सका है। इस दल पर 1936, और 1940 में प्रतिबन्ध लगा दिया गया था जो 1945 से हटा लिया गया। इसकी नीति मुख्यतः पुरातन साम्यवाद पर आधारित रही है और इसीलिए इसे देश में महत्वपूर्ण समर्थन नहीं मिल पाया है। इस दल की मुख्य नीतियाँ हैं—बड़े व्यापारों का केन्द्रीयकरण, वृद्धावस्था का बीमा, स्त्री मताधिकार, सप्ताह में 40 घण्टे कार्य आदि।

(6) उदारवादी दल (Liberal Party)

उदारवादी दल भी स्विस राजनीति में प्रधान स्थान रखता था जिसने कभी क्रान्तिकारी दल के साथ सन् 1847 के संविधान के श्रीगणेश के समय शासन सम्भाला

था किन्तु धीरे-धीरे इस दल की शक्ति में ह्रास होता गया और आज यह एक शक्तिहीन तथा प्रभावहीन दल है। यह दल परम्परागत उदारवाद एवं अहस्तक्षेपवादी नीति (Laissez-faire) का पोषक है और समाजवाद तथा प्रत्यक्ष संघीय करों का विरोधी है। अधिकांश धनिक प्रोटेस्टेंट्स इसके समर्थक हैं।

(7) स्वतन्त्र दल (Independent Party)

1935 ई. में स्थापित यह दल आर्थिक क्षेत्र में राज्य-हस्तक्षेप का विरोधी व उपभोक्ताओं के हितों का समर्थक है। कोडिंग्स के मतानुसार "स्वतन्त्र दल अपनी राजनीतिक शक्ति की दुर्बलता को अपनी भाषण-पटुता द्वारा कम कर लेता है।"[1]

स्विस राजनीतिक दल-पद्धति की विशेषताएँ
(Features of Swiss Political Party System)

स्विस राजनीतिक दल-पद्धति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नानुसार हैं—

(1) स्विस राजनीतिक दलों का आधार कैण्टन हैं न कि संघ अथवा राष्ट्र। इसके दो कारण विशेष रूप से उत्तरदायी रहे हैं—(i) साधारण स्विस नागरिक का यह विश्वास है कि उसके भाग्य का निर्धारण अधिकांशतः स्थानीय मुद्दों की राजनीति द्वारा होता है, संघीय नीतियों द्वारा नहीं। (ii) दलों के निर्माण और संगठन का आधार प्राथमिक रूप में स्थानीय प्रश्न है। स्विट्जरलैण्ड में राष्ट्रीय चुनाव नहीं होते स्विट्जरलैण्ड में बहुदलीय प्रणाली के भी कुछ विशेष कारण रहे हैं। प्रथम स्विट्जरलैण्ड में अनेक प्रकार की विविधताएँ हैं। द्वितीय, स्विट्जरलैण्ड में आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार चुनाव होते हैं जिसके अन्तर्गत छोटे-छोटे दल भी अपना अस्तित्व बनाये रहते हैं। तृतीय, स्विट्जरलैण्ड में संघीय परिषद् के सदस्य एक दल के नहीं होते। वे कई दलों के सदस्य हो सकते हैं और यह भी आवश्यक नहीं है कि वे एक ही सामान्य कार्यक्रमों को मानने वाले हों। संघीय सभा के दोनों सदनों में भी अनेक दलों के प्रतिनिधि होते हैं।

(2) स्विट्जरलैण्ड में अमेरिका एवं अन्य यूरोपीय देशों जैसी विषम एवं कटु दलबन्दी का अभाव है। दलगत भावना का अभाव स्विस दल पद्धति की एक अनुपम विशेषता है।

(3) अमेरिका के समान ही स्विट्जरलैण्ड में भी राजनीतिक दलों को संविधान में कोई स्थान नहीं दिया गया है, वरन् समय के साथ उनका विकास हुआ है। कैण्टनों के संविधान में भी दलों के विषय में प्रावधान नहीं है। जब से आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली को लागू किया गया है, तब से राजनीतिक दलों को अप्रत्यक्ष रूप से संविधान में स्थान मिल गया है।

(4) स्विट्जरलैण्ड में विभिन्न दलों में पारस्परिक सहयोग, सम्पर्क, सहअस्तित्व एवं समझौते की भावनाएँ विद्यमान हैं। वे विषमता, विरोध तथा वैमनस्य की भावना से कार्य नहीं करते। संघीय परिषद् और संघीय सभा में सभी दलों के प्रतिनिधियों में स्पष्टतः यही

1. *Coddings, G.A : Govt. of Switzerland.*

भावना पाई जाती है। यही कारण है कि कुछ लेखकों ने स्विस शासन-व्यवस्था को बहु-दलीय की अपेक्षा निर्दलीय कहना अधिक उचित समझा है।

(5) यद्यपि स्विट्जरलैण्ड में भाषा, जाति एवं धर्म की विभिन्नताएँ विद्यमान हैं, तथापि राजनीतिक दलों का संगठन (अनुदार कैथोलिक दल को छोड़कर) इनमें से किसी आधार पर न होकर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सिद्धान्तों के आधार पर हुआ है।

(6) स्विस दलों में 'करिश्माई नेतृत्व' का अभाव पाया जाता है, जैसा कि इंग्लैण्ड और भारत में है। इसका प्रमुख कारण वहाँ का दुर्बल दलीय संगठन है।

(7) स्विस दलों के चुनाव तरीके औचित्य की सीमा में रहते हैं। वे अनुचित व्यय नहीं करते और राजनीतिक जीवन में शुद्धता या मूल्यों का ध्यान रखते हैं। स्विस जनता पर चुनाव में जितना कम व्यय होता है उतना शायद किसी देश में नहीं होता होगा।

निष्कर्षतः स्विट्जरलैण्ड में राजनीतिक दलों की भूमिका उस तरह से प्रखर नहीं है, जैसी कि अन्य प्रजातान्त्रिक देशों में होती है।

30

जापान के संविधान की पृष्ठभूमि और प्रमुख विशेषताएँ

(The Background and Sailent Features of the Constitution of Japan)

जापान विश्व का एक प्रमुख औद्योगिक राष्ट्र होने के साथ-साथ यह एशिया की एक प्रमुख शक्ति है, अतः इसके संविधान का अध्ययन करना सामयिक तथा प्रासंगिक बन जाता है।

जापान मुख्यतः द्वीपों का देश है। होंशु (Honshu), शिकोकु (Shikoku), क्युशु (Kyushu) तथा होक्काइदो (Hokkaido) इसके चार प्रमुख द्वीप हैं। एशिया महाद्वीप के पूर्वी तट पर यह द्वीप-समूह उत्तर से दक्षिण की ओर 3800 किलोमीटर (2360 मील) लम्बे चाप (Arc) के रूप में फैला हुआ है। इसका क्षेत्रफल 3,77,384 वर्ग किलोमीटर (अर्थात् 1,45,670 मील) है। जापान में क्षेत्रफल की तुलना में जनसंख्या का घनत्व ज्यादा है, जो देश के लिए गंभीर समस्या बन गई है।

जापान का संवैधानिक विकास
(Constitutional Development of Japan)

जापान का वर्तमान संविधान, जिसे 'शोवा संविधान' भी कहा जाता है, दीर्घकालीन विकास का परिणाम रहा है। वर्तमान संविधान से पूर्व मेइजी संविधान (Meiji Constitution) लागू था जो 1889 ई. में लागू हुआ था और 1945 में जापान द्वारा मित्र राष्ट्रों के सामने आत्म-समर्पण करने के पश्चात् समाप्त हो गया। देश में मेइजी संविधान लागू होने के पूर्व कुशोवा प्रशासन तथा सामन्ती युग का प्रचलन था।

सामन्ती युग (1192-1867)

1192 ई. में मिनामोतो परिवार की विजय के साथ 'शोगुन' अर्थात सैन्य शासकों का क्रम शुरू हुआ और इनके अधीन लगभग सात शताब्दियों तक सामन्ती शासन का बोलबाला रहा। मिनोमोतो परिवार के मुखिया योरीतोमो ने सैन्य शासन की स्थापना कर सारी प्रशासनिक शक्तियाँ अपने हाथ में ले लीं जो पहले सम्राट में निहित थीं। इस युग में सामन्तों की शक्ति बढती गई और उन पर केन्द्रीय सरकार का आधिपत्य नाममात्र का रह गया था।

सम्राट की 'शक्तिहीनता' की स्थिति में सामन्तों के पारस्परिक संघर्ष जारी रहे। 1600 में तोकुगावा वंश ने सम्राट तथा प्रशासन पर एकछत्र प्रभाव स्थापित कर लिया तथा 1603 ई. में इसने 'शोगुन' (General Ismo) की उपाधि धारण कर ली।

1603 से 1687 ई. तक तोकुगावा-शासन कायम रहा और जापान एक सामन्ती राज्य की तरह उभरा। सम्राट का अस्तित्व था लेकिन शासक का वास्तविक प्रधान तोकुगावा वंश का अध्यक्ष 'शोगुन' होता था। शोगुन शासन विकेन्द्रीकृत था। शोगुन अपनी शक्तियों का प्रयोग जनता पर न कर विभिन्न सामन्ती-सरदारों पर करता था। केन्द्रीय शासन के पास इने-गिने अधिकार रह गए थे, अन्यथा सभी महत्वपूर्ण शक्तियों का प्रयोग सामन्ती सरदार करते थे। तोकुगावा शासनकाल जापान के लिए 'एकान्तवास का युग' (Period of Isolation) था, क्योंकि इस शासन की नीति जापान को बाह्य विश्व से पृथक् रखने की थी।

मेइजी युग और मेइजी संविधान (1867-1912)
(Meiji Period and Constitution)

देश के सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों तथा सामन्तों में व्याप्त पारस्परिक संघर्षों ने सामन्ती युग की इतिश्री कर दी। 1867 ई. में तोकुगावा शासन की सामन्ती व्यवस्था समाप्त हो गई और 1868 ई. में मेइजी की पुनर्स्थापना से सम्राट पद की पुनः सत्ता स्थापित हो गई। सम्राट मेइजी के शासन काल में जापान की बहुमुखी प्रगति हुई। 1889 ई. में 76 धाराओं वाला नया संविधान लागू हुआ। यह एक लिखित संविधान था जिसने देश में एकात्मक शासन प्रणाली की स्थापना की थी।

शासन की समस्त कार्यकारी, विधायी एवं न्यायिक शक्तियाँ केवल सम्राट में ही निहित थीं। इस संविधान में सम्राट को पवित्र एवं अनुल्लंघनीय (Sacred and Inviolable) माना गया था। इसमें स्वशासन का कहीं भी उल्लेख नहीं था। सम्राट कानून से ऊपर था। वह साम्राज्य का प्रधान था और राजसत्ता के समस्त अधिकार उसी में निहित थे। सम्राट ही देश की कार्यपालिका, व्यवस्थापिका तथा न्यायिक शक्तियों का वास्तविक रूप से प्रयोग करता था। जापान की व्यवस्थापिका को 'डायट' (Diet) कहा जाता था, जिसका स्वरूप द्वि-सदनात्मक था। उच्च सदन का नाम 'पीयर्स सभा' (House of Peers) और निम्न सदन को प्रतिनिधि सभा (House of Representative) के नाम से पुकारा जाता था। मेइजी संविधान के अन्तर्गत व्यवस्थापिका शासन का प्रभावशाली अंग नहीं थी। यद्यपि व्यवस्थापिका मन्त्रिमण्डल के निर्णयों और नीतियों का सर्वथा समर्थन करती थी, तथापि उसमें ऐसे दलों का नितान्त अभाव था जिनकी निश्चित एवं भिन्न नीतियाँ हों। यही नहीं, मन्त्रिमण्डल के निर्णयों पर विचार करने का अधिकार अन्य अधिशासी अंगों जैसे प्रिवी-परिषद् को भी था। संक्षेप में, डायट एक परामर्शदात्री संस्था मात्र थी जिसकी उपयोग केवल राज्य के प्रधान को अपने कर्तव्यों का पालन करने में सहायता एवं परामर्श देना था। वस्तुतः जापान में राजतन्त्र ही प्रचलित था।

मेइजी-संविधान के अन्तर्गत एक सर्वोच्च युद्ध-समिति (The Supreme War Council) की भी व्यवस्था थी। इस संविधान में सैन्यवाद का प्राधान्य था। मन्त्रिमण्डल

में भी युद्ध एव जल-सेना के मन्त्री सैनिक अधिकारी ही नियुक्त किए जाते थे। सर्वोच्च युद्ध-समिति में सेना के प्रधान अधिकारी होते थे। नौकरशाही तथा सैन्यवादी तत्वों की आपसी प्रतिद्वंद्विता के कारण जापान को द्वितीय विश्वयुद्ध की स्थिति का सामना करना पड़ा, जिसमें जापान की पराजय हुई। वास्तव में मेइजी सविधान में सैन्यवादी प्रवृत्ति का बोलबाला था, और उदारवादी दृष्टिकोण का अभाव था।

मेइजी संविधान की आलोचना करते समय क्लाइड ने कहा है कि "इसने केवल उदारवाद के सिद्धान्त को ही समाप्त नहीं किया अपितु प्रतिनिधि मान्यताओं के वास्तविक सिद्धान्तों को भी भुला दिया है।"[1]

जापान के वर्तमान संविधान की विशेषताएँ

(Salient Features of the Modern Constitution of Japan)

अगस्त, 1945 में जापान ने मित्रराष्ट्रों के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। पराजित जापान के मित्रराष्ट्रों के सर्वोच्च कमांडर जनरल मैकआर्थर ने 11 अक्तूबर, 1945 को जापानी कबिनेट को सूचित किया कि देश के लिए नवीन संविधान अपरिहार्य है। फलस्वरूप सरकार ने इस कार्य हेतु एक सवैधानिक समस्या-अनुसन्धान समिति (Consutulional Problem Investigation Committee) की स्थापना की, लेकिन इसने कोई विशेष कार्य नहीं किया। नवीन सविधान यथार्थ में जापानी मन्त्रिमण्डल के सहयोग से मैकआर्थर द्वारा ही बनाया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका के अनेक संविधान-वेत्ताओं द्वारा नवीन संविधान का प्रारूप तैयार करवाया गया। संविधान के अन्तिम प्रारूप को जापान की केबिनेट ने मार्च, 1946 में स्वीकार किया और कुछ साधारण परिवर्तनों के बाद अक्तूबर, 1946 में डायट (जापानी संसद्) द्वारा भी इसे स्वीकार कर लिया गया। 3 नवम्बर, 1946 को सम्राट हिरोहितो की स्वीकृति के साथ ही 3 मई, 1947 को यह नवीन संविधान देश में लागू हुआ। इस नवीन संविधान की विशेषताएँ निम्नानुसार है—

(1) लिखित, संक्षिप्त व सरल संविधान

(Written, Brief and Simple Constitution)

नए संविधान को 'जापान का सविधान' कहा जाता है, जबकि 1889 के संविधान को 'जापानी साम्राज्य के संविधान' की संज्ञा दी गई थी। जापान के वर्तमान संविधान का आकार बहुत ही छोटा है। इसकी एक प्रस्तावना (Preamble) और 103 धाराएँ हैं। इसके द्वारा जापान में प्रजातन्त्र की स्थापना की गई। 11 अध्यायों का यह संविधान लगभग 20 पृष्ठों में है। इसकी भाषा बहुत सरल और सुस्पष्ट है।

(2) संविधान एक सर्वोच्च कानून के रूप में

(Constitution as a Supreme Law)

नवीन सविधान जापान का 'सर्वोच्च कानून' (Supreme Law) है। शासन का कोई भी अंग सविधान के किसी भी उपबन्ध का उल्लंघन नहीं कर सकता। संविधान ने

1. *Clyde, P H.*: The Far East., p 150.

स्पष्ट शब्दों में घोषित किया है कि शासन की प्रत्येक शाखा के कर्मचारियों को संविधान को पूर्ण मान्यता देनी होगी, अर्थात् सम्राट, मन्त्री, संसद्-सदस्य, न्यायाधीश आदि इस संविधान के अन्तर्गत रहकर अपने-अपने क्षेत्रों में भूमिका निभाएँगे और संविधान की सीमाओं का उल्लघन नहीं करेंगे।

(3) अनुपम प्रस्तावना, जन-प्रभुसत्ता एवं उदात्त आदर्शों की स्थापना
(Unique Preamble, People's Sovereignty and High Ideals)

संविधान का प्रमुख आकर्षण इसकी प्रस्तावना है जिसमें जनता को शक्ति का आदि-स्रोत माना गया है। ऐसी सुन्दर प्रस्तावना अन्यत्र देखने को कम ही मिलती है। इस प्रस्तावना (Preamble) में[1]—

(1) सभी राष्ट्रों के साथ शान्ति एव सहयोग बनाए रखने पर बल दिया गया है।

(2) युद्ध की निन्दा की गई है।

(3) शासन को एक पवित्र धरोहर (Sacred Trust) घोषित किया गया है।

(4) शासन-सत्ता का स्रोत जनता है और उसका सचालन भी जनता के प्रतिनिधियों को ही सौंपा गया है।

(5) जापान की जनता ने अपनी सुरक्षा के लिए विश्व के शान्तिप्रिय राष्ट्रों की न्याय-भावना और सद्भावना में विश्वास प्रकट किया है।

(6) जनता ने अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक व्यवस्था में एक सम्मानित स्थान प्राप्त करने की दृढ़ आकाक्षा प्रकट की है।

(7) जापानी जनता ने विश्व से दासता, अत्याचार, शोषण एव असहिष्णुता को मिटाने का संकल्प व्यक्त किया है।

(8) अन्त में, जापानी जनता अपने राष्ट्रीय सम्मान, दृढ़-सकल्प और सामाजिक-साधनों द्वारा उद्देश्य की प्राप्ति की प्रतिज्ञा करती है।

संविधान की इस सुन्दर प्रस्तावना की शब्दावली इस प्रकार है—[2]

"हम, जापान के लोग, सदा-सर्वदा के लिए शान्ति की कामना करते हैं — हम शान्ति की स्थापना के लिए तथा अत्याचार, दासता एवं उत्पीडन और असहिष्णुता को सदा-सर्वदा के लिए धरती से मिटा देने के लिए कटिबद्ध होकर अन्तर्राष्ट्रीय समाज में सम्मान का स्थान चाहते हैं।"[3]

इस तरह संविधान की प्रस्तावना में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और सद्भाव, विश्व शान्ति, साम्राज्यवाद और शोषण की समाप्ति तथा युद्ध का निषेध करने का सकल्प व्यक्त किया गया है।

---

1 The Preamble of the Constitution.

2. Preamble of Japanese Constitution.

3 "We, the Japanese people desire peace for all time... We desire to occupy an honoured place in an international society-striving for the preservation of peace, and the banishment of tyranny and salvery, oppression and intolerance for all time from the earth."

—Preamble of the Constitution of Japan.

(4) युद्ध का परित्याग (Renunciation of War)

जापान के संविधान में युद्ध का परित्याग किया गया है तथा दूसरे राष्ट्रों के साथ विवाद निपटाने के लिए बल प्रयोग या धमकी का परित्याग करता है। विश्व के अन्य किसी भी देश में संविधान में युद्ध के परित्याग की बात का समावेश नहीं किया गया है।

(5) जनतन्त्र का समर्थक (Supporter of Democracy)

वर्तमान संविधान में वास्तविक प्रजातान्त्रिक शासन की स्थापना करने की दिशा में उल्लेखनीय कदम उठाये गये हैं। इसमें लोकप्रिय प्रभुता का समावेश (Assertion of Popular Sovereignity) किया गया है। सम्राट को वास्तविक शक्तियों से वंचित कर दिया गया है। अब डायट (जापान की संसद्) शासन-सत्ता की सर्वोच्च शक्ति है। डायट के दोनों सदनों के लिए निर्वाचन की व्यवस्था है। निम्न-सदन का गठन जनता के प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदस्यों द्वारा होता है, इसलिए यह लोकप्रिय सदन है तथा उच्च सदन से अधिक शक्तिशाली है। जापान का मन्त्रिमण्डल संसद् के प्रति उत्तरदायी है। संविधान द्वारा सभी वयस्कों को मताधिकार प्रदान किया गया है। स्त्रियों को पहली बार मताधिकार प्रदान किया गया है। संविधान में नागरिकों के अधिकारों और स्वतन्त्रताओं का भी उल्लेख किया गया है।

(6) एकात्मक संविधान (Unitary Constutution)

जापान का संविधान एकात्मक है, यद्यपि प्रशासन की दृष्टि से विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था है। संविधान द्वारा शक्तियों का कोई विभाजन नहीं किया गया है। सम्पूर्ण शक्तियों का स्रोत केन्द्र है। 'डायट' (Diet) के अधिनियमों से प्रान्त अपनी शक्तियाँ प्राप्त करते हैं और उसकी इच्छा के अनुसार ही इन शक्तियों को घटाया-बढ़ाया जा सकता है। प्रान्त अधीनस्थ इकाइयाँ हैं जो केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदत्त शक्तियों का ही प्रयोग करते हैं।

(7) संसदीय शासन (Parliamentary Government)

जापान में संसदीय शासन व्यवस्था का प्रचलन है। जापान का राजा या सम्राट नाममात्र की कार्यपालिका है, जिसके हाथों में कोई वास्तविक शक्ति नहीं है और उसकी स्थिति ब्रिटिश राजा के ही समान है। सर्वोच्च प्रशासनिक सत्ता उसकी मन्त्रिमण्डल में निहित है जिसका प्रधान प्रधानमन्त्री होता है।

संसदीय व्यवस्था के अनुरूप ही कार्यपालिका का चुनाव व्यवस्थापिका के सदस्यों में से होता है। प्रधानमन्त्री का चुनाव डायट करती है। अन्य मन्त्रियों का चयन प्रधानमन्त्री करता है जिनका डायट का सदस्य होना अनिवार्य होता है। जापानी संविधान के अन्तर्गत जापान में डायट के गैर-सदस्य व्यक्ति भी मन्त्री बनाए जा सकते हैं। ब्रिटेन में ऐसा नहीं हो सकता। संविधान यह भी घोषित करता है कि केबिनेट का उत्तरदायित्व डायट के प्रति होगा और डायट का विश्वास खो देने पर केबिनेट को त्याग-पत्र दे देना होगा अन्यथा उसे 19 दिन के अन्दर प्रतिनिधि सदन को भंग करना होगा।

(8) न्यायपालिका की स्वतन्त्रता (Independence of Judiciary)

संविधान में एक स्वतन्त्र सर्वोच्च न्यायालय का प्रावधान किया गया है। न्यायालयों के न्यायाधीश केवल महाभियोग द्वारा ही अपने पद से हटाए जा सकते हैं और उनके कार्यकाल में उनके वेतन तथा भत्तों में कमी नहीं की जा सकती। सभी न्यायाधीश अपने कार्य में स्वतन्त्र हैं।

संविधान की धारा 81 के अनुसार जापान में न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review) की भी व्यवस्था है अर्थात् सर्वोच्च न्यायालय संविधान का संरक्षक है और उसे डायट द्वारा पारित कानूनों की संवैधानिकता की जाँच करने का अधिकार है। जापानी न्यायपालिका की एक अन्य विशेषता यह है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति पर सामान्य निर्वाचन में जनसाधारण का अनुमोदन प्राप्त करना होता है। इस प्रकार की व्यवस्था भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन आदि देशों के संविधान में उपलब्ध नहीं है।

(9) अचल या कठोर संविधान (Rigid Constitution)

जापानी संविधान अचल या कठोर अथवा अनमनीय (Rigid) है और इसके संशोधन की विधि काफी कठिन है, परन्तु यह किसी भी तरह इतना कठिन नहीं है कि इसे व्यावहारिक रूप देने में संयुक्त राज्य की भाँति कठिनाई हो। जापानी संविधान के संशोधन की विधि संविधान की धारा 96 में इस प्रकार दी गई है—

"संविधान में संशोधन के प्रस्ताव का आरम्भ डायट द्वारा किया जाएगा, जिसके पक्ष में प्रत्येक सदन के कुल सदस्यों में से कम से कम दो-तिहाई सदस्यों का मत होना आवश्यक है। उसके बाद संशोधन के प्रस्ताव पर लोकनिर्णय (Referendum) कराया जाएगा। लोकनिर्णय में भाग लेने वाले मतदाताओं की बहुसंख्या का मत संशोधन के पक्ष में होने पर संशोधन स्वीकृत माना जाएगा। उसके तुरन्त बाद सम्राट ऐसे संशोधन को जनता के नाम से संविधान के आवश्यक अंग के रूप में घोषित करेगा।"[1]

स्पष्ट है कि जापान के संविधान में संशोधन करना सरल नहीं है, क्योंकि डायट के दोनों सदनों के दो-तिहाई बहुमत से पास होने पर भी संशोधित प्रस्ताव को जनता के समक्ष अनुमोदन के लिए रखा जाता है और जनमत-संग्रह (Referendum) में बहुमत द्वारा समर्थन प्राप्त करने पर ही उसको स्वीकार किया जाता है। यद्यपि 1947 ई. से लेकर अब तक जापानी संविधान में कोई संशोधन नहीं किया गया है, किन्तु यह कठोरता जापान के चतुर्मुखी विकास में बाधक नहीं बनी है।

(10) मौलिक अधिकारों व कर्त्तव्यों का समावेश
(Provision of Fundamental Rights and Duties)

जापान के संविधान में अधिकारों व कर्त्तव्यों का उल्लेख तीसरे अध्याय में किया गया है और इसकी 10 से 40 तक की धाराओं का सम्बन्ध इसी महत्त्वपूर्ण विषय से

1 Japanese Constitution — Article 96.

है । संविधान में कहा गया है कि ये अधिकार 'शाश्वत और अनुल्लघनीय' हैं तथा ये स्वयं संविधान द्वारा प्रदान किए गए हैं । संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों की सूची बहुत बडी है । संविधान में भाषा और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, गैर-कानूनी बन्दीकरण से मुक्त होने की स्वतन्त्रता, शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार, धार्मिक स्वतन्त्रता आदि विभिन्न अधिकारों की व्यवस्था की गई है । संविधान नागरिकों के रोजगार पाने के अधिकारों को भी मान्यता देता है ।

संविधान में कुछ कर्त्तव्यों की भी व्यवस्था है जैसे—संविधान की धारा 30 के अनुसार नागरिक कानूनों द्वारा निर्धारित करों का भुगतान करेंगे ।

संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत की भाँति जापानी संविधान मे सर्वोच्च न्यायालय को मूल अधिकारों का सरक्षक नहीं बनाया गया है ।

(11) द्वितीय सदन की रचना
(Composition of Second Chamber)

ब्रिटेन, भारत और अमेरिका आदि देशों की भाँति जापानी ससद डायट के दो सदन हैं, लेकिन डायट के दूसरे सदन की रचना का आधार उक्त तीनों ही देशो के द्वितीय सदन से भिन्न है । जापान का द्वितीय सदन भी जनता का प्रतिनिधि है और उसके सदस्य जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होते हैं । जापान में सगठन की दृष्टि से दोनों ही सदनों में समानता स्थापित की गई है, लेकिन शक्तियों की दृष्टि से वे समान नहीं हैं । द्वितीय सदन की शक्तियाँ प्रतिनिधि सदन की अपेक्षा कमजोर है । अतः प्रथम सदन ही शक्तिशाली है ।

(12) धर्म निरपेक्षता (Secularism)

पहले जापान में शिन्टो धर्म, राज्य-धर्म था, किन्तु नवीन संविधान द्वारा सभी धर्मों को स्वतन्त्रता दी गई व धर्मनिरपेक्षता की नीति को मान्यता दी गई है । धर्मनिरपेक्षता की यह अवधारणा जापानी संविधान को गरिमा और प्रतिष्ठा प्रदान करती है ।

(13) स्थानीय स्वशासन का प्रावधान
(Provision of Local Self-Govt.)

संविधान की धारा 92 से 95 तक में स्थानीय स्वशासन का प्रावधान किया गया है । स्थानीय स्वशासन की यह व्यवस्था जापान की प्रजातान्त्रिक व्यवस्था का मूलाधार बन गई है । इसने देश की प्रजातान्त्रिक व्यवस्था को सशक्त बनाया है ।

(14) दोहरी प्रणाली की समाप्ति और नागरिक शासन की सर्वोच्चता
(End of Dual System and Supremacy of Civil Government)

जापान के नवीन संविधान में दोहरी प्रणाली (युद्ध परिषद् तथा मन्त्रिमण्डल) को समाप्त करके सैनिक प्रशासन को नागरिक प्रशासन के अधीन कर दिया है । वर्तमान संविधान में नारिक प्रशासन अर्थात् मन्त्रिमण्डल की सर्वोच्चता को स्थान दिया गया है । मन्त्रिमण्डल ही सैन्य-प्रशासन पर नियन्त्रण रखता है ।

(15) बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था

(Multi-Member Constituencies)

जापान में बहु-सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों का प्रचलन है, जिसके अन्तर्गत 3 से 5 प्रतिनिधियों का निर्वाचन किया जाता है। केवल अगामी द्वीप समूह इसका अपवाद है, जहाँ कम जनसंख्या होने के कारण केवल एक ही प्रतिनिधि का निर्वाचन होता है।

उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जापान का वर्तमान संविधान युद्ध-पूर्व के संविधान की तुलना में क्रान्तिकारी, लोकतान्त्रिक, प्रगतिशील और शान्तिवादी है। माकी के अनुसार "यह जापानी जनता को लोकतान्त्रिक क्रान्ति के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक लाभ कराने वाला तथा पुराने सर्वसत्तावाद को पुनः स्थापित होने से रोकने वाला है।"[1]

---

1 *John M. Maki* Government and Politics in Japan, p. 129

31

मूल अधिकार और कर्त्तव्य

(Fundamental Rights and Duties)

जापानी संविधान मूल अधिकारों और कर्त्तव्यों का एक उत्कृष्ट प्रलेख या दस्तावेज है। सन् 1889 ई. के संविधान में भी मौलिक अधिकारों की व्यवस्था की गई थी। नवीन संविधान भी मूल-अधिकारों तथा कर्त्तव्यों को समाविष्ट करता है।

जापानी संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों में वे सभी अधिकार सम्मिलित हैं जो अन्य प्रजातन्त्रीय देशों के संविधान में पाए जाते हैं, पर दो ऐसे अधिकारों का भी वर्णन है जो दूसरे देशों के संविधानों में नहीं पाये जाते। ये अधिकार विदेश-गमन और राष्ट्रीयता-त्याग से सम्बन्धित हैं। संकटकाल में मौलिक अधिकारों के स्थगन आदि के लिए कोई विशेष उपबन्ध या प्रावधान नहीं रह गया है।

मूल अधिकार

(Fundamental Rights)

वर्तमान संविधान में अधिकारों का विस्तृत उल्लेख किया गया है। संविधान के अध्याय 3 में जनता के अधिकारों व कर्त्तव्यों का विवरण दिया हुआ है। इस अध्याय में 10 से 40 तक अर्थात् 31 धाराएँ हैं जिनमें से केवल तीन धाराओं में ही कर्त्तव्य का विवरण है। शेष 28 धाराओं में अधिकारों का वर्णन किया गया है।

जापानी संविधान में अधिकारों के वर्णन में कोई क्रम नहीं है, अतः निश्चयपूर्वक यह कहना कठिन है कि संविधान कितने प्रकार के अधिकार प्रदान करता है। फिर भी वर्णन की दृष्टि से हम उसको निम्नांकित शीर्षकों में विभाजित कर सकते हैं—

(1) वैयक्तिक अधिकार (Individual Rights)—संविधान की 13वीं धारा में कहा गया है कि "जनता के प्रत्येक सदस्य का व्यक्ति के रूप में आदर किया जाएगा। व्यवस्थापिका तथा अन्य शासन सम्बन्धी कार्यों में जीवन, स्वतन्त्रता तथा शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार, जहाँ तक सार्वजनिक कल्याण में बाधक न हो, मुख्य विचार का विषय होगा।" स्पष्ट है कि जापानी संविधान में व्यक्ति को समाज का अवयव (Organ) स्वीकार करते हुए उसके व्यक्तित्व (Individuality) को महत्त्व दिया गया है ताकि प्रत्येक नागरिक को अपना व्यक्तित्व (Personality) विकास करने का पूर्ण अवसर प्राप्त हो सके।

(2) समानता का अधिकार (Right of Equality)—जापानी संविधान की धारा 14 घोषित करती है कि "कानून के अन्तर्गत सभी व्यक्ति समान हैं और जात-पाँत, सामाजिक स्थिति या वंश सद्भाव के कारण राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक विभेद नहीं किया जाएगा।" इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए राज्य द्वारा लॉर्ड तथा पीयर (Peer) की उपाधि को मान्यता नहीं दी गई है। साथ ही यह भी व्यवस्था की है कि यदि किसी व्यक्ति को कोई सम्माननीय उपाधि अथवा अन्य किसी प्रकार का आदर-चिह्न प्राप्त हो तो वह उसके आधार पर वैधानिक रूप से किसी विशेषाधिकार का प्रयोग नहीं कर सकेगा और इस प्रकार की सम्माननीय उपाधियाँ केवल उसी व्यक्ति तक सीमित रहेंगी। उसकी मृत्यु के पश्चात् वह उसके उत्तराधिकारी को प्राप्त नहीं होगी, जैसा कि ब्रिटेन में है।

धारा 24 के अनुसार विवाह केवल स्त्री-पुरुष की सहमति से ही हो सकता है और उसमें पति-पत्नी के समान अधिकारों के आधार पर पारस्परिक सहयोग बनाए रखने का निर्देश है। धारा 24 ही यह प्रावधान करती है कि राज्य-पति-पत्नी के चुनाव, सम्पत्ति का अधिकार, उत्तराधिकार, निवास, तलाक तथा विवाह और परिवार सम्बन्धी अन्य विषयों में वैयक्तिक प्रतिष्ठा और स्त्री-पुरुष की सारभूत समानता के दृष्टिकोण से विधि का निर्माण करेगा।

धारा 24 के अनुसार विधि में लिंग-भेद के आधार पर कोई अन्तर नहीं किया गया है और कृषि-भूमि तथा अन्य सम्पत्ति में स्त्री-पुरुष को समान अधिकार प्रदान किए गए हैं, लेकिन व्यवहार में प्रायः लड़कियाँ पिता की सम्पत्ति में भाग नहीं लेतीं। जापान में वेश्या-वृत्ति का निषेध करने वाली विधि भी लागू है तथा अन्य प्रकार की समानताएँ स्थापित करने का भी प्रयत्न किया गया है। उल्लेखनीय है कि अधिकांश जापानी स्त्रियाँ अपने अधिकारों की ओर ध्यान नहीं देती हैं।

(3) राजनीतिक अधिकारों को चुनने व हटाने का अधिकार (Right of Electing and Withdrawing Political Officials)—संविधान की धारा 15 के अनुसार राजनीतिक अधिकारियों के निर्वाचन के सम्बन्ध में जापानी प्रजाजनों को सार्वभौम वयस्क मताधिकार प्रदान किया गया है। इन निर्वाचनों में गुप्त मतदान की व्यवस्था की गई है क्योंकि इनके अभाव में व्यक्तियों को अपने अन्तःकरण के अनुसार मत देने की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो पाती है।

(4) याचिका का अधिकार (Right of Petition)— धारा 16 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को क्षतिपूर्ति, सार्वजनिक अधिकारियों के निष्कासन, कानूनों, अध्यादेशों के विनियमों के निर्माण अथवा विखण्डन या संशोधन के लिए तथा अन्य इसी प्रकार के मामलों के लिए शान्तिपूर्वक याचना करने के का अधिकार देते हुए यह स्पष्ट कर दिया गया है कि ऐसी याचिका प्रस्तुत करने के कारण किसी व्यक्ति के विरुद्ध विभेद या अन्तर नहीं किया जाएगा।

यह अधिकार विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं हो पाया है क्योंकि अमेरिका की भाँति जापान में भी डाइट प्रत्येक अधिवेशन में हजारों याचिकाएँ प्राप्त करती है जो उसके द्वारा समितियों को भेज दी जाती हैं और उनमें से अधिकांश पर कोई कार्यवाही नहीं होती।

(5) क्षतिपूर्ति का अधिकार (Right of Compensation)—संविधान धारा 17 और 40 नागरिकों को क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार देती है। धारा 40 में उल्लिखित है कि यदि कोई व्यक्ति गिरफ्तारी और नजरबन्दी के पश्चात् निर्दोष घोषित कर दिया जाता है तो वह उपबन्धित कानून द्वारा क्षतिपूर्ति हेतु राज्य से प्रार्थना कर सकता है।

(6) शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right of Non-Exploitation)—संविधान की धारा 18 शोषण के विरुद्ध अधिकार प्रदान करती है। इस धारा के अनुसार किसी भी व्यक्ति को किसी भी तरह के बन्धन में नहीं रखा जा सकता। किसी भी व्यक्ति से उसकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक कोई काम नहीं कराया जा सकता अर्थात् संविधान में बेगारी की प्रथा का निषेध कर दिया गया है। बलात् दासता के दण्डस्वरूप ही अपराधी पर लादी जा सकती है।

(7) विचार, अन्तःकरण एवं धर्म की स्वतन्त्रता का अधिकार (Right of Freedom of Thought, Faith and Religion)—संविधान की 19वीं धारा में विचार, अन्तःकरण और धर्म की स्वतन्त्रताओं की गारण्टी दी गई है। धारा 20 मे उल्लिखित है कि किसी भी धार्मिक संगठन को कोई भी विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होगा और न वह किसी राजनीतिक शक्ति का प्रयोग कर सकेगा। किसी धार्मिक कृत्य, पर्व, रिवाज में भाग लेने के लिए किसी भी व्यक्ति को बाध्य नहीं किया जाएगा। राज्य और उसका प्रत्येक विभाग धार्मिक शिक्षा एवं प्रत्येक प्रकार के धार्मिक कृत्यों से अलग रहेगा। स्पष्ट है कि जापान को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

(8) अभिव्यक्ति, जीवन एवं स्वाधीनता का अधिकार (Right of Expression, Life and Freedom)—संविधान की धारा 21 जापानी नागरिकों के लिए संगठन, सभा, भाषण, मुद्रण तथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की व्यवस्था करती है। परन्तु इस अधिकार के दुरुपयोग को रोकने के लिए इस पर कुछ प्रतिबन्ध लगाये हैं। असाधारण परिस्थिति अथवा संकटकाल में इस प्रकार की स्वतन्त्रता को स्थगित किया जा सकता है।

जापान के संविधान की धारा 31 में यह व्यवस्था की गई है कि "किसी व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अतिरिक्त अन्य प्रकार से जीवन या स्वाधीनता से वंचित नहीं किया जाएगा और न ही उसके विरुद्ध दण्डित कार्यवाही ही की जा सकेगी।" इस धारा से स्पष्ट है कि जापान में अवैध बन्दीकरण नहीं हो सकता। अर्थात् किसी भी व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही दण्डित किया जा सकता है या बन्दी बनाया जा सकता है।

जीवन और स्वाधीनता के अपहरण के सम्बन्ध में प्रक्रिया स्थापित करने के राजकीय अधिकार को धारा 32 से 39 द्वारा परिसीमित किया गया है।

धारा 32 में उल्लेख है कि "किसी व्यक्ति को न्यायालय में जाने के अधिकार से वंचित नहीं किया जाएगा।" संविधान की 33वीं और 34वीं धाराएँ व्यक्तियों को अवैध गिरफ्तारी से संरक्षण प्रदान करती हैं। धारा 34 के अनुसार उपबन्धित किया

गया है कि "किसी भी व्यक्ति को उस समय तक गिरफ्तार नहीं किया जा सकेगा जब तक उसे उसके अपराधों के बारे में बता नहीं दिया जाए। उसे अविलम्ब वकील करने की सुविधा प्रदान की जाएगी। किसी भी व्यक्ति को उस समय तक बन्दी नहीं बनाया जाएगा जब तक बन्दी बनाए जाने का पर्याप्त कारण विद्यमान न हो। यदि व्यक्ति उस कारण को जानना चाहेगा तो वह उसके तथा उसके वकील की उपस्थिति में खुले न्यायालय में बतलाया जाएगा।" धारा 35 में उल्लिखित है कि "सभी व्यक्तियों को अपना गृह-प्रपत्रों और सम्पत्ति के सम्बन्ध में प्रवेशों, तलाशियों और अभिग्रहण के विरुद्ध संरक्षण का अधिकार बिना पर्याप्त कारण के जारी किए गए और विशेष रूप से तलाशी लिए जाने वाले स्थानों और अभिग्रहण की जाने वाली वस्तुओं का वर्णन करने वाले अधिपत्रकों की धारा 33 के उपबन्ध के अतिरिक्त विनष्ट नहीं किया जाएगा।" उल्लेखनीय है कि दण्ड-प्रक्रिया में इस धारा की व्यवस्थाओं का आदर किया गया है पर प्रशासनात्मक प्रक्रिया के अन्तर्गत बिना अधिपत्र (Warrant) के भी उपर्युक्त कार्य किए जा सकते हैं।

धारा 36 के अनुसार लोक-अधिकारियों द्वारा यातना या निर्दयतापूर्ण दण्ड देना वर्जित है। धारा 37 के अनुसार व्यवस्था है कि "फौजदारी मामलों में अपराधी को शीघ्रातिशीघ्र सार्वजनिक सुनवाई की सुविधा प्रदान की जाएगी। उसे सब गवाहों की परीक्षा करने का अवसर दिया जाएगा तथा उसको सार्वजनिक व्यय पर अपनी ओर से गवाहों को प्राप्त करने की अनिवार्य प्रक्रिया का अधिकार होगा। अनियुक्त को हर समय एक योग्य वकील की सहायता प्राप्त होगी जिसे यदि वह स्वयं के प्रयत्नों द्वारा प्राप्त करने में सफल न हो तो यह कार्य राज्य को सौंप दिया जाएगा।"

धारा 38 में उपबन्धित है कि "किसी व्यक्ति को अपने विरुद्ध प्रमाण देने के लिए विवश नहीं किया जाएगा। किसी दबाव, यातना या धमकी अथवा दीर्घकालीन बन्दीकरण के कारण की गई अपराध-स्वीकृति को प्रमाण नहीं माना जाएगा। किसी व्यक्ति को उन मामलों में दोषी नहीं ठहराया जाएगा और न ही दण्डित किया जाएगा, जिसमें प्रमाण केवल उस व्यक्ति की अपराध-स्वीकृति ही हो।"

धारा 39 के अनुसार किसी भी व्यक्ति को उस कार्य के लिए अपराधी नहीं ठहराया जाएगा जो किए जाने के समय कानून की दृष्टि से अपराध न हो। एक ही अपराध के लिए किसी व्यक्ति पर दो बार मुकदमा नहीं चलाया जाएगा और न ही उसे दो बार दण्डित किया जाएगा।

(9) निवास-व्यवस्था, विदेश-गमन, राष्ट्रीयता के परित्याग आदि के वैयक्तिक अधिकार (Individual Rights of Residence, Foreign Travel and Citizenship)—संविधान की धारा 22 में यह प्रावधान रखा गया कि "प्रत्येक व्यक्ति को निवास तथा व्यवसायों को चुनने तथा बदलने की स्वतन्त्रता होगी।" कोई व्यक्ति ऐसा व्यवसाय नहीं चुन सकेगा जिससे सार्वजनिक हित में बाधा पड़ती हो।

धारा 22 में यह व्यवस्था भी की गई है कि "सभी व्यक्तियों की विदेश जाने तथा अपनी राष्ट्रीयता का परित्याग करने की स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रहेगी।" विदेश जाने और

राष्ट्रीयता का परित्याग करने जैसे दोनों अधिकारो का प्रावधान अन्य देशों के सविधानों में नहीं पाया जाता है।

(10) शिक्षा का अधिकार (Right of Educauon)—जापान के संविधान में शिक्षा के अधिकार को स्थान दिया गया है। धारा 23 में शिक्षा की स्वतन्त्रता की गारण्टी दी गई है। धारा 26 में स्पष्ट किया गया है कि लडकों और लडकियों को कानून द्वारा निर्धारित की गई साधारण शिक्षा प्राप्त कराना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य होगा और ऐसी अनिवार्य शिक्षा निःशुल्क होगी। जापान से अशिक्षा समाप्त हो गई है।

(11) समाज कल्याण और सामाजिक सुरक्षा तथा कार्य का अधिकार[1] (Right of Social Welfare, Security and Work)—जापान का संविधान नागरिकों को समाज कल्याण, सामाजिक सुरक्षा व कार्य का महत्वपूर्ण अधिकार प्रदान करता है। सविधान की धारा 27 में सभी व्यक्तियों को रोजगार का अधिकार प्रदान किया गया है। इस धारा की शब्दावली इस प्रकार है—"सभी व्यक्तियों को काम पाने का अधिकार रहेगा। कार्य करना उनका कर्त्तव्य भी होगा। वेतन, काम करने के घण्टे, आराम की अवस्थाएँ तथा कार्य सम्बन्धी अन्य दशाएँ कानून द्वारा निश्चित की जाएँगी। बच्चों का शोषण नहीं किया जाएगा।" सविधान की धारा 25 सभी लोगों के लिए स्वस्थ और सुसंस्कृत जीवन का न्यूनतम-स्तर प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करती है और सरकार को यह निर्देश देती है कि वह जीवन के सभी क्षेत्रों में लोक-कल्याण, सुरक्षा तथा लोक-स्वास्थ्य का विस्तार करने का प्रयास करेगी। इस सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक निर्णय में सविधान की 25वीं धारा की व्याख्या करते हुए घोषित किया है कि यह एक वैधानिक अधिकार न होकर एक नीति-निर्देशक तत्त्व मात्र है। इसलिए संविधान की धारा 28 कर्मचारियों को संगठित होने और सामूहिक रूप से शर्तें तय कर कार्य करने का अधिकार देती है।

(12) सम्पत्ति का अधिकार (Right of Property)—सम्पत्ति का अधिकार एक विवादग्रस्त अधिकार है। इस अधिकार को उस समय तक न्यायोचित ठहराया जाता है जब तक एक व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक है और दूसरे व्यक्ति के समान विकास में बाधक नहीं बनता हो। अतः इस दृष्टि से सम्पत्ति का अधिकार कभी भी पूर्ण नहीं कहा जा सकता। अतः जापान का संविधान सीमित रूप में सम्पत्ति का अधिकार प्रदान करता है। धारा 29 मे सम्पत्ति के स्वामित्व और धारण करने के अधिकार को मान्यता दी गई है। पर साथ ही यह भी कहा गया है कि सम्पत्ति का अधिकार लोक-कल्याण की अनुकूलता में कानून द्वारा परिभाषित किया जाएगा और व्यक्तिगत सम्पत्ति सार्वजनिक प्रयोग के लिए उचित क्षतिपूर्ति देकर राज्य द्वारा ग्रहण की जा सकेगी।

मूल अधिकारों का महत्त्व (Importance of Fundamental Rights)

उपर्युक्त सवैधानिक अधिकारो पर प्रकाश डालते हुए चिन्नोशी यानागा ने कहा है "भूतकाल में कभी भी व्यक्तिगत नागरिक को उपभोग हेतु ऐसे विस्तृत अधिकार व स्वतन्त्रताएँ प्राप्त नहीं हुईं जैसी कि विधि-प्रणाली में अब उन्हें उसका अभिन्न अंग बनाया

गया है जिससे कि नागरिक को समाज में अपनी स्थिति की सुरक्षा व वृद्धि के अवसर मिल सकें। ये सभी स्वतन्त्रताएँ व्यक्तियों को संविधान में प्रदत्त हैं जो कि लोकतन्त्र में होनी चाहिए।"[1] थियोडोर मैकनेली ने इन अधिकारों के प्रभाव का उल्लेख करते हुए कहा है कि "नवीन संविधान के मानवीय अधिकार सम्बन्धी प्रावधानों ने जापान के नागरिकों में उच्च प्रभाव विकसित किया है।"[2]

निस्सन्देह, जापान में लोकतान्त्रिक व्यवस्था को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने में मौलिक अधिकारों की बड़ी भूमिका रही है।

कर्त्तव्य (Duties)

संविधान में अधिकारों के साथ ही कर्त्तव्यों का भी वर्णन किया गया है जो निम्नलिखित हैं[3]—

(1) धारा (12) के अनुसार जनता संविधान द्वारा प्रत्याभूत अधिकारों का सतत रूप से उपयोग करने का प्रयास करेगी।

(2) धारा 12 के ही अनुसार जनता अधिकारों का दुरुपयोग नहीं करेगी।

(3) जनता अधिकारों के लोक-कल्याणकारी प्रयोग के लिए उत्तरदायी होगी।

(4) जनता अपने लड़के-लड़कियों को विधि द्वारा निश्चित नि:शुल्क अनिवार्य शिक्षा देगी।

(5) कोई बच्चों का शोषण नहीं करेगा।

(6) सभी लोगों को कार्य का अधिकार है।

(7) जनता सरकार द्वारा निर्धारित कानून का पालन करेगी।

स्पष्ट है कि उपर्युक्त कर्त्तव्य न तो अधिक हैं और न असाधारण ही। वस्तुतः जापानी संविधान के अन्तर्गत नागरिकों के कर्त्तव्यों की अपेक्षा अधिकारों पर बहुत अधिक बल दिया गया है।

नागरिकता सम्बन्धी प्रावधान
(Provision Regarding Citizenship)

जापान के संविधान की धारा 10 केवल इतना निश्चित करती है कि नागरिकता के सम्बन्ध में कानून द्वारा व्यवस्था की जाएगी। तद्नुरूप 1947 व 1950 ई. के राष्ट्रीय कानूनों द्वारा नागरिकता प्राप्त करने के निम्नांकित नियम बनाए गए हैं—

(1) जन्म सिद्धान्त के अनुसार जापानी नागरिकों के बच्चे जो जापान में पैदा होंगे, जापानी नागरिक माने जायेंगे।

(2) जो विदेशी स्त्रियाँ जापानी नागरिकों से विवाह करेंगी, वे जापान की नागरिक बन जाएँगी। इसी प्रकार यदि कोई विदेशी जापानी स्त्री से विवाह करने पर उसके

1 *Yanaga, Chitoshi* Japanese People and Politics, p 352.
2 *Theodore McNelly* Contemporary Govt. of Japan, p 209.
3 Japanese Constitution — Articles 29, 10 and 12.

परिवार का सदस्य हो जाएगा या कोई जापानी के द्वारा गोद ले लिया जाएगा तो वह भी जापानी नागरिक माना जाएगा।

(3) देशीकरण (Naturalisation) द्वारा भी नागरिकता सम्बन्धी व्यवस्था की गई है। इसके अनुसार कुछ निश्चित अवधि तक निवास के बाद कोई भी विदेशी जापानी नागरिकता प्राप्त करने का आवेदन कर सकता है। यदि वह जापान मे उत्पन्न हुआ हो या जापान में उसका कोई सम्बन्धी हो, तो अधिक सुविधा होती है।

यदि किसी जापानी नागरिक के बच्चे ऐसे पैदा हो जाएँ जहाँ जन्मजात नागरिकता प्राप्त होती हो (अमेरिका, कनाडा, मैक्सिको, अर्जेण्टाइना, ब्राजील, चिली और पेरू में), तो वे उसी देश के नागरिक माने जाएँगे जब तक कि वे जापानी नागरिक बनने की इच्छा प्रकट न करें, परन्तु इन सात देशों के अलावा अन्य देशों में जन्मे जापानी बच्चे तब तक जापानी नागरिक माने जाते रहेंगे जब तक कि वे अपनी जापानी नागरिकता का परित्याग न कर दें। इस तरह से जापान के सविधान मे नागरिकता के सम्बन्ध मे पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन
(A Critical Evaluation)

जापान के वर्तमान सविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों को उचित स्थान प्रदान किया गया है और ऐसा करते समय पूँजीवादी तथा साम्यवादी दोनों प्रकार के संविधानों में पाये जाने वाले अधिकारो का समावेश किया गया है। तथापि निम्नांकित कुछ दृष्टिकोणों से यह अधिकार-व्यवस्था त्रुटिपूर्ण है[1]—

(1) मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए कोई विशेष एव स्पष्ट व्यवस्था नहीं की गई है। संविधान नागरिकों को इस प्रकार के अधिकार नहीं देता है कि वे उनकी रक्षा के लिए पूरा न्यायिक संरक्षण प्राप्त कर सकें। धारा 81 द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से ही सर्वोच्च न्यायालय पर मौलिक अधिकारों की रक्षा का दायित्व सौंपा गया है।

(2) संविधान में अधिकारों का वर्णन-क्रम ठीक नहीं है। उदाहरणार्थ, धारा 23 और 26 शिक्षा के अधिकार से सम्बन्धित हैं और उन्हीं के बीच दाम्पत्य सम्बन्ध, जीवन-स्तर आदि के अधिकारों से सम्बन्धित अन्य धाराओं का उल्लेख कर दिया गया है।

(3) अधिकारों और कर्त्तव्यों को स्पष्ट रूप से पृथक्-पृथक् नहीं किया गया है। साथ ही अधिकार सम्बन्धी कुछ धाराएँ ऐसी हैं जिन्हें लागू करने के लिए सरकार को विवश नहीं किया जा सकता, जैसे—धारा 25।

(4) अधिकारों की सूची में पुनरावृत्ति तथा अनावश्यक बातों का समावेश पाया जाता है।

(5) सविधान की धारा 11 में व्यक्तियों के अधिकारों को पवित्र वस्तु माना गया है, तथापि संविधान उनकी रक्षा की दृष्टि से उपयुक्त व्यवस्था नहीं करता। सरकार ने

1. Japanese Constitution — Articles 81, 25 & 11.

नागरिक स्वतन्त्रताओं की रक्षा के लिए आयोग और ब्यूरो स्थापित किए हैं, पर ये सर्वथा अपर्याप्त है।

(6) जापान की संसद् अर्थात् डाइट द्वारा अनेक कानून ऐसे पारित कर दिए गए हैं जो संविधान की धाराओं के प्रतिकूल कहे जा सकते हैं। संविधान की अस्पष्ट शब्दावली बहुत कुछ इस कमी के लिए उत्तरदायी है।

(7) मौलिक अधिकार सम्बन्धी प्रत्येक धारा में उस अधिकार को परिसीमित या सीमित करने वाले आधार का वर्णन नहीं किया गया है। कुछ धाराओं में लोक-कल्याण के आधार का वर्णन कर दिया गया है लेकिन उसको सीमित करने वाले आधार का वर्णन नहीं है। उनमें से कुछ तो वैधानिक अधिकार ही नहीं कहे जा सकते। उदाहरणार्थ, धारा 25 में वर्णित पूर्ण और सुसस्कृत जीवन के निम्नतम स्तर को प्राप्त करने सम्बन्धी अधिकार का सर्वोच्च न्यायालय ने 1948 के अपने ही एक निर्णय में वैधानिक अधिकार मानने से इन्कार कर दिया गया था।[1]

वस्तुतः जापान के संविधान से यही प्रकट होता है कि व्यक्तियों के मौलिक अधिकार सरकार की इच्छा पर ही छोड़ दिए गए हैं। सरकार से यह आशा की गई है कि यह इन अधिकारो का अतिक्रमण नही करेगी। सांविधानिक उपचारों का अधिकार न होने से अन्य मौलिक अधिकारों की सूची अधूरी तथा अपर्याप्त ही है। फिर भी यह निश्चित है कि 1889 ई. के संविधान की तुलना में वर्तमान संविधान अधिक सुरक्षित और प्रभावी अधिकारों की व्यवस्था करता है। जापानी जनता राजनीतिक दृष्टि से इतनी जागरुक और परिपक्व है कि कोई भी सरकार नागरिकों के इन अधिकारो का अपहरण नहीं कर सकती है। अतः जापानी संविधान में नागरिकों को जो मूल-अधिकार प्रदान किये गये हैं, वे इस देश को सच्चे अर्थों में लोकतान्त्रिक राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।

---

1 Japanese Constitution — Article 25

सम्राट्

(The Emperor)

जापान के राजतन्त्र को विश्व के प्राचीनतम राजतन्त्रों में से एक माना जाता है। पूर्व सम्राट् स्व. हिरोहितो ने इस राजतन्त्र को गरिमा और प्रतिष्ठा प्रदान की। वर्तमान सम्राट अकीहितो इस वंश के 13वें शासक हैं और ये सम्राट हिरोहितो के सुयोग्य उत्तराधिकारी है।

सम्राट् की प्राचीन स्थिति

(Position of King in Ancient Japan)

जापान में प्रारम्भ से ही सम्राट का बहुत अधिक महत्त्व रहा है। पूर्व प्रचलित संविधान के अन्तर्गत सम्राट साम्राज्य का अध्यक्ष था जो देश की सम्प्रभुता का प्रतीक था। वह शासन का मुख्य स्तम्भ होते हुए भी अपने अधिकारों का प्रयोग संविधान के अनुसार करता था। जापान की जनता सम्राट् को ईश्वर के समान पवित्र एवं गुणवान समझती थी। वह सम्राट् की आज्ञाओं को ईश्वरीय आज्ञाएँ मानती थी। आइटो (Aito) के कथनानुसार, "राज्य की सभी विधायी एव कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ उसके हाथों में केन्द्रीभूत थीं। देश के राजनीतिक जीवन के सभी सूत्र उसके नियन्त्रण में इस प्रकार थे जैसे शरीर के सभी अंगों पर मस्तिष्क का नियन्त्रण रहता है।" इस तरह प्राचीन काल में सम्राट को अत्यन्त श्रद्धा के साथ देखा जाता था।

मेइजी संविधान के अन्तर्गत सम्राट की स्थिति

(Position of the King under the Meiji Constitution)

सन् 1889 ई. के मेइजी संविधान में सम्राट् की स्थिति सैद्धान्तिक दृष्टि से बहुत सुदृढ़ थी और वह अत्यन्त व्यापक शक्तियों का उपयोग करता था। वह देश की समस्त कार्यपालिका, व्यवस्थापिका तथा न्यायिक शक्तियों का स्रोत था। लेकिन व्यवहार में उसकी समस्त शक्तियों का प्रयोग प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में मन्त्रिमण्डल द्वारा किया जाता था।

सम्राट् की वर्तमान संवैधानिक स्थिति

(Constitutional Position of King in Modern Times)

जापान के वर्तमान संविधान में सम्राट की स्थिति एक 'वैधानिक या औपचारिक शासक' की-सी है। संस्थागत तथा संवैधानिक स्थिति को अग्रानुसार रूप से रखा जा सकता है—

वैधानिक अध्यक्ष—द्वितीय महायुद्ध के बाद जापान में सम्राट की संवैधानिक स्थिति में परिवर्तन आया। 13 मई, 1947 ई. को नवीन संविधान कार्यान्वित किये जाने के साथ ही सम्राट की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया। जापान के संविधान में कहा गया है कि "सम्राट् राज्य तथा जनता की एकता का प्रतीक होगा और अपनी स्थिति उन लोगों से ग्रहण करेगा, जिनके हाथ में प्रभुसत्ता निहित है।"[1]

इस नवीन संविधान के अन्तर्गत सम्राट का पद शक्ति का पद न रहकर वैधानिक अध्यक्ष का पद रह गया है। सम्राट अब शासन का अध्यक्ष न रहकर राज्य का प्रतीक मात्र रह गया है। अब राज्य की सर्वोच्च सत्ता सम्राट् में निहित न रहकर जनता में निहित है। सम्राट्-पद के मूल में जनता की इच्छा है अर्थात् जनता ही सम्राट् की इच्छा है। शासन-कार्य में किसी प्रकार की पहल स्वयं सम्राट् की ओर से नहीं की जा सकती। यथार्थ में शासन सम्बन्धी कोई भी कार्य सम्राट् वैयक्तिक रूप में नहीं करता है।

सम्राट् की संवैधानिक स्थिति में इस परिवर्तन का यह परिणाम हुआ कि सम्राट् के विषय में पूर्व प्रचलित अन्धविश्वासी प्रथाओं की समाप्ति हो गई है। अब सम्राट् के विषय में वाद-विवाद किया जा सकता है, उसकी व्यक्तिगत एवं संस्थागत आलोचना की जा सकती है। युद्ध से पूर्व ऐसा करना असंभव था। इसके फलस्वरूप सम्राट को अब ईश्वरीय रूप में न मानकर उसे एक मानवीय संस्था के रूप में स्वीकार किया गया है। आज सम्राट् जन-जीवन के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करता जा रहा है।

इसके अतिरिक्त वर्तमान संविधान के अन्तर्गत सम्राट् को परामर्श देने वाली पूर्वगामी संस्थाओं—ग्युसिन और प्रिवी कौंसिल का अन्त हो गया है। "संवैधानिक दृष्टि से अब सम्राट् का शासन में भाग ब्रिटेन के राजा के समान रह गया है। कुलीनतन्त्री शासन समाप्त हो गया है तथा सम्राट् को प्रभावित करने वाले अन्य आन्तरिक अगों का कानून द्वारा लोप हो गया है। इस प्रकार सम्राट् देश का एक औपचारिक या नाममात्र के शासक के रूप में रह गया है। उसके पास कोई वास्तविक शक्ति नहीं रही है।

वंशानुगत पद (Hereditary Position)—संविधान की धारा 2 व्यवस्था देती है कि "साम्राज्यीय सिंहासन वंश परम्परानुकूल होगा और उसका उत्तराधिकारी डायट द्वारा पारित साम्राज्यीय गृह कानून के अनुसार विनियमित होगा।"[2]

सम्राट् के अधिकार एवं कर्त्तव्य

(Rights and Duties of the Emperor)

पूर्वगामी संविधान में केबिनेट का कोई स्थान न था जबकि वर्तमान संविधान में समस्त राजकीय कार्यों में केबिनेट का परामर्श और स्वीकृति आवश्यक है तथा इन कार्यों के लिए वही उत्तरदायी है। संविधान की धारा 4 में यह स्पष्ट रूप से उल्लिखित कर

1. Japanese Constitution — Chap. I.
2. पूर्वोद्धृत—Article 2 व 7

दिया गया है कि राजकीय मामलों में सम्राट् केवल उन्हीं कार्यों को करेगा जिनकी संविधान में व्यवस्था की गई है। शासन के सम्बन्ध में उसकी शक्तियाँ नहीं होंगी।

संविधान की धारा 7 में राजकीय मामलों से सम्बन्धित वे कार्य गिनाए गए हैं जिन्हें सम्राट् जनता के नाम से करता है। इनमें प्रमुख निम्नांकित हैं[1]—

(1) संविधान के संशोधनों, कानूनों, केबिनेट के आदशों एव सन्धियों की घोषणा करना

(2) डायट का सत्र बुलाना, प्रतिनिधि-सदन का विघटन करना एवं डायटों के सदस्यों के आम निर्वाचन की घोषणा करना।

(3) राज्य के मन्त्रियों की नियुक्ति करना और उनकी पदच्युति को प्रमाणित करना।

(4) कानून द्वारा व्यवस्थित अन्य अधिकारियों की नियुक्ति एवं पदच्युति को प्रमाणित करना।

(5) राजदूतों एव मन्त्रियों की शक्तियों तथा प्रमाण-पत्रों को प्रमाणित करना।

(6) सम्मानसूचक उपाधियाँ देना।

(7) विदेशी राजदूतों तथा मन्त्रियों का स्वागत करना एवं शिष्टाचार के अन्य कार्य करना।

(8) साधारण तथा विशेष क्षमादान, दण्ड कम करने और अधिकारों को पुनः प्रदान करने को पुनः प्रमाणित करना।

(9) प्राणदण्ड के अल्पकालिक स्थगन को प्रामाणिक करना।

(10) पुष्टिकरण आलेखों को प्रामाणिक करना।

(11) कानून द्वारा व्यवस्थित अन्य कूटनीतिक आलेखों (Diplomatic Documents) को प्रमाणित करना।

उपर्युक्त सूची में वर्णित कार्यों के अतिरिक्त सम्राट् को शासन सम्बन्धी अन्य कोई कार्य सम्पादित नहीं करने पड़ते। राज्य के सांविधानिक अध्यक्ष के रूप में सम्राट् नियुक्ति सम्बन्धी कुछ कार्य अवश्य करता है। वह प्रधानमन्त्री एवं सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है। इस सम्बन्ध में संविधान की धारा 6 में इस प्रकार का उल्लेख किया गया है—"सम्राट् डायट के निर्देशानुसार प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल के निर्देशानुसार सर्वोच्च न्यायाधीश को नियुक्त करेगा।"[2]

संविधान की धारा 4 के अनुसार सम्राट् को अपने कार्य-सम्पादन के अधिकार को किसी और को सौंपने का भी अधिकार है। इसका आशय यह है कि संविधान द्वारा जिन कार्यों की व्यवस्था की गई है उनको सम्राट् स्वयं कर सकता है और यदि चाहे तो उन्हें किसी दूसरे व्यक्ति को भी सौंप सकता है। सम्राट् के अस्वस्थ हो जाने की दशा में अथवा किसी कारण से कार्य करने में उसके असमर्थ हो जाने पर एक संरक्षक की व्यवस्था की जा सकती है जो सम्राट् के नाम से ही कार्य करेगा। संरक्षक को अपने

1. पूर्वोद्धृत—Article 2 व 7.
2. 2 & 4 पूर्वोद्धृत—Articles 6, 4, & 3.

कार्यकाल में वे सभी कार्य करने का अधिकार होगा, जिन्हें संविधान ने सम्राट् को सौंपा है।"[1]

धारा 4 के आधार पर क्विंग्ले और टर्नर ने कहा है कि "अनुच्छेद 4 बड़े अनाड़ी भाव से कहता है कि सम्राट् को शासन से सम्बन्धित शक्तियाँ प्राप्त नहीं होंगी परन्तु यह धारा इन धाराओं (4 व 6) से खण्डित हो जाती है जो सम्राट् को प्रधानमन्त्री सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को नियुक्त करने, कानूनों व आदेशों की घोषणा करने, डाइट को आयोजित करने और प्रतिनिधि सदन को भंग करने आदि के अधिकार प्रदान करती है। इस प्रकार के सभी कार्य सरकार की शक्ति के कार्य हैं चाहे उन्हें कैबिनेट के परामर्श के किया जाए अथवा न किया जाए।"[3]

यह स्मरणीय है कि संविधान में सम्राट् के जो उपर्युक्त कार्य बतलाए गए हैं वे प्रधानतः औपचारिक हैं जिन्हें वह राज्य के अध्यक्ष के रूप में करता है। संविधान की धारा 3 में स्पष्ट कर दिया गया है कि सम्राट् के कर्त्तव्य राजकीय मामलों से सम्बन्धित हैं और उन्हें भी वह मन्त्रिमण्डल परामर्श एवं सहमति से ही कर सकता है और उनके लिए मन्त्रिमण्डल (Cabinet) ही उत्तरदायी होगी।

संविधान की इस धारा से यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश राजा की भाँति जापान के सम्राट का भी किसी कार्य के लिए कोई उत्तरदायित्व नहीं होता, क्योंकि उसके सभी कार्य मन्त्रियों द्वारा सम्पादित किए जाते हैं और उन कार्यों के लिए उत्तरदायित्व भी उन्हीं का होता है। संविधान ने सम्राट् के कार्यों का स्पष्टतः उल्लेख करके उसके लिए किसी प्रकार के अधिकार की गुंजाइश नहीं छोड़ी है। डायट के अधिवेशन को आमन्त्रित करने तक का सम्राट् का अधिकार मात्र औपचारिक ही है क्योंकि संविधान की धारा 52 के अनुसार प्रतिवर्ष डायट का एक अधिवेशन होना अनिवार्य है। अतः सम्राट् अपनी इच्छानुसार डायट को निलम्बित नहीं कर सकता, उसे वर्ष में कम से कम एक बार तो डायट को निश्चित रूप से आमन्त्रित करना पड़ेगा। फिर इसमें भी वह अपने स्व-विवेक से कार्य नहीं कर सकता क्योंकि उसे प्रधानमन्त्री के परामर्श पर डाइट का अधिवेशन अवश्य ही आमन्त्रित करना होता है। यही बात प्रतिनिधि-सदन के विघटन के सम्बन्ध में लागू होती है। यद्यपि संविधान में यह उल्लेख है कि सम्राट् प्रतिनिधि-सदन को विघटित करेगा परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वह अपनी इच्छा से कभी भी सदन को विघटित कर सकेगा। वास्तव में इस कार्य के सम्पादन में भी सम्राट् मन्त्रिमण्डल के परामर्श पर ही निर्भर है और जब मन्त्रिमण्डल उससे कहेगा तभी वह सदन को विघटित कर सकेगा, अन्यथा नहीं।[2]

सम्राट् सर्वाधिक सम्मानित, नैतिक और आध्यात्मिक व्यक्ति (Emperor is the most Respected, Moral & Spiritual Person)—वर्तमान संविधान में भी, सम्राट् जापान का सर्वाधिक सम्मानित व्यक्ति है। सम्राट् अत्यन्त प्राचीन काल से राष्ट्र के इतिहास, उसकी संस्कृति, उसकी सफलता व एकता का प्रतीक समझा जाता रहा है।

1. *Quingley & Turner* : The New Japan.
2. पूर्वोद्धृत—Article 52.

वर्तमान संविधान में भी उसे राष्ट्र और जनता की एकता का प्रतीक माना गया है। जापानी लोग अपने सम्राट् का सम्मान अंग्रेजों द्वारा उनकी साम्राज्ञी या सम्राट् के प्रति किए जाने वाले सम्मान से अधिक ही करते हैं अर्थात् जापानी अपने सम्राट् के प्रति अत्यन्त सम्मान और श्रद्धा का भाव रखता है।

जापान के इतिहास में सम्राट् की स्थिति नैतिक और आध्यात्मिक व्यक्ति के रूप में सदैव ही उच्चतम रही है जो आज भी विद्यमान है। नवीन संविधान पर वाद-विवाद करते हुए प्रतिनिधि-सदन के सदस्य सुजुकी योशाओ ने कहा था, "जापानियों की सम्राट् के कुटुम्ब के प्रति भावना सभी कानूनों के ऊपर है और उनकी यह भावना शक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं रखती वरन् वह विशुद्ध रूप से नैतिक है। जापानियों का सम्राट् के प्रति सम्मान और प्रेम इस बात से किंचित्-मात्र भी प्रभावित नहीं होता कि सम्राट् प्रशासनात्मक अधिकार रखता है या नहीं।

कुछ आलोचकों ने जापान के सम्राट् पद की आलोचना भी की है। वारेन एम. तुनिशी (Waren M. Tunishi) के शब्दों में—"सम्राट् राज्य का एक शक्तिहीन प्रतीक (Symbol) मात्र है जो अपनी स्थिति सम्प्रभु जनता से प्राप्त करता है। वह अब सम्प्रभु (Sovereign) शासक नहीं है और प्रशासन से सम्बन्धित उसके कार्य औपचारिक मात्र हैं।" किन्तु यानागा ने कहा है कि "प्रशासनिक शक्तियों के विलुप्त होने से उसकी प्रतिष्ठा में कोई कमी नहीं हुई है। जहाँ तक जनता की सम्राट् के प्रति अभिवृत्ति का सम्बन्ध है, सम्राट् आज भी राज्य का कम से कम प्रतीक या चिह्न के रूप में जनता में मान्य है।"[1]

जापानी सम्राट् की ब्रिटिश सम्राट् से तुलना
(Comparison of Japanese and British Emperors)

ब्रिटेन और जापान में वैधानिक राजतन्त्रात्मक व्यवस्था का प्रचलन है। ब्रिटिश राजा या महारानी और जापानी सम्राट् दोनों ही अपने-अपने राज्यों के नाममात्र के अध्यक्ष हैं। दोनों को ही व्यवहार में शासन सम्बन्धी शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं। पर यह समानता होते हुए भी पदशक्ति में ब्रिटिश राजा की स्थिति जापान सम्राट् की अपेक्षा कुछ दृष्टियों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रसिद्ध विद्वान् सी. यनागा के शब्दों में, "जब यह पूर्वापेक्षी अधिक स्पष्ट हो गया है कि जापान का सम्राट् राज्य करता है, शासन हीं। ब्रिटेन के सम्राट् की तुलना में उसकी शक्तियां बहुत कम हैं। ब्रिटेन का सम्राट् अब भी शासन के कार्यों में भाग लेता है। ब्रिटेन के सम्राट् का अधिकार है कि ब्रिटेन का प्रधानमन्त्री उससे परामर्श ले। वह कुछ कार्यों को प्रोत्साहित कर सकता है तथा कुछ के विरुद्ध सावधान कर सकता है। जापान के सम्राट् को इस प्रकार का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है।" दोनों की शक्तियों का अन्तर निम्न आधारभूत बातों से स्पष्ट किया जा सकता है।

सर्वप्रथम प्रधामन्त्री की नियुक्ति को लिया जा सकता है। ब्रिटिश राजा को उस व्यक्ति को प्रधानमन्त्री बनाना पड़ता है जो लोक सभा में बहुमत दल का नेता होता है

1. *Yanaga, Chitoshi* : Japanese People & Poltics.

और जापानी सम्राट् को भी उस व्यक्ति को प्रधानमन्त्री नियुक्त करना होता है जिसका चुनाव डायट ने कर लिया है। लेकिन इतनी समानता होते हुए भी इस विषय में ब्रिटिश राजा को कभी-कभी अपने स्व-विवेक अनुसार कार्य करने का अवसर मिल जाता है जबकि जापानी सम्राट् को इस प्रकार के अवसरों का प्राप्त होना सम्भव नहीं है। विशेष परिस्थितियों में ब्रिटिश राजा को प्रधानमन्त्री के चयन के सीमित अधिकार और विवेक के प्रयोग के अवसर मिल सकते हैं। लेकिन जापान का सम्राट् किसी भी परिस्थिति में दलीय नेता को मन्त्रिमण्डल निर्माण के लिए आमन्त्रित नहीं कर सकता। जापान में प्रधानमन्त्री का चयन डायट द्वारा किया जाता है और सम्राट् को केवल उसकी नियुक्ति की औपचारिकता का निर्वाह करना पड़ता है।

इसके अतिरिक्त ब्रिटेन में कुछ अभिसमयों (Conventions) के आधार पर ऐसा माना जाता है कि ब्रिटिश क्राउन को यह परमाधिकार (Prerogative) प्राप्त है कि वह हाउस ऑफ कॉमन्स के विघटन के लिए दिए गए परामर्श को अस्वीकार कर सकता है, किन्तु जापान का सम्राट् प्रधानमन्त्री के निचले सदन को विघटित करने के अधिकार से इन्कार नहीं कर सकता है।

पुनश्च: जापान का सम्राट् राजनीतिक प्रश्नों पर सार्वजनिक रूप से अपना मत प्रकट नहीं कर सकता। वह महत्वपूर्ण निर्णयों में अपने प्रभाव का प्रयोग भी नहीं कर सकता। किन्तु ऑग व जिंक के शब्दों में—"संविधान-निर्माता सम्राट् की नैतिक सम्पदा को राज्य के प्रधान के रूप में उसकी प्रतीकात्मक (Symbolic) स्थिति, सदियों की परम्पराओं में निहित उसके प्रति आदर की भावना व जनता के साथ उसके स्नेह व सम्मानपूर्ण सम्बन्ध को समाप्त नहीं कर सकी है।"[1] थियोडोर मैकनैली का भी यही मत है कि "जब तक सम्राट् है अन्य कोई व्यक्ति जनता की भक्ति और श्रद्धा को प्राप्त नहीं कर सकता है जैसाकि अधिनायकवादियों ने अन्य स्थानों पर किया है।"[2] इसके विपरीत ब्रिटेन के सम्राट् को मन्त्रियों को चेतावनी व परामर्श देने का अधिकार प्राप्त है चाहे वे उन्हें मानने के लिए बाध्य न हों। ऐसे अनेक अवसर आए हैं जब ब्रिटिश सम्राट् ने अपनी राजनीतिक सूझबूझ, निष्पक्षता एवं प्रभाव के कारण महत्त्वपूर्ण राजनीतिक निर्णयों को एक सीमा तक प्रभावित किया है।

राजतन्त्र के सुरक्षित रहने के कारण
(Causes for the Survival of the Monarchy in Japan)

वर्तमान संविधान में जापान के सम्राट् की शक्तियों का औपचारिक महत्व रह गया है। फिर भी जापान में राजतन्त्र की जड़ें बहुत गहरी हैं, और इसका भविष्य सुरक्षित है। जापान में राजतन्त्र की निरन्तरता अथवा उसके सुरक्षित रहने के कारण निम्नानुसार है—

(1) जापान के राजवंश का इतिहास बहुत प्राचीन है। सम्राट् जिम्मू ने 600 B.C. में इसकी स्थापना की थी। तब से लेकर वर्तमान तक देश में राजवंश का अस्तित्व बना

1. *Ogg & Zink*, Modern Govts
2. *Theodore McNelly*, Contemporary Govt. of Japan.

हुआ है। इस कारण से जापानी राजतन्त्र इतिहास की उपज रहा है। जापानी लोग अपनी इस ऐतिहासिक धरोहर को बनाये रखने में रुचि रखते हैं।

(2) जापान औद्योगिक दृष्टि से तो आधुनिक राष्ट्र है लेकिन जापानी लोगों में रूढ़िवादिता का प्रभाव है। उन्हें अपनी प्राचीन संस्थाओं और परम्पराओं के प्रति भावात्मक लगाव है। इसने भी राजतन्त्र को अक्षुण्ण रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

(3) प्रारम्भ में जापान में सम्राट् की स्थिति निरकुंश शासक की थी। लेकिन अब उसकी स्थिति मात्र 'वैधानिक शासक' की-सी बन गई है। सम्राट् ने पूरी तरह से लोकतान्त्रिक मूल्यों और परम्पराओं के साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया है। अब वास्तविक शक्ति का उपभोग मन्त्रिमण्डल द्वारा किया जाता है। इस स्थिति ने भी राजतन्त्र को सुरक्षित रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

(4) स्वर्गीय सम्राट् हीरोहितो की भूमिका ने भी राजतन्त्र की जड़ों को सशक्त बनाने में अविस्मरणीय भूमिका का निर्वाह किया। उनकी देश में भारी प्रतिष्ठा थी और उन्होंने राजवंश के साथ जनता का तादात्म्य स्थापित किया। फलतः जन-साधारण राजवंश के साथ एकाकार अनुभव करने लगा। राजवंश के प्रति जनता की श्रद्धा न केवल बरकरार रही, अपितु उसमें वृद्धि हुई।

(5) जापान के सम्राट् की कार्य-शैली भी राजतन्त्र को सशक्त बनाने में सहायक रही है। वह देश में संरक्षक तथा मार्गदर्शक की भूमिका का निर्वाह करता है। वह संसद (डाइट) तथा मन्त्रिमण्डल के बीच महत्त्वपूर्ण कड़ी का कार्य करता है। उसे शासक तथा विपक्षी दल, समान रूप से सम्मान करते हैं। सम्राट् की निष्पक्ष कार्य-शैली के कारण उसकी प्रतिष्ठा में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही है।

(6) सम्राट् देश की जनता की श्रद्धा का केन्द्र बिन्दु है। शासन के क्षेत्र में चाहे उसका प्रभाव लुप्त प्रायः हो चुका है, उसका नैतिक प्रभाव आज भी बरकरार है। यनागा के मतानुसार, "सम्राट् की शासनिक शक्तियों के लोप के कारण उसकी प्रतिष्ठा में कोई कमी नहीं हुई है। जहाँ तक सम्राट् के प्रति जनता के रुख का सम्बन्ध है, आजकल भी कम से कम प्रतीक के रूप में सम्राट् को ही राजा माना जाता है। सम्राट् आज भी राष्ट्रीय राजनीति और राष्ट्रीय एकता का द्योतक है।" इस भावना ने भी उसकी स्थिति को सुदृढ़ किया है।

(7) जापान की संसदात्मक शासन व्यवस्था के वैधानिक या औपचारिक शासक के रूप में सम्राट् की भूमिका का कोई विकल्प नहीं है।

(8) वर्तमान सम्राट् अकीहितो की गतिशील भूमिका भी राजवंश को सुदृढ़ करने में सहायक बनी है। वे भी अपने महान् पिता की गौरवमय परम्परा को सुरक्षित रखने की दिशा में कृत-संकल्प हैं। इतना ही नहीं राज-परिवार के अन्य सदस्य भी अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान को बरकरार रखने की दिशा में कृत-संकल्प हैं।

सारांश में, जापान का सम्राट् निरन्तरता और स्थायित्व का प्रतीक बन गया है। तथा उसका भविष्य उज्ज्वल है।

33

प्रधानमन्त्री एवं मन्त्रिमण्डल

(Prime Minister and The Cabinet)

जापान में संसदात्मक शासन-व्यवस्था का प्रचलन है। प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में मन्त्रिपरिषद् की देश की शासन-व्यवस्था के संचालन में अहम भूमिका है।

जापान में केबिनेट-प्रथा 1885 ई. में सम्राट् के अध्यादेश द्वारा आरम्भ हुई थी, किन्तु पुराने संविधान में 'केबिनेट' (मन्त्रिमण्डल) शब्द का कहीं भी प्रयोग नहीं किया गया था। यद्यपि संविधान की धारा 55 द्वारा एक प्रकार से यह कहकर मन्त्रिमण्डल को मान्यता प्रदान कर दी गई थी कि "राज्य के विभिन्न मन्त्री (अपने-अपने विभागों के बारे में) सम्राट् को परामर्श देंगे और उसके लिए उत्तरदायी होंगे।"[1] प्राचीन समय में मन्त्रिमण्डल देश के प्रशासन की इकाई नहीं थी, वरन् केवल परामर्शदात्री संस्था मात्र थी जिसका निर्माण सम्राट् करता था और जो सम्राट् के प्रति ही उत्तरदायी रहती थी। डायट के अविश्वास आदि का मन्त्रियों की स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। कहा जा सकता है कि प्राचीन संविधान के अन्तर्गत मन्त्रिमण्डल का स्वरूप अत्यन्त विकृत था। ऑग व जिंक के शब्दों में—"मैइजी संविधान के अन्तर्गत केबिनेट थी किन्तु केबिनेट पद्धति की सरकार न थी।"[2]

वर्तमान मन्त्रिमण्डल अथवा केबिनेट का स्वरूप : उसकी विशेषताएँ
(Characteristics of the Cabinet)

जापान के नवीन संविधान ने मन्त्रिमण्डल या केबिनेट के प्राचीन स्वरूप में आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया है। वर्तमान मन्त्रिमण्डल का संगठन संसदीय पद्धति वाले राज्यों के आधार पर किया गया है। जापानी देशों के मन्त्रिमण्डल का आज का स्वरूप बहुत कुछ पाश्चात्य देशों के मन्त्रिमण्डल के स्वरूप का ही अनुसरण है और पाश्चात्य मन्त्रिमण्डल की प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ जापानी मन्त्रिमण्डल में पाई जाती हैं जो संक्षेप में निम्नानुसार हैं—

(1) कार्यपालिका और व्यवस्थापिका का सामञ्जस्य (Integration of Executive & Legislature)—संसदीय मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था के अनुरूप जापान के

---

1. Japanese Constitution — Article 55
2. *Ogg & Zink* : Modern Govts. - "Under the old Constitution, there was a Cabinet, but no Cabinet System of Govt."

संविधान के अन्तर्गत कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के मध्य सामजस्य बनाए रखने का प्रयास किया गया है जो ब्रिटिश शासन-प्रणाली की मूल विशेषता है। अमेरिका की भाँति इन दोनों को पृथक् रखने का प्रयत्न नहीं किया गया है। जापानी संविधान में व्यवस्था है कि मन्त्रिमण्डल के सदस्यों को अधिकाशतः डायट के सदस्यों में से लिए जाए। इस व्यवस्था मे यह निष्कर्ष निकल सकता है कि जापानी मन्त्रिमण्डल में कुछ मन्त्री डायट के बाहर से भी लिए जा सकते है और इस प्रकार मन्त्रियों के दो वर्ग हो सकते हैं—एक वह जो डायट का सदस्य हो और दूसरा वह जो डायट का सदस्य न हो। लेकिन व्यवहार में जापान में लगभग सभी मन्त्रियों को डायट में से ही लिया जाता है, डायट के बाहर के व्यक्ति बहुत कम लिए जाते हैं। चूँकि उनकी संख्या मन्त्रिमण्डल में नगण्य होती है, अतः केबिनेट-व्यवस्था की विशेषता का महत्त्वपूर्ण रूप से खण्डन नहीं होता।

(2) व्यवस्थापिका के प्रति कार्यपालिका का उत्तरदायित्व (Executive's Responsibilities Towards Legislature)—व्यवस्थापिका के प्रति कार्यपालिका के उत्तरदायित्व का सिद्धान्त मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था का आधार है। जापानी संविधान की धारा 66 में स्पष्ट कहा गया है कि अपने सभी कार्यों के लिए मन्त्रिमण्डल डायट के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगा। धारा 69 में प्रावधान है कि प्रतिनिधि-सदन का विश्वास खो देने पर सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल को त्याग-पत्र देना पड़ेगा यदि 10 दिन के भीतर प्रतिनिधि-सदन का विघटन न कर दिया जाए।[1]

वस्तुतः डायट को मन्त्रिमण्डल पर नियन्त्रण का वैसा ही अधिकार प्राप्त है जैसा कि संसदीय प्रणाली के देशों में व्यवस्थापिका को कार्यपालिकाओं पर प्राप्त होता है। डायट अनेक उपायों से मन्त्रिमण्डल पर नियन्त्रण रखती है। डायट के सदस्य मन्त्रियों से नीति-विषयक प्रश्न पूछते हैं जिनका उत्तर मन्त्रियों को देना पड़ता है। यद्यपि मन्त्री उत्तर देने के लिए सदैव बाध्य नहीं होते, तथापि सदस्यों के प्रश्नों का भय उनकी स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाए रहता है। डायट के सदस्य प्रश्नों के अतिरिक्त मन्त्रियों की आलोचना भी करते हैं।

(3) राजनीतिक सजातीयता (Political Homogenity)—जापानी संविधान सामूहिक उत्तरदायित्व की व्यवस्था करता है। इस सामूहिक उत्तरदायित्व को सफल बनाने के लिए और मन्त्रियों के दृष्टिकोण में एकता बनाए रखने के लिए जापान में भी ब्रिटेन की ही भाँति दल-प्रथा का विकास हुआ है। राजनीतिक दलों का सरकार के निर्माण के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है और मन्त्रियों की नियुक्ति बहुत कुछ दलीय प्रथा पर ही निर्भर करती है। डायट के जो सदस्य मन्त्री बनाए जाते हैं, वे प्रायः एक ही राजनीतिक विचारधारा के होते हैं और इसलिए वे एक इकाई के रूप में कार्य करते हैं। डायट के बाहर के व्यक्तियों में से नियुक्त किए जाने वाले मन्त्री इस बात के अपवाद हो सकते हैं, लेकिन ऐसे मन्त्रियों की संख्या सामान्यतः नगण्य रहती है।

(4) प्रधानमन्त्री का नेतृत्व (Leadership of the Prime Minister)—प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में समस्त मन्त्रिमण्डल एक दल (Team) के रूप में कार्य करने लगा। यनागा के अनुसार—"सन् 1947 के संविधान के अनुसार जापानी सरकार कार्यात्मक रूप से

1. *Yanaga, Chitoshi*: Japanese People and Politics.

किन्तु भावनात्मक रूप से कम, ब्रिटिश सरकार से समानता रखती है। डायट द्वारा निर्दिष्ट नीतियों के आधार पर सरकार राष्ट्रीय कार्यपालिका पर सर्वोच्च नियन्त्रण रखती है। संवैधानिक संरचना की दृष्टि से कम से कम जापान में एक उत्तरदायी सरकार की स्थापना हुई।"

(5) सम्राट् राज्य का औपचारिक अध्यक्ष मात्र (Emperor only Formal Head of the State)—सम्राट् राज्य का औपचारिक अध्यक्ष मात्र रह गया। वह राज्य का संवैधानिक अथवा औपचारिक अध्यक्ष मात्र है। सम्राट् की संवैधानिक स्थिति के बारे में पूर्व अध्याय में विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

(6) गोपनीयता (Secrecy)—गोपनीयता जापानी मन्त्रिपरिषद् की एक प्रमुख विशेषता है। जापानी मन्त्रिपरिषद् के सदस्य गोपनीयता का निर्वाह करते हैं। मन्त्रिमण्डल की बैठकों की कार्यवाही या विवरण की गोपनीयता का निर्वाह किया जाता है। गोपनीयता के भग होने की स्थिति में मन्त्रियों को अपने पद से त्याग-पत्र देना पड़ता है।

मंत्रिमण्डल का संगठन, कार्य-प्रणाली, शक्तियाँ एवं कार्य
(The Composition, Working, Powers and Functions of the Cabinet)

आकार एवं रचना (Size and Composition)

जापानी मन्त्रिमण्डल या कैबिनेट के आकार अथवा मन्त्रियों की संख्या एवं श्रेणियों के बारे में संविधान में विस्तार से वर्णन किया गया है। संविधान की धारा 66 में केवल यह व्यवस्था दी गई है कि प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष होगा। उसके अतिरिक्त कैबिनेट में कानून द्वारा की गई व्यवस्था के अनुसार राज्य के अन्य मन्त्री होंगे। इसी धारा के अनुसार यह व्यवस्था भी है कि प्रधानमन्त्री एव सभी मन्त्रियों का असैनिक होना आवश्यक है। संविधान की धारा 67 के अनुसार प्रधानमन्त्री का नाम, डायट के सदस्यों में से डायट के संकल्प (Resolution) द्वारा तैयार किया जाता है। प्रधानमन्त्री के चयन के प्रश्न पर डायट के दोनों सदनों में मतभेद होने पर दोनों सदनों की संयुक्त समिति सहमति का प्रयत्न करती है। यदि सयुक्त समिति के प्रयत्नों से भी सहमति प्राप्त न हो सके अथवा प्रतिनिधि सदन द्वारा तय कर लेने पर भी विश्रामकाल को छोड़कर 10 दिन के मध्य कौंसिलर-सदन नाम तय न कर सकें तो संविधान की धारा 67 के अनुसार प्रतिनिधि सदन के निर्णय को ही डायट का निर्णय समझ लिया जाएगा। डायट द्वारा प्रधानमन्त्री का नाम तय हो जाने पर उसकी औपचारिक नियुक्ति सम्राट् द्वारा की जाती है। इस धारा से स्पष्ट है कि प्रधानमन्त्री के नामांकन के विषय में समासद सदन (House of the Councillors) की शक्तियाँ प्रतिनिधि सदन (House of Representatives) की तुलना में कम हैं।

अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति प्रधानमन्त्री द्वारा की जाती है। संविधान की धारा 68 के अनुसार अधिकाश मन्त्री राष्ट्रीय डायट के सदस्य होने चाहिए। मन्त्रियों को अपने पद से हटाने का प्रधानमन्त्री को अधिकार है।[1]

1. Japanese Constitution — Article 73

अवधि (Term)

जापान के मन्त्रिमण्डल की कोई निश्चित अवधि नहीं है। वह डायट के निम्न सदन अर्थात् प्रतिनिधि सदन के बहुमत के समर्थक तक ही अपने पद बने रह सकते हैं। यदि निम्न सदन मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर देता है अथवा अविश्वास प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है तो मन्त्रिमण्डल को दस दिन के भीतर या तो स्वयं को त्याग-पत्र दे देना चाहिए अथवा प्रतिनिधि सदन को भंग कर देना चाहिए एव देश में पुनः निर्वाचन कराने चाहिए। जब केबिनेट को त्याग-पत्र देना होता है तो वह दोनों सदनों के अध्यक्षों को इस बात की लिखित सूचना देती है। यह सूचना प्राप्त होने पर डायट नए प्रधानमन्त्री के चयन का कार्य आरम्भ कर देती है।

संगठन एवं कार्य-प्रणाली
(Organisation & Working Procedure)

प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष होता है और उसका कार्यालय ही सरकार का केन्द्रीय कार्यालय होता है। इस कार्यालय का मुख्य संचालक मन्त्रिमण्डल सचिवालय का निर्देशक (Director of Cabinet Secretariat) होता है। इसकी सहायता के लिए उप-निदेशक (Deputy Directors) होते हैं। सचिवालय मन्त्रिमण्डल की सभाओं का कार्यक्रम (Agenda) तैयार करता है, आवश्यक पत्र तैयार करता है एव अन्य मामलों का प्रबन्ध करता है। सचिवालय के अलावा एक विधि-निर्माण ब्यूरो (Bureau of the Legislation) भी होता है। इसका निदेशक विधि निर्माण के सम्बन्ध में प्रधानमन्त्री एवं केबिनेट को कानूनी परामर्श देता है। अनेक बोर्ड और कमीशन इस ब्यूरो के सहायक अंग होते हैं।

मन्त्रिमण्डल की बैठकें साधारणतः सप्ताह में दो बार प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में उसके सरकारी भवन में होती हैं। प्रधानमन्त्री की अनुपस्थिति में उप-प्रधानमन्त्री समापतित्व करता है।

मन्त्रिमण्डल की बैठक के लिए कोई गणपूर्ति (Quorum) निश्चित नहीं है। यदि बहुमत से कोई निर्णय लिया जाता है तो अनुपस्थिति सदस्यों के हस्ताक्षर बाद में कराए जा सकते हैं। मन्त्रिमण्डल के वाद-विवाद गोपनीय होते हैं और कार्यवाही प्रकाशित नहीं की जाती।

मन्त्रिमण्डल स्तर के मन्त्रियों के अधीन उपमन्त्री भी होते हैं। ये स्थायी सरकारी अधिकारी (Career Officials) होते हैं। इनका महत्त्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। इनकी बैठकों में हुए निर्णयों को मन्त्रिमण्डल की स्वीकृति पर ही लागू किया जा सकता है।

सी. यनागा के मतानुसार, मन्त्रिमण्डल के कार्य दो प्रकार के होते हैं—(1) मन्त्रिमण्डल के निर्णय (Cabinet Decisions) एवं (2) मन्त्रिमण्डल के समझौते (Cabinet Understanding)। महत्त्वपूर्ण प्रश्नों एवं सांविधानिक तथा कानूनी मामलों पर मन्त्रिमण्डल निर्णय करता है। अन्य साधारण मामलों पर केबिनेट के सदस्यों में आपसी समझौते होते हैं।

शक्तियाँ एवं कार्य (Powers and Functions)

संविधान की धारा 65 के अनुसार कार्यपालिका-शक्ति मन्त्रिमण्डल में निहित है। जापानी मन्त्रिमण्डल को संविधान द्वारा वास्तविक कार्यपालिका शक्ति प्रदान की गई है, जैसा कि व्यवहार में ब्रिटेन में है। मन्त्रिमण्डल के सभी नीति सम्बन्धी महत्वपूर्ण निर्णय सर्वसम्मति से होते हैं और यदि किसी मन्त्री को ऐसा कोई निर्णय स्वीकार न हो तो उसे त्यागपत्र देना पड़ता है। मन्त्रिमण्डल के कार्य संक्षेप में निम्नांकित हैं—

(1) प्रशासनिक शक्तियाँ (Administrative or Executive Powers)—संविधान के अनुसार देश की सम्पूर्ण प्रशासनिक शक्तियाँ कैबिनेट में निहित हैं। वही इनका व्यावहारिक रूप में प्रयोग करती है। मन्त्रिमण्डल की प्रशासनिक शक्तियाँ निम्नवत् हैं—[1]

(i) मन्त्रिमण्डल राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार करता है तथा सर्वसम्मति से निर्णय लेता है। नीति-निर्धारण के सम्बन्ध में उसके अधिकार अन्तिम तथ्य पूर्ण हैं।

(ii) अपने निर्णयों को क्रियान्वित करने तथा उन्हें अभिव्यक्त करने वाले कानूनों को लागू करने का काम मन्त्रिमण्डल का ही है।

(iii) मन्त्रिमण्डल लोक सेवकों (Civil Servants) पर नियन्त्रण रखता है। उसे स्थायी तथा विशेष वर्गों की लोक सेवा के अधिकारियों की नियुक्ति का अधिकार भी प्राप्त है। कानून द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार वह सरकारी अधिकारियों को पदच्युत् कर सकता है तथा उनके विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही कर सकती है।

(iv) राज्य के उच्च लोक सेवकों और राजनीतिक पदाधिकारियों की नियुक्ति का भी अधिकार उसे ही प्राप्त है।

(v) विदेश-नीति का निर्धारण और संचालन करने का उत्तरदायित्व मन्त्रिमण्डल का ही है। विदेशों से सन्धि करने का उसे अधिकार है, किन्तु उन पर डायट की स्वीकृति लेनी होती है। यह स्वीकृति सन्धि करने से पहले या बाद में ली जा सकती है।

(vi) शासन के विभिन्न विभागों का मार्गदर्शन करने और उनके कार्यों में समन्वय लाने का मुख्य कार्य मन्त्रिमण्डल द्वारा ही सम्पादित किया जाता है।

(2) विधायी शक्तियाँ[1] (Legislative Powers)—कानून-निर्माण से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न होने पर भी इस क्षेत्र में कैबिनेट महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। संसदीय व्यवस्था के अनुरूप, जापानी मन्त्रिमण्डल भी विधायी क्षेत्र में व्यवस्थापिका को नेतृत्व प्रदान करती है। आवश्यक विधेयकों को तैयार करने, उनको डायट के समक्ष रखने और अपने बहुमत के बल पर उन्हें डायट से स्वीकृत करा लेने का सम्पूर्ण कार्य मन्त्रिमण्डल का ही है। उसे मन्त्रि मण्डलीय आदेश (Cabinet Order) भी जारी करने का अधिकार है। इन आदेशों

1 पूर्वोक्त—Articles 65, 73 & 72
Articles 65, 73 & 72

का प्रभाव संसदीय कानूनों जैसा ही होता है। डायट की बैठक बुलाने, निम्न सदन को विघटित करने, सम्राट् को परामर्श देने, आम चुनावों की घोषणा करने तथा संविधान में संशोधन लाने के लिए आवश्यक कदम उठाने आदि के दायित्वों का निर्वाह केबिनेट ही करती है। एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि जापानी कार्यपालिका को विधेयक के सम्बन्ध में निषेधाधिकार (Veto) तथा अध्यादेश (Ordinance) जारी करने का अधिकार नहीं है। आर्डथ बर्क्स (Ardath W. Burks) के अनुसार, "केबिनेट का कार्य राष्ट्रीय नीति निर्धारित करने व विधायी प्रक्रिया में प्रभावी रूप से भाग लेना होता है।"[1]

(3) वित्तीय अधिकार (Financial Powers)—संविधान की धारा 83 ने राष्ट्रीय वित्त के प्रशासन का उत्तरदायित्व डायट पर डाला है, लेकिन व्यवहार में मन्त्रिमण्डल ही इस उत्तरदायित्व का अधिकांशतः निर्वाह करता है। बजट तैयार करने और उसे डायट के सामने रखने का काम मन्त्रिमण्डल का ही है। केबिनेट द्वारा तैयार किए गए बजट में डायट नाममात्र का ही हेर-फेर करती है। आकस्मिक परिस्थिति में डायट द्वारा सुरक्षित धनराशि के व्यय का उत्तरदायित्व मन्त्रिमण्डल पर ही, तथापि धन खर्च करने के बाद उसे अविलम्ब डायट की स्वीकृति लेनी पड़ती है। राज्य के सभी प्रकार के व्ययों और राजस्वों की जो वार्षिक रिपोर्ट ऑडिट-बोर्ड प्रस्तुत करता है उसे मन्त्रिमण्डल द्वारा ही डायट के सामने पेश किया जाता है। संविधान द्वारा केबिनेट का ही यह दायित्व है कि वह नियत अवधि पर वर्ष में कम से कम एक बार राष्ट्रीय वित्त के बारे में डायट और जनता के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं।

(4) न्यायिक अधिकार (Judicial Powers)—संविधान की धारा 6 ने मन्त्रिमण्डल को सामान्य क्षमादान (General Amnesty), विशिष्ट क्षमादान (Special Amnesty), दण्ड को कम करने, मृत्यु-दण्ड को अल्पकाल के लिए स्थगित करने तथा अधिकारों को पुनः प्रदान करने आदि के प्रश्नों पर निर्णय देने का अधिकार दिया है। इस सम्बन्ध में मन्त्रिमण्डल द्वारा किए गए कार्यों को सम्राट् स्थापित करता है।[2]

(5) परामर्शदात्री शक्तियाँ (Advisory Powers)—सम्राट् को कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है। वह मन्त्रिमण्डल के परामर्शदात्री अधिकार के अनुसार कार्य करता है। क्विंग्ले व टर्नर के शब्दों में, "मन्त्रिमण्डल का यह कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि परामर्श उसकी ओर से निर्णय के समान है।"[3]

(6) आपात्कालीन शक्तियाँ (Emergency Powers)—देश के आपात् या संकटकाल में मन्त्रिमण्डल को विशेष शक्तियाँ प्राप्त हैं।

इन महत्त्वपूर्ण अधिकारों के अलावा मन्त्रिमण्डल को प्रतिनिधि सदन को भंग करने का अधिकार भी प्राप्त है। प्रतिनिधि-सदन को भंग करके वह हाउस ऑफ कौंसिलर्स (House of Councillors) का संकटकालीन अधिवेशन बुला सकती है। सारांश में मन्त्रिमण्डल वर्तमान जापानी शासन-व्यवस्था का प्रमुख अंग है और उसी के हाथ में व्यवहारतः शासन की समस्त सत्ता है। यद्यपि वह डायट के प्रति पूर्णतया उत्तरदायी है।

1. *Ardath, Burks* : The Government of Japan
2. Japanese Constitution—Article 6.
3. *Quingley & Tarner* : The New Japan.

यदि निम्न सदन में उसे बहुमत का समर्थन प्राप्त हो तो उसकी शक्ति बहुत बढ़ जाती है। सर जॉन मैरियट (Sir John Marriot) के अनुसार, "कैबिनेट वह धुरी है जिस पर समग्र सरकारी यन्त्र परिभ्रमण करता है।"

जापान में मन्त्रिमण्डल की शक्तियों में वृद्धि के कारण

(Causes of Increasing Powers in Japanese Cabinet)

अन्य संसदात्मक देशों की तरह जापान में भी मन्त्रिमण्डल की शक्तियों में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है, और यह देश की वास्तविक सत्ताधारी संस्था बन गया है। इस शक्ति-वृद्धि के पीछे निम्नलिखित कारणों का योगदान रहा है—

(1) दलीय अनुशासन के कारण भी मन्त्रिमण्डल की शक्ति में भारी वृद्धि हुई है।

(2) प्रधानमन्त्री के नेतृत्व ने भी मन्त्रिमण्डल की शक्ति में वृद्धि की है।

(3) मन्त्रिमण्डल के पास लाभ पहुँचाने की शक्तियाँ हैं, जिसके कारण उसकी स्थिति मजबूत हुई है।

(4) डायट के अधिवेशन बहुत कम समय के लिए होते हैं, और इससे वह मन्त्रिमण्डल पर वास्तविक रूप से नियन्त्रण स्थापित नहीं कर पाती है।

(5) प्रदत्त-व्यवस्थापन की प्रक्रिया ने भी मन्त्रिमण्डल की शक्तियों में वृद्धि की है।

(6) मन्त्रिमण्डल को डायट के प्रतिनिधि सदन को भंग कराने की शक्ति प्राप्त है, इससे भी प्रतिनिधि सभा के सदस्य मन्त्रिमण्डल को अपदस्थ कराने अथवा अनावश्यक परेशान करने का साहस नहीं कर पाते हैं।

(7) जापान एक औद्योगिक देश है। विज्ञान और तकनीकी प्रगति ने जापान को एक प्रमुख आर्थिक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया है। जापान की बढ़ती अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका ने भी मन्त्रिमण्डल की शक्तियों में वृद्धि की है।

मन्त्रिमण्डल की शक्तियों में वृद्धि के बावजूद यह तानाशाह बनने की स्थिति में नहीं है। देश के संविधान, सजग जनमत तथा संवैधानिक परम्पराओं का उस पर प्रभावशाली नियन्त्रण है।

प्रधानमन्त्री

(The Prime Minister)

जापान की राजनीतिक व्यवस्था में प्रधानमन्त्री की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। उसे शासन की 'धुरी' माना जाता है। प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में मन्त्रिमण्डल ही सम्राट् की सारी शक्तियों का उपभोग करता है।

निर्वाचन एवं योग्यता (Election and Qualifications)

जापान के संविधान के अनुसार सम्राट् उसी व्यक्ति को प्रधानमन्त्री नियुक्त करता है जिसका नामांकन व निर्वाचन डायट के दोनों सदन करते हैं। प्रधानमन्त्री की नियुक्ति में सम्राट् को व्यक्तिगत इच्छा अथवा रुचि के अनुसार कार्य करने का कोई अवसर प्राप्त होना सम्भव नहीं है।[1]

1 Japanese Constitution—Article 65 to 75

जापान के संविधान द्वारा प्रधानमन्त्री के लिए दो योग्यताएँ निश्चित की गई हैं—

(1) उसे डायट का सदस्य होना चाहिए, एवं

(2) उसे असैनिक (Civilian) होना चाहिए।

जापान के संविधान के अनुसार प्रधानमन्त्री डायट के किसी भी सदन का सदस्य हो सकता है, पर चूँकि उसे मनोनीत करने में प्रतिनिधि सदन की शक्ति समासद सदन की अपेक्षा कुछ अधिक होती है, अतः प्रतिनिधि सदन के सदस्य की प्रधानमन्त्री बनने की सम्भावनाएँ अधिक रहती हैं।

प्रधानमन्त्री की स्थिति, शक्तियाँ एवं भूमिका
(Position, Powers and Role of Prime Minister)

संविधान की धारा 65 से 75 के अनुसार राज्य की कार्यपालिका शक्ति मन्त्रिमण्डल में निहित होती है और मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष प्रधानमन्त्री होता है। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप में राज्य की कार्यपालिका-शक्ति पर अन्तिम अधिकार प्रधान मन्त्री को ही प्राप्त है। डायट में बहुमत दल और जनता का निर्वाचित प्रतिनिधि होने के कारण उसे राष्ट्र का सर्वोच्च राजनीतिक नेतृत्व प्राप्त होता है। अपने नेतृत्व के लिए वह प्रत्यक्ष रूप से डायट के प्रति और अप्रत्यक्ष रूप से सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रति उत्तरदायी होता है।

(1) सर्वोच्च राजनीतिक शासक (Supreme Political Administrator)—मन्त्रिमण्डल में प्रधानमन्त्री की स्थिति सर्वोच्च होती है। वही मन्त्रियों को नियुक्त करता है और उनमें से एक को उप-प्रधानमन्त्री बनाता है। मन्त्रियों के बीच विभागों के वितरण में प्रधानमन्त्री का ही निर्णय अन्तिम होता है। वही मन्त्रियों को क्रमबद्ध कर उन्हें वरिष्ठता प्रदान करता है। वह अपनी इच्छानुसार मन्त्रिमण्डल में परिवर्तन कर सकता है। वह मन्त्रिमण्डल की समस्त कार्यवाहियों का केन्द्र होता है। वह देखता है कि सब विभाग ठीक से कार्य कर रहे हैं या नहीं। मन्त्रिमण्डलीय बैठकों का समापतित्व करने, निरीक्षण करने और कार्यवाहियों का संचालन करने का अधिकार उसी को है। मन्त्रिमण्डल के निर्णयों और नीति-निर्धारण में उसकी सर्वोपरि भूमिका रहती है। वह मन्त्रियों के कार्य में सामंजस्य स्थापित करता है। किसी भी प्रशासनिक विभाग का मन्त्री अकेले ही कोई निर्णय नहीं कर सकता। किसी भी राज्यमन्त्री द्वारा जो निर्णय लिया जाता है उस पर मन्त्री के हस्ताक्षर होने के साथ-साथ प्रधानमन्त्री के हस्ताक्षर होना भी अनिवार्य है। मन्त्रिमण्डल का कोई भी निर्णय तभी मान्य समझा जाता है जब उस पर प्रधानमन्त्री के हस्ताक्षर हो जाएँ।

मन्त्रिमण्डल की सामान्य नीति का प्रतिनिधित्व भी प्रधानमन्त्री ही करता है। मन्त्रिमण्डल की ओर से डायट के सामने प्रस्तुत किए जाने वाले सभी पत्र आदि उसी के द्वारा पेश किए जाते हैं।

(2) मन्त्रियों की नियुक्ति व पदच्युति की शक्ति (Power of Appointment and Dismissal of Ministers)—मन्त्रियों को पदच्युत करने का अधिकार भी प्रधानमन्त्री को है। संविधान की धारा 68 स्पष्टतः उपबन्धित करती है कि "प्रधानमन्त्री अपनी इच्छानुसार राज्य के मन्त्रियों का निष्कासन कर सकता है।"

(3) मन्त्रिमण्डल के निर्माण व संहार की शक्ति (Power of Composition and End of the Cabinet)—सभी मन्त्रियों का भविष्य उस पर निर्भर करता है। उसके त्याग-पत्र के साथ सारे मन्त्रिमण्डल का अन्त हो जाता है। यदि कोई मन्त्रि उसके कहने पर त्याग-पत्र नहीं देता है तो वह सम्राट् से कह कर मन्त्री को बर्खास्त करा सकता है अथवा स्वयं त्याग-पत्र देकर अपने बहुमत के बल पर मन्त्रिमण्डल का पुनर्गठन कर सकता है।

(4) दल का नेता (Leader of Party)—प्रधानमन्त्री शासन का प्रधान होने के अतिरिक्त बहुमत दल का नेता भी होता है। उसे दल का प्रतीक माना जाता है और आम चुनाव प्राय उसी के व्यक्तित्व को केन्द्र बनाकर लड़ा जाता है। डायट में बहुमत दल के समर्थन पर ही वह और उसका मन्त्रिमण्डल शासन की गृह तथा विदेश नीति का सफलतापूर्वक सचालन करता है। दल के सभी सदस्य उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। उसकी आज्ञाओं की अवज्ञा करने पर दल के सदस्य का राजनीतिक भविष्य खतरे में पड़ जाता है। अत. दल पर उसका नियन्त्रण बना रहता है।

(5) डायट का नेता (Leader of Diet)—प्रधानमन्त्री डायट का, मुख्यत. प्रतिनिधि सभा का नेता होता है। डायट में किसी भी महत्त्वपूर्ण विषय पर वह अन्तिम वक्ता और नीति का निर्धारक होता है। प्रशासनिक नीतियों पर अन्तिम और अधिकृत भाषण प्रधानमन्त्री का ही होता है। वही विधियों के निर्माण, वार्षिक बजट की तैयारी, सदन की कार्यवाही और व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में अन्तिम रूप से पथ-प्रदर्शन करता है। यदि प्रतिनिधि सभा मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे तो वह अपने साथियों सहित त्याग-पत्र भी दे सकता है अथवा 10 दिन के भीतर प्रतिनिधि सभा को भग भी कर सकता है।

(6) सम्राट् एवं मन्त्रिमण्डल के बीच की कड़ी (Link between the Emperor and the Cabinet)—प्रधानमन्त्री राजकीय मामलों में सम्राट और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्पर्क कड़ी का कार्य करता है। अन्य मन्त्रियों का व्यक्तिगत रूप से सम्राट् से प्रत्यक्ष औपचारिक सम्बन्ध नहीं है। यहाँ यह स्मरणीय है कि जापानी सम्राट् को सविधान द्वारा ऐसा कोई अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह भारतीय राष्ट्रपति के अनुसार प्रधानमन्त्री से किसी प्रकार की सूचना की माँग करे।

(7) अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रतिनिधित्व (Representative International Affairs)—प्रधानमन्त्री ही अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपने देश का सर्वोच्च और प्रभावशाली प्रतिनिधि होता है। विदेश-नीति में उसके निर्णय अन्तिम और अधिकृत माने जाते हैं। मुख्यतः उसी के व्यक्तित्व और आचरण के आधार पर अन्य देशों से मैत्रीपूर्ण आर्थिक, राजनीतिक और सास्कृतिक सम्बन्ध स्थापित हो पाते हैं। उसे ही अन्तर्राष्ट्रीय जगत में देश का मुख्य प्रवक्ता माना जाता है।

(8) संकटकालीन या आपातकालीन अधिकार (Emergency Powers)—भारत में आपात्कालीन अधिकार राष्ट्रपति को हैं जिनका प्रयोग मन्त्रिमण्डल करता है जबकि जापान में सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों ही दृष्टियों से आपात्कालीन शक्तियाँ मन्त्रिमण्डल में निहित हैं, जिनका प्रयोग मन्त्रिमण्डल का प्रधान होने के नाते प्रधानमन्त्री करता है।

(9) प्रशासन पर नियन्त्रण (Control over Administration)—प्रधानमन्त्री देश का मुख्य प्रशासक है। देश के प्रशासन को सुचारु रूप से संचालित करने का उत्तरदायित्व उसी पर है। प्रधानमन्त्री ही विभिन्न मन्त्रियों को इस सम्बन्ध में आवश्यक नेतृत्व, निर्देशन और मार्गदर्शन प्रदान करता है। देश के समस्त प्रशासन-तन्त्र पर उसका नियन्त्रण रहता है। प्रधानमन्त्री द्वारा ही व्यवहार में सभी महत्वपूर्ण प्रशासनिक नियुक्तियाँ की जाती हैं। प्रशासन में नये-नये सुधारों का सूत्रपात करने का दायित्व भी प्रधानमन्त्री का ही माना जाता है।

(10) नीति-निर्माता की भूमिका (Role as a Policy-maker)—प्रधानमन्त्री देश का नीति-निर्माता है। उस पर ही देश की आन्तरिक (गृह), औद्योगिक, वित्त और विदेश नीति के निर्माण का उत्तरदायित्व है। प्रधानमन्त्री को ही देश की नीतियों का अधिकृत प्रवक्ता माना जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जापान की राजनीतिक व्यवस्था में प्रधानमन्त्री की सर्वाधिक महत्वपूर्ण और शक्तिशाली भूमिका है। इस सम्बन्ध में उसकी स्थिति ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के समकक्ष रखी जा सकती है। उसे देश की 'राजनीतिक व्यवस्था की धुरी' तथा "गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र" बना दिया है।

34

डायट (संसद्)

(Diet)

जापान की संसद् को अंग्रेजी भाषा में डायट (Diet) और जापानी भाषा में कोक्काई (Kokkai) कहते हैं। यह विश्व की सर्वाधिक प्राचीन और अनुभवी व्यवस्थापिका मानी जाती है। इसकी स्थापना 1889 ई. में मेइजी संविधान के द्वारा की गई थी। इसमें संसद् के दो सदने थे—प्रथम, प्रतिनिधि सदन (House of Representatives) और द्वितीय सभासद् या अभिजात सदन (House of Councillors)। प्रतिनिधि सदन का निर्वाचन सुविधा की दृष्टि से निर्वाचन-क्षेत्रों से होता था, पर प्रत्येक सदस्य सारे राज्य की ओर से बोलता था। मताधिकार केवल पुरुषों को प्राप्त था। इसकी अवधि चार वर्ष थी, पर यह सदन इससे पहले भी विघटित किया जा सकता था। अभिजात सदन एक स्थायी सदन था जिसमें केवल कुलीन या धनिक वर्ग या अभिजात्य वर्ग के लोगों का प्रतिनिधित्व था। "यह युद्ध पूर्व की साम्राज्यीय संसद् मूल रूप से एक परामर्शी निकाय थी जिसने कार्यपालिका के कार्यों पर नियन्त्रण लगाने का प्रयत्न किया, परन्तु वह बहुधा असफल हुआ।" यह संसद् अपने असीमित अधिकारों के बल पर 1940 तक सफलतापूर्व कार्य करती रही, पर उस वर्ष राजनीतिक दलों के अवैध घोषित हो जाने से जापान में संसदीय शासन-व्यवस्था का अन्त हो गया और सैनिक तानाशाही स्थापित हो गई।

द्वितीय महायुद्ध के बाद जापान वर्तमान संविधान में संसद् का द्विसदनात्मक रूप कायम रखा गया है, लेकिन शक्ति व संगठन की दृष्टि से यह पूर्ववर्ती रूप से बहुत भिन्नता लिये हुए है। इसके अनुसार डायट राज्य की शक्ति का सर्वोच्च अंग है। संविधान की धारा 41 में कहा गया है कि "डायट राज्य की शक्ति का सर्वोच्च और एकमात्र विधि-निर्माण करने वाला अंग होगा।"[1]

संसद् की रचना एवं कार्य-विधि

(Composition & Working of Diet)

डायट के निम्नांकित दो सदन हैं—

1. प्रतिनिधि सदन (House of Representatuves)
2. सभासद् सदन (House of Councillors)

1 Japanese Constitution — Article 41.

संविधान की धारा 43 के अनुसार दोनों सदनों के सदस्य निर्वाचित होते हैं और ये जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं। दोनों सदनों के सदस्यों की सख्या कानून द्वारा निश्चित की गई है।

प्रतिनिधि सदन (House of Representatives) जापान की ससद् का निम्न सदन है। वर्तमान में इसके 511 सदस्य हैं (इसके पूर्व इसकी सदस्य संख्या 491 थी) पर यह संख्या सविधान द्वारा निश्चित नहीं की जाकर संसदीय कानून द्वारा निर्धारण की गई। प्रतिनिधि सदन के सदस्यों के लिए सारा देश 118 निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित होता है। निर्वाचन क्षेत्र किसी प्रशासकीय सीमा पर आधारित नहीं हैं। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से 3 से 5 सदस्य तक निर्वाचित किए जाते हैं किन्तु प्रत्येक मतदाता को केवल एक ही मत देने का अधिकार होता है। प्रत्येक सदस्य औसत रूप से सवा दो लाख की जनसंख्या पर निर्वाचित किया जाता है।

प्रतिनिधि सदन का कार्यकाल 4 वर्ष है। इस अवधि की समाप्ति के बाद नवीन सदन के लिए देशमें चुनाव होना अनिवार्य है। जब प्रतिनिधि सदन की अवधि पूर्ण हो जाती है तो उसको भग करने की घोषणा सम्राट् द्वारा की जाती है और उसके द्वारा ही नवीन सदन के निर्वाचन के लिए आदेश प्रसारित होते हैं। उनके आदेश के प्रसारित होने के कुछ काल बाद नए चुनाव होते हैं। प्रतिनिधि सदन को मन्त्रिमण्डल के परामर्श पर सम्राट् द्वारा अवधि से पूर्व भी विघटित किया जा सकता है।

जापान के उच्च सदन का नाम समासद्-सदन (House of Councillors) है। इसकी व्यवस्था नवीन सविधान में प्राचीन अभिजात सदन के स्थान पर की गई है। समासद् सदन का निर्वाचन भी सार्वभौम वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष रूप से होता है। प्रत्येक स्त्री-पुरुष जिनकी आयु 20 वर्ष की हो, निर्वाचन में मतदान का अधिकार होता है। इस सदन के 250 सदस्यों में से 100 सदस्य तो राष्ट्रीय निर्वाचन क्षेत्रों (National Constituencies) से चुने जाते हैं और शेष सदस्य क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों (Prefectural Constituencies) से निर्वाचित होते हैं। क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों अर्थात् प्रीफेक्चर को 2 से 8 प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है। प्रत्येक निर्वाचक दो मत प्रदान करता है—एक प्रीफेक्चर सदस्य के लिए दूसरा राष्ट्रीय सदस्य के लिए। समासद् सदन का निर्वाचन 6 वर्ष के लिए होता है। आधे सदस्य प्रत्येक तीसरे वर्ष रिटायर (सेवा-निवृत्त) होते रहते हैं और उनके स्थान पर नए सदस्यों का चुनाव होता है। यह स्थायी सदन है जिसे भंग नहीं किया जा सकता।

सदस्यों की योग्यताएँ (Qualifications of Members)

डायट के सदस्यों की योग्यताएँ कानून द्वारा निश्चित की गई हैं—(1) प्रतिनिधि सदन और समासद् सदन के सदस्यों की आयु क्रमशः कम से कम 25 और 30 वर्ष होनी चाहिए। (2) डायट के सदस्य केवल जापान के जन्मजात सदस्य ही हो सकते हैं।

जापान में कोई भी सदस्य देश के किसी भी निर्वाचन-क्षेत्र से खड़ा हो सकता है। कोई भी व्यक्ति सदस्यता के लिए अयोग्य ठहराया जा सकता है, यदि वह (i) जापानी

सरकार में किसी लाभ के पद पर हो, (ii) न्यायालय द्वारा पागल करार दिया गया हो, (iii) दिवालिया हो, (iv) जापान का नागरिक न हो, अथवा (v) डायट के किसी कानून के अन्तर्गत अयोग्य सिद्ध हो गया हो।

वेतन और विशेषाधिकार (Salary and Special Privileges)

जापान के संविधान की धारा 40 के अन्तर्गत डायट के दोनों सदनों के सदस्यों को 'राष्ट्रीय-कोष' से वेतन दिया जाता है। डायट के सदस्यों को अधिवेशन के दिनों में तथा अधिवेशन के बीच में समितियों में कार्य के लिए भी प्रतिदिन भत्ता (Daily Allowances) भी दिया जाता है। सदस्यों को सत्र के दिनों में दैनिक भत्ता और पत्र-व्यवहार व्यय देने की व्यवस्था है। निजी सचिव और कार्यालय रखने के लिए भी उन्हें समुचित धन दिया जाता है। रेल के पास और रिटायर होने वाले सदस्यों के लिए पेंशन की भी व्यवस्था है।

डायट के सदस्यों को सम्भवतः अन्य किसी भी देश के विधायकों से अधिक सम्मान दिया जाता है। जापान में उन्हें 'सार्वजनिक अधिकारी' कहा जाता है। सदस्यों को डायट में भाषण की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त रहती है। सदन में दिए गए भाषण और मतदान के लिए उनके विरुद्ध कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती। डायट के सत्र के समय उन्हें दण्डनीय अपराधों के सिवाय अन्य मामलों के सम्बन्ध में बन्दी नहीं बनाया जा सकता। डायट में किए गए अवांछनीय आचरण के विरुद्ध उनके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकती है।

कार्यविधि (Working Procedure)

डायट के तीन प्रकार के अधिवेशन होते हैं—साधारण, असाधारण और विशेष। सम्राट् के आदेश द्वारा डायट के सत्र की तारीख घोषित की जाती है। साधारण सत्र प्रतिवर्ष साधारणतया दिसम्बर में आरम्भ होता है जो लगभग 150 दिन तक चलता है। साधारण सत्र के साथ ही विशेष सत्र भी बुलाया जा सकता है। जब प्रतिनिधि सदन का आम चुनाव हो तो जिस तारीख से दोनों सदनों के सदस्यों का कार्यकाल आरम्भ होगा उसके 30 दिन के भीतर डायट का विशेष सत्र बुलाया जाएगा। इसके अतिरिक्त किसी भी सदन के कम से कम चौथाई सदस्य अपने सदन के अध्यक्ष की केबिनेट को लिखित प्रार्थना द्वारा असाधारण सत्र की माँग कर सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में सरकार के लिए ऐसा सत्र बुलाना आवश्यक होता है। सरकार जब भी आवश्यक हो तभी महत्त्वपूर्ण अथवा आपात्कालीन मामलों पर विचार करने के लिए साधारण सत्र बुला सकती है। कौंसिलर सदन (सभासद सदन) का असाधारण सत्र बुलाने के लिए प्रधानमन्त्री को अध्यक्ष से प्रार्थना करनी पड़ती है। इस प्रार्थना में एकत्र होने की तारीख तथा विचारणीय विषयों का संकेत भी दिया जाता है।

सम्राट् के आदेश द्वारा निश्चित तारीख पर डायट के सदस्य अपने-अपने सदन में एकत्र होते हैं। पहले ही दिन प्रत्येक सदन को, स्थान रिक्त होने की हालत में, अपने अध्यक्ष व उपाध्यक्ष का चुनाव करना पड़ता है। चुनाव न होने तक सेक्रेटरी जनरल

अध्यक्ष का कार्य करता है। प्रत्येक सत्र के आरम्भ में डायट का उद्घाटन समारोह होता है और इस अवसर पर सम्राट् स्वयं उपस्थित होकर अपना छोटा-सा सन्देश पढ़ता है। संविधान की धारा 56 मे गणपूर्ति के विषय में कहा गया है कि किसी भी सदन में उस समय तक कोई कार्यवाही आरम्भ नहीं की जा सकेगी जब तक उस सदन के कुल सदस्यों के कम से कम एक-तिहाई सदस्य उपस्थित न हों। प्रत्येक सदन में सब मामलों का निर्णय उपस्थित सदस्यों के बहुमत से ही हो सकता है। यदि किसी स्थान पर संविधान कोई और व्यवस्था कर दे तो ये नियम लागू नहीं होंगे। किसी विषय पर समान मत होने पर सदन के अध्यक्ष को निर्णायक मत देने का अधिकार है।

पदाधिकारी (Office-Bearers)

प्रत्येक सदन के प्रमुख अधिकारी हैं—अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, अस्थायी अध्यक्ष (President Protompore), स्थायी समितियों के सभापति तथा सेक्रेटरी जनरल। प्रतिनिधि-सभा के अध्यक्ष को प्रेसीडेन्ट कहा जाता है।

सदनों की प्रथम बैठक में सदस्यों द्वारा अध्यक्षों का चुनाव करना होता है। सभासद्-सदन के अध्यक्ष का चुनाव गुप्त मतदान द्वारा और प्रतिनिधि सदन के अध्यक्ष का चुनाव सदन के निर्णय के अनुसार गुप्त या हस्तान्तरित मतपत्र द्वारा होता है। इसके उपरान्त इसी रीति से उपाध्यक्ष निर्वाचित कर लिया जाता है। अध्यक्षों के चुनाव के समय पूर्व-अध्यक्ष सदन का सभापतित्व करते हैं। पूर्व-अध्यक्षों की अनुपस्थिति में सेक्रेटरी जनरल सभापति का शासन ग्रहण करते हैं। सेक्रेटरी जनरल या महासचिव भी सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं।

अध्यक्षों के अधिकार और स्थिति

(Powers & Position of Presidents)

दोनों सदनों के अध्यक्षों को व्यापक शक्तियाँ तथा अधिकार प्राप्त हैं। वे सदन की बैठकों की अध्यक्षता करते हैं और सदन के बाहर उनका प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रत्येक अध्यक्ष अपने सदन की व्यवस्थापिका समिति (House of Management) के परामर्श से अपने सदन की समितियों के सदस्यों को मनोनीत करते हैं। वे एक सदस्य को एक समिति से दूसरी समिति में स्थानान्तरित कर सकते हैं। सदन के निर्देशन से वे समितियों के अध्यक्षों को भी मनोनीत कर सकते हैं और समितियों के अध्यक्ष प्रायः सदन के अध्यक्षों द्वारा ही मनोनीत किए जाते हैं।

सदन का अध्यक्ष ही सदन के सदस्यों के स्थान नियत करता है। वही सदन का कार्यक्रम निर्धारित करता है, विधेयकों को विषयानुसार समितियों को सौंपता है, प्रश्नों तथा वाद-विवादों के लिए समय निर्धारित करता है और उसी के निर्णय पर वाद-विवादों का अन्त होता है। अध्यक्ष सदन में शान्ति और सुव्यवस्था रखता है, मन्त्रियों को संसद् में सहायता देने के लिए सरकारी सदस्यों की नियुक्ति पर स्वीकृति देता है, सदन की बैठक न होने के समय सदस्यों द्वारा त्यागपत्र दिए जाने पर उन्हें स्वीकृत करता है और किसी विधेयक या प्रस्ताव पर समान मत आने पर अपना निर्णायक मत देता है। वही

यह निश्चय करता है कि किसी विषय पर सदन का मत ध्वनि मत से, सदस्यों को खड़ा करके, हस्ताक्षरित मत-पत्र या गुप्त मतदान में से किस पद्धति से लिया जाए और सदस्यों को इस आशय का आदेश देता है।

सदन का अध्यक्ष सदस्यों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सकता है। सदन की पुलिस अध्यक्ष के अधीन होती है और आवश्यकता पड़ने पर वह किसी सदस्य को गिरफ्तार भी कर सकती है। वह सदन से प्रायः अनुपस्थित रहने वाले सदस्यों के नाम कार्यवाही हेतु सदन व्यवस्थापिका-समिति के पास भेज सकता है। अनुशासन भंग करने वाले सदस्यों के नाम भी वह समिति के पास भेज सकता है और समिति की प्रार्थना पर किसी सदस्य को सदन से निष्कासित भी कर सकता है, पर ऐसा प्रस्ताव सदन के दो-तिहाई बहुमत से पास होना आवश्यक है। यदि वह व्यक्ति पुन निर्वाचित हो जाता है तो उसे स्थान देना पड़ता है। अध्यक्ष सदन की बैठकों को स्थगित भी कर सकता है। सदन की कार्यवाही का विवरण अध्यक्ष की देखरेख में तैयार और प्रकाशित किया जाता है और वह उसमें परिवर्तन कर सकता है। वह समिति के अध्यक्ष की प्रार्थना पर किसी विधेयक पर सार्वजनिक सुनवाई की अनुमति भी दे सकता है। जब किसी विधेयक पर समिति का प्रतिवेदन सदन में प्रस्तुत किए जाने के लिए तैयार होता है तो अध्यक्ष व्यवस्थापक समिति के परामर्श से उसे सदन के कार्यक्रम में सम्मिलित करता है। अध्यक्ष ही विभिन्न समितियों के मध्य क्षेत्राधिकार सम्बन्धी विवादों का निर्णय करता है। वह सदन के अधिवेशन के समय किसी समिति की बैठक का आदेश दे सकता है।

दोनों सदनों के अध्यक्ष प्रधानमन्त्री से परामर्श करके सम्राट् द्वारा संसद् के औपचारिक उद्घाटन का दिन व समय निश्चित करते हैं। यह उद्घाटन समासद् सदन में दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक में होता है। संयुक्त बैठक का स्पीकर वही होता है जो प्रारम्भिक भाषण देता है। स्पीकर की अनुपस्थिति में यह कार्य प्रेसीडेण्ट करता है।

जापान की प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष की सदन में स्थिति अमेरिका की प्रतिनिधि सभा और ब्रिटेन की लोकसभा के अध्यक्षों की स्थिति के बीच की है। जापान का स्पीकर दलगत आधार पर चुना जाता है। वह शासक दल या दलों का प्रधानमन्त्री के बाद सबसे शक्तिशाली नेता होता है। उसका वेतन प्रधानमन्त्री के वेतन के बराबर होता है। निर्वाचन के बाद प्रायः वह अपनी दलीय सदस्यता का त्याग नहीं करता। दल का बहुमत न रहने पर उसके स्थान पर दूसरा व्यक्ति स्पीकर चुना जाता है। फिर भी वह यथासम्भव निष्ठापूर्वक संसदीय नियमों को लागू करने और सभी सदस्यों के साथ उचित तथा न्यायपूर्ण व्यवहार करने का प्रयत्न करता है। मन्त्रि-परिषद् का स्वयं सदस्य होने तथा संसदीय समिति और प्रधानमंत्री का प्रतिनिधि-सदन का नेता होने के कारण सदन की कार्यवाही पर उसका इतना प्रभाव नहीं होता जितना अमेरिका के स्पीकर.का होता है और दलीय सम्बन्ध के कारण उसका उतना सम्मान भी नहीं होता जितना ब्रिटिश स्पीकर का होता है। जापानी स्पीकर या अध्यक्ष (Speaker) की स्थिति दोनों के बीच की है लेकिन उसकी स्थिति भारतीय लोकसभा के स्पीकर से अच्छी होती है।

संसद् की समितियाँ
(Committees of Diet)

अन्य देशों की संसदीय व्यवस्था के अनुरूप जापानी डायट में भी समितियों का अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। मेइजी-सविधान मे भी समितियों का स्थान होते हुए भी कार्यक्षमता की दृष्टि से वे बहुत दुर्बल थीं।

वर्तमान व्यवस्था के अनुसार चार प्रकार की समितियाँ पाई जाती हैं—(i) स्थायी समितियाँ, (ii) विशिष्ट समितियाँ, (iii) सयुक्त विधायी समिति, एव, (iv) सयुक्त सम्मेलन समिति। वर्तमान में यह व्यवस्था है कि कोई भी एक सदस्य एक साथ तीन समितियों से अधिक का सदस्य नहीं बनाया जा सकता।

स्थायी समितियाँ (Standing Committees)—डायट के प्रत्येक सदन में 16 स्थायी समितियाँ हैं जिनमें से प्रत्येक में लगभग 20 से 30 सदस्य होते हैं। केवल बजट समिति में लगभग 50 सदस्य होते हैं। समितियों में दलों की संख्या सदन में उनकी शक्ति के अनुपात में होती है। समितियों के अध्यक्ष पूरे सदन द्वारा चुने जाते हैं। विभिन्न समितियों के क्षेत्राधिकार सम्बन्धी विवादो का निर्णय सदन का अध्यक्ष करता है। स्थायी समितियों का मुख्य कार्य विधायी-प्रस्तावों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना, उनकी आवश्यक समीक्षा करना, उनमें विभिन्न पक्षो की सुनवाई करना और उनका प्रारूप तैयार करना है। सदन भी विधेयक पर सम्बन्धित समिति का परामर्श लेकर ही प्रायः आगे बढता है। अमेरिकी काँग्रेस की समितियों की तरह जापानी समितियाँ सभी विधेयको की प्रगति पर पूर्ण नियन्त्रण रखती हैं। वे ही यह निश्चय करती हैं कि किन विधायी प्रस्तावों को सदन के विचार के लिए प्रस्तुत किया जाए और किनको नहीं ?

विशिष्ट समितियाँ (Special Committees)—ये समितियाँ किसी विशेष जाँच-पडताल के उद्देश्य से निर्मित की जाती हैं। स्वभावतः इन्हें विशेष अधिकार और उत्तरदायित्व सौंपे जाते हैं। समिति के अध्यक्ष को निर्णायक मत प्राप्त होता है। समितियाँ विभिन्न पक्षों से गवाहियाँ लेकर और सरकारी कागजातों का परीक्षण करके सदन को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करती हैं।

संयुक्त विधायी समिति (Joint Legislative Committee)—डायट के दोनों ही सदनों की एक मिली-जुली विधायी समिति होती है जिसका कार्य दोनों के पारस्परिक सम्बन्धों, विधि-निर्माण में नए तरीकों, विधि-निर्माण-प्रणाली के सरलीकरण और अन्य सम्बन्धित मामलों पर विचार करना होता है। इसमें 10 सदस्य प्रतिनिधि सदन के और 8 समासद् सदन के अर्थात् कुल 18 सदस्य होते हैं। जहाँ अन्य समितियाँ दलबन्दी के कुचक्र में फँसी रहती हैं वहाँ सयुक्त विधायी समिति पर दलबन्दी का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। इस समिति से यही आशा की जाती है कि वह अपने तटस्थ आचरण द्वारा सदनों को संतुलित रखेगी।

संयुक्त सम्मेलन समिति (Joint Conference Committee)—डायट के दोनों सदनों के बीच मतभेदों को दूर करने के लिए एक संयुक्त समिति का निर्माण किया जाता है। जिसमें लगभग 20 सदस्य होते हैं। दोनों ही सदनों से बराबर सख्या में

सदस्य लिए जाते हैं। गणपूर्ति (Quorum) के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक सदन के दो-तिहाई सदस्य उपस्थित हों। समिति की अध्यक्षता दोनों ही सदनों के सदस्य बारी-बारी से करते हैं। मतभेद सम्बन्धी समाधान पर पूर्ण सहमति हो जाने पर समिति की रिपोर्ट दोनों सदनों में पेश की जाती है। यह भी आवश्यक है कि प्रस्तावित रिपोर्ट समिति के दो-तिहाई बहुमत से स्वीकृत की गई हो।

स्पष्ट है कि जापान में समिति-व्यवस्था पर्याप्त सुव्यवस्थित और प्रभावी ढंग से क्रियाशील है। तथापि समितियों का बाहुल्य है और स्थायी समितियाँ अलग-अलग मन्त्रालयों से सम्बन्धित रहने के कारण अपने-अपने विभागों की वकील बन जाती हैं तथापि समितियों ने 'लघु-विधान-मण्डल' (Little Legislative) का रूप धारण कर लिया है। उन्हें सदन के कान, आँख और मस्तिष्क की संज्ञा दी जाती है। देश की व्यवस्थापन-प्रक्रिया में भी उक्त समितियों की अहम भूमिका है। ये समितियाँ मन्त्रिमण्डल पर भी प्रभावशाली नियन्त्रण रखती हैं।

संसद् की शक्तियाँ एवं कार्य अथवा भूमिका

(Powers and Functions or Role of the Diet)

संविधान की धारा 41 के अनुसार, "डायट अर्थात् संसद् राज्य-शक्ति का सर्वोच्च अवयव है"[1] और इस दृष्टि से उसे अनेक प्रकार के अधिकार प्राप्त हैं जिन्हें निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है—

(I) विधायी शक्ति (Legislative Powers)

डायट का महत्त्वपूर्ण कार्य विधि-निर्माण करना है। जापान का संविधान एकात्मक है अतः यहाँ सभी प्रकार के कानून डायट बनाती है। डायट के विधि-निर्माण का व्यापक क्षेत्र सभी प्रकार के सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं और व्यक्ति के प्रायः सम्पूर्ण जीवन तक व्याप्त है। डायट को प्रतिवर्ष बहुत बड़ी संख्या में कानून बनाने होते हैं। अन्य देशों की व्यवस्थापिकाओं के समान जापान की डायट भी कानून बनाने वाली फैक्ट्री बन गई है।

इस सन्दर्भ में यह स्मरणीय है कि जापान में कार्यपालिका को सिद्धान्त रूप में संसद् द्वारा पारित विधेयकों पर निषेधाधिकार नहीं है तथापि संसद् का प्रमुख कार्य कानून की योजना बनाना तथा उसका उपक्रम करना नहीं है वरन् प्रस्तावों पर विचार करना, उन्हें संशोधित करना और उन्हें स्वीकार या अस्वीकार करना होता है। उनकी योजना बनाना और उपक्रम या पहल करना तो मन्त्रिमण्डल के हाथ में है। संसद् का कार्य मुख्य रूप से निषेधाधिकार का प्रयोग करना है। जापान के विधायी कार्य पर मन्त्रिमण्डल का इतना व्यापक प्रभाव नहीं है जितना भारत और ब्रिटेन में है, तथापि डायट का अधिकार न तो असीमित है और न अनन्य ही। डायट का विधायी अधिकार देश के लिखित संविधान के अनुकूल होना चाहिए अन्यथा सर्वोच्च न्यायालय उसे असंवैधानिक घोषित कर सकता है। संविधान में वर्णित जनता के मूल अधिकार डायट

1 Japanese Constitution — Article 41

के विधायी क्षेत्र को सीमित करते हैं। इसके अतिरिक्त किसी स्थानीय सत्ता के लिए डायट द्वारा निर्मित कानून उस क्षेत्र की जनता की स्वीकृति के बिना प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। डायट की शक्ति अनन्य नहीं है, सदन अपने नियम स्वयं बनाते हैं, मन्त्रिमण्डल अपनी आज्ञाएँ देता है और सर्वोच्च न्यायालय अपने नियम बनाता है। इन संस्थाओं के अधिकार संविधान प्रदत्त हैं और सर्वोच्च न्यायालय के नियम तो कहीं-कहीं स्पष्ट रूप से संसदीय कानूनों के विपरीत हैं।

(2) कार्यपालिका शक्ति (Executive Powers)

डायट का दूसरा अधिकार कार्यपालिका सम्बन्धी है। डायट को कार्यपालिका के कार्य के विषय में जाँच-पड़ताल करने का अधिकार है। यह सरकारी भ्रष्टाचार के विषय में एवं सरकारी संस्थाओं के कार्य के विषय में अनेक बार जाँच-पड़ताल कर चुकी है। संसद् कार्यपालिका पर कई प्रकार से नियन्त्रण रखती है। प्रधानमन्त्री को डायट द्वारा ही मनोनीत किया जाता है और डायट किसी भी मन्त्री के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास कर उसे त्यागपत्र देने को बाध्य कर सकती है। डायट प्रशासन-कार्य की देख-रेख और जाँच-पड़ताल के लिए आयोग तथा समितियाँ नियुक्त कर सकती है। यह प्रशासनिक अधिकारियों से उनके रिकार्ड और रिपोर्ट मँगा सकती है तथा उन्हें साक्षी देने के लिए बुला सकती है। संविधान की धारा 72 के अनुसार मन्त्रिमण्डल का प्रतिनिधित्व करते हुए प्रधानमन्त्री उसके समक्ष सामान्य राष्ट्रीय मामलों और विदेशी सम्बन्धों पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है और दोनों सदनों के सदस्य प्रशासन के किसी भी विषय पर स्पष्टीकरण की माँग कर सकते हैं और उस माँग पर सात दिन के अन्दर उत्तर देना होता है।[1]

(3) वित्तीय शक्ति (Financial Powers)

राष्ट्रीय वित्त या अर्थव्यवस्था पर भी डायट का पूर्ण अधिकार है। संविधान की धारा 83 उपबन्धित करती है कि "राष्ट्रीय वित्त को परिचालित करने की शक्ति का प्रयोग उसी प्रकार होगा जिस प्रकार डायट निश्चित करेगी।" मन्त्रिमण्डल द्वारा जो बजट पेश किया जाता है, उसे डायट ही पारित करती है। डायट को बजट की जाँच करने का पूरा अधिकार होता है। सदस्यगण प्रत्येक मत की आलोचना कर सकते हैं। बजट के सम्बन्ध में एक ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि व्यय की सभी मदें डायट के अनुमोदन के लिए प्रस्तुत करना आवश्यक है। व्यय की कोई ऐसी मद नहीं है जो डायट के क्षेत्राधिकार के बाहर हो।[2]

सम्राट् के परिवार की सम्पूर्ण सम्पत्ति वर्तमान संविधान के अन्तर्गत राज्य की सम्पत्ति है। सम्राट् के परिवार के लिए सभी प्रकार के व्यय डायट ही स्वीकार करती है। इस सम्बन्ध में संविधान की धारा 8 अत्यन्त महत्वपूर्ण है जो इस प्रकार है—"डायट का अनुमोदन प्राप्त किए बिना राज्य-परिवार द्वारा न तो कोई सम्पत्ति ग्रहण की जा सकती है

1. पूर्वोद्धृत—Article 72 व 83.
2. पूर्वोद्धृत—Article 72 व 83.

और न ही दी जा सकती है। राज्य-परिवार को कोई भेंट आदि भी नहीं दी जा सकती है।"[1] स्पष्ट है कि सम्राट् और उसके परिवार में सभी व्यय भी डायट के ही अधीन हैं।

आय और व्यय के अन्तिम लेखों की प्रति वर्ष ऑडिट बोर्ड द्वारा जाँच होती है और जाँच-रिपोर्ट केबिनेट में ही रखी जाती है।

ससद् के इस वित्तीय अधिकार पर एक प्रतिबन्ध है। धारा 89 के अनुसार किसी धार्मिक संस्था के प्रयोग, लाभ अथवा संपोषण के लिए और ऐसी शिक्षा सम्बन्धी या उदार उद्योगों के लिए, जो सार्वजनिक पदाधिकारियों में नहीं है, डायट कोई धन विनियोजित नहीं कर सकती। लेकिन यह प्रबन्ध व्यावहारिक रूप में लागू नहीं होता। धार्मिक संस्थाओं को उनकी संस्कृति की रक्षा के नाम पर आर्थिक सहायता प्रदान कर दी जाती है और व्यक्तिगत विद्यालय विधि, लोक-कल्याण सेवा-विधि तथा शिशु-कल्याण सेवा-विधि के अन्तर्गत संसद् ने सरकार को व्यक्तिगत विद्यालयों और उदार उद्योगों को आर्थिक अनुदान देने की स्वीकृति दी है।

(4) वैदेशिक क्षेत्र की शक्ति (Powers Regarding Foreign Sphere)

डायट को देश की विदेश-नीति और वैदेशिक सम्बन्धों का निर्धारण करने का अधिकार है। प्रधानमन्त्री प्रतिवर्ष मन्त्रिमण्डल की ओर से देश के वैदेशिक सम्बन्धों के बारे में संसद् में प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है। यद्यपि सन्धि करने का अधिकार मन्त्रिमण्डल को है तथापि संविधान की धारा 73 (3) के अन्तर्गत मन्त्रिमण्डल के लिए यह आवश्यक है कि वह सन्धि के पहले या उसके पश्चात् उस पर संसद् का अनुमोदन प्राप्त करे। संसद् के अनुमोदन के अभाव में कोई सन्धि कार्यान्वित नहीं की जा सकती फिर भी व्यावहारिक रूप में इस धारा का अक्षरशः पालन नहीं किया जाता। कुछ सन्धियों को प्रशासकीय समझौतों का नाम दे दिया जाता है और इस प्रकार उन्हें संसद् की पूर्व या तदन्तर स्वीकृति के लिए प्रस्तुत नहीं किया जाता।[2] इस प्रकार डायट प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल की वैदेशिक शक्तियों पर नियन्त्रण रखती है।

(5) न्यायिक शक्ति (Judicial Powers)

डायट को कुछ न्यायिक अधिकार भी प्राप्त हैं। वह कानून द्वारा संविधान की धाराओं के अन्तर्गत न्यायपालिका का संगठन, न्यायाधीशों द्वारा अन्य कर्मचारियों का वेतन तथा न्यायालयों की कार्य-प्रणाली निश्चित करती है। डायट द्वारा निर्मित व्यवहार-प्रक्रिया-संहिता और दण्ड-प्रक्रिया-संहिता न्यायालय के पूरे प्रक्रिया-क्षेत्र को प्रभावित किए हुए है। पर संविधान की धारा 77 द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को प्रक्रिया और प्रचलन, न्यायाधीशों, न्यायालयों के अतिरिक्त अनुशासन और न्यायिक प्रशासन के लिए नियम बनाने का अधिकार है। डायट न्यायाधीशों को महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा पदच्युत कर सकती है। इस कार्य के निमित्त डायट दोनों सदनों की समान संख्या के सदस्यों के एक महाभियोग न्यायालय की स्थापना करती है। यह न्यायालय न्यायाधीशों पर दोषारोपण समिति द्वारा लगाए गए आरोपों की जाँच करता है।

1 पूर्वोद्धृत—Article 8, 73 (3) & 77
2 पूर्वोद्धृत—Article 8, 73 (3) & 77.

(6) संवैधानिक शक्ति (Constitutional Powers)

डायट को सविधान के सशोधन के सम्बन्ध में भी शक्ति प्राप्त है। संशोधन के प्रस्ताव डायट में ही पेश किए जाते हैं। किसी भी सदन में ऐसे प्रस्तावों को पारित होने के लिए यह आवश्यक है कि उनको सदन के कम से कम दो-तिहाई सदस्यों की सहमति प्राप्त हो। जब दोनों सदनों से यह प्रस्ताव इस प्रकार पारित हो जाते हैं तो उनको जनमत-संग्रह के लिए भेजा जाता है। यदि जनमत-संग्रह में इन संशोधनों को बहुमत द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो वे पारित समझे जाते हैं और सम्राट् द्वारा संविधान के अंग के रूप में घोषित कर दिए जाते हैं।

(7) अन्य शक्तियाँ और कार्य (Other Powers and Functions)

डायट का महत्त्वपूर्ण अधिकार जनावेदन सम्बन्धी कार्य है। सर्वोच्च शासन-सस्था के रूप मे डायट के दोनों सदन पृथक्-पृथक् रूप में जनता के विभिन्न प्रकार के आवेदन-पत्रो पर विचार करते है और उचित आवेदन-पत्रो को आवश्यक कार्यवाही हेतु मन्त्रिमण्डल के पास भेज देती हैं जो उन पर विचार करता है और अपनी कार्यवाही की सूचना सम्बन्धित सदन को देता है। जापान में आवेदन-प्रथा अत्यधिक लोकप्रिय है। इससे डाइट को जनता की इच्छाओ और अपेक्षाओं का पता चल जाता है। वह जन-समस्याओं का निवारण करने के लिए मन्त्रिमण्डल को वाछित आवेदन प्रेषित करती है। इसके अतिरिक्त डायट को राज्यसिंहासन के उत्तराधिकार विषयक कानून बनाने का भी अधिकार प्राप्त है।

उपर्युक्त विवेचन प्रकट होता है कि जापान की ससद् को व्यापक अधिकार प्राप्त हैं। यह राज्य-शक्ति का 'सर्वोच्च अंग' है लेकिन सविधान-शास्त्रियो का मत है कि यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है। जब मन्त्रिमण्डल संसद् के अधिक शक्तिशाली सदन प्रतिनिधि-सभा को भंग कर सकता है, बजट पर कार्यपालिका को उपक्रम अधिकार प्राप्त है, सन्धि करने में, प्रशासकीय नेतृत्व स्थापित है और न्यायालयों द्वारा संसदीय कानूनों का पुनरवलोकन किया जा सकता है तो डाइट को राज्य का 'सर्वोच्च डाइट' कहना उपयुक्त नहीं है। इतना ही नहीं व्यावहारिक रूप में भी डाइट सर्वोच्च अंग के रूप में प्रतिष्ठित नहीं कही जा सकती। मन्त्रिमण्डल में निहित आलम्बन, दलीय अनुशासन, प्रतिनिधि सदन को भंग करने का अधिकार और न्यायपालिका की कर्त्तव्य-विमुखता आदि ने डाइट के प्रभाव को कम कर दिया है। फिर भी कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि डायट की शक्तियाँ पर्याप्त रूप से विस्तृत, वास्तविक तथा प्रभावी हैं। यह देश की गतिशील व्यवस्थापिका के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह करती है।

डायट के दोनों सदनों के सम्बन्ध

(Relationship between the Two Houses of Diet)

जापानी ससद्, डायट के दोनों सदनों के पारस्परिक सम्बन्धों को हम निम्नलिखित 5 भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(1) साधारण विधेयकों के सम्बन्ध में—साधारण विधेयकों के विषय की स्थिति यही है कि इन्हें दोनों सदनों में से किसी भी सदन में प्रस्तावित किया जा सकता है और उन्हें कानून का रूप तभी प्राप्त होता है तब उसे दोनों सदनों की स्वीकृति मिल जाए लेकिन इस क्षेत्र में अन्ततः प्रतिनिधि सदन की शक्ति समासद्-सदन से अधिक है। यदि प्रतिनिधि-सदन द्वारा पारित किसी विधेयक को समासद्-सदन स्वीकार नहीं करता अथवा उसमें ऐसे संशोधन कर देता है जो प्रतिनिधि सदन को मान्य न हों, तो विधेयक समाप्त नहीं होता प्रत्युत् उसे अकेला प्रतिनिधि-सदन ही पास कर सकता है बशर्ते कि वह उसे पुनः अपने सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से पारित कर दे। ऐसे विधेयक पर यदि 60 दिन के अन्दर समासद्-सदन अपना निर्णय नहीं भेजता तो प्रतिनिधि-सदन विधेयक को उपयुक्त विधि से अकेले ही पारित कर सकता है।

(2) वित्त विधेयकों के सम्बन्ध में—वित्त-विधेयकों के क्षेत्र में तो समासद्-सदन की स्थिति और भी कमजोर है। प्रथम तो वित्त विधेयक समासद्-सदन में प्रस्तावित नहीं किए जा सकते, वे सदैव प्रतिनिधि-सदन में ही प्रस्तावित किए जाते हैं और वहाँ से पारित होने के बाद ही समासद्-सदन के समक्ष विचारार्थ आते हैं। इसमें यदि समासद्-सदन प्रतिनिधि-सदन के निर्णय के विरुद्ध कोई निर्णय देता है और यदि दोनों सदनों में कानून द्वारा उपबन्धित की हुई संयुक्त-समिति द्वारा भी कोई समझौता नहीं हो पाता है अथवा यदि समासद्-सदन 30 दिन की अवधि के अन्दर भी उस वित्त-विधेयक या बजट पर कोई निर्णय नहीं करता है तो प्रतिनिधि-सदन का निर्णय ही संसद् (डायट) का निर्णय माना जाता है। इस प्रकार वित्तीय क्षेत्र में प्रतिनिधि-सदन को निश्चयात्मक रूप से प्रधानता दी गई है और द्वितीय सदन को गौण स्थान प्रदान किया गया है। इस क्षेत्र में द्वितीय सदन को विधेयक को केवल 30 तक विलम्बित करने की ही शक्ति है। यह स्थिति इसे भारत की राज्यसभा तथा इंग्लैण्ड की हाउस ऑफ लार्ड्स के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

(3) प्रधानमन्त्री के निर्वाचन के विषय में—प्रधानमन्त्री के निर्वाचन के विषय में भी समासद्-सदन की स्थिति प्रतिनिधि-सदन की अपेक्षा कमजोर है। यदि प्रधानमन्त्री के निर्वाचन पर दोनों में मतैक्य नहीं होता है और इन दोनों में संयुक्त-समिति के माध्यम से भी कोई समझौता नहीं हो पाता अथवा प्रतिनिधि-सदन द्वारा किए गए निर्वाचन के बाद 10 दिन के अन्दर समासद्-सदन कोई निर्णय नहीं देता तो प्रतिनिधि-सदन का निर्णय ही डायट का निर्णय समझा जाता है। इस प्रकार प्रधानमन्त्री के निर्वाचन के विषय में भी उच्च सदन को केवल 10 दिन की देरी करने या विलम्ब का ही अधिकार है।

(4) मन्त्रिमण्डल के उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में—मन्त्रिमण्डल के उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में भी उच्च सदन की स्थिति निम्न सदन की अपेक्षा अशक्त है। संविधान द्वारा यद्यपि मन्त्रिमण्डल का उत्तरदायित्व डायट के प्रति रखा गया है, तथापि व्यवहार में मन्त्रिमण्डल प्रतिनिधि-सदन के प्रति ही उत्तरदायी है। प्रतिनिधि-सदन को अविश्वास-प्रस्ताव द्वारा मन्त्रिमण्डल को अपदस्थ करने का अधिकार है। ऐसी स्थिति में यदि मन्त्रिमण्डल स्वयं त्याग-पत्र देकर 10 दिन के अन्दर प्रतिनिधि-सदन को भग कर

देता है तो समासद्-सदन केवल स्थगित हो जाता है, भंग नहीं होता। इस बीच आवश्यकता पड़ने पर मन्त्रिमण्डल समासद्-सदन का विशेष अधिवेशन बुलाकर कार्य कर सकता है, लेकिन इन कार्यों पर प्रतिनिधि-सदन का अधिवेशन आरम्भ होने से 10 दिन के अन्तर उसकी परवर्ती अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य होगा, अन्यथा वे समाप्त समझे जाएँगे।

(5) संविधान संशोधन के सम्बन्ध में—संविधान संशोधन के सम्बन्ध में दोनों की शक्तियाँ समान हैं, क्योंकि संशोधन के प्रस्तावों पर दोनों ही सदनों के दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत की सहमति अनिवार्य होती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जापान के डाइट का प्रथम सदन द्वितीय सदन की तुलना में कहीं अधिक शक्तिशाली और सर्वोच्च है तथा उसे देश की राजनीतिक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

विधायी प्रक्रिया

(Legislative Procedure)

जापान में विधेयकों को दो वर्गों में बाँटा जाता है—सरकारी विधेयक और गैर-सरकारी विधेयक। विषय-वस्तु की दृष्टि से सरकारी विधेयक सरकार की ओर से मन्त्री द्वारा आरम्भ किए जाते हैं जबकि गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक डायट के ऐसे सदस्यों द्वारा आरम्भ किए जाते हैं जो सरकार के सदस्य नहीं हैं। जापान में समिति भी विधायन कार्य का आरम्भ कर सकती है।

सरकारी विधेयकों की प्रक्रिया

(Procedure Regarding Govt. Bills)

लगभग सभी सरकारी विधेयक स्वयं विभाग में ही आरम्भ किए जाते हैं। उन्हें विभाग के अधिकारी तैयार करके सम्बन्धित मन्त्री के पास भेज देते हैं। मन्त्री द्वारा विधेयक के अनुमोदन के पश्चात् ये उसके नाम पर विधायन कार्य ब्यूरो को भेज दिए जाते हैं। ब्यूरो विधेयकों का अध्ययन करता है और इसके कानूनी संवैधानिक एवं प्रशासनिक पहलुओं की जाँच करता है।

प्रत्येक विधेयक को संशोधन और शोधन के पश्चात् मन्त्रिमण्डल के पास भेज दिया जाता है और कार्य-सूची में शामिल कर लिया जाता है। विधेयक पर मन्त्रिमण्डल की बैठक में चर्चा की जाती है और यदि कोई मतभेद होता है तो उसे प्रस्तावित बैठक में ही निपटा लिया जाता है।

(1) प्रस्तावना (Introduction)—मन्त्रिमण्डल द्वारा विधेयक के अनुमोदन किए जाने के पश्चात् इसे या तो प्रतिनिधि-सदन के स्पीकर या समासद्-सदन के सभापति के पास भेज दिया जाता है। वित्त-विधेयक सदैव प्रतिनिधि-सदन में ही पेश किए जाते हैं। विधेयक के एक सदन में पारित किए जाने के 5 दिन के भीतर उसकी एक प्रति प्रारम्भिक अध्ययन के लिए दूसरे सदन को भेज दी जाती है।

स्पीकर विधेयक को प्राप्त करने के पश्चात् इसे सदस्यों में परिपत्रित या वितरित करवाता है और साधन तथा उपाय समिति (Committee of Ways and Means) की

सिफारिशों के अनुसार उपर्युक्त समिति को निर्दिष्ट कर देता है। जो विधेयक अल्पावश्यक होते हैं उनके सम्बन्ध में समितियों को निर्देशित कर छोड़ दिया जाता है और उन्हें डायट के सम्पूर्ण अधिवेशन में विचार का विषय बना लिया जाता है।

(2) समिति अवस्था (Committee Stage)—प्रस्तावना के बाद समिति-अवस्था आती है। विधेयक को किसी एक स्थायी समिति या विशेष समिति को निर्देशित कर दिया जाता है। समिति में दरिकता के आधार पर विधेयक पर ध्यानपूर्वक विचार होता है और इसके आवश्यक विषयों की जाँच की जाती है। समिति किसी मन्त्री को या सदन के किसी सदस्य को अपने विचार व्यक्त करने के लिए आमन्त्रित कर सकती है अथवा कोई भी सदस्य समिति से प्रार्थना कर सकता है कि वह उसके विचार सुने। समिति विधेयक के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से विचार करने के लिए उप-समितियाँ नियुक्त कर सकती है। इसके अतिरिक्त कानूनी सलाह के लिए वह डायट के विधान-कार्य ब्यूरो को भी आमन्त्रित कर सकती है। समिति जनता में से भी किसी व्यक्ति/व्यक्तियों को सम्बन्धित विषय के बारे में विचार व्यक्त करने के लिए आमन्त्रित कर सकती है।

(3) सदन में विचार या प्रतिवेदन स्तर (Report Stage)—समिति द्वारा विधेयक के समर्थन और विरोध में तर्कों पर विचार करने के पश्चात् इसे समिति के अध्यक्ष द्वारा सदन में प्रस्तुत कर दिया जाता है। यदि विधेयक के किसी पहलू पर कोई अल्प-मत रिपोर्ट या प्रतिवेदन है तो उस प्रतिवेदन को भी सदन के समक्ष रख दिया जाता है। सदन में कोई भी सदस्य विधेयक में संशोधन का प्रस्ताव कर सकता है. ऐसे किसी भी संशोधन को प्रतिनिधि-सदन के कम से कम 20 सदस्यों का और सभासद्-सदन में कम से कम 10 सदस्यों का समर्थन अवश्य प्राप्त होना चाहिए। वित्त-विधेयकों या बजट में संशोधन के लिए प्रतिनिधि-सदन में कम से कम 50 और सभासद्-सदन में कम से कम 20 सदस्यों का समर्थन होना आवश्यक है। विधेयक के सभी खण्डों पर वादन और मतदान के पश्चात् सम्पूर्ण विधेयक पर मतदान कराया जाता है।

(4) विधेयक दूसरे सदन में (Bill in Another Chamber)—एक सदन द्वारा पारित किए जाने के पश्चात् इसे दूसरे सदन में भेजा जाता है जहाँ विधेयक उपर्युक्त व्यवस्थाओं से पुनः गुजरता है। यदि दूसरा सदन भी विधेयक पारित कर देता है तो फिर इसे सम्राट् के हस्ताक्षर के लिए भेज दिया जाता है। विधेयक पर मतभेद की स्थिति में डायट द्वारा समाधान के लिए समाधान-समिति नियुक्त की जाती है जो यदि किसी समझौते पर नहीं पहुँच पाती तो प्रतिनिधि-सदन विधेयक पर सभासद्-सदन के विरोध में अपने दो-तिहाई बहुमत के आधार पर अपनी बात मनवा लेता है।

(5) सम्राट् द्वारा कानून की घोषणा (Declaration of Law by the Emperor)—डायट के दोनों सदनों द्वारा इस प्रकार विधेयक पारित कर दिए जाने के बाद इसे सदन के स्पीकर द्वारा मन्त्रिमण्डल के माध्यम से सम्राट् के पास भेजा जाता है। समिति इसके प्राख्यान के बारे में सरकारी तौर पर ऐलान करती है और मन्त्रियों द्वारा हस्ताक्षर किए जाने के बाद इसे सम्राट् के सम्मुख पेश करती है तथा सरकारी राजतन्त्र में प्रकाशित कर दिए जाने के बाद कानून की घोषणा कर दी जाती है।

बजट (Budget)

बजट का अधिनियम साधारण विधेयक के अधिनियम से भिन्न है। वित्त-विधेयक या बजट अनिवार्य रूप से प्रतिनिधि-सदन में आरम्भ किया जाता है और साधारण विधेयकों के विपरीत, समासद्-सदन इसे 30 दिन से अधिक नहीं रोक सकता है। इस अवधि की समाप्ति के बाद वित्त-विधेयक कानून बन जाता है चाहे समासद्-सदन इसके विरोधी ही क्यों न हों। इस तरह से समासद सदन को बजट पर कोई निर्णायक शक्ति प्राप्त नहीं होकर मात्र विलम्बकारी शक्ति ही प्राप्त है।

गैर-सरकारी विधेयक (Private Bills)

गैर-सरकारी विधेयक (Private Member's Bill) वह सार्वजनिक विधेयक है जो डायट के ऐसे सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया जाता है जो सरकार का सदस्य नहीं है। ये विधेयक सामान्यतः कई सदस्यों द्वारा सयुक्त रूप से डायट में प्रस्तुत किए जाते हैं और अपने उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की दृष्टि से अलग-अलग होते हैं। डायट में पेश किए गए अधिकाश विधेयकों का उद्देश्य प्रचार द्वारा लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए या निर्वाचन में मत प्राप्त करने में सहायता प्राप्त करना होता है। इनको पारित करने की प्रक्रिया अन्य गैर-वित्त विधेयकों के समान ही है।

डायट का मूल्यांकन करते हुए लाइनबर्गर का कथन है कि "राज्य-शक्ति का सर्वोच्च अंग होने की अपेक्षा डायट वाद-विवाद का अखाड़ा मात्र बनकर रह गई है और कार्यपालिका को सुविधाजनक समर्थन देने के अतिरिक्त कुछ नहीं है।"[1]

मैकनैली के शब्दों में, "1955 में जब से जापान के अन्तर्गत बहुदलीय पद्धति का स्थान द्विदलीय पद्धति ने ले लिया है, तब से डायट के प्रति कैबिनेट की अधीनता लुप्त हो गई है।"[2]

डायट की शक्तियों में ह्रास के लिए उत्तरदायी कारण

(Causes Responsible for the Decline in the Powers of the Diet)

डायट की शक्तियों का उपर्युक्त में सविस्तार से विश्लेषण किया जा चुका है। इस परिप्रेक्ष्य में यही कहा जा सकता है कि डायट को व्यापक शक्तियाँ तथा अधिकार प्राप्त हैं, लेकिन व्यवहार में इसकी शक्तियों में ह्रास होता जा रहा है और वास्तविक शक्तियाँ मन्त्रिमण्डल में केन्द्रित हो गई हैं। डायट की शक्तियों में ह्रास के लिए निम्नांकित कारणों का योगदान रहा है—

(1) कठोर दलीय अनुशासन के कारण डायट की शक्तियों में कमी आई है, और मन्त्रिमण्डल की शक्तियों मे वृद्धि हुई है। सदस्य दलीय अनुशासन का उल्लघन नहीं कर पाते हैं।

(2) प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल के पास 'लाभ और अनुग्रह' पहुँचाने की व्यापक शक्तियाँ हैं, जिसके कारण डायट की स्थिति प्रभावित होती है। डायट के सदस्य मन्त्रिमण्डल का विरोध करते समय इस तथ्य से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते हैं।

---

1 *Linebarger* · Far Eastern Govt. and Politics, p. 532.
2 *McNelly* : Contemporary Govt. of Japan, p 113.

(3) डायट के अधिवेशन बहुत कम समय के लिए सम्पन्न होते हैं, और वह इस अवधि में भी अनेक विधेयक पारित करती है। उसके द्वारा विधेयकों के साधारण प्रारूपों पर ही विचार किया जाता है। शेष बातों को कार्यपालिका पर छोड़ दिया जाता है। इससे व्यवस्थापन के क्षेत्र में डायट की शक्तियाँ कम होती जा रही हैं। व्यवस्थापन-प्रक्रिया के लिए जिस तकनीकी और विशेषज्ञ दान की आवश्यकता होती है, उसका डायट के अधिकांश सदस्यों में अभाव पाया जाता है। फलतः वे इस क्षेत्र में गम्भीरता से ध्यान नहीं दे पाते हैं।

(4) प्रदत्त-व्यवस्थापन प्रक्रिया ने भी डायट की स्थिति को कमजोर किया है।

(5) विश्व में सर्वत्र कार्यपालिका की शक्तियों में वृद्धि हो रही है तथा जापान भी इसका अपवाद नहीं है। अत. यहाँ भी 'डायट' की शक्तियों में कमी हुई है।

साराश में, यही कहा जा सकता है कि देश की व्यवस्थापिका के रूप में 'डायट' की महत्वपूर्ण भूमिका है और यह देश की जनता की आशाओं, अपेक्षाओं तथा भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती है। इतना ही नहीं डाइट द्वारा प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल पर भी उचित नियन्त्रण रखा जाता है।

35

न्यायपालिका

(The Judiciary)

जापान की न्याय-व्यवस्था उत्तम स्तर की है। जापानी न्याय-व्यवस्था में जो दोष थे, उन्हें नवीन संविधान में दूर कर दिया गया है। देश की वर्तमान न्यायपालिका अपने संगठन और स्वरूप में अमेरिकी और भारतीय न्यायपालिका से पर्याप्त रूप से मिलती-जुलती अथवा समानता रखती है। 1886 ई. के मेइजी संविधान के अधीन अदालतों पर सरकारी कार्यों का कुछ न कुछ नियन्त्रण अवश्य रहता था क्योंकि विधि मन्त्रालय को उनके ऊपर प्रशासनिक अधिकार प्राप्त थे, परन्तु आज न्यायपालिका, कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका से स्वतंत्रता लिए हुए है। नए संविधान के अनुसार—"सम्पूर्ण न्याय-शक्ति सर्वोच्च न्यायालय और कानून द्वारा स्थापित छोटी अदालतों में निहित है।"

जापान की न्यायपालिका की विशेषताएँ

(Features of Japanese Judiciary)

जापान की न्यायपालिका की मुख्य विशेषताओं को निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है—

(1) न्यायपालिका की पृथकता (Separateness of Judiciary)—जापान में न्यायपालिका को शासन के अन्य अंगों से पृथक् और उनके नियन्त्रण से मुक्त रखा गया है। न्यायालयों का संगठन पूर्णतः पृथक् है जिसके शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय है। सर्वोच्च न्यायालय को अपनी कार्यविधि से सम्बन्धित नियम बनाने का अधिकार है। न्यायाधीशों पर कार्यपालिका द्वारा कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही नहीं की जा सकती और न ही उसके द्वारा न्यायाधीशों को हटाया जा सकता है। संविधान की धारा 87 द्वारा स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया गया है कि "न्यायाधीशों को, सार्वजनिक महाभियोगों के अतिरिक्त उस समय तक नहीं हटाया जाएगा जब तक कि वे न्यायिक रूप से, मानसिक अथवा शारीरिक कारणों से अपने कर्त्तव्य-पालन में असमर्थ घोषित न कर दिए जाएँ।" न्यायाधीशों की निष्पक्षता को बनाये रखने के लिए उन्हें समुचित वेतन और अन्य सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। यह व्यवस्था भी की गई है कि न्यायाधीशों का वेतन उनके कार्यकाल में घटाया नहीं जा सकता है।

(2) न्याय-व्यवस्था की एकरूपता (Uniformity in Judicial System)—जापान की सम्पूर्ण न्याय-व्यवस्था को एकसूत्र में संगठित कर दिया गया है। संविधान की धारा 56 निर्देशित करती है कि " "समस्त न्यायिक-शक्ति सर्वोच्च न्यायालय और ऐसे अधीनस्थ न्यायालयों में निहित होगी जो कानून द्वारा स्थापित किए गए हों। किसी असाधारण न्यायालय की स्थापना नहीं की जाएगी और न ही कार्यपालिका के किसी अवयव अथवा एजेंसी को अन्तिम न्यायिक शक्ति दी जाएगी।" न्यायपालिका की एकरूपता इसे देश की राजनीतिक व्यवस्था में सर्वोच्चता प्रदान करती है।

(3) न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review)—अमेरिका और भारत के सर्वोच्च न्यायालय की तरह ही जापान के सर्वोच्च न्यायालय को भी न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्राप्त है। जापान में न्यायपालिका की प्रभुता का सिद्धान्त अपनाया गया है, ब्रिटेन की भाँति संसदीय प्रभुता का नहीं। जापानी मन्त्रिमण्डल कोई ऐसा काम नहीं कर सकता अथवा संसद् कोई ऐसा कानून नहीं बना सकती जो संविधान की भावना के प्रतिकूल हो। संविधान की धारा 81 में प्रदत्त अधिकार के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय संविधान की व्याख्या कर यह निर्णय कर सकता है कि संसद् द्वारा निर्मित कोई कानून अथवा कार्यपालिका द्वारा किया गया कोई कार्य संविधान के अनुकूल है अथवा नहीं और इस सम्बन्ध में उनका निर्णय सर्वमान्य समझा जाएगा।

(4) प्रशासकीय न्यायालयों का अभाव (Absence of Administrative Courts)—जापन के वर्तमान संविधान में पृथक् प्रशासकीय न्यायालयों की कोई व्यवस्था नहीं है। सामान्य न्यायालयों को ही प्रशासनिक विषयों तथा विवादों पर विचार करने का अधिकार है और साधारण नागरिक प्रशासनिक अधिकारियों के विरुद्ध उन न्यायालयों में अपील करके न्याय प्राप्त कर सकता है।

(5) सर्वोच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति का जनता द्वारा पुनर्वीक्षण (Ratification of Judicial appointment by the People)—जापान की न्यायिक व्यवस्था की एक अनुपम विशेषता तो यह है कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के पदों पर जनता का मत लिया जाता है। यदि जनमत-संग्रह में न्यायाधीशों को जन-समर्थन प्राप्त हो जाता है तो उन्हें पद पर बना रहने दिया जाता है, अन्यथा पद-मुक्त कर दिया जाता है। इस प्रकार के जनमत-संग्रह का निर्धारण डायट द्वारा किया जाता है। यह जनमत-संग्रह न्यायाधीशों की नियुक्ति के पश्चात् होने वाले डायट के सदस्यों के प्रथम चुनाव के समय और उसके बाद प्रति वर्ष के अन्तर पर होता रहता है। इस तरह सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का पद अन्तिम रूप से जनता या निर्वाचकों के निर्णय पर निर्भर करता है। इस व्यवस्था का सबसे बड़ा लाभ यह है कि न्यायाधीश ईमानदारी से कार्य करने और संविधान की मर्यादाओं के अन्तर्गत आचरण करने को प्रेरित होते हैं।

(6) सार्वजनिक न्यायिक कार्यवाही (Open Judicial Proceedings)—जापानी संविधान में यह व्यवस्था है कि न्यायालयों में अभियोगों पर सार्वजनिक रूप से विचार

किया जाएगा, लेकिन कुछ मामलो में गोपनीय ढंग से विचार की व्यवस्था भी की गई है। किसी मामले पर गोपनीय रूप से विचार तभी सम्भव है जब किसी न्यायालय के न्यायाधीश सर्वसम्मति से यह निर्णय करें कि अमुक मामले मे सार्वजनिक निर्णय, शान्ति, व्यवस्था तथा नैतिकता के विरुद्ध होगा।

(7) न्यायपालिका की स्वतन्त्रता (Independence of the Judiciary)—जापान के वर्तमान सविधान में न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को बरकरार रखने की दिशा में विभिन्न प्रावधान निर्धारित किये गये है अर्थात् न्यायपालिका की स्वतन्त्रता की गारन्टी दी गई है। न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा उन्हें पद-च्युत करने का ढग न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखता है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को केवल महाभियोग द्वारा ही हटाया जा सकता है। न्यायाधीशों के कार्यकाल में उनके वेतन-भत्तों को कम नहीं किया जा सकता है। न्यायाधीशों को अपने दायित्व का सही ढंग से सम्पादन करने की दृष्टि से उचित वेतन तथा अन्य सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं।

(8) नागरिक स्वतन्त्रताओं की सुरक्षा (Protection of Civil Liberties)—जापान में न्यायपालिका नागरिक स्वतन्त्रताओं के सरक्षण की दिशा में सतत रूप से प्रयत्नशील रहती है। न्यायपालिका को नागरिक स्वतन्त्रताओं का संरक्षक माना जाता है। नागरिक स्वतन्त्रताओं के सरक्षण के कारण ही न्यायपालिका के प्रति जनता का विश्वास और आस्था बनी रहती है।

न्यायपालिका का संगठन
(Organisation of the Judiciary)

जापान का वर्तमान न्यायालय-संगठन 16 अप्रेल, 1947 को प्राख्यायित हुए न्यायालय-संगठन-कानून (The Judiciary Organisation Law) पर आधारित है। जापान में निम्नांकित पाँच प्रकार के न्यायालय हैं—

(1) सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Courts)

(2) उच्च-न्यायालय (High Courts)

(3) जिला-न्यायालय (District Courts)

(4) पारिवारिक न्यायालय (Courts of Domestic Relations)

(5) समरी न्यायालय (Summary Courts)

इन सभी न्यायालयों का वर्णन क्रमशः निम्न प्रकार है—

1. सर्वोच्च न्यायालय
(Supreme Court)

संगठन (Organisation)—जापान के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या सविधान द्वारा निश्चित नहीं की गई है। इस समय प्रधान न्यायाधीश सहित कुल न्यायाधीशों की संख्या 15 है। कानून के अनुसार इनमें से 10 न्यायाधीश ऐसे होते हैं जो

विधि के क्षेत्र में उच्च व्यावसायिक योग्यतायें रखते हों। शेष 5 न्यायाधीश अन्य क्षेत्रों से भी लिए जा सकते हैं।

योग्यताएँ (Qualifications)—कानून द्वारा न्यायाधीशों की निम्नांकित योग्यताएँ निर्धारित की गई हैं—

(1) वह कम से कम 40 वर्ष की आयु का हो,

(2) प्रखर विधि-वेत्ता हो

(3) न्यायाधीशों में से कम से कम 10 व्यक्तियों ने कम से कम 10 वर्ष तक उच्च न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में कार्य किया हो अथवा 20 वर्ष तक शीघ्र निर्णायक न्यायालय के न्यायाधीश, लोक अभियोक्ता, वकील या कानून द्वारा स्थापित विश्वविद्यालय के विधि-विज्ञान के प्रोफेसर और सहायक प्रोफेसर के पद पर कार्य किया हो। इन चारों पदों पर कुल मिलाकर 20 वर्ष की सेवा भी मान्य है।

पदावधि (Term)—जापान में यह व्यवस्था है कि 70 वर्ष की आयु प्राप्त करने तथा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश अपने पदों पर रह सकते हैं लेकिन निम्नलिखित तीन दशाओं में उन्हें अवधि के पूर्व भी पदच्युत किया जा सकता है—

(1) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के पदों पर जनता का मत लिया जाता है। यदि जनता-जनमत-संग्रह में न्यायाधीशों का समर्थन करती है तो उनको पद पर बने रहने दिया जाता है अन्यथा उन्हें हटा दिया जाता है। जनमत-संग्रह न्यायाधीशों की नियुक्ति के पश्चात् होने वाले डायट के सदस्यों के प्रथम चुनाव के समय तथा उसके पश्चात् प्रति 10 वर्ष के अन्तर पर होता है।

(2) न्यायाधीशों को दुराचरण के आधार पर पदच्युत किया जा सकता है। उन पर महाभियोग का आरोप प्रतिनिधि-सदन द्वारा लगाया जा सकता है। इसका परीक्षण और निर्णय 14 सदस्यों की एक समिति द्वारा किया जाता है। जिसमें दोनों सदनों के 7-7 सदस्य सम्मिलित होते हैं।

(3) तीसरी व्यवस्था न्यायिक निर्णय की है। इसके अनुसार न्यायालय स्वयं न्यायाधीशों की शारीरिक एवं मानसिक क्षमता की जाँच करता है। उनके किसी अपराध पर उन्हें दण्डित भी किया जाता है।

प्रतिबन्ध या निषेध (Restrictions)—सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों एवं अन्य न्यायाधीशों के लिए निम्नांकित कार्यों का निषेध किया गया है—

(1) संसद् अथवा स्थानीय लोकसत्ताओं की सभाओं का सदस्य होना या राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेना,

(2) सर्वोच्च न्यायालय की स्वीकृति प्राप्त किए बिना कोई अन्य वैतनिक पद ग्रहण करना, एवं

(3) कोई वाणिज्य सम्बन्धी व्यवस्था करना अथवा ऐसा व्यवसाय करना जिसका उद्देश्य आर्थिक लाभ हो। उपर्युक्त व्यवस्थाओं का उद्देश्य न्यायाधीशों को आर्थिक प्रलोभनों से बचाकर उनकी गरिमा तथा प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखना है।

शक्तियाँ एवं कार्य (Powers and Functions)

जापान में न्यायपालिका की बहुमुखी भूमिका है। इसकी मुख्य शक्तियों तथा कार्यों को निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है—

(1) **न्यायिक कार्य (Judicial Functions)**—सर्वोच्च न्यायालय के अधिकांश न्यायिक कार्य नीचे के न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें सुनना है। अन्तिम न्यायालय के रूप में यह किसी भी प्रकार की अपील सुन सकता है, लेकिन सामान्यतः वह फौजदारी और दीवानी दोनों प्रकार के विवादों में ही ये अपीलें सुनता है।

(1) उच्च न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध द्वितीय स्थिति के न्यायालय के रूप में अग्राह्वित प्रकार के वादों में द्वितीय अपीलों का सुनना—संविधान से सम्बन्धित वाद, न्यायिक दृष्टान्तों के प्रतिकूल निर्णय वाले वाद एवं कानून तथा अध्यादेशों का महत्त्वपूर्ण उल्लंघन।

(2) प्रक्रिया संहिता में वर्णित प्रक्रिया सम्बन्धी विशेष शक्तियों की सुनवाई।

उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त अपने और उच्च न्यायालयों के न्यायधीशों की न्यायिक सेवा के स्तर के विरुद्ध अपराधों और उनकी मानसिक एवं शारीरिक क्षमता सम्बन्धी विवादों के निर्णय तथा नेशनल परसोनल ऑथोरिटी के आयुक्तों के विरुद्ध संसद द्वारा लगाए गए महाभियोग का परीक्षण करने का अधिकार भी सर्वोच्च न्यायालय को अधिकार प्राप्त है यह इसके मौलिक क्षेत्राधिकार में सम्मिलित है।

संविधान की धारा 81 के अनुसार किसी कानून, आज्ञा, नियम अथवा आधिकारिक कार्यों की सांविधानिकता की परीक्षा करने और इस कार्य के लिए संविधान की व्याख्या करने का अन्तिम अधिकार भी सर्वोच्च न्यायालय को ही है। न्यायिक पुनरावलोकन का यह कार्य सम्पूर्ण न्यायाधीशों की बड़ी बैंच द्वारा किया जाता है और किसी विधि, नियम या आज्ञा को असांविधानिक घोषित करने के लिए कम से कम 9 न्यायाधीशों के बहुमत की आवश्यकता होती है। संवैधानिकता के प्रश्न पर जिला न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध अपील सीधे सर्वोच्च न्यायालय में की जा सकती है।

(2) **नियम-निर्माण सम्बन्धी कार्य**—न्याय से सम्बन्धित विषयों पर व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानूनों को क्रियान्वित करने के लिए और जिन विषयों के सम्बन्ध में व्यवस्थापिका में कोई कानून निर्मित न किए हों, उन्हें नियमित करने के लिए धारा 77 के अधीन सर्वोच्च न्यायालय नियम बनाता है।

उच्च न्यायालयों, जिला न्यायालयों, परिवार न्यायालयों और न्यायिक अनुसंधान अधिकारियों, न्यायालय के सचिवों, लिपिकों एवं सहायक लिपिकों आदि अधिकारियों की नियुक्ति तथा सेवा-सम्बन्धी नियमों का निर्माण भी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ही किया जाता है। यह कार्य प्रधान न्यायाधीश की अध्यक्षता में एक गुप्त न्यायिक सभा द्वारा किया जाता है जिसमें प्रायः सभी न्यायाधीश सम्मिलित होते हैं।

(3) **न्यायिक प्रशासन सम्बन्धी कार्य**—सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक प्रशासन के सम्बन्ध में भी अनेक महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त हैं। यह मन्त्रि-परिषद् द्वारा अन्य न्यायालयों

के न्यायाधीशों की नियुक्तियों के लिए योग्य व्यक्तियों की सूची बनाता है और मन्त्रि-परिषद् इस सूची में सम्मिलित व्यक्तियों को ही न्यायाधीशों के पदों पर नियुक्त कर सकती है। इसके अतिरिक्त किसी भी उच्च न्यायालय के क्षेत्र में उस न्यायालय की शाखाएँ भी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ही स्थापित की जाती हैं। विशेष परिस्थितियों में सर्वोच्च न्यायालय एक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को दूसरे उच्च न्यायालय में या दूसरे उच्च न्यायालय के ही क्षेत्र के जिला अथवा परिवार न्यायालय के न्यायाधीशों को उस क्षेत्र के उच्च न्यायालय में कार्य करने का आदेश दे सकता है। इसी प्रकार विशेष परिस्थितियों में सर्वोच्च न्यायालय एक जिला न्यायालय के न्यायाधीशों को दूसरे जिला न्यायालय में कार्य करने की आज्ञा दे सकता है। सर्वोच्च न्यायालय किसी जिला न्यायालय की शाखाएँ भी स्थापित कर सकता है और उसमें कार्य करने के लिए न्यायाधीश नामांकित कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ही निम्न न्यायालयों के न्यायाधीशों को उनके पदों पर नियुक्त करता है। वही उच्च न्यायालयों, जिला न्यायालयों और परिवार न्यायालयों के सचिवालयों के मुख्य अधिकारी को न्यायालयों के सचिवों में से नियुक्त करता है।

(4) प्रशिक्षणात्मक एवं अनुसंधान सम्बन्धी कार्य—सर्वोच्च न्यायालय के अन्तर्गत तीन संस्थान हैं—विधि प्रशिक्षण तथा अनुसंधान संस्थान, न्यायालय लिपिक हेतु अनुसंधान तथा प्रशिक्षण संस्थान एवं परिवार तथा न्यायालय परिवीक्षण अधिकारी (Probation Officer) संस्थान। ये संस्थान सर्वोच्च न्यायालय की देखरेख में कार्य करते हैं। ये न्यायाधीशों, अन्य अधिकारियों, लिपिकों, एपरेंटिसों आदि को प्रशिक्षण देते हैं। विधि प्रशिक्षण और अनुसंधान संस्थान में उच्च लोक सेवा की न्यायिक परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले विद्यार्थी प्रशिक्षण ग्रहण करते हैं।

न्यायिक विषयों पर अनुसंधान का कार्य विधि-प्रशिक्षण तथा अनुसंधान संस्थान *और न्यायालय लिपिक हेतु अनुसंधान तथा प्रशिक्षण संस्थान द्वारा किया जाता है। प्रथम* संस्थान न्यायिक विषयों पर और द्वितीय लिपिकीय कार्यों पर अनुसंधान करता है। कुछ न्यायिक अनुसंधान अधिकारी सर्वोच्च न्यायालय में भी होते हैं। वे न्यायाधीशों की आज्ञा पर न्यायिक प्रक्रिया पर अनुसंधान करते हैं।

(5) पर्यवेक्षण सम्बन्धी कार्य (Inspection Functions)—सर्वोच्च न्यायालय को अपने अधिकारियों एवं निम्न न्यायालय के अधिकारियों से सम्बन्धित पर्यवेक्षण सम्बन्धी अधिकार भी प्राप्त हैं। यह अपने अधिकारियों, निम्न न्यायालयों और उनके अधिकारियों के कार्यों का पर्यवेक्षण करता है, लेकिन यह पर्यवेक्षण अधिकार न्यायालयों की न्यायिक शक्ति को प्रभावित नहीं कर सकता है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जापान में न्यायपालिका विधि के शासन को अक्षुण्ण रखने तथा नागरिक स्वतन्त्रताओं के संरक्षण की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। उसकी शक्तियों ने देश में लोकतान्त्रिक व्यवस्था को अक्षुण्ण रखने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

2. उच्च न्यायालय
(High Courts)

सर्वोच्च न्यायालय के नीचे उच्च न्यायालय हैं। सम्पूर्ण जापान 8 क्षेत्रों में विभाजित है और प्रत्येक क्षेत्र में एक-एक उच्च न्यायालय है। ये अधिकांशतः अपीलीय न्यायालय हैं और अपने क्षेत्र में इनका निर्णय अन्तिम होता है। उच्च न्यायालय का न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु तक काम कर सकता है। इनकी संख्या भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न है। ये मुकदमों की प्रायः तीन-तीन की बैंचों के रूप में सुनवाई करते हैं और उन पर निर्णय देते हैं। राजद्रोह के मुकदमों में 5 न्यायाधीशों की बैंच (Bench) बैठती है क्योंकि यह इनके प्रारम्भिक क्षेत्र में आते हैं। इस तरह से अपीलीय न्यायालय के रूप में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

3. जिला न्यायालय
(District Courts)

जापान में उच्च न्यायालयों के नीचे 49 जिला न्यायालय और उनकी लगभग 240 शाखाएँ हैं। जिला न्यायालयों में कुछ न्यायाधीश और कुछ सहायक न्यायाधीश होते हैं। न्यायालय का प्रशासन सम्बन्धी कार्य एक न्यायिक सभा द्वारा किया जाता है जिसके सभी सदस्य न्यायाधीश होते हैं और मुख्य न्यायाधीश इसका अध्यक्ष होता है। सर्वोच्च न्यायालय जिला न्यायालय की शाखाएँ स्थापित कर सकता है। जिला न्यायालयों में दीवानी और फौजदारी दोनों तरह के मामले प्रस्तुत होते हैं तथा नीचे की अदालतों की अपीलें भी प्रस्तुत होती हैं। साधारणतः एक ही न्ययाधीश मुकदमा सुनता है और निर्णय देता है, परन्तु गम्भीर मामलों में तीन न्यायाधीशों की बैंच भी बैठती है।

4. पारिवारिक न्यायालय
(Courts of Domestic Relations)

इन न्यायालयों का जापान के पंचायती क्षेत्रों में काफी प्रचलन है। वस्तुतः ये न्यायालय जिला न्यायालयों के अङ्ग है जिनके निर्माण का उद्देश्य पारिवारिक झगड़ों को निपटाने में सहायता देना है। फलस्वरूप इनमें तलाक, जायदाद के बँटवारे, गोद लेने, वचन तोड़ने आदि से सम्बन्धित मामले सम्मिलित होते हैं। संविधान ने स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार देकर जिस सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात किया है, उसके कारण इन पारिवारिक अदालतों में मुख्यतः तलाक के मामले आते हैं। ये न्यायालय एक प्रकार के अर्द्ध-पंचायती न्यायालय हैं जिनमें न्यायाधीशों के अतिरिक्त साधारण नागरिक भी न्याय के लिए बैठते हैं और कानूनी प्रक्रिया की जटिलता दूर कर दी जाती है।

5. समरी न्यायालय
(Summary Courts)

जापान में सबसे नीचे के न्यायालय समरी न्यायालय हैं जो ब्रिटेन के जस्टिस ऑफ पीस न्यायालय की भाँति हैं। इनमें दीवानी और फौजदारी के छोटे मुकदमे शामिल होते हैं। मुकदमों का फैसला तुरन्त होता है इसलिए भी इन्हें समरी न्यायालय कहा जाता है।

प्रोक्यूरेटर्स
(Procurators)

जापान में न्यायाधीशों के साथ सरकारी वकीलों का भी एक संगठन है जिसके प्रमुख को प्रोक्यूरेटर जनरल (Procurator General) कहते हैं । इसी के द्वारा न्याय-मन्त्रालय कार्य करता है । इसकी और इसके सहायकों की नियुक्ति मन्त्रिमण्डल द्वारा की जाती है और सम्राट् इस नियुक्ति की पुष्टि (Attest) करता है । दूसरी श्रेणी के प्रोक्यूरेटरों की नियुक्ति का अधिकार प्रधानमन्त्री को प्राप्त है । प्रोक्यूरेटर जनरल 65 वर्ष की आयु में और अन्य प्रोक्यूरेटर 63 वर्ष की आयु में पद-निवृत्त होते हैं । इनके वेतन, प्रशिक्षण, योग्यताओं आदि के विषय में कानून बने हुए हैं । इनका मुख्य कार्य फौजदारी मुकदमों में सरकारी पक्ष प्रस्तुत करना होता है ।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जापान में न्यायापालिका का एक सुव्यवस्थित संगठन है । न्यायपालिका की स्वतन्त्र और निष्पक्ष भूमिका ने देश के संविधान का अनुरक्षण करने, विधि का शासन स्थापित करने तथा लोकतान्त्रिक व्यवस्था के भविष्य को सुरक्षित रखने में महती भूमिका का निर्वाह किया है ।

37

राजनीतिक दल

(Political Parties)

1940 ई. में जापान में एक नवीन शासन-प्रणाली स्थापित हुई जिससे सेना में की अत्यन्त शक्तिशाली भूमिका बन गई। सैनिक शासन में दलों का अस्तित्व समाप्त हो गया। जब 1947 ई. में वर्तमान नवीन जापानी संविधान लागू हुआ तो राजनीतिक दलों की राजनीतिक व्यवस्था में पुनः महत्वपूर्ण भूमिका बनी। वैसे यथार्थ में इस संविधान के लागू होने से पूर्व ही राजनीतिक दल फिर से अपनी भूमिका का निर्धारण करने लगे। आज जापान में चार प्रमुख राजनीतिक दल वहाँ की राजनीति में प्रमुख भूमिका का निर्वाह करते हैं। यनागा के शब्दों में, "एक वास्तविक दो-दलीय व्यवस्था नहीं उभर सकती जब तक कि दल 'व्यक्तित्व-केन्द्रित' व 'नेता-केन्द्रित बने रहते हैं जिनमें कि दलों के सदस्यों की निष्ठा मुख्यतः व्यक्तियों के प्रति हो तथा सिद्धान्तों व राजनीति के प्रति न हो।'[1] जापान में बहुदलीय व्यवस्था का प्रचलन है। लेकिन देश में मुख्य रूप से दो ही राजनीतिक दल—उदार लोकतान्त्रिक दल (लिबरल डेमोक्रेटिक पार्टी) तथा समाजवादी दल (दि सोशलिस्ट पार्टी) है।

जापान की दलीय-प्रणाली की प्रमुख विशेषताएँ
(Main Features of Japanese Party System)

जापान की दलीय व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं को निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है—

(1) धर्म-निरपेक्षता (Secularism)—जापानी राजनीतिक दलों के निर्माण और पारस्परिक व्यवहार में धार्मिक आधार को कोई महत्त्व नहीं है। दलों के संगठन और विघटन में धर्म की कोई विशेष भूमिका नहीं है।

(2) दलों की अधिकता (Too Many Parties)—जापान में बहुदलीय प्रणाली का प्रचलन है। द्वितीय महायुद्ध के बाद होने वाले प्रथम चुनावों में 260 राजनीतिक दलों ने भाग लिया। इसके अलावा और भी सैकड़ों राजनीतिक संगठन अस्तित्व में थे। वास्तव में जापानी अपने स्वभाव के कारण अनेकता और विभिन्नता के पक्षधर रहे हैं। वे

1. *Yanaga* : Japanese People and Politics, p. 289.

छोटे-छोटे मतभेदों के आधार पर राजनीतिक दलों का संगठन कर लेते हैं। दलों का केन्द्रीय आधार व्यक्ति अथवा नेता होता है, अतः उनके बनने-बिगड़ने का क्रम चलता रहता है। इस तरह से बहुदलीय व्यवस्था जापानियों के स्वभाव में है।

(3) गुटबन्दी (Groupism)—दलों में बहुत अधिक गुटबन्दी पायी जाती है, जिसके कारण राजनीतिक अराजकता तथा अनुशासनहीनता की स्थिति व्याप्त है। इस गुटबन्दी और दलों की अस्थिरता के कारण कोई भी दल प्रायः सरकार बनाने की सुदृढ़ स्थिति में नहीं होता। यही कारण है कि जापान में प्रायः मिश्रित या सम्मिलित सरकारों (Coalition Government) की ही स्थापना होती रही है। क्विग्ले व टर्नर ने कहा है कि "जापान में राजनीतिक दल वर्गीय हितों के निर्बल संगठन हैं।"[1] इस स्थिति के कारण देश में राजनीतिक अस्थिरता का वातावरण रहता है। अनेक दलों के गठबंधन से बनी सरकारें दीर्घजीवी नहीं होतीं। सरकारें बनती रहती हैं, और मिटती रहती हैं।

(4) पूँजीपतियों एवं राजनीतिक दलों में गठजोड़ (Link of Capitalists & Political Parties)—जापान में बड़े-बड़े पूँजीपतियों और व्यावसायियों तथा राजनीतिक दलों में घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। एकाधिकारी पूँजीवाद के साथ दलीय गठबन्धन के कारण सरकारी नीतियाँ प्रायः बड़े-बड़े उद्योगों और व्यवसायों के अनुकूल रहती हैं। सरकारों और दलों को धन के लिए भी प्रायः इन्हीं पर निर्भर रहना पड़ता है। इस तरह से राजनीतिक दलों की नीतियों तथा कार्यक्रमों के निर्धारण में धनिक वर्गों का बहुत अधिक हाथ रहता है।

(5) दलों पर नौकरशाही का प्रभाव (Parties are affected by Bureaucracy)—राजनीति दलों पर नौकरशाही का काफी प्रभाव रहता है। दलों में सरकारी कर्मचारी बड़ी संख्या में निरन्तर प्रवेश करते रहते हैं। सरकारी कर्मचारियों के प्रभाव के कारण डायट में भी नौकरशाही का प्रभाव बहुत बढ़ गया है।

(6) संविधानेतर विकास (Extra-Constitutional Development)—जापान के संविधान में किसी राजनीतिक दल को मान्यता नहीं दी गई है। देश में राजनीतिक दलों का विकास 'संविधानेत्तर' घटना है।

(7) एक-दलीय प्रमुख वाली बहुदलीय व्यवस्था (One-party Dominated Multy-party System)—यद्यपि जापान एक बहुदलीय शासन व्यवस्था वाला क्षेत्र है, तथापि यहाँ उदार प्रजातान्त्रिक दल (लिबरल डेमोक्रेटिक पार्टी) का प्रभुत्व रहा है। यही दल प्रायः सत्ता में रहा है। इस दल की जापान में वैसी ही स्थिति है, जैसी कि भारत में कॉंग्रेस की। देश की राजनीतिक व्यवस्था इस दल की नीतियों से आच्छादित रही। दूसरा प्रमुख दल 'समाजवादी दल' (सोशलिस्ट पार्टी) केवल 1947-48 तक की अल्पावधि के लिए ही सत्ता में रहा।

---

1. *Quigly & Turner* : The New Japan.
"In Japan a Political Party is little more than a loose association of functional interests."

(8) केन्द्रीकरण (Centralisation)—केन्द्रीकरण, जापान के राजनीतिक दलों की एक मुख्य प्रवृति है। केन्द्रीय नेतृत्व ही राजनीतिक दलों की नीतियों तथा कार्यक्रमो का निर्धारण करता है। केन्द्रीय नेतृत्व ही दलो की गतिविधियो का संचालन करता है। केन्द्रीकरण की इस प्रवृति ने स्थानीय इकाइयों की स्थिति को बहुत दुर्बल या कमजोर बना दिया है।

(9) पेशेवर राजनीतिज्ञों का प्रभाव (Influence of Professional Politicians)—जापान की राजनीतिक व्यवस्था पर पेशेवर राजनीतिज्ञो का प्रभुत्व रहा है। फलत. देश के राजनीतिक दलो पर भी पेशेवर राजनीतिज्ञो का प्रभाव है। इससे देश की राजनीति में भ्रष्टाचार की घटनाएँ घटित होती रहती हैं। अनेक प्रधानमन्त्रियो को भ्रष्टाचार के आरोपों के कारण अपना पद छोडने तथा सजा काटने के लिए मजबूर होना पड़ा है।

(10) दबाव समूहों की भूमिका (The Role of the Pressure Groups)—जापान के राजनीतिक दलो की गतिविधियो को प्रभावित तथा नियन्त्रित करने में दबाव समूहों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। देश के दबाव समूह, अपने हितों की पूर्ति करने के लिए राजनीतिक दलों की नीतियों, कार्यक्रमों तथा गतिविधियों को प्रभावित करते हैं।

जापान के प्रमुख राजनीतिक दल
(The Major Political Parties of Japan)

जापान के प्रमुख राजनीतिक दल निम्नलिखित हैं—

(1) उदार प्रजातान्त्रिक दल
(Liberal Democratic Party)

इस दल का जन्म उदार (Liberal) एवं प्रजातान्त्रिक (Democratic) दलों के सम्मिलन के कारण हुआ। 1945 ई. में इन दोनों ही दलों का विलय हुआ। इसके पूर्व ये दोनों पृथक्-पृथक् दल थे। वर्तमान जापान का यह प्रमुख दल है। 1955 से ही इस दल की सत्ता है। आज भी कोई अन्य दल इसे चुनौती देने में समर्थ नहीं है। यही जापान का एकमात्र रूढिवादी दल है। जिसका सम्बन्ध बडे-बडे व्यापारियों, राजवंश के लोगों और शासन के उच्चाधिकारियों से है। संगठन की दृष्टि से यह केन्द्रीभूत दल है। यद्यपि जिला-स्तर एवं स्थानीय-स्तर पर इसकी शाखाएँ हैं, लेकिन इसका स्थानीय संगठन विकसित नहीं है। सारा कार्य केन्द्रीय संगठन के द्वारा ही संचालित होता है। दल के अधिकारियों में चार प्रमुख व्यक्ति होते हैं—अध्यक्ष (President), महासचिव (Secretary General), नीति अनुसन्धान समिति का अध्यक्ष (Chairman of Policy Research) एवं कार्यकारिणी समिति का अध्यक्ष (Chairman of the Executive Council)। इसके अतिरिक्त एक परामर्शदाता भी होता है जिसको सम्मिलित करने पर इन पाँचों प्रमुख व्यक्तियों का 'हाई कमाण्ड अथवा उच्च कमान' बनता है। दल के पदाधिकारियों में अध्यक्ष पद का बहुत महत्त्व है। अध्यक्ष के लिए

प्राय. अवकाश प्राप्त सरकारी अधिकारी इसके लिए अधिक उपयुक्त माना जाता है। महासचिव दल का प्रमुख प्रवक्ता होता है। जिसका मुख्य कार्य धन-संग्रह या एकत्रित करना होता है।

दल के प्रत्येक सदस्य को प्रति वर्ष दल को 200 येन चन्दा देना पड़ता है। चूंकि यह सदस्यता-शुल्क भारी पड़ता है, अतः सम्पन्न वर्ग के लोग ही दल की सदस्यता प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। दल के सदस्यों में अधिकांश व्यक्ति व्यावसायिक राजनीतिज्ञ हैं। इसके अतिरिक्त देहातों में कृषक वर्ग के बड़े प्रतिनिधि, नगरों के वाणिज्य एवं उद्योग संस्थानों के मालिक, लघु उद्योगों के कर्मचारी, उच्च-स्तर के प्रशासकीय अधिकारी, वकील, पत्रकार आदि इसके सदस्य होते हैं।

सैद्धान्तिक दृष्टि से यह अनुदार एवं प्रतिक्रियावादी दल है और युद्धपूर्व की सामाजिक, राजनीतिक एवं संवैधानिक स्थिति को पुन. स्थापित करना चाहता है। यह दल स्थानीय स्वायत्त शासन के विरुद्ध है और लोक-सेवा व्यवस्था का समर्थक नहीं है। इस प्रकार यह दल केन्द्रीभूत स्थानीय शासन और पूर्ण-रूपेण शासनाधीन लोक-सेवा स्थापित करने के पक्ष में है। यह लोकतन्त्र और स्वतन्त्रता का समर्थक है। और यह युद्ध-परित्याग की नीति का समर्थन करता है, तथापि राष्ट्रीय शस्त्रीकरण को भी आवश्यक मानता है। इसके साथ ही यह दल व्यापार-स्वातन्त्र्य एवं व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का समर्थक है। यह स्वतन्त्र न्यायपालिका का विरोधी है। इतनी अनुदार नीतियों के होते हुए भी यह लोक-कल्याणकारी राज्य की स्थापना का विरोधी नहीं है। देश के जन-साधारण के जीवन को अधिक सुखी एवं सम्पन्न बनाने के लिए यह लोक-स्वास्थ्य बीमा, वृद्ध एवं असहाय व्यक्तियों के लिए सहायता, साधारण मूल्य की भवन व्यवस्था आदि पर जोर देता है। उद्योगों का संचालन इस तरह से करना चाहता है कि लोक-कल्याण के आदर्श को प्राप्त किया जा सके।

इस दल को अमरीका समर्थक माना जाता है। अमेरिका के साथ जापान के सहयोग की इच्छा रखते हुए यह उसके साथ रक्षा-सन्धि का भी समर्थक है। इस दल की माँग है कि रूस द्वारा कुरील द्वीप जापान को लौटा दिया जाना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और स्वतन्त्रता के प्रयासों का समर्थन करते हुए यह दल एक पूर्ण आत्मनिर्भर जापान का पक्षधर है। यह अन्य देशों के साथ जापान के व्यापार में वृद्धि चाहता है। व्यापारिक दृष्टि से यह साम्यवादी चीन के साथ सहयोग का भी समर्थक है। अमेरिका के साथ सहयोग का समर्थक होते हुए भी इस दल की माँग है कि जापान-स्थित अमेरिकी सैनिक अड्डों को समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

जहाँ तक उदार प्रजातान्त्रिक दल की उपलब्धियों का प्रश्न है इस दल के शासन काल में जापान का तेजी से साथ औद्योगिक विकास हुआ, और वर्तमान में वह विश्व की एक प्रमुख औद्योगिक शक्ति बन गया। जहाँ तक इस दल के नकारात्मक पक्ष का प्रश्न है, इससे देश की राजनीति 'भ्रष्टीकरण' या राजनीतिक भ्रष्टाचार का पर्याय बन गई। अनेक प्रधानमन्त्री और मन्त्री भ्रष्टाचार के आरोपों के कारण त्यागपत्र देने के लिए विवश हुए हैं। इससे सार्वजनिक जीवन दूषित हुआ है।

(2) समाजवादी दल
(The Socialist Party)

जापान का समाजवादी दल देश का दूसरा दल है। यह दो गुटों में विभाजित है—दक्षिण मार्गी और वाम मार्गी। दक्षिण मार्गी गुट को प्रजातन्त्र समाजवादी-दल और वाम मार्गी गुट को जापानी समाजवादी दल कहते हैं। 1958 में दल का विभाजन हुआ।

दक्षिण मार्गी दल शान्ति-सन्धि और उससे सम्बन्धित जापान-अमेरिका सुरक्षा संधि का समर्थक है जबकि वाममार्गी इसका विरोध करता है। परन्तु इस अन्तर के होते हुए भी संगठन की दृष्टि से दोनों ही दलों के संगठनों में एकरूपता है। दोनों के संगठनों में केन्द्रीय कार्यपालिका समिति एवं उसका सभापति, महासचिव, नीति-निर्धारक-समिति एवं उसका सभापति तथा कोषाध्यक्ष होते हैं। समाजवादी दल में उदार प्रजातान्त्रिक दल के समान कोई अध्यक्ष (President) नहीं होता है। दल के केन्द्रीय और स्थानीय संगठन सुदृढ़ हैं। स्थानीय सगठनों और केन्द्रीय कार्यालयों का सम्बन्ध भी बहुत निकट का है। इस दल को श्रमिकों का भारी संख्या में समर्थन प्राप्त है। दल के सदस्यों में प्रोफेसर, लेखक, छात्र, लिपिक वर्ग, विक्रेता एवं अल्प-वेतनभोगी व्यक्ति सम्मिलित हैं। मैकनैली के अनुसार—"जापानी समाजवादी दल यूरोपियन देशों के समाजवादी दलों से अत्यधिक उग्रवादी है जबकि समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी प्रसार के विरोध व नारों का समर्थन करते हैं और वे स्वयं को चीन के साम्यवादियों का समर्थक व अमेरिका के साम्यवादियों का विरोधी कहते हैं।"[1]

समाजवादी दल पूर्ण नियोजन, लोक-कल्याण में सुधार, वर्ग के लोगों के जीवन-स्तर में वृद्धि एवं स्वतन्त्र विदेश-नीति का समर्थक है। यह दल अणुशस्त्रों के प्रशिक्षण का निषेध करता है। यह दल चीन की मान्यता और उसके साथ जापान के अधिकाधिक व्यापार का समर्थन करता रहा तथा एशियायी अफ्रीकी देशों के साथ जापान के सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाना चाहता है। यह दल रूस, चीन और अमेरिका के साथ सामूहिक सुरक्षा-सन्धि करने पर भी जोर देता रहा है।

उक्त दो प्रमुख राजनीतिक दलों के अतिरिक्त साम्यवादी दल, कोमिटो दल तथा लोकतान्त्रिक समाजवादी दल अन्य प्रमुख दल हैं।

राजनीतिक दलों का संगठन और स्वरूप
(Organisation and Nature of Political Parties)

जापान के सभी दलों का संगठन मोटे रूप में एक-सा है। कहीं-कहीं थोड़ी बहुत भिन्नता दिखाई देती है। सभी दलों की प्रेसीडेंसीज (Presidencies) हैं और सभी के निदेशालय (Directorates) हैं। उनके अन्तरंग विभाग (Inner Core) भी हैं। इनमें अनुशासन और वित्त-व्यवस्था के क्षेत्र में भिन्नता पाई जाती है।

1. *McNelly, T*: Contemporary Govt. of Japan, p 127.

जापान के राजनीतिक दलों के सम्बन्ध में संविधान मौन है । यह व्यवस्था अमेरिकी और ब्रिटिश राजनीतिक व्यवस्था जैसी है । इस सम्बन्ध में वितौरी यानगा ने ठीक ही लिखा है कि "स्वयं दल का यद्यपि संविधान में कोई उल्लेख नहीं है, तथापि संविधान की मान्यता इस बारे में स्पष्ट है, क्योंकि राजनीतिक दलों के अभाव में उत्तरदायी संसदीय सरकार का न तो अस्तित्व ही रह सकता है और न उसका संचालन ही सम्भव है ।" जापान के राजनीतिक दलों में व्यक्तियों का महत्त्व अधिक काम करता है । नेतृत्व को काफी मान्यता दी जाती है । नेताओं के व्यक्तिगत टकराव तथा व्यक्तित्व के आधार पर दलों की आन्तरिक गुटबन्दी चलती रहती है । राजनीतिक महत्वाकांक्षाएँ पूर्ण करने के ढंग आज भी लगभग वैसे ही हैं जैसे युद्ध के पहले थे । दलों पर पाश्चात्य सभ्यता का भी स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है । अमेरिकी और ब्रिटिश अनुकरण एवं प्रभाव के होते हुए भी दलीय जीवन का वह आधार प्राप्त नहीं किया जा सका है जो अमेरिका और ब्रिटेन में पाया जाता है । दलों का रूप क्षेत्रीय अधिक और राष्ट्रीय कम है, किन्तु अब परिस्थितियाँ ऐसी बन गई हैं कि कोई भी राजनीतिक दल राष्ट्रीय रूप धारण किए बिना जीवित नहीं रह सकता है ।

साराश में, जापान की राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है ।

37

जनवादी चीन के संविधान की मुख्य विशेषताएँ

(The Main Characteristics of the Constitution of Peoples Republic of China)

जनवादी चीन को साम्यवादी चीन के रूप में भी जाना जाता है। सामान्य बोलचाल में साम्यवादी चीन (Communist China) का नाम ही अधिक प्रचलित है जिसकी स्थापना अक्टूबर, 1949 की जन क्रान्ति से हुई, जिसका नेतृत्व माओत्से तुग के नेतृत्व में साम्यवादी दल ने किया। यद्यपि डॉ. सुनयात सेन इस राष्ट्रीय या जन-क्रान्ति के प्रथम नेता थे। अक्टूबर, 1949 की क्रान्ति के कारण तत्कालीन शासक च्यॉंग काई शेक ने भागकर फारमोसा टापू में शरण ली। श्री च्यॉंग काई के नेतृत्व वाले चीन को 'राष्ट्रवादी चीन' (Nationalist China) के रूप में जाना गया। आज भी फारमोसा में 'राष्ट्रवादी चीन' की सरकार का अस्तित्व है। यद्यपि सन् 1971 में साम्यवादी चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् की सदस्यता प्रदान कर के राष्ट्रवादी चीन को इस संगठन की सदस्यता से हटाया गया।

जनवादी चीन विश्व का एक महान् देश है। यह भौगोलिक दृष्टि से एक विशाल देश है तथा विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश है। इसकी जनसंख्या 1 अरब को पार कर गई है। चीन आणविक शक्ति का संपन्न देश है। सोवियत संघ के पतन के बाद भी चीन साम्यवादी विचारधारा को अपनाये हुए है। यह बड़ी तेजी से औद्योगिकरण की ओर अग्रसर हो रहा है। चीन विश्व की महाशक्ति बनने की महत्वाकांक्षा रखता है, और इसमें महाशक्ति बनने के सभी लक्षण विद्यमान हैं।

आधुनिक चीनी संविधान का निर्माण

(The Formation of the Modern Chinese Constitution)

माओत्से तुंग के नेतृत्व में साम्यवादी दल ने देश के लिए संविधान निर्माण का दायित्व अपने हाथ में लिया। जनवरी, 1953 में 'माओत्से तुंग' की अध्यक्षता में चीन के जनवादी गणराज्य के लिए सविधान का प्रारूप तैयार करने हेतु एक समिति नियुक्त की गई। इस समिति द्वारा तैयार किये गये संविधान के प्रारूप को 14 जून, 1954 को स्वीकार कर लिया गया। 20 सितम्बर, 1954 को राष्ट्रीय जन कांग्रेस की बैठक में संविधान के प्रारूप को अंतिम रूप से मानकर लागू कर दिया गया।

1954 के संविधान की मुख्य विशेषताएँ

(The Major Characteristics of the Constitution of 1954)

1954 ई. के सविधान की मुख्य विशेषताओं को निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है—

1. प्रस्तावना—चीन के सविधान की प्रस्तावना साम्यवादी दल के नेतृत्व में चीनी लोगों द्वारा प्राप्त की गई सफलताओं का लिपिबद्ध इतिहास है जिसमें बताया गया है कि किस प्रकार सविधान निर्मित और स्वीकृत हुआ। प्रस्तावना में उल्लिखित है कि चीन के लोगों ने साम्यवादी दल की अध्यक्षता में दीर्घकाल तक संग्राम करके अन्त में विजय प्राप्त की। इसमें 'सोवियत समाजवादी गणराज्यों के सगठन' के प्रति गहरी कृतज्ञता प्रकट की गई है और 'अन्य देशों के शान्तिप्रिय लोगों के साथ अटूट मित्रता' का वचन दिया गया था। प्रस्तावना में इस बात की भी घोषणा की गई है कि सरकार का क्या निश्चय है और उसे किन आदर्शों की पूर्ति करनी है। प्रस्तावना में यह भी उल्लिखित है कि चीन की सभी जातियाँ सर्वाधीन और समान हैं तथा ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होगा, इन जातियों के मध्य प्रेम-भावना का विकास होगा। यह भी कहा गया कि चीन की विदेश नीति का ध्येय विश्व में शान्ति स्थापित करना है। इस तरह सविधान की प्रस्तावना में समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य व्यक्त किया गया है।

2. लिखित संविधान—सन् 1954 का सविधान एक लिखित प्रलेख था, जिसमें 4 अध्याय तथा 105 धाराएँ थीं, जिसमें वर्तमान तथा भविष्य के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों पर प्रकाश डाला गया था। यह सरल चीनी भाषा में लिखा गया। इस तरह से जनवादी चीन का सविधान लिखित संविधान है।

3. संक्रमणकालीन संविधान—1954 के सविधान को एक संक्रमणकालीन सविधान की सज्ञा दी जाती थी। इसकी प्रस्तावना में ही यह स्पष्ट कर दिया गया कि इस प्रलेख का उद्देश्य 'चीन के जनवादी गणतन्त्र की स्थापना से लेकर समाजवादी समाज की प्राप्ति पर्यन्त' सक्रमणकाल में देश की आवश्यकताओं की पूर्ति करना है।

4. जनवादी लोकतन्त्रात्मक राज्य—चीन का सविधान जनवादी लोकतन्त्रात्मक राज्य की स्थापना करता है, जिसका नेतृत्व श्रमिक वर्ग के हाथों में है और जो श्रमिकों तथा कृषकों के संगठन पर आधारित है। सविधान के अन्तर्गत जनवादी लोकतन्त्रात्मक अधिनायकशाही की स्थापनी की गई जो इस बात की गारंटी लेती है कि चीन शान्तिपूर्ण ढग से शोषण एवं दरिद्रता को दूर करके एक समृद्ध एव सुखी समाज का निर्माण कर सकेगा। संविधान का उद्देश्य श्रमिकों एव कृषकों को सयुक्त करके एक नवीन समाज का निर्माण करना था। इस तरह चीनी संविधान शोषण-रहित समाजवादी समाज-व्यवस्था की स्थापना करना था।

5. जनतन्त्रात्मक केन्द्रवाद—सोवियत संघ की भाँति चीन के संविधान में भी जनतन्त्रात्मक केन्द्रवाद के सिद्धान्त को अपनाया गया। ऑग एव जिंक ने लिखा है कि "जनतन्त्रात्मक केन्द्रवाद का अर्थ यह है कि स्थानीय इकाइयाँ उस समय तक अपने विवेकानुसार कार्य करती रह सकती हैं जब तक कि उनके उच्चतर शासनाग उनके कार्य

में बाधा उपस्थित न करें।" इस तरह शासन में केन्द्रीयकरण के सिद्धांत को मान्यता दी गई है।

6. एकात्मक राज्य—1954 के संविधान के अन्तर्गत देश में एकात्मक राज्य की स्थापना की गई। संविधान की धारा 3 में कहा गया कि जनवादी चीन 'एक एकाकी बहु-राष्ट्रीय राज्य है जिसमें संघात्मक व्यवस्था के आदर्श को अस्वीकार किया गया है। साम्यवादी चीन जैसे विशाल राष्ट्र में एकात्मक राज्य की अवधारणा आश्चर्य उत्पन्न करती थी।

7. एक सदनात्मक विधानमण्डल—1954 ई. के संविधान में केवल एक सदनात्मक विधानमण्डल का प्रावधान रखा गया था, क्योंकि यहाँ किसानों और मजदूरों का ही वर्ग था, अतः उच्च वर्गों को प्रतिनिधित्व देने के लिए दूसरे सदन के गठन की आवश्यकता ही अनुभव नहीं की गई।

8. विधान-मण्डल की सर्वोच्चता—1954 ई. के संविधान में देश के विधान-मण्डल अर्थात् 'राष्ट्रीय जन कांग्रेस' (National People's Congress) को सर्वोच्च बनाते हुए देश की सर्वोच्च सत्ता इसमें निहित कर दी गई। देश की अन्य सभी संस्थाओं को इसके अधीन बना दिया गया।

9. आर्थिक एवं सामाजिक उद्देश्यों से युक्त संविधान—चीनी जनवादी गणतंत्र का संविधान न केवल एक संविधान है बल्कि भविष्य का एक राजनीतिक कार्यक्रम (Manifesto or Programme) भी है जिसमें नई सत्ता के आर्थिक एवं सामाजिक उद्देश्यों का समावेश है। संविधान की धारा 4 में घोषित किया गया है कि सांविधानिक प्रणाली के उद्देश्य "शनैः-शनैः शोषण प्रथा का अन्त और एक समाजवादी समाज का निर्माण सुनिश्चित करना है।" संविधान की धारा 5 में उत्पादन के साधनों पर चार प्रकार के स्वामित्व-प्राकृतिक संसाधनों पर राज्य का स्वामित्व, सहकारी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत श्रमिकों का सामूहिक स्वामित्व, श्रमिकों का स्वामित्व तथा पूँजीवादी स्वामित्व की बात को स्वीकार किया गया था। इस तरह यह संविधान देश में समाजवादी व्यवस्था की स्थापना करता था।

10. श्रम का महत्व—1954 के चीनी संविधान में श्रम के महत्व तो स्वीकार किया गया था। संविधान द्वारा यह निश्चित किया गया था कि श्रम प्रत्येक समर्थ व्यक्ति के लिए आदर की वस्तु है। इस तरह संविधान श्रम की महत्ता या गरिमा को प्रतिष्ठित करता था।

11. मूल-अधिकार एवं कर्तव्य—1954 के चीनी संविधान की धारा 85 से 103 तक में नागरिकों के मूल-अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया था। नागरिकों के मूल-अधिकारों में बिना किसी भेदभाव के सबको समान नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार प्रदान किए गए हैं। पुरुषों एवं स्त्रियों के अधिकारों की समानता तथा देश की सभी जातियों के प्रति सम्मान की भावना संविधान द्वारा सुरक्षित की गई है। चीन का प्रत्येक नागरिक, जिसकी आयु 18 वर्ष हो और जिसे देश का कानून आज्ञा देता हो, बिना किसी भेदभाव के मतदान और निर्वाचन का अधिकारी है। भाषण, प्रेस, जलसे या जुलूस तथा प्रदर्शन करने की स्वतन्त्रता का अधिकार संविधान द्वारा सुरक्षित था। किसी भी

व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को छीना नहीं जा सकता है। नागरिक की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को अनुल्लघ्य (Inviolable) माना गया। इसका आशय यह था कि किसी भी व्यक्ति को लोक न्यायालय (People's Court) के निर्णय के बिना अथवा प्रोक्यूरेटरालय (Procuratorate) की अनुमति प्राप्त किये बिना बन्दी नहीं बनाया जा सकता। घर की अनुल्लघ्यता (Inviolability of Home), पत्र-व्यवहार की गोपनीयता और कहीं भी रहने का अधिकार चीन के नागरिकों को प्राप्त है। परन्तु इन सभी अधिकारों की प्राप्ति श्रमिक वर्ग की सम्पन्नता और समाजवादी व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए है।

चीन के प्रत्येक नागरिक को धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार प्राप्त है। वह अपनी इच्छानुसार किसी भी धार्मिक व्यवस्था में विश्वास रख सकता है अर्थात् नागरिकों को धार्मिक उपासना की स्वतन्त्रता प्राप्त थी। सभी धर्मों को समान सुरक्षा दी गई है, किन्तु साथ ही धर्म के विरुद्ध प्रचार करने का भी अधिकार प्रत्येक नागरिक को है।

सविधान के अन्तर्गत सामाजिक एव आर्थिक अधिकारों को स्वाधीनता का मूल आधार माना गया है। अत. इन दोनों प्रकार के अधिकारों पर पर्याप्त बल दिया गया है। चीनी सविधान इस बात की घोषणा करता है कि चीन की जनता को वहाँ का राज्य काम पाने का आश्वासन देगा। अत नियोजित अर्थ-व्यवस्था द्वारा अधिक रोजगार और काम के अवसर उत्पन्न किये गये तथा काम करने की स्थिति में सुधार किया गया। श्रमिकों के लिए काम करने के घण्टे निश्चित किये गये और समुचित अवकाश की व्यवस्था की गई। श्रमिक वर्ग के स्वास्थ्य एवं उनकी योग्यता को बढाने के लिए श्रमिक विश्रामगृहों, खेल-कूद केन्द्रों तथा स्वास्थ्य केन्द्रों आदि की सुविधाएँ दी गईं। चीन के सम्पूर्ण श्रमिक वर्ग के लिए सामाजिक बीमा योजना द्वारा वृद्धावस्था, बीमारी या असमर्थता के दिनों में पर्याप्त सहायता की व्यवस्था की गई। सभी नागरिकों के लिए सुरक्षा की भी व्यवस्था की गई। शैक्षणिक सुविधाओं का भी पर्याप्त रूप से प्रसार किया गया है और प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार प्रदान किया गया कि वह अपनी इच्छानुसार किसी वैज्ञानिक खोज, साहित्यिक एव कलात्मक रचना अथवा किसी सास्कृतिक उद्देश्य की पूर्ति में अपना समय व्यतीत करे। सभी क्षेत्रों में स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार प्रदान किये गये। इसके साथ ही विवाह, घरेलू जीवन, माता और सतति की सुरक्षा का उत्तरदायित्व राज्य अपने पर लेता है। निजी सम्पत्ति और पैतृक सम्पत्ति के उत्तराधिकार का अधिकार भी प्रत्येक नागरिक को प्राप्त है। पूँजीपति उत्पादन के साधनों को अपने अधीन रख सकते हैं, परन्तु सम्पत्ति के इस अधिकार के सम्बन्ध में प्रतिबन्ध यह था कि निजी सम्पत्ति का दुरुपयोग नहीं किया जाएगा और राज्य को ऐसी निजी सम्पत्ति सार्वजनिक लाभ के लिए ले लेने का सदैव अधिकार रहेगा। इस सविधान में चीनी सरकार द्वारा चीन से बाहर रहने वाले चीनियों के अधिकारों की रक्षा करने तथा चीनी नागरिकों को अपने देश के सविधान तथा कानून के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करने का अधिकार प्रदान किया गया। अगर चीन के सविधान में उल्लिखित इन मौलिक अधिकारों की समीक्षा की जाये तो यह कहा जा सकता है कि इनकी प्रकृति बहुत विस्तृत और व्यापक है। इसमें व्यक्तिगत स्वतत्रता से सम्बन्धित अनेक प्रावधान रखे गये हैं। साथ ही चीन की समाजवादी व्यवस्था के अनुरूप ही इन अधिकारों को समाविष्ट किया गया था।

चीन के संविधान की 100 से 103 की धाराएँ नागरिकों के मूल कर्त्तव्यों का उल्लेख करती थीं। इसमें नागरिकों से देश के संविधान तथा कानून के अनुसार जीवनयापन करने, अपने कार्यों को ठीक प्रकार से संपन्न करने, देश में शांति बनाए रखने के लिए सरकार की सहायता करने, सरकार की सम्पत्ति को हाथ न लगाने तथा उसे हड़पने की चेष्टा न करने, देश की सम्पत्ति की रक्षा करने, समुचित रूप से कर चुकाने, अपने देश की रक्षा करने तथा सेना में भर्ती होकर अपने देश की सेवा के लिए बलिदान करने को तैयार रहने की अपेक्षा की गई।

12. सामूहिक कार्यपालिका—चीन के जनवादी गणराज्य में राष्ट्र के प्रधान की कार्यपालिका-सत्ता राष्ट्रीय जन कांग्रेस की स्थायी समिति एवं चीन गणराज्य के राष्ट्रपति (Chairman) में निहित की गई। दोनों ही मिल कर राष्ट्र के प्रधान के कर्त्तव्यों और उसकी शक्तियों का प्रयोग करती थीं। लिउ शाओ ची ने संविधान के प्रारूप पर प्रथम राष्ट्रीय जन कांग्रेस को प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट रूप से कहा था कि, हमारे राष्ट्र का प्रधान सामूहिक है। न तो स्थायी समिति के पास ही और न गणराज्य के चेयरमैन के पास ही राष्ट्रीय जन कांग्रेस से बढ़ कर शक्तियाँ है।

13. न्यायपालिका और प्रोक्यूरेटर जनरल—चीन मे 3 प्रकार के न्यायालयों की व्यवस्था की गई थी—सर्वोच्च जन न्यायालय (Supreme People's Court), स्थानीय जन न्यायालय (Local People's Court) और विशेष जन न्यायालय (Special People's Court)। मुख्य प्रोक्यूरेटर (Chief Procurator) सम्पूर्ण देश में राज्य परिषद् (State Council) के सभी विभागों, राज्य के सभी स्थानीय अगों, व्यक्तियों एवं नागरिकों पर दण्ड सम्बन्धी प्राधिकार का प्रयोग करता था। कानून की रक्षा करना उसी का काम था। प्रशासनिक इकाइयों के विभिन्न स्तरों पर स्थानीय प्रोक्यूरेटरों की व्यवस्था थी। सभी स्थानीय प्रोक्यूरेटर मुख्य प्रोक्यूरेटर के निर्देशन एवं नियन्त्रण में कार्य करते थे।

14. कम कठोर संविधान—यद्यपि चीन का संविधान कठोर था, तथापि राष्ट्रीय जन कांग्रेस (National People's Court) को इस बात का अधिकार दिया गया कि वह इसमें समयानुकूल परिवर्तन कर सके। इस परिवर्तन के लिए जन कांग्रेस के दो-तिहाई सदस्यों का इस पक्ष में होना आवश्यक था। जनता को या स्थानीय काँग्रेस (Local Congress) को संविधान के अन्तर्गत परिवर्तन लाने का कोई अधिकार नहीं था।

15. लोक हितकारी संविधान—चीन का संविधान इस बात की आशा प्रकट करता था कि देश के अन्तर्गत लोकहितकारी शासन-व्यवस्था की स्थापना होगी। देश की कार्यपालिका को जनता की इच्छा पर आधारित रखा गया। संविधान की इच्छा थी कि सरकार और जनता के अन्तर्गत किसी प्रकार का भेदभाव न बरता जाए। इस संबंध में संविधान की धारा 17 की शब्दावली इस प्रकार थी—

राज्य के सब अंगों को जनता के ऊपर निर्भर रहना है, उससे उन्हें निरंतर सम्पर्क रखना है और उसकी सम्पत्ति का ध्यान रखना है। जनता को यह अधिकार है कि सरकार उसके हितों की रक्षा न करे अथवा उसकी इच्छा का तिरस्कार करती है तो वह उसके विरुद्ध अभियोग (Impeachment) लगाएगी।

16. साम्यवादी दल का प्रमुत्व—संविधान की प्रस्तावना में ही यह स्पष्ट कर दिया गया था कि चीन के गणराज्य पर साम्यवादी दल का प्रमुत्व रहेगा । संविधान में साम्यवादी दल की प्रमुत्वपूर्ण स्थिति बनाई गई ।

17. शोषण का उन्मूलक संविधान—1954 ई. के संविधान में यह तथ्य निरूपित किया गया कि चीन शान्तिपूर्ण ढग से शोषण और गरीबी का अन्त करेगा तथा उसके स्थान पर धनधान्यपूर्ण एवं सुखद समाजवादी समाज की स्थापना करेगा ।

18. माओ के विचारों पर आधारित संविधान—सन् 1954 के संविधान पर चीनी नेता माओत्से तुग के सिद्धांतों और विचारों की छाप स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती थी । श्री माओत्से तुग ने ही चीनी क्रान्ति का नेतृत्व किया था । अत संविधान पर उनके चिन्तन का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था ।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर 1954 वाले संविधान को मूल संविधान की संज्ञा दी जा सकती है ।

1975 के संविधान की विशेषताएँ

(Features of Constitution of 1975)

1954 में स्वीकृत संविधान के 20 वर्षों तक कार्य करने के पश्चात् चीन में एक नये संविधान के निर्माण की आवश्यकता अनुभव की गई । चीन-सोवियत संघ संघर्ष, 1966 की सांस्कृतिक क्रान्ति तथा चीन में चलने वाले सत्ता-संघर्ष को इस संविधान की पृष्ठभूमि में देखा जा सकता है । 17 जनवरी, 1975 को चीन की चतुर्थ राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस ने देश के लिए इस नवीन संविधान को स्वीकृति प्रदान की । इस संविधान की प्रमुख विशेषताओं का निम्नानुसार अध्ययन किया जा सकता है—

(1) यह लिखित और अत्यन्त संक्षिप्त संविधान था । इसमें 30 अनुच्छेद थे, जिन्हें 4 अध्यायों में विभक्त किया गया था । इस संविधान में प्रस्तावना का भी प्रावधान था ।

(2) यह संविधान जन-सम्प्रभुता (Popular Sovereignty) के सिद्धान्त पर आधारित था । संविधान के अनुच्छेद 3 में यह स्पष्ट किया गया कि जनवादी चीन की अंतिम सत्ता जनता में निहित होगी ।

(3) इस संविधान के अनुच्छेद 5 से 11 में जनवादी चीन में सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद से मुक्त समाजवादी राज्य की स्थापना करने का प्रावधान था ।

(4) यह संविधान जनवादी चीन में एकात्मक बहुराष्ट्रीय राज्य (Unitary Multinational State) की स्थापना करता था ।

(5) इस संविधान की एक विशेषता यह थी कि इसमें 'एकदलीय शासन' के सिद्धान्त को मान्यता देकर साम्यवादी दल की नेतृत्वकारी भूमिका को स्वीकार किया गया ।

(6) जनवादी चीन के 1975 के संविधान में शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त के लिए कोई स्थान नहीं था ।

(7) जनवादी चीन के इस संविधान के अध्याय 3 के अनुच्छेद 26 से 29 तक मूलाधिकारों तथा कर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया।

(8) जनवादी चीन के 1975 के संविधान की एक अन्य विशेषता 'न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त' को अस्वीकार करना था। न्यायालय को शासन की एक अधीनस्थ शाखा के रूप में ही रखा गया।

(9) यह एक लचीला संविधान था और इसमें 'राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस' सामान्य कानून की तरह ही संशोधन कर सकती थी।

(10) इस नवीन संविधान की एक अन्य विशेषता इसका मार्क्सवाद-लेनिनवाद माओवादी चिन्तन पर आधारित होना था।

(11) 1975 के जनवादी चीन के संविधान में शासन-व्यवस्था के विशिष्ट रूप को स्वीकार किया गया, जो न तो संसदात्मक था और न ही अध्यक्षात्मक। इसमें इन दोनों ही व्यवस्थाओं का सम्मिश्रण करके इसके विशिष्ट रूप का विकास किया गया।

1978 का संविधान और उसकी विशेषताएँ
(Constitution of 1978 and Its Characteristics)

1975 ई. में जनवादी चीन के लिए नया संविधान स्वीकार किया गया था, और केवल 3 वर्षों के बाद ही पंचम राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस द्वारा एक और नये संविधान को अंगीकार किया गया। 5 मार्च, 1978 को राष्ट्रीय जन कांग्रेस द्वारा इस नवीन संविधान को अंगीकार किया गया। इस संविधान की मुख्य विशेषताओं को अग्रानुसार विश्लेषित किया जा सकता है—

(1) 1978 ई. का संविधान एक लिखित संविधान था। इसमें 60 अनुच्छेद थे, जिन्हें प्रस्तावना सहित 5 अध्यायों में विभक्त किया गया था।

(2) 1975 ई. के संविधान की तरह, 1978 ई. का संविधान भी एक लचीला या परिवर्तनशील संविधान था। संविधान में संविधान-संशोधन के लिए विशेष प्रक्रिया को नहीं अपनाया गया। राष्ट्रीय जन कांग्रेस अथवा संसद अपने सामान्य बहुमत से संविधान में संशोधन कर सकती थी।

(3) 1978 ई. के संविधान में 'बहु-राष्ट्रीय राज्य' की अवधारणा को मान्यता देने के बावजूद 'एकात्मक राज्य' (Unitary State) राज्य की अवधारणा को स्वीकार किया गया अर्थात् चीन में एकात्मक राज्य को मान्यता दी गई।

(4) इस संविधान में 'बहुल कार्यपालिका' के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की गई।

(5) इस संविधान में भी 'जन-सम्प्रभुता' (Popular Sovereignty) के सिद्धान्त को मान्यता दी गई।

(6) इस संविधान की एक अन्य विशेषता, संविधान द्वारा जनवादी चीन में 'गणतन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था' की स्थापना की गई।

(7) 1978 ई. के संविधान के अनुच्छेद 1 द्वारा जनवादी चीन में समाजवादी व्यवस्था को शासन व्यवस्था का आधार स्वीकार करते हुए, इसे 'समाजवादी राज्य'

घोषित किया गया। साथ ही यह अनुच्छेद देश में सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को भी मान्यता देता था।

(8) इस नवीन संविधान में भी एक दलीय शासन-व्यवस्था के सिद्धांत को अंगीकार करते हुए साम्यवादी दल की 'प्रमुत्वपूर्ण' स्थिति को मान्यता दी गई।

(9) 1978 ई. के संविधान में शक्ति-पृथकरण के सिद्धान्त को कोई स्थान नहीं था।

(10) इस संविधान में भी नागरिकों के मूलाधिकारों और कर्तव्यों को स्वीकार किया गया था।

वर्तमान संविधान की मुख्य विशेषताएँ

(The Chief Characteristics of the Present Constitution)

4 दिसम्बर, 1982 को जनवादी चीन का राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस ने एक बार पुनः नये संविधान को स्वीकृत किया, जिसे '1982 का संविधान' या वर्तमान संविधान की संज्ञा दी जाती है। देश के सर्वकालिक शक्तिशाली नेता माओत्सेतुंग के देहावसान के बाद देश में जो नवीन परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं, उनके परिप्रेक्ष्य में इस संविधान को अंगीकार किये जाने का विशेष महत्व है।

इस नवीन संविधान की मुख्य विशेषताओं को निम्नलिखित रूप से विश्लेषित किया जा सकता है—

(1) **लिखित संविधान (Written Constitution)**—जनवादी चीन का संविधान एक लिखित संविधान है। इसमें 138 अनुच्छेद हैं। संविधान की प्रस्तावना का भी उल्लेख किया गया है। सारे संविधान को चार अध्यायों में विभाजित किया गया है। संविधान में शासन-व्यवस्था के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। नवीन संविधान पूर्ववर्ती संविधानों की तरह ही एक लिखित दस्तावेज है।

(2) **पूर्व संविधानों की तुलना में व्यापक संविधान (It's a Wider Constitution in Comparison to Previous Constitution)**—1982 का जनवादी चीन का संविधान पूर्ववर्ती संविधानों की तुलना में व्यापकता लिए हुए है। यहाँ 1954 के संविधान में 105 अनुच्छेद, 1975 के संविधान में 30 अनुच्छेद तथा 1978 के संविधान में 60 अनुच्छेद थे, वहां 1982 के संविधान में 138 अनुच्छेद हैं, जो इसकी व्यापकता का परिचायक हैं। इसके बावजूद भी जनवादी चीन का संविधान भारतीय संविधान की तुलना में कहीं अधिक छोटा या संक्षिप्त स्वरूप लिए हुए है।

(3) **लचीला संविधान (Flexible Constitution)**—संविधान के अनुच्छेद 64 में संशोधन प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है जिसके अनुसार संविधान में संशोधन का प्रस्ताव राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस की स्थायी समिति द्वारा या राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के 115 सदस्यों द्वारा प्रस्तावित किया जाना चाहिए तथा यह प्रस्ताव राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के कुल सदस्यों के 2/3 बहुमत या दो-तिहाई बहुमत से स्वीकृत होना चाहिए। इस प्रावधान से सिद्धांत में तो यह प्रतीत होता है कि यह संविधान संशोधन प्रणाली दुष्परिवर्तनशील है। लेकिन व्यवहार में ऐसा नहीं है। जनवादी चीन जैसी एकदलीय

व्यवस्था में राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के दो-तिहाई बहुमत को प्राप्त करना कोई कठिन कार्य नहीं है। अतः यह एक लचीला संविधान ही माना जायेगा।

(4) नागरिकों के मूल-अधिकार तथा कर्त्तव्य (The Fundamental Rights and Duties of the Citizens)—पूर्ववर्ती संविधानों की तरह ही 1982 के संविधान में भी चीनी नागरिकों के मूल-अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया है। इस संविधान के अध्याय 2 तथा अनुच्छेद 33 से 56 तक इनका उल्लेख किया गया है। प्रमुख मूल-अधिकारों में—चुनाव लड़ने तथा मत देने का अधिकार, धार्मिक विश्वास की स्वतन्त्रता, कानून के समक्ष समानता, आलोचना करने का अधिकार, शिक्षा पाने का अधिकार, विश्राम तथा अवकाश पाने का अधिकार, काम पाने या रोजगार प्राप्त करने का अधिकार, वृद्धावस्था तथा शारीरिक अक्षमता की स्थिति में भरण-पोषण प्राप्त करने का अधिकार तथा पुरुषों के समान ही महिलाओं को अधिकारों को मान्यता जैसे अधिकारों को मान्यता दी गई है। सिद्धान्त में तो ये मूल-अधिकार पाश्चात्य लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं में नागरिकों को प्राप्त मूल-अधिकारों से भी अधिक व्यापकता लिए हुए हैं, लेकिन व्यवहार में साम्यवादी दल की तानाशाही के सम्मुख ये अर्थहीन ही प्रतीत होते हैं। जब भी लोकतान्त्रिक अधिकारों के लिए जनता ने आवाज उठाई, उसे बुरी तरह से कुचल दिया गया। अतः इन मूल-अधिकारों का केवल सैद्धान्तिक तथा प्रतीकात्मक महत्त्व ही है।

जनवादी चीन का यह नया संविधान नागरिकों के लिए विभिन्न मौलिक कर्त्तव्यों या मूल कर्त्तव्यों (Fundamental Duties) की भी व्यवस्था करता है। इन मूल-कर्त्तव्यों में राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को बनाये रखने, संविधान तथा देश की विधि का पालन करने, मातृभूमि की सुरक्षा करने तथा उसकी प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रखने तथा उसकी रक्षा के लिए सैनिक सेवा प्रदान करने तथा करों का भुगतान करने को सम्मिलित किया गया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि संविधान मूल-अधिकारों के स्थान पर मूल-कर्त्तव्यों पर अधिकार बल देता है।

(5) जन-सम्प्रभुता तथा जनवादी गणतन्त्र (Popular Sovereignty and People's Republic)—1982 के संविधान में जन-सम्प्रभुता के सिद्धांत को स्थान देकर देश में जनवादी गणतन्त्र की स्थापना की गई है। इसका मूल सार यह है कि देश की अंतिम शक्ति तथा सत्ता जनता में निहित है, जो राष्ट्रीय जन कांग्रेस के माध्यम से अपनी शक्ति या सत्ता का प्रयोग करती है। इस तरह संविधान में जन-सम्प्रभुता को मान्यता दी गई है। इसका अर्थ यह है कि शासन की अन्तिम शक्ति साम्यवादी जनता में निहित है।

(6) साम्यवादी दल की केन्द्रीय भूमिका (The Central Role of the Communist Party)—साम्यवादी सिद्धान्तों के अनुरूप जनवादी चीन में साम्यवादी दल को शासन-व्यवस्था की धुरी बनाया गया है। यद्यपि संविधान में नागरिकों को अन्य राजनीतिक दलों के गठन करने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है, तथापि साम्यवादी दल को शासन-व्यवस्था में केन्द्रीय स्थान प्रदान किया गया है। इस तथ्य का पता इस बात से ही लगता है कि संविधान की प्रस्तावना में ही साम्यवादी दल की भूमिका की प्रशंसा की गई है। देश की अन्य सभी संस्थाएँ-कार्यपालिका, व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका

साम्यवादी दल के अधीन रहकर भी कार्य करते हैं। साम्यवादी दल ही सब कुछ है, साम्यवादी दल के बाहर कुछ नहीं।

(7) एकात्मक राज्य (Unitary State)—पूर्ववर्ती संविधानों की तरह ही 1982 के संविधान में भी जनवादी चीन को 'एकात्मक राज्य' (Unitary State) बनाया गया है, जिसका आशय यह है कि देश की शासन-व्यवस्था एक ही 'केन्द्र या इकाई' द्वारा संचालित होती है। शासन का सुचारु रूप से संचालन करने की दृष्टि से सम्पूर्ण देश को 4 इकाइयों में विभाजित किया गया है। इन इकाइयों की पृथक् से कोई शक्ति नहीं है, इन्हें केन्द्र द्वारा शक्तियाँ प्रदान की जाती हैं। इस तरह से चीन में संघात्मक व्यवस्था के आदर्श को अस्वीकार किया गया है।

(8) समाजवादी राज्य (Socialist State)—नया संविधान जनवादी चीन में 'समाजवादी राज्य' (Socialist State) की स्थापना करता है। देश में समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। यद्यपि कुछ वर्षों से देश में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था (Mixed Economy) की ओर रुझान बढ़ता जा रहा है। चीन की अर्थव्यवस्था भी विश्व व्यापी उदारीकरण की प्रक्रिया से अप्रभावित नहीं रह सकी है।

(9) लोकतान्त्रिक अधिनायकत्व (People's Dictatorship)—संविधान का प्रथम अनुच्छेद ही जनवादी चीन में लोकतान्त्रिक अधिनायकत्व या तानाशाही का प्रतिपादन करता है। इसमें किसानों और श्रमिकों के अधिनायकत्व या तानाशाही को मान्यता दी गई है। ये पूँजीपतियों तथा जमींदारों पर अपना अधिनायकत्व स्थापित करके लोकतान्त्रिक व्यवस्था को अक्षुण्ण रखते हैं।

(10) राष्ट्रपति पद की पुनर्स्थापना (Re-establishment of the Office of the President)—1978 के संविधान में राष्ट्रपति पद को समाप्त कर दिया गया था, लेकिन 1982 के प्रस्तावित संविधान में इस पद को पुनर्स्थापित किया गया। राष्ट्रपति को जनवादी चीन के राष्ट्राध्यक्ष का दर्जा प्रदान किया गया। राष्ट्रपति के साथ-साथ उप-राष्ट्रपति पद की भी पुनर्स्थापना की गई।

(11) मार्क्सवाद, लेनिनवाद तथा माओवाद (Marxism, Leninism and Maoism)—जनवादी चीन के नये संविधान में मार्क्सवाद, लेनिनवाद तथा माओवाद के सिद्धान्तों को स्थान दिया गया है, और ये सिद्धांत इस संविधान के वैचारिक आधार (Ideological Basis) हैं।

(12) बहु-राष्ट्रीय राज्य की स्थापना (Establishment of the Multi-National State)—जनवादी चीन एक विशाल देश है, जिसमें विविध प्रकार की राष्ट्रीयताओं का निवास है। यहाँ कुल 56 राष्ट्रीयताओं के लोग निवास करते हैं। नवीन संविधान में इन राष्ट्रीयताओं को अपनी भाषा, लिपि तथा संस्कृति के विकास करने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है।

(13) केन्द्रीय सैनिक आयोग की स्थापना (The Establishment of the Central Military Commission)—1982 के इस नवीन संविधान में केन्द्रीय सैनिक आयोग की स्थापना की गई है। इस आयोग का मुख्य उत्तरदायित्व देश की सेवाओं को वांछित

निर्देश देना है। नवीन संविधान में यह एक नूतन प्रवृत्ति थी। पूर्ववर्ती संविधानों में इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं थी।

(14) न्यायपालिका की कमजोर स्थिति (The Weak Position of the Judiciary)—जनवादी चीन के इस नवीन संविधान में न्यायपालिका की स्थिति बहुत कमजोर है। इसे न तो संविधान की व्याख्या करने का ही अधिकार है, और न ही यह नागरिकों के मूल अधिकारों की ही रक्षा कर सकती है। जनवादी चीन की न्यायपालिका को संविधान विरोधी कानूनों को निरस्त करने का भी अधिकार प्राप्त नहीं है। किसी भी देश की न्यायपालिका को संविधान की व्याख्या करने, नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा करने तथा संविधान विरोधी कानूनों को निरस्त किये जाने सम्बन्धी अधिकार प्रदान किये जाते हैं, जिनसे जनवादी चीन की न्यायपालिका को वंचित किया जाना इसकी कमजोर स्थिति का स्पष्ट परिचायक है। न्यायपालिका के स्वतन्त्र अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं किया गया है, और इसे देश की संसद अर्थात् राष्ट्रीय जन कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी बना दिया गया है।

(15) विदेश नीति के सिद्धान्तों का समावेश (Including of the Principles of Foreign Policy)—जनवादी चीन के इस नवीन संविधान में देश की विदेश नीति के मूल सिद्धान्तों का समावेश किया गया है। इन मूल सिद्धान्तों में—साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद का विरोध, शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व, राष्ट्रीय हितों का संरक्षण, पंचशील के सिद्धान्त तथा विश्व शान्ति जैसे सिद्धान्तों का समावेश किया गया है। पूर्ववर्ती संविधानों में इस प्रकार का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया था।

सारांश में, जनवादी चीन का संविधान देश को समाजवादी राज्य के रूप में स्थापित करता है तथा साम्यवादी दल को देश की राजनीतिक व्यवस्था में केन्द्रीय स्थिति प्रदान करता है।

38

जनवादी चीन की व्यवस्थापिका : राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस

(Legislature of the People's Republic of China : The National People's Congress)

1982 ई. के संविधान का अनुच्छेद 57 राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस (National People's Congress) को राज्य की सत्ता का सर्वोच्च अभिकरण घोषित करता है। जनवादी चीन के संविधान में 'व्यवस्थापिका की सर्वोच्चता' के सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस को देश में एकमात्र विधायी निकाय घोषित किया गया है, लेकिन यह व्यवस्थापिका से कुछ और अधिक है। इसकी शक्तियाँ बहुमुखी हैं जो राज्य के समस्त क्रिया-कलापों को सम्मिलित करती है।

रचना एवं संगठन
(Composition and Organisation)

संसार के अन्य लोकतन्त्रात्मक राज्यों के समान चीन में राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस का स्वरूप द्वि-सदनात्मक नहीं है। इसका स्वरूप एकसदनात्मक ही है। जनवादी कांग्रेस का स्वरूप 1954, 1975, 1978 तथा 1982 के नवीन संविधान में भी एकसदनात्मक ही था। 1982 के संविधान के अनुच्छेद 59 में राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस की रचना और संगठन का उल्लेख किया गया है। राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के सदस्यों का निर्वाचन प्रान्तों, स्व-शासित प्रदेशों, केन्द्रीय सत्ता की प्रत्यक्ष अधीनता वाली नगरपालिकाओं और सशस्त्र सेनाओं द्वारा किया जाता है।

राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के प्रतिनिधियों का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है। चीन का प्रत्येक नागरिक, जिसकी आयु 18 वर्ष हो चुकी हो और जिसे कानून आज्ञा देता हो, इच्छानुसार मतदान कर सकता है और चुनाव लड़ सकता है। चुनाव में पागल व्यक्तियों और उन साम्राज्यवादी सामन्तों तथा नौकरशाही पूँजीवादी लोगों को जिन्हें नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं है, भाग लेने का अधिकार प्राप्त नहीं है। मत देने और चुनाव लड़ने के लिए स्त्रियों को समान अधिकार प्रदान किया गया है।

राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस विश्व की सबसे बड़ी व्यवस्थापिका है। इसकी सदस्य संख्या परिवर्तनशील है। इसकी वर्तमान सदस्य संख्या 1 हजार से भी अधिक है। इसके सदस्यों को 'डेपुटी' (Deputy) या प्रतिनिधि कहा जाता है। यहा यह उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के सदस्य पूर्णकालिक राजनीतिज्ञ (Whole-time Politicians)

नहीं होते हैं। वे अपने दैनिक जीवन में विभिन्न प्रकार के उत्पादन कार्यों में लगे रहते हैं और निर्वाचित होने के बाद भी अपना काम नहीं छोड़ते। जनता के साथ उनका गहरा और निरन्तर सम्पर्क बना रहता है। राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के सदस्य कांग्रेस में अवरोध या अड़ंगेबाजी लगाकर व्यवधान उपस्थित नहीं करते हैं। अपने प्रत्येक कार्य के लिए अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्र की जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

कार्यकाल
(Term)

1982 के संविधान के अनुच्छेद 60 के अन्तर्गत राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के सदस्यों के कार्यकाल का उल्लेख किया गया है। इसके अनुसार जनवादी राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्यों या प्रतिनिधियों को 5 वर्ष के लिए निर्वाचित किया जाता है। कांग्रेस की अवधि समाप्त होने से 2 माह पूर्व ही इसका नया चुनाव सम्पादित कराया जाता है। लेकिन यदि संकटकालीन अवस्था में यदि नए चुनाव समव न हों तो पुरानी राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस की अवधि को ही नई कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन तक बढ़ाया जा सकता है। राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस की स्थायी समिति को ही यह चुनाव सम्पन्न कराने का अधिकार है।

अधिवेशन
(Conference)

1982 के संविधान के अनुच्छेद 61 में राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के अधिवेशन बुलाये जाने की व्यवस्था का उल्लेख किया गया है। इसकी स्थायी समिति ही इसके अधिवेशन को वर्ष में कम से कम एक बार अवश्य आमन्त्रित करती है। यदि आवश्यक हो तो संविधान के अनुच्छेद 61 के अनुसार स्थायी समिति राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस का विशेष अधिवेशन भी बुला सकती है।

राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के सदस्यों के विशेषाधिकार
(Previleges)

राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के सदस्यों को कतिपय विशेषाधिकार भी प्राप्त होते हैं। इसके सदस्य राज्य परिषद् अथवा राज्य परिषद् के मन्त्रालय एवं आयोगों से प्रश्न पूछ सकते हैं, जिनका उत्तर दिया जाना आवश्यक है। इसके सदस्यों को कांग्रेस की अनुमति के बिना न तो गिरफ्तार किया जा सकता है और न ही उन पर मुकदमा चलाया जा सकता है। बैठक के भीतर भी किसी भी सदस्य के विरुद्ध तब तक कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती जब तक स्थायी समिति उसके लिए आज्ञा प्रदान न करे। राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के सदस्यों के ये विशेषाधिकार या उन्मुक्तियाँ लोकतान्त्रिक देशों की व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों के अनुरूप ही हैं।

शक्तियाँ और कार्य
(Powers and Functions)

1982 के संविधान में राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस को व्यापक शक्तियाँ तथा कार्य सौंपे गये हैं। सम्पूर्ण चीन के लिए कानून बनाने का अधिकार इसी कांग्रेस को है। इसकी व्यवस्थापिका शक्ति पर किसी भी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। साधारण कानून

कांग्रेस के सदस्यों के साधारण बहुमत से पारित किए जाते हैं। राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस को संविधान में संशोधन करने का भी अधिकार प्रदान किया गया है। संविधान में संशोधन के लिए राष्ट्रीय इसके कुल प्रतिनिधियों के दो-तिहाई बहुमत का होना आवश्यक है। यही संविधान के परिपालन की देखरेख भी करती है।

राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस को कई प्रकार की समितियाँ बनाने का अधिकार है जिसमें प्रमुख हैं—राष्ट्रीयताओं की समिति (Nationalities Committee), विधेयक समिति (Bill Committee), बजट समिति (Budget Committee), आदि। जब कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा होता है तब राष्ट्रीयताओं की समिति (Nationalities Committee) स्थायी समिति (Standing Committee) के अधीन कार्य करती हैं। विशेष कार्यों के लिए विशेष समितियों की स्थापना की जाती है। सरकार के विभिन्न विभागों का कर्तव्य है कि वे समितियों को वे सभी सूचनाएँ प्रदान करें जो उनके कार्यों के लिए आवश्यक और वाछनीय हों।

राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस को निर्वाचन सम्बन्धी महत्वपूर्ण शक्तियाँ भी प्राप्त हैं। यह चीनी जनवादी गणराज्य के राष्ट्रपति (President) तथा उप-राष्ट्रपति (Vice-President), सर्वोच्च जन न्यायालय के अध्यक्ष (The President of the Supreme Court) तथा सर्वोच्च जन प्रोक्यूरेटरालय के मुख्य प्रोक्यूरेटर (The Chief Procurater of the Supreme People's Procuratorate) का निर्वाचन करती है। राष्ट्रपति की सिफारिश पर राज्य परिषद् (State Council) के प्रधान अर्थात् प्रधानमंत्री के चयन तथा प्रधानमंत्री की सिफारिश पर राज्य परिषद् के अन्य सह सदस्यों के चयन के सबंध में राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस को निर्णय लेने का अधिकार है। यह राष्ट्रीय सैनिक आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों का निर्वाचन करती है। राष्ट्रीय जनवादी काग्रेस अपनी स्थाई समिति (Standing Committee) का भी निर्वाचन करती है, जो कि व्यवस्थापिका का ही एक लघु रूप (Miniature) है।

राष्ट्रीय जनवादी काग्रेस को देश के महत्वपूर्ण पदाधिकारियों—राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री एवं उप प्रधानमन्त्रियों, मन्त्रियों, आयोगों के प्रधानों, राज्य परिषद् के महासचिवों, स्थायी समिति के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष, सर्वोच्च जनवादी न्यायालय के अध्यक्ष तथा प्रोक्यूरेटर जनरल इत्यादि को पद-च्युत करने की भी शक्ति प्राप्त है।

राष्ट्रीय जनवादी काग्रेस की वित्तीय शक्तियों का उल्लेख भी संविधान में किया गया है। यही बजट को पारित करने तथा उसमें संशोधन करने का कार्य करती है। वित्तीय प्रतिवेदों की जाँच करना, आर्थिक योजनाएँ बनाना तथा बजट समिति का निर्माण करना राष्ट्रीय जनवादी काग्रेस का ही कार्य है। जनता पर कर लगाना और उन्हें वसूल करने के लिए नियम बनाना राष्ट्रीय जनवादी काग्रेस के क्षेत्राधिकार में आते हैं।

राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस दूसरे देशों में कूटनीतिक प्रतिनिधियों की नियुक्ति करने और उन्हें वापस बुलाने जैसे प्रश्नों पर भी निर्णय करती है। इसके द्वारा अपनी प्रशासनिक शक्तियों के बल पर स्थाई समिति एवं राज्य परिषद् (मन्त्रिमण्डल) के कार्यों की देख-रेख भी की जाती है। राष्ट्रीय जनवादी काग्रेस को राज्य परिषद् के उन निर्णयों और आदेशों को रद्द करने का अधिकार है जो संविधान, विधियों तथा आज्ञप्तियों का उल्लंघन करते हों। यह प्रान्तों, स्वायत्त प्रदेशों एवं केन्द्र-शासित नगरपालिकाओं के अधिकृत अधिकारियों द्वारा किए गए असंगत (In-appropriate) निर्णयों को रद्द या संशोधित कर सकती है।

युद्ध और शान्ति के प्रश्न का निर्णय राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस द्वारा ही किया जाता है। इसे सामान्य राज्य-क्षमा (General Amnesty) प्रदान करने की भी शक्ति प्रदान की गई है। संविधान ने राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस को ऐसे कार्य और अधिकार प्रदान करके जिन्हें यह आवश्यक समझती हो।

राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस की उपर्युक्त शक्तियों तथा कार्यों का अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान ने इस संस्था को सर्वशक्तिमान बनाते हुए इसे असीमित अधिकार प्रदान किये हैए। राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस केवल वैचारिक संस्था ही नहीं है, अपितु सम्पूर्ण देश पर इसका वास्तविक शासन है। लेकिन व्यवहार में, राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस अपने स्वरूप की विशालता के कारण स्वयं प्रभावशाली संस्था का कार्य नहीं कर सकती है और सभी निर्णय इसकी स्थायी समिति द्वारा संपन्न किये जाते हैं जो कि इसके प्रति उत्तरदायी होती है। यह भी वास्तविकता है कि यह स्थायी समिति भी चीन के साम्यवादी दल के पोलिट ब्यूरो के अनुरूप ही कार्य करती है। इस तरह से साम्यवादी दल ही देश की सर्वोच्च नियामक शक्ति है।

राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस की स्थायी समिति

(The Standing Committee of the National People's Congress)

चीन का संविधान राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस को राज्यसत्ता का सबसे बड़ा अंग स्वीकार करता है और साथ ही इस कांग्रेस को असीम शक्तियाँ एवं अधिकार प्रदान करता है। परंतु आकार में जनवादी कांग्रेस विशालता लिए हुए है, साथ ही इसके सत्र अत्यन्त अल्पकालिक होते हैं, अतः इसके लिए। यह सर्वथा असम्भव है कि संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियों और अधिकारों को यह प्रभावशाली रूप में क्रियान्वित कर सके। इस परिस्थिति का समाधान करने के लिए चीनी संविधान निर्माताओं ने राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के सदस्यों की एक स्थायी समिति (Standing Committee) की व्यवस्था की है। यह एक स्थायी संस्था है, और जब जनवादी कांग्रेस का अधिवेशन नहीं हो रहा होता है तो उसके सभी कार्यों का निर्वाह करती है।

इस स्थायी समिति का निर्वाचन राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस करती है और वैधानिक दृष्टि से यह उसके प्रति उत्तरदायी है। संविधान की धारा 65 में उल्लिखित है कि, "स्थाई समिति राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी है और उसके समक्ष अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है।" साथ ही राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस को अपने स्थाई समिति के सदस्यों को वापिस बुलाने (Recall) का अधिकार भी है। स्थाई समिति जन कांग्रेस द्वारा निर्वाचित अग्रलिखित सदस्यों से निर्मित होती है—चेयरमैन, वाइस चेयरमैन, महासचिव एवं अन्य सदस्य। स्थायी समिति का कार्यकाल जन कांग्रेस के समकालीन है, किन्तु इस विषय में प्रतिबन्ध यह है कि एक कांग्रेस द्वारा निर्वाचित स्थाई समिति अपने अधिकार एवं अपनी शक्तियों का प्रयोग दूसरे राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस द्वारा अन्य स्थाई समिति का निर्वाचन किए जाने के दिन तक करती है।

शक्तियाँ एवं कार्य—संविधान के अनुच्छेद 67 में इसकी शक्तियों का उल्लेख किया गया है। राष्ट्रीय जन कांग्रेस की स्थायी समिति अपने जनक निकाय (राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस) की भाँति विस्तृत शक्तियों का प्रयोग करती है। इसकी कुछ शक्तियाँ

प्रक्रियात्मक (Procedural) आचरण की हैं । अतः इसे जन कांग्रेस के प्रतिनिधियों का चुनाव सम्पादित करने एवं जन कांग्रेस का आह्वान (Convene) करने की शक्ति प्राप्त है। यह विधायी शक्तियों को भी प्रयुक्त करती है क्योंकि इसे आज्ञप्तियाँ (Decrees) जारी करने का अधिकार है जिनका व्यवहारतः इतना ही प्रभाव होता है जितना कि जनवादी कांग्रेस द्वारा पारित कानूनों का । स्थायी समिति विदेशों के साथ की गई संधियों पर स्वीकृति या अस्वीकृति प्रदान करने का निर्णय भी लेती है।

स्थाई समिति की कार्यकारी शक्तियाँ भी बड़ी व्यापक और विस्तृत हैं। जब राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस का सत्र नहीं हो रहा होता है तो यह स्थायी समिति ही उप-प्रधान, मंत्री, आयोगाध्यक्षों अथवा राज्य-परिषद् के प्रधान सचिव को नियुक्त करने तथा उसे हटाने के लिए अधिकृत है। यही समिति सर्वोच्च न्यायालय के उप-प्रधान, न्यायाधीश, सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक समितियों के अन्य सदस्यों, प्रमुख न्यायाधीश एवम् प्रोक्यूरेटरालय की समिति के सदस्यों को नियुक्त करने और हटाने का अधिकार रखती है। यही दूसरे देशों में अपने राजदूत भेजने और उन्हें वापिस बुलाने के प्रश्नों का निर्णय करती है, विदेशों के साथ किसी भी प्रकार की संधियों का अनुसमर्थन और उनके निराकरण का निर्णय करती है तथा राज्य परिषद् के कार्य की देख-रेख करती है। प्रान्तीय स्वायत्त क्षेत्रों और केन्द्रशासित नगरपालिकाओं की सरकारी प्राधिकरणों द्वारा बनाए गए किसी भी अनुचित नियम को संशोधित करने अथवा रद्द करने का अधिकार भी संविधान द्वारा इस स्थायी समिति को दिया गया है। राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस का सत्र न होने के दिनों में यदि देश पर सशस्त्र आक्रमण हो जाए या होने की संभावना हो तो यह समिति युद्ध की घोषणा करने अथवा पारस्परिक सुरक्षा की किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय संधि की पूर्ति करने तथा युद्ध की घोषणा करने के लिए अधिकृत है। इस समिति को अधिकार है कि यह पूर्ण अथवा आंशिक लामबन्दी (Mobilisation) का आदेश दे सके और देश के किसी भाग अथवा सम्पूर्ण देश में मार्शल लॉ की घोषणा कर सके।

उपर्युक्त शक्तियों के अतिरिक्त स्थायी समिति को महत्वपूर्ण न्यायिक अधिकार भी प्राप्त हैं जिनके अनुसार इसे न केवल कानूनों के निर्वाचन करने की ही शक्ति प्रदान की गई है बल्कि यह सर्वोच्च जन न्यायालय एवम् सर्वोच्च जन प्रोक्यूरेटरालय के कार्य का भी निरीक्षण करती है। इस समिति को राज्य की रक्षा करने या किसी नागरिक, सैनिक और कूटनीतिक अथवा अन्य सम्मान, पुरस्कार, उपाधियाँ या पदक आदि देने का विशेषाधिकार भी प्राप्त है। राज्य परिषद् के ऐसे आदेश और निर्णय जो संविधान की किसी व्यवस्था या अधिनियम आदि का विरोध करते हों, इस स्थाई समिति द्वारा रद्द किए जा सकते हैं।

साराशतः राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस की स्थायी समिति का क्षेत्राधिकार अत्यन्त व्यापक तथा विशाल है।

39

जनवादी चीन की कार्यपालिका : राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, राज्य परिषद् और प्रधानमन्त्री

(The Executive of the People's Republic of China : The President, the Vice-President, The State Council and The Prime Minister)

जनवादी चीन में राष्ट्रपति, उप राष्ट्रपति, राज्य परिषद् तथा प्रधानमन्त्री देश की कार्यपालिका का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन संस्थाओं द्वारा ही देश की कार्यकारी अथवा कार्यपालक शक्तियों का प्रयोग किया जाता है।

जनवादी चीन का राष्ट्रपति

(The President of the People's Republic of China)

जनवादी चीनी गणतन्त्र के अध्यक्ष को राष्ट्रपति कहा जाता है। 1954 ई. के संविधान में इसे 'चैयरमैन' कहा जाता था। 1975 ई. के संविधान में 'चैयरमैन' के पद को समाप्त कर दिया गया था, लेकिन 1982 ई. के इस नवीन संविधान में राष्ट्रपति पद को पुनर्स्थापित किया गया।

निर्वाचन (Elections)

1982 ई. के संविधान के अनुच्छेद 79 के अनुसार जनवादी चीन के राष्ट्रपति का निर्वाचन राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस द्वारा किया जाता है। इसका कार्यकाल 5 वर्ष का है। राष्ट्रपति का पुनर्निर्वाचन भी हो सकता है। लेकिन कोई भी राष्ट्रपति दो कार्यकाल से अधिक के लिए निर्वाचित नहीं हो सकता। राष्ट्रपति पद के प्रत्याशी के लिए 45 वर्ष की आयु निर्धारित की गई है।

शक्तियाँ तथा कार्य (Powers and Functions)

1982 ई. के संविधान में राष्ट्रपति को व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। दीर्घकाल तक अस्वस्थता के कारण यदि राष्ट्रपति कार्य करने में अक्षम हो जाये तो उसकी अनुपस्थिति में उपराष्ट्रपति (Vice President) ही राष्ट्रपति के कार्यों को संपन्न करता है। साथ राष्ट्रपति का पद रिक्त हो जाने पर वही राष्ट्रपति बन जाता है।

राज्य के प्रधान की समस्त शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित होती हैं। राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस अथवा इसकी स्थायी समिति के निर्णयों को लागू करने में वह कानून और

आज्ञप्तियाँ जारी करता है। प्रधानमंत्री, उप-प्रधानमंत्री, मंत्री, आयोगों के अध्यक्षों राज्य परिषद् के प्रधान सचिव आदि को वही नियुक्त तथा पद-च्युत करता है। वही राज्यगत सम्मान, पदक एवम् प्रतिष्ठा की उपाधियाँ प्रदान करता है, सामान्य क्षमा की उद्घोषणा भी करता है और क्षमा प्रदान करता है, मार्शल लॉ तथा युद्ध की घोषणा करता है एवम् सक्रिय सैनिक हस्तक्षेप की आज्ञा दे सकता है।

जनवादी चीन का राष्ट्रपति ही वैदेशिक मामलों में अपने देश का प्रतिनिधित्व करता है तथा विदेशी राजदूतों का स्वागत करता है। उसके द्वारा ही अन्य देशों में अपने देश के राजदूतों को नियुक्त करने तथा वापस बुलाने के अधिकार का प्रयोग किया जाता है। विदेशों के साथ की गई सन्धियों की पुष्टि करना भी राष्ट्रपति का कार्य है। राष्ट्रपति ही चीन की सशस्त्र सेनाओं का प्रधान सेनापति होता है।

राष्ट्रपति की वास्तविक स्थिति (Real Position of President)

सैद्धान्तिक रूप से चीन का राष्ट्रपति राष्ट्र का प्रधान है, तथा उसे संविधान द्वारा व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गई है। लेकिन व्यवहार में जनवादी चीन का राष्ट्रपति मात्र एक वैधानिक अधिकारी है, जिसकी स्वतन्त्र रूप में कोई शक्ति नहीं है। वास्तविक शक्ति तो राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस की स्थायी समिति में निहित है। इस तरह से राष्ट्रपति तो वैधानिक रूप से नाममात्र का अधिकारी है जो स्वतन्त्र रूप में कुछ नहीं कर सकता। लेकिन व्यवहारतः राष्ट्रपति पद पर साम्यवादी दल के शीर्षस्थ नेता प्रतिष्ठित होते रहे हैं। अतः राष्ट्रपति की राज्य के नीति-निर्माण में अहम भूमिका रहती है। निष्कर्षतः सैद्धान्तिक रूप में वह केवल नाममात्र का शासक है, परन्तु इस पद की शक्ति व्यवहारतः उस व्यक्ति के व्यक्तित्व पर निर्भर करती है जो इस पद को धारण करता है।

उपराष्ट्रपति
(Vice-President)

1954 के संविधान की तरह ही 1982 के संविधान में भी उपराष्ट्रपति पद की व्यवस्था है। राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस उपराष्ट्रपति का निर्वाचन करती है। इस पद के लिए भी वही योग्यताएँ निर्धारित की गई हैं, जो राष्ट्रपति के लिए आवश्यक मानी जाती हैं। उसका कार्यकाल भी पाँच वर्ष का है। उपराष्ट्रपति का मुख्य कार्य राष्ट्रपति को उसके कार्यों के सम्पादन में सहायता देना है। राष्ट्रपति की अनुपस्थिति, अक्षमता तथा अस्वस्थता की स्थिति में भी वह राष्ट्रपति के समस्त दायित्वों का निर्वाह करता है। संविधान के अनुच्छेद 84 के अनुसार यदि राष्ट्रपति अपने पद से त्यागपत्र दे दे तो उपराष्ट्रपति को राष्ट्रपति पद की शपथ दिलाई जाती है। इस तरह उपराष्ट्रपति की संवैधानिक तथा संस्थागत स्थिति भी पाश्चात्य देशों की तरह ही है।

राज्य परिषद्
(State Council)

जनवादी चीन की राज्य परिषद् (State Council) मोटे रूप में अन्य देशों की मंत्रिपरिषद् (Council of Ministers) के समान है। इसे 'केन्द्रीय जनवादी सरकार' (Central People's Government) की भी संज्ञा दी जाती है। नये संविधान के

अनुच्छेद 85 में भी राज्य परिषद् को 'केन्द्रीय जनवादी सरकार' की संज्ञा देकर उसे राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस तथा उसकी स्थायी समिति के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है।

राज्य परिषद् की रचना तथा संगठन
(Composition and Organisation)

राज्य परिषद् में प्रधानमंत्री, अनेक उप-प्रधानमंत्री, विभिन्न मन्त्री, आयोगों के अध्यक्ष एवं महासचिव (General Secretary) तथा स्टेट कौंसिलर सम्मिलित होते हैं। प्रधानमंत्री की सिफारिश पर राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस और उसकी स्थायी समिति (यदि कांग्रेस का अधिवेशन न हो रहा हो) मन्त्रालयों और आयोगों की सख्या में या तो वृद्धि कर सकती है या घटा सकती है। मन्त्रालय प्रभारी मंत्री होता है और उसे सहायता देने के लिए कुछ उप-मन्त्री (Deputy Ministers) होते हैं। आवश्यकतानुसार कुछ अन्य सहायक मंत्री भी नियुक्त किये जा सकते हैं। राज्य परिषद् का कार्यकाल 5 वर्ष का है। यदि राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के कार्यकाल में वृद्धि की जाती है तो राज्य परिषद् के कार्यकाल में भी उसी अनुरूप वृद्धि की जाती है।

शक्तियाँ तथा कार्य (Powers and Functions)

1982 के संविधान के अनुच्छेद 89 के अनुसार राज्य परिषद् (अथवा मन्त्रिमण्डल) को व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं, जो निम्नानुसार है—

1. प्रशासन कार्यों का संचालन, राजकीय विनिश्चयों, घोषणाओं एवं अधिनियम को लागू करना और यह देखना कि उनका संविधान की विधि के अनुसार पालन हो रहा है।

2. कौंग्रेस अथवा उसकी स्थाई समिति के समक्ष विधेयक प्रस्तुत करना।

3. मन्त्रालय, आयोगों एवं समस्त देश के स्थानीय प्रशासकीय अंगों के कार्यों का नेतृत्व करना एवं उनमें सामंजस्य स्थापित करना।

4. आयोगों एवं मन्त्रालयों द्वारा जारी किए गए आदेश व निर्देशों को संशोधित करना अथवा रद्द करना, यदि वे अनुपयुक्त या अवैध प्रतीत हों।

5. राष्ट्रीय आर्थिक योजनाएँ एवं राज्य के बजट के प्रावधानों को क्रियान्वित करना।

6. वैदेशिक एवं आन्तरिक व्यापार का नियन्त्रण करना।

7. सांस्कृतिक एवं शिक्षा सम्बन्धी तथा जनस्वास्थ्य के कार्यों का निर्देशन करना।

8. राष्ट्रीयताओं से सम्बन्धित एवं विदेशों में बसे चीनियों से सम्बन्धित मामलों का प्रशासन करना।

9. राज्य के हितों की रक्षा करना, सार्वजनिक शांति बनाए रखना एवं नागरिकों की रक्षा करना।

10. विदेशी मामलों के संचालन का निर्देशन करना एव प्रतिरक्षा सेना के निर्माण का मार्ग-दर्शन करना।

11. स्वायत्त शासन प्राप्त क्षेत्रों (Satonomous Chou), स्वाधीन काउण्टियों तथा नगरपालिकाओं आदि की सीमाओं और उनकी स्थितियों को निश्चित करना।

12. कानून के अनुसार प्रशासकीय अधिकारियों को नियुक्त करना अथवा बर्खास्त करना।

13. राज्य परिषद् या मन्त्रिमण्डल (State Council) उन अन्य शक्तियों तथा कार्यों को भी सम्पादित करती है जो राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस या उसकी स्थायी समिति द्वारा समय-समय पर उसे दिए जाएँ।

कार्य-भार अधिक हो जाने पर राज्य परिषद् विशेष कार्यों के लिए अपने अधीन कार्यकारिणी निकाय स्थापित कर सकती है जो वही कार्य करता है जिसके लिए उसे स्थापित किया गया हो। राज्य परिषद् का एक सचिवालय होता है जिसका अध्यक्ष महासचिव (Secretary-General) होता है।

राज्य परिषद्, राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के अधिवेशनों के विराम काल अथवा नहीं होने की स्थिति में इसकी स्थायी समिति के प्रति उत्तरदायी होती है और इसके समक्ष अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है। प्रधानमंत्री एवं मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों की नियुक्ति न केवल राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस की स्वीकृति पर निर्भर है, बल्कि कांग्रेस को यह अधिकार है कि प्रधानमत्री, उप प्रधानमन्त्रियों, मत्रियों, आयोगों के अध्यक्षों तथा महासचिवों को पदच्युत कर दे। राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के सदस्यों को राज्य परिषद् के मन्त्रालय तथा आयोगों से प्रश्न पूछने का अधिकार है। राज्य परिषद के सदस्य राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के अधिवेशन नहीं होने की स्थिति में राज्य परिषद् का उत्तरदायित्व कांग्रेस की स्थायी समिति के प्रति रहता है। स्थायी समिति भी राज्य परिषद् के किसी भी सदस्य को पदच्युत कर सकती है, चाहे वह प्रधानमंत्री ही क्यों न हो। इस समिति को राज्य परिषद् के निर्णयों व आदेशों को रद्द या संशोधन करने का अधिकार है, यदि वह निर्णय एवं आदेश सविधान की विधि या आज्ञाप्तियों के विरुद्ध हों।

राज्य परिषद् का मूल्यांकन (Evaluation)

राज्य परिषद् के बारे में किये गये उपर्युक्त विवेचन के परिप्रेक्ष्य में यह निष्कर्ष निकालना भ्रामक होगा कि जनवादी चीन में ससदात्मक शासन-व्यवस्था है। यद्यपि यहाँ सरकार के व्यवस्थापिका एव कार्यपालिका अग पारस्परिक सामंजस्य से कार्य करते हैं और राज्य परिषद् (मन्त्रिपरिषद्) राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के प्रति वैधानिक रूप से उत्तरदायी है, किन्तु उसका यह उत्तरदायित्व भारत अथवा ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल मण्डलात्मक पद्धति की अपेक्षा बिलकुल अलग प्रकार का है। इसका कारण यह है कि जनवादी चीन में राज्य परिषद् तथा राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस तथा उसकी स्थायी समिति समान रूप से साम्यवादी दल के नियंत्रण में है। प्रधानमंत्री, उप प्रधानमत्री, मन्त्रिगण और आयोगों के अध्यक्ष साम्यवादी दल के प्रमुख सदस्य होते हैं, अतः वे प्रायः इस स्थिति में रहते हैं कि राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस द्वारा नियन्त्रित होने की अपेक्षा स्वयं ही उसे नियत्रित करें। राज्य परिषद् (मन्त्रिपरिषद्) अपना कार्य करने में एक टीम भावना का परिचय देती है, लेकिन एक पूर्ण निकाय के रूप में इसे पद त्याग करने के लिए विवश नहीं किया गया है और न ऐसा होना सम्भव ही प्रतीत होता है। अब तक का इतिहास बताता है कि व्यक्तिगत मत्रियों को तो अप्रतिष्ठित किया गया हो या निकाला गया हो, लेकिन सम्पूर्ण राज्य परिषद् (मन्त्रिपरिषद्) के प्रति ऐसा कोई कदम नहीं उठाया गया। इसके अतिरिक्त देश की साम्यवादी व्यवस्था में राज्यपरिषद् (मन्त्रिपरिषद्) को व्यवस्थापिका में किसी सगठित विरोधी दल का सामना नहीं करना पड़ता है। यहाँ तो

केवल साम्यवादी दल की ही प्रमुखता तथा सर्वोपरिता होती है। ऐसी स्थिति में मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व का कोई महत्त्व नहीं रह जाता है।

प्रधानमन्त्री
(Prime Minister)

1982 ई. के संविधान का अनुच्छेद 88 जनवादी चीन में प्रधानमंत्री पद की व्यवस्था करता है। इसमें स्पष्ट किया गया है कि देश का प्रधानमंत्री राज्य परिषद् का मार्गदर्शन करेगा। दूसरे शब्दों में, प्रधानमंत्री देश की राज्य परिषद् का नेतृत्व तथा मार्गदर्शन करेगा। संविधान में यह भी व्यवस्था है कि उप-प्रधानमंत्री तथा स्टेट कौंसिलर, प्रधानमंत्री को उसके कार्यों को सम्पादन करने में सहायता करते हैं।

जनवादी चीन प्रधानमन्त्री का चुनाव न केवल राष्ट्रीय जनवादी काँग्रेस द्वारा होता है वरन् उसके लिए राज्य के अध्यक्ष अर्थात् राष्ट्रपति की भी अनुमति आवश्यक है। प्रधान मन्त्री को औपचारिक रूप से राज्य परिषद् (मन्त्रिपरिषद्) के कार्य का निर्देशन करने और उसकी बैठकों में सभापतित्व करने का अधिकार प्राप्त है। यद्यपि राज्य परिषद् (मन्त्रिपरिषद्) के अन्य सदस्यों के चयन में उसका महत्त्वपूर्ण और सम्भवत: निर्णायक भूमिका होती है, लेकिन ऐसा होना सदैव अनिवार्य नहीं है। उसकी शक्ति तथा स्थिति उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। संसदात्मक शासन वाले देशों के प्रधान मन्त्रियों की तरह चीनी प्रधानमंत्री शासक दल का सर्वोच्च नेता नहीं होता है। राज्य के अध्यक्ष राष्ट्रपति की स्थिति उससे कहीं अधिक उच्च होती है।

प्रधानमंत्री सहित सभी राज्य परिषद् के सदस्य (मन्त्रिगण) राष्ट्रीय जनवादी काँग्रेस के प्रति उत्तरदायी होते हैं जो उन्हें कार्यों के प्रति उपेक्षा करने पर पदच्युत कर सकती है। प्रधान मन्त्री को एक सीमित मन्त्रिमण्डल का निर्माण करने का अधिकार है जिसके द्वारा राज्य परिषद् द्वारा पारित होने वाले नियम प्रभावित होते हैं। इस संबंध में पीटर टाँग का मत इस प्रकार है—"राज्य परिषद् के निर्माण हेतु बनाए गए आधारभूत नियमन (Organic Law) में प्रधान मन्त्री के अधीन एक छोटी आन्तरिक कमेटी (Inner Cabinet) की व्यवस्था की गई है। इस नियम की धारा 4 के अनुसार परिषद् की स्थाई बैठक में प्रधानमंत्री एवं जनरल सैक्रेट्री सम्मिलित होते हैं तथा मन्त्रियों एवं आयोगों के अध्यक्षों की सम्मिलित बैठक में अन्तर होता है।

वर्तमान में ली फंग चीन के प्रधानमंत्री हैं जो देश की राजनीतिक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जनवादी चीन में कार्यपालिका का जो संस्थागत ढाँचा विद्यमान है, वह अन्य देशों से विभिन्नता लिए हुए है।

जनवादी चीन की न्यायपालिका

(The Judiciary of the People's Republic of China)

1982 ई. के संविधान में न्यायपालिका के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। जनवादी चीन की न्यायिक-व्यवस्था पर भी साम्यवादी विचारधारा का प्रभुत्व है, तथा यहाँ न्यायपालिका को वह स्वतन्त्र और सर्वोच्च स्थिति प्राप्त नहीं है, जो अन्य लोकतान्त्रिक देशों की न्यायपालिका को प्राप्त है।

जनवादी चीन की न्याय-व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ

(The Chief Characteristics of the Judicial System of the People's Republic of China)

जनवादी चीन की न्यायिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं को निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है—

(1) जनवादी चीन की राज्य-संरचना शक्ति-पृथक्करण के सिद्धांत (Separation of Power Theory) पर आधारित नहीं है। देश की न्यायपालिका को न तो व्यवस्थापिका और न कार्यपालिका से अलग ही किया गया है और न ही इसे राजनीतिक नियंत्रण से मुक्त किया गया है।

(2) जनवादी चीन में न्यायपालिका की सर्वोच्चता, स्वतन्त्रता तथा निष्पक्षता के सिद्धान्त को मान्यता नहीं दी गई है। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त की अवहेलना की गई है।

(3) चीन में न्यायपालिका पर साम्यवादी दल का पूर्ण वर्चस्व है, तथा यह इसके एक अधीनस्थ अंग के रूप में कार्य करती है। उसे व्यवहार में, साम्यवादी दल के एक अधीनस्थ अंग की तरह आचरण करना पड़ता है।

(4) जनवादी चीन में न्यायपालिका समाजवाद की संरक्षक है। अन्य प्रजातान्त्रिक राज्यों में न्यायपालिका का कार्य संविधान की व्याख्या करने तथा उसका रक्षण करने, नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा करने, संविधान विरोधी विधियों को अवैध करार देना तथा नागरिकों को न्याय प्रदान करना है। लेकिन जनवादी चीन की न्यायपालिका उपर्युक्त कार्य नहीं करती है। यहाँ न्यायपालिका का कार्य क्रान्ति-विरोधी शक्तियों का दमन करके समाजवाद को सुदृढ़ करना है।

(5) जनवादी चीन में न्यायपालिका को न्यायिक समीक्षा या न्यायिक पुनरवलोकन की शक्ति प्राप्त नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय को विधानमण्डल को अथवा कार्यपालिका के कार्यों पर न्यायिक निषेधाधिकार प्राप्त नहीं है।

(6) जैसा कि पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है कि जनवादी चीन में न्यायपालिका नागरिकों के अधिकारों की सरक्षक भी नहीं है। अमेरिकन एव भारतीय सर्वोच्च न्यायालय की भाँति यहाँ के सर्वोच्च न्यायालय को लोगों के मौलिक अधिकारों की रक्षा का अधिकार नहीं दिया गया है। यदि सरकार के कानून, आज्ञप्तियाँ और आदेश सविधान में दिए गए किसी मूल अधिकार का अतिक्रमण करते हैं, तो जनवादी चीन का सर्वोच्च न्यायालय ऐसी स्थिति में लोगों की कोई सहायता नहीं कर सकता है। चीनी नागरिकों को बन्दी प्रत्यक्षीकरण के आदेश का भी कोई अधिकार नहीं है। इतना ही नहीं देश के नागरिकों को मनमानी गिरफ्तारी के विरुद्ध भी न्यायपालिका की किसी तरह की सुरक्षा प्राप्त नहीं है।

उपर्युक्त प्रमुख विशेषताओं के अतिरिक्त जनवादी चीन की न्यायिक-व्यवस्था के अन्य विशिष्ट लक्षण भी है, जो निम्नलिखित है—

(i) कानून की दृष्टि मे सभी नागरिकों को समान माना गया है अर्थात् विधि का शासन है।

(ii) न्यायाधीशों का निर्वाचन किया जाता है।

(iii) सभी न्यायालयों के साथ मुकदमों की सुनवाई में अवसरों के योग की व्यवस्था है।

(iv) न्यायालयों में स्थानीय भाषा का प्रयोग करने का अधिकार है, और यदि कोई इस भाषा को न समझे तो उसे दुभाषिये का सहारा लेने का अधिकार प्राप्त है।

(v) जनवादी चीन में सार्वजनिक सुनवाई की व्यवस्था है तथा लोगों को अपनी पसंद के कानूनी सलाहकार के माध्यम से सफाई देने का अधिकार है।

(vi) राज्य सार्वजनिक सम्पत्ति के विरुद्ध तथा श्रम-अनुशासन का अतिक्रमण करने वाले अपराधियों के विरुद्ध कड़ी से कड़ी कार्यवाही करता है।

(vii) जनवादी चीन में गैर-सरकारी वकीलो या अभिभाषकों का अभाव पाया जाता है।

(vii) अभियुक्तों को अपने मुकदमों की पैरवी करने के लिए सरकार द्वारा अपनी ओर से ही वकीलों की नामावली प्रदान की जाती है, तथा अभियुक्तों को उसे नामावली में से ही अपनी पसंद का कोई वकील चुनना पडता है।

न्यायिक संगठन
(Judicial Organisation)

जनवादी चीन का न्यायिक संगठन या न्यायिक-सरचना पिरामिड के आकार में है। न्यायिक सोपान में सबसे ऊपर सर्वोच्च जन न्यायालय, इसके बाद स्थानीय जन-न्यायालय तथा सबसे नीचे विशिष्ट जन न्यायालय है अर्थात् जनवादी चीन में तीन प्रकार के न्यायालयों का अस्तित्व है—

1. सर्वोच्च जन न्यायालय (Supreme People's Court)
2. स्थानीय जन न्यायालय (Local People's Court)
3. विशिष्ट जन न्यायालय (Superior or Special People's Court)

उक्त सभी न्यायालय अपने अनुरूपी स्तर पर अपनी-अपनी काग्रेसों द्वारा निर्वाचित होते हैं और उन्हीं के प्रति उत्तरदायी है। प्रत्येक स्तर के न्यायालय का एक अध्यक्ष होता है जिसका कार्यकाल 5 वर्ष होता है। यहाँ यह स्मरणीय है कि उक्त सभी न्यायालयों की रचना जनवादी चीन की राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस द्वारा की जाती है।

(1) सर्वोच्च जन न्यायालय (The Supreme People's Court)

1982 के संविधान के अनुच्छेद 127 के अनुसार—सर्वोच्च जन न्यायालय चीन का सर्वोच्च न्यायालय है। देश भर के सब न्यायालय इसके अधीन हैं और वह उन सबका संरक्षण करता है। संविधान में सर्वोच्च जन न्यायालय के बारे में कोई निश्चित संगठन की व्यवस्था नहीं की गई है। इसमें अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और अन्य न्यायाधीश होते हैं। अध्यक्ष राष्ट्रीय जन कांग्रेस द्वारा 5 वर्ष के लिए चुना जाता है और उसी के द्वारा पदच्युत भी किया जा सकता है। उपाध्यक्ष एवं अन्य न्यायाधीश कांग्रेस की स्थाई समिति द्वारा ही नियुक्त किए जाते हैं और उसी के द्वारा हटाए जाते हैं। संविधान में सर्वोच्च जन न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या निश्चित नहीं की गई है।

संविधान में सर्वोच्च जन न्यायालय की शक्तियों के बारे में भी स्पष्ट कुछ नहीं कहा गया है और न ही न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के बारे में कोई प्रकाश डाला गया है। संविधान की धारा 127 में केवल यही कहा गया है कि "सर्वोच्च जन न्यायालय उच्चतम न्यायिक संगठन है और यह स्थानीय न्यायालय तथा विशेष न्यायालयों के न्यायिक कार्यों की देखभाल करता है।" व्यवहार में सर्वोच्च न्यायालय के मौलिक और अपीलीय दोनों अधिकार क्षेत्र हैं। राष्ट्रीय महत्त्व के मुकदमे मौलिक अधिकार क्षेत्र में आते हैं और जन न्या॰ ्लय के विरुद्ध यह अपील सुनती है। सर्वोच्च न्यायालय के दो भाग हैं—एक दीवानी और दूसरा फौजदारी।

सर्वोच्च जन न्यायालय को राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के प्रति और इसके विश्राम काल के समय स्थाई समिति के प्रति उत्तरदायी ठहराया गया है। यह कांग्रेस को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करता है। चीन में सर्वोच्च जन न्यायालय को जनवादी कांग्रेस अथवा राज्य परिषद् के किसी भी कानून, आदेश या आज्ञप्ति को अवैध घोषित करने का कोई अधिकार नहीं है। यह शक्ति स्थाई समिति में निहित है। न्यायपालिका को स्वतन्त्र बनाने की बजाय व्यवस्थापिका की अधीनस्थ शाखा बना दिया गया है। अन्य प्रजातन्त्रात्मक देशों के विपरीत चीन का सर्वोच्च न्यायालय संविधान का अन्तिम व्याख्याता अथवा संरक्षक का कार्य नहीं करता है। इसकी स्थिति चीनी गणराज्य की सरकार के तीनों अंगों में सबसे अधिक कमजोर है।

(2) स्थानीय जन न्यायालय (Local People's Court)

स्थानीय जन न्यायालयों को निचला न्यायालय (Lower Court) भी कहा जाता है। इन न्यायालयों के निम्नांकित तीन स्तर हैं—

(i) प्राथमिक जन न्यायालय (Primary People's Court)

(ii) मध्यवर्ती जन न्यायालय (Intermediate People's Court)

(iii) उच्चतर जन न्यायालय (Superior People's Court)

प्राथमिक जन न्यायालय सबसे नीचे के स्तर पर काउण्टी अथवा इसके बराबर के स्तर पर कार्य करता है। उनके ऊपर मध्यवर्ती न्यायालय हैं जो काउण्टी समूह अथवा स्वायत्त चाऊ (Chou) के लिए कार्य करते हैं। इनके ऊपर और स्थानीय न्यायालयों में उच्चतम न्यायालय, उच्चतर न्यायालय हैं जो प्रान्तीय स्तर पर अथवा स्वायत्त क्षेत्रों में अथवा केन्द्रशासित नगरपालिकाओं में कार्य करते हैं। इन सभी न्यायालयों के न्यायाधीश अपने अनुरूपी स्तर की कांग्रेस द्वारा चुने जाते हैं। न्यायाधीशों की कार्य अवधि चार वर्ष है। सभी न्यायालय अपने अनुरूपी स्तर की कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी हैं और उन्हें

अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं। ये न्यायालय सर्वोच्च जन न्यायालय के नियंत्रण और पर्यवेक्षण में कार्य करते हैं।

(3) विशिष्ट जन न्यायालय (Superior People's Court)

विशेष जन न्यायालय कई प्रकार के हैं, जैसे—सैनिक न्यायालय (Millitary Courts), रेल्वे न्यायालय (Railway Courts), यातायात न्यायालय (Transport Courts), जल यातायात न्यायालय (Water Transport Court)। इनके स्वरूप तथा प्रकृति का निर्णय राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस करती है। सन् 1953 ई. में Comrade Woncers Courts की स्थापना भी की गई थी। ये न्यायालय विशिष्ट जन न्यायालयों से इस बात में भिन्न हैं कि ये काम करने वाले लोगों (Workers) द्वारा ही बनाए जाते हैं। लेकिन जहाँ विशिष्ट जन न्यायालय सरकार के नाम पर अपने फैसले करते और सुनते हैं वहाँ कॉमरेड न्यायालयों का उद्देश्य काम करने वाले लोगों को अच्छा बनाना और उन्हें अनुशासन की भावना का संचार करना है।

चीन में मुकदमे करने का तरीका बहुत आसान है और मुकदमों का जल्दी ही निपटारा कर दिया जाता है। अदालत सभी के लिए खुली है चाहे व्यक्ति धनवान हो या गरीब। दीवानी मुकदमों में प्रायः समझौते पर जोर दिया जाता है और दोनों पक्षों से कहा जाता है कि वे आपस में झगड़े का स्वयं ही निपटारा कर लें। फौजदारी मुकदमे दो प्रकार के होते हैं—कुछ का सम्बन्ध राजनीति से होता है और कतिपय का नहीं। जिन मुकदमों का सम्बन्ध राजनीति से होता है वे बहुत बुरे तरीके से किए जाते हैं और उनमें किसी प्रकार की दया नहीं दिखाई जाती है। जिन लोगों के विरुद्ध जरा-सा भी संशय होता है उन्हें बुरी तरह कुचल दिया जाता है जबकि साधारण लोगों को सुधारने की कोशिश की जाती है।

(4) प्रोक्यूरेटर का पद (The Office of the Procurator)

1982 के संविधान के अनुच्छेद 130 में सर्वोच्च जन प्रोक्यूरेटर (Supreme People's Procurator) पद की स्थापना की गई है। यह एक अनूठी संस्था है। इसके समान संस्था भारत, अमेरिका तथा ब्रिटेन जैसे प्रजातान्त्रिक देशों में उपलब्ध नहीं है। इस संस्था का निर्माण राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस द्वारा किया जाता है। सर्वोच्च जन प्रोक्यूरेटर, राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस तथा उसकी स्थायी समिति के प्रति उत्तरदायी होता है।

सर्वोच्च जन प्रोक्यूरेटर का प्रमुख कार्य यह निश्चय करना है कि देश में कानून का उचित रीति से पालन हो और लोगों की स्वतंत्रता सुरक्षित रहे। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति की दृष्टि से यह राज्य के सभी विभागों, सरकारी कर्मचारियों और गैर-सरकारी नागरिकों का पर्यवेक्षण करता है। यह राज्य परिषद् के मन्त्रियों, राज्य के स्थानीय अंगों, सरकारी कर्मचारियों और नागरिकों के खिलाफ जाँच करके अभियोजन की कार्रवाई प्रारंभ कर सकता है। परन्तु व्यवहार में ये शक्तियाँ काल्पनिक हैं, क्योंकि यह पूर्णतः साम्यवादी दल के नियंत्रण में कार्य करता है। सर्वोच्च जन प्रोक्यूरेटर स्थानीय जन प्रोक्यूरेटरों को आवश्यक निर्देश दे सकता है।

41

जनवादी चीन में साम्यवादी दल का संगठन एवं भूमिका

(The Organisation and Role of the Communist Party of the People's Republic of China)

जनवादी चीन में साम्यवादी दल का प्रभाव सर्वव्यापक है। इस देश में साम्यवादी दल की ही प्रभुत्वपूर्ण भूमिका है। यह देश की संवैधानिक तथा शासन व्यवस्था का नेतृत्व करता है। सारे देश की संस्थायें इसके अधीन रहकर कार्य करती हैं।

साम्यवादी दल का संगठन

(Organisation of the Communist Party)

जनवादी चीन के साम्यवादी दल के संगठनात्मक पक्ष का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह विश्व का सबसे बड़ा दल है, जिसकी सदस्य संख्या करोड़ों में है। वर्तमान में साम्यवादी दल की सदस्य संख्या 8 करोड़ से भी अधिक है। ऐसे दल के संगठनात्मक पक्ष का अध्ययन निम्न परिप्रेक्ष्य में किया जा सकता है—

(1) लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद—सोवियत संघ के साम्यवादी दल की भाँति ही जनवादी चीन के साम्यवादी दल के संगठन का आधार 'लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद' है, जिसका अर्थ है कि निम्न स्तर के दलीय संगठन, उच्च स्तर के दलीय संगठनों का अप्रत्यक्ष पद्धति के आधार पर चुनाव करते हैं। शिखर पर 'राष्ट्रीय दल कांग्रेस' (National Party Congress) है और सबसे निम्न स्तर पर 'स्थानीय दल कांग्रेस' (Local Party Congress) है। राष्ट्रीय दल कॉंग्रेस केन्द्रीय समिति (Central Committee) का निर्वाचन करती है तथा दल के सिद्धान्तों और नीतियों को वाद-विवाद द्वारा निर्धारित करती है। दलीय विधान केवल दल कांग्रेस द्वारा ही संशोधित किया जा सकता है।

राष्ट्रीय दल कॉंग्रेस और स्थानीय दल कॉंग्रेस अपने-अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी हैं। दल की प्रत्येक छोटी संस्था का कर्त्तव्य है कि वह बड़ी संस्था के कहने के अनुसार चले और कार्य करे। किसी स्तर पर दल समिति यदि कोई निर्णय कर लेती है तो उसके अधीन सभी दलीय संगठनों को उस निर्णय के अनुसार कार्य करना पड़ता

है। बहुमत का निर्णय समस्त दल का निर्णय माना जाता है। अल्पमत को सार्वजनिक रूप से अपने विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता नहीं है।

लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद के अनुरूप निम्न स्तर की दलीय समितियों की अनुशासनात्मक कार्यवाहियों की उच्चस्तरीय दलीय समितियों द्वारा पुनरीक्षण की व्यवस्था है। लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद की यह अवधारणा साम्यवादी दल को कठोर, अनुशासनयुक्त तथा मोनोलेथिक एकता से युक्त दल का रूप प्रदान करता है अर्थात् दल का ढाँचा केन्द्रीभूत स्वरूप लिए हुए है।

(2) दल का एकात्मक संगठन—जनवादी चीन के साम्यवादी दल का संगठन एकात्मक है। सम्पूर्ण देश के लिए व्यवहार में केवल एक, साम्यवादी दल ही है। जातीय आधार पर मंगोलो तथा तिब्बतियों आदि के लिए कोई पृथक् एवं स्वतन्त्र संगठन नहीं है। व्यक्ति, चाहे वह किसी भी जाति का हो, केवल चीनी साम्यवादी दल का सदस्य बनाया जा सकता है, जो केन्द्रीय समिति के अनुशासन में कार्य करता है। दल की केन्द्रीय समिति में नियमित तथा वैकल्पिक सदस्य होते हैं। सदस्यों के नाम दल काँग्रेस में वोटों की संख्या के आधार पर सूची में ऊपर से नीचे लिखे रहते हैं। वोटों की संख्या सदस्य के महत्व और उसकी लोकप्रियता की सूचक होती है। केन्द्रीय समिति के सदस्यों द्वारा 'पोलिट ब्यूरो' के सदस्यों को चुना जाता है। इसमें भी नियमित अथवा वैकल्पिक सदस्य होते हैं।

(3) साम्यवादी दल के चार स्तम्भ—अन्य सत्तारूढ़ साम्यवादी दलों की भाँति ही चीनी साम्यवादी दल की सत्ता भी मुख्यतः चार स्तम्भों पर आश्रित है। हेरोल्ड हिंटन के अनुसार पहला स्तम्भ मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा है। इसके अनुसार चीन का साम्यवादी दल अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी आंदोलन का एक अंग है और इसी विचारधारा के आधार पर उसका कार्यक्रम बनाया जाता है। चीनियो को विश्वास है कि उनके दल का यह कार्यक्रम चीन की महान् जनता के प्रगतिशील भविष्य के अनुरूप है। दूसरा स्तम्भ राष्ट्रव्यापी संगठन है जिसके द्वारा दल सम्पूर्ण चीनी समाज और सरकार के सभी अगों पर छाया रहता है। चीन के सभी प्रशासनिक, न्यायिक एवं सामाजिक संस्थान साम्यवादी दल के नेतृत्व को स्वीकार करते हैं। तीसरा आधार-स्तम्भ सम्पूर्ण देश में व्याप्त प्रचार-उपकरण है जो निरन्तर यह सिद्ध करने में लगे रहते हैं कि साम्यवादी दल की आन्तरिक और वैदेशिक नीतियों का विरोध करना मूर्खता और देशद्रोह है। चौथा स्तम्भ राज्य की दमनकारी पुलिस और सैन्य शक्ति है। अन्य किसी उपाय से काम न चलने पर चीन का साम्यवादी दल इस अंतिम उपाय का प्रयोग करने को कटिबद्ध रहता है। इसके अनुसार राजनीतिक विरोधियों का प्रबलता के साथ दमन किया जाता है।

(4) पिरामिड के आकार का संगठन—जनवादी चीन के साम्यवादी दल का संगठन 'पिरामिड' के आकार का है, जहाँ शीर्ष पर 'पोलिट ब्यूरो' है तो प्रारम्भिक संगठन 'सेल' (Cell) है। दल की प्राथमिक इकाई 'सेल' है जो 20 सदस्यों की प्राथमिक इकाई होती है। दल की दूसरी इकाई को 'केन्द्रीय समिति' के नाम से जाना जाता है। केन्द्रीय समिति द्वारा राजनीतिक ब्यूरो, दल नियन्त्रण आयोग तथा पोलिट ब्यूरो का चुनाव किया जाता है। पोलिट ब्यूरो दल का सर्वाधिक प्रभावशाली अग है जो दल की सम्पूर्ण

गतिविधियों का संचालन तथा नियंत्रण करता है। सचिवालय भी दल का एक महत्वपूर्ण अंग है, जिसका अध्यक्ष दल का महासचिव होता है। दलीय गतिविधियों के संचालन में सचिवालय की अहम् भूमिका होती है। दल नियंत्रण आयोग, दल की अंतिम शाखा होती है, जो इस बात का ध्यान रखता है कि दल के विभिन्न अंग दल की नीतियों को सही ढंग से पालन कर रहे हैं, अथवा नहीं।

(5) दल की सदस्यता का मापदण्ड—जनवादी चीन के साम्यवादी दल की सदस्यता प्राप्त करने के लिए निर्धारित मापदण्डों को पूरा करना पड़ता है। वे ही लोग दल की सदस्यता प्राप्त कर सकते हैं, जो काम करते हैं, किन्तु लोगों का शोषण नहीं करते हैं। साथ ही इस सम्बन्ध में यह भी एक प्रमुख शर्त होती है कि सदस्य दल की नीतियों के अनुरूप कार्य करें तथा दल के निर्णयों का पालन करें। सदस्यों का यह भी कर्त्तव्य होता है कि वे दल के सम्मुख सदैव सच बोलें।

(6) दल में एकता और अनुशासन—एकता और अनुशासन साम्यवादी दल के संगठन का मुख्य आधार है। दल के सदस्यों को कठोर अनुशासन का पालन करना पड़ता है। अपने हितों से दल के हितों को प्राथमिकता या वरीयता देनी पड़ती है। जैसा कि हैराल्ड हिन्टन का भी कहना है कि "दलीय एकता और अनुशासन की भावना पर चीनी साम्यवादी दल में विशेष ध्यान दिया जाता है।"

(7) दल के मुख्य विभाग—चीनी साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति दलीय कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए अनेक विभागों की स्थापना करती है जिनमें कुछ प्रमुख हैं—संगठन विभाग, प्रचार विभाग, संयुक्त मोर्चा विभाग, सामाजिक कार्य विभाग, सामान्य विभाग, नियन्त्रण विभाग, अनुशासन विभाग, ग्राम-विकास विभाग आदि। ये विभाग प्रान्तीय एवं स्थानीय विभागीय-कार्यों का अपने-अपने क्षेत्रों में पुनरीक्षण करते हैं। दलीय कार्यों की सुविधा की दृष्टि से सम्पूर्ण चीन 5-6 प्रदेशों में विभक्त है जिनमें प्रादेशिक आयोग स्थापित हैं। प्रदेश के पश्चात् दलीय संगठन की निम्नतर इकाइयाँ प्रान्त स्वायत्तशासी प्रदेश या विशेष नगरपालिका हैं। प्रान्तीय स्तर पर दल कांग्रेस, दल समिति, विभागों तथा आयोगों का संगठन लगभग उसी प्रकार है जिस प्रकार कि केन्द्रीय स्तर पर है। सबसे निचले स्तर पर दल की शाखा होती है जिसमें लगभग 20 सदस्य होते हैं। दलीय शाखा की स्थापना ग्राम, कारखाना, स्कूल, ऑफिस, रेजीमेन्ट आदि स्थानों में कहीं भी की जा सकती है वास्तव में चीनी साम्यवादी दल की कार्य-शैली तथा संगठनात्मक पद्धति बहुत कुछ पूर्व रूसी साम्यवादी दल के अनुरूप ही है।

सारांशतः जनवादी चीन में साम्यवादी दल का एक सुव्यवस्थित तथा संगठनात्मक स्वरूप है।

साम्यवादी दल की भूमिका

(The Role of the Communist Party)

जनवादी चीन की राजनीतिक व्यवस्था में साम्यवादी दल की बहुमुखी भूमिका है। यह दल, सरकार और देश का स्वरूप लिए हुए है। श्री माओत्से तुग के नेतृत्व में साम्यवादी दल ने ही चीन को स्वतन्त्र कराया। स्वतन्त्रता के बाद साम्यवादी क्रान्ति को

सुरक्षित रखने में भी साम्यवादी दल ने मुख्य भूमिका का निर्वाह किया। साम्यवादी दल के नेतृत्व में ही जनवादी चीन 'अफीमची चीन' से विश्व की महाशक्ति बना। जनवादी चीन में साम्यवादी दल की भूमिका को निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है—

(1) दल के प्रमुख कार्य—चीन में साम्यवादी दल का ध्येय साम्यवाद की पूर्ण स्थापना करना है। यह दल कार्ल मार्क्स और लेनिन के सिद्धांतों पर बड़ी सख्ती से चलता है। दल का यह प्रमुख कार्य है कि वह उत्पादन के समस्त साधनों में सरकार के अधीन कर दे, शोषण को रोके और सरकार को इस नियम पर चलने में सहायता दे कि जितना कोई कार्य करे उसे उतना ही पारिश्रमिक दिया जाए। दल का यह कर्त्तव्य है कि वह देश के उत्पादन को बढ़ाने के लिए योजनाएँ तैयार करे, यथासम्भव उद्योग-धन्धों का संचालन करे ताकि चीन औद्योगिक और रक्षा सम्बन्धी मामलों में आत्मनिर्भर बन सके। दल का यह कर्तव्य भी है कि वह इस बात का भरसक प्रयास करे कि देश में विज्ञान, संस्कृति एव तकनीकी विकास हो, चीन विश्व का अग्रणी राष्ट्र हो, लोगों की आवश्यकताएँ पूरी हों, अल्पसंख्यक जातियों के संरक्षण के विशेष प्रयास किये जाये एवं उनकी आर्थिक तथा सांस्कृतिक अवस्था में सुधार हो, मजदूरों और किसानों का सहयोग सुदृढ़ हो, राष्ट्रीयता की उन्नति हो, देशद्रोहियों के विरुद्ध लड़ने को चीनी जनता व दल के सदस्य सदैव सन्नद्ध हों, जनता की सहायता से फारमोसा को आजाद कराया जाए और जनता में यह भावना कूट-कूट कर भर दी जाए कि दल एवं देश के हित पृथक्-पृथक् नहीं हैं, बल्कि एक ही हैं। दल का प्रमुख कर्त्तव्य यह है कि वह पूरे दिल से लोगों की सेवा करे, सारे कार्य लोगों के कल्याण के लिए हो। इस तरह से साम्यवादी दल द्वारा बहुमुखी कार्यों का सम्पादन किया जाता है।

(2) अन्य दल, किन्तु सर्वोपरिता साम्यवादी दल की—जनवादी चीन के नवीन संविधान में जन-लोकतान्त्रिक तानाशाही का सिद्धान्त अपनाया गया है। साम्यवादी दल की सर्वोपरि या नेतृत्व वाली भूमिका है। चीन में अन्य 8 दलों का अस्तित्व होते हुए भी व्यवहार में साम्यवादी दल ही सर्वेसर्वा है। जनवादी चीन की राजनीति में साम्यवादी दल स्पष्टतः निर्णयकारी केन्द्र है, जिसकी शक्ति और भूमिका का अन्य कोई दल विरोध नहीं कर सकता है। संविधान की भी यही भावना है कि अन्य दल साम्यवादी दल के नेतृत्व में कार्य करेंगे।

(3) साम्यवादी दल और सरकार की एकरूपता—सोवियत संघ की तरह ही चीन में भी साम्यवादी दल और सरकार की एकरूपता का सिद्धान्त प्रचलित है। सिद्धान्ततः सरकार और साम्यवादी दल पृथक्-पृथक् हैं, किन्तु व्यवहार में साम्यवादी दल का सरकार पर प्रभुत्व और नियन्त्रण इतना अधिक है कि दोनों की सीमा निर्धारण करना कठिन है। दल के महत्त्वपूर्ण एवं चोटी के नेता सरकारी पदों पर आसीन हैं। राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस में साम्यवादी सदस्यों का बहुमत है और कांग्रेस की स्थाई समिति तथा विधान-समितियों में भी उनका पूर्ण वर्चस्व है। स्थाई समिति के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष भी साम्यवादी दल के प्रमुख सदस्य होते हैं। चीन का प्रधान मन्त्री, राज्य परिषद् के लगभग सभी उप-प्रधान मन्त्री, आयोगों और कार्यालयों के अधिकांश अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष

साम्यवादी दल के सदस्य होते हैं। प्रान्तों और अन्य स्थानीय सरकारी इकाइयों में भी यही स्थिति है।

व्यवस्थापिका एवं कार्यकारिणी के साथ-साथ न्यायपालिका पर भी साम्यवादी दल का वर्चस्व और नियत्रण है। न्यायालयों का मुख्य कार्य साम्यवादी दल के उद्देश्य की पूर्ति करना है अर्थात् चीन में समाजवाद को सुदृढ़ बनाना है। न्यायालयों का मुख्य कार्य समाज के क्रान्ति विरोधी तत्वों का दमन करना होता है। ऐसे क्रान्ति विरोधी या प्रतिक्रियावादी तत्त्वों का निर्धारण साम्यवादी दल के प्रभावशाली उच्चकमान द्वारा किया जाता है। साम्यवादी दल के नेता ही न्यायपालिका के विभिन्न स्तरों के पदों को सुशोभित करते हैं।

(4) सेना पर दल का प्रभाव—चीन में सेना पर भी साम्यवादी दल का पूर्ण नियत्रण है। जब तक दल के उच्च नेताओं में ही फूट नहीं पड़ती, चीन की सेना पूर्णरूप से दलीय अनुशासन को स्वीकार करती रहेगी। लाल सेना के सिपाही राजनीति में दीक्षित क्रान्ति के सैनिक हैं और उनके सेनापति दल के प्रमुख नेता होते हैं। राष्ट्रीय रक्षा-परिषद् तथा रक्षा मन्त्रालय साम्यवादी दल के अधीन है। चीन के लोकगणराज्य का राष्ट्रपति रक्षा परिषद् का पदेन अध्यक्ष होता है। रक्षा परिषद् के उप-प्रधान और अधिकाश सदस्य साम्यवादी-दल के ही हैं। चीन की जनमुक्ति सेना (People's Liberation Army) का प्रधान सेनापति एव राज्य परिषद् में रक्षा मन्त्रालय का अध्यक्ष साम्यवादी दल की स्थाई समिति के सदस्य होते हैं। रक्षा मन्त्रालय के सभी उप-मन्त्री भी साम्यवादी दल के सदस्य होते हैं। अधिकाश सैनिक यूनिटों में भी साम्यवादी दल की समितियाँ होती हैं। जिनका नेतृत्व प्रत्येक यूनिट के महत्वपूर्ण दलीय सदस्यों के हाथ में होता है। इस तरह चीन की सशस्त्र सेना और साम्यवादी दल परस्पर इस प्रकार से सम्बद्ध होते हैं कि इनमें विरोध की कोई समावना नहीं है।

(5) अन्य सार्वजनिक संगठनों पर भी साम्यवादी दल का प्रभुत्व—जनवादी चीन में विभिन्न सार्वजनिक सगठनों को कार्य करने की स्वतन्त्रता है। इन संगठनों में यदा-कदा समापति अथवा प्रधान का पद किसी निर्दलीय या अन्य दलीय व्यक्ति को दे दिया जाता है तो वास्तविक शक्ति साम्यवादी उप-प्रधान अथवा उप-सभापति के हाथ में ही रहती है। ये विभिन्न सार्वजनिक संगठन वस्तुतः साम्यवादी दल के वे यन्त्र हैं जिनकी सहायता से दल जनता में अपना प्रभाव स्थापित करता है और जन-सम्पर्क द्वारा दलीय नीतियों को लोकप्रिय बनाता है। संगठनों के सदस्य राजनीतिक अभियानों और प्रदर्शनों में सक्रिय भाग लेते हैं तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों के सार्वजनिक सगठनों से सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

चीन के प्रमुख सार्वजनिक सगठन ये हैं—

1 ट्रेड यूनियनों का अखिल चीनी सघ—इसका मुख्य कार्य श्रमिक-अधिकारों की रक्षा करना और उनमें साम्यवादी दल की नीतियों को लोकप्रिय बनाना है। विभिन्न देशों के श्रमिक-सघ-सगठनों में यह सम्पर्क बनाए रखता है।

2. सहकारी सस्थाओं का अखिल चीनी सघ—इसका प्रधान उद्देश्य सहकारिता-आंदोलन को गति देना और लोकप्रिय बनाना है।

3. जनवादी युवकों का अखिल चीनी संघ—यह चीनी युवकों और युवतियों में साम्यवादी आदर्शों के प्रति निष्ठा उत्पन्न करता है।

4. जनवादी महिलाओं का अखिल चीनी संघ—इसका उद्देश्य चीनी महिलाओं के समान अधिकारों के लिए सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में संघर्ष करना तथा चीनी महिलाओं में सामन्ती-पितृ प्रधान परिवार के अनौचित्य के प्रति विद्रोह की भावना उत्पन्न करना है। चीनी महिलाओं में साम्यवादी आदर्शों के प्रति निष्ठा का प्रचार करना भी इसका मुख्य उद्देश्य है।

5. साहित्य एवं कला मण्डलों का अखिल चीनी संघ—यह संघ कला एवं साहित्य के प्रसार के साथ-साथ उनमें जनवादी एवं समाजवादी भावना के समावेश के लिए सचेष्ट रहता है।

उपर्युक्त सभी संगठन साम्यवादी दल के नेतृत्व तथा नियंत्रण में कार्य करते हैं, तथा ये साम्यवादी नीतियों तथा आदर्शों का प्रचार करते हैं।

(6) अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका—जनवादी चीन के साम्यवादी दल की अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका भी है। जब सोवियत संघ और जनवादी चीन को सैद्धान्तिक मतभेदों के कारण साम्यवादी शिविर में फूट पड़ गई तो चीन के साम्यवादी दल ने अपने देश के समर्थक राष्ट्रों—उत्तरी कोरिया, अलबानिया और उत्तरी वियतनाम के साम्यवादी दलों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किये। साम्यवादी दल द्वारा तृतीय विश्व के साम्यवादी दलों और संगठनों के साथ भी घनिष्ठ सहयोग स्थापित किया। सोवियत संघ के विघटन के बाद जनवादी चीन ही विश्व का एकमात्र प्रभावशाली साम्यवादी दल रह गया है। उत्तरी कोरिया, वियतनाम और क्यूबा अन्य साम्यवादी देश हैं। इन देशों के साथ चीन के साम्यवादी दल के घनिष्ठ सम्बन्ध हैं।

42

फ्रांस में संवैधानिक विकास तथा पंचम गणतन्त्र के संविधान की विशेषताएँ

(Constitutional Development and Salient Features of the Constitution of Fifth Republic in France)

फ्रांस यूरोप का एक प्रमुख देश है। अत इस देश के संविधान का अध्ययन करना सामयिक और प्रासंगिक बन जाता है। इस देश का क्षेत्रफल 2,13,000 वर्ग मील है, तथा जनसंख्या 5 करोड़ से अधिक है।

फ्रेंच संविधान के अध्ययन का महत्त्व

(Importance of the Study of the French Constitution)

फ्रांस के संविधान का अध्ययन महत्त्वपूर्ण और रोचक है। फ्रांस को शासन प्रणालियों की प्रयोगशाला कहा जाता है। यहाँ सदैव नए संविधानों की सृष्टि और नए राजनीतिक प्रयोग होते रहे हैं। तृतीय गणतन्त्र का संविधान देश का तेरहवाँ लिखित संविधान था और पाँचवाँ गणतन्त्र, जो वर्तमान में लागू है, पन्द्रहवाँ संविधान है। विगत ढाई शताब्दी में यह देश विविध राजनीतिक विचारों का स्रोत रहा है जिन्हें केवल यूरोप के प्रमुख राज्यों ने ही नहीं, प्रत्युत विश्व के अन्य राष्ट्रों ने भी ग्रहण किया है। संसदीय शासन प्रणाली और प्रजातन्त्र के आदर्श स्वतन्त्रता, समानता एवं भ्रातृत्व फ्रांस की राज्य क्रान्ति की ही देन माने जाते हैं।

फ्रेंच शासन-व्यवस्था का अध्ययन इस दृष्टि से भी पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है कि विश्व राजनीति में इस देश का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसकी आन्तरिक राजनीति का यूरोपीय राजनीतिक पर प्रभाव पड़ता है, तभी कहा जाता है कि "जब फ्रांस को सर्दी लगती है तो यूरोप को छींक आ जाती है।" विश्व राजनीति में आज भी यह एक प्रभावशाली शक्ति है और इसकी गणना विश्व की पाँच महान शक्तियों में की जाती है।

सांविधानिक विकास

(Constitutional Development)

29 सितम्बर, 1958 को लागू संविधान को ही वर्तमान संविधान माना जाता है। परन्तु फ्रांस का आधुनिक राजनीतिक एवं सांविधानिक इतिहास सन् 1789 की महान क्रान्ति से आरम्भ होता है, जिसने बोरबन वंश के निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासन का

अन्त किया और फ्रांस की शासन-व्यवस्था में स्थिरता का बीजारोपण किया। इस क्रान्ति के बाद से ही फ्रांस में सांविधानिक प्रयोग की श्रृंखला सी बंध गई है और एक के बाद एक फ्रेंच शासन व्यवस्था मे उलट-फेर होते रहे।

फ्रांस के सांविधानिक इतिहास का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों में कर सकते हैं—

प्राचीन शासन (1700-1830 ई.)

1789 ई. की महान क्रान्ति से पूर्व फ्रांस में निरंकुश शासनतन्त्र था, किन्तु क्रान्ति के बाद 1791 ई. में फ्रांस का प्रथम लिखित संविधान बनाया गया। "1793 ई. में 24 जून को 'जैकोबिन्स' ने प्रथम फ्रांसीसी प्रजातन्त्र शासन की स्थापना की, जिसके द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन, प्रौढ़ मताधिकार तथा 24 सदस्यों की कार्यपालिका की व्यवस्था की गई।"

22 अगस्त, 1795 ई. को संविधान की पुनः रचना की गई। इस संविधान द्वारा विधायिनी शक्ति 500 सदस्यीय 'कौंसिल' और वृद्ध पुरुषों की 'कौंसिल' में निहित की गई। कार्यकारिणी शक्ति को पाँच सदस्यीय 'डाइरेक्टरी' को सौंपा गया, किन्तु चार वर्ष बाद ही 1799 में नैपोलियन बोनापार्ट ने सम्पूर्ण शासन सत्ता स्वयं हथिया ली और एक नए संविधान (1799 का) द्वारा फ्रास को एक नवीन शासन-व्यवस्था प्रदान की जिसे 'कॉन्सलेट' के नाम से जाना गया। सन् 1804 ई. में जब 'कॉन्सलेट' भी समाप्त हो गया, तब नैपोलियन स्वयं फ्रांस का सम्राट बन गया। नैपोलियन के सम्राट् बनते ही फ्रांस के प्रथम प्रजातन्त्र का सूर्यास्त हो गया और फ्रांस में प्रथम साम्राज्य का सूर्योदय हुआ, लेकिन यह प्रथम साम्राज्य अधिक काल तक जीवित न रह सका और 1814 में वाटरलू के स्थान पर नैपोलियन के पराभव के साथ ही यह समाप्त हो गया। अब (1814 ई. में) फ्रांस में पुनः राजतन्त्र की स्थापना हुई। इस समय यह इंग्लैण्ड की भांति संवैधानिक राजतन्त्र था।

द्वितीय गणतन्त्र (1830-1870)

संवैधानिक राजतन्त्रीय शासन-व्यवस्था फ्रांस में सफल न हो सकी और 1830 ई. में यहाँ क्रांति का श्रीगणेश हो गया जिसके फलस्वरूप 10 दिसम्बर, 1848 ई. में फ्रांस में द्वितीय गणतन्त्र की स्थापना की गई। इस गणतन्त्र के संविधान की संरचना अमेरिकन संविधान के आधार पर की गई। संविधान में शक्ति विभाजन के सिद्धान्त का पालन किया गया और जनता को सत्ताधारी घोषित किया गया। कार्यकारी शक्ति एक राष्ट्रपति को सौंपी गई और साथ ही निश्चय हुआ कि प्रौढ़ मताधिकार से निर्वाचित एक सदनीय विधान मण्डल स्थापित किया जाए। यह संविधान भी दीर्घकाल तक स्थाई न रह सका और 1852 ई. में एक नवीन संविधान का निर्माण किया गया जिसने इस द्वितीय गणतन्त्र को द्वितीय साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया।

इस साम्राज्य की स्थापना नैपोलियन तृतीय ने की। 1870 ई. में फ्रांस-जर्मन युद्ध में नैपोलियन तृतीय की पराजय से इस साम्राज्य का भी अन्त हो गया।

तृतीय गणतन्त्र (1870-1940)

अब पहले से ही दृढ़ प्रजातन्त्रीय शक्तियों ने फ्रांस में पुनः प्रजातन्त्र की स्थापना का प्रयास किया जो प्रारम्भ में सफल न हो सका। 1873 ई. में निर्मित एक नवीन समिति ने सार्वजनिक शक्तियों के सगठन का एक विधेयक तैयार किया और इसके

आधार पर 1875 ई. का एक नया विधान बना। इसी समय एक अन्य वैधानिक अधिनियम द्वारा राज सत्तावादियों को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया गया। सन् 1875 ई. में पुन. एक वैधानिक अधिनियम बनाया गया। "1875 ई. का संविधान एक शताब्दी में होने वाले वैधानिक विकास का परिणाम था तथा देश में हुई राजनीतिक क्रान्तियों से प्रभावित था।" इस संविधान द्वारा द्विसदनीय विधान मण्डल की स्थापना हुई और संसदीय कार्यपालिका को अपनाया गया। राजा का स्थान राष्ट्रीय सभा द्वारा निर्वाचित राष्ट्रपति ने ले लिया। 1884 ई. में एक अधिनियम पारित किया गया जिसके अनुसार 1875 के संविधान के दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया गया।

चतुर्थ गणतंत्र (1940-1958)

द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हुआ और 1940 ई. में तृतीय गणतन्त्र को भारी पराजय का सामना करना पड़ा। संसद के अधिकांश सदस्यों के मत में अब यह अनिवार्य हो गया कि—"उस यन्त्र को फेंक दिया जाए जो वृद्धावस्था और अयोग्यता के कारण विभाजित और खण्डित हो गया था।" परिणामस्वरूप एक संवैधानिक विधि द्वारा गणतन्त्र शासन को फ्रांस के लिए एक नवीन एवं उपयुक्त संविधान निर्माण करने का अधिकार मिला। 1875 ई. के संविधान की अनेक धाराएँ समाप्त कर दी गई। इस विधि के आधार पर 1940 ई. से फ्रांस का शासन मार्शल पेंता के विशी-शासन (Vichy Govt.) के हाथों में आ गया, किन्तु इसी मध्य लन्दन में दूसरी फ्रांसीसी सत्ता संगठित की गई और जनरल डिगॉल ने मार्शल पेंता के शासन विधान को मानने से इन्कार कर दिया। "अंग्रेजी शासन ने डिगॉल को स्वतन्त्र फ्रांस का नेता मानकर सशस्त्र सेना संगठित करने का अधिकार दिया। 24 सितम्बर, 1941 ई. को एक अध्यादेश द्वारा फ्रांसीसी राष्ट्रीय समिति की स्थापना की गई....3 जून, 1943 को राष्ट्रीय मुक्ति की फ्रांसीसी समिति स्थापित की गई। यह समिति केन्द्रीय फ्रांसीसी सत्ता घोषित की गई......, 2 अक्तूबर, 1943 ई. की घोषणा के अनुसार डिगॉल की सर्वोच्च सत्ता स्थापित हुई। 3 जून, 1944 ई. को राष्ट्रीय मुक्ति की फ्रांसीसी समिति ने फ्रांसीसी गणतंत्र के अस्थाई शासन का पद ग्रहण किया। 21 अक्तूबर, 1945 ई. तक प्रथम विधान परिषद् का निर्वाचन हुआ, जिसे एक नवीन संविधान बनाने का कार्य सौंपा गया....संविधान का मसविदा अस्वीकृत हो गया....द्वितीय विधान परिषद् द्वारा तैयार किया गया। संविधान 29 सितम्बर, 1946 को विधान परिषद् द्वारा तथा 13 अक्तूबर को निर्वाचक समूहों द्वारा द्वि-संसदीय विधान मण्डल की योजना के कारण स्वीकार कर लिया गया। नवीन संविधान 27 अक्तूबर, 1946 को प्रचारित व लागू किया गया। इसी संविधान के अन्तर्गत फ्रांस के चतुर्थ गणतन्त्र का जन्म हुआ।

पाँचवाँ गणतन्त्र (1958 से)

फ्रांस का चौथा गणतन्त्र भी अधिक समय तक नहीं चल सका। इसके संविधान के द्वारा कोई विशेष क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं हुए और न ही पुरानी शासन-प्रणाली में कोई मूलभूत परिवर्तन किए गए। भूतकाल से कोई पूर्ण अथवा प्रभावशाली सम्बन्ध-विच्छेद नहीं हुआ। शासन के बाह्य आवरण में केवल कुछ परिवर्तन हुए, किन्तु वे भी मूल रूप में नहीं थे। चतुर्थ गणतन्त्र का संविधान किसी राजनीतिक दर्शन विशेष का नहीं बल्कि विविध राजनीतिक मतावलम्बियों के समझौते का परिणाम था और "ये समझौते तर्क नहीं वरन् परिस्थितियों से अनुशासित थे।"

उपर्युक्त परिस्थितियों में यह स्वाभाविक था कि फ्रांस के चौथे गणतन्त्र के उदय के साथ ही अन्त की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। हरबर्ट ल्यूथी (Herbert Leuthy) के शब्दों में, "जिस दिन से चौथे गणतन्त्र का जन्म हुआ, उसी दिन से उसके शव से दुर्गन्ध निकलने लगी और वह सुन्दर मृत्यु से मरने में भी समर्थ न हो सका।" चौथे गणतन्त्र का अन्त केवल साविधानिक उपबन्धों की दुर्बलताओं के कारण ही नहीं हुआ। फ्रांस की औपनिवेशिक समस्या भी इसकी समाप्ति का तात्कालिक कारण बनी। मई, 1958 में इस समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया। अल्जीरिया में फ्रेन्च सैनिकों ने फ्रेन्च सरकार की अल्जीरिया के प्रति दुलमुल नीति के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और जनरल डिगॉल (Gen. De-Gaulle) के हाथों में देश के शासन की बागडोर सौंपने की माँग की। इधर डिगॉल ने भी तत्कालीन फिलिमिलिन मंत्रिमण्डल को यह धमकी दी कि या तो वह राष्ट्रीय सभा (National Council) को भंग करके त्याग-पत्र दे या गंभीर संकट का सामना करे। अन्त में दुर्बल प्रधानमन्त्री ने त्याग-पत्र दे दिया और डिगॉल को नेतृत्व का अवसर मिल गया। चौथे गणतन्त्र की लगभग 12 वर्ष की अवधि में एक-एक करके लगभग 17 मन्त्रिमण्डल बने और बिगड़े। जनरल डिगॉल ने शासन को इस स्थिति से उबार कर स्थायित्व प्रदान करने का दावा किया, और छः महीने तक के लिए शासन की सम्पूर्ण शक्ति के निर्माण का भार भी सौंपा गया। तीन महीने के अन्दर नए सविधान का प्रारूप प्रस्तुत किया गया। सितम्बर, 1958 में उस पर जनमत संग्रह (Referendum) हुआ और जनता ने बहुत बड़े मत से उसे स्वीकार किया। इस संविधान ने वर्तमान पाँचवें गणतन्त्र को जन्म दिया। 5 अक्तूबर, 1958 को इस पंचम गणतन्त्र का संविधान प्रवर्तित हुआ जो इस देश का पन्द्रहवाँ सविधान है। संविधान निर्माण के समय ही जनरल डिगॉल की यह इच्छा थी कि फ्रास में एक ऐसी सशक्त कार्यपालिका का निर्माण हो जो सत्तापूर्वक कार्य करने के योग्य हो एवं फ्रांस की जनता या फ्रांस के समुद्रपारीय अधिकृत देशों के मध्य सम्बन्धों की स्थापना कर सके।"

उनकी इस इच्छा के अनुरूप संविधान का निर्माण किया गया। इस तरह से नवीन संविधान के जनक जनरल डिगॉल ही थे।

पंचम गणतन्त्र के संविधान की विशेषताएँ

(Salient Features of the Constitution of the Fifth Republic)

पंचम गणतन्त्र का संविधान पूर्ववर्ती संविधानों से विभिन्नता लिये हुए था। इसका उद्देश्य राष्ट्र में 'स्थायित्व' (Stability) तथा 'व्यवस्था' (Order) की स्थिति को कायम करना था। पंचम गणतन्त्र के संविधान का मुख्य लक्ष्य देश में एक ऐसी शासन व्यवस्था की स्थापना करना था, जो देश को राजनीतिक अस्थायित्व से मुक्त कर सके। पंचम गणतन्त्र के सविधान के प्रमुख लक्षणों का निम्नानुसार विश्लेषण किया जा सकता है—

(1) निर्मित और लिखित अस्पष्ट संविधान—पाँचवें गणतन्त्र का यह नवीन संविधान 40 पृष्ठों का एक लिखित आलेख है जिसमें प्रस्तावना (Preamble) के अतिरिक्त 15 शीर्षक हैं और 94 धाराएँ हैं। सरल भाषा में लिखा गया यह संविधान लगभग 2 घण्टे में सुविधापूर्वक पढ़ा जा सकता है।

फ्रांस का यह संविधान सुन्दर और पूर्णत. तर्कसंगत नहीं है। इस सम्बन्ध में ब्रोगन ने भी यही लिखा है कि "संविधान का आलेख सुन्दर और पूर्णत. तर्कसंगत नहीं हैं।" (It is to an elegant or totally consistent document) । एक अन्य लेखक ने उसे "दर्जी द्वारा तैयार किए गए कपड़े के समान जनरल डिगॉल की इच्छानुसार बनाया गया संविधान" कहा है। अन्य लेखकों ने इस संविधान के लिए अप्रिय शब्दावली, जैसे—'संसदीय साम्राज्य' (A Parliamentary Empire), 'अव्यावहारिक' (Unworkable), 'अर्द्ध-राजात्मक' (Quasi-Monarchical), 'अर्द्ध-अध्यक्षात्मक' (Quasi-Presidential), 'फ्रांस के संवैधानिक इतिहास में सबसे बुरा प्रारूप' (Worst-Drafted in French Constitutional History), 'अस्थाई' (Ephemeral) का प्रयोग किया।

संविधान के विषय में इस प्रकार के विचार बहुत हद तक इसलिए प्रकट किए गए हैं कि संविधान में किसी मौलिक शासन पद्धति को नहीं अपनाया गया है अपितु उसे विरोधी शासन पद्धतियों की रंगभूमि बना दिया गया है। सभी संविधान संशोधनों की गुंजाइश रहती है। लेकिन फ्रांस के इस नवीन संविधान में यह कार्य बड़ा ही दुष्कर हो गया है क्योंकि इसमें अनेक बहुत ही महत्वपूर्ण संस्थाओं के सम्बन्ध में किसी प्रकार का प्रावधान नहीं दिया गया है। उदाहरणार्थ, समुदाय की संस्थाओं, संसद् के दोनों सदनों रचना और उनकी कार्यप्रणाली के नियम, चुनाव सम्बन्धी कानून, न्यायपालिका के संगठन आदि अनेक मामलों के विषय में संविधान में कोई आवश्यक प्रावधान नहीं मिलता। इन प्रावधानों की कमी या पूर्ति अनेक अध्यादेशों को निकाल कर की गई है जिनमें कुछ का दर्जा "आंगिक कानूनों (Organic Laws) के समान है तो कुछ का सामान्य कानूनों (Ordinary Laws) के समान।"

संविधान अनेक स्थानों पर बड़ा अस्पष्ट है। इसके अनेक प्रावधानों की शब्दावली इस तरह की है कि इसके एक से अधिक अर्थ निकलते हैं। इस तरह यह कहना अनुचित न होगा कि फ्रांस का यह नवीन संविधान निर्मित और लिखित अस्पष्ट संविधान है।

(2) प्रस्तावना—सन् 1946 का चौथे गणतन्त्र का संविधान एक प्रस्तावना (Preamble) से प्रारम्भ होता था जिसमें अन्य संविधानों की भाँति संविधान के स्रोत, आदर्शों, लक्ष्यों एवं राजनीतिक ढाँचे आदि की घोषणा नहीं की गई थी बल्कि (क) नागरिक अधिकारों, (ख) अन्तर्राष्ट्रीय आभार (International Obligation) तथा (ग) फ्रेंच संघ की चर्चा की गई थी। नागरिक अधिकारों के सम्बन्ध में प्रस्तावना में कहा गया था कि सभी मनुष्यों को बिना भेदभाव के अविच्छेद तथा पवित्र (Inalinable and Secred) जीवन जीने का अधिकार है। इसमें प्रमुख मानव-अधिकारों को सूचीबद्ध भी किया गया था। उदाहरणार्थ, स्त्रियों और पुरुषों को समान अधिकार, नागरिकों को आजीविका प्राप्ति का अधिकार, कार्य करने के कर्त्तव्य, अधिकार और हितों की रक्षा का अधिकार, व्यापारिक संघ में सम्मिलित होने का अधिकार, कानून की सीमाओं के अन्तर्गत हड़ताल करने का अधिकार प्रदान किए गए थे। राष्ट्र की ओर से प्रत्येक व्यक्ति एवं परिवार को उसके विकास के लिए आवश्यक दशाओं की उचित व्यवस्था का विश्वास दिलाया गया था। अन्तर्राष्ट्रीय आभार की दृष्टि से प्रस्तावना में फ्रांस द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का सम्मान करने, दूसरे देशों को जीतने के लिए युद्ध नहीं करने और किसी देश की स्वतन्त्रता के विरुद्ध अपनी सेनाओं का प्रयोग नहीं करने का संकल्प व्यक्त किया गया था। फ्रेंच संघ के संदर्भ में प्रस्तावना में कहा गया था कि फ्रांस और उसके

समुद्र-पार उपनिवेश बिना जाति या धर्म के भेदभाव के अधिकारों व कर्तव्यों की समानता के आधार पर एक संघ अथवा समाज (Community) का निर्माण करेंगे।

पंचम गणतन्त्र के संविधान की प्रस्तावना में भी उपर्युक्त तीनों मूल बातों को समाविष्ट किया गया है। अधिकारों या सार्वभौमिकता सम्बन्धी सिद्धांतों की चर्चा न करके यह कहा गया है कि "फ्रांस की जनता सन् 1789 की घोषणा और प्रतिभाषी मानव-अधिकार और राष्ट्रीय सार्वभौमिकता के सिद्धांतों को, जिन्हें सन् 1946 के संविधान द्वारा अपनाया और बढाया गया, स्वीकार करती है।" इस प्रकार स्पष्ट है कि पंचम गणतन्त्र के संविधान में अन्तर्राष्ट्रीय आभार और फ्रेंच समुदाय को मान्यता दी गई है; और इस गणतन्त्र के नागरिकों को वे अधिकार प्राप्त हैं जिन्हें 1789 की क्रान्ति ने उद्घोषित किए थे और 1946 के संविधान में अनुमोदित किए गये थे। इन अधिकारों की यह एक विशेषता है कि ये समाजवादी एव साम्यवादी विचारों से ओत-प्रोत हैं। इनमें आर्थिक एवं सामाजिक अधिकारों पर बल दिया गया है। इन्हें अमेरिकन और भारतीय मौलिक अधिकारों की भाँति वैधिक मान्यता प्रदान नहीं की गई है। इनकी तुलना हम भारतीय सविधान के राज्य के नीति-निर्देशक तत्त्वों से कर सकते हैं।

(3) जन-सम्प्रभुता—सविधान में धाराएँ 2, 3 व 4 प्रभुता से सम्बन्धित हैं। धारा 2 के अनुसार फ्रास अविभाज्य, धर्मनिरपेक्ष, प्रजातांत्रिक और सामाजिक गणतन्त्र है। विधान की दृष्टि से समस्त नागरिकों को मूल-जाति अथवा धर्म से अप्रभावित समानता का आश्वासन दिया गया है। स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व ही राष्ट्र के आदर्श हैं। धारा 3 के अनुसार राष्ट्रीय प्रभुता जनता में निहित है और उसका प्रयोग जनता अपने प्रतिनिधियों तथा लोक-निर्णय द्वारा करेगी। मतदान चाहे प्रत्यक्ष हो या परोक्ष, परन्तु वह सदा सार्वजनिक, समान तथा गुप्त होगा। धारा 4 के अनुसार राजनीतिक दल समूह और मताधिकार की अभिव्यक्ति में साधक होंगे, उन्हें स्वतन्त्रतापूर्वक अपना निर्माण व कार्य करने की छूट होगी, किन्तु इसी शर्त पर कि वे राष्ट्रीय प्रभुता और प्रजातन्त्र के सिद्धांतों का पूरा आदर करेंगे।

उपर्युक्त धाराओं से यह स्पष्ट होता है कि फ्रांस नवीन संविधान के अन्तर्गत एक धर्मनिरपेक्ष प्रजातान्त्रिक व सामाजिक गणतन्त्र है जिसका उद्देश्य स्वतन्त्रता, समानता व बन्धुत्व का है। संविधान के अनुसार राष्ट्रीय प्रभुता का निवास जनता में है और सभी नागरिकों के अधिकार समान हैं। यह सविधान, विश्व के अन्य सब संविधानों की अपेक्षा, राजनीतिक दलों का उल्लेख करता है जिन्हें राष्ट्रीय प्रभुता व प्रजातन्त्र के सिद्धांतों का पालन करते हुए कार्य करने की स्वतन्त्रता दी गई है।

(4) संसदात्मक और अध्यक्षात्मक व्यवस्था का समन्वय—नवीन संविधान में संसदीय प्रणाली को अपनाया गया है, किन्तु एक तरह से यह अर्द्ध-संसदीय प्रणाली ही है क्योंकि मन्त्रिमण्डल संसद के सम्मुख पूर्णतः उत्तरदायी नहीं है। प्रधानमन्त्री का चुनाव राष्ट्रपति करता है जिसको साधारण शक्तियों के साथ-साथ अनेक असाधारण शक्तियाँ प्राप्त हैं। फ्रांस का राष्ट्रपति केवल नाममात्र का राज्याध्यक्ष नहीं है। अनेक विषयों में वह अमेरिकन राष्ट्रपति के समक्ष है। यदि संसद् मन्त्रिमण्डल के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव पास करता है तब भी मन्त्रिमण्डल चल सकता है क्योंकि उसका उत्तरदायित्व राष्ट्रपति के

प्रति है, संसद् के प्रति नहीं । फ्रांसीसी राष्ट्रपति पर अभियोग भी नहीं चलाया जा सकता । नवीन फ्रांसीसी संविधान में भी अमेरिकन संविधान का अनुसरण करते हुए कार्यपालिका को विधायिका से अलग रखने का प्रयत्न किया गया है । संविधान की उपर्युक्त विचित्रताओं के कारण ही डारोथी पिकिल्स ने कहा है कि "यह संविधान दो विरोधी सिद्धांतों का मिश्रण है । प्रथम सिद्धांत गणतन्त्रीय संसदात्मक शासन (Republican Parliamentary Government) का है और द्वितीय अध्यक्षात्मक शासन का । राज्य और शासन के अध्यक्ष अलग-अलग हैं ।" ब्रोगन ने स्पष्ट रूप से कहा है कि "यह न तो अमेरिकन ढंग का अध्यक्षात्मक संविधान है और न अंग्रेजी ढंग का संसदात्मक संविधान ही, यह तो दोनों का मेल है ।" ऐरन का मत है कि "शासन वस्तु स्थिति की अपेक्षा कानूनी दृष्टि से संसदात्मक रहेगा ।

(5) एकात्मक और केन्द्रीकृत शासन प्रणाली—नवीन संविधान ने केन्द्रीयकरण की उस परम्परा को बनाए रखा है जो फ्रांस के राजनीतिक और संविधानिक इतिहास का एक स्थाई लक्षण रहा । सम्पूर्ण देश का शासन एक ही केन्द्र से संचालित होता है । स्थानीय प्रशासन के ऊपर केन्द्र सरकार के नियंत्रण के बारे में इसने कोई परिवर्तन नहीं किया है ।

(6) दुष्परिवर्तनशीलता—यह संविधान दुष्परिवर्तनीय है । अनुच्छेद 89 में संशोधन-प्रक्रिया का वर्णन किया गया है जो साधारण विधायी प्रक्रिया से भिन्न है । इस अनुच्छेद 89 का सार इस प्रकार है—"संविधान में संशोधन के लिए पहल करने की शक्ति प्रधानमन्त्री के प्रस्ताव पर गणतन्त्र के राष्ट्रपति और पार्लियामेंट के सदस्यों के हाथों में रहेगी । सरकारी या संसद का संशोधन सम्बन्धी विधेयक एसेम्बलियों द्वारा एक ही रूप में पास होना आवश्यक है । संशोधन लोक-निर्णयों द्वारा स्वीकृत हो जाने पर पक्का हो जाएगा, परन्तु प्रस्तावित संशोधन लोक निर्णय के लिए तब तक प्रस्तुत न किया जाएगा जब तक कि गणतन्त्र का राष्ट्रपति उसे काँग्रेस में आहूत पार्लियामेंट के सामने पेश करने का निर्णय करे (Decides to submit it to parliament convened in Congress) ।" ऐसी दशा में प्रस्तावित संशोधन कुल डाले गए मतों के 3/4 के बहुमत के पक्ष में होने पर ही स्वीकृत होगा । जबकि देश की भौगोलिक एकता को खतरा हो (When the integrity of the territory is in jeopardy) तो कोई संशोधन सम्बन्धी प्रक्रिया न की जाएगी । शासन के गणतन्त्रीय रूप के विषय में कोई संशोधन नहीं किया जा सकेगा ।

(7) नागरिकों के मौलिक अधिकार और कर्तव्य—यद्यपि संविधान में मौलिक अधिकारों के बारे में कोई अध्याय नहीं जोड़ा गया है, तथापि संविधान नागरिकों को मौलिक स्वतन्त्रताएँ प्रदान करता है । संविधान की प्रस्तावना, उसका प्रथम अध्याय और अनुच्छेद 82 गणराज्य के परम्परागत सिद्धांतों तथा 1789 व 1946 के मानव अधिकार घोषणा-पत्रों में विश्वास प्रकट करते हैं । अनुच्छेद 66 में कहा गया है कि "किसी भी नागरिक को निरकुश ढग से बन्दी बनाकर नहीं रखा जा सकता है ।" संविधान ने इस सिद्धात को लागू करने का उत्तरदायित्व न्यायपालिका पर छोड़ा है । पचम गणतन्त्र के संविधान की प्रस्तावना में ही अधिकारों और कर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया है । फ्रांस के

नागरिकों के मुख्य अधिकारों में काम पाने का अधिकार, हड़ताल करने का अधिकार, स्त्रियों और पुरुषों के समान अधिकारों की व्यवस्था, नागरिकों को स्वास्थ्य की रक्षा, भौतिक सुरक्षा, आराम और अवकाश का अधिकार, विदेशों को फ्रांस में शरण प्राप्त करने का अधिकार, संगठन बनाने का अधिकार, व्यक्ति और परिवार को सरकार से अपने विकास की आवश्यक परिस्थितियाँ प्राप्त करने जैसे अधिकार प्रदान किये गये हैं।

फ्रांस में अधिकारों की उक्त व्यवस्था देश को उदारवादी लोकतान्त्रिक गणराज्य के रूप में प्रतिष्ठित करती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि फ्रांस में नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करने की कोई संवैधानिक व्यवस्था नहीं की गई है।

(8) **समाज**—पंचम गणतन्त्र के संविधान की धारा 1 एवं 77-87 में समाज (The Community) के एक नवीन विचार का प्रतिपादन किया है। धारा 1 में कहा गया है कि गणतन्त्र एवं समुद्र पारीय उपनिवेशों की जनता जो नए संविधान को स्वीकार कर ले, इस प्रकार एक नए समाज की स्थापना करेंगी। समाज अपने आंगिक राज्यों की समानता और संगठन पर आधारित है। धारा 77 के अनुसार आंगिक राज्य स्वाधीन होंगे। वे स्वयं अपने पर प्रजातन्त्रीय शासन करेंगे और स्वयं ही अपने कार्यों का प्रबन्ध करेंगे। समाज में केवल एक नागरिकता होगी। नियमों और कर्त्तव्यों की दृष्टि से सभी नागरिक समान होंगे। धारा 78 के अनुसार समाज को नीति, सुरक्षा, आर्थिक नीति, मुद्रा प्रणाली आदि पर पूर्ण अधिकार होगा। न्याय, उच्च शिक्षा, सामूहिक बाह्य आवागमन के साधन एवं रेडियो सम्बन्धी विषयों पर साधारणतया समाज का नियन्त्रण होगा। धारा 80 के अधीन राष्ट्रपति समाज की अध्यक्षता और उसका प्रतिनिधित्व करेगा। समाज में एक कार्यकारिणी परिषद्, सीनेट तथा मध्यस्थ न्यायालय होगी। धारा 81 के अनुसार समाज के सदस्य-राज्य राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लेंगे और राष्ट्रपति प्रत्येक सदस्य-राज्य को अपना प्रतिनिधि नियुक्त करेगा। धारा 82 के अन्तर्गत कार्यकारिणी परिषद् का सभापतित्व समाज का राष्ट्रपति करेगा। गणतन्त्र का प्रधानमन्त्री और संगठित राज्यों की सरकारों को प्रदान तथा समाज के सामूहिक विषयों के मंत्री इस परिषद् के सदस्य होंगे। धारा 83 के अनुसार सीनेट के सदस्य गणतन्त्र की संसद् तथा सदस्य राज्यों की संसदीय परिषदों के प्रतिनिधि होंगे। धारा 86 में किसी भी सदस्य राज्य के समाज से बाहर निकलने की रीति निर्धारित की गई है।

(9) **समझौतों, संधियों तथा अन्तर्राष्ट्रीय कानून सम्बन्धी प्रावधान**—संविधान की धारा 88 में बताया गया है कि "गणतन्त्र या समुदाय या समाज उन राज्यों से समझौते कर सकता है जो अपनी सभ्यताओं को विकसित करने के लिए समुदाय या समाज से मिलकर संघ बनाना चाहे।" संविधान की प्रस्तावना में अन्तर्राष्ट्रीय कानून सम्बन्धी सिद्धान्त पर प्रकाश डाला गया है कि "फ्रेंच गणतन्त्र अपनी परम्परा के प्रति निष्ठा रखते हुए अन्तर्राष्ट्रीय कानून के नियमों का पालन करेगा। वह कभी विजय के लिए युद्ध नहीं करेगा और किसी भी राष्ट्र की स्वतन्त्रता के विरुद्ध कभी भी शस्त्रों का प्रयोग नहीं करेगा" तथा साथ ही "पारस्परिक शर्तों के अनुसार, फ्रांस शांति के संगठन व प्रतिरक्षण के लिए अवश्य प्रभुता की सीमाओं को स्वीकार करता है।" संविधान में शामिल उपर्युक्त सिद्धान्त बड़े ही श्रेष्ठ हैं, क्योंकि इससे मानवता की रक्षा की दिशा में एक ठोस व्यवस्था की गई है।

(10) शक्तिशाली राष्ट्रपति—पंचम गणतन्त्र के संविधान की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता राष्ट्रपति की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन है। जहाँ 1946 के संविधान में राष्ट्रपति ब्रिटिश सम्राट् की भाँति नाममात्र का सांविधानिक प्रधान था वहाँ 1958 के संविधान के अन्तर्गत एक अत्यन्त शक्तिशाली राष्ट्राध्यक्ष बनाया गया है। राष्ट्रपति की पहले की शक्तियों में आमूल परिवर्तन किए गए हैं, उसके परमाधिकारों में वृद्धि हुई है तथा राष्ट्रीय सभा की शक्तियों में अत्यधिक कमी हुई है और मंत्रि-परिषदीय उत्तरदायित्व को कम कर दिया गया है। राष्ट्रपति को अनेक वैयक्तिक अधिकार दिए गए हैं जिनका वह स्वेच्छा से प्रयोग कर सकता है। राष्ट्रपति ही मंत्रिमण्डल और प्रधानमन्त्री की नियुक्ति करता है तथा प्रधानमन्त्री के परामर्श से राष्ट्रीय सभा को भंग कर सकता है। संविधान की धारा 16 के अन्तर्गत राष्ट्रपति को आपात्कालीन शक्तियाँ (Emergency Powers) प्रदान की गई हैं जिनका निर्णायक वह स्वयं है। वस्तुतः पंचम गणतंत्र में राष्ट्रपति की स्थिति सर्वोपरि हो गई है। उसकी तुलना में मन्त्रियों की शक्ति बहुत ही कम है। वे संसद् के सदस्य नहीं हो सकते। संसद् की कार्यवाई में वे अवश्य भाग ले सकते हैं, परन्तु मतदान नहीं कर सकते। इसीलिए आलोचकों ने इस संविधान को "राजतन्त्रात्मक संविधान (Monarchist Constitution) और संसदीय राजतन्त्र (Parliamentary Constitution)" तक कह डाला है।

(11) शक्ति विभाजन—पंचम गणतन्त्र के संविधान में शक्ति विभाजन के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की गई है। कार्यपालिका को व्यवस्थापिका से पृथक् करने का प्रयास किया गया है। राष्ट्रपति का निर्वाचन संसद् द्वारा न होकर एक निर्वाचक मण्डल द्वारा किये जाने की व्यवस्था है। मंत्रियों को एक तरफ तो संसद की सदस्यता से वंचित किया गया है, लेकिन दूसरी तरफ उन्हें उसके प्रति उत्तरदायी बना दिया गया है। इस प्रकार शक्ति विभाजन की एक अनूठी व्यवस्था का समावेश किया गया है, जिससे शासन का अजीब स्वरूप बन गया है इससे शासन-व्यवस्था का रूप न तो संसदात्मक ही रह गया है और न अध्यक्षात्मक ही। शक्तियों का पूर्ण पृथक्करण भी नहीं हो पाया है।

(12) धर्मनिरपेक्ष राज्य—धर्मनिरपेक्षता पंचम गणतन्त्र के संविधान की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता है। देश के सभी लोगों को अपने धार्मिक विश्वासों को मानने, धर्म के आधार पर किसी भी व्यक्ति को सरकारी पद या शासन-पद धारण करने से वंचित नहीं रहने तथा राज्य के कोई राजकीय धर्म नहीं होने जैसे तथ्यों के आधार पर फ्रांस को धर्मनिरपेक्ष राज्य की संज्ञा दी जा सकती है।

(13) गणतन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था—पंचम गणतन्त्र का संविधान देश में गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना करता है। संविधान के अनुच्छेद 2 के अन्तर्गत 'फ्रांस को एक अविभाज्य, धर्मनिरपेक्ष, प्रजातन्त्रात्मक और सामाजिक गणतन्त्र' के रूप में घोषित किया गया है।

(14) राजनीतिक दलों को संविधान द्वारा मान्यता—फ्रांस के पंचम गणतन्त्र के संविधान के अनुच्छेद 4 में देश के राजनीतिक दलों को संविधान द्वारा मान्यता दी गई है। इस प्रकार पहली बार संविधान द्वारा न केवल राजनीतिक दलों का निर्देशन किया गया है, बल्कि उन्हें राजनीतिक जीवन के एक अंग के रूप में भी स्वीकार कर लिया गया है।

(15) न्यायिक पुनरावलोकन का अभाव--फ्रास के सविधान में न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review) के लिए कोई स्थान नहीं है। इसके विपरीत सयुक्त राज्य अमेरिका तथा भारत के सविधान में न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था का प्रचलन है। इस तरह से फ्रान्स में न्यायपालिका की स्थिति उतनी शक्तिशाली नहीं है, जितनी सयुक्त राज्य अमेरिका या फ्रान्स की है।

(16) संवैधानिक परिषद् की व्यवस्था—फ्रास के पंचम गणतन्त्र के सविधान में एक ऐसे अभिकरण की स्थापना की गई है जो शासकीय और ससदीय नियमों की वैधानिकता पर विचार करके अपने निर्णय दे। इसको सावैधानिक परिषद् (Constitutional Council) का नाम दिया गया है। इस परिषद् का विधान के लिए मान्यता निश्चित करवाने का कोई उत्तरदायित्व नहीं है। यह अपना मत तभी दे सकती है जब इससे किसी विषय पर परामर्श किया जाए। कोई भी नागरिक अथवा न्यायालय इससे सीधे प्रार्थना नहीं कर सकता। इस प्रकार यह किसी भी रूप में संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के समान नहीं कही जा सकती।

(17) परामर्शदात्री सभा की व्यवस्था—पचम गणतन्त्र के संविधान में देश के लिए दो परामर्शदात्री सभाओं की व्यवस्था की गई है। ये हैं—(क) आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् तथा (ख) न्यायपालिका की उच्चतर परिषद्।

(18) मन्त्री और संसद सदस्य के रूप में एक साथ रहना संभव नहीं—संविधान ने यह असम्भव बना दिया है कि एक व्यक्ति मत्री और संसद सदस्य एक साथ बना रह सके। यदि राष्ट्रीय सभा या सीनेट का कोई सदस्य मंत्री बना दिया जाता है तो उसे सदन की सदस्यता से त्याग-पत्र देना होता है। यदि मंत्री को किसी भी कारण से अपना पद छोडना पडता है तो वह फिर से ससद् के किसी सदन में शेष अवधि के लिए सदस्य की हैसियत से भाग नहीं ले सकता है।

फ्रान्स का पंचम् गणतन्त्र का यह संविधान आलोचना का शिकार भी बना है। जैसा कि समाजवादी नेता क्रिश्चियन पेन्यू (C. Pineau) का कहना है—"मैं नहीं कहता कि 1946 का सविधान अच्छा था, परन्तु 1958 का संविधान उससे निश्चय ही बुरा है क्योंकि यह कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में संघर्ष उत्पन्न कराता है।" अन्य आलोचकों ने इस सविधान को अर्ध-राजतन्त्रात्मक (Quasi-Monarchical), अर्ध-अध्यक्षात्मक (Quasi-Presidential) तथा संसदीय साम्राज्य (Parliamentary Empire) की संज्ञा है। डोरोथी पिकल्स (D. Pickles) ने लिखा है कि "फ्रैंच जनता अपने विचारों और अभिव्यक्तियों का जिस तार्किकता अथवा स्पष्टता पर गर्व करती है उसके उदाहरण के रूप में वर्तमान सविधान को याद नहीं किया जा सकता।"

43

कार्यपालिका : राष्ट्रपति

(The Executive : President)

फ्रान्स में राष्ट्रपति को फ्रांस की कार्यपालिका का प्रधान माना जाता है। वह संवैधानिक और वास्तविक, दोनों ही दृष्टियों से राज्य का प्रधान है। उसे विश्व में शक्तिशाली कार्यपालिका की संज्ञा दी जाती है।

पंचम गणतन्त्र का राष्ट्रपति
(President of Fifth Republic)

पंचम गणतन्त्र के पहले फ्रांस के राष्ट्रपति पद का स्वरूप वैसा ही था जैसा कि ब्रिटेन में राजा का या रानी का है। राष्ट्रपति राज्य का अध्यक्ष था और शासन का अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता था। यद्यपि राष्ट्रपति राष्ट्र का प्रतीक था एवम् शासन के सभी कार्य उसी के नाम से किए जाते थे, तथापि वास्तविक कार्यपालिका शक्ति मन्त्रिमण्डल में निहित थी। संविधान में यह स्पष्ट प्रावधान था कि राष्ट्रपति के प्रत्येक आदेश पर सम्बन्धित मंत्री के प्रति-हस्ताक्षर (Counter Signature) अवश्य हों। राष्ट्रपति की इसी स्थिति की ओर संकेत करते हुए सर हेनरी मैन ने कहा था, "इंग्लैंड का सांविधानिक सम्राट राज्य (Reign) करता है, शासन (Rule) नहीं करता। संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति राज्य नहीं करता अर्थात् राजा नहीं होता, तथापि वह शासन करता है, लेकिन फ्रेंच गणतन्त्र का राष्ट्रपति न तो राजा ही है और न शासक ही।" इस तरह स्पष्ट है कि फ्रांस के राष्ट्रपति का पद कोई शक्तिशाली पद नहीं था। कतिपय मामलों में उसे स्व-विवेकीय शक्तियाँ प्राप्त थीं। प्रधानमन्त्री के चयन करने में वह इस शक्ति का प्रयोग कर सकता था।

परन्तु पंचम गणतन्त्र में राष्ट्रपति की शक्ति में अत्यधिक वृद्धि की गई और मन्त्रि-परिषद् एवम् संसद की शक्तियों में भारी कमी की गई। फ्रांस के ही भूतपूर्व प्रधानमंत्री मैंडीज फ्रौंस (Mendes France) के अनुसार, "राष्ट्रपति एक अवंशानुगत राजा बनाया गया है और उसे ऐसी शक्तियाँ प्रदान की गई हैं कि वह स्वयं को एक वैधानिक अधिनायक बना सकता है।" वस्तुत: वर्तमान संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन का सबसे शक्तिशाली और केन्द्रीय अंग बन गया है। वह राज्य का वास्तविक अध्यक्ष, राष्ट्र का प्रतीक, शासन का प्रमुख और राष्ट्रीय पंच (Arbitrator National) है।

संविधान के दूसरे अध्याय के पाँच से लेकर 19 तक के 15 अनुच्छेद राष्ट्रपति और उसकी शक्तियों का वर्णन करते हैं। ये अनुच्छेद राष्ट्रपति के सम्बन्ध में जनरल डिगॉल के उन विचारों को प्रतिबिम्ब करता है जिनका उल्लेख करते हुए 1946 ई. में उन्होंने कहा था कि "फ्रांस को ऐसे शासन की आवश्यकता है जिसमें राष्ट्रपति की शक्ति हमारी 'स्थाई अनिश्चितता' के परिणामों को दूर कर सके।" इस तरह फ्रांस में राष्ट्रीय जीवन में अराजकता तथा अव्यवस्था को समाप्त करने तथा राजनीतिक स्थायित्व कायम करने की दृष्टि से राष्ट्रपति पद को शक्तिशाली बनाया गया।

राष्ट्रपति का निर्वाचन
(Election of the President)

फ्रांस के चतुर्थ गणतन्त्र में राष्ट्रपति का निर्वाचन संसद के दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में गुप्त मतदान तथा बहुमत से होता है, किन्तु पंचम गणतन्त्र में उसके निर्वाचन के लिए निर्वाचक मडल (Electoral College) की व्यवस्था की गई है। संविधान की धारा 6 में उल्लिखित है कि "राष्ट्रपति का निर्वाचन 7 वर्षों के लिए होगा। निर्वाचन के लिए एक निर्वाचनाधिकरण या निर्वाचक मण्डल की रचना की जाएगी जिससे सदस्यों में लोकतन्त्र की संसद, साधारण परिषदों तथा समुद्रपारीय उपनिवेशों की परिषदों के सदस्य और प्रदेशों की परिषदों के निर्वाचित प्रतिनिधि सम्मिलित होंगे।" संविधान की उक्त व्यवस्था से स्पष्ट होता है कि राष्ट्रपति के चुनाव हेतु निर्वाचन मण्डल में निम्नलिखित सदस्य होंगे—

(1) संसद के दोनों सदनों—राष्ट्रीय सभा और सीनेट के कुल सदस्य,

(2) समस्त मण्डलों की परिषदों के सदस्य,

(3) समुद्रपारीय अधिकृत प्रदेशों की सीमाओं के सदस्य, तथा

(4) नगरपालिका परिषदों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि।

राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लेने वाला सबसे बड़ा समूह स्थानीय अर्थात् नगरपालिका परिषदों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों का होता है। इस बारे में संविधान की धारा 6 में कहा गया है—"1,000 से कम जनसंख्या वाले कम्यूनों के मेयर; 1,000 से 2,000 तक जनसंख्या वाले कम्यूनों के मेयर और उपमेयर; 2,000 से 2,500 तक जनसंख्या वाले कम्यूनों के मेयर तथा उपमेयर और एक-एक निर्वाचित काउन्सिलर; 2,501 से 3,000 तक जनसख्या वाले कम्यूनों के मेयर और दो प्रथम उपमेयर; 3001 से 6,000 जनसख्या तक मेयर, प्रथम दो उपमेयर या सहायक मेयर और 3 सबसे वरिष्ठ काउन्सिलर। 9,000 से अधिक जनसंख्या वाली नगर परिषदों का प्रतिनिधित्व उनके समस्त सदस्य करते हैं। 30,000 से अधिक आबादी वाले कम्यून प्रथम 30,000 के बाद प्रत्येक 1,000 निवासियों के पीछे 1 प्रतिनिदि चुनते हैं।" इस योजना की नवीनता यह है कि कम्यून्स या नगरपालिकाओं के प्रतिनिधियों को राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लेने की व्यवस्था कर फ्रान्स के राष्ट्रपति को संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति की भाँति राष्ट्र का प्रतिनिधि बनाया गया है। निर्वाचक मण्डल में शहरी नगरपालिकाओं की अपेक्षा देहाती नगरपालिकाओं को अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया है। कुछ राजनीतिक विश्लेषण-कर्त्ताओं को भय है कि "निर्वाचक मण्डल में ग्रामीण फ्रान्स की प्रधानता है, अतः ग्रामीण फ्रान्स औद्योगिक' फ्रान्स पर अपनी छाँट का राष्ट्रपति लाद सकेगा।"

संविधान में यह स्पष्ट किया गया है कि राष्ट्रपति पद के लिए निर्वाचित होने वाले प्रत्याशी के लिए प्रथम मतदान में ही पूर्ण बहुमत प्राप्त करना आवश्यक है। लेकिन अगर ऐसा न हो सके तो संविधान की धारा 7 के अनुसार राष्ट्रपति के चुनाव में "द्वितीय मतपत्र व्यवस्था" (Second Ballot) का सहारा लिया जाता है, जिसमें तुलनात्मक बहुमत से उसे निर्वाचक किया जाता है। संविधान में यह भी व्यवस्था कि राष्ट्रपति का चुनाव "कार्य करते राष्ट्रपति की अवधि पूरी होने के कम से कम 20 दिन या अधिक से अधिक 35 दिनों के पूर्व" हो जाना चाहिए।

राष्ट्रपति का कार्यकाल—राष्ट्रपति का कार्यकाल 7 वर्ष के लिए होता है। उसके पुनर्निर्वाचन के सम्बन्ध में संविधान में कुछ नहीं कहा गया है। संविधान में यह भी व्यवस्था की गई है कि यदि किसी कारण फ्रान्स गणतन्त्र का राष्ट्रपति न हो तो उसकी जगह पर सीनेट का अध्यक्ष राष्ट्रपति का कार्य होगा।

राष्ट्रपति पद की योग्यताएँ—इस सम्बन्ध में संविधान में यह व्यवस्था है कि "राष्ट्रपति पद के प्रत्याशी स्वयं अपनी उम्मीदवारी की औपचारिक घोषणा करेंगे, राष्ट्रपति पद के लिए कोई योग्यता अनिवार्य नहीं मानी गई है। आयु या निवास भी तत्सम्बन्धी कोई भी शर्त इस विषय में नहीं लगाई गई है।"

राष्ट्रपति की निर्वाचन प्रक्रिया की आलोचना—राष्ट्रपति की निर्वाचन प्रक्रिया की सबसे प्रमुख आलोचना यह की जाती है कि निर्वाचन मण्डल में ग्रामीण मतों को प्रधानता दी गई है। अतः ग्रामीण फ्रान्स औद्योगिक फ्रान्स पर अपनी पसन्द का राष्ट्रपति लाद सकेगा। किन्तु इस आलोचना का प्रत्युत्तर देते हुए पूर्व प्रधानमन्त्री डेनरे ने कहा है "फ्रान्स छोटे गाँवों का देश है।"

निर्वाचन प्रक्रिया की श्री डुबरगर ने यह आलोचना की है कि राष्ट्रपति के निर्वाचन में उच्चपद प्राप्त व्यक्ति ही अधिकांशतः भाग लेते हैं। लेकिन यह आलोचना विशेष महत्व नहीं रखती। ग्रामों के मेयरों को उच्चपद प्राप्त व्यक्ति नहीं माना जाना चाहिए।

डारोथी पिकिल्स ने राष्ट्रपति की निर्वाचन प्रक्रिया में निम्नांकित दो दोष बताए हैं—

(1) "यदि निर्वाचन में भाग लेने वाले उम्मीदवार दो-तीन से अधिक हों तो दूसरी बार मतदान होने पर भी यह सम्भव है कि निर्वाचित व्यक्ति को कुल मतों का बहुमत प्राप्त न हो।"

(2) "यह प्रणाली सरलता से परिवर्तनीय नहीं है, क्योंकि इस प्रणाली का समावेश संविधान में कर दिया गया है।"

पिकिल्स की इन उपर्युक्त आलोचनाओं में सत्यता अवश्य है किन्तु यह भी महत्त्वपूर्ण है कि राष्ट्रपति के चुनाव का आधार इतना वृहत् रखा गया है कि निर्वाचित होने वाला व्यक्ति राष्ट्र का प्रतिनिधि कहला सके।

राष्ट्रपति के कार्य और उसकी शक्तियाँ

(Powers & Functions of the President)

संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति की जिन शक्तियों का उल्लेख किया गया है उनसे यही प्रकट होता है कि उसकी कुछ शक्तियाँ अपनी हैं और कुछ शक्तियाँ ऐसी हैं ।৮ . । वह प्रधानमंत्री के साथ प्रयोग करता है। संविधान राष्ट्रपति को व्यापक शक्तियाँ प्रदान करता है, जो अग्रानुसार है—

कार्यपालिका शक्तियाँ

संविधान की धारा 5 के अनुसार राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि वह यह देखे कि सविधान का संरक्षण तथा अनुरक्षण है। उसे यह निश्चित करना होगा कि 'जन-शक्तियाँ' उचित प्रकार से अपना-अपना कार्य करती रहें तथा राष्ट्र का कार्य विधिवत् रूप से संचालित हो। संविधान राष्ट्रपति को राष्ट्र की स्वतन्त्रता, राष्ट्रीय क्षेत्र की एकता तथा समाज के समझौतों व सन्धियों के सम्मान के प्रति उत्तरदायी बनाता है।

सन् 1946 के सविधान में प्रधानमंत्री की नियुक्ति और मंत्रि-मंडल के निर्माण की शक्ति ससद के हाथ में थी। राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमत्री पद के लिए मनोनीत को राष्ट्रीय सभा (National Assembly) में जाकर उसका विश्वास प्राप्त करना अनिवार्य था। किन्तु इसके विपरीत पंचम गणतन्त्र के सविधान में मंत्रिमण्डल की नियुक्ति करने का अधिकार राष्ट्रपति को प्रदान किया गया है। प्रधानमंत्री के लिए अब यह आवश्यक नहीं रहा है कि वह अपनी नियुक्ति के बाद राष्ट्रीय सभा का विश्वास प्राप्त करे। इसके अतिरिक्त मंत्रि-मंडल के सदस्य संसद के सदस्य भी नहीं होते। राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सिफारिश पर मंत्रि-मंडल के सदस्यों को पदच्युत भी कर सकता है। राष्ट्रपति ही मत्रि-मंडलीय बैठकों का सभापतित्व करता है।

सन् 1946 के सविधान में राष्ट्रपति के प्रत्येक कार्य पर किसी न किसी मंत्री के प्रति-हस्ताक्षर (Counter-signature) होने आवश्यक थे। फलस्वरूप राष्ट्रपति की शक्ति औपचारिक थी और मत्रियों की वास्तविक। परन्तु वर्तमान संविधान के अन्तर्गत कार्यपालिका शक्तियों को दो भागो में विभाजित किया गया है। एक भाग के कार्यों के लिए राष्ट्रपति को मंत्रियो के परामर्श के अनुसार कार्य करना अनिवार्य है, अर्थात् इस भाग के कार्यों के लिए सम्बन्धित मत्री के प्रति-हस्ताक्षर होने ही चाहिए। दूसरे भागों में कुछ ऐसे कार्य हैं जिनमे राष्ट्रपति मत्रियों के परामर्श के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य नहीं है। उसके इन कार्यों से सम्बन्धित आदेशों के लिए वह आवश्यक नहीं है कि प्रधानमंत्री या विभागीय मंत्री अपने प्रति-हस्ताक्षर करें। धारा 19 के अनुसार 8, 11, 12, 16, 18, 54, और 61 की धाराओं से सम्बन्धित राष्ट्रपति के आदेशों के लिए मंत्रियों के प्रतिहस्ताक्षर की आवश्यकता नहीं है। इन धाराओ में राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियाँ, जनमत संग्रह के ढंग, राष्ट्रीय सभा को भंग करने, सावैधानिक परिषद् के संगठन, प्रधानमंत्री की नियुक्ति आदि से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण अधिकार सम्मिलित हैं।

इस तरह से नवीन संविधान के अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों को मंत्रि-मंडल से स्वतत्र करके और उसके महत्त्वपूर्ण कार्यों को राष्ट्रपति के नियन्त्रण मे लाकर उसे अत्यन्त शक्तिशाली बना दिया है।

सविधान की धारा 12, 13, 14 एवं 15, नियुक्तियो के क्षेत्र मे तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में राष्ट्रपति को महत्त्वपूर्ण अधिकार देती हैं। धारा 13 के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई है कि राष्ट्रपति मंत्रि-मंडल द्वारा स्वीकृत अध्यादेशों व आज्ञप्तियों पर हस्ताक्षर करेगा, नागरिक एवं सैनिक पद के लिए नियुक्तियाँ करेगा तथा राज-परिषद् के सदस्य, लिजन ऑफ ओनर के महाधिपति राजदूत एवं विशेष प्रतिनिधि, लेखा परीक्षा कार्यालय के अधिकारी सदस्यों, जिला अधिकारियों, अकादमियों के कुलपतियों और केन्द्रीय शासन के

निर्देशकों की नियुक्ति करेगा। धारा 14 के अन्तर्गत यह व्यवस्था है कि राष्ट्रपति विदेशों में राजदूतों एवं अमान्य आयुक्तों की नियुक्ति करेगा और विदेशी राजूतों के परिचय-पत्र (Credentials) स्वीकार करेगा। धारा 15 के अन्तर्गत राष्ट्रपति देश की सशस्त्र सेनाओं का सेनापति होगा तथा राष्ट्रीय सुरक्षा परिषदों व समितियों का समापतित्व करेगा।

फ्रेंच समुदाय या समाज (French Community) के सम्बन्ध में भी राष्ट्रपति को विशेष स्थिति प्रदान की गई है। वह समाज का रक्षक है और उसका प्रतिनिधित्व तथा समापतित्व करता है। इस प्रकार से फ्रान्स के राष्ट्रपति की कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियों को अत्यन्त व्यापक बनाया गया है, जो उसे राजनीतिक व्यवस्था में अत्यन्त शक्तिशाली स्थान प्रदान करती हैं।

व्यवस्थापिका शक्तियाँ

व्यवस्थापिका के क्षेत्र में भी राष्ट्रपति को महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त हैं। संविधान की धारा 9, 10 एवं 11 के अन्तर्गत राष्ट्रपति मंत्रि-मंडल की सभाओं की अध्यक्षता करता है, किसी नियम के अन्तिम रूप को पारित होने की सूचना सरकार को देने के 15 दिन के अन्दर उस नियम को लागू कर सकता है, तथा संसद को किसी भी नियम पर पुनर्विचार के लिए कह सकता है। संसद के जब अधिवेशन हो रहे हों तो सरकार के प्रस्ताव पर, अथवा दोनों सदनों के संयुक्त पारित प्रस्ताव के "सरकारी पत्रिका" में प्रकाशित होने पर, राष्ट्रपति जन-शक्ति व्यवस्था से सम्बन्धित अथवा राष्ट्रीय संस्थाओं पर प्रभाव डालने वाली किसी संधि की पुष्टि करने का अधिकार प्रदान करने के लिये किसी विधेयक को जनमत संग्रह हेतु प्रेषित कर सकता है, एवं जनमत द्वारा स्वीकृत हो जाने पर 15 दिन की अवधि के भीतर उस विधेयक को क्रियान्वित करता है।

धारा 18 के द्वारा राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों को संदेश भेज सकता है। उसके संदेश को दोनों सदनों में पढ़ा जाता है, परन्तु उन पर वाद-विवाद नहीं किया जा सकता। राष्ट्रपति अपने संदेशों को पढ़े जाने के लिए संसद का विशेष सत्र भी बुला सकता है। धारा 12 एवं 16 के द्वारा राष्ट्रपति को राष्ट्रीय सभा के विघटन की शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। केवल उसकी इस शक्ति पर दो प्रतिबन्ध लगाये गये हैं—(1) एक बार विघटन किए जाने पर एक वर्ष के भीतर राष्ट्रीय सभा का दूसरी बार विघटन नहीं किया जा सकता, एवं (2) धारा 16 के अन्तर्गत संकट काल में विघटन नहीं किया जा सकता। विघटन के अधिकार का प्रयोग आजकल दो उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है—राष्ट्रीय सभा एवं मंत्रि मंडल के मध्य उत्पन्न हुए विवाद की समाप्ति के लिए और स्वयं के व राष्ट्रीय सभा से समर्थन प्राप्त प्रधानमंत्री के मध्य उत्पन्न हुए विवाद के अन्त के लिए।

न्यायिक शक्तियाँ

संविधान की धारा 64 के अनुसार राष्ट्रपति न्यायिक स्वतन्त्रता की गारन्टी देता है, अर्थात् वह न्यायिक सत्ता की स्वतन्त्रता की गारन्टी देता है।[1] धारा 17 के अन्तर्गत राष्ट्रपति को क्षमादान, प्रविलम्बन, उच्च न्यायालय परिषद् की सभाओं का सभापतित्व करना तथा इसके 9 सदस्यों को नियुक्त करने का अधिकार दिया गया है।

1 The President of the Republic shall be the guarantor of the independence of the judicial authority —Article 64

राष्ट्रपति की आपातकालीन या संकटकालीन शक्तियाँ

संविधान के अनुच्छेद 16 में कहा गया है कि "जब गणतन्त्र राष्ट्र की स्वाधीनता, प्रादेशिक प्रभुत्व और अन्तर्राष्ट्रीय समझौते खतरे में हों, एवं वैधानिक ढंग से सरकार का काम चलाना कठिन हो जाए तो ऐसी परिस्थितियों में प्रधानमंत्री, असेम्बलियों के अध्यक्षों और वैधानिक परिषद् के सदस्यों की सलाह से वह उनका समुचित उपाय कर सकता है। संदेश के द्वारा वह राष्ट्र को इन उपायों की सूचना देगा। इन पदों के सम्बन्ध में संवैधानिक परिषद् में मन्त्रणा की जाएगी। ससद को एकत्रित होने का अधिकार रहेगा। आपात्कालीन शक्तियों के प्रयोगकाल में नेशनल असेम्बली का विघटन नहीं किया जाएगा।" इस तरह से विशेष परिस्थितियों में राष्ट्रपति को जो आपातकालीन अथवा संकटकालीन अधिकार प्रदान किये गये हैं, वे उसे फ्रांस की राजव्यवस्था में अत्यन्त शक्तिशाली स्थान प्रदान करते हैं।

राष्ट्रपति की शक्तियों की विवेचना

संविधान की धारा 5 से लेकर 19 तक के अन्तर्गत अधिकारों का अध्ययन करने के बाद यही निष्कर्ष निकलता है कि पाँचवें गणतन्त्र का राष्ट्रपति वास्तव में बड़ा शक्तिशाली है। भारतीय राष्ट्रपति की भाँति वह नाममात्र का राष्ट्रपति नहीं है। मंत्रि-परिषद् की अध्यक्षता करने का अधिकार उसे असली अधिशासी बना देता है। राष्ट्रपति के विभिन्न नियुक्ति सम्बन्धी अधिकार भी बड़े व्यापक हैं। वह प्रधानमंत्री और मंत्रि-परिषद् के अन्य सदस्यों के कार्यों पर भी वह रोक लगा सकता है। मंत्रि-परिषद् द्वारा तय किए गए अध्यादेशों व आदेशों पर हस्ताक्षर करने का उसका अधिकार कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। विधान मंडल में विधि पास हो जाने के 15 दिनों के अन्दर वह उन्हें सरकार द्वारा लागू कराता है और उसे अधिकार है कि विधान-मण्डल द्वारा पारित कानून से सन्तुष्ट न होने पर वह उसे पुनर्विचार के लिए विधान-मण्डल में भेज सकता है। संविधान के अनुसार विधान-मण्डल इस पर पुनर्विचार करने से इन्कार नहीं कर सकता। वह किसी भी ऐसे कानून को जनमत संग्रह के लिए प्रस्तावित कर सकता है जिसका सम्बन्ध सामुदायिक समझौते या सन्धि को पुष्ट करने से हो। न्याय के क्षेत्र में भी अपराधों को क्षमा करने का उसे अधिकार प्राप्त है और साथ ही वह इस बात की गारन्टी देता है कि न्यायाधिकारी निर्णय में निष्पक्ष रहेंगे। राष्ट्रपति न्यायपालिका की उच्च परिषद् का प्रधान होता है एवं उसके 9 सदस्यों को नामजद भी कर सकता है। राष्ट्रपति को केवल महाभियोग द्वारा ही हटाया जा सकता है जो अत्यन्त कठिन कार्य है। उसे देशद्रोह के अतिरिक्त अन्य किसी बात के लिए अपराधी नहीं ठहराया जा सकता है।

राष्ट्रपति की आपात्कालीन शक्तियाँ उसे बहुत ही शक्तिशाली बना देती हैं। धारा 16 के अनुसार राष्ट्रपति को, जब वह चाहे, आपात्काल की घोषणा करने का अधिकार है। यद्यपि आपात्कालीन घोषणा के पूर्व प्रधानमंत्री, संसद के दोनों सभापतियों व संवैधानिक परिषद् से परामर्श करने की व्यवस्था है, किन्तु राष्ट्रपति इसके लिए बाध्य नहीं है कि वह उनके परामर्श को स्वीकार करे। आपात्काल में राष्ट्रपति परिस्थितियों

द्वारा दी गई चुनौती का मुकाबला करने के लिए सभी प्रकार की आवश्यक कार्यपालिका, विधायी तथा संवैधानिक शक्तियाँ उपयोग कर सकता है।

संविधान के अनुच्छेद 18 के अनुसार फ्रान्स के राष्ट्रपति को संसद के दोनों सदनों के साथ अपने सन्देश द्वारा सम्पर्क स्थापित करने का अधिकार है। यह अनुच्छेद उसे यह शक्ति भी देता है कि इन सन्देशों के पढ़े जाने के लिए वह संसद के विशेष सत्र को आहूत कर सकता है। इन सन्देशों पर मन्त्रियों के हस्ताक्षरों का होना अनिवार्य नहीं है। राष्ट्रपति की शक्तियों का यह एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है। यह आशा की जाती है कि यह शक्ति आपात्काल में प्रयोग की जाएगी।

अनुच्छेद 16 के आलोचकों द्वारा उठाई गई सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि "इसके अधीन दिए गए अधिकारों को राष्ट्रपति स्वेच्छापूर्वक अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए और एक सैनिक विप्लव (Coupe' d' et' al) की भी रक्षा करने के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है। केवल मात्र राष्ट्रपति को ही यह अधिकार है कि वह यह निर्णय करे कि किसी विशेष समय संविधान द्वारा परिभाषित संकट उपस्थित है या नहीं और उसके लिए क्या उपाय किए जाएँ। उसका कर्त्तव्य केवल यही है कि वह परिषदों के सभापतियों तथा विधान परिषद् से परामर्श करे और राष्ट्र की जनता को सूचना दे दे। न ही यह धारा संसद अपने अधिकार से ही सम्मिलित होती है और संकटकालीन समय में भंग नहीं की जा सकती और न ही यह धारा, जो इस बात की माँग करती है कि विधान परिषद् राष्ट्रीय संकट के विषय में अपने विचार कारणों सहित प्रकाशित करे, राष्ट्रपति की अवैधानिकता के विरुद्ध कोई रक्षा साधन है क्योंकि राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह पूरे अधिकार ग्रहण कर ले। संविधान के पक्षपाती इन आपत्तियों को इस कारण से अस्वीकार कर देते हैं कि यह उपाय केवल अदृश्य तथा असम्भावित संकट के लिए ही किए गए हैं जिनके लिए विस्तृत व्यवस्था करना सम्भव नहीं है।"

राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों का उल्लेख करने वाली उक्त धारा बड़ी अस्पष्ट व अनिश्चित है। इसमें निम्नांकित महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया गया है।

(1) यह नहीं बताया गया है कि यदि विधान परिषद् या संसद् सम्मिलित हो सके तो भी क्या राष्ट्रपति वैधानिक रूप से अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकेगा?

(2) धारा इस प्रश्न पर भी मौन है कि क्या राष्ट्रपति द्वारा आपात्कालीन शक्तियों के प्रयोग की कोई सीमा भी है?

(3) इसका भी उत्तर नहीं मिलता कि क्या राष्ट्रपति संविधान के किसी भाग को कुछ समय के लिए निलम्बित कर सकता है और क्या केवल मात्र उसे ही यह निर्णय करने का अधिकार है कि किसी समय राष्ट्रीय संकट उपस्थित है या नहीं?

(4) धारा 16 यह भी नहीं बताती कि यदि संसद सम्मिलित हो जाए तो क्या राष्ट्रपति इसके अधिकारों को सीमित कर सकता है?

यद्यपि राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियाँ विपुल हैं, किन्तु वैधानिक दृष्टि से वह डिक्टेटर (तानाशाह) नहीं हो सकता। आपात्काल के दौरान राष्ट्रपति पर यह एक विशेष कानूनी रोक है कि संविधानिक परिषद् उसे पद के कार्य करने के लिए अक्षम अथवा

अयोग्य घोषित कर दे, अथवा सीनेट व राष्ट्रीय सभा द्वारा उस पर गंभीर राजद्रोह या विश्वासघात का अभियोग लगा कर उसकी अधिनायकवादी प्रवृत्तियों को नियन्त्रित कर दे। राष्ट्रपति की निरकुश प्रवृत्ति पर इससे भी बढ़कर जनमत का प्रभावशाली नियन्त्रण है।

राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों के विषय में जनरल डिगॉल का विचार था कि इन शक्तियों का प्रयोग अपवादस्वरूप ही किया जाना चाहिए, जैसे कि युद्ध या देश पर आणविक आक्रमण की परिस्थिति में।

उन्होंने अपने शासन-काल में इन शक्तियों का प्रयोग नहीं किया। डिगॉल के उत्तराधिकारी राष्ट्रपतियों ने भी इन शक्तियों का सहारा लिया। उन्होंने अपनी कार्य-प्रणाली से राष्ट्रपति के तानाशाह बनने की आशकाओं को निर्मूल बना दिया। यद्यपि राष्ट्रपति की विस्तृत शक्तियाँ उसके आलोचकों को अतिशयोक्तिपूर्ण विवेचन करने का अवसर प्रदान करती हैं। फ्रांस सम्यवादी नेता मारिस थोरेज (Maurice Thorez) ने तो यहाँ तक कह दिया कि राष्ट्रपति को नए सविधान में 19वीं शताब्दी के सम्राटों से भी अधिक शक्तियाँ प्राप्त हैं। प्रो. एरोन (Prof. Aron) ने फ्रेंच राष्ट्रपति की तुलना अमेरिकन राष्ट्रपति से करते हुए लिखा है कि "कागज पर फ्रेंच का राष्ट्रपति अमेरिका के राष्ट्रपति से कम शक्तिशाली है। सभी बातो के बावजूद पंचम गणतन्त्र एक संसदीय सरकार की स्थापना करता है। इसका प्रमाण यह है कि सरकार राष्ट्रीय सभा के प्रति उत्तरदारी है राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी नहीं।" अन्त में, प्रो. एरोन के शब्दो में ही, "भविष्य में राष्ट्रपति पद का विकास दो प्रकार से हो सकता है। यदि साधारण व्यक्ति राष्ट्रपति हो तो वह मात्र सरकार का सर्वश्रेष्ठ परामर्शदाता अथवा सर्वोच्च मध्यस्थ बन कर रह सकता है और तब सविधान ससदीय सरकार की ओर विकसित होगा। लेकिन यदि वह वस्तुतः अपने अधिकार का प्रयोग करना चाहेगा तो वह संघर्ष मोल लेगा—"सर्वप्रथम अपने प्रधानमन्त्री के साथ और बाद में राष्ट्रीय सभा के साथ।" लेकिन व्यवहार में, राष्ट्रपति की कार्य-प्रणाली से यह आशंका निराधार सिद्ध हुई।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि फ्रांस का राष्ट्रपति एक शक्तिशाली कार्यपालिका है। यह ब्रिटेन के सम्राट और भारत के राष्ट्रपति की तुलना में कहीं अधिक शक्तिशाली है। उसकी स्थिति अमेरिकी राष्ट्रपति से भी अधिक शक्तिशाली है। निस्संदेह, फ्रांस का राष्ट्रपति, संवैधानिक तथा वास्तविक, दोनों ही दृष्टि से शासन-व्यवस्था का प्रधान है।

44

कार्यपालिका : मन्त्रि-परिषद्

(Executive : The Council of Ministers)

फ्रास की कार्यपालिका में राष्ट्रपति के अतिरिक्त प्रधानमन्त्री तथा मन्त्रिपरिषद् को भी शामिल किया जाता है। चतुर्थ गणतन्त्र में राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री को मनोनीत करता था जिसे राष्ट्रीय सभा का विश्वास प्राप्त करना होता था। राष्ट्रीय सभा का विश्वास प्राप्त करने के बाद प्रधानमन्त्री की सिफारिश पर राष्ट्रपति द्वारा अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति की जाती थी। इस प्रकार प्रधानमन्त्री की नियुक्ति का अन्तिम अधिकार राष्ट्रीय सभा के हाथ में था। संवैधानिक दृष्टि से प्रधान मन्त्री अथवा अन्य किसी मन्त्री के लिए यह आवश्यक नहीं था कि वह संसद का सदस्य हो। किन्तु चूँकि मन्त्रिमण्डल की स्थिरता के लिए राष्ट्रीय सभा के बहुमत का समर्थन आवश्यक था, अतः व्यवहार में प्रधान मन्त्री, संसद के वस्तुतः राष्ट्रीय सभा का सदस्य होता था। मन्त्रि-परिषद् को भंग करने की शक्ति भी पूर्णतः राष्ट्रीय सभा के हाथ में थी।

पंचम गणतन्त्र में मन्त्रिपरिषद्

(The Council of Ministers in Fifth Republic)

पंचम गणतन्त्र में प्रधान मन्त्री एवं उसके मन्त्रिमण्डल के अन्य सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार राष्ट्रपति को सौंपा गया है। अब राष्ट्रीय सभा का विश्वास प्राप्त करना प्रधान मन्त्री के लिए आवश्यक नहीं है। सविधान की धारा 23 में यह अनिवार्य कर दिया गया है कि प्रधान मन्त्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी और उसकी सिफारिश पर अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति करेगा। राष्ट्रपति को राष्ट्रीय सभा के भीतर राजनीतिक दलों को सदन का पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं होने के कारण ब्रिटिश सम्राट की अपेक्षा प्रधान मन्त्री को चुनने की अधिक स्वतन्त्रता है। धारा 23 के अनुसार मन्त्री पद और ससद की सदस्यता साथ-साथ सम्भव नहीं है, अतः इस विचित्रता के कारण प्रधान मन्त्री का चयन एक कठिन कार्य बन गया है और साथ ही राष्ट्रपति इसके लिए बाध्य नहीं रहा है कि वह राजनीतिक दलों के नेताओं में से ही प्रधान मन्त्री का चयन करे। फिर भी यह कोई बुद्धिमतापूर्ण कार्य नहीं होगा कि वह ससद के बाहर से प्रधान मन्त्री का चयन करे।

मन्त्रियों की सख्या के विषय में कोई सवैधानिक अथवा कानूनी बंधन नहीं है और परिस्थिति के अनुसार उनकी संख्या को घटाया और बढ़ाया जा सकता है। फ्रास की यह व्यवस्था अन्य ससदीय व्यवस्थाओं के अनुरूप ही है।

प्रधानमन्त्री की सिफारिश पर राष्ट्रपति द्वारा मन्त्रियों को उनके पद से हटाया जाता है। धारा 50 में कहा गया है कि जब राष्ट्रीय सभा निन्दा प्रस्ताव पास कर दे अथवा जब वह सरकार के कार्यक्रम या उसकी सामान्य नीति की घोषणा को अस्वीकार कर दे, तो प्रधान मन्त्री को सरकार का त्यागपत्र राष्ट्रपति के सम्मुख पेश करना होगा।" इस प्रकार स्पष्ट है कि चौथे गणतन्त्र के विपरीत मन्त्रि-परिषद् की पदच्युति का अन्तिम अधिकार राष्ट्रपति के हाथ में है।

फ्रान्स में मन्त्रियों की सामान्यतः दो श्रेणियाँ हैं—(1) राज्य-मन्त्रियों और निर्विभागीय मन्त्री, तथा (2) उन मन्त्रियों की श्रेणी जिन्हें विभिन्न विभागों का अध्यक्ष बनाया जाता है। बिना विभाग के परामर्शदाता मन्त्रियों को मन्त्रि-परिषद् की बैठकों में भाग लेने का अधिकार नहीं होता, किन्तु उन्हें उसमें भाग लेने हेतु आमन्त्रित किया जा सकता है। मन्त्रियों के नीचे अनेक अण्डर सैक्रेटरी नियुक्त किए जाते हैं जिनकी संख्या भी मन्त्रियों की संख्या के अनुपात में परिवर्तित की जा सकती है। यदि मन्त्रियों की संख्या अधिक होती है तो इनकी संख्या कम हो जाती है और मन्त्रियों की संख्या कम होती है तो साधारणतः इनकी संख्या बढ़ जाती है।

यहाँ यह स्मरणीय है कि मन्त्रियों के नियुक्ति-पत्र पर प्रधानमन्त्री के हस्ताक्षर होने भी अनिवार्य होते हैं। संविधान की धारा 23 मन्त्रियों को संसद की सदस्यता से निषिद्ध करती है। अतः फ्रान्स में राष्ट्रीय सभा व सीनेट के सदस्यों में मन्त्री पद की होड़ बहुत कम हो गई है।

मन्त्रि-परिषद् के अधिकार और कार्य

संविधान की धारा 20 एवं 22 में सरकार की शक्तियाँ साधारण रूप में मन्त्रिमण्डल या विशेष रूप में प्रधानमन्त्री में निहित की गई हैं। धारा 20 में उल्लेख है कि "सरकार राष्ट्र की नीति का निर्धारण व निर्देशन करेगी एव उसके अधीन प्रशासन तथा सशस्त्र सेनाएँ रहेंगी।" धारा 21 के अन्तर्गत प्रधानमन्त्री के प्रमुख कर्त्तव्यों को गिनाते हुए कहा गया है कि प्रधानमन्त्री सरकार के कार्यों का निर्देशन करेगा, राष्ट्रीय प्रतिरक्षा के लिए उत्तरदायी होगा, कानूनों की कार्यान्विति को देखेगा, नागरिक व सैनिक पदों पर विविध नियुक्तियाँ करेगा, स्वविवेक से अपनी शक्तियों को कुछ मन्त्रियों को सौंप सकेगा तथा अवसर आने पर राष्ट्रपति की जगह परिषदों एवं समितियों का सभापतित्व करेगा। राष्ट्रपति की आज्ञा से वह उसके स्थान पर आवश्यकता पड़ने पर मन्त्रिपरिषद् का भी सभापतित्व कर सकेगा।

मन्त्रि-परिषद् को राज्य के विधायियों लिजन ऑफ आनर के ग्रांड चान्सलर, राजदूतों और असाधारण दूतों, आडिट ऑफिस के मास्टरों, कौंसिलरों, प्रीफेक्टों, समुद्रपारीय प्रदेशों में सरकारी प्रतिनिधियों को नियुक्त करने का अधिकार है। एक Organic Law द्वारा मन्त्रि-परिषद् को अन्य नियुक्तियाँ करने का अधिकार भी प्राप्त हो गया है। इस कानून के अनुसार ऐसी परिस्थितियाँ भी उत्पन्न हो सकती हैं जब राष्ट्रपति, मन्त्रि-परिषद् को अपने अधिकारों को प्रयोग करने की आज्ञा दे दे।

यद्यपि मन्त्रि-परिषद् के सदस्य संसद के सदस्य नहीं होते, तथापि उन्हें संसद के दोनों सदनों में बोलने का अधिकार है। मन्त्रि-परिषद् मार्शल लॉ भी लागू कर सकती है, किन्तु 12 दिनों के भीतर संसद द्वारा उसका अनुसमर्थन या पुष्टि की जानी चाहिए। विधायी क्षेत्र में मन्त्रि-परिषद् अध्यादेश जारी कर सकती है। बाद में राज्य परिषद् की सलाह से मन्त्रियों की बैठक में उसे कानून का स्वरूप प्रदान किया जा सकता है। प्रकाशित होते ही ये कानून का रूप धारण कर लेते हैं, लेकिन इस सम्बन्ध में यह आवश्यक है कि एक निश्चित अवधि के भीतर संसद उनका समर्थन कर दे। ऐसा न होने पर वे रद्द हो जाते हैं। मन्त्रि-परिषद् यह अधिकार रखती है कि वह किसी संसदीय विधेयक पर या उसमें संशोधन पर विचार करने से इन्कार कर दे। यदि यह अनुभव करे कि दोनों में से कोई भी कानूनी सीमा के भीतर नहीं है। धारा 41 मन्त्रिपरिषद् को यह शक्ति प्रदान करती है कि वह संसद सदस्य द्वारा निजी तौर पर पेश किए गए ऐसे विधेयक या किसी विधेयक के ऐसे संशोधन प्रस्ताव को अविहित घोषित कर सकती है जो उसकी अध्यादेश जारी करने की शक्ति में बाधा डालता हो। संविधान की धारा 42 यह व्यवस्था करती है कि सरकारी विधेयकों पर पहले उसी सदन में चर्चा की जाएगी जिसमें उसे प्रस्तुत किया गया है और इस चर्चा का आधार सरकार द्वारा प्रस्तुत किए गए विधेयक का आलेख ही होगा।

वित्तीय क्षेत्र में मन्त्रिपरिषद् को यह अधिकार है कि यदि संसद विधेयक के बारे में 70 दिन के भीतर कोई निर्णय नहीं ले पाती है तो वह अध्यादेश के द्वारा उनको प्रवर्तित कर सकती है। इसका अर्थ यह है कि अन्त में मन्त्रिपरिषद् को यह सत्ता मिल गई है कि वह संसद की परवाह किए बिना ही बजट को पारित कर ले।

मन्त्रिपरिषद् के उपर्युक्त कार्य व शक्तियाँ उसे संसद से अधिक शक्तिसम्पन्न बनाते हैं।

संसद एवं मन्त्रि-परिषद् का आपसी सम्बन्ध

(Relationship between the Executive and the Parliament)

संविधान की धारा 49 में कहा गया है कि, "प्रधानमन्त्री, मन्त्रि-परिषद् द्वारा मनन के बाद, सरकार के कार्यक्रम अथवा सामान्य नीति की घोषणा के बारे में राष्ट्रीय सभा के प्रति सरकार के उत्तरदायित्व की शपथ ले सकता है। राष्ट्रीय सभा सरकार के उत्तरदायित्व के प्रश्न पर निन्दा का प्रस्ताव रख सकती है। ऐसा प्रस्ताव केवल तभी प्रस्तुत किया जा सकता है जबकि उस पर कम से कम 1/10 सदस्य हस्ताक्षर करें। प्रस्ताव पर मतदान उसे प्रस्तुत करने के केवल 48 घंटे बाद हो सकता है और प्रस्ताव सभा के कुल सदस्यों के बहुमत से ही पारित हो सकता है। यदि अविश्वास प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया जाता है तो उस पर हस्ताक्षर करने वाले सदस्य उसी अधिवेशन में एक और अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं कर सकते।" संविधान की धारा 50 में यह स्पष्ट रूप से वर्णित है कि, "सभा द्वारा किसी अविश्वास प्रस्ताव को स्वीकार करने पर या सरकार के कार्यक्रम या सामान्य नीति की घोषणा को अस्वीकार करने पर प्रधानमन्त्री, मन्त्रिमण्डल का त्याग-पत्र राष्ट्रपति को दे देगा।"

संविधान की उपर्युक्त व्यवस्था से यही अर्थ निकलता है कि संसद व्यवहार में राष्ट्रीय सभा के प्रति उत्तरदायी है। राष्ट्रीय सभा धारा 49 व 50 के अनुसार, "दो प्रकार से मन्त्रि-परिषद् को पद त्याग करने के लिए बाध्य कर सकती है। निन्दा के प्रस्ताव द्वारा विधि पेचीदा है, किन्तु सरकार के कार्यक्रम अथवा उसकी सामान्य नीति की अस्वीकृति सरल विधि है।"

लेकिन उपर्युक्त व्यवस्था कार्यपालिका अथवा मन्त्रिपरिषद् की स्थिति को अधिक कमजोर नहीं बनाती, क्योंकि (i) निन्दात्मक प्रस्ताव प्रस्तुत ही तभी हो सकता है जबकि राष्ट्रीय सभा के 1/10 सदस्यों के हस्ताक्षर हों, साथ ही केवल ऐसे ही मतों की गणना की जाती है जो उस प्रस्ताव के पक्ष में हों, (ii) निन्दात्मक प्रस्ताव पास तभी हो सकता है जबकि राष्ट्रीय सभा के बहुसंख्यक सदस्य उसके पक्ष में हों, और (iii) यदि प्रस्ताव राष्ट्रीय सभा में रद्द कर दिया जाए तो उसी अधिवेशन में दूसरा वैसा प्रस्ताव पेश नहीं किया जा सकता। इस सारी व्यवस्था का यही अर्थ कि मन्त्रि-परिषद् राष्ट्रीय सभा के सामने उतने ही विषय रखती है जो वह उससे पारित कराना चाहती है। संविधान की एक अन्य व्यवस्था के अनुसार ऐसा विषय पास भी समझ लिया जाता है यदि प्रधानमन्त्री के प्रस्तुत करने के 24 घण्टों के भीतर ही उस पर निन्दात्मक प्रस्ताव नहीं रख दिया जाता। साथ ही यदि राष्ट्रीय सभा मन्त्रि-परिषद् के विरुद्ध प्रस्ताव पारित कर दे तो प्रधानमन्त्री को सीनेट में अपील करने का अधिकार है।

इस तरह हम देखते हैं कि मन्त्रि-परिषद् के पास राष्ट्रीय सभा (National Assembly) के नियन्त्रण से बचने के लिए अनेक विकल्प हैं। साथ ही संसद के प्रति मन्त्रि-परिषद् का उत्तरदायित्व भी कम हो जाता है क्योंकि मन्त्री और प्रधानमन्त्री व्यवस्थापिका के सदस्य नहीं होते।

संसद मंत्रिपरिषद् पर निम्नांकित चार विधियों से नियंत्रण आरोपित कर सकती है—

(i) संसद के सत्रों के दौरान विभिन्न विधेयकों पर होने वाले विवाद द्वारा संसद सदस्य सरकारी नीति व कार्यक्रम के बारे में अपना मत प्रगट कर सकते हैं तथा सरकारी की आलोचना कर सकते हैं।

(ii) जब विधेयक समिति में पहुँचता है तो समिति के सदस्य विधेयक से सम्बन्धित जानकारी एवं स्पष्टीकरण हासिल करने के लिए एवं सरकारी अधिकारियों को बुलाने का अधिकार रखते हैं। इन समितियों में सभी संसदीय समूहों के सदस्य रहते हैं।

(iii) संसद छानबीन समितियाँ भी नियुक्त कर सकती है।

(iv) सांसद लिखित अथवा मौखिक प्रश्नों द्वारा मन्त्रियों से सूचना प्राप्त कर सकते हैं। सामान्य नीति से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्न सीधे प्रधानमन्त्री से पूछे जाते हैं। स्थापित प्रणाली के अनुसार लिखित प्रश्नों को सरकारी पत्रिका या जर्नल में छापा जाता है और मन्त्रियों को उनका उत्तर एक माह के भीतर देना होता है। इन उत्तरों को भी सरकारी पत्रिका या जर्नल में छाप दिया जाता है। मौखिक प्रश्नों पर वाद-विवाद हो भी सकता है और नहीं भी। मौखिक प्रश्नों का उत्तर मन्त्रियों द्वारा प्रति सप्ताह एक नियत दिन दिया जाता है। वाद-विवाद वाले प्रश्न प्रश्नकर्त्ता द्वारा ही पूछे जाते हैं और वह उस

समय आधे घण्टे तक भाषण कर सकता है। मन्त्री के उत्तर देने के बाद अध्यक्ष अन्य सदस्यों को पुनः पन्द्रह मिनट तक मत प्रकट करने की आज्ञा दे सकता है और मन्त्री को भी यह सुविधा है कि यदि वह चाहे तो अपना अन्तिम उत्तर दे दे। बिना वाद-विवाद वाले प्रश्न सीधे अध्यक्ष या प्रधान (Speaker) द्वारा बोले जाते हैं और प्रश्नकर्ता सदस्य मन्त्री के उत्तर के बाद पाँच मिनट तक अपना भाषण दे सकता है।

संसद का प्रमुख कार्य विधायी है। यह विधायी कार्य देखने में तो अत्यन्त विस्तृत प्रतीत होता है, लेकिन अनुच्छेद 34 अन्तिम पैराग्राफ के अनुसार राष्ट्रीय-सभा को उन्हीं सीमित विषयों पर कानून बनाने का अधिकार रह जाता है जिसकी सूची पहले से तैयार रहती है। सूची में जिन विषयों की चर्चा नहीं है उन पर मन्त्रि-परिषद् कानून बना सकती है। अनुच्छेद 37 और 38 मन्त्रिपरिषद् को व्यापक विधायी सत्ता देकर संसद की विधायी क्षमता को कम करती है। अनुच्छेद 38 में कहा गया है कि अपने कार्यक्रम को संचालित करने के लिए मन्त्रिपरिषद् सामान्यतः विधि के अन्तर्गत आने वाले विषयों का नियमन करने के लिए निश्चित काल के भीतर अध्यादेश जारी करने की अनुमति माँग सकती है। अनुच्छेद 37 मन्त्रिपरिषद् को सत्ता प्रदान करती है। वह सरकारी आदेशों के द्वारा उन मामलों का नियमन कर सकती है जो विधि के क्षेत्र से बाहर हैं, यद्यपि इन आदेशों पर राज्य परिषद् की स्वीकृति मिलना आवश्यक है।

उपर्युक्त धाराओं से स्पष्ट है कि मन्त्रि-परिषद् को व्यवस्था सम्बन्धी काफी अधिकार प्राप्त हैं। सरकार की अध्यादेश जारी करने व आदेश निकालने की शक्ति चाहे वह सीमित काल के लिए ही हो, संसद की सत्ता पर पर्याप्त सीमा लगाती है। यह व्यवस्था निश्चित रूप से व्यवस्थापिका की अपेक्षा कार्यपालिका को अधिक सबल बनाती है। संविधान के अनुच्छेद 34, 35, 36 व 52 के अन्तर्गत संसद को अनेक शक्तियाँ मिली हुई हैं, जैसे संविधानिक विधियों सहित समस्त विधियों का निर्माण, वित्त का नियन्त्रण, शान्ति संधियों व अन्य संधियों एवं समझौतों आदि पर स्वीकृति। यदि इन शक्तियों को संसद अपनी इच्छानुसार नियन्त्रित व संचालन करने में सक्षम हो तो कार्यपालिका संसद के हाथों की कठपुतली बन जाती है। लेकिन संविधान की धारा 34 का अन्तिम पैरा, धारा 37, 38, 41 आदि संसद् की शक्तियों को सीमित करके कार्यपालिका की शक्तियों में वृद्धि करती है। अनुच्छेद 41 व्यवस्था करता है कि विधि निर्माण के समय संसद सदस्य द्वारा निजी रूप से पेश किया गया विधेयक या संशोधन संसद सदस्य की सत्ता के बाहर हो या सरकार को हस्तान्तरित की गई विधायी शक्तियों के प्रतिकूल हो तो सरकार उसे अविवाहित घोषित कर सकती है। वित्तीय क्षेत्र में भी यदि संसद किसी वित्त विधेयक के बारे में 70 दिन के भीतर कोई निर्णय नहीं ले पाती तो मन्त्रिपरिषद् अध्यादेश द्वारा उसको परिवर्तित किया जा सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि यद्यपि वित्त के मामलों में संविधान ने संसद को शक्ति सौंपी है, किन्तु अन्त में यह सत्ता कार्यपालिका को दे दी है कि वह संसद की परवाह किए बिना ही बजट को पारित कर ले।

जिस प्रकार संसद को मन्त्रिपरिषद् के विरुद्ध निन्दा प्रस्ताव, सामान्य नीति की अस्वीकृति, आलोचनाओं, प्रश्नों, सूचना प्राप्त करने के अधिकार प्राप्त हैं उसी प्रकार मन्त्रिपरिषद् को भी, डोरोथी पिकिल्स के अनुसार, तीन अधिकार प्राप्त हैं—

"(1) मन्त्रि-परिषद् के सदस्य संसद के सदस्य नहीं रह सकते। इस तरह संसद के प्रति अपने उत्तरदायित्व को वे बहुत कम कर लेते हैं। (2) राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रीय सभा का विघटन किया जा सकता है (आपात्काल को छोड़कर)।(3) तीन प्रकार के विषयों के बारे में जनमत-संग्रह या लोक-निर्णय कराया जा सकता है—सार्वजनिक अधिकारियों के संगठन, समुदाय के साथ समझौते की स्वीकृति और संस्थाओं के कार्य-संचालन को प्रमाणित करने वाली संधि की पुष्टि का अधिकार देना। लोक निर्णय कराने के लिए पहल प्रधानमन्त्री करता है और उसकी प्रार्थना पर लोक निर्णय कराने का आदेश राष्ट्रपति जारी करता है।"

मन्त्रिपरिषद् और संसद के पारस्परिक सम्बन्धों पर विचार करने के पश्चात् इस तथ्य में कोई सन्देह नहीं रहता कि संविधान निर्माताओं की इच्छा संसद की अपेक्षा मन्त्रिपरिषद् को अधिक सशक्त बनाने की थी ताकि देश की राजनीतिक व्यवस्था में स्थायित्व आ सके।

प्रधानमन्त्री
(Prime Minister)

पंचम गणतन्त्र के प्रधानमन्त्री की स्थिति के बारे में यही कहना उचित होगा कि उसकी सामान्य स्थिति चौथे गणराज्य के प्रधानमन्त्री की अपेक्षा बहुत कमजोर है। अब वह मन्त्रि-परिषद् का अध्यक्ष नहीं कहलाता है तथा मन्त्रि-परिषद् की बैठकों की अध्यक्षता वह केवल तभी कर सकता है जबकि राष्ट्रपति इस सम्बन्ध में आज्ञा दे। प्रतिरक्षा परिषदों और समितियों की अध्यक्षता भी राष्ट्रपति के स्थान पर यदा-कदा कर पाता है। किन्तु इतना सब होते हुए भी प्रधानमन्त्री की देश की शासन-व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

संविधान में प्रधानमन्त्री के कार्यों और अधिकारों का विस्तृत विवरण मिलता है। धारा 21 के अनुसार प्रधानमन्त्री शासन का मुख्य संचालक है और राष्ट्रपति अपने महत्त्वपूर्ण अधिकारों का प्रयोग उसी के माध्यम से करता है। वही राष्ट्रपति का प्रमुख परामर्शदाता है और उसी के परामर्श से राष्ट्रपति संकटकाल की घोषणा करने तथा राष्ट्रीय सभा को भंग करने का निर्णय ले सकता है। समय और आवश्यकतानुसार राष्ट्रपति के स्थान पर प्रधानमन्त्री ही राष्ट्रीय सुरक्षा सम्बन्धी परिषदों और समितियों की अध्यक्षता करता है। प्रधानमन्त्री की सिफारिश पर ही राष्ट्रपति द्वारा अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति की जाती है और उसी की मन्त्रणा पर ही उन्हें पदच्युत भी किया जा सकता है। प्रधानमन्त्री के त्यागपत्र का अर्थ सम्पूर्ण मन्त्रि-परिषद् का पतन है। प्रधानमन्त्री मन्त्रि-परिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करता है और उसे नेतृत्व प्रदान करता है। राष्ट्रपति द्वारा उसे मन्त्रि-परिषद् का सभापतित्व करने का अधिकार दिया जा सकता है और प्रायः वह देता भी है। विभिन्न मन्त्रियों के बीच विभागों का वितरण करना और उनके कार्यों का निरीक्षण करना भी प्रधानमन्त्री का ही कार्य है। संक्षेप में प्रधानमन्त्री मन्त्रिपरिषद् का निर्माता, संचालनकर्ता तथा संहारक है।

प्रधानमन्त्री राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए भी उत्तरदायी होता है। इस दृष्टि से वह राज्य की सशस्त्र सेनाओं को आवश्यक निर्देश दे सकता है। वह विधि-निर्माण भी करता है। यद्यपि वह संसद का सदस्य नहीं होता, फिर भी दोनों सदनों में बैठने और बोलने का उसे अधिकार होता है। सरकार के प्रमुख प्रवक्ता के रूप में भी उसकी स्थिति कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। प्रधानमन्त्री ही संसद की विधियों को कार्यान्वित कराता है। संविधान की 13वीं धारा में उल्लिखित कुछ पदों को छोड़कर अन्य सैनिक एवं असैनिक पदाधिकारियों को वह नियुक्त करता है।

यद्यपि प्रधानमन्त्री की शक्तियाँ विस्तृत हैं, लेकिन कतिपय प्रतिबन्ध और सीमाओं के होने के कारण उसका महत्त्व कम हुआ है। संविधान की धारा 22 उस पर यह प्रतिबन्ध लगाती है कि यथावश्यक प्रधानमन्त्री के कार्यों पर मन्त्रियों के प्रति-हस्ताक्षर (Counter Signature) की आवश्यकता होगी। इस व्यवस्था के कारण कुछ सीमा तक प्रधानमन्त्री की शक्ति पर प्रतिबन्ध लग जाता है, यद्यपि यह प्रतिबन्ध उसके सभी कार्यों पर नहीं है। प्रधानमन्त्री पर दूसरी सीमा यह लगाई गई है कि उसे राष्ट्रीय सभा के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है जो उसे त्यागपत्र देने के लिए बाध्य कर सकती है। तीसरे, बहुदलीय व्यवस्था के कारण राष्ट्रीय सभा और मन्त्रिमण्डल के सदस्यों पर अपना प्रभाव स्थापित करना प्रधानमन्त्री के लिए बहुत कठिन होता है। इसके अतिरिक्त प्रधानमन्त्री पर सबसे बड़ा नियन्त्रण राष्ट्रपति की शक्तियों का है। चौथे गणतन्त्र में राष्ट्रपति के सभी कार्यों पर प्रधानमन्त्री के हस्ताक्षर आवश्यक थे, लेकिन पंचम गणतन्त्र के संविधान में राष्ट्रपति अनेक कार्य प्रधानमन्त्री के परामर्श के बिना भी कर सकता है। साथ ही प्रधानमन्त्री की नियुक्ति में राष्ट्रपति की निर्णायक भूमिका है।

इस तरह राष्ट्रपति और राष्ट्रीय सभा के मध्य प्रधानमन्त्री की स्थिति कमजोर हो गई है। फ्रेंच राजनीतिक-दार्शनिक एण्ड्रे सिजफ्रायड (M. Andre Siegfried) के इस कथन में विशेष अतिशयोक्ति नहीं है कि नवीन संविधान के अन्तर्गत यदि मन्त्रिगण राष्ट्रपति के लिपिक (Clerks) हैं तो प्रधानमन्त्री प्रधान लिपिक (Head Clerk) है।"

सारांश में, फ्रान्स के प्रधानमन्त्री की स्थिति एवं भूमिका राष्ट्रपति की तुलना में बहुत कमजोर है। ब्रिटिश और भारतीय प्रधानमन्त्री के साथ तो उसकी तुलना करना ही अप्रासंगिक है, क्योंकि वहाँ उनकी स्थिति वास्तविक शासक की है। दोनों ही देशों की राजनीतिक व्यवस्थाएँ प्रधानमन्त्रियों के व्यक्तित्व तथा कार्य-शैली से आच्छादित रहती हैं।

व्यवस्थापिका : संसद

(The Ligislature : Parliament)

फ्रान्स की व्यवस्थापिका या विधायिका को संसद के नाम से जाना जाता है। संसद की उत्पत्ति और विकास के पीछे एक लम्बा इतिहास रहा है। देश की राजनीतिक व्यवस्था में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : चतुर्थ गणतन्त्र तक की स्थिति

(Historical Background : Situation Till Fourth Republic)

फ्रान्स संसद का इतिहास बहुत पुराना और मनोरंजक है। महान क्रांति के बाद सन् 1791 से फ्रांस में अनेक संवैधानिक प्रयोग और नई-नई व्यवस्था का निरूपण किया गया। प्रत्येक नई व्यवस्था में संसद की रूपरेखा में परिवर्तन किए गए हैं। उदाहरणार्थ 1791 के सविधान में एक सदनात्मक संसद की व्यवस्था की गई, 1795 में डाइरेक्ट्री में सर्वप्रथम द्विसदनात्मक संसद की स्थापना की गई और नैपोलियन ने सम्राट होने पर उसके चार सदन कर दिए। उसके पतन के बाद संसद को पुनः द्विसदनात्मक बना दिया गया। 1848 के द्वितीय गणतन्त्र में फिर से एक सदनात्मक संसद की व्यवस्था की गई और 1852 में द्वितीय साम्राज्य के अन्तर्गत संसद को तीन सदनों में बाँट दिया गया। तृतीय गणतंत्र में बहुत वाद-विवाद के बाद द्विसदनात्मक संसद की स्थापना का निर्णय किया गया। प्रथम सदन को प्रतिनिधि सभा (Chamber of Deputies) और द्वितीय सदन को सीनेट कहा गया। चतुर्थ गणतन्त्र में कुछ परिवर्तनों के साथ पूर्ववर्ती व्यवस्था को ही कायम रखा गया। प्रथम सदन को राष्ट्रीय सभा (National Assembly) तथा द्वितीय सदन को गणतंत्र परिषद (Council of Republic) संज्ञा दी गई। इस तरह से चतुर्थ गणतन्त्र तक फ्रेंच ससद का एक सुव्यवस्थित संस्थात तथा प्रक्रियागत ढाँचा उभर कर सामने आया।

पंचम गणतन्त्र में संसद

(Parliament in Fifth Republic)

पंचम गणतन्त्र में संसद का स्वरूप द्विसदनात्मक है। संस्थागत शक्तियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया गया है। द्वितीय सदन का नाम बदलकर तृतीय गणतन्त्र की भाँति पुनः सीनेट (Senate) रख दिया गया है और प्रथम सदन का नाम राष्ट्रीय सभा (National Assembly) ही है।

वर्तमान संसद की रचना

(T e Composition of the Present Legislature)

संविधान की धारा 24 के अनुसार फ्रांस की संसद के दोनों सदन निम्नलिखित हैं—

1. राष्ट्रीय सभा (National Assembly) 2. सीनेट (Senate)

राष्ट्रीय सभा फ्रान्स की संसद का निम्न और लोकप्रिय सदन है। पंचम गणतन्त्र में इसकी कुल सदस्य संख्या 465 निर्धारित की गई थी, लेकिन वर्तमान में इसकी सदस्य संख्या 577 है। नवीन संविधान की धारा 24 के अनुसार इसके सदस्यों (Deputers) का निर्वाचन व्यापक, प्रत्यक्ष, समान और गुप्त मताधिकार के आधार पर होता है। सभी वयस्क नागरिकों को मतदान का अधिकार प्रदान किया गया है। सम्पूर्ण देश को समान 577 निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया गया है और प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से एक प्रतिनिधि निर्वाचित होता है।

द्वितीय सदन अर्थात् सीनेट में स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को प्रतिनिधित्व दिया गया है। इसकी सदस्य सख्या राष्ट्रीय सभा के सदस्यों की कुल संख्या के एक तिहाई से कम और आधे से अधिक नहीं हो सकती है। सदस्यों का निर्वाचन व्यापक अप्रत्यक्ष मताधिकार (Universal Indirect Sufferage) के आधार पर होता है। फ्रान्स के प्रादेशिक विभागों (Territorial Units) तक प्रवासी नागरिकों का प्रतिनिधित्व इसी सदन में होता है।

कार्यकाल

वर्तमान संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रीय सभा का कार्यकाल 5 वर्ष का है, लेकिन इस अवधि से पूर्व भी इसका प्रधानमन्त्री और संसद के दोनों सदनों के सभापतियों की मन्त्रणा से राष्ट्रपति द्वारा विघटन किया जा सकता है। इसके भंग करने में राष्ट्रपति का प्रमुख हाथ होता है। प्रधानमन्त्री और सदनों के सभापतियों को केवल परामर्श देने का अधिकार है। राष्ट्रीय सभा के विघटित होने के कम से कम 20 दिन बाद या अधिक से अधिक 40 दिन बाद प्राप्त इसका पुनर्निर्वाचन होना आवश्यक है। पुनर्निर्वाचन के पश्चात् एक वर्ष के अन्दर सदन का पुनः विघटन नहीं किया जा सकता है।

सीनेट एक स्थाई सदन है। इसके सदस्य 9 वर्ष के लिए निर्वाचित किए जाते हैं और प्रति तीसरे वर्ष इसके एक-तिहाई सदस्य अवकाश प्राप्त करते हैं। इस सदन का विघटन नहीं हो सकता। इसकी बैठकें राष्ट्रीय सभा के साथ होती हैं। बैठकें सार्वजनिक और गुप्त दोनों प्रकार की होती हैं।

चुनाव

राष्ट्रीय सभा के सदस्य वयस्क मताधिकार के आधार पर जनता द्वारा चुने जाते हैं। सीनेट के सदस्य अप्रत्यक्ष रूप से प्रादेशिक इकाइयों और विदेशी फ्रेंच लोगों द्वारा चुने जाते हैं। संविधान में इस बात की व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक सदन का चुनाव कब हो, उनमें कितने सदस्य हों, उनको कितना वेतन मिले और सदस्यता के लिए अपेक्षित योग्यताएँ क्या हों ? साथ ही यह भी निर्धारित किया गया है कि रिक्त स्थान के लिए चुनाव कैसे हों एवं उप चुनावों की पद्धति क्या हो ?

वर्तमान में फ्रान्स की राष्ट्रीय सभा के 577 प्रतिनिधियों का चुनाव करने के लिए 'दो बार मतदान के साथ एक सदस्यीय' पद्धति का प्रयोग होता है। इसके अनुसार प्रथम मतदान में वह उम्मीदवार विजयी घोषित होता है जिसे कम से कम डाले हुए मतों का 50 प्रतिशत + 1 मत मिले और एक सप्ताह बाद होने वाले मतदान में जिसे कुल मतदाताओं की संख्या का 1/4 अथवा सबसे अधिक मत मिलें, वह उम्मीदवार विजयी होता है। निर्वाचन हेतु सम्पूर्ण फ्रान्स को 577 क्षेत्रों में बाँटा जाता है। मतदान पूर्णतः गुप्त रीति से होता है। यह दो गुप्त मतदान प्रणाली इसीलिए बनाई गई हैं कि उससे वामपंथी दलों की सफलता की संभावना घटे। अगर पहले मतदान में कोई उम्मीदवार पूर्ण बहुमत पाने में असफल रहा हो तो दूसरे मतदान में दूसरे दल मिलकर उसे हटाने के लिए एक हो सकते हैं। इसी आधार पर पाँचवें गणतन्त्र के प्रथम चुनाव में साम्यवादियों की पराजय हुई। राष्ट्रीय सभा के लिए प्रत्याशी की आयु कम से कम 23 वर्ष होना आवश्यक है। चुनाव 5 वर्ष की अवधि के लिए होता है। व्यवस्थापिका के द्वितीय सदन सीनेट, के चुनाव के बारे में संविधान में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सीनेटरों का चुनाव सर्वव्यापी मताधिकार चुनाव द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से होगा। सीनेट के लिए प्रत्याशी की आयु कम से कम 35 वर्ष होनी चाहिए। सीने का चुनाव 9 वर्ष की अवधि के लिए होता है और प्रति 3 वर्ष में 1/3 सदस्य चुने जाते हैं। इस तरह सीनेट भारत की राज्य सभा के समान एक स्थाई निकाय है। सिर्फ अन्तर यह है कि राज्य सभा का चुनाव केवल 6 वर्ष के लिए होता है। सीनेट के सदस्यों की संख्या 230 है।

सदस्यों के अधिकार
(Rights of Members)

संसद के सदस्यों को अनेक विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियाँ प्राप्त हैं। संसद में प्रकट किए गए विचारों के आधार पर न तो किसी संसद सदस्य को गिरफ्तार किया जा सकता है, न रोका जा सकता है और न ही उस पर मुकदमा चलाया जा सकता है। किसी भी सदन के सदस्य को बिना सदन की अनुमति के बन्दी नहीं बनाया जा सकता। जिस समय संसद का अधिवेशन नहीं हो रहा हो उस समय किसी सदस्य को राष्ट्रीय सभा की कार्यकारिणी से अनुमति लेकर ही गिरफ्तार किया जा सकता है और यदि सभा चाहे तो गिरफ्तार किये जाने पर भी संसद सदस्य छूट सकता है।

अधिवेशन

फ्रांसीसी सदन की आमतौर से वर्ष में दो बैठकें होती हैं। संसद का प्रथम अधिवेशन अक्तूबर के पहले मंगलवार से आरम्भ होकर दिसम्बर के तीसरे शुक्रवार तक चलता है। संसद का द्वितीय अधिवेशन अप्रैल के अन्तिम मंगलवार से लगभग 3 माह तक चलता है। द्वितीय अधिवेशन या तो प्रधानमन्त्री के अनुरोध पर या राष्ट्रीय सभा के बहुमत के निर्णय पर बुलाया जाता है। असाधारण अधिवेशनों का उद्घाटन और समापन राष्ट्रपति के द्वारा किया जाता है। राष्ट्रीय सभा के द्वारा निमन्त्रित अधिवेशन 12 दिन से अधिक नहीं चल सकता और यदि कार्यक्रम पहले ही समाप्त हो जाता है तो अधिवेशन का भी उसी समय समापन हो जाता है। प्रधानमन्त्री चाहे तो कार्यक्रम समाप्त होने के बाद भी अधिवेशन

की अवधि बढा सकता है, लेकिन ऐसा वह 12 दिन समाप्त होने के पहले ही कर सकता है। संसद के दोनों सदन गुप्त अधिवेशन भी कर सकते हैं, यदि प्रधानमन्त्री ऐसी इच्छा प्रकट करे अथवा संसद के 1/10 सदस्य इस पक्ष में अपनी राय दे दें।

सदनों के प्रधान या सभापति
(The President of the Houses)

दूसरे देशों के निम्न सदनों की भाँति फ्रान्स की राष्ट्रीय सभा का भी एक सभापति (The President) होता है। संविधान की धारा 32 के अनुसार राष्ट्रीय सभा का प्रधान या सभापति उसके प्रथम सत्र की पहली ही बैठक में चुना जाता है। चुनाव गुप्त मतदान द्वारा होता है। पहले और दूसरे मतदान में सदन के कुछ सदस्यों का पूर्ण बहुमत आवश्यक है, परन्तु तीसरे मतदान में केवल सापेक्ष बहुमत ही पर्याप्त है। राष्ट्रीय सभा के प्रधान या सभापति की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। उसके प्रमुख कार्य हैं—सदस्यों को बुलाने की अनुमति देना, सदन के नियमों का पालन करना, किसी प्रश्न पर मतदान लेना, सदन में शान्ति और व्यवस्था बनाए, सदन में अनुशासन की व्यवस्था करना आदि। सभापति के कुछ परामर्शदात्री कार्य भी हैं। देश में सकटकालीन घोषणा करने से पूर्व और राष्ट्रीय सभा को विघटित करने से पूर्व सभापति राष्ट्रपति से मन्त्रणा या परामर्श करता है।

राष्ट्रीय सभा के सभापति के कार्यों और उसकी स्थिति को ध्यान में रखते हुए उसे अमेरिकन प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष के निकट रखा जा सकता है। ब्रिटिश लोकसदन के अध्यक्ष से उसकी दो समानताएँ हैं—प्रथम समानता यह है कि दलीय होते हुए भी राष्ट्रीय सभा का सभापति अपने कार्यों के सम्पादन में निष्पक्ष होने की चेष्टा करता है। परम्परा के अनुसार अधिकाशतः वह केवल वाद-विवाद में भी भाग नहीं लेता, बल्कि कभी-कभी मतदान में भी भाग नहीं लेता। दूसरी समानता यह है कि ब्रिटन के समान फ्रान्स में भी "एक बार अध्यक्ष, सदैव के लिए अध्यक्ष" (Once a Speaker, always a Speaker) की परम्परा का बहुत कुछ पालन किया जाता है। यदि सभापति पद के लिए कोई योग्य व्यक्ति मिल जाता है तो उस पद पर उस व्यक्ति का बार-बार निर्वाचन हो सकता है, चाहे उसे प्रथम बार निर्वाचित करने वाला गुट अस्तित्व में हो या न हो या विघटित हो गया हो। परन्तु फिर भी, ब्रिटिश स्पीकर से अधिक उसकी समानता अमेरिकन प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष से है। ब्रिटिश लोकसदन का अध्यक्ष पूर्णतः निर्दलीय होकर कार्य करता है और सक्रिय राजनीति से एकदम दूर रहता है, जबकि अमेरिकन प्रतिनिधि सभा का अध्यक्ष निर्वाचन के बाद भी दल का सदस्य बना रहता है और सक्रिय राजनीति में सदन के वाद-विवाद में और मतदान में खुलकर भाग लेता है और खुलकर अपने दल का पक्षपात और उसके हितों की रक्षा करता है। फ्रान्स की राष्ट्रीय सभा का सभापति भी अपने नर्वाचन के बाद दल से सम्बन्ध बनाए रखता है और सदन में तथा सदन के बाहर राजनीति में सक्रिय भाग लेता है। वर्तमान पचम गणतंत्र में मन्त्रिगण ससद सदस्य नहीं हैं, अतः ससद में उनकी अनुपस्थिति में जो राजनीतिक शून्यता उत्पन्न होती है उसकी पूर्ति सदनों के सभापति ही करते हैं। अतः यदि राष्ट्रीय सभा का सभापति अनिवार्य रूप से दलगत राजनीति में भाग लेने लगे तो आश्चर्य की कोई बात नहीं होगी।

सीनेट का सर्वोच्च पदाधिकारी सदन का समापति (The President) होता है। संविधान की धारा 2 के अन्तर्गत ही सीनेट के प्रधान या समापति का चुनाव प्रत्येक 3 वर्ष बाद होता है, जबकि उसके एक-तिहाई सदस्य चुनकर आते हैं। राष्ट्रीय सभा के सभापति की भाँति वह भी सदन की बैठकों की अध्यक्षता करता है, विधि-निर्माण के कार्य को सुचारु रूप से सचालित करता है और सदन में अनुशासन तथा शांति बनाए रखता है। नवीन संविधान के अन्तर्गत उसे दो प्रमुख शक्तियाँ दी गई हैं, जो कि पूर्ववर्ती शासन व्यवस्था में उसे प्राप्त नहीं थीं। उसे यह अधिकार प्राप्त है कि यदि किसी कारणवश राष्ट्रपति का पद रिक्त हो जाए तो वह अस्थाई रूप से फ्रान्स के राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा और संविधान की 11वीं और 12वीं धाराओं में वर्णित शक्तियों को छोड़कर शेष समस्त शक्तियों का प्रयोग करने का अधिकारी होगा। उसकी दूसरी प्रमुख शक्ति यह है कि सीनेट का समापति राष्ट्रपति का एक प्रमुख परामर्शदाता है। राष्ट्रीय सभा को विघटित करने के लिए और संकटकालीन घोषणा से पूर्व वह राष्ट्रपति को परामर्श देता है। इस प्रकार सीनेट के समापति पद में शक्ति और मर्यादा दोनों का अधिवास है।

संसद के कार्य और शक्तियाँ

(The Powers and Functions of the Parliament)

यद्यपि नवीन व्यवस्था के अन्तर्गत भी संसद को वही कार्य करने पड़ते हैं जो वह तृतीय एव चतुर्थ गणराज्यों में करती थी तथापि अब उसकी शक्तियाँ एक बड़ी सीमा तक मर्यादित व सीमित कर दी गई हैं।

संविधान के पाँचवें अध्याय में अनुच्छेद 34 में संसद और सरकार के मध्य सम्बन्धो का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि विधियों का निर्माण संसद करेगी। युद्ध और सैनिक शासन की घोषणा करना भी उसका ही कार्य है। संविधान में संसद के तीन प्रमुख कार्य गिनाए गए हैं—

(1) संविधानिक विधियों सहित समस्त विधियों का निर्माण (धारा 34);

(2) युद्ध और सैनिक शासन की घोषणा करना (धारा 35 व 36);

(3) वित्त का नियन्त्रण (धारा 34 व 39)—संविधान में यह व्यवस्था है कि वित्तीय विधेयक राष्ट्रीय सभा में ही प्रारम्भ या पुनर्स्थापित किए जा सकते हैं।

संविधान के अनुच्छेद 34 ने जिन विषयों पर संसद को कानून निर्माण करने की शक्तियाँ प्रदान की गई हैं; वे हैं—"नागरिकों के नागरिक अधिकार व मौलिक *स्वतन्त्रताएँ, राष्ट्रीय प्रतिरक्षा के हित में नागरिकों से की गई अपेक्षाएँ एवं उनकी* सम्पत्ति, व्यक्तियों की जातीयता, स्तर एवं वैधानिक क्षमता, वैवाहिक विधियाँ, उत्तराधिकार एवं भेंट, नागरिकों द्वारा किए जाने वाले अपराध एवं विधियों का उल्लंघन, सब प्रकार के करों का आरोपण, मात्रा व उनकी संग्रह पद्धति, मुद्रा व्यवस्था, विभिन्न सार्वजनिक-निगमात्मक संस्थाओं का निर्माण, संसद और स्थानीय समाओं के लिए निर्वाचन व्यवस्थाएँ, उद्योगों एवं दूसरे कार्यों का राष्ट्रीयकरण, स्थानीय संस्थाओं का प्रशासन, राष्ट्रीय प्रतिरक्षा का संगठन, राज्य के नागरिकों व सैनिक अधिकारियों को दिए जाने वाले मौलिक आश्वासन, शिक्षा, सम्पत्ति सम्बन्धी नियम व

उत्तरदायित्व, नागरिक व व्यावसायिक उत्तरदायित्व, श्रम एवं श्रमिक संघ सम्बन्धी विधियाँ, सामाजिक सुरक्षा आदि।"

एक अन्य संवैधानिक विधि द्वारा संसद को यह अधिकार प्राप्त है कि निर्धारित मर्यादाओं में रहते हुए वह वित्तीय कानूनों का निर्माण कर राज्य के राजस्व और व्यय के बारे में निर्णय कर सकती है। उसे यह भी अधिकार दिया गया है कि राज्य के आर्थिक व सामाजिक उद्देश्यों के विषयों पर कानून बना सके।

संविधान के अनुच्छेद 52 के अनुसार शान्ति सन्धियाँ, व्यापारिक सधियाँ, अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से सम्बन्धित सधियाँ व समझौते एवं अन्य प्रकार की सधियाँ उस समय तक लागू नहीं हो सकतीं जब तक संसद उन पर अपनी स्वीकृति न दे दे। इस अनुच्छेद के द्वारा संसद को वैदेशिक सम्बन्धों पर नियन्त्रण करने की शक्ति मिल गई है। फ्रांस की संसद में भारत और ब्रिटेन की भाँति, प्रश्नोत्तरकाल की कोई व्यवस्था नहीं है। "प्रति सप्ताह एक निश्चित अवधि के अतिरिक्त जिसमें मन्त्रियों से प्रश्न पूछे जा सकते हैं, संसद का कार्यक्षेत्र केवल विधि निर्माण तक ही सीमित है।"

संसद की शक्तियों को सीमित करने वाले अनुच्छेद—उपर्युक्त अध्ययन से तो यही प्रतीत होता है कि फ्रान्स की संसद की विधायी क्षमता का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। किन्तु संविधान के अनेक उपबन्ध संसद की शक्तियों को सीमित करते हैं, जिन्हें निम्नानुसार रखा जा सकता है—

(1) अनुच्छेद 34 का अन्तिम पैराग्राफ सरकार को यह सत्ता प्रदान करता है कि अधिनियम (Regulations) जारी करके संसद द्वारा निर्मित विधियों को विस्तृत तथा संशोधित कर सकती है, किन्तु उसे ऐसे मामलों में राज्य-परिषद् का परामर्श अनिवार्य रूप से लेना होगा।

(2) संविधान के अनुच्छेद 37 व 38 सरकार को व्यापक विधायी सत्ता प्रदान करते हैं और इस भाँति इस क्षेत्र में संसद की क्षमता को कम करते हैं। अनुच्छेद 38 के अनुसार, "किसी विशेष समय पर, और किसी विशेष समय के लिए अपने कार्यक्रम को उन अध्यादेशों तथा आज्ञप्तियों द्वारा कार्यान्वित करने के लिए सरकार संसद से माँग कर सकती है, जो साधारणतः विधि क्षेत्र के अन्तर्गत ही सम्मिलित हैं। ऐसी आज्ञप्तियों के आलेख मन्त्रियों की सभाओं में राज्य-परिषद् से परामर्श करने के पश्चात् तैयार किए जायेंगे। उनके प्रकाशित होते ही ये लागू हो जायेंगे। लेकिन उनकी अनुमति देने वाले विनियम द्वारा निर्धारित अवधि के अन्दर-अन्दर उसकी स्वीकृति के लिए विधेयक संसद में प्रस्तुत न किए जाने पर वे अमान्य हो जायेंगे। उपर्युक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् उन आज्ञप्तियों को विधि द्वारा केवल उन्हीं विषयों में संशोधित किया जा सकता है जो विधि-क्षेत्र में सम्मिलित हैं।" यह व्यवस्था विधायिका की अपेक्षा कार्यपालिका को अधिक सबल बनाती है।

(3) धारा 39 के अनुसार, "प्रधान मन्त्री तथा संसद सदस्यों को विधि का सूत्रपात करने का अधिकार है, किन्तु राज्य-परिषद् के परामर्श करने के बाद सरकारी विधेयकों पर मन्त्रिमण्डल की सभाओं में विचार किया जाएगा और इसके बाद ही उन्हें फिर राष्ट्र-परिषद् या सीनेट के सचिवालय के पास भेजा जा सकेगा।"

(4) धारा 40 यह व्यवस्था करती है कि, "संसद सदस्यों द्वारा उठाए गए विधेयक या संशोधन ऐसी स्थिति में असाम्य होंगे जब वे राष्ट्र के आर्थिक साधनों को कम करें या सार्वजनिक व्यय को बढावें।"

(5) संसद की विधायी सत्ता पर अन्य प्रतिबन्ध लगाते हुए अनुच्छेद 41 में कहा गया है कि, "यदि विधि-निर्माण के दौरान में यह ज्ञात हो जाए कि किसी सदस्य द्वारा निजी हैसियत में पेश किया गया कोई विधेयक या किसी विधेयक के बारे में कोई संशोधन, संसद की सत्ता के बाहर है या वह सरकार को हस्तान्तरित की गई विधायी शक्तियों के प्रतिकूल है तो सरकार उसे अविहित घोषित कर सकी है। यदि इस प्रश्न पर सरकार व सभा या सीनेट के सभापति के मध्य मतभेद पैदा हो जाए तो कोई भी पक्ष संवैधानिक परिषद् से पंच-निर्णय करने की प्रार्थना कर सकता है।"

(6) संविधान की धारा 48 के अनुसार, "सरकार द्वारा प्रस्तुत या स्वीकृति प्राप्त विधेयकों को सदनों की कार्य सूचियों में सरकार की इच्छानुसार प्राथमिकता दी जावेगी।"

(7) वित्तीय क्षेत्र में भी संविधान संसद की शक्तियों पर आवश्यक प्रतिबन्ध लगाते हुए सरकार की स्थिति को सुदृढ बनाती है। वित्तीय विधेयक के बारे में "यदि संसद 70 दिन के भीतर कोई निर्णय नहीं ले पाती तो अध्यादेश के द्वारा उसको प्रवर्तित किया जा सकता है।" इस व्यवस्था का स्पष्ट अर्थ यही है कि, "अन्त में सरकार को यह सत्ता दे दी गई है कि वह संसद की परिवाह किए बिना ही बजट को पारित कर ले।"

नवीन संविधान के अन्तर्गत किसी भी नई सरकार के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रारम्भ में ही राष्ट्रीय सभा का विश्वास प्राप्त करे। संविधान केवल यही व्यवस्था करता है कि नई सरकार को राष्ट्रीय सभा के समक्ष अपनी नीतियों की घोषणा कर देनी चाहिए। यदि सरकार के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाता हो (क्योंकि सरकार को केवल अविश्वास-प्रस्ताव द्वारा ही हराया जा सकता है) तो यह जरूरी है कि उस पर राष्ट्रीय सभा के कम से कम 1/10 सदस्यों के हस्ताक्षर हों व प्रस्ताव के पारित होने के लिए पूरे सदन का पूर्ण बहुमत मिले। अविश्वास प्रस्ताव पर मत लेने के लिए यह अनिवार्य है कि प्रस्ताव प्रस्तुत होने के बाद कम से कम 48 घंटे बीत चुके हों। मतदान का यह सम्पूर्ण प्रबन्ध इस भाँति होता है कि सरकार के विरोधी सदस्य खुलकर सामने आ जाते हैं क्योंकि उनके लिए यह आवश्यक है कि वे खुले रूप में मतदान करें। तटस्थ या मौन रहने वाले सदस्यों को सरकार समर्थक सदस्य मान लिया जाता है।

संविधान के द्वारा बनाई गई उपर्युक्त व्यवस्थाओं का स्पष्ट अर्थ संसद के मुकाबले में कार्यपालिका या मन्त्रिपरिषद् को अधिक शक्ति सम्पन्न बनाना है। इस बारे में आलोचकों का यह तर्क है कि "1958 के संविधान निर्माताओं ने मन्त्रि-परिषद् को स्थायित्व प्रदान करने के लिए संसदात्मक लोकतन्त्र की हत्या कर दी है, उन्होंने पानी के साथ बच्चों को भी टब से बाहर फेंक दिया है।"

दोनों सदनों में सम्बन्ध
(Relationship between Both Chambers)

फ्रान्स में संसद के दोनों सदनों के कार्यों और अधिकारों में सदैव परिवर्तन होता रहा है, विशेषकर द्वितीय सदन के सम्बन्ध में। जहाँ तृतीय गणतन्त्र में दोनों सदनों के अधिकार लगभग समान थे, वहाँ चतुर्थ गणतन्त्र में द्वितीय सदन के कार्यों और अधिकारों में आमूल परिवर्तन किये गये और उसे विश्व का सबसे कमजोर द्वितीय सदन बना दिया गया। लेकिन पंचम गणतन्त्र में द्वितीय सदन अर्थात् सीनेट को नया स्वरूप प्रदान किया गया है। तृतीय गणतन्त्र की भाँति, वर्तमान संविधान में दोनों सदनों को लगभग समान स्तर का बना दिया गया है। द्वितीय सदन को पुनः पर्याप्त शक्तियाँ देकर उसके प्रभाव और शक्ति में अभिवृद्धि की गई है। युद्ध की घोषणा, शान्ति की स्थापना और सन्धि या समझौता करने में दोनों सदनों के समान अधिकार हैं। राष्ट्रपति के निर्वाचन और उस पर महाभियोग के सम्बन्ध में भी दोनों सदनों को समान अधिकार दिए गए हैं। लेकिन मन्त्रिमण्डल केवल राष्ट्रीय सभा के प्रति उत्तरदायी है, सीनेट के प्रति नहीं। इसी प्रकार विधेयक के सम्बन्ध में भी राष्ट्रीय सभा को निर्णायक अधिकार दिए गए हैं, सीनेट इस क्षेत्र में उसके समकक्ष नहीं है। पुनश्च, वित्त विधेयक केवल राष्ट्रीय सभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता है, लेकिन सीनेट को उन पर विचार-विमर्श करने और संशोधन करने का अधिकार है। सीनेट को उस पर 15 दिन के भीतर अपना निर्णय दे देना होता है। आंगिक विधियाँ (Organic Laws) को भी सर्वप्रथम राष्ट्रीय सभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता है। साधारण विधेयक किसी भी सदन में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। दोनों सदनों में उन पर विचार होता है, परन्तु मतभेद की स्थिति में राष्ट्रीय सभा की स्थिति सर्वोच्च रहती है। दोनों सदनों के बीच मतभेद के कारण उपस्थित हुए गतिरोध को दूर करने के लिए प्रधान मन्त्री दोनों सदनों की एक संयुक्त समिति की बैठक बुलाता है जिसमें दोनों का समान प्रतिनिधित्व रहता है। इस संयुक्त समिति द्वारा विधेयक का जो रूप निर्मित किया जाता है, उसी रूप में उस विधेयक को सरकार दोनों सदनों में अनुमोदन के लिए पुनः प्रस्तुत करती है। यदि फिर भी दोनों सदनों में मतभेद रहे तो सरकार उस विधेयक के दोनों सदनों के एक और वाचन के बाद राष्ट्रीय सभा को उस विधेयक पर अन्तिम निर्णय करने का अधिकार देती है। इस प्रकार अन्ततः राष्ट्रीय सभा की स्थिति सीनेट से श्रेष्ठ मानी जाती है।

विधायी प्रक्रिया (Legislative Procedure)

विधायी प्रक्रिया में सबसे पहले विधेयक के प्रस्तुतीकरण की स्थिति होती है। प्रधान मन्त्री और संसद के सदस्यों को विधि-निर्माण में पहल करने का अधिकार है। सरकारी विधेयकों (Government Bills) पर पहले मंत्रि-परिषद् में विचार होता है और उन्हें संसद के किसी भी सदन के सचिवालय में जमा करा दिया जाता है, लेकिन वित्त विधेयकों को राष्ट्रीय सभा में ही आरम्भ किया जा सकता है। निजी सदस्यों के विधेयक (Private Member's Bills) नियमानुसार नहीं माने जाते यदि उनके द्वारा आय में कमी और व्यय में वृद्धि हो। इसके अतिरिक्त यदि विधायी-प्रक्रिया के दौरान ऐसा प्रतीत हो कि निजी सदस्य का विधेयक अथवा संशोधन कानून की सीमा से बाहर है या धारा 38

के अन्तर्गत सौंपी गई सत्ता के विरुद्ध है तो सरकार घोषित कर सकती है और वह विधेयक पेश नहीं किया जा सकता। परन्तु यदि इस प्रश्न पर सरकार और सम्बन्धित सदन के प्रधान के मध्य मतभेद हो तो इस प्रश्न को, किसी भी पक्ष की प्रार्थना पर संवैधानिक परिषद् (Constituuonal Council) के समक्ष प्रस्तुत किए जाने की व्यवस्था है जिस पर उसे 8 दिन के भीतर अपना निर्णय दे देना होता है।

विधेयक को पेश किए जाने के बाद उसे सदन की किसी भी एक नियमित अथवा स्थाई समिति के सुपुर्द कर दिया जाता है। सरकार या सदन की प्रार्थना पर विधेयक को किसी तदर्थ समिति (Adhoc Committee) के सुपुर्द भी किया जा सकता है।

कुछ महत्त्वपूर्ण समितियों की भी व्यवस्था है—सांस्कृतिक, पारिवारिक और सामाजिक मामलों की समिति, वैदेशिक मामलों की समिति, राष्ट्रीय प्रतिरक्षा और सशस्त्र सेनाओं की समिति, वित्त और अर्थ-व्यवस्था तथा आर्थिक नियोजन की समिति, संविधान, विधि-निर्माण और सामान्य प्रशासन की समिति, उत्पादन और व्यापार समिति। सरकार विधेयक पर समिति की रिपोर्ट आ जाने पर सदन में विचार मंत्री द्वारा की जाने वाली घोषणा के बाद होता है। विधेयक का संचालन मंत्री स्वयं करता है और वह उसमें सशोधन भी प्रस्तावित कर सकता है। सदन में पहले विधेयक के सामान्य सिद्धान्तों पर वाद-विवाद होता है। तत्पश्चात् सदन विधेयक की एक-एक धारा पर मतदान करता है और अन्त में उसके संशोधित रूप में सम्पूर्ण विधेयक पर मतदान होता है। एक सदन में पास होने के बाद विधेयक दूसरे सदन मे अर्थात् सीनेट से राष्ट्रीय सभा में या राष्ट्रीय सभा से सीनेट में जाता है, जहाँ उस पर समान प्रक्रिया के अनुसार विचार होता है। दोनों सदनों द्वारा एक ही रूप में पारित किए जाने पर विधेयक को राष्ट्रपति लागू (Promulgate) करता है और वह कानून का स्वरूप धारण कर लेता है।

यदि किसी सरकार अथवा संसदीय अर्थात् निजी सदस्य के विधेयक पर दोनों सदनों में मतभेद हो तो उसे दूर करने के लिए सविधान की धारा 45 के अन्तर्गत व्यवस्था की गई है। दोनों सदनों में मतभेद के परिमामस्वरूप जब कोई विधेयक प्रत्येक सदन में दो वाचन होने के बाद भी पास नहीं हो पाता अथवा यदि किसी विधेयक के विषय को सरकार प्रथम वाचन के बाद ही "अविलम्ब कार्यवाही वाला" अर्थात् "आवश्यक है" (Urgent) घोषित कर देती है, तो प्रधान मन्त्री को अधिकार है कि वह दोनों सदनों के बराबर सदस्यों की एक संयुक्त समिति की बैठक आयोजित करें, जिसका कार्य वाद-विवाद होने वाले शेष मामलों पर नए रूप का प्रस्ताव रखना होता है। संयुक्त समिति द्वारा विधेयक का जो रूप तैयार किया जाता है उसे सरकार दोनों सदनों की स्वीकृति के लिए पुनः प्रस्तुत करती है। उसके बारे में सरकार द्वारा समिति से कहे बिना कोई संशोधन पेश नहीं किया जा सकता। यदि संयुक्त समिति सहमति पर, आधारित रूप स्वीकार न कर सके तो सरकार उस पर राष्ट्रीय सभा और सीनेट द्वारा एक नया वाचन होने के बाद राष्ट्रीय सभा को उस पर अन्तिम निर्णय करने के लिए कह सकती है। इस प्रकार विधि निर्माण के मामलों में राष्ट्रीय सभा ही अन्तिम अधिकार रखती है।

वाद-विवाद के दौरान मंत्रियों और समितियों के अध्यक्षों को किसी भी समय हस्तक्षेप करने का अधिकार है। मंत्रिगण वाद विवाद के समय उपस्थित रह सकते हैं और किसी भी सदन में भाषण कर सकते हैं।

उन कानूनों को जिन्हें संविधान द्वारा आंगिक कानून (Organic Laws) का नाम दिया है, धारा 46 के अनुसार इन दशाओं के अन्तर्गत पारित एवं संशोधित किए जाने की व्यवस्था है—सरकारी अथवा संसदीय विधेयक को, जिस सदन में वह पेश किया गया हो उस सदन द्वारा विचार एवं मतदान के लिए, उसके पेश करने के केवल 15 दिन के बाद लाया जाएगा। उसके सम्बन्ध में अन्य विधेयकों जैसी प्रक्रिया का ही पालन होगा, लेकिन दोनों सदनों में मतभेद होने की स्थिति में राष्ट्रीय सभा उसके अन्तिम वाचन में अपने सदस्यों के पूर्ण बहुमत से उसे स्वीकार करेगी। सीनेट के सम्बन्ध में भी आंगिक कानून दोनों सदनों द्वारा इसी प्रकार पास किए जाएँगे। ऐसे कानूनों को उसकी संवैधानिकता पर संवैधानिक परिषद् द्वारा घोषणा किए जाने के बाद ही लागू (Promulgate) किया जाएगा।

वित्त विधेयक अथवा बजट के सम्बन्ध में यह व्यवस्था है कि उसके प्रारूप राष्ट्रीय सभा के सम्मुख अक्तूबर के प्रथम मंगलवार तक अवश्य पहुँच जाना चाहिए। उसके तुरन्त बाद उसे समिति को भेज दिया जाता है, लेकिन सदन में उस पर 15 दिन बाद ही वाद-विवाद शुरू हो सकता है। इस व्यवस्था का लाभ यह है कि संसद के सदस्यों को बजट का अध्ययन करने के लिए दो सप्ताह का समय मिल जाता है। संविधान की धारा 47 के अनुसार यह व्यवस्था है कि वित्त विधेयकों को आंगिक कानूनों के लिए विहित दशाओं के अन्तर्गत पेश किया जाएगा। यदि राष्ट्रीय सभा विधेयक के प्रस्तुत किए जाने के 40 दिन के भीतर उस पर प्रथम वाचन में निर्णय करने में असफल रहे, तो सरकार उसे सीनेट में प्रस्तुत करेगी और सीनेट को उस पर 15 दिन के भीतर निर्णय देना होगा। इसके बाद विधेयक के सम्बन्ध में धारा 45 में दी गई प्रक्रिया अर्थात् ऊपर वर्णित साधारण प्रक्रिया के अनुसार कार्यवाई की जाएगी। यदि विधेयक पर संसद 70 दिन के भीतर भी कोई निर्णय नहीं कर पाए तो विधेयक को अध्यादेश द्वारा लागू किया जा सकता है।

यदि किसी वित्तीय वर्ष के सम्बन्ध में बजट वित्तीय वर्ष के आरम्भ होने से पूर्व लागू न हो सके तो सरकार संसद से अविलम्ब यह प्रार्थना करेगी कि उसे कर एकत्रित करने का अधिकार दिया जाए, और सरकार स्वीकृत व्यय करने के लिए आज्ञप्ति द्वारा कोष उपलब्ध कर सकेगी। जिन दिनों संसद का अधिवेशन न हो रहा हो, इस सम्बन्ध में दी गई सब सीमाओं को निलम्बित रखा जाएगा। यह व्यवस्था है कि आडिट कार्यालय संसद और सरकार को वित्तीय कानूनों के कार्यान्वित रूप की देख-रेख करने में सहायता देगा।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि फ्रान्स में एक सुव्यवस्थित विधायी प्रक्रिया है।

न्यायपालिका

(The Judiciary)

फ्रान्स में न्यायपालिका की एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा सुव्यवस्थित स्वरूप रहा है। अत. फ्रान्स की न्यायपालिका के विकास-क्रम को जानना आवश्यक बन जाता है। साथ ही इसका देश की न्यायिक-व्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

न्यायपालिका की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

(Historical Background of Judiciary)

फ्रान्स में 1789 ई. की महान क्रांति से पूर्व कोई सगठित न्याय-व्यवस्था नहीं थी। देश में न्यायिक एकरूपता का नितान्त अभाव था। कोई क्रमबद्ध न्यायपालिका नहीं थी और सर्वत्र भिन्न-भिन्न कानून लागू थे। वाल्टेयर के शब्दों में, "देश में एक ओर से दूसरी ओर तक जाने वाले यात्री को जितनी बार घोड़ा बदलना पड़ता है उससे अधिक प्रकार के कानूनों को बदलना होता था।" राज्य-क्रान्ति ने रही-सही व्यवस्था को भी छिन्न-भिन्न कर दिया। तत्पश्चात् न्यायिक पद्धति के सुधार के विभिन्न प्रयास किये गये जो असफल सिद्ध हुए। सर्वप्रथम नैपोलियन महान द्वारा फ्रैंच कानूनों को संहिताबद्ध करने का कार्य सम्पादित किया गया। उसके द्वारा किए गए कानूनों के इस संग्रह को "नैपोलियन संहिता" (Code of Napolean) की संज्ञा दी जाती है। वर्तमान कानून प्राथमिक रूप से इसी नैपोलियन संहिता पर आधारित हैं। फ्रान्स की न्यायिक और वैधानिक व्यवस्था के विकास पर रोम की वैधानिक पद्धति, फ्रान्स की प्राचीन सामन्तवादी व्यवस्था तथा राजाओं द्वारा निर्मित कानूनों, 1789 की महान राज्य क्रान्ति और नैपोलियन द्वारा सगृहीत और निर्मित कानूनों का व्यापक प्रभाव रहा है। लेकिन सबसे अधिक प्रभाव नैपोलियन बोनापार्ट का ही रहा है जिसने पहली बार फ्रैंच कानूनों को संहिताबद्ध किया।

फ्रैंच न्याय पद्धति की विशेषताएँ

(Characteristics of the French Judiciary)

फ्रान्स की न्याय व्यवस्था या पद्धति का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित विशेषताएँ सामने आती हैं—

1. लिखित विधियाँ (Written Laws)—फ्रांस में विधियाँ पूर्णतः लिखित रूप में हैं। फ्रास के विपरीत ब्रिटेन में विधियों का अधिकाश भाग लिखित है और एक महत्वपूर्ण भाग, जिसे सामान्य कानून (Common Law) कहते हैं, अधिकाशतः अलिखित है।

2. संविधि विधियाँ (Statutory Laws)—फ्रान्स में लगभग सभी विधियाँ संसद अथवा अन्य किसी विधि निर्मात्री संस्था द्वारा निर्मित की गई हैं। रूढ़ियों और परम्पराओं का उनमें बहुत कम और वह भी कहीं-कहीं समावेश हुआ है। फ्रान्स में न्यायाधीश-निर्मित (Judge made) विधियों का विकास नहीं हो पाया है क्योंकि प्रत्येक न्यायालय अपना निर्णय देने में स्वतंत्र है, पूर्व न्यायिक निर्णयों अथवा दृष्टान्तों से निर्देशित होने के लिए वह बाध्य नहीं है। फ्रेंच व्यवस्था के विपरीत ब्रिटिश न्यायिक व्यवस्था में अधिकाश विधियाँ न्यायाधीशों द्वारा निर्मित हैं और वहाँ पूर्वकालीन न्यायिक निर्णयों या दृष्टान्तों का पूर्ण सम्मान किया जाता है।

3. प्रशासकीय अंग (Administrative Organ)—फ्रान्स की न्यायपालिका को मूलत. प्रशासकीय अंग माना गया है। मुनरो के शब्दों में, "न्यायपालिका को व्यवस्थापिका से भिन्न शासन के एक स्वतंत्र अंग के रूप में मानने की आदत फ्रेंच जनता में नहीं है। फ्रेंच जनता डाकघरों की भाँति न्यायालयों को भी केवल प्रशासकीय शाखाओं के रूप में मानती है।" इसके विपरीत ब्रिटेन और अमेरिका में न्यायपालिका को सरकार के एक स्वतंत्र अंग के रूप में जाना जाता है।

4. न्यायिक स्वतंत्रता (Independence of the Judiciary)—न्यायिक स्वतंत्रता भी फ्रान्स की न्याय पद्धति व्यवस्था की एक उल्लेखनीय विशेषता है। ब्रिटेन और अमेरिका की भाँति फ्रांस में भी न्यायाधीशों को पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त है। इसका मुख्य कारण यह है कि यहाँ न्यायाधीश सरकार के न्याय विभाग में कार्य करते हैं। साथ ही वे सरकारी वकील का काम करते हैं तथा न्याय मंत्रालय के प्रति उत्तरदायी हैं।

5. न्यायिक पुनरावलोकन (Absence of the Judicial Review)—भारत एवं संयुक्त राज्य अमेरिका में सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति प्राप्त है, लेकिन फ्रान्स में न्यायपालिका इस शक्ति से वंचित है। वहाँ न्यायपालिका प्रशासन का एक अधीनस्थ अंग है, अतः संसद द्वारा निर्मित कानूनों की संवैधानिकता का परीक्षण करने का उसे अधिकार नहीं है। यह कार्य एक अन्य संस्था, संविधानिक परिषद् (Constitutional Council) को सौंपा गया है।

6. नियुक्ति (Appointment)—फ्रान्स की न्याय व्यवस्था के अन्तर्गत न्यायाधीशों की नियुक्ति-प्रणाली अन्य देशों से भिन्न है। वहाँ न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रतियोगिता परीक्षा के आधार पर उच्च न्याय परिषद् (The High Council of Judiciary) द्वारा की जाती है। इसके विपरीत ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत आदि देशों में प्रायः विख्यात विधि-वेत्ताओं और उच्च-कोटि के वकीलों को राष्ट्रपति द्वारा न्यायाधीश नियुक्त किया जाता है।

7. स्थानीय न्यायालय (Local Courts)—फ्रान्स की न्याय-व्यवस्था की अन्य विशेषता यह है कि सभी न्यायालय स्थानीय होते हैं और उनकी बैठकें निश्चित स्थानों पर ही होती हैं।

8. द्वैध न्याय व्यवस्था (Dual System of Courts)— फ्रान्स में दो प्रकार के न्यायालयों का अस्तित्व है—सामान्य न्यायालय (Ordinary Courts) एवं प्रशासकीय

न्यायालय (Administrative Courts)। प्रथम प्रकार के न्यायालय गैर-सरकारी व्यक्तियों के मुकदमों का निर्णय करते हैं जबकि दूसरे प्रकार के न्यायालय सरकारी कर्मचारियों के अपराधों से सम्बन्धित मुकदमों का निपटारा करते हैं। दूसरे प्रकार के अर्थात् प्रशासकीय न्यायालय भिन्न प्रकार के कानूनों को लागू करते हैं जिन्हें प्रशासकीय कानून (Administrative Laws) कहा जाता है।

9. सामूहिकता का सिद्धान्त (Doctrine of Collegiality)—फ्रान्स में न्याय कार्य के सम्बन्ध में यह विशेष धारणा है कि न्यायिक कार्य के लिए एक नहीं अपितु अनेक मस्तिष्कों का संगठित विचार-विमर्श आवश्यक है। इसीलिए वहाँ कोई भी निर्णय प्रायः कम से कम तीन न्यायाधीशों की स्पष्ट सहमति से दिया जाता है।

फ्रेंच न्यायपालिका का संगठन
(Organisation of the French Judiciary)

फ्रान्स में न्यायालयों का संगठन एकीकृत (Integrated) न होकर संगठनात्मक है। न्यायिक अधिकार किसी एक संस्था में केन्द्रित नहीं है, अपितु पाँच प्रकार के पृथक्-पृथक् न्यायालयों में केन्द्रित है, जो निम्नलिखित हैं—

1. सामान्य न्यायालय (Ordinary Courts)
2. प्रशासकीय न्यायालय (Administrative Courts)
3. संवैधानिक परिषद् (Constitutional Council)
4. उच्च न्यायिक परिषद् (The High Council of Judiciary)
5. न्याय का उच्च न्यायालय (The High Court of Justice)

सामान्य न्यायालय (Ordinary Courts)

इन न्यायालयों में केवल गैर-सरकारी व्यक्तियों से सम्बन्धित मुकदमों की सुनवाई होती है। इस प्रकार के विभिन्न न्यायालयों का विवेचन निम्नानुसार है—

(i) शांति न्यायाधीश के न्यायालय (Justice of the Peace Courts)—सामान्य न्यायालयों में सबसे निम्न धरातल पर शांति न्यायाधीशों का न्यायालय है। प्रायः प्रत्येक कैन्टन में ऐसा एक न्यायालय होता है। बड़े-बड़े शहरों में तो अनेक ऐसे न्यायालयों का अस्तित्व हैं। सम्पूर्ण देश में इस प्रकार के लगभग 3 हजार न्यायालय हैं। इस न्यायालय में एक न्यायाधीश होता है जिसे शांति न्यायाधीश (Justice of the Peace) कहा जाता है। वह वैतनिक अधिकारी होता है। ये न्यायालय दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार के मुकदमों की सुनवाई करते हैं। वस्तुतः इनका मुख्य कार्य मुकदमों का निर्णय करना नहीं, वरन् मुकदमों को रोकना है अर्थात् न्यायाधीश समझाकर या मध्यस्थता के द्वारा विरोधी पक्षों में समझौता कराने का प्रयत्न करते हैं। इस तरह इन न्यायालयों का कार्य सामाजिक दृष्टिकोण से बड़ा उपयोगी है। शांति न्यायाधीश के न्यायालय बहुत कम मालियत के दीवानी मुकदमे सुनते हैं। कुछ मामलों में उनके निर्णय अंतिम होते हैं और कुछ में उनके निर्णयों के विरुद्ध अपील उनसे उच्च-स्तर के प्रारम्भिक न्यायालयों (Courts of the First Instance) में की जाती है। फौजदारी मुकदमे भी छोटे-छोटे अपराधियों से सम्बन्धित होते हैं।

(ii) प्रारम्भिक न्यायालय (Courts of the First Instance)—शांति न्यायालय के ऊपर प्रारम्भिक न्यायालय होते हैं। इस स्तर के न्यायालय सुधारात्मक न्यायालय (Correctional Courts) कहलाते हैं। प्रत्येक एरोण्डाइजमेंट (Arrondisement) में ऐसे न्यायालय होते हैं। इनकी संख्या 350 के लगभग है। प्रारम्भिक न्यायालय में दीवानी और फौजदारी दोनों मामले आते है। इन्हें प्रारम्भिक तथा अपीलीय दोनों प्रकार के क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं। दीवानी मुकदमों से इन न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें पुनरावेदन न्यायालयों या अपीलीय न्यायालयों (Courts of Appeal) में जाती हैं, जिनके निर्णय तथ्यों और कानून के सम्बन्ध में प्रायः अंतिम होते हैं। फौजदारी मामलों में प्रारम्भिक न्यायालयों का क्षेत्र चोरी, गबन और मारपीट के मामलों तक सीमित है। फौजदारी मुकदमों में इन न्यायालयों से अपीलें एसाइज न्यायालय (Court of Assize) में जाती हैं। प्रायः प्रत्येक मुकदमे की सुनवाई तीन से पाँच तक न्यायाधीश करते हैं।

(iii) पुनरावेदन न्यायालय (Courts of Appeal)—प्रारम्भिक न्यायालयों के ऊपर पुनरावेदन न्यायालय हैं। एक न्यायालय का क्षेत्राधिकार सात डिपार्टमेंटों (Departments) तक होता है। वर्तमान समय में फ्रांस में ऐसे लगभग 27 न्यायालय हैं। प्रत्येक न्यायालय में तीन विभाग होते हैं—दीवानी, फौजदारी तथा दोषारोपण (Indictment) विभाग। दोषारोपण विभाग इस बात का विचार करता है कि किसी व्यक्ति पर दोषारोपण किया जाए अथवा नहीं। प्रत्येक विभाग में प्रायः पाँच न्यायाधीश होते हैं। पुनरावेदन न्यायालयों का कोई मौलिक अधिकार क्षेत्र नहीं है। ये प्रधानतः प्रारम्भिक न्यायालयों के दीवानी मामलों से सम्बन्धित निर्णयों के विरुद्ध अपीलें सुनते हैं। तथ्य सम्बन्धी इनके निर्णय अंतिम होते हैं। वैधानिक तथ्यों (Points of Law) से सम्बन्धित निर्णयों के विरुद्ध अपील की जा सकती है।

(iv) एसाइज न्यायालय (Court of Assize)—यह अस्थिर न्यायालय है। यह बड़े-बड़े नगरों का बारी-बारी से दौरा करता है और मुकदमों का फैसला करता है। इसमें पुनरावेदन न्यायालय का एक न्यायाधीश और प्रारम्भिक न्यायालय के दो न्यायाधीश होते हैं। फ्रान्स का यह फौजदारी न्यायालय (Criminal Court) है जिसमें अधिक गंभीर फौजदारी मामलों में प्रारम्भिक न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें की जाती हैं। एसाइज न्यायालय में जूरी की सहायता से किया गया निर्णय अंतिम होता है और उसके विरुद्ध अपील नहीं की जा सकती।

(v) विराम न्यायालय (Court of Cessation)—यह फ्रान्स का सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय है जिसमें एक महाध्यक्ष, तीन विभागीय अध्यक्ष तथा 45 अन्य न्यायाधीश होते हैं जिन्हें सभा-सद (Councillors) कहा जाता है। इसकी बैठक पैरिस में होती है। इसमें तीन विभाग हैं—प्रार्थना विभाग (Chamber of Request), दीवानी विभाग तथा दण्ड विभाग। तीनों विभाग अलग-अलग अपने कार्य करते हैं। यह केवल अपीलीय (Appellate) न्यायालय है। अपीलों में भी यह केवल वैधानिक तथ्यों (Points of Law) का ही विचार करता है, तथ्यों (Facts) सम्बन्धी प्रश्नों पर नहीं। यह न्यायालय प्रत्येक निम्न न्यायालयों के निर्णयों के बदले अपना निर्णय नहीं दे सकता, बल्कि उनकी पुष्टि

कर सकता है अथवा उन्हें रद कर सकता है। इस न्यायालय को देश की न्यायिक व्यवस्था में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है।

प्रशासकीय न्यायालय (Administrative Courts)

प्रशासकीय न्यायालयों के दो स्तर है—प्रादेशिक परिषद् (Regional Council) और राज्य परिषद् (Council of State)।

प्रादेशिक परिषदें (Regional Councils) निम्नतर धरातल पर हैं। इन्हे प्रथम अन्तर्विभागीय परिषदें (Inter-Department Councils) भी कहते हैं। प्रत्येक परिषद् का कार्य क्षेत्र दो से सात डिपार्टमेंट तक होता है। इसकी कुल सख्या लगभग 23 है। प्रत्येक प्रादेशिक परिषद् में एक सभापति और चार सभा-सद या पार्षद् (Councillors) होते हैं। इन न्यायालयों में प्रशासन सम्बन्धी मुकदमे आते हैं। ये निर्धारण (Assessment) सम्बन्धी वाद-विवाद, सार्वजनिक निर्माण, स्थानीय निर्वाचन और समझौता भंग (Breach of Contract), आदि प्रश्नों का निर्णय करते हैं। इनके निर्णयों के विरुद्ध राज्य परिषद् (Council of State) में अपील की जा सकती है।

राज्य-परिषद् (Council of State) राष्ट्र का सर्वोच्च प्रशासकीय न्यायालय है जिसका अध्यक्ष फ्रान्स का न्याय मंत्री होता है। उसके अधीन एक उपाध्यक्ष और पाँच विभागाध्यक्ष होते हैं। राज्य परिषद् में 149 सदस्य होते हैं जिनकी नियुक्ति राष्ट्रपति न्याय मंत्री के परामर्श से करता है। यह प्रशासकीय न्यायालय एक अत्यन्त गौरवपूर्ण संस्था है जो प्रादेशिक परिषदों (Regional Councils) के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें सुनती है। इसे नए मुकदमों की सुनवाई करने का अधिकार भी प्राप्त है। इस प्रकार इसका अधिकार-क्षेत्र अपीलीय और प्रारम्भिक दोनों प्रकार का है। इसका निर्णय अंतिम होता है, अतएव इसका अधिकार-क्षेत्र अन्तिम (Final) है। संविधान की धारा 39 में कहा गया है कि सरकारी विधेयकों पर ससद में पेश किए जाने से पूर्व-मन्त्रिषद् में वाद-विवाद होता है और उनके विषय में राज्य परिषद् (Council of State) से मंत्रणा या सलाह की जाती है। प्रशासकीय न्याय का वास्तविक उत्तरदायित्व राज्य परिषद् पर ही है। यह मंत्रि-परिषद् को उसके द्वारा किए जाने वाले आदेशों और आज्ञप्तियों के सम्बन्ध में परामर्श देती है। सरकार के विभिन्न विभागों के बीच विवादों का भी यह निपटारा करती है। इसकी कार्य-प्रणाली बहुत साधारण है और सामान्य नागरिक भी इस न्यायालय तक पहुँच सकते हैं। कोई भी व्यक्ति सीधे इस परिषद् को प्रार्थना कर सकते हैं अथवा इसमें निम्नोत्तर प्रशासनिक न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील कर सकता है। इसके लिए कोई विशेष प्रक्रिया निर्धारित नहीं है। परिषद् के सामने आने वाले मुकदमों की संख्या बहुत बड़ी है अतः यह अपने कार्य प्रायः शीघ्रता से सम्पादित नहीं कर पाती है।

संवैधानिक परिषद् (Constitutional Council)

संवैधानिक परिषद् फ्रेंच न्याय-व्यवस्था की एक अनोखी विशेषता है। भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका में कानूनों की सवैधानिकता की परीक्षा करने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को दिया गया है, लेकिन फ्रान्स में इस प्रकार के न्यायिक पुनरावलोकन का

अधिकार नियमित न्यायालयों को नहीं देकर संवैधानिक परिषद् को दिया गया है। इसे एक अर्द्ध-न्यायिक संस्था (A Quasi-Judicial Institution) की संज्ञा दी जाती है।

पाँचवें गणतन्त्र के संविधान की धारा 55-56 संवैधानिक परिषद् से सम्बन्धित है। वर्तमान संविधान के अन्तर्गत न्यायिक पुनरावलोकन जैसी कोई व्यवस्था नहीं है, किन्तु वह एक ऐसे निकाय की रचना की व्यवस्था करता है जो कुछ विशेष दशाओं या सीमाओं के भीतर सरकार या संसद के कार्यों की संवैधानिकता पर निर्णय देने का कार्य करता है। यह निकाय ही संवैधानिक परिषद् है। इस परिषद् ने वर्तमान संविधान में चतुर्थ गणतन्त्र की संवैधानिक समिति का स्थान लिया है।

संविधान के अनुच्छेद 58 में संवैधानिक परिषद् की रचना का वर्णन किया गया है। यह अनुच्छेद राष्ट्रपति को शक्ति प्रदान करता है कि वह परिषद् के 9 सदस्यों में से 3 सदस्यों तथा उसके अध्यक्ष को मनोनीत कर सकता है। शेष 3 सदस्य राष्ट्रीय सभा के प्रधान और 3 सीनेट के प्रधान द्वारा छाँटे जाते हैं। गणतन्त्र के भूतपूर्व राष्ट्रपति परिषद् के पदेन सदस्य है। परिषद् के 9 सदस्यों को 9 वर्ष की अवधि के लिए छाँटा जाता है जिसमें से 1/3 सदस्य प्रति 3 वर्ष बाद बदल जाते हैं और उन्हें फिर नियुक्त नहीं किया जा सकता है। परिषद् का सभापति जिसे राष्ट्रपति मनोनीत करता है, बराबर मत (Equal Votes) आने पर निर्णायक मत (Castings Vote) देने का अधिकार रखता है।

परिषद् के सदस्यों का कार्य-काल 9 वर्ष है। यह समय सदस्यों को छाँटने वाले अधिकारियों के कार्यकाल से अधिक है, लेकिन हर 3 वर्ष बाद 1/3 सदस्य बदल जाते हैं अत इस बात की समावना और आशा सदैव बनी रहती है कि परिषद् के सदस्य सरकार के अन्य अगों के साथ मिल कर चलेंगे। परिषद् के सदस्य अपने कार्यकाल में कार्यपालिका, ससद या अन्य किसी संवैधानिक सघ में पद धारण करने का अधिकार नहीं रखते हैं और न ही उनकी नियुक्ति किसी प्रशासनिक पद पर की जा सकती है। परिषद् के सदस्य अपने सामने आने वाले मामलों पर सार्वजनिक वक्तव्य नहीं दे सकते और न ही उनके बारे में सार्वजनिक रूप से कोई परामर्श ही दे सकते हैं।

संवैधानिक परिषद् के कार्यों की प्रकृति बहुमुखी है, जो निम्नांकित है—

(i) आपातकाल के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को परामर्श देना।

(ii) सरकार की प्रार्थना पर निर्णय देना और यह घोषित करना कि राष्ट्रपति अपने कार्य सम्पादन की दृष्टि से असमर्थ (Incapacitated) हो गया है।

(iii) यह परिषद् राष्ट्रपति के विधिवत् निर्वाचन को आश्वस्त करती है।

(iv) अनुच्छेद 61 राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री एव दोनों सदनों के अध्यक्षों को यह अधिकार देता है कि वे सामान्य विधियों को लागू किए जाने से पहले उनकी संवैधानिक वैधता के प्रश्न पर संवैधानिक परिषद् का अभिमत ज्ञात कर सकते हैं।

(v) यह परिषद् शिकायतों पर विचार करती है और मतदान के परिणाम की घोषणा करती है।

(vi) यह जनमत संग्रह की विधि को आश्वस्त करती है और उसके परिणाम घोषित करती है।

(vii) विधेयकों, अन्तर्राष्ट्रीय प्रपत्रों, आंगिक कानूनों और संसद के स्थाई आदेशों की संविधानिकता पर निर्णय देने के अपने महत्वपूर्ण कार्य के साथ-साथ परिषद् को संविधान की किसी भी धारा को अवैधानिक घोषित करने का बड़ा ही शक्तिशाली अधिकार दिया गया है। यदि परिषद् किसी धारा को अवैधानिक घोषित कर देती है तो उसे कार्यान्वित नहीं किया जा सकता।

"संवैधानिक परिषद् के निर्णय के विरुद्ध कहीं भी अभ्यर्थना नहीं की जा सकती और इसके निर्णयों को समस्त जनशक्तियों द्वारा और शासकीय तथा न्यायिक अधिकारियों द्वारा मान्यता दी जाना आवश्यक है।" परिषद् आपातकाल के विषय में अनिवार्य रूप से राष्ट्रपति को परामर्श देने का अधिकार रखती है, किन्तु राष्ट्रपति उसे परामर्श से बँधता नहीं है। उसे जनता के सामने रखना आवश्यक है ताकि जनता राष्ट्रपति के कार्य पर अपना निर्णय कर सके। संविधानिक परिषद् संसद के सदस्यों को निर्वाचन कानूनों का अतिक्रमण करने के आधार पर अलग करने का निर्णय करती है।"

परिषद् के विधेयकों में कानूनों की संविधानिकता पर निर्णय देने के महत्त्वपूर्ण कार्य का कार्यपालिका तथा विधायिका के मध्य शक्ति-सतुलन पर काफी प्रभाव पड़ता है।

परिषद् को अपना निर्णय एक माह के भीतर देना आवश्यक होता है, किन्तु यदि सरकार ने विधेयक को अविलम्ब कार्रवाई वाला घोषित कर दिया हो तो परिषद् द्वारा अपना निर्णय 8 दिन के भीतर ही देना होता है। परिषद् के निर्णय कम से कम 7 सदस्यों द्वारा किए जाते हैं। परिषद् के वाद-विवादों और मतदान में गोपनीयता बरती जाती है और अल्पमत को प्रकाशित नहीं किया जाता। परिषद् के निर्णयों का आधार संविधान होता है, लेकिन क्योंकि उनके निर्णयों के विरुद्ध कहीं भी अभ्यर्थना या अपील नहीं की जा सकती, अतः संविधान का निर्वाचन वही समझा जाता है जो परिषद् करती है।

न्याय का उच्च न्यायालय (High Court of Justice)

फ्रान्स के नवीन संविधान के अध्याय 9 की धारा 67 के अन्तर्गत 'न्याय के उच्च न्यायालय' की स्थापना की गई है। यह एक विशुद्ध राजनीतिक न्यायाधिकरण (Tribunal) है, जिसकी स्थापना "महान देशद्रोही" के लिए, गणराज्य के राष्ट्रपति के तथा अपराधों तथा दुराचार के लिए मन्त्रियों के विरुद्ध महाभियोग की सुनवाई के लिए की जाती है। इस न्यायालय की रचना, शक्तियाँ और प्रक्रिया एक संवैधानिक विधि द्वारा निर्धारित की जाती है। न्यायालय के सदस्यों को बराबर-बराबर संख्या में राष्ट्रीय सभा और सीनेट अपने सदस्यों में से प्रत्येक सार्वजनिक या आंशिक निर्वाचन के बाद चुनती है। इस प्रकार के निर्वाचन व्यक्ति अपने में ही से किसी को अपना अध्यक्ष

चुनते हैं। इसमें वर्तमान में 12 सीनेटर और 12 प्रतिनिधि हैं। न्यायालय अपने न्यायालय सभापति के अतिरिक्त 2 उप-सभापतियों की भी छाँट करता है। राज्य विरोधी गंभीर अपराधों की परिभाषा स्वयं सदन व न्यायालय दोनों करते हैं, किन्तु दण्ड का निर्धारण न्यायालय द्वारा ही किया जाता है। न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध, जबकि निर्णय कुछ सदस्यों के बहुमत से दिए गए हों, कोई अपील नहीं की जा सकती। साधारण काल में यह न्यायालय निष्क्रिय रहता है, किन्तु संविधान के अनुच्छेद 16 के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा की गई आपातकालीन घोषणा के सम्बन्ध में यदि राष्ट्रपति एवं संसद के मध्य गंभीर संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाए तो यह न्यायालय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है।

उच्च न्याय परिषद् (The High Council of Judiciary)

संविधान की धारा 58 के अनुसार गणतन्त्र के राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह "न्यायिक अधिकरण की स्वतन्त्रता" को सुनिश्चित करे। इस सम्बन्ध में उच्च न्याय परिषद् उसकी सहायता करती है। संविधान की धारा 65 के अनुसार राष्ट्रपति उच्च न्याय परिषद् का सभापतित्व करता है। न्याय मन्त्री इस परिषद् का पदेन (Ex-officio) उप-सभापति होता है। जो राष्ट्रपति के स्थान पर परिषद् का सभापतित्व कर सकता है। सभापति और उप-सभापति के इन दो पदेन सदस्यों के अतिरिक्त परिषद् के 9 सदस्य और होते हैं। जिन्हें राष्ट्रपति आंगिक कानून (Organic Law) द्वारा निश्चित की गई व्यवस्था के अनुसार नियुक्त करता है। इन 9 में से 2 सदस्य तो राष्ट्रपति द्वारा प्रत्यक्ष रूप से नियुक्त किए जाते हैं और शेष 7 उसके द्वारा 21 नामों की उस सूची में से छाँटे जाते हैं जिसे 'Court of Cassation' व 'Council of State' तैयार करते हैं।

यह परिषद् उच्चतर न्यायिक पदों के लिए मनोनयन करती है, जिन्हें राष्ट्रपति भरता है। अन्य न्यायिक पदों के बारे में अब न्याय मन्त्री द्वारा प्रस्तावित नामों पर केवल अपनी सम्मति देती है। इस परिषद् के दो अन्य प्रमुख कार्य निम्नांकित हैं—

(i) क्षमादान के प्रश्नों पर मन्त्रणा देना, और

(ii) न्यायाधीशों के लिए अनुशासनात्मक परिषद् (Disciplinary Council) के रूप में कार्य करना। इन मामलों पर विचार करने के लिए इसकी बैठकों का सभापति 'Court of Cassation' का प्रथम प्रधान होता है। इसकी बैठकों का आयोजन सभापति या उप-सभापति की प्रार्थना पर किया जाता है। गणपूर्ति के लिए 5 सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक मानी जाती है। परिषद् के निर्णय और परामर्श, उपस्थित सदस्यों के बहुमत के आधार पर लिए जाते हैं। परिषद् को अनुशासन के मामलों के अलावा अन्य मामलों पर निर्णय देने की शक्ति नहीं है।

आंगिक कानून (Organic Laws)

फ्रान्स में कानूनों के विभिन्न प्रकार हैं। इनमें से एक प्रकार आंगिक कानूनों का है। संविधान में दी गई बहुत सी बातों की पूर्ति अथवा उनका स्पष्टीकरण करने के लिए ऐसे कानूनों की व्यवस्था है। ये कानून मुख्यतः निम्नांकित बातें तय करते हैं—

"(1) राष्ट्रपति के निर्वाचनों के लिए निर्वाचक मण्डल की रचना। (2) राष्ट्रपति की नियुक्ति सम्बन्धी शक्तियाँ (3) मन्त्री बन जाने के कारण जिन संसद सदस्यों या दूसरे पदों पर काम करने वाले व्यक्तियों के स्थान रिक्त होते हैं उनके रिक्त स्थानों की पूर्ति। (4) संसद के सदस्यों के कार्यकाल, उनके वेतन आदि उनकी संख्या उम्मीदवार होने की योग्यता होने तथा वे पद जिन्हें संसद का सदस्य रहते हुए ग्रहण नहीं किया जा सकता। (5) वे परिस्थितियाँ जिनके अन्तर्गत सभा और सीनेट के सदस्य अपनी ओर से मत देने की शक्ति अपने साथियों को हस्तान्तरित कर सकते हैं। (6) वित्तीय प्रक्रिया और विधायी प्रक्रिया। (7) सविधानिक परिषद् की सदस्यता के साथ जो पद ग्रहण नहीं किए जा सकते। (8) दण्डाधिकारियों (Magistrates) की सेवा पूर्ति। (9) सर्वोच्च न्याय परिषद् तथा उच्च न्यायालय का संगठन और उसकी कार्य पद्धति। (10) आर्थिक व सामाजिक परिषद् की रचना एवं उसकी कार्य-प्रणाली। (11) कम्युनिटी के तीन अंगों—कार्यकारिणी परिषद् (Executive Council), सीनेट और पच-न्यायालय (Court of Arbitration) की रचना और कार्य प्रणाली। ये संविधान विधियाँ संविधान में परिशिष्ट की भाँति जोड़ दी जाती हैं।"

आंगिक कानूनों को स्थानीय स्वशासन, शिक्षा, सामाजिक व लोक सेवाओं तथा राष्ट्रीय आर्थिक ढाँचे के पुनर्गठन हेतु भी पारित किया जा सकता है। इन आगिक कानूनों का साधारण विधियों की अपेक्षा अधिक सम्मान किया जाता है।

सारांशतः फ्रान्स की न्याय-व्यवस्था का स्वरूप अनूठा तथा अद्वितीय है।

स्थानीय शासन प्रणाली

(System of Local Administration)

फ्रान्स की स्थानीय-शासन व्यवस्था में एक विचित्र विरोधाभास पाया जाता है। यद्यपि राष्ट्रीय स्तर पर सरकार का आधार जनतान्त्रिक है, तथापि स्थानीय स्तर पर बहुत हद तक केन्द्रीकरण का प्रभाव है। फ्रान्स में स्थानीय इकाइयों को स्थानीय शासन के क्षेत्र में अमेरिकन एवं ब्रिटिश स्थानीय इकाइयों की अपेक्षा बहुत कम अधिकार प्राप्त हैं। फ्रान्स के स्थानीय शासन (Local Government) को 'स्थानीय प्रशासन' (Local Administration) की संज्ञा दी जाती है।

स्थानीय शासन प्रणाली का विकास

(Development of System of Local Administration)

फ्रान्स में स्थानीय शासन प्रणाली के विकास का बहुत पुराना इतिहास रहा है। 1789 ई. की राज्य-क्रान्ति से पहले भी इसका अस्तित्व था।

राज्य क्रांति से पहले फ्रांस में राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था का प्रचलन था। स्थानीय इकाइयों का प्रशासन सरकारी कर्मचारियों द्वारा होता था और सम्पूर्ण देश की बागडोर राजा या सम्राट के हाथ में थी। 1789 की इस क्रांति के बाद स्थानीय शासन की इकाइयों को विकेन्द्रित स्वरूप प्रदान किया गया और उन्हें लोकतान्त्रिक बनाया गया। राज्य क्रांति से पहले स्थानीय शासन की इकाईयों को 'जेनरलाइट' (Generalite) कहा जाता था। क्रांति के बाद 'जेनरलाइट' के स्थान पर तीन तरह की इकाइयाँ स्थापित की गई जिन्हें डिपार्टमेंट (Department), ऐराण्डाइजमेंट (Arrondisement) और कम्यून (Commune) कहा गया। स्थानीय शासन की यह लोकतान्त्रिक और विकेन्द्रित व्यवस्था अधिक समय तक चालू नहीं रह सकी। सन् 1800 में नैपोलियन बोनापार्ट ने इस लोकतान्त्रिक व्यवस्था के स्थान पर पूर्णतः केन्द्रित व्यवस्था कायम की और यही व्यवस्था न्यूनाधिक परिवर्तनों के साथ अभी तक चली आ रही है। इस व्यवस्था में प्रत्येक डिपार्टमेंट में एक प्रीफेक्ट (Prefect) होता है जो राष्ट्रीय सरकार का एजेन्ट होता है। प्रीफेक्ट के हाथों में पर्याप्त शक्ति केन्द्रित कर दी गई है, फिर भी फ्रेंच जनता सदैव इस बात के लिए प्रयत्नशील रही है कि केन्द्रीय शासन की बागडोर यथा-सम्भव ढीली की जाए और स्थानीय शासन की इकाइयों को अधिकाधिक स्वशासन का अधिकार दिया जाए। इस दिशा में कुछ प्रगति भी हुई है और अब कम्यूनों और डिपार्टमेंटों में स्थानीय लोगों द्वारा निर्वाचित परिषदों (Councils) की व्यवस्था कर दी

गई है तथा प्रत्येक कम्यून की परिषद् को अपने प्रशासकीय अधिकारी मेयर (Mayor) को चुनने का अधिकार दिया गया है जिसके हाथ में काफी प्रशासकीय अधिकार होते हैं। फिर भी कुल मिलाकर इकाइयों पर राष्ट्रीय सरकार एजेन्ट प्रीफेक्ट का कड़ा नियंत्रण है। तृतीय, चतुर्थ और पंचम गणतन्त्र में भी स्थानीय शासन प्रणाली की यह व्यवस्था बरकरार थी।

फ्रांस में स्थानीय शासन की प्रमुख विशेषताएँ
(Main Features of the Local Administration in France)

फ्रान्स स्थानीय शासन प्रणाली की अनेक विशेषताएँ उजागर होती हैं, जिन्हें निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है—

(1) केन्द्रीयकरण (Centralization)—फ्रांस की स्थानीय शासन की प्रमुख विशेषता है। केन्द्रीयकरण फ्रांस की प्रत्येक बात का केन्द्र से नियन्त्रण होता है। यह केन्द्र का गृहमंत्री ही है जो देश के स्थानीय शासन के मामले में अन्तिम पदाधिकारी है। केन्द्रीयकरण फ्रांस के शासन-तंत्र का आधार है और इसे सर्वोच्च सत्ता बना दिया गया है। केन्द्रीय सरकार और स्थानीय सरकारों के बीच अधिकारों का कोई वितरण नहीं किया गया है। स्थानीय संस्थाओं पर केन्द्रीय सरकार का प्रायः पूर्ण नियंत्रण है। इस कठोर केन्द्रीयकरण की व्यवस्था के कारण ही फ्रांस की पद्धति को 'स्थानीय स्वशासन' (Local Self Government) के स्थान पर 'स्थानीय शासन' (Local Government) कहना अधिक उपयुक्त होता है। इसी कारण मुनरो ने कहा है कि फ्रान्स में म्यूनिसिपल स्वशासन (Home Rule) के लिए कोई स्थान नहीं है। कुछ लेखकों ने तो यहाँ तक कहा है कि फ्रान्स मे स्थानीय शासन नहीं वरन् स्थानीय प्रशासन (Local Administration) है।

फ्रौंस अनेक प्रदेशों या राज्यों का संघ नहीं है प्रत्युत यह एक इकाई राष्ट्र है, जिसे प्रशासनिक सुविधा के लिए अनेक प्रदेशों में बांट दिया गया है। स्थानीय स्वायत्त शासन की अपनी कोई वैधानिक स्थिति नहीं है। पेरिस में बैठा हुआ गृहमंत्री सारी व्यवस्था को नियन्त्रित करता है और स्थानीय कर्मचारियों की एक फौज प्रीफेक्ट, उप-प्रीफेक्ट और मेयर उसकी आज्ञानुसार आचरण करते हैं। शासन के सारे सूत्र पेरिस की ओर चलते हैं। फ्रांस के इस घोर केन्द्रीयकता को इंगित करते हुए ही एक पूर्व राष्ट्रपति पाल डेशनेल ने कहा था कि "शिखर पर हमारे यहाँ गणतन्त्र है, किन्तु आधार में एक साम्राज्य।" फ्रांस की केन्द्रीयता को बताते हुए ही अक्सर यह कह दिया जाता है कि, "यदि पेरिस को छींक आए तो सारे फ्रौंस को जुकाम हो जाता है।" प्रो. मुनरो के शब्दों में "फ्रांस स्थानीय शासन प्रणाली की केन्द्रीयकरण की मौलिक विशेषता और उसकी दृढता के कारण स्थानीय शासन सगठन एक पिरामिड-सा बन गया है।" फ्रांस की स्थानीय शासन-व्यवस्था ब्रिटिश एवं अमरीकी स्थानीय शासन प्रशासन की तुलना में वस्तुतः कम लोकतान्त्रिक है।

(2) एकरूपता (Uniformity)—फ्रान्स की स्थानीय शासन प्रणाली की एक अन्य विशेषता इकाइयों की एकरूपता है। स्थानीय सरकार की इकाइयों, चाहे वे शहरी हों या देहाती संगठन, कार्यों एवं शक्ति की दृष्टि से एक समान हैं। फ्रान्स में कहीं भी जाइए सब स्थानों पर वही चुनी हुई परिषदें, वही प्रिफेट और मेयर, वही स्कूल और पुलिस

व्यवस्था, वही कर और कानून मिलेंगे। कुछ प्रदेश खेतिहर हैं तो कुछ औद्योगिक और कुछ की जनसंख्या बहुत अधिक है तो कुछ की बहुत कम। लेकिन फिर भी सब की सरकारें एक सी हैं जिनमें केवल एक अन्तर यही है कि जनसंख्या के आधार पर इसकी परिषदें छोटी या बड़ी हैं। केन्द्रीयकरण के कारण इनकी समरूपता और भी महत्त्वपूर्ण बन गई है।

(3) श्रृंखलाबद्ध (Hierarchical)—फ्रान्स की स्थानीय सरकारें शृंखलाबद्ध हैं। गृह मंत्रालय से लेकर कम्यून तक की इकाइयाँ एक ही श्रृंखला में सुसज्जित हैं, कोई इकाई पंक्ति से अलग अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रखती है। इसके विपरीत ब्रिटेन एवं अमेरिका की स्थानीय सरकारों की इकाइयों का स्वरूप शृंखलाबद्ध रूप में नहीं है।

(4) स्वायत्तता का अभाव (Absence of Autonomy)—फ्रान्स के स्थानीय शासन में स्वायत्तता का अभाव है। यहाँ एक अत्यन्त उच्चकोटि का संगठित शासन यन्त्र है और स्थानीय स्वायत्त शासन इससे कहीं भी पृथक् नहीं है। राष्ट्रीय केन्द्रीय सरकार इस पर अधिकार रखती है और इसका लगभग पूर्ण नियंत्रण है। फ्रांस में स्वायत्त शासन की चर्चा करना भ्रामक है क्योंकि शासन सत्ता का वैधानिक दृष्टि से कोई विभाजन नहीं पाया जाता है, अर्थात स्वायत्तता की कोई व्यवस्था नहीं है। फ्रांस में एक ही सरकार है जो मंत्रियों और संसद द्वारा पेरिस में तथा जिलाधिकारियों और परिषदों के माध्यम से देश के एक छोर से दूसरे छोर तक शासन करती है। स्थानीय संस्थाएँ और इनके स्थानीय अधिकारियों के अधिकार केवल इतने ही हैं जितने केन्द्रीय सरकार द्वारा इन्हें कानूनों के अन्तर्गत प्रदान किए गए हैं। पेरिस में स्थित केन्द्रीय सरकार ही सम्पूर्ण शासन-सूत्र का संचालन करती है। प्रायः प्रत्येक मामले में केन्द्रीय अधिकारियों का निर्णय थोंपा जाता है। ब्रिटेन, अमेरिका और भारत की स्थानीय इकाइयाँ जितनी स्वतंत्रता का उपभोग करती हैं फ्रान्स की स्थानीय इकाइयाँ उसका कोई मुकाबला नहीं कर सकतीं। इस संबंध में लार्ड ब्राइस का कथन है कि "पता नहीं क्यों, जहाँ चार करोड़ लोगों के विचार पर राष्ट्रीय मामले में विश्वास किया जाता है, वहाँ डिपार्टमेंट के लोगों को अपने आन्तरिक मामलों में विचार व्यक्त करने की स्वाधीनता नहीं दी जाती है।" फ्रान्स में अनेक प्रदेश (Departments), जिला (Cantones) और तहसीलें (Arrondissements) गृहमंत्री के अधीन रहकर कार्य करते हैं। ब्रिटेन के बहुत से मंत्रियों को देश के स्वायत्त शासन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों पर नियंत्रण करने का अधिकार प्राप्त है।

(5) स्थानीय क्षेत्रों और अधिकारियों का द्वैध रूप (Dual Role)—फ्रान्स के स्थानीय शासन की एक विशेषता स्थानीय क्षेत्रों और अधिकारियों का द्वैध रूप है। प्रत्येक डिपार्टमेंट और ऐरोन्डाइजमेंट की स्थापना के दो मुख्य प्रयोजन हैं—एक ओर तो वे राष्ट्रीय कानूनों को लागू कराने, न्यायिक प्रशासन करने, करों को वसूल करने आदि कार्यों के लिए राष्ट्रीय प्रशासन की इकाइयाँ हैं तथा दूसरी ओर वे स्थानीय शासन के ऐसे क्षेत्र हैं जिनकी अपनी स्थानीय परिषदें, अपने अधिकारी, उप-कानून और बजट आदि होते हैं। स्थानीय क्षेत्रों की ही भाँति स्थानीय अधिकारियों के अधिकारों और कर्त्तव्यों का भी द्वैध रूप है। स्थानीय शासन के अधिकारी एक तरफ तो अपने-अपने क्षेत्र या इलाकों

के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं और इस रूप में स्थानीय हितों के संरक्षक होते हैं तथा दूसरी ओर उनका कार्य राज्य के एजेन्ट करते रूप में है और इस तरह के संरक्षक होते हैं तथा दूसरी ओर उनका कार्य राज्य के एजेन्ट के रूप में है और इस तरह वे अपने क्षेत्रों में राज्य के अधिकारी हैं जो राष्ट्रीय कानूनों को लागू कराते हैं और कर वसूल करते हैं। इस तरह स्थानीय अधिकारियों को स्थानीय एवं राष्ट्रीय हितों में समन्वय करना पड़ता है। अन्य किसी देश में स्थानीय शासन के अधिकारियों को सम्भवतः ऐसा दोहरा कार्य करना नहीं पड़ता है।

(6) प्रशंसनीय जनसेवा—फ्रान्स में स्थानीय स्वायत्त शासन की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वहाँ शासन जनता की बहुत अधिक सेवा करता है। यह सच ही कहा जाता है फ्रान्स में एक व्यक्ति को केवल जन्म ही लेना होता है, अन्यथा शेष सारे कार्य राष्ट्र की ओर से किए जाते हैं। जैसे ही किसी का जन्म होता है, सरकार द्वारा नियुक्त पदाधिकारी नवोदित बालक की देखभाल करने पहुँच जाते हैं। जब वह कुछ बड़ा होता है तो सरकार उसकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करती है। इसी तरह यदि उसे काम नहीं मिलता है तो सरकार उसका भरण-पोषण करती है और यदि बिना किसी अभिभावक के वह मर जाता है तो सरकार उसकी अन्त्येष्टि भी करती है। परन्तु यह अभिभावकता इस सीमा से आगे नहीं की जा सकती है।

स्थानीय शासन का संगठन

(Organisation of the Local Administration)

फ्रान्स के स्थानीय शासन की इकाइयाँ एक पिरामिड (Pyramid) के रूप में हैं जिसका गुम्बज गृह मंत्रालय (Ministry of Interior) है। सम्पूर्ण फ्रान्स पेरिस क्षेत्र के सुधार के बाद (Since the reform of the Paris region) लगभग 99 डिपार्टमेंटों (Departments) में बँटा हुआ है जिनमें 4 ओवरसीज डिपार्टमेंट (Overseas Departments) भी सम्मिलित हैं। स्थानीय शासन की यह सबसे बड़ी इकाई है। इन डिपार्टमेंटों को लगभग 266 ऐरोन्डाइजमेंटों (Arrondissements) में बाँटा गया है। फिर ऐरोन्डाइजमेन्टों को लगभग 38,000 कम्यूनों (Communes) में विभाजित किया गया है। ऐरोन्डाइजमेन्टों और कम्यूनों के मध्य एक प्रशासनिक इकाई केन्टन है जिसमें कई कम्यून होते हैं जो प्रशासन की दृष्टि से मिलकर इसका निर्माण करते हैं। इस प्रकार फ्रांस स्थानीय शासन की सभी इकाइयाँ श्रृंखलाबद्ध हैं।

डिपार्टमैन्ट्स (Departments)—स्थानीय शासन प्रणाली की यह सबसे महत्वपूर्ण इकाई है। एक साधारण डिपार्टमेंट का क्षेत्रफल लगभग 2,361 वर्ग मील होता है। गिरोन्डे डिपार्टमैन्ट सबसे बड़ा है जिसका मुख्य केन्द्र बोरदोकस (Bordeaux) है। इसका क्षेत्रफल 4,140 वर्ग मील है। सबसे छोटा डिपार्टमैन्ट सीन है जिसका क्षेत्रफल 185 वर्ग मील है। इस तरह यह डिपार्टमेन्ट क्षेत्रफल, आकार एवं जनसख्या के दृष्टिकोण से एक दूसरे से भिन्नता लिए हुए हैं। फ्रान्स में डिपार्टमेन्टों का एक मानचित्र वस्तुतः एक भूलभुलैय्या का खेल जैसा लगता है। विभागों के नाम प्रायः किसी नदी, पर्वत अथवा अन्य भौगोलिक विशेषताओं पर रखे जाते हैं।

प्रत्येक डिपार्टमेन्ट में एक प्रीफेक्ट (The Prefect) होता है जो डिपार्टमेन्ट का प्रशासकीय अधिकारी है। उसकी नियुक्ति गृहमंत्री की सिफारिश पर राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। प्रीफेक्ट के कार्य के दो पहलू हैं। प्रथम, राष्ट्रीय सरकार के प्रतिनिधि के रूप में वह डिपार्टमेन्ट में शांति व सुरक्षा की व्यवस्था करता है। साथ ही कर वसूली, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, जन-निर्माण और जन-कल्याण कार्यों का निरीक्षण, निर्देशन एवं नियन्त्रण करता है। केन्द्रीय सरकार के प्रत्येक मंत्रालय का वह प्रत्यक्ष प्रतिनिधि होता है और डिपार्टमेंट के सभी मंत्रालयों के कार्यों का समन्वय करना उसी का काम है। द्वितीय, स्थानीय सरकार का वह प्रधान कार्यपालक है और इस हैसियत से डिपार्टमेंट की सभी इकाइयों पर उसका नियंत्रण होता है तथा डिपार्टमेंट की स्थानीय सेवाओं के लिए अधिकारियों की नियुक्ति उसी के द्वारा की जाती है और उनके कार्यों की देखरेख भी वही करता है। अपने अधीनस्थ एरोन्डाइजमेंटों और कम्यूनों के प्रशासन की देखरेख प्रीफेक्ट द्वारा की जाती है। प्रीफेक्ट ही कम्यूनों के बजट को स्वीकृत करता है और कम्यूनों के मेयरों (Mayors) पर नियत्रण रखता है। मुनरो ने डिपार्टमेंट में प्रीफेक्ट की स्थिति का मूल्यांकन करते हुए कहा है कि "वह डिपार्टमेंट ही जनता का पिता तुल्य और प्रशासकीय केन्द्रीकृत जाल का केन्द्र-बिन्दु है।" प्रीफेक्ट की सहायता के लिए उप-प्रीफेक्ट (Sub-Prefects) होते हैं।

प्रत्येक डिपार्टमेंट की एक सामान्य परिषद् (The General Council) होती है जिसका स्थानीय स्वायत्त शासन में बड़ा प्रभाव होता है। इन परिषदों के व्यापक अधिकार होते हैं और इनके निर्णय अवश्य नगरपालिका परिषदों से कहीं अधिक प्रभावी होते हैं। सामान्य परिषदें भिन्न-भिन्न डिपार्टमेंटों के अनुसार आकार-प्रकार में एक दूसरे से अलग होती हैं। ये डिपार्टमेंटों की प्रतिनिधि सभा हैं जिनका चुनाव स्थानीय जनता द्वारा किया जाता है। सामान्य परिषद् का प्रत्येक सदस्य 6 वर्ष की अवधि के लिए चुना जाता है और आधे सदस्य प्रत्येक तीन वर्षों के बाद बदल जाते हैं। परिषद् स्थानीय मामलों पर नियम बनाती है। यह प्रीफेक्ट और स्थानीय निर्वाचित अधिकारियों के स्थानीय कार्यों पर नियत्रण रखती है।

एरोन्डाइजमेन्ट (Arrondissement)

एरोन्डाइजमेन्ट डिपार्टमेंट का प्रशासकीय उप-विभाग है। प्रत्येक एरोन्डाइजमेंट में एक सब-प्रीफेक्ट (Sub-Prefect) होता है जो एरोन्डाइजमेंट का प्रधान कार्यपालक होता है। इसकी नियुक्ति गृह-मंत्री की सिफारिश पर राष्ट्रपति द्वारा होती है। यह प्रीफेक्ट के कार्य में सहायता प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक एरोन्डाइजमेंट में एक निर्वाचक परिषद् होती है जिसका निर्वाचन क्षेत्र की जनता द्वारा किया जाता है। परिषद् के सदस्यों का चुनाव 6 वर्षों के लिए होता है। परिषद् की सदस्य संख्या कम से कम 9 अवश्य होती है।

प्रत्येक एरोन्डाइजमेंट की सीमा में लगभग 100 से 150 कम्यून एक लाख जनसंख्या वाले होते हैं। डिपार्टमेंट की और निकटस्थ नगरों की राजधानी सदैव एरोन्डाइजमेंट ही होता है। एरोन्डाइजमेंट की राजधानी डिपार्टमेंट की राजधानी से कम महत्त्वपूर्ण नगर में होती है।

कैंटन (Cantons)

कैन्टन कम्यूनों का प्रशासन के दृष्टिकोण से बनाया गया एक समूह होता है। अनुपात से प्राय. प्रत्येक डिपार्टमेंट मे लगभग 35 कैन्टन होते है। कुछ डिपार्टमेंटो में 60 से अधिक कैंटन भी हैं। कैंटनों के आधार पर निर्मित केवल सेना और न्यायालय प्रशासन ही हैं। परन्तु डिपार्टमेंट में चुनाव क्षेत्र भी कैंटन ही है।

कम्यून (Communes)

फ्रेंच स्थानीय शासन प्रणाली में सबसे नीचे की इकाई को कम्यून का नाम दिया जाता है। ये म्यूनिसिपल शासन की इकाइयाँ हैं। फ्रान्स में शहरी और देहाती दोनों क्षेत्रों में एक ही तरह की इकाइयों की व्यवस्था है। प्रत्येक कम्यून मे एक म्यूनिसिपल परिषद् (Municipal Council) होती है जिसमें प्राय. 11 से लेकर 37 तक सदस्य होते हैं। पेरिस का कम्यून इसका अपवाद है। सदस्यों का निर्वाचन कम्यून की जनता द्वारा 6 वर्षों के लिए होता है। परिषद् स्थानीय बातों पर विचार-विमर्श करती है। यद्यपि इसके कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य नहीं हैं, फिर भी यह मेयर और स्थानीय निर्वाचन अधिकारियों के कार्यों की देख-रेख करती है। मेयर कम्यून का प्रधान कार्यपालक होता है जिसका निर्वाचन परिषद् 4 वर्ष के लिए करती है। केन्द्रीय सरकार और कम्यूनों के अधिकारी परिषद् के निर्वाचन में खड़े नहीं हो सकते। परिषद् की बैठकें वर्ष में चार बार होती हैं और प्रत्येक बैठक लगभग दो सप्ताह चलती है।

पेरिस का म्यूनिसिपल शासन
(The Municipal Administration of Paris)

अन्य देशों की तरह फ्रांस की राजधानी पेरिस का स्थानीय शासन अनूठा है। यद्यपि पेरिस में भी एक कम्यून है, पर अपने विशेष महत्त्व के कारण इसका शासन भिन्नता लिए हुए है। पेरिस अथवा सीन के डिपार्टमेंट का शासन दो प्रीफेक्ट में विभक्त अन्य प्रीफेक्टों की भाँति है—(1) प्रीफेक्ट ऑफ पेरिस (The Prefect of Paris) जो म्यूनिसिपल सेवाओं और पेरिस डिपार्टमेंटों की सेवाओं का प्रशासन करता है, एवं (2) प्रीफेक्ट ऑफ पुलिस (The Prefect of Police) जो यातायात (Traffic) और शान्ति तथा व्यवस्था (Order) बनाए रखने के लिए उत्तरदायी है।

पेरिस एक नगर और डिपार्टमेंट दोनों (Both a City and a Department) है। पेरिस नगर का अपना कोई मेयर नहीं है, यह 20 एरोन्डाइजमेंट में बँटा है और प्रत्येक का अध्यक्ष मेयर कहलाता है। पर चूँकि इन मेयरों की नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती है, अतः वे उप-प्रीफेक्टों के समान होते हैं। पेरिस की एक नगर-परिषद् (City Council) भी है जिसमें 10 सदस्य हैं। यही डिपार्टमेंट की जनरल कौंसिल के भी कार्य करती है। सदस्यों को वेतन मिलता है।

सारांशतः फ्रान्स में स्थानीय स्वशासन का एक निश्चित संस्थागत तथा प्रक्रियागत स्वरूप पाया जाता है।

प्रशासकीय कानून

(Administrative Law)

फ्रांस में प्रशासकीय कानूनों की व्यवस्था इसे अनूठा स्वरूप प्रदान करती है। यह यहाँ की अनोखी विशेषता है, जो इसे अन्य लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं से अलग स्वरूप प्रदान करती है। यहाँ साधारण न्यायालयों के साथ-साथ प्रशासनिक कानून का विवेचन किया जाता है।

फ्रांस न्याय व्यवस्था का विवेचन, बिना इस बात का उल्लेख किए कि प्रशासनिक कानून (Droit Administrative) क्या है, अधूरा रह जाता है। प्रशासकीय कानून फ्रांस न्यायिक व्यवस्था की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता है। सामान्यतः प्रजातान्त्रिक देशों में सभी के लिए एक ही प्रकार की न्याय-व्यवस्था होती है, परन्तु फ्रांस में दो प्रकार की न्याय-व्यवस्था है। साधारण जनता के लिए दीवानी कानूनों (Civil Laws) तथा दीवानी न्यायालयों (Civil Courts) की व्यवस्था है, परन्तु सरकारी कर्मचारियों से सम्बन्धित मुकदमों का निर्णय प्रशासकीय नियमों (Administrative Laws) के अनुसार होती है।

प्रशासकीय कानून का अर्थ—प्रशासकीय कानून की विभिन्न लेखकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से व्याख्या की है। बारथीलैमी के अनुसार, "फ्रांस में प्रशासनिक कानून का आशय उन सब कानूनी नियमों से है जिनसे प्रशासन के विभागों का पारस्परिक और जन-समूह का निर्णय होता है।" रेने डेविड के अनुसार, "प्रशासन कानून की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि यह उन नियमों का विधान-संग्रह है जिनसे सार्वजनिक प्रशासन की व्यवस्था और कर्त्तव्य का निर्णय तथा प्रशासनिक कर्मचारियों के राष्ट्र के नागरिकों के प्रति सम्बन्धों का नियन्त्रण होता है।" प्रो. वाडे के शब्दों में, "प्रशासन कानून का प्रमुख सम्बन्ध केवल प्रशासन से ही है, न्यायिक नियन्त्रण अथवा अधिरक्षित संवैधानिक कार्यों से नहीं।" डॉ. जेनिंग्स ने लिखा है कि "प्रशासनिक कानून केवल शासन से सम्बन्धित नियम हैं। इन नियमों द्वारा शासन अधिकारियों के अधिकारों और कर्त्तव्यों का निर्णय होता है।"

प्रो. डायसी (Dicey) ने प्रशासकीय कानून की परिभाषा देते हुए कहा है कि "फ्रांस के प्रशासनिक कानून, शासन-अधिकारियों के अधिकारों और कर्त्तव्यों के वे सिद्धान्त हैं जिनके आधार पर राष्ट्र-सत्ता के प्रतिनिधि के रूप में राज्य कर्मचारियों और जनता के पारस्परिक व्यवहार का निर्णय और नियन्त्रण होता है।"

डॉ. परमात्मा शरण के अनुसार, "प्रशासनिक कानून ऐसे नियमों का संग्रह है जो प्रशासनिक अधिकारियों के नागरिकों के प्रति सम्बन्धों को विनियमित करते हैं और जिनके अनुसार सरकारी अधिकारियों की स्थिति, नागरिकों के इन अधिकारियों से सम्बन्ध तथा व्यवहार के बारे में अधिकारों व दायित्वों को निर्धारित किया जाता है।"[1]

फ्रांस में प्रशासकीय कानून के विकास के कारण
(Development Causes of Administrative Law in France)

डॉ. परमात्माशरण ने अपनी पुस्तक 'तुलनात्मक शासन और राजनीति' में फ्रांस में प्रशासनिक कानून के विकास के लिए दो मुख्य कारणों को उत्तरदायी माना है, जो निम्नानुसार है—

(1) फ्रांस में एकात्मक शासन-प्रणाली के साथ-साथ अत्यधिक मात्रा में शक्तियों का केन्द्रीकरण है, जिसके कारण अधिकारियों के हाथों व्यापक शक्तियाँ आ गई हैं, जिनके दुरुपयोग होने की आशंका बनी रहती है। प्रशासनिक न्यायालय यह देखते हैं कि सरकारी अधिकारी अपनी शक्तियों का दुरुपयोग न करें।

(2) फ्रांस से ही शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धान्त निकला, जिसके अनुसार न्यायपालिका को विधायिका व कार्यपालिका के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। फ्रांस में पृथक् प्रशासनिक न्यायालयों की पद्धति के अन्तर्गत व्यक्ति को प्रशासकों की स्वेच्छाचारी कार्यों के विरुद्ध प्रायः पूर्ण रक्षण प्राप्त है।"[2] इस तरह से प्रशासकीय अधिकारियों की निरंकुशता तथा स्वेच्छारिता को नियंत्रित करने की दृष्टि से प्रशासकीय कानूनों की व्यवस्था की गई।

प्रशासकीय कानून का स्वरूप
(Nature of Administrative Law)

प्रशासकीय कानून की उपर्युक्त दी गई विभिन्न परिभाषाओं से इनके स्वरूप के बारे में पता लगता है। इन प्रशासकीय कानूनों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि ये वे कानून हैं जो सरकारी कर्मचारियों और सामान्य जनता के सम्बन्धों को निर्धारित करते हैं। इस दृष्टि से प्रशासकीय कानून दीवानी कानूनों से भिन्न हैं क्योंकि दीवानी कानून केवल नागरिकों के पारस्परिक संबंधों को निर्धारित करते हैं। प्रशासकीय न्यायालयों के समक्ष केवल वे ही मामले आया करते हैं जिनमें सरकार का कोई कर्मचारी सम्मिलित हो और ऐसे मुकदमों का निर्णय भी प्रशासकीय कानून के आधार पर होता है। सरकार या सरकारी कर्मचारी और नागरिकों के मध्य जो झगडे होते हैं, उनका निर्णय सामान्य न्यायालयों में नहीं किया जाता है, प्रत्युत विशेष प्रकार के न्यायालयों में किया जाता है जिन्हें प्रशासकीय न्यायालय कहा जाता है। फ्रांस में इस तरह की धारणा प्रचलित है कि न्यायाधीश सरकारी अधिकारियों के विरोधी होते हैं और नागरिकों एवं सरकारी कर्मचारियों के बीच के झगड़ों में कर्मचारियों को तंग कर सकते हैं। अतः निष्पक्ष न्याय के लिए यह आवश्यक है कि ऐसे झगड़ों का निर्णय प्रशासकीय न्यायालयों द्वारा ही हो।

1-2. *डॉ. परमात्मा शरण*: तुलनात्मक शासन और राजनीति, पृष्ठ 400.

प्रशासकीय कानून और कानून का शासन (Administrative Law & Rule of Law)—प्रशासकीय कानून के कारण फ्रांस में सरकारी कर्मचारियों के लिए न्यायालयों की अलग व्यवस्था है। इस प्रकार सरकारी कर्मचारी और सामान्य जनता में कानून के मामले में अन्तर किया जाता है। सरकारी कर्मचारी प्रशासकीय कानून से प्रशासित होते हैं, जबकि साधारण नागरिकों के लिए सामान्य कानूनों की व्यवस्था है। लेकिन फ्रांस के विपरीत ब्रिटेन में सामान्य कानून (Common Law) की धारणा को मान्यता दी जाती है। इस व्यवस्था के कारण ब्रिटेन में कानून का शासन (Rule of Law) है अर्थात् राज्य में बसने वाले सभी लोग कानून के समक्ष बराबर हैं। प्रो. डायसी ने कानून के शासन के तीन अर्थ स्थिर किए हैं—प्रथम, किसी भी व्यक्ति को तब तक कोई सजा नहीं दी जा सकती जब तक खुले न्यायालय में उस व्यक्ति के विरुद्ध उसका अपराध सिद्ध न हो जाए; द्वितीय, कानून के समक्ष सभी बराबर हैं चाहे वे सामान्य नागरिक हों अथवा उच्चतम अधिकारी, एवं तृतीय, सभी के लिए एक ही प्रकार के कानून हैं और एक ही तरह के न्यायालयों की व्यवस्था है। डायसी की मान्यता है कि इसी कानून के शासन के कारण अंग्रेज स्वतन्त्रता का महानतम उपभोग करते हैं।

ब्रिटेन की न्याय-व्यवस्था से भिन्न फ्रांस में दोहरे कानून और दोहरे न्यायालयों की व्यवस्था है। फ्रांस में अधिकारियों के लिए प्रशासकीय कानून की व्यवस्था है, अतः कहा जाता है कि कानून की दृष्टि से वहाँ सभी नागरिक समान नहीं हैं। इसी दृष्टि से यह आरोप लगाया जाता है कि फ्रांस में राज्य कर्मचारियों का तुलना में नागरिकों को कम न्यायिक अधिकार प्राप्त हैं। लेकिन वस्तुतः यह अपूर्ण निष्कर्ष है। न्याय के संबंध में सभी देशों की अपनी-अपनी धारणाएँ हैं। ब्रिटेन, अमेरिका आदि देशों में सरकार का दायित्व ही अधिकारियों का दायित्व माना जाता है जबकि फ्रांस में अधिकारियों व कर्मचारियों का दायित्व राज्य का दायित्व माना जाता है। प्रायः प्रत्येक न्याय-व्यवस्था में राज्य कर्मचारियों द्वारा किए गए जनता के प्रति अपराध के विरुद्ध न्याय माँगा जाता है। फ्रांस में राज्य द्वारा कर्मचारियों को बचाने का प्रयास किया जाता है जबकि कर्मचारी जनता के प्रति अपराध अपने कर्तव्य का निर्वाह करने के सिलसिले में करते हैं। परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि प्रशासकीय कानून की स्थिति के कारण जनता की स्वतन्त्रता खतरे में रहती है। इसके विपरीत फ्रांस में प्रशासकीय कानून के अस्तित्व के कारण ही जनता के प्रति अपराध करते हैं, तो प्रशासकीय न्यायालय उस अधिकारी के विरुद्ध अपना निर्णय देते हैं। इस तरह इस व्यवस्था के कारण प्रशासकीय अधिकारी जनता की स्वतन्त्रता सुरक्षित है। यदि सरकारी कर्मचारी जनता के अधिकारों में हस्तक्षेप करते हैं और जनता के प्रति स्वेच्छाचारी आचरण करने से भय खाते हैं। इसका एक अन्य लाभ यह है कि प्रशासकीय न्यायालय की न्याय-प्रक्रिया बड़ी सरल है और प्रशासकीय न्यायालय शीघ्रातिशीघ्र न्याय देने की व्यवस्था करते हैं। नागरिकों को अधिक देर प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती, न्याय शीघ्र हो जाता है। यह एक तथ्य है कि फ्रांस में प्रशासकीय न्यायालयों में जनता का विश्वास बढ़ा ही है घटा नहीं। यह एक अत्यन्त उपयोगी और न्यायपूर्ण व्यवस्था है कि प्रशासनिक न्यायालयों से न्याय प्राप्ति के लिए अधिक व्यय नहीं होता। साधारण न्यायालयों में जो भारी शुल्क देना भी पड़ता है, उसकी यहाँ आवश्यकता

नहीं होती, और जो नाममात्र का शुल्क वादी-प्रतिवादी को देना पडता है वह भी, यदि वादी अभियोग में विजयी हो जाए, तो उसे लौटा दिया जाता है। फ्रास की इस व्यवस्था के विपरीत ब्रिटेन आदि देशों में न्याय अधिक महँगा है और कानूनी कार्रवाई जटिल तथा व्यय साध्य होती है कि सामान्य जनता आसानी से न्याय प्राप्त नहीं कर पाती। व्यवहार में ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था उन्हीं के लिए विशेष सुलभ है जिनका सम्बन्ध धनिक वर्ग से है और महँगी न्याय व्यवस्था को वहन करने में सक्षम है।

प्रशासकीय न्यायालयों और कानूनों की व्यवस्था का प्रचार शनैः-शनै. अन्य देशों में भी बढता जा रहा है। स्वयं ब्रिटेन में ऐसी अनेक प्रशासकीय सस्थाएँ हैं जो न्यायिक तथा अन्य अर्द्ध-न्यायिक कार्य सम्पादित करती हैं। बहुत से ऐसे पदाधिकारी और कूटनीतिक अधिकारी हैं जिन्हें न्यायालयों से विशेष उन्मुक्तियाँ मिली हुई हैं। आज ब्रिटेन में कानून के शासन की वह व्यवस्था नहीं है जिसका वर्णन डायसी ने किया था।

निष्कर्ष रूप में इस आरोप में कोई दम नहीं है कि प्रशासकीय कानून के कारण फ्रास में नागरिक की वैयक्तिक स्वतन्त्रता कतई समव नहीं है। इसके विपरीत वास्तविकता यह है कि प्रशासकीय विधि की इस व्यवस्था में फ्रांस की जनता की स्वतन्त्रता सुरक्षित है। फ्रांस की जनता इसे अपने अधिकारों का सरक्षण समझती है और इसीलिए यह व्यवस्था अब तक चली आ रही है। स्वय डायसी तक ने कहा है कि प्रशासकीय कानून में कुछ महान् गुण हैं जो फ्रेन्च संस्थाओं की भावना के प्रतिकूल नहीं हैं। मुनरो ने लिखा है फ्रेन्च जनता इसे (प्रशासनिक कानून को) अपने वैयक्तिक अधिकारों की पुष्टि करने में बाधक नहीं समझती। इसके विपरीत वह इसे अपनी स्वतन्त्रता के दुर्ग और स्वेच्छाचारी सरकारी कार्यों के प्रति सुरक्षा के रूप में स्वीकार करती है।

सारांशतः फ्रांस में प्रचलित प्रशासकीय न्याय व्यवस्था की अवधारणा ने वहाँ की जनता की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखने में अहम भूमिका का निर्वाह किया है।

———

नौकरशाही

(Bureaucracy)

आधुनिक लोक-कल्याणकारी राज्यों में नौकरशाही की भूमिका और महत्त्व निर्विवाद है। फ्रान्स में भी नौकरशाही की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यहाँ प्रशासन और राजनीति के बीच अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहा है। फ्रांसीसी प्रशासन में एकरसता तथा स्थायीपन की भावना रही है।

फ्रान्स में नौकरशाही की मुख्य विशेषताएँ

(Main Features of French Bureaucracy)

प्रसिद्ध विद्वान रिडले तथा ब्लोण्डेल ने फ्रांस के सेवीवर्ग प्रशासन की मुख्य विशेषताओं का निम्नानुसार विश्लेषण किया है[1]—

1. मिशनरी भावना (Missionary Zeal)—प्रारम्भ से ही फ्रान्सीसी नौकरशाही मिशनरी भावना से कार्य करती रही है। फ्रान्स की गणतन्त्रात्मक व्यवस्था में फ्रांस के राजाओं ने अपने अधीनस्थ अधिकारियों में देश के आर्थिक जीवन के विकास की प्रेरणा जागृत की। नेपोलियन प्रथम के समय में भी प्रशासन राज्य के हस्तक्षेप के प्रति पर्याप्त सजग रहा। 19वीं सदी और उसके बाद के पूँजीवादी युग में राज्य के हस्तक्षेप की नीतियाँ कायम रहीं। चतुर्थ गणतन्त्र के समय नागरिक सेवा ने कृषि और उद्योगों के आधुनिकीकरण के लिए अनेक प्रमुख योजनाएँ प्रारंभ कीं। आज भी फ्रांस का सेवीवर्ग प्रशासन उसी प्रकार की मिशनरी भावना से चल रहा है। उसकी इस मिशनरी भावना के कारण ही देश में लोक-कल्याणकारी राज्य की अवधारणा साकार हो सकी है।

2. देश के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व (Representation of all Classes of the Country)—फ्रान्स की लोक सेवाओं में देश के प्रायः सभी वर्गों के लोगों का प्रतिनिधित्व हो जाता है। बड़ा आकार होने के कारण इसमें देश के सभी वर्गों के लोगों का प्रतिनिधित्व हो जाता है। ब्रिटेन में वहाँ की जनसंख्या के अनुपात में जितने लोक सेवक हैं, उनसे दुगुने फ्रान्स में हैं। ब्रिटेन में जिन पदों पर स्थानीय सरकार के अधिकारी कार्य करते हैं, उन पदों पर फ्रांस में लोकसेवक रखे जाते हैं।

3. देश के सभी भागों में बिखरे हुए हैं (Spread all over the Country)—फ्रांस के लोक सेवक ब्रिटेन की भाँति केवल राजधानी प्रदेश और बड़े नगरों में ही केन्द्रित नहीं हैं वरन् पूरे देश में व्याप्त हैं। केन्द्र सरकार की क्षेत्रीय सेवाएँ काफी व्यापक हैं। सम्भवतः

---

1 डॉ सी एम जैन सेवीवर्गीय प्रशासन, पृ 123 127

प्रत्यक कस्बे मे एक सरकारी कार्यालय है। तीन हजार की जनसख्या वाले कस्बों तथा गावों में सरकारी सड़क और इंजीनियर रखे गए है। प्रत्येक पैरिश (Parish) में स्कूल मास्टर होता है जो स्वय एक लोक सेवक है।

4. अच्छे प्रत्याशियों का चयन (Selection of better Candidates)—फ्रॉस में लोक सेवाओं की ओर अच्छे और योग्य व्यक्ति आकर्षित होते हैं। यहाँ लोक सेवाओं में प्रवेश हेतु कड़ी स्पर्धा होती है। लोक सेवाओं मे प्रवेश की परीक्षाएँ सामान्य योग्यता की मापक समझी जाती हैं। यद्यपि लेक सेवाओं मे वेतन एव अन्य भौतिक लाभ और सुविधाएँ निजी उद्यमों की अपेक्षा कम होती हैं, किन्तु इनकी प्रतिष्ठा और सम्मान के कारण देश में मेधावी और प्रतिभावान युवक इनकी ओर सहज रूप में आकर्षित हो जाते हैं। यदि एक बार सरकारी सेवा में किसी ने प्रवेश पा लिया तो उसे एक प्रकार से सफलता के लिए प्रमाण-पत्र प्राप्त हो जाता है।

5. शिक्षा से जुड़ी हुई है (Linked with the Education)—फ्रॉस की नागरिक सेवा तथा शिक्षण संस्थाओं के बीच संबंधों की एक कड़ी सदैव रहती है। अनेक स्कूलों में प्रवेश के लिए बडे कठोर नियम हैं। यहाँ प्रवेशार्थियों से एक समझौते पर हस्ताक्षर करा लिए जाते हैं कि वे स्नातक होने के बाद कुछ वर्षों तक सरकारी सेवा में रहेंगे। अध्ययनकाल मे विद्यार्थियों को ऐसे विषयों का ज्ञान कराया जाता है जो सरकारी सेवा के दायित्वों एव आवश्यकताओं के अनुरूप होते हैं। इन स्कूलों की परम्पराएँ लोक सेवाओं की परम्पराओं के समकक्ष होती हैं।

6. विभिन्नताएँ (Diversities)—फ्रान्स की नागरिक सेवा की एक अन्य विशेषता इसमें व्याप्त विभिन्नताएँ (Diversity) नागरिक सेवा के अलग-अलग कोर्प्स (Corps) बने हुए हैं। अलग-अलग स्कूलों में विभिन्न प्रकार की नागरिक सेवाओं को प्रशिक्षण दिया जाता है। स्कूलों तथा कोर्प्स के परिणामस्वरूप विभिन्नताएँ जन्म लेती हैं। यह व्यवस्था नेपोलियन द्वारा स्थापित की गई थी। नेपोलियन एक ऐसी नागरिक सेवा स्थापित करना चाहता था जिसका अपना आधार तथा जीवन्त स्वरूप हो। वह ऐसा करने में सफल भी हुआ। नागरिक सेवा कोर्प्स को स्वतन्त्रता प्रदान की गई। इसके फलस्वरूप सरकारी विभागों में सघात्मक संरचना का मार्ग प्रशस्त हुआ।

फ्रान्स की नागरिक सेवा की उक्त परम्परागत विशेषताएँ आज भी परिवर्तित रूप में यहाँ की नौकरशाही से जुड़ी हुई हैं। नागरिक सेवा निदेशक पी. चैटनिट (P. Chatenet) ने फ्रौंस की वर्तमान नागरिक सेवा की निम्नलिखित चार विशेषताओं का उल्लेख किया है—

(i) **राज्य की सर्वोच्चता** (Supremacy of the State)—फ्रान्स में रोमन साम्राज्य की प्रेरणा से विभिन्न संस्थाओं का नियामकीय सिद्धांत कानून की सर्वोच्चता है। यहाँ का प्रशासन राज्य की सत्ता पर निर्भर है। राज्य सत्ता द्वारा ही प्रशासन और व्यक्ति के संबंधों तथा प्रशासन की आन्तरिक सरचना को निर्धारित किया जाता है। इस व्यवस्था में राज्य और प्रशासन एक ही स्तर पर नहीं रहते। प्रशासन राज्य सत्ता के अधीन रहता है। राज्य तथा राज्य-कर्मचारियों के बीच कोई समझौता नहीं होता। सेवीवर्ग प्रशासन से सम्बन्धित विभिन्न निर्णय राज्य द्वारा एकपक्षीय रूप से लिए जाते हैं।[1]

1. *P Chatenet* : The Civil Service in France, in William A. Robsons, ed. The Civil Service in Britain and France, 1956, p. 162.

(ii) केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति (Centralizing Spirit)—फ्रान्स में स्वेच्छाचारी राजतंत्र ने दैवीय अधिकारों के सिद्धांत के आधार पर जिस पूर्ण शक्ति का प्रयोग किया था उसका स्वाभाविक परिणाम सेवीवर्ग प्रशासन में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति का विकास होना है। यहाँ की सरकारें प्राय. संघात्मक व्यवस्था से भयभीत रहीं और इसलिए यहाँ स्थानीय सरकार का विकास नहीं हो पाया है। इस केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति ने यहाँ की नागरिक सेवा को काफी प्रभावित किया है। 19वीं शताब्दी में ऐसे सामान्य नियमों की रचना की गई जो सम्पूर्ण नागरिक सेवा पर लागू होते थे। नागरिक सेवा में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति का एक छोटा-सा उदाहरण यह है कि फ्रान्स के उपनिवेशीय लोक सेवक भिन्न परिस्थितियाँ होते हुए भी उन्हीं सामान्य नियमों के अधीन कार्य करते हैं जो राजधानी प्रदेश में रहने वाले उनके साथियों पर लागू होते हैं अर्थात् फ्रांस के प्रशासन में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति इस प्रशासन की मुख्य विशेषता है।

(iii) स्थायित्व (Permanance)—फ्रान्सीसी प्रशासन अपने सेवीवर्ग के स्थायित्व के लिए हमेशा से प्रसिद्ध रहा है। यहाँ लूट-प्रणाली का प्रचलन कभी नहीं रहा।[1] राजतन्त्र में अधिकारीगण स्थायी होते थे। फ्रान्स का कोई भी लोक सेवक दल अथवा सरकार से सम्बद्ध नहीं होता, वह राज्य का सेवक होता है और अपेक्षाकृत अधिक स्थायी रहता है। यहाँ की दोहरी न्याय-व्यवस्था नागरिक सेवा के स्थायित्व में सहयोगी बनती है। सेवीवर्ग के स्थायित्व को यहाँ जनमत का समर्थन प्राप्त है। फ्रान्स की लोकसेवा का यह स्थायित्व क्रमिक-विकास का परिणाम है। इसका समर्थन करने वाले अनेक कानून बने हैं जिनके द्वारा लोकसेवकों को कार्यकाल की गारण्टी दी जाती है। यहाँ राज्य को स्थायी बनाने के लिए जो भी प्रयास किए गए हैं वे सब नागरिक सेवा में स्थायित्व लाने में सहयोगी बने। इसके फलस्वरूप लोक सेवाओं में एकीकरण की स्थापना हुई है और राज्य की सत्ता का प्रभाव कम हुआ है। गारण्टी की व्यवस्था ने फ्रान्स के नागरिक सेवक को राज्य की स्वेच्छाचारी शक्ति के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान की।

(iv) गारण्टीज का विकास (The Development of Guarantees)—फ्रांस की नागरिक सेवा में हुए अर्वाचीन परिवर्तन ने कर्मचारियों के अधिकार बढ़ा दिए हैं किन्तु इसके फलस्वरूप आधारभूत सिद्धांतों में परिवर्तन नहीं हुए हैं। नागरिक सेवाओं की सुरक्षा के लिए अनेक नियम बनाए गए हैं। इन नियमों ने राजशक्ति को सीमित किया है। यद्यपि अभी भी राज्य अनेक शक्तियों का प्रयोग करता है किन्तु वह किसी भी परिस्थिति में कर्मचारियों का दमन नहीं कर सकता। दमन से प्रभावित लोकसेवक को राज्य द्वारा की गई किसी भी कार्यवाही के विरुद्ध अपील करने का अधिकार है। राज्य कभी एकपक्षीय कार्यवाही नहीं करता। किसी कर्मचारी के विरुद्ध कोई कदम उठाने से पूर्व वह व्यावहारिक संघों के साथ संयुक्त विचार-विमर्श करता है। नागरिक सेवाओं के हितों की रक्षा के लिए की गई अनेक व्यवस्थाएँ एक लम्बे विकास का परिणाम हैं। इस कार्य में व्यावसायिक संघों (Trade Unions) ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

7. कर्मचारी संघों का विकास (Development of Employees Unions)—प्रारम्भ में फ्रान्स में कर्मचारियों को संघ बनाने की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी। वास्तविकता तो यह थी कि शासक और न्यायाधीश लोक सेवकों की संस्थाओं को सदेह और अविश्वास के दृष्टिकोण से देखते थे। इसके पीछे यह भय निहित रहता था कि यदि

1 "One can say that nothing like the spoils has ever existed in France."—Ibid, p 164

कर्मचारियों को संघ बनाने का अधिकार प्रदान किया गया तो वे हड़ताल कर देंगे। लेकिन कालान्तर में सरकार को यह विश्वास हो गया कि कर्मचारी के सघ क्रान्ति का साधन नहीं बनेंगे और केवल अपने व्यावसायिक हितों की रक्षा करेंगे तो उनका यह दृष्टिकोण बदल गया। सरकार के इस परिवर्तित दृष्टिकोण ने कर्मचारियों के सघ बनाने की दिशा में मार्ग प्रशस्त किया। प्रथम महायुद्ध के बाद, सरकारी मान्यता प्राप्त नहीं होने के बावजूद विभिन्न कर्मचारी संघ अस्तित्व मे आये। सन् 1946 ई. में पहली बार एक अधिनियम द्वारा कर्मचारियों को सघ बनाने का अधिकार प्राप्त हुआ। इस कानून के पारित होने के बाद अनेक कर्मचारी सगठन अस्तित्व में आये। इन कर्मचारी सघों ने भी किसी राजनीतिक क्रान्ति में भाग लेने के स्थान पर अपने कर्मचारियों के हितों के सरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। वर्तमान में फ्रान्स में कर्मचारियों के सघ बहुत प्रभावशाली और शक्तिशाली है, जो अपने कर्मचारियों के हितों की रक्षा में सदैव लगे रहते हैं।

8. प्रशासनिक सत्ता एवं स्व-विवेक (Administrative Authority and Discretion)—फ्रान्स में राज्य के कार्य-क्षेत्र का विस्तार होता जा रहा है। यहाँ भी लोक-कल्याणकारी राज्य के आदर्श को स्वीकार किया गया है। परिणामस्वरूप प्रशासन के दायित्व बहुत बढ गये हैं। प्रशासनिक दायित्वों के बढते विस्तार ने प्रशासनिक सत्ता एवं उसके स्वविवेक में वृद्धि की है। फ्रान्स मे लोक सेवकों का स्व-विवेक ग्रेट-ब्रिटेन की तुलना में कहीं व्यापक है। कार्यपालिका द्वारा जारी की जाने वाली डिक्री (Decree) की शक्ति ने लोकसेवकों के इस स्व-विवेक में वृद्धि की है।

9. लोकसेवाओं की महत्वपूर्ण स्थिति (The Important Position of Civil Services)—पंचम गणतन्त्र की स्थापना होने के पूर्व अर्थात् जनरल डिगाल के सत्तारूढ होने के पूर्व फ्रान्स राजनीतिक अस्थिरता के लिए जाना जाता था। यह कहावत-सी प्रचलित थी कि फ्रान्सीसी नागरिक जितने जल्दी अपने कपड़े नहीं बदलते हैं उसके पूर्व ही सरकारों में परिवर्तन हो जाता है। यह एक यथार्थ है कि किसी भी देश में राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति में नागरिक सेवाओं की शक्ति और महत्व में उल्लेखनीय वृद्धि हो जाती है। फ्रान्स भी इसका अपवाद नहीं रहा। यहाँ भारी राजनीतिक उथल-पुथल के बावजूद प्रशासनिक स्थिरता रही। फलतः लोक सेवकों ने स्वयं को राज्य के साथ एकाकार कर लिया तथा वे अपने आपको सम्प्रभु मानने लगे, और जनता ने भी उनकी इस स्थिति को मान्यता दे दी। वे लोक सेवक (Public Servant) नहीं रहकर लोक-अधिकारी (Public Officer) बन गये। वर्तमान में फ्रांस में राजनीतिक स्थिरता का वातावरण है। यहाँ का राष्ट्रपति राज्य की शासन-व्यवस्था का सर्वेसर्वा है और वह 7 वर्ष के लिए निर्वाचित होता है। इसके बावजूद देश में सेवीवर्ग प्रशासन की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह देश के प्रशासन का संचालन करने वाली वास्तविक शक्ति बन गई है।

10. सेवीवर्गीय प्रशासन की राजनीतिक गतिविधियाँ (The Political Activities of Personnel Administration)—फ्रान्स में लोक सेवक सक्रिय रूप से राजनीतिक कार्यों में भाग लेते हैं। उन पर अन्य देशों की भाँति राजनीतिक कार्यों में भाग लेने पर प्रतिबन्ध नहीं है। यही कारण है कि एक लोक सेवक मंत्री भी बन सकता है। लोक सेवक सक्रिय राजनीतिक कार्यों में भाग ले सकता है। अगर राजनीति में उसकी

अभिरुचि नहीं हुई तो वह पुन अपने पुराने व्यवसाय में आ सकता है। इसके बावजूद भी लोक सेवक अपने कर्तव्यपालन में राजनीतिक कुप्रभाव से दूर रहते हैं।

11. नियंत्रण की व्यवस्था (The Control System)—फ्रान्स के सेवीवर्ग प्रशासन को नियत्रण से युक्त किया गया है। इस पर आन्तरिक और बाह्य दोनों ही प्रकार से नियत्रण है। आन्तरिक नियत्रण निर्धारित इकाइयों द्वारा किया जाता है। बाह्य नियत्रण व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका द्वारा किया जाता है। प्रशासन पर आन्तरिक नियत्रण अधिक सशक्त और प्रभावशाली है।

12. सेवीवर्गीय प्रशासन की अन्य महत्वपूर्ण विशेषताएँ (Some Other Characteristics of Personnel Administration)—फ्रान्स के सेवीवर्गीय प्रशासन की उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं—

(i) फ्रान्स में सरकारी कर्मचारियों को फक्शनरी कहा जाता है।

(ii) लोक सेवकों को दो समूहों में विभाजित किया जाता है—वे सेवक जो प्रशासनिक कार्यालयों में कार्य करते हैं और वे जो राष्ट्रीयकृत उद्योगों में सेवारत हैं।

(iii) विगत वर्षों से राज्य के कार्यों में वृद्धि के साथ ही लोक सेवकों की सख्या में भी भारी वृद्धि होती जा रही है। उद्योगों में कार्य करने वाले लोक सेवकों की सख्या में विगत वर्षों में अधिक वृद्धि देखी जा सकती है।

(iv) फ्रान्स में योग्यता सेवावर्ग प्रशासन में भर्ती का मुख्य मापदण्ड या आधार है, यहाँ सयुक्त-राज्य अमेरिका की तरह लूट-प्रथा को कोई स्थान नहीं है।

(v) फ्रान्स के लोक सेवकों को अन्य देशों के लोक सेवकों की तुलना में 'स्वतन्त्र' स्थिति प्राप्त है।

(vi) फ्रान्स में नागरिक-सेवा को एक आजीवन व्यवसाय के रूप में लिया जाता है। एक बार सरकारी सेवा में प्रवेश करने के बाद लोक सेवक सेवा-निवृत्ति तक अपने पद पर बना रहता है।

(vii) फ्रान्स में लोक सेवकों को पर्याप्त 'सरक्षण' प्रदान किये गये हैं। उनकी स्वतन्त्रता को बनाये रखने के लिए पर्याप्त 'रक्षाकवच' (Safe-guards) की व्यवस्था की गई है।

(viii) लोक सेवकों के स्तर को बनाये रखने के लिए भी उन्हें पर्याप्त वेतन, परिवार-भत्ता विभिन्न सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम एव सेवा-निवृत्ति पर पेंशन दिये जाने की व्यवस्था है। इन प्रावधानों से जहाँ लोक सेवकों को आर्थिक सुरक्षा प्राप्त होती है, वहाँ वे अपना उचित स्तर भी बनाये रख सकते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यही कहा जा सकता है कि फ्रान्स में नौकरशाही की बहुमुखी भूमिका है। यहाँ की नौकरशाही के स्वरूप को प्रभावित करने में देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सास्कृतिक परिस्थितियों की भूमिका रहा है। फ्रान्स की नौकरशाही राष्ट्र-निर्माण प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

राजनीतिक दल

(Political Parties)

फ्रान्स एक प्रजातान्त्रिक देश है। अत. इस देश की राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों की महत्वपूर्ण भूमिका होना स्वाभाविक ही है। फ्रान्स की दलीय व्यवस्था को 'बहुदलीय व्यवस्था' के नाम से जाना जाता है।

फ्रान्सीसी दलीय व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ

(The Chief Characteristics of the French Party System)

फ्रान्स की दलीय व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं को निम्नानुसार रखा जा सकता है—

(1) संवैधानिक महत्ता या मान्यता—फ्रान्स में राजनीतिक दलों को सवैधानिक महत्ता या मान्यता प्रदान की गई है। पंचम गणतन्त्र में राजनीतिक दलों को सविधान द्वारा स्वीकृति या मान्यता प्रदान की गई है। सविधान की धारा 4 के अनुसार मताधिकार की अभिव्यक्ति का मुख्य साधन राजनीतिक दल माना गया है। पिकल्स (Pickles) के अनुसार—"पहली बार एक गणतन्त्रात्मक सविधान राजनीतिक दलों का केवल नाम ही नहीं लेता है, बल्कि राजनीतिक जीवन के एक स्वाभाविक तत्व के रूप में इसे मान्यता भी प्रदान करता है।"

(2) बहुदलीय व्यवस्था—फ्रैंच दल प्रणाली की मुख्य विशेषता इसकी बहुदलीय पद्धति या बहुदलीय (Multiparty System) होना है। जहाँ बहुत समय से ब्रिटेन और अमेरिका में दो प्रमुख दल रहे है वहाँ फ्रान्स में राष्ट्रीय दलों की सख्या 12 से लेकर 20 तक रही है और इनके अतिरिक्त अनेक छोटे समूह और संगठन भी अस्तित्व मे रहे हैं। राष्ट्रीय सभा में साधारणतया 9 से 15 तक समूहों (Groups) को प्रतिनिधित्व रहता है। उनमें से कुछ ऐसे हैं जिनके संसद से बाहर अपने संगठन है और कुछ समूह ऐसे हैं जो अन्य सम्बन्धित समूहों (Affiliated Groups) से मिल कर बनते हैं। मोरिस डुवरगर (M. Duverger) का मत है कि फ्रान्स में वस्तुत: संगठित दलों की संख्या 6 के लगभग है। फ्रान्स के लोग सिद्धान्तवादी हैं अतः विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिनिधित्व विभिन्न राजनीतिक दल करते हैं। फ्रान्स के लोग व्यक्तिवादी भी हैं और दलीय निष्ठा तथा दलीय अनुशासन के नाम पर अपने व्यक्तित्व का परित्याग करना पसंद नहीं करते। इस कारण ही बहु-दलीय व्यवस्था को प्रोत्साहन मिलता है। तृतीय और चतुर्थ गणतन्त्र में तो राजनीतिक दलों की बाढ़-सी थी। पंचम गणतन्त्र की स्थापना के बाद गालिस्ट पार्टी के रूप में एक मजबूत दल की स्थापना हुई है।

(3) सुदृढ संगठन का अभाव—फ्रान्स के राजनीतिक दलों में सुदृढ़ संगठन का अभाव पाया जाता है। देश में साम्यवादी दल को छोड कर अन्य किसी दल का संगठन सुदृढ नहीं है। चूँकि फ्रान्स में व्यक्तित्व को विशेष स्थान दिया जाता है, अतः इस व्यक्तिवादी भावना के कारण दलीय अनुशासन की प्राय अवहेलना देखने को मिलती है और इसीलिए सुदृढ दल प्रणाली का विकास नहीं हो पाता। सगठन में कमजोरी के कारण ही दल मजबूत सरकार नहीं बना पाता। इसके अतिरिक्त फ्रान्स में दलीय व्यवस्था में राष्ट्रीय और स्थानीय सगठन में कोई सबध स्थापित नहीं किया जाता। फ्रान्स में ब्रिटेन आदि देशों की तरह ऐसा कोई दल नहीं है जिसका सगठन स्थानीय इकाइयों से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक हो।

(4) दलों का सैद्धान्तिक विभाजन नहीं—फ्रांस के राजनीतिक दलों को सैद्धान्तिक आधार पर विभाजित नहीं किया जा सकता है। इसके विपरीत अन्य सभी लोकतान्त्रिक देशों में दलों को नीतियों और कार्यक्रमो के आधार पर स्पष्ट रूप से विभाजित किया जा सकता है। लेकिन फ्रान्स में इस प्रकार का विभाजन लगभग असम्भव-सा है। राष्ट्रीय सभा में दलों के सिद्धान्त और कार्यक्रमों में इतना कम अन्तर है कि इन्हें स्पष्ट रूप से सरकारी और विरोधी दलों में विभाजित करना ही मुश्किल होता है।

(5) राजनीतिक दलों में स्थायी सहयोग तथा एकता की भावना का अभाव—स्थायी सहयोग का अभाव फ्रेंच दलीय व्यवस्था की एक अन्य विशेषता है। बहुदलीय प्रथा के कारण फ्रान्स राष्ट्रीय सभा में किसी भी दल का स्पष्ट बहुमत नहीं होता, अतः प्रायः दो या अधिक दल मिल कर सरकार का निर्माण करते हैं। लेकिन इन दलों में स्थाई सहयोग की भावना न होने के कारण इनकी पारस्परिक एकता स्थायी तथा मजबूत नहीं होती।

(6) राजनीतिक सिद्धान्त या दर्शन का आधार—फ्रौंस के राजनीतिक दल राजनीतिक सिद्धान्तों पर सवारे गए हैं। फ्रान्स के लोग राजनीतिक दल से इसलिए आकर्षित होते हैं कि कोई दल किसी विशेष राजनीतिक दर्शन पर आधारित है। बेन्जामिन के अनुसार, "दल मनुष्य का वह सगठन है जो एक खास राजनीतिक सिद्धान्त में आस्था रखता हो।" इस प्रकार के सैद्धान्तिक आधार के कारण ही फ्रास के राजनीतिक दलों का सगठन सरल और स्पष्ट है।

(7) गैर-दलीय प्रभाव—गैर-दलीय प्रभाव फ्रान्स की दलीय व्यवस्था की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। फ्रान्स राजनीतिक जीवन में राजनीतिक दलों के अलावा अन्य हितों के समूहों का भी पर्याप्त अभाव है। उदाहरणार्थ, अनेक नैतिक, आर्थिक, धार्मिक एव श्रमिक सगठन हैं जिन्होंने फ्रास की राजनीति को पर्याप्त रूप से प्रभावित कर रखा है।

यद्यपि फ्रान्स के राजनीतिक दल उपर्युक्त तथ्यों से प्रभावित हैं, लेकिन पंचम् गणतन्त्र में फ्रास के राजनीतिक दलों की स्थिति में एक महान परिवर्तन हुआ। गालिस्ट दल ने स्वय को राष्ट्रीय स्तर पर सगठित कर फ्रान्स की जनता के बहुमत का विश्वास अर्जित किया है यद्यपि वर्षों से इसकी शक्ति में निरतर ह्रास हुआ है।

फ्रान्स के प्रमुख राजनीतिक दल

(Major Political Parties of France)

वर्तमान समय में फ्रान्स के राजनीतिक जीवन में अग्रलिखित मुख्य राजनीतिक दल हैं—

1. साम्यवादी दल (The Communist Party)
2. समाजवादी दल (The Socialist Party)
3. लोकप्रिय गणतन्त्रवादी आंदोलन (Movement Republican Populaire)
4. वामपंथी गणतन्त्रवादी संघ (Union of Republican Leftists)
5. स्वतन्त्रता समर्थक गणतन्त्रवादी दल (Republican Party of Liberty)

साम्यवादी दल—इस दल की स्थापना 1920 में उस समय हुई जब समाजवादी दल में कुछ दरारें पड़ीं। इसकी स्थापना के बाद से ही इसका संगठन विस्तृत होता गया और यह फ्रान्स का एक अत्यधिक सुसंगठित राजनीतिक दल के रूप में उभर कर सामने आया। यद्यपि पंचम गणतन्त्र से पूर्व राष्ट्रीय सभा में इसके काफी सदस्य विजयी हो कर आते थे, लेकिन पंचम गणतंत्र की स्थापना के बाद राष्ट्रीय संसद में इसकी स्थिति कमजोर हो गई और यहाँ इसकी शक्ति में निरन्तर ह्रास होता गया। यह दल उत्पादन के साधनों पर राज्य के नियन्त्रण और किसानों के भू-स्वामित्व का समर्थक है। यह दल मजदूरी की दरों में वृद्धि की नीति से माँग करता रहा है। विदेश नीति के क्षेत्र में यह सोवियत संघ से दिशा-निर्देश प्राप्त करता था। सोवियत संघ के विघटन से इसकी शक्ति भी प्रभावित हुई है। इस दल का सर्वोच्च अंग नेशनल कांग्रेस है।

समाजवादी दल—समाजवादी दल की स्थापना हुई। समाजवादी दल 1936 में प्रमुख में आया। ब्लम इसका नेता था। 1949 में ब्लम की मृत्यु के बाद इसका नेतृत्व अधिक उग्रवादी युवक नेता डैनियल मेयर और गार्ड मौलेर के हाथो मे आ गया। यह दल यद्यपि समाजवाद-को अपना अधिकार मानता है, परन्तु श्रमिक वर्ग का प्रतिनिधित्व इसने कभी नहीं किया। यह दल उपभोग वस्तुओं के अप्रत्यक्ष करो के उन्मूलन की माँग करता है। सम्पत्ति पर अधिकार कर, प्रगतिशील श्रमिक कानून आदि का भी यह विरोध करता है। बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण तथा राज्य-एकाधिकार इसका सिद्धान्त है। यह समाज मे धन के न्यायोचित विभाजन का समर्थक है। सामाजिक कल्याण सम्बन्धी कानूनों का निर्माण कराना और लोगों को अधिकाधिक सामाजिक सुरक्षा प्राप्त कराना इस दल का उद्देश्य है।

समाजवादी दल क्षेत्रीय आधार पर संगठित है। देश के छोटे-छोटे विभाग, यथा—कम्यून से लेकर राष्ट्रीय पैमाने तक इसका संगठन है। 1973 के बाद इस दल की शक्ति में निरन्तर वृद्धि होती रही है। 1981 में इस दल के नेता फ्रांसिस मितराँ ने प्रथम बार राष्ट्रपति पद के चुनाव में विजय प्राप्त की। 1988 में मितराँ पुनः राष्ट्रपति पद के लिए निर्वाचित हुए।

लोकप्रिय गणतन्त्रवादी आंदोलन—सिद्धांत की दृष्टि से लोकप्रिय गणतन्त्रवादी आंदोलन फ्रान्स के वामपक्षीय और दक्षिणपक्षीय दलों के बीच का संगठन है जो 19वीं शताब्दी के कैथोलिक धर्म की विचारधारा से प्रभावित है। यद्यपि यह फ्रान्स का एक प्रमुख दल है, तथापि यह-स्वय को एक राजनीतिक दल न मानकर एक आंदोलन मानता है। चतुर्थ गणतन्त्र में इसका काफी प्रभाव था, किन्तु पंचम गणतन्त्र में इसका अपेक्षाकृत कम प्रभाव रह गया है। यह दल क्षेत्रीय आधार पर संगठित है और राष्ट्रीय स्तर पर इसका प्रभाव व्यापक है।

यह आंदोलन उदार पूँजीवाद एवं सामूहिक साम्यवाद दोनों का विरोधी है। व्यक्ति के व्यक्तित्व में यह विश्वास करता है। सुदृढ अन्तर्राष्ट्रीयता, व्यक्ति स्वातन्त्र्य, पारिवारिक सरक्षण एव प्रजातान्त्रिक व्यवस्था को बनाए रखने का यह समर्थक है।

वामपंथी गणतन्त्रवादी दल—इस दल की स्थापना 20वीं शताब्दी के आरम में हुई थी। द्वितीय महायुद्ध समाप्ति के पूर्व तक इस दल का विशिष्ट स्थान था, किन्तु बाद में यह अपना प्रभाव खो बैठा। इस दल के समर्थक छोटे-छोटे किसान, व्यापारी एव मध्यम वर्ग के लोग हैं। यह दल वामपक्षीय एवं दक्षिण पक्षीय दलों के सिद्धान्तों में संतुलन का प्रयास है। व्यक्ति स्वातन्त्र्य का यह समर्थक है और मार्क्सवादी विचारधारा तथा उदारवाद का विरोधी है। यह वैयक्तिक सम्पत्ति और स्वतत्रता को अक्षुण्ण बनाए रखना चाहता है।

रूढ़िवादी दल—स्वतंत्रता समर्थक गणतन्त्रवादी दल (Republican Party of Liberty)—फ्रान्स का प्रधान रूढ़िवादी दल है। इनके अतिरिक्त 'Rally of the French People' तथा 'Peasant and Social Action Party' भी रूढ़िवादी दलों की गणना में आती हैं। इन दक्षिणपक्षीय दलों में प्रधानतः उद्योगपति, पूँजीपति, धनी एवं कुछ मध्यम वर्ग के लोग हैं। ये दल समाजवाद के घोर विरोधी हैं।

यू.एन.आर. (Union of the New Republic)—पंचम गणतन्त्र में उदित हुए इस दल में सशक्त दक्षिण पन्थी तत्त्व हैं। इस दल के मुख्य सदस्य डिगॉल की नीतियों के अनुयायी हैं। 1958 से ही देश की संसद में इस दल को समर्थन प्राप्त है। फ्रान्स की दलीय व्यवस्था में इसे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

दल के नियमों के अनुसार आधारभूत इकाइयाँ निर्वाचन-क्षेत्रों के संगठन हैं जिनमें मिलकर डिपार्टमेंटों में संघ (Union) बने हैं। राष्ट्रीय स्तर पर अन्य दलों की तरह इसकी भी एक नेशनल कांग्रेस, एक नेशनल कौंसिल, एक केन्द्रीय समिति, एक राजनीतिक समिति और एक सचिवालय है। यह दल डिगॉल के दो लक्ष्यों का समर्थक है—(1) फ्रान्स को राजनीतिक स्थायित्व प्रदान करना और (2) उसे फिर से विश्व की एक बड़ी शक्ति का पद दिलाना।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि फ्रान्स की बहुदलीय व्यवस्था के कारण देश में सरकारों की स्थिरता भी प्रभावित होती है। फ्रांस में संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ग्रेट ब्रिटेन की तरह राजनीतिक स्थिरता नहीं रह पाती है। देश में मिली-जुली या संविद सरकारें (Coalitional Governments) सत्तारूढ होती हैं। ये संविद सरकारें ज्यादा लम्बे समय तक कार्य नहीं कर पाती हैं। इस तरह से सरकारों का बनना, बिगड़ना और समाप्त होना आम बात है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न
(Objective Type Questions)

ब्रिटेन का संविधान

अध्याय 1

1. "ब्रिटिश सविधान 'बुद्धिमता तथा संयोग का संस्थान' है।" यह कथन है—
   (अ) मुनरो (ब) लॉस्की (स) ब्रोगन (द) ब्लशली ( )
2. ब्रिटिश सविधान तीन विचारधाराओं का समन्वय करता है—
   (अ) रूढ़िवाद (ब) उदारवाद
   (स) समाजवाद (द) उपर्युक्त सभी ( )
3. ब्रिटिश संविधान पुराना है—
   (अ) 1500 वर्ष (ब) 1600 वर्ष (स) 1300 वर्ष (द) 1200 वर्ष ( )
4. ब्रिटिश संविधान में स्टुअर्ट काल का प्रारम्भ होता है—
   (अ) 1066 ई. से (ब) 1153 ई. से
   (स) 1485 ई. से (द) 1603 ई. से ( )
5. 'गौरवपूर्ण क्रान्ति' घटित हुई
   (अ) 1688 ई. में (ब) 1689 ई. में
   (स) 1788 ई. में (द) 1789 ई. में ( )

अध्याय 2

6. ब्रिटेन में प्रचलित है—
   (अ) शक्तियों का पृथक्करण (ब) शक्तियों का सामंजस्य
   (स) शक्ति विभाजन (द) शक्तियों का केन्द्रीयकरण ( )
7. लॉर्ड सभा की शक्तियों में कमी की गई—
   (अ) 1949 ई. में (ब) 1950 ई. में
   (स) 1951 ई. में (द) 1950 ई. में ( )
8. राष्ट्रमण्डल का अध्यक्ष है—
   (अ) ब्रिटिश महारानी (ब) भारतीय राष्ट्रपति
   (स) श्रीलंका का राष्ट्रपति (द) मारीशस का राष्ट्रपति ( )
9. ब्रिटिश राजतन्त्र को जाना जाता है—
   (अ) वैधानिक राजतन्त्र (ब) निरकुश राजतन्त्र
   (स) असीमित राजतन्त्र (द) इनमें से कोई नहीं ( )
10. ब्रिटिश शासन व्यवस्था का स्वरूप है—
    (अ) संसदात्मक (ब) अध्यक्षात्मक
    (स) अधिनायकवादी (द) सैनिक तानाशाही ( )

अध्याय 3

11. 'अभिसमयों की शास्त्रीय भूमि वाला देश' है—
    (अ) ब्रिटेन (ब) फ्रान्स
    (स) संयुक्त राज्य अमेरिका (द) साम्यवादी चीन अमेरिका ( )
12. अभिसमय 'सांविधानिक परम्पराएँ हैं, यह कथन है—
    (अ) डायसी का (ब) लॉवेल का
    (स) एन्सन का (द) वुडरो विल्सन का ( )
13. अभिसमय "संवैधानिक रीति-रिवाज है, यह विचार है—
    (अ) लावेल का (ब) ब्लशली का
    (स) मुनरो (द) एन्सन का ( )
14. "अभिसमयों का पालन इसलिए किया जाता है कि उन्हें जनमत का परम्परागत समर्थन प्राप्त है।" यह उद्धरण है—
    (अ) लॉवेल का (ब) डायसी का (स) जैनिंग्स का (द) मुनरो का ( )
15. अभिसमय की उपज रही हैं—
    (अ) राजपद (ब) संसद
    (स) प्रधानमन्त्री (द) उपर्युक्त सभी ( )

अध्याय 4

16. राजमुकुट से वास्तविक आशय है
    (अ) ताज से
    (ब) क्राउन से
    (ब) राजा के मुकुट से
    (द) शासन-सत्ता के प्रतीक के रूप में ( )
17. "हैनरी एडवर्ड या जार्ज मर सकते हैं, लेकिन राजा (क्राउन) कभी नहीं मरता।" यह कथन है—
    (अ) ब्लेकस्टौन का (ब) मुनरो का
    (स) मुनरो का (द) डायसी का ( )
18. वर्तमान साम्राज्ञी महारानी एलिजाबेथ का राजतिलक हुआ
    (अ) 2 जून, 1953 को (ब) 2 अगस्त, 1953 को
    (स) 4 जून, 1954 को (द) 4 अगस्त, 1955 को ( )
19. इंग्लैण्ड की महारानी का निवास-स्थान है—
    (अ) बर्किंघम पैलेस (ब) 10 डाउनिंग स्ट्रीट
    (स) तीलीरोड हाउस (द) विंडसर पैलेस ( )
20. "किसी भी संगठन के साथ 'राजकीय' शब्द जुड़ जाने से सफलता अवश्यम्भावी हो जाती है।" यह कथन है—
    (अ) लो का (ब) लॉवेल का (स) मुनरो का (द) ओगन का ( )

अध्याय 5

21. 'राजमुकुट' की शक्तियों का व्यवहार में प्रयोग करता है—
(अ) ब्रिटिश महारानी (ब) प्रधानमन्त्री
(स) प्रधानमन्त्री एवं मन्त्रिमण्डल (द) संसद ( )

22. "यह राज्य रूपी जहाज को घुमाने वाला चालक चक्र है।" ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की भूमिका पर यह कथन है—
(अ) रेमजे म्योर (ब) ग्लेडस्टोन
(स) एमरी (द) जैनिंग्स ( )

23. 'कबाल' का प्रयोग होता है—
(अ) मन्त्रिमण्डल के सम्बन्ध में (ब) प्रधानमन्त्री के सम्बन्ध में
(स) राजा के सम्बन्ध में (द) राष्ट्रपति के सम्बन्ध में ( )

24. ब्रिटिश प्रधानमन्त्री का सरकारी निवास है—
(अ) 10 डाउनिंग स्ट्रीट (ब) बकिंघम पैलेस
(स) विंडसर पैलेस (द) इनमें से कोई नहीं ( )

25. "प्रधानमन्त्री कोई सीजर नहीं है और न ही उसकी स्थिति ऐसी है जिसे चुनौती न दी जा सके।" ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के सन्दर्भ में यह कथन है—
(अ) मुनरो का (ब) फायनर का
(स) लॉस्की का (द) वुडरो विल्सन का ( )

अध्याय 6

26. किस संसद को 'संसदों की जननी' की संज्ञा दी जाती है—
(अ) ब्रिटिश संसद को (ब) भारतीय संसद को
(स) अमरीकी कांग्रेस को (द) फ्रान्सीसी संसद को ( )

27. "ब्रिटिश संसद स्त्री को पुरुष तथा पुरुष को स्त्री बनाने के अतिरिक्त सब कुछ कर सकती है।" यह कथन है—
(अ) डीलौमे का (ब) डायसी का
(स) जैनिंग्स का (द) ब्रोगन का ( )

28. ब्रिटिश संसद की शक्तियों पर नियन्त्रण है—
(अ) जनमत का (ब) प्रदत्त विधान का
(स) विधि का शासन (द) इन सभी का ( )

29. लॉर्ड सभा के सदस्य हैं—
(अ) 1080 (ब) 635
(स) 435 (द) 545 ( )

30. हाउस ऑफ कामन्स का प्रथम 'स्पीकर' था—
(अ) सर टामस हंगरी फोर्ड (ब) हैरल्ड विल्सन
(स) फिलीमोर (द) रैमजे म्योर ( )

अध्याय 7

31 ब्रिटेन में शासन है—
(अ) विधि का (ब) महारानी का
(स) प्रधानमन्त्री का (द) मन्त्रिमण्डल का ( )

32 "कोई व्यक्ति कानून से ऊपर नहीं है।" यह कथन है—
(अ) जैनिंग्स का (ब) लॉस्की का
(स) डायसी का (द) मुनरो का ( )

33 ब्रिटेन में विधि के शासन का आधार है—
(अ) 1911 का कानून (ब) 1949 का कानून
(स) सामान्य कानून (द) 1947 का कानून ( )

34. ब्रिटेन में प्रचलित है—
(अ) न्यायिक पुनरावलोकन का सिद्धान्त
(ब) संसदीय सर्वोच्चता का सिद्धान्त
(स) शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त
(द) *शक्ति विभाजन का सिद्धान्त* ( )

35 ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था के शीर्ष पर है—
(अ) हाउस ऑफ लॉर्ड्स (ब) अपील न्यायालय
(स) क्राउन कोर्ट्स (द) मजिस्ट्रेट्स कोर्ट्स ( )

अध्याय 8

36. ब्रिटेन में सर्वप्रथम लोक सेवा आयोग की स्थापना की गई—
(अ) 1855 ई. में (ब) 1856 ई. में
(स) 1858 ई में (द) 1859 ई में ( )

37 ब्रिटेन में लोक सेवा आयोग के मुख्य प्रेरक रहे—
(अ) ग्लैडस्टन (ब) लॉस्की (स) मुनरो (द) लावेल ( )

38 ब्रिटिश लोक सेवा की मुख्य विशेषता है—
(अ) लूट-प्रथा का अभाव (ब) स्थायित्व
(स) एकरूपता (द) वर्गीकृत स्वरूप ( )

39. ब्रिटिश लोक सेवक होते हैं—
(अ) राजनीतिक कार्यपालिका के प्रति उत्तरदायी
(ब) राजमुकुट के कर्मचारी
(स) जनसेवक
(द) लोक सेवा के सदस्य ( )

40. ब्रिटिश लोक सेवकों का चयन होता है—
(अ) खुली प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा (ब) राजनीतिक सरक्षण द्वारा
(स) भाई-भतीजावाद द्वारा (द) लूट-प्रथा द्वारा ( )

अध्याय 9

41. प्रदत्त विधान के विविध नाम हैं—
(अ) संविधि आदेश (ब) अधीनस्थ व्यवस्थापन
(स) प्रदत्त व्यवस्थापन (द) उपर्युक्त सभी ( )

42. ब्रिटेन में प्रदत्त व्यवस्थापन का विकास हुआ—
(अ) 1832 ई. से (ब) 1833 ई. से
(स) 1834 ई. से (द) 1835 ई. से ( )

43. "ज्यों-ज्यों समूहवाद के विकास के कारण सरकारी शक्ति बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों प्रदत्त कानूनों की संख्या में वृद्धि होती रहती है।" यह कथन है—
(अ) जैनिंग्स का (ब) डायसी का
(स) लॉवेल का (द) लॉस्की का ( )

44. "प्रदत्त व्यवस्थापन के विरोध का कोई महत्त्व नहीं है।" यह विचार है—
(अ) ऑग का (ब) जिंक का
(स) ब्लशंली का (द) वुडरो विल्सन का ( )

45. विशेष प्रक्रिया सम्बन्धी आदेशों का प्रयोग बन्द हो गया है—
(अ) 1940 ई. से (ब) 1961 ई. से
(स) 1962 ई. से (द) 1963 ई. से ( )

अध्याय 10

46. "ब्रिटिश शासन राजनीतिक दलों से ही प्रारम्भ होता है और राजनीतिक दलों से ही समाप्त हो जाता है।" यह उद्धरण है—
(अ) जेनिंग्स का (ब) वुडरो विल्सन का
(स) मुनरो का (द) लावेल का ( )

47. "राजनीतिक दल देश में नौकरशाही से हमारी रक्षा के सर्वोत्तम साधन हैं।" यह विचार है—
(अ) लॉस्की (ब) लॉवेल (स) रेमजे म्योर (द) डायसी ( )

48. ब्रिटेन में प्रचलित है—
(अ) एकदलीय पद्धति
(ब) द्वि-दलीय पद्धति
(स) बहुदलीय पद्धति
(द) एकदलीय, आधिपत्य वाली बहुदलीय पद्धति ( )

49. ब्रिटेन में प्रमुख दल है—
(अ) अनुदार दल (ब) श्रमिक दल
(स) उदार दल (द) सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी ( )

50. वर्तमान में ब्रिटेन में सत्तारूढ़ है—
(अ) अनुदार दल (ब) श्रमिक दल
(स) उदार दल (द) सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी ( )

उत्तरमाला

1	अ	2	द	3	द	4	द	5	अ	6	ब
7	अ	8	अ	9	अ	10	अ	11	अ	12	अ
13	द	14	अ	15	स	16	द	17	अ	18	अ
19	अ	20	अ	21	स	22	अ	23	अ	24	अ
25	ब	26	अ	27	द	28	द	29	अ	30	अ
31	अ	32	ब	33	स	34	ब	35	अ	36	अ
37	अ	38	अ	39	ब	40	अ	41	द	42	अ
43	अ	44	अ	45	स	46	अ	47	अ	48	ब
49	अ	50	ब								

अमेरिका का संविधान

अध्याय 11

1. सयुक्त राज्य अमेरिका के संघ में कुल राज्य हैं—
   (अ) 50 (ब) 51 (स) 52 (द) 53 ( )
2. सयुक्त राज्य अमेरिका का मूल संविधान है—
   (अ) 1789 ई. का (ब) 1790 ई. का
   (स) 1791 ई. का (द) 1792 ई. का ( )
3. अमरीकी स्वतन्त्रता की सर्वप्रथम घोषणा की—
   (अ) अब्राहम लिंकन ने (ब) जैफर्सन ने
   (स) रूजवेल्ट ने (द) जार्ज वाशिंगटन ने ( )
4. "अमेरिकी संविधान एक महान् भावना है, यह एक उत्कृष्ट एवं उदात्त घोषणा है।" यह कथन है—
   (अ) मुनरो का (ब) जेम्स बक का
   (स) लास्की का (स) जेनिंग्स का ( )
5. अमरीकी संविधान के लिए प्रयुक्त होता है—
   (अ) अलिखित संविधान
   (ब) लिखित संविधान
   (स) अभिसमयों पर आधारित संविधान
   (द) सर्वाधिक प्राचीन लिखित संविधान ( )

अध्याय 12

6. "अमेरिका के संविधान निर्माता प्रशासन की शक्तियों के प्रति अत्यधिक ईर्ष्यालु थे।" यह कथन है—
   (अ) मुनरो का (ब) लॉवेल का
   (स) जेम्स बक का (द) वुडरो विल्सन का ( )

7. "हम निरन्तर माण्टेस्क्यू की अदृश्य छाया से प्रेरित होते रहे हैं।" यह उद्धरण है—
(अ) फायनर का (ब) मेडीसन का
(स) मुनरो का (द) जॉन लाक का ( )
8. शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने का श्रेय है—
(अ) माण्टेस्क्यू को (ब) जॉन बोदाँ को
(स) मेकियाविली को (द) बेन्थम को ( )
9. अमरीकी संविधान में शक्ति पृथक्करण की व्यवस्था है—
(अ) प्रथम तीन अनुच्छेदों में (ब) अनुच्छेद 9 में
(स) अनुच्छेद 12 में (द) अनुच्छेद 13 में ( )
10. अमरीकी संविधान में शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की कमी को दूर करने के लिए अपनाया गया है—
(अ) न्यायिक पुनरावलोकन
(ब) शक्तियों के सामंजस्य का सिद्धान्त
(स) नियन्त्रण एवं सन्तुलन का सिद्धान्त
(द) शक्तियों के केन्द्रीयकरण का सिद्धान्त ( )

अध्याय 13

11. अमरीकी संविधान के अनुच्छेद में संशोधन प्रणाली का उल्लेख किया गया है—
(अ) अनुच्छेद 5 में (ब) अनुच्छेद 6 में
(स) अनुच्छेद 7 में (द) अनुच्छेद 8 में ( )
12. अमरीकी संविधान में संशोधन की मुख्य विधियाँ हैं—
(अ) दो (ब) तीन (स) चार (द) पाँच ( )
13. "संशोधन प्रणाली अत्यधिक कठिन और दुःसाध्य है।" यह विचार है—
(अ) मार्शल का (ब) मेडीसन का
(स) रैमजे म्योर का (द) लॉस्की का ( )
14. मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित संशोधनों की सख्या है—
(अ) 10 (ब) 11 (स) 12 (द) 13 ( )
15. अमरीका में दास-प्रथा का अन्त किया गया—
(अ) 13वें संशोधन से (ब) 14वें संशोधन से
(स) 15वें संशोधन से (द) 16वें संशोधन से ( )

अध्याय 14

16. 'अधिकार-पत्र' (Bill of Rights) प्रतीक है—
(अ) मौलिक स्वतन्त्रताओं का (ब) मूल अधिकारों का
(स) मौलिक कर्त्तव्यों का (द) इनमें से किसी का नहीं ( )
17. अमरीकी स्वतन्त्रता की घोषणा की गई—
(अ) 4 जुलाई, 1776 ई. को (ब) 4 अगस्त, 1776 ई. को
(स) 4 सितम्बर, 1776 ई. को (द) 5 अक्टूबर, 1776 ई. को ( )

18. "संविधान द्वारा प्रदत्त ये अधिकार असीमित नहीं है।" यह कथन है—
(अ) मुनरो (ब) लॉस्की
(स) वुडरो विल्सन (द) ब्रोगन का ( )

19. जिस संविधान संशोधन द्वारा रंग व जाति के आधार पर किसी व्यक्ति को नागरिक अधिकारों से वंचित नहीं किया जायेगा, वह है—
(अ) 12वाँ संशोधन (ब) 13वाँ संशोधन
(स) 14वाँ संशोधन (द) 15वाँ संशोधन ( )

20 अमरीकी में मूल अधिकारों की प्रकृति है—
(अ) सीमित एवं मर्यादित (ब) सापेक्ष
(स) असीमित (द) निरंकुश ( )

अध्याय 15

21. अमरीकी शासन व्यवस्था का स्वरूप है—
(अ) एकात्मक (ब) संघात्मक
(स) अर्द्ध संघात्मक (द) परिसंघात्मक ( )

22. अमरीकी संघ में राज्य है—
(अ) 50 (ब) 51 (स) 52 (द) 53 ( )

23. अमरीकी संघात्मक व्यवस्था का स्वरूप है—
(अ) आदर्श संघात्मक व्यवस्था (ब) एकात्मकता की ओर झुकी हुई
(स) सौदेबाजी का संघ (द) सहकारी संघ ( )

24. अमरीकी संघात्मक व्यवस्था में शक्ति विभाजन की व्यवस्था पाई जाती है—
(अ) अध्याय 2 में (ब) अध्याय 3 में
(स) अध्याय 4 में (द) अध्याय 5 में ( )

25. अमरीकी संविधान में केन्द्र सरकार की शक्तियों का उल्लेख किया गया है—
(अ) प्रथम अनुच्छेद की 8वीं उपधारा में
(ब) अनुच्छेद 2 में
(स) अनुच्छेद 3 में
(द) अनुच्छेद 4 में ( )

अध्याय 16

26. संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति का कार्यकाल है—
(अ) 4 वर्ष (ब) 5 वर्ष (स) 7 वर्ष (द) 6 वर्ष ( )

27. अमरीकी राष्ट्रपति को हटाया जा सकता है—
(अ) निन्दा प्रस्ताव द्वारा (ब) अविश्वास प्रस्ताव द्वारा
(स) निन्दा प्रस्ताव द्वारा (द) महाभियोग द्वारा ( )

28. अमरीकी राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेने वाले निर्वाचकों की कुल संख्या है—
(अ) 538 (ब) 540 (स) 545 (द) 550 ( )

29. अमरीकी राष्ट्रपति की स्थिति है—
    (अ) संवैधानिक अध्यक्ष की (ब) औपचारिक अध्यक्ष की
    (स) वास्तविक अध्यक्ष की (द) तानाशाह की
30. अमरीकी मन्त्रिमण्डल के सचिवों को कहा जा सकता है—
    (अ) सचिव (ब) मन्त्री
    (स) प्रशासकीय विभागों के अध्यक्ष (द) राष्ट्रपति के सहायक ( )

अध्याय 17

31. अमरीकी काँग्रेस के उच्च सदन का नाम है—
    (अ) लार्ड सभा (ब) राज्य सभा (स) सीनेट (द) राज्य परिषद् ( )
32. अमरीकी काँग्रेस के प्रतिनिधि सदन की कुल सदस्य संख्या है—
    (अ) 435 (ब) 100 (स) 635 (द) 545 ( )
33. अमरीकी राष्ट्रपति को हटाया जा सकता है—
    (अ) जनता द्वारा (ब) न्यायपालिका द्वारा
    (स) निर्वाचक मण्डल द्वारा (द) कांग्रेस द्वारा ( )
34. सीनेट के कुल सदस्य हैं—
    (अ) 100 (ब) 250 (स) 435 (द) 1080 ( )
35. सीनेट के सदस्यों का कार्यकाल है—
    (अ) 6 वर्ष (ब) 7 वर्ष (स) 5 वर्ष (द) 4 वर्ष ( )

अध्याय 18

36. अमरीका में वित्त-विधेयक सबसे पहले प्रस्तावित होते हैं—
    (अ) काँग्रेस में (ब) प्रतिनिधि सदन में
    (स) सीनेट में (द) इनमें से किसी में नहीं ( )
37. ब्रिटेन की तुलना में विधेयक की अमरीकी विधि के प्रस्तुतीकरण की प्रकृति है—
    (अ) सरल (ब) जटिल (स) दुष्कर (द) कठिन ( )
38. संयुक्त राज्य अमेरिका में सभी विधेयक प्रस्तुत किये जाते हैं—
    (अ) राष्ट्रपति द्वारा (ब) सचिवों द्वारा
    (स) साधारण सदस्यों द्वारा (द) जनता द्वारा ( )
39. विधेयक के सूचीकरण अथवा कलेण्डर की अवस्था की सूचियाँ हैं—
    (अ) चार सूचियाँ (ब) पाँच सूचियाँ
    (स) छः सूचियाँ (द) सात सूचियाँ ( )
40. अमरीकी राष्ट्रपति विधेयक को स्वीकृति देता है—
    (अ) प्रतिनिधि सभा द्वारा पारित करने पर
    (ब) सीनेट द्वारा पारित करने पर
    (स) दोनों सदनों द्वारा पारित करने पर
    (द) [illegible] ( )

अध्याय 19

41. अमरीकी समिति प्रणाली की स्थिति ब्रिटेन की तुलना में है—
(अ) कमजोर (ब) सुदृढ़ (स) प्रभावशाली (द) प्रभावी ( )

42. संयुक्त राज्य अमेरिका में समितियों की नियुक्ति की जाती है—
(अ) राष्ट्रपति द्वारा (ब) मन्त्रिमण्डल द्वारा
(स) राज्यों द्वारा (द) प्रत्येक सदन द्वारा ( )

43 स्थायी समितियों की अधिकतम में संख्या हो सकती है—
(अ) 12 (ब) 35 (स) 40 (द) 50 ( )

44. सम्मेलन समिति में दोनों सदनों के सदस्य होते हैं—
(अ) 5 सदस्य (ब) 6 सदस्य
(स) प्रत्येक सदन से पाँच-पाँच सदस्य (द) 12 सदस्य ( )

45 "समितियाँ सदन की आँख, कान, हाथ और कभी-कभी बुद्धि का कार्य करती है।" यह कथन है यह कथन है—
(अ) *थॉमस बी. रीड का* (ब) *लॉस्की का*
(स) मुनरो का (द) ब्रोगन का ( )

अध्याय 20

46 संयुक्त राज्य अमेरिका में न्यायपालिका की शक्तियों का उल्लेख किया गया है—
(अ) अनुच्छेद 1 में (ब) अनुच्छेद 2 में
(स) अनुच्छेद 3 में (द) अनुच्छेद 5 में ( )

47 अमरीका में दावा न्यायालय की स्थापना हुई—
(अ) 1855 में (ब) 1856 में (स) 1955 में (द) 1956 में ( )

48. अमरीकी संघीय अपील न्यायालयों की संख्या है—
(अ) 11 (ब) 12 (स) 13 (द) 14 ( )

49. अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या है—
(अ) 8 (ब) 9 (स) 10 (द) 11 ( )

50. अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाया जा सकता है—
(अ) राष्ट्रपति द्वारा (ब) मन्त्रिमण्डल द्वारा
(स) काँग्रेस द्वारा (द) जनता द्वारा ( )

अध्याय 21

51. "संविधान निर्माताओं ने जिस शिला को अस्वीकृत कर दिया था, वही शिला शासन-पद्धति का प्रमुख कोना बन गई है।" यह उद्धरण है—
(अ) लॉस्की का (ब) डायसी का
(स) जैनिंग्स का (द) मुनरो का ( )

52. डेमोक्रेटिक पार्टी का मुख्य समर्थक वर्ग है—
(अ) बड़े-बड़े उद्योगपति (ब) बैंकर्स
(स) महिलाएँ एवं नीग्रो (द) यहूदी ( )

53. बिल क्लिण्टन का सम्बन्ध है—
(अ) डेमोक्रेटिक पार्टी से (ब) रिपब्लिकन पार्टी से
(स) श्रमिक दल से (द) अनुदार दल से ( )

54. "अमेरिका में केवल एक ही दल रिपब्लिकन कम डेमोक्रेटिक दल है।" यह कथन है—
(अ) फायनर का (ब) वुडरो विल्सन का
(स) ब्रोगन का (द) मैरियट का ( )

55. संयुक्त राज्य अमेरिका में बड़े पैमाने पर लूट-प्रथा का सूत्रपात किया गया था—
(अ) अब्राहम लिंकन द्वारा (ब) जैफर्सन द्वारा
(स) एण्ड्रयू जैक्सन द्वारा (द) रूजवेल्ट द्वारा ( )

उत्तरमाला

1	अ	2	अ	3	द	4	ब	5	द	6	स
7	ब	8	अ	9	अ	10	स	11	अ	12	अ
13	अ	14	अ	15	अ	16	ब	17	अ	18	अ
19	द	20	अ	21	ब	22	अ	23	अ	24	अ
25	अ	26	अ	27	द	28	अ	29	स	30	अ
31	स	32	अ	33	द	34	अ	35	अ	36	ब
37	अ	38	स	39	अ	40	स	41	स	42	द
43	ब	44	स	45	अ	46	स	47	अ	48	अ
49	ब	50	स	51	द	52	स	53	अ	54	अ
55	स										

स्विट्जरलैण्ड का संविधान

अध्याय 22

1. स्विट्जरलैण्ड विश्व का एकमात्र राष्ट्र है—
(अ) स्थायी तटस्थ राष्ट्र (ब) गुटनिरपेक्ष राष्ट्र
(स) शान्तिप्रिय राष्ट्र (द) असंलग्न राष्ट्र ( )

2. स्विट्जरलैण्ड का गणतन्त्र पुराना है—
(अ) 500 वर्ष (ब) 600 वर्ष (स) 700 वर्ष (द) 800 वर्ष ( )

3. "स्विट्जरलैण्ड युगों से गणराज्य रहा है।" यह उद्धरण है—
(अ) रैपार्ड का (ब) मुनरो का (स) डायसी का (द) जैनिंग्स का ( )

4 संविधान के संविधान में धाराएँ है—
(अ) 122 (ब) 9 (स) 395 (द) 295 ( )

5 स्विट्जरलैण्ड के किस अनुच्छेद में इसके धर्म निरपेक्ष स्वरूप की पुष्टि होती है ?
(अ) 49 (ब) 52 (स) 53 (द) 54 ( )

अध्याय 23

6 स्विस-संविधान में संशोधन मतदाताओं द्वारा प्रस्तावित किया जा सकता है—
(अ) 50,000 द्वारा (ब) 60,000 द्वारा
(स) 70,000 द्वारा (द) 80,000 द्वारा ( )

7 स्विस संविधान संशोधन प्रणाली अन्य देशों से अलग है—
(अ) जनमत संग्रह के कारण (ब) कठोर संशोधन पद्धति के कारण
(स) आंशिक संशोधन के कारण (द) पूर्ण संशोधन के कारण ( )

8 स्विट्जरलैण्ड में संविधान संशोधन पर न्यूनतम कैण्टनों के अनुसमर्थन की आवश्यकता है—
(अ) $12\frac{1}{2}$ की (ब) 13 की (स) 14 की (द) 16 की ( )

9. स्विस संविधान संशोधन पद्धति अमेरिकी पद्धतिसे भिन्नता लिये हुए है—
(अ) जनता द्वारा संविधान संशोधन प्रस्तावित करने के कारण
(ब) संघीय सभा द्वारा पुष्ट किये जाने के कारण
(स) राज्यों के अनुसमर्थन के कारण
(द) विशिष्ट संशोधन पद्धति के कारण ( )

10 स्विट्जरलैण्ड में अब तक हुए संविधान संशोधनों की संख्या है—
(अ) 27 (ब) 57 (स) 80 (द) 90 ( )

अध्याय 24

11. स्विस संविधान के किस अनुच्छेद में नागरिक अधिकारों का उल्लेख किया गया है—
(अ) 25 अनुच्छेदों में (ब) 26 अनुच्छेदों में
(स) अनुच्छेदों में (द) 28 अनुच्छेदों में ( )

12. कानून के समक्ष समानता स्थापित करने वाला अनुच्छेद है—
(अ) अनुच्छेद 4 (ब) अनुच्छेद 5
(स) अनुच्छेद 6 (द) अनुच्छेद 7 ( )

13 अनुच्छेद 27 कौन से अधिकार का उल्लेख करता है—
(अ) प्रेस की स्वतन्त्रता का (ब) समुदाय निर्माण का
(स) याचिका के अधिकार का (द) शिक्षित होने का अधिकार

14. स्विट्जरलैण्ड के नागरिकों को निवास का अधिकार प्राप्त है—
(अ) अनुच्छेद 44 में (ब) अनुच्छेद 45 में
(स) अनुच्छेद 47 में (द) अनुच्छेद 48 में ( )

15. स्विस संविधान में उल्लिखित अधिकार संविधान को प्रदान करते हैं—
    (अ) गणतन्त्रीय स्वरूप (ब) लोकतान्त्रिक स्वरूप
    (स) उदारवादी स्वरूप (द) राजतन्त्रात्मक स्वरूप ( )

अध्याय 25

16. स्विस संघात्मक व्यवस्था अस्तित्व में आई—
    (अ) 1846 ई. में (ब) 1847 ई. में
    (स) 1848 ई. में (द) 1989 ई. में ( )
17. स्विट्जरलैण्ड के संघ की प्रकृति है—
    (अ) सवर्ग की (ब) परिसंघ की
    (स) एकात्मक संघ की (द) कैण्टनों के शाश्वत संघ की ( )
18. स्विट्जरलैण्ड के संघ में शामिल कैण्टनों की संख्या है—
    (अ) 16 (ब) 17 (स) 19 (द) 20 ( )
19. स्विस संघ के अर्द्ध-कैण्टनों की संख्या है—
    (अ) 6 (ब) 7 (स) 7 (द) 8 ( )
20. "स्विट्जरलैण्ड में संविधान ने सवर्ग को वस्तुतः ऐसा रूप प्रदान कर दिया है मानो वह कैंटनों का शिक्षक और निरीक्षक हो।" यह कथन है—
    (अ) रिपार्ड का (ब) लॉस्की का
    (स) ब्रूक्स का (द) मुनरो का ( )

अध्याय-26

21. स्विट्जरलैण्ड की व्यवस्थापिका को कहा जाता है—
    (अ) संघीय सभा (ब) संसद
    (स) कॉंग्रेस (द) असेम्बली ( )
22. संघीय सभा के दो सदन हैं—
    (अ) राष्ट्रीय सभा , (ब) राज्य सभा
    (स) प्रतिनिधि सभा (द) सीनेट ( )
23. राष्ट्रीय परिषद् के अधिकतम सदस्य हो सकते हैं—
    (अ) 196 (ब) 199 (स) 200 (द) 205 ( )
24. राज्य परिषद् के सदस्यों की संख्या है—
    (अ) 44 (ब) 50 (स) 54 (द) 64 ( )
25. "स्विट्जरलैण्ड की संघीय सभा अत्यन्त ईमानदारी से कार्य करने वाली संस्था है।" यह कथन है—
    (अ) लॉस्की का (ब) मुनरो का
    (स) लार्ड ब्राइस का (द) डायसी का ( )

अध्याय 27

26. स्विट्जरलैण्ड में विधि-निर्माण की प्रक्रिया है—
    (अ) कठोर (ब) सरल (स) दुष्कर (द) जटिल ( )

27. स्विट्जरलैण्ड में विधेयक प्रस्तावित किया जा सकता है—
(अ) केवल राष्ट्रीय सभा में (ब) केवल राज्य सभा में
(स) संघीय सभा में (द) संघीय सभा के किसी भी सदन में ( )

28. वित्त विधेयक पर नहीं किया जा सकता है—
(अ) जनमत संग्रह (ब) लोक निर्णय
(स) रेफ्रेन्डम (द) उक्त सभी ( )

29 साधारण कानून पर जनमत संग्रह की माँग की जा सकती है—
(अ) तीस हजार मतदाताओं द्वारा (ब) पैंतीस हजार मतदाताओं द्वारा
(स) चालीस हजार मतदाताओं द्वारा (द) पचास हजार मतदाताओं द्वारा ( )

30 स्विट्जरलैण्ड में समितियों की विधेयकों पर भूमिका है—
(अ) निष्पक्षता की (ब) पूर्वाग्रहपूर्ण
(स) दुराग्रहपूर्ण (द) पक्षपातपूर्ण ( )

अध्याय 28

31 स्विट्जरलैण्ड की कार्यपालिकाओं का स्वरूप है—
(अ) एकल (ब) बहुल (स) सीमित (द) अधिनायक ( )

32 स्विट्जरलैण्ड की बहुल कार्यपालिका के सदस्यों की संख्या है—
(अ) 6 (ब) 7 (स) 8 (द) 9 ( )

33 "स्विस कार्यपालिका एक ऐसी संस्था है, जिसका अध्ययन करना अन्य सभी संस्थाओं से महत्त्वपूर्ण है।" यह कथन है—
(अ) लॉस्की का (ब) मुनरो का
(स) वुडरो विल्सन का (द) डायसी का ( )

34 संघीय परिषद् का कार्यकाल है—
(अ) 4 वर्ष का (ब) 5 वर्ष का
(स) 6 वर्ष का (द) 7 वर्ष का ( )

35. संघीय परिषद् में गणपूर्ति के लिए सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक है—
(अ) 3 की (ब) 4 की (स) 5 की (द) 6 की ( )

अध्याय 29

36 स्विट्जरलैण्ड में संघीय न्यायालय की स्थापना की गई—
(अ) 1848 ई. में (ब) 1849 ई. में
(स) 1850 ई. में (द) 1851 ई. में ( )

37 स्विट्जरलैण्ड में संघीय न्यायालय का कार्यालय स्थित है—
(अ) लासेन में (ब) बर्न में
(स) जिनेवा में (द) कैंटबर्न में ( )

38. संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या है—
(अ) 25 (ब) 26 (स) 27 (द) 29 ( )

39 संघीय न्यायालय के वैकल्पिक न्यायाधीशों की संख्या है—
(अ) 12 (ब) 13 (स) 14 (द) 15 ( )

40. संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों का निर्वाचन होता है—
(अ) 5 वर्ष के लिए (ब) 7 वर्ष के लिए
(स) 9 वर्ष के लिए (द) आजीवन ( )

अध्याय 30

41. स्विट्जरलैण्ड में प्रचलित है—
(अ) जनवादी लोकतन्त्र (ब) बुनियादी लोकतन्त्र
(स) अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र (द) प्रत्यक्ष लोकतन्त्र ( )

42. "विश्व के आधुनिक लोकतन्त्रों में जोकि वास्तविक लोकतन्त्र है, अध्ययन की दृष्टि से स्विट्जरलैण्ड का सर्वाधिक महत्व है।" यह कथन है—
(अ) ब्राइस का (ब) मुनरो का
(स) वुडरो विल्सन का (द) लॉवेल का ( )

43. स्विस प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के तीन प्रमुख साधन हैं—
(अ) प्रारम्भिक संस्थाएँ (ब) जनमत संग्रह
(स) आरम्भक (द) उपर्युक्त सभी ( )

44. प्रारम्भिक सभाओं की व्यवस्था स्विट्जरलैण्ड के कैण्टनों में प्रचलित है—
(अ) 1 पूर्ण कैन्टन में (ब) 2 पूर्ण कैन्टनों में
(स) 4 पूर्ण कैन्टनों में (द) 5 पूर्ण कैन्टनों में ( )

45. स्विस संविधान के किस अनुच्छेद में अनिवार्य जनमत-संग्रह की व्यवस्था है—
(अ) अनुच्छेद 122 में (ब) अनुच्छेद 123 में
(स) अनुच्छेद 124 में (द) अनुच्छेद 125 में

अध्याय 31

46. स्विट्जरलैण्ड की दलीय व्यवस्था का स्वरूप है—
(अ) एकदलीय (ब) द्विदलीय (स) बहुदलीय
(द) एकदलीय प्रभुत्व वाली बहुदलीय व्यवस्था ( )

47. स्विट्जरलैण्ड में मुख्य रूप से तीन दलों का अस्तित्व है—
(अ) उदारवादी दल (ब) क्रान्तिकारी दल
(स) कैथोलिक अनुदार दल (द) उक्त सभी ( )

48. स्विस राजनीतिक दलों का आधार है—
(अ) संघ (ब) राष्ट्र (स) कैण्टन (द) अर्द्ध कैण्टन ( )

49. स्विस दलीय व्यवस्था की प्रमुख विशेषता है—
(अ) निर्दलीय आचरण (ब) नेतृत्व की कमी
(स) दलबन्दी का अभाव (द) राष्ट्रीय मामलों पर सहमति ( )

50. स्विट्जरलैण्ड के राजनीतिक दलों का विकास हुआ है—
(अ) संविधान द्वारा (ब) संविधानेतर
(स) परम्पराओं द्वारा (द) राजनीतिक तत्वों द्वारा ( )

उत्तरमाला

1	अ	2	अ	3	अ	4	अ	5	अ	6	अ
7	अ	8	अ	9	अ	10	ब	11	अ	12	अ
13	द	14	ब	15	स	16	स	17	द	18	स
19	अ	20	ब	21	अ	22	ब	23	स	24	अ
25	स	26	ब	27	द	28	द	29	अ	30	अ
31	स	32	ब	33	अ	34	अ	35	ब	36	अ
37	अ	38	ब	39	अ	40	अ	41	द	42	अ
43	द	44	द	45	अ	46	स	47	द	48	स
49	अ	50	ब								

जापान का संविधान

अध्याय 32

1. जापान के वर्तमान संविधान को कहा जाता है—
   (अ) शोग संविधान (ब) मेइजी संविधान
   (स) राजतन्त्रात्मक संविधान (द) लोकतन्त्रात्मक संविधान ( )
2. मेइजी संविधान लागू हुआ—
   (अ) 1867 ई. में (ब) 1868 ई. में
   (स) 1889 ई. में (द) 1890 ई. में ( )
3. जापान का वर्तमान संविधान लागू हुआ—
   (अ) 3 मई, 1947 ई. को (ब) 3 जून, 1947 ई. को
   (स) 3 जुलाई, 1947 ई. को (द) 3 अगस्त, 1947 ई. को ( )
4. जापान के वर्तमान संविधान में कुल धाराएँ हैं—
   (अ) 93 (ब) 98 (स) 102 (द) 103 ( )
5. जापान के संविधान में कुल अध्याय हैं—
   (अ) 11 (ब) 12 (स) 13 (द) 14 ( )
6. जापान के संविधान में मौलिक अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया है—
   (अ) अध्याय 3 में (ब) अध्याय 4 में
   (स) अध्याय 5 में (द) अध्याय 6 में ( )
7. जापान के संविधान के अध्याय 3 में कुल धाराएँ हैं—
   (अ) 31 (ब) 32 (स) 33 (द) 34 ( )
8. जापान में कर्त्तव्यों से सम्बन्धित धाराओं की कुल संख्या है—
   (अ) 1 (ब) 2 (स) 3 (द) 4 ( )

9. समानता के अधिकार से संबंधित धारा है—
   (अ) धारा 11 (ब) धारा 12 (स) धारा 13 (द) धारा 14 ( )
10. जापान में नागरिकता सम्बन्धी प्रावधानों का निरूपण किस कानून से किया गया है—
   (अ) 1947 ई. के (ब) 1950 ई. के
   (स) 1952 ई. के (द) 1955 ई. के ( )

अध्याय 33

11. जापान के किस संविधान में जापानी सम्राट की स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ थी—
   (अ) शौवा सविधान में (ब) मेइजी सविधान में
   (स) वर्तमान संविधान में (द) 1948 ई. के सविधान में ( )
12. वर्तमान सम्राट अकीहितो जापान के शासक है—
   (अ) 10वें (ब) 11वें (स) 12वें (द) 13वें ( )
13. जापान का सम्राट है—
   (अ) औपचारिक शासक (ब) वैधानिक शासक
   (स) वास्तविक शासक (द) निरंकुश शासक ( )
14. सम्राट के राजकीय मामलों से सम्बन्धित कार्यों का उल्लेख किया है—
   (अ) धारा 7 में (ब) धारा 8 में
   (स) धारा 9 में (द) धारा 10 में
15. जापान के सम्राट का पद वंशानुगत है, इसका उल्लेख पाया जाता है—
   (अ) धारा 2 में (ब) धारा 3 में
   (स) धारा 4 में (द) धारा 5 में ( )

अध्याय 34

16. जापान में केबिनेट प्रथा का प्रचलन हुआ—
   (अ) 1884 ई. में (ब) 1885 ई. में
   (स) 1886 ई. में (द) 1887 ई. में ( )
17. जापान में सविधान की मन्त्रिमण्डल को मान्यता देने वाली धारा है—
   (अ) धारा 55 (ब) धारा 56
   (स) धारा 57 (द) धारा 58 ( )
18. संविधान की धारा के अनुसार जापानी मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप से 'डायट' के प्रति उत्तरदायी है—
   (अ) धारा 65 (ब) धारा 66
   (स) धारा 67 (द) धारा 68 ( )
19. विदेश नीति के क्षेत्र में प्रधानमन्त्री की स्थित होती है—
   (अ) सर्वोपरि (ब) गौण
   (स) द्वितीय श्रेणी की (द) इनमें से कोई नहीं ( )

20. जापानी प्रशासन पर नियन्त्रण होता है—
(अ) सम्राट का (ब) डायट का
(स) प्रधानमन्त्री का (द) सांसदों का ( )

अध्याय 35

21. जापान में सर्वप्रथम 'डायट' की स्थापना की गई—
(अ) 1889 ई. में (ब) 1890 ई. में
(स) 1891 ई में (द) 1892 ई. में ( )
22. जापानी डायट के प्रथम सदन का नाम है—
(अ) प्रतिनिधि सदन (ब) लोक सभा
(स) सीनेट (द) समासद सदन ( )
23. जापान की डायट का द्वितीय सदन है—
(अ) राज्य सभा (ब) राज्य परिषद्
(स) समासद सदन (द) सीनेट ( )
24. प्रतिनिधि सदन में सदस्य होते हैं—
(अ) 510 (ब) 511 (स) 513 (द) 514 ( )
25 जापान के समासद सदन के सदस्य होते हैं—
(अ) 250 (ब) 251 (स) 260 (द) 300 ( )

अध्याय 36

26. जापान की न्याय व्यवस्था साम्य रखती है—
(अ) ब्रिटिश व्यवस्था से (ब) फ्रेन्च व्यवस्था से
(स) भारतीय व्यवस्था से (द) रूसी व्यवस्था से ( )
27. जापान के संविधान के अनुच्छेद द्वारा न्यायाधीशों को उनके पद से हटाये जाने की व्यवस्था है—
(अ) कार्यपालिका द्वारा (ब) व्यवस्थापिका द्वारा
(स) महाभियोग द्वारा (द) अविश्वास प्रस्ताव द्वारा ( )
28. जापान का संविधान न्याय-व्यवस्था की एकरूपता का प्रतिपादन करता है—
(अ) सविधान की धारा 52 से (ब) सविधान की धारा 53 से
(स) सविधान की धारा 56 से (द) सविधान की धारा 57 से ( )
29 जापान में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की कुल सख्या है—
(अ) 15 (ब) 16 (स) 18 (द) 20 ( )
30 जापान में उच्च न्यायालयों की सख्या है—
(अ) 8 (ब) 9 (स) 10 (द) 11 ( )

अध्याय 37

31. जापान में राजनीतिक दलों को महत्त्व प्राप्त हुआ—
(अ) मेइजी सविधान में (ब) शीवा सविधान में
(स) 1947 ई के वर्तमान सविधान में (द) इनमें से कोई नहीं ( )

32. जापान के राजनीतिक दलों की मुख्य विशेषता है—
(अ) साम्प्रदायिक (ब) जातिवादी
(स) धर्म निरपेक्ष (द) प्रादेशिक ( )
33. जापान के राजनीतिक दलों का स्वरूप है—
(अ) एकदलीय व्यवस्था
(ब) द्विदलीय व्यवस्था
(स) बहुदलीय व्यवस्था
(द) एकदलीय प्रमुत्त्व वाली बहुदलीय व्यवस्था ( )
34. जापान का प्रमुख राजनीतिक दल है—
(अ) समाजवादी दल (ब) साम्यवादी दल
(स) कोमिटो दल (द) उदार प्रजातान्त्रिक दल ( )
35. समाजवादी दल का विभाजन हुआ—
(अ) 1950 ई. में (ब) 1951 ई. में
(स) 1955 ई. में (द) 1956 ई. में ( )

उत्तरमाला

1	अ	2	स	3	अ	4	द	5	अ	6	अ
7	अ	8	स	9	द	10	अ	11	ब	12	ब
13	स	14	अ	15	अ	16	ब	17	स	18	ब
19	अ	20	स	21	अ	22	अ	23	स	24	ब
25	अ	26	स	27	स	28	स	29	अ	30	अ
31	स	32	स	33	द	34	द	35	स		

चीन का संविधान

अध्याय 38

1. जनवादी चीन का प्रचलित नाम है—
(अ) राष्ट्रवादी चीन (ब) साम्यवादी चीन
(स) इनमें से कोई नहीं (द) उक्त दोनों ही
2. जनवादी चीन में साम्यवादी क्रान्ति सम्पन्न हुई—
(अ) 1949 ई. में (ब) 1950 ई. में
(स) 1951 ई. में (द) 1952 ई. में ( )
3. जनवादी चीन का संविधान लागू हुआ—
(अ) 1954 ई. में (ब) 1975 ई. में
(स) 1982 ई. में (द) उक्त सभी में ( )
4. जनवादी चीन में शासन-व्यवस्था का प्रचलन है—
(अ) संघात्मक (ब) एकात्मक
(स) परिसंघात्मक (द) अनुसंघ ( )

5. जनवादी चीन के संविधान की कुल धाराएँ हैं—
(अ) 102 (ब) 103 (स) 104 (द) 105 ( )

अध्याय 39

6. जनवादी चीन की व्यवस्थापिका का नाम है—
(अ) संसद (ब) राष्ट्रीय असेम्बली
(स) राष्ट्रीय जनवादी काँग्रेस (द) काँग्रेस ( )
7. जनवादी चीन में अपनाया गया है—
(अ) कार्यपालिका की सर्वोच्चता (ब) व्यवस्थापिका की सर्वोच्चता
(स) न्यायपालिका की सर्वोच्चता (द) दलीय सर्वोच्चता ( )
8. 1982 के संविधान के किस अनुच्छेद में राष्ट्रीय किया गया है—
(अ) अनुच्छेद 56 (ब) अनुच्छेद 57
(स) अनुच्छेद 58 (द) अनुच्छेद 59 ( )
9. राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस की सदस्य संख्या है—
(अ) 900 (ब) 950
(स) 1000 (द) 1000 से अधिक ( )
10. राष्ट्रपति जनवादी कांग्रेस का कार्यकाल है—
(अ) 5 वर्ष (ब) 6 वर्ष (स) 7 वर्ष (द) 8 वर्ष ( )

अध्याय 40

11. जनवादी चीनी गणतन्त्र के अध्यक्ष को कहा जाता है—
(अ) चेयरमैन (ब) राष्ट्रपति
(स) उपराष्ट्रपति (द) प्रधानमन्त्री ( )
12. जनवादी चीन के राष्ट्रपति के निर्वाचन की व्यवस्था की गई है—
(अ) अनुच्छेद 79 में (ब) अनुच्छेद 80 में
(स) अनुच्छेद 81 में (द) अनुच्छेद 82 में ( )
13. जनवादी चीन के राष्ट्रपति का कार्यकाल है—
(अ) 4 वर्ष (ब) 5 वर्ष (स) 7 वर्ष (द) 9 वर्ष ( )
14. जनवादी चीन के संविधान में राष्ट्रपति के लिए आयु निर्धारित की गई है—
(अ) 30 वर्ष (ब) 35 वर्ष (स) 40 वर्ष (द) 45 वर्ष ( )
15. जनवादी चीन की राज्य परिषद् में प्रतिनिधित्व होता है—
(अ) प्रधानमन्त्री का (ब) विभिन्न मन्त्रियों का
(स) महासचिव का (द) उक्त सभी का ( )

अध्याय 41

16. जनवादी चीन में अपनाया गया है—
(अ) शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त (ब) न्यायिक पुनरावलोकन का सिद्धान्त
(स) शक्ति विभाजन (द) इनमें से कोई नहीं ( )

17. जनवादी चीन में न्यायपालिका का संगठन है—
(अ) केन्द्रीयकृत (ब) विकेन्द्रीकृत
(स) एकात्मक (द) पिरामिडनुमा ( )

18. जनवादी चीन में न्यायिक सोपान में सर्वोच्च स्थान है—
(अ) सर्वोच्च जन-न्यायालय का (ब) स्थानीय जन-न्यायालय का
(स) विशिष्ट जन-न्यायालय का (द) विशेष अदालतों का ( )

19. जनवादी चीन के संविधान में सर्वोच्च जन-न्यायालय का उल्लेख किया गया है—
(अ) अनुच्छेद 127 में (ब) अनुच्छेद 128 में
(स) अनुच्छेद 129 में (द) अनुच्छेद 130 में ( )

20. जनवादी चीन में विशिष्ट जन न्यायालयों के प्रकार हैं—
(अ) सैनिक न्यायालय (ब) यातायात न्यायालय
(स) रेलवे न्यायालय (द) उक्त सभी ( )

अध्याय 42

21. जनवादी चीन के साम्यवादी दल की मुख्य विशेषता है—
(अ) विश्व का सबसे बड़ा (ब) जनवादी स्वरूप
(स) प्रभुत्वपूर्ण भूमिका (द) इनमें से कोई नहीं ( )

22. जनवादी चीन के साम्यवादी दल के शीर्ष पर है—
(अ) राष्ट्रीय दल काँग्रेस (ब) केन्द्रीय समिति
(स) स्थानीय दल काँग्रेस (द) इनमें से कोई नहीं ( )

23. जनवादी चीन के साम्यवादी दल का पहला स्तम्भ 'मार्क्सवादी लेनिनवादी विचारधारा है, यह निष्कर्ष है—
(अ) लॉस्की का (ब) वुडरो विल्सन का
(स) हेरोल्ड हिंटन का (द) जैनिंग्स का ( )

24. "दलीय एकता तथा अनुशासन की भावना पर चीनी साम्यवादी दल में विशेष ध्यान दिया जाता है।" यह कथन है—
(अ) मुनरो का (ब) मैरियट का
(स) हैराल्ड हिन्टन का (द) डायसी का ( )

25. जनवादी चीन में साम्यवादी दल का प्राथमिक लक्ष्य है—
(अ) पूर्ण साम्यवाद की स्थापना
(ब) सेना पर नियन्त्रण रखना
(स) अधिनायकत्व की स्थापना करना
(द) अन्य सभी उपकरणों पर नियन्त्रण रखना ( )

उत्तरमाला

1	ब	2	अ	3	द	4	ब	5	अ	6	स
7	द	8	द	9	द	10	अ	11	ब	12	अ
13	ब	14	स	15	द	16	द	17	द	18	अ
19	अ	20	द	21	अ	22	अ	23	स	24	स
25	अ										

फ्रांस का संविधान

अध्याय 43

1. फ्रान्स में पाँचवें गणतन्त्र में लागू संविधान है—
   (अ) 13वाँ (ब) 14वाँ (स) 15वाँ (द) 16वाँ ( )
2. फ्रान्स में वर्तमान संविधान लागू किया गया—
   (अ) 1958 ई. में (ब) 1958 ई. में
   (स) 1959 ई. में (द) 1960 ई. में ( )
3. फ्रान्स के संविधान में कुल धाराएँ हैं—
   (अ) 93 (ब) 94 (स) 95 (द) ( )
4. फ्रान्स के संविधान में संशोधन प्रक्रिया का उल्लेख पाया जाता है—
   (अ) अनुच्छेद 89 में (ब) अनुच्छेद 90 में
   (स) अनुच्छेद 91 में (द) अनुच्छेद 92 में ( )
5. फ्रान्स के गणतन्त्रात्मक स्वरूप का उल्लेख पाया जाता है—
   (अ) अनुच्छेद 2 में (ब) अनुच्छेद 3 में
   (स) अनुच्छेद 4 में (द) अनुच्छेद 5 में ( )

अध्याय 44

6. "फ्रान्स के राष्ट्रपति को एक वंशानुगत राजा बनाया गया है और उसे ऐसी शक्तियाँ प्रदान की गई हैं कि वह स्वयं को एक वैधानिक अधिनायक बना सकता है।" यह विचार है—
   (अ) लॉस्की का (ब) मुनरो का
   (स) मैडीज फ्रान्स का (द) डायसी का ( )
7. संविधान में फ्रान्स के राष्ट्रपति की शक्तियों का उल्लेख किया गया है—
   फ्रान्स के राष्ट्रपति का निर्वाचन होता है—
   (अ) 4 वर्ष के लिए (ब) 5 वर्ष के लिए
   (स) 6 वर्ष के लिए (द) 7 वर्ष के लिए ( )
8. फ्रान्स के राष्ट्रपति को संविधान के संरक्षण और अनुरक्षण की शक्ति प्रदान की गई है—
   (अ) धारा 5 द्वारा (ब) धारा 6 द्वारा
   (स) धारा 7 द्वारा (द) धारा 8 द्वारा ( )

9. फ्रान्स का राष्ट्रपति उच्च न्यायालय परिषद् के सदस्यों की नियुक्ति करता है
   (अ) 9 की (ब) 10 की (स) 11 की (द) 12 की ( )
10. फ्रान्स के राष्ट्रपति की स्थिति है—
   (अ) नाममात्र के शासक की (ब) औपचारिक शासक की
   (स) वैधानिक शासक की (द) वास्तविक शासक की ( )

अध्याय 45

11. फ्रान्स के प्रधानमन्त्री को नियुक्त करता है—
   (अ) राष्ट्रपति (ब) उपराष्ट्रपति
   (स) मन्त्रिपरिषद् (द) संसद ( )
12. फ्रान्स में मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों की नियुक्ति की जाती है—
   (अ) राष्ट्रीय सभा द्वारा (ब) प्रधानमन्त्री द्वारा
   (स) राष्ट्रपति द्वारा (द) उपराष्ट्रपति द्वारा ( )
13. फ्रान्स में प्रधानमन्त्री तथा मन्त्रिपरिषद् उत्तरदायी है—
   (अ) राष्ट्रीय सभा के प्रति (ब) राष्ट्रपति के प्रति
   (स) जनता के प्रति (द) न्यायपालिका के प्रति ( )
14. फ्रान्स के वर्तमान राष्ट्रपति हैं—
   (अ) जनरकल डिगॉल (ब) फ्रान्सीस मितराँ
   (स) शिराक (द) बिली ब्रान ( )
15. "नवीन संविधान के अन्तर्गत यदि मन्त्रिगण राष्ट्रपति के लिपिक (Clerks) हैं तो प्रधानमन्त्री प्रधान लिपिक (Head Clerk) है।" यह कथन है—
   (अ) एण्ड्रे सिजफायड का (ब) डिगॉल का
   (स) मुनरो का (द) वुडरो विल्सन का ( )

अध्याय 46

16. फ्रान्स की संसद का प्रथम सदन है—
   (अ) लोकसदन (ब) सीनेट
   (स) प्रतिनिधि सभा (द) राष्ट्रीय सभा ( )
17. वर्तमान में फ्रान्स की राष्ट्रीय सभा की कुल सदस्य संख्या है—
   (अ) 465 (ब) 577 (स) 590 (द) 635 ( )
18. फ्रान्स की राष्ट्रीय सभा की अवधि है—
   (अ) 5 वर्ष (ब) 6 वर्ष (स) 7 वर्ष (द) 9 वर्ष ( )
19. फ्रान्स के द्वितीय सदन को कहा जाता है—
   (अ) राज्य परिषद् (ब) राज्यसभा
   (स) कांग्रेस (द) सीनेट ( )
20. सीनेट के सदस्यों का निर्वाचन किया जाता है—
   (अ) 4 वर्ष के लिए (ब) 6 वर्ष के लिए
   (स) 7 वर्ष के लिए (द) 9 वर्ष के लिए ( )

अध्याय 47

21. "देश में एक ओर से दूसरी ओर तक जाने वाले यात्री को जितनी बार घोड़ा बदलना पड़ता है उससे अधिक प्रकार के कानूनों को बदलना होता था।" यह वाक्य है—
(अ) वाल्तेयर का (ब) नेपोलियन का
(स) नेपोलियन बोनापार्ट का (द) डिगॉल का ( )
22. फ्रेन्च कानूनों को सबसे पहले संहिताबद्ध करने का श्रेय जाता है—
(अ) नेपोलियन को (ब) वाल्तेयर को
(स) राबर्ट क्लाइव को (स) इनमें से किसी को नहीं ( )
23. फ्रान्स की न्याय-व्यवस्था की एक अनूठी विशेषता है—
(अ) एकल न्याय व्यवस्था (ब) बहुल न्याय व्यवस्था
(स) वैद्य न्याय व्यवस्था (द) एकीकृत न्याय व्यवस्था ( )
24. फ्रान्स की न्याय व्यवस्था का एक अनुपम पक्ष है—
(अ) प्रशासकीय न्यायालय (ब) सामान्य न्यायालय
(स) दीवानी न्यायालय (द) फौजदारी न्यायालय ( )
25. संविधान की किस धारा में संवैधानिक परिषद् सम्बन्धित है—
(अ) धारा 55-63 (ब) धारा 64
(स) धारा 65 (द) धारा 66 ( )

अध्याय 48

26. फ्रान्स में केन्द्रीकृत प्रशासनिक व्यवस्थापन के सूत्रपात करने का सर्वप्रथम श्रेय जाता है—
(अ) लुई चौदहवें को (ब) नेपोलियन को
(स) जनरल डिगॉल को (द) मितराँ को ( )
27. कौन-सा मन्त्री देश के स्थानीय मामलों का अन्तिम पदाधिकारी है ?
(अ) गृहमन्त्री (ब) वित्त मन्त्री
(स) स्थानीय स्वशासन (द) शिक्षा मन्त्री ( )
28. फ्रान्स के स्थानीय स्वशासन के महत्त्वपूर्ण लक्षण हैं—
(अ) केन्द्रीयकरण (ब) एकरूपता
(स) श्रृंखलाबद्धता (द) उक्त सभी ( )
29. "पता नहीं क्यों, यहाँ चार करोड़ लोगों को अपने आन्तरिक मामलों में विचार व्यक्त करने की स्वाधीनता नहीं दी जाती।" उक्त कथन है—
(अ) लॉर्ड ब्राइस का (ब) मुनरो का
(स) ब्लंशली का (द) वुडरो विल्सन का ( )
30. फ्रान्स के स्थानीय शासन की इकाइयाँ एक पिरामिड के रूप में हैं, जिसका गुम्बज है—
(अ) गृह मन्त्रालय (ब) वित्त मन्त्रालय
(स) विदेश मन्त्रालय (द) स्थानीय स्वशासन मन्त्रालय ( )

अध्याय 49

31. प्रशासकीय कानूनों का सम्बन्ध होता है—
    (अ) दीवानी मामलों से
    (ब) फौजदारी मामलों से
    (स) संवैधानिक मामलों से
    (द) सरकारी कर्मचारियों के मामलों से ( )

32. "प्रशासकीय कानून केवल शासन से सम्बन्धित नियम है। इन नियमों द्वारा शासन अधिकारियों के अधिकारों तथा कर्तव्यों का निर्णय होता है।" यह कथन है—
    (अ) डॉ. जेनिंग्स का (ब) लॉस्की का
    (स) डायसी का (द) वुडरो विल्सन का ( )

33. प्रशासकीय कानूनों का महत्व है—
    (अ) न्याय-प्रक्रिया का सरल होना
    (ब) जनता की स्वतन्त्रता का सुरक्षित रहना
    (स) शीघ्रातिशीघ्र न्याय करना
    (द) उक्त सभी ( )

अध्याय 50

34. फ्रान्स की नौकरशाही की मुख्य विशेषताएँ हैं—
    (अ) मिशनरी भावना (ब) अच्छे प्रत्याशियों का चयन
    (स) विभिन्नताएँ (द) उक्त सभी ( )

35. फ्रान्स के सेवीवर्ग में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति देन रही है—
    (अ) राजतन्त्र की (ब) लोकतन्त्र की
    (स) अध्यक्षात्मक व्यवस्था की (द) संसदात्मक व्यवस्था की ( )

36. पी. चेटनिट ने फ्रान्स के सेवीवर्ग प्रशासन की विशेषताएँ बताई हैं—
    (अ) राज्य की सर्वोच्चता (ब) केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति
    (स) स्थायित्व (द) उक्त सभी ( )

अध्याय 51

37. फ्रान्स की दलीय व्यवस्था को कहा जाता है—
    (अ) एकदलीय व्यवस्था
    (ब) द्विदलीय व्यवस्था
    (स) बहुदलीय व्यवस्था
    (द) एकदलीय प्रभुत्व वाली बहुदलीय व्यवस्था ( )

38. फ्रान्स के संविधान में मताधिकार की अभिव्यक्ति का साधन राजनीतिक दलों को माना गया है—
    (अ) धारा 4 द्वारा (ब) धारा 5 द्वारा
    (स) धारा 6 द्वारा (द) धारा 7 द्वारा ( )

39. "पहली बार एक गणतन्त्रात्मक संविधान राजनीतिक दलों का केवल नाम ही नहीं लेता है, बल्कि राजनीतिक जीवन के एक स्वाभाविक तत्व के रूप में इसे मान्यता भी प्रदान करता है।" यह कथन है—
(अ) पिकल्स का (ब) पिफनर का
(स) मौरिस डुबरगर का (द) लॉस्की का ( )

40. पूर्व राष्ट्रपति स्व. फ्रांसिस मितराँ का सम्बन्ध था—
(अ) साम्यवादी दल से (ब) समाजवादी दल से
(स) गालिस्ट पार्टी से (द) गणतन्त्रवादी दल से ( )

उत्तरमाला

1	स	2	अ	3	ब	4	अ	5	अ	6	स
7	द	8	अ	9	अ	10	द	11	अ	12	स
13	अ	14	स	15	अ	16	द	17	ब	18	अ
19	द	20	द	21	अ	22	अ	23	स	24	अ
25	अ	26	ब	27	अ	28	द	29	अ	30	अ
31	द	32	अ	33	द	34	द	35	अ	36	द
37	स	38	अ	39	स	40	ब				

सन्दर्भ ग्रन्थ

(SELECT READINGS)

1. *Alexander Gray* : The Socialist Tradition Marx to Lenin.
2. *Almond & Powell* : Comparative Political System, Policy and Process.
3. *A. C. Kapoor* : Major Consututions.
4. *A. D. Barnett* : Communist China and Asia.
5. *A. F. K. Orgarski* : World Politics.
6. *Black and Thompson* : Foreign Policies in a Changing World.
7. *Chifford Greartz* : Old Societies and New States.
8. *C. F. Strong* : Modern Constitutions.
9. *George Kennan* : Soviet Foreign Policy Under Lenin & Stalin.
10. *Gopal Narayan* : Vishwa ka Samvidhan.
11. *G. F. C. Catlin* : Systematic Politics.
12. *Harold S. Wingley* : Japanese Government and Politics.
13. *H. Ekstein & David Apter* : Comparative Politics.
14. *H. J. Morgenthau* : Politics among Nations.
15. *H. K. Jacobson* (ed.) : America's Foreign Policy.
16. *H. V. Wisenan* : Political System; Some Sociological Approaches.
17. *I. I. Clamde* : Power and International Relations.
18. *J. D. B. Miller* : The Commonwealth in the World.
19. *K. C. Wheare* : Federal Government.
20. *Macridis* : Readings in Foreign Policies.
21. *Menelly* : Contemporary Government in Japan.
22. *Ogg and Zink* : Modern Foreign Government.
23. *Palombara* : Politics within Nations.
24. *Peter S. H. Tang* : Communist China Today. Vol. I and II.
25. *R. C. Bone* : Contemporary South East Asia.
26. *Scalpino and Masuni* : Parties and Politics in Contemporary Japan.
27. *V. P. Dutt* : China's Foreign Policy.
28. *Ward and Marcrides* : Modern Political System.
29. *Warner Levi* : Modern China's Foreign Policy.
30. *W. W. Rostow* : The United States in the World Arena.